आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की
आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत भाषा टीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(प्रथम खण्ड)

गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं उसकी भाषा टीका

सम्पादक :
ब्र० यशपाल जैन, एम. ए.

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग
श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर–३०२०१५

प्रथम संस्करण : २२००
[७ मई, १९८९ अक्षय तृतीया]

मूल्य : चालीस रुपये मात्र
मुद्रक : श्री वालचन्द्र यन्त्रालय 'मानवाश्रम', जयपुर

प्रकाशकीय

आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की आचार्यकल्प पण्डित प्रवर टोडरमलजी कृत भाषा टीका, जो सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका के नाम से विख्यात है, के प्रथम खण्ड का प्रकाशन करते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

दिगम्बराचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती करणानुयोग के महान आचार्य थे। गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार तथा द्रव्य-सग्रह ये महत्वपूर्ण कृतियाँ आपकी प्रमुख देन है। पण्डित प्रवर टोडरमलजी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार और क्षपणासार की भाषा टीकाऐ पृथक्-पृथक् बनाई थी। चूंकि ये चारो टीकाएँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा सहायक थी, अत सुविधा की दृष्टि से उन्होने उक्त चारो टीकाओ को मिलाकर एक ही ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत कर दिया तथा इस ग्रन्थ का नामकरण उन्होने 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका किया। इस सम्बन्ध मे टोडरमलजी स्वय लिखते है—

> या विधि गोम्मटसार, लब्धिसार ग्रन्थनिकी,
> भिन्न-भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकै।
> इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ,
> तातै एक कर दई हम तिनकौ मिलायकै।।
> सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका धर्यो है याकौ नाम,
> सोई होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकै।
> कलिकाल रजनीमे अर्थ को प्रकाश करै,
> यातै निज काज कीजै इष्ट भाव भायकै।।

इस ग्रन्थ की पीठिका के सम्बन्ध मे मोक्षमार्ग प्रकाशक की प्रस्तावना लिखते हुए डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल लिखते है—

"सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका विवेचनात्मक गद्य शैली मे लिखी गई है। प्रारंभ मे इकहत्तर पृष्ठ की पीठिका है। आज नवीन शैली से सम्पादित ग्रन्थो मे भूमिका का बड़ा महत्त्व माना जाता है। शैली के क्षेत्र मे लगभग दो सौ बीस वर्ष पूर्व लिखी गई सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका आधुनिक भूमिका का आरम्भिक रूप है। किन्तु भूमिका का आद्य रूप होने पर भी उसमे प्रौढता पाई जाती है, उसमे हलकापन कही भी देखने को नही मिलता। इसके पढने से ग्रन्थ का पूरा हार्द खुल जाता है एव इस गूढ ग्रन्थ के पढने मे आने वाली पाठक की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य मे जो महत्त्व महाकवि पण्डित बनारसीदास के 'अर्द्धकथानक' को प्राप्त है, वही महत्त्व हिन्दी भूमिका साहित्य में सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका का है।"

इस ग्रन्थ का प्रकाशन बड़ा ही श्रम साध्य कार्य था, चूंकि प्रकाशन के लिए समाज का दबाव भी बहुत था, अत. इसे सम्पादित करने हेतु ब्र० यशपाल जी को तैयार किया गया। उन्होने अथक परिश्रम कर इस गुरुतर भार को वहन किया, इसके लिए यह ट्रस्ट सदैव उनका ऋणी रहेगा।

पुस्तक का प्रकाशन इस विभाग के प्रभारी श्री अखिल बसल ने बखूबी सम्हाला है। अत' उनका आभार मानते हुए जिन महानुभावो ने इस ग्रन्थ की कीमत कम करने मे आर्थिक सहयोग दिया है उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

इस ट्रस्ट के विषय में तो अधिक क्या कहूँ इसकी गतिविधियो से सारा समाज परिचित है ही, तीर्थ क्षेत्रो का जीर्णोद्धार एव उनका सर्वेक्षण तो इस ट्रस्ट के माध्यम से हुआ ही है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जिसके माध्यम से सैकडो विद्वान जैन समाज को मिले है और निरन्तर मिल रहे है।

साहित्य प्रकाशन एव प्रचार विभाग के माध्यम से भी अनुकरणीय कार्य इस ट्रस्ट द्वारा हो रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द के पचपरमागम समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड तथा पचास्तिकाय जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन तो इस विभाग द्वारा हुआ ही है साथ ही—मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्रावकधर्म प्रकाशक, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, ज्ञान स्वभाव–ज्ञेयस्वभाव, छहढाला, समयसार–नाटक, चिद्विलास आदि का भी प्रकाशन इस विभाग ने किया है। प्रचार कार्य को भी गति देने के लिए पाच विद्वान नियुक्त किये गए है जो गाँव-गाँव जाकर विभिन्न माध्यमो से तत्त्वप्रचार मे रत है।

इस अनुपम ग्रन्थ के माध्यम से आप अपना आत्म कल्याण कर भव का अभाव करे ऐसी मगल कामना के साथ—

– नेमीचन्द पाटनी

श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

महत्त्वपूर्ण साहित्य

(५) मूल गाथा तो बड़े टाइप मे दी ही है, साथ ही टीका मे भी जहाँ पर संस्कृत या प्राकृत के कोई सूत्र अथवा गाथा, श्लोक आदि आये है, उनको भी ब्लैक टाइप मे दिया है ।

(६) गाथा का विषय जहाँ भी धवलादि ग्रंथों से मिलता है, उसका उल्लेख श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास से प्रकाशित गोम्मटसार जीवकाण्ड के आधार से फुटनोट मे किया है ।

अनेक जगह अलौकिक गणितादि के विषय अति सूक्ष्मता के कारण से हमारे भी समझ मे नही आये है – ऐसे स्थानो पर मूल विषय यथावत ही दिया है, अपनी तरफ से अनुच्छेद भी नही बदले हैं ।

सर्वप्रथम मैं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामन्त्री श्री नेमीचन्दजी पाटनी का हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होने इस ग्रंथ के संपादन का कार्यभार मुझे देकर ऐसे महान ग्रंथ के सूक्ष्मता से अध्ययन का सुअवसर प्रदान किया ।

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल का भी इस कार्य मे पूरा सहयोग एव महत्त्वपूर्ण सुझाव तथा मार्गदर्शन मिला है, इसलिए मैं उनका भी हार्दिक आभारी हूँ ।

हस्तलिखित प्रतियो से मिलान करने का कार्य अतिशय कष्टसाध्य होता है । मैं तो हस्त-लिखित प्रति पढ़ने मे पूर्ण समर्थ भी नही था । ऐसे कार्य मे शातस्वभावी स्वाध्यायप्रेमी साधर्मी भाई श्री सौभागमलजी बोहरा दूदूवाले, बापूनगर जयपुर का पूर्ण सहयोग रहा है । ग्रंथ के कुछ विशेष प्रकरण अनेक बार पुनः-पुन. देखने पड़ते थे, फिर भी आप आलस्य छोड़कर निरन्तर उत्साहित रहते थे । मुद्रण कार्य के समय भी आपने प्रत्येक पृष्ठ का शुद्धता की दृष्टि से अवलोकन किया है । एतदर्थ आपका जितना धन्यवाद दिया जाय, वह कम ही है । आशा है भविष्य मे भी आपका सहयोग इसीप्रकार निरन्तर मिलता रहेगा । साथ ही ब्र० कमलाबेन जयपुर, श्रीमती शीलाबाई विदिशा एव श्रीमती श्रीवती जैन दिल्ली का भी इस कार्य मे सहयोग मिला है, अतः वे भी धन्यवाद की पात्र है ।

गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार-क्षपणासार के "संदृष्टि अधिकार" का प्रकाशन पृथक् ही होगा । गणित सम्बन्धी इस क्लिष्ट कार्य का भार ब्र० विमलाबेन ने अपने ऊपर लिया तथा शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी अत्यन्त परिश्रम से पूर्ण करके मेरे इस कार्य मे अभूतपूर्व योगदान दिया है, इसलिए मैं उनका भी हार्दिक आभारी हूँ ।

हस्तलिखित प्रतियाँ जिन मदिरो से प्राप्त हुई हैं, उनके ट्रस्टियो का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होने ये प्रतियाँ उपलब्ध कराई । इस कार्य में श्री विनयकुमार पापड़ीवाल तथा सागरमलजी बज (लल्लूजी) का भी सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त मे इस ग्रंथ का स्वाध्याय करके सभी जन सर्वज्ञता की महिमा से परिचित होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव का आश्रय लेवे एवं पूर्ण कल्याण करें – यही मेरी पवित्र भावना है ।

अक्षय तृतीया
७ मई, १९८९

— ब्र० यशपाल जैन

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम कराने वाले दातारों की सूची

१.	श्रीमती विभा जैन, ध.प. श्री अरुणकुमारजी जैन	मुजफ्फरनगर	२००१.००
२.	श्रीमती भवरीदेवी सुपुत्री स्व. श्री ताराचन्दजी गगवाल	जयपुर	२०००.००
३.	श्रीमती शकुतलादेवी ध प. श्री विजयप्रतापजी जैन	कानपुर	१००१.००
४.	श्री के. सी. सोगानी	ब्यावर	१००१.००
५.	श्री छोटाभाई भीखाभाई मेहता	बम्बई	१००१.००
६.	श्रीमती प्यारीबाई ध प श्री माणकचन्दजी जैन	मुगावली	१०००.००
७.	श्रीमती किरणकुमारी जैन	चण्डीगढ	९००.००
८.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर	लवाण	६४१.००
९.	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल	कानपुर	५५१.००
१०.	श्री महिला मुमुक्षुमण्डल श्रीबुधु ब्याँ सिघईजी का मन्दिर	सागर	५०५ ००
११	श्रीमती भवरीदेवी ध प. श्री घीसालालजी छाबड़ा	सीकर	५०१.००
१२.	श्रीमती बसंतीदेवी ध.प. श्री हरकचन्दजी छाबड़ा	बम्बई	५०१.००
१३.	श्रीमती नारायणीदेवी ध प. श्रीगुलाबचन्दजी रारा	दिल्ली	५०१ ००
१४.	श्री हुलासमलजी कासलीवाल	कलकत्ता	५०१ ००
१५.	श्री भैयालालजी वैद	उजनेर	५०१.००
१६.	श्री प्रमोदकुमार विनोदकुमारजी जैन	हस्तिनापुर	५०१.००
१७.	श्री माणकचन्द माधोसिंहजी साखला	जयपुर	५०१.००
१८.	श्री चतरसेन अमीतकुमारजी जैन	रुड़की	५०१.००
१९.	श्री सोहनलालजी जैन, जयपुर प्रिण्टर्स	जयपुर	५०१.००
२०.	श्री इन्दरचन्दजी विजयकुमारजी कौशल	छिन्दवाडा	५०१ ००
२१.	श्रीमती सुमित्रा जैन ध.प श्री नरेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२२.	श्रीमती किरण जैन ध प. श्री सुरेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१ ००
२३.	श्रीमती त्रिशला जैन ध प श्री रमेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१ ००
२४.	श्रीमती उषा जैन ध प. श्री अनिलकुमारजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१ ००
२५	श्री राजेश जैन (टोनी)	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२६	श्री राजकुमारजी कासलीवाल	तिनसुखिया	५०१.००
२७.	श्रीमती धापूदेवी ध प. स्व श्री केसरीमलजी सेठी	नई दिल्ली	५०१ ००
२८.	श्री अजितप्रसादजी जैन	दिल्ली	५०१.००
२९.	श्री सुमेरमलजी जैन	तिनसुखिया	५०१.००
३०.	श्री पूनमचन्द नेमचन्द जैन	बर्डात	५०१.००
३१.	श्रीमती मोतीदेवी वण्डी ध.प. स्व. श्री उग्रसेनजी वण्डी	उदयपुर	५०१ ००
			२११२२.००

३२.	श्री कपूरचन्द राजमल जैन एवं परिवार	नवागढ	५०१.००
३३	श्री छोटेलाल सतीशचन्दजी जैन	इटावा	५०१.००
३४.	श्रीमती रगूबाई ध.प. श्री उम्मेदमलजी भण्डारी	सायला	५००.००
३५	श्रीमती केसरदेवी ध प श्री जयनारायणजी जैन	फिरोजाबाद	५००.००
३६.	श्री सुहास वसत मोहिरे	बेलगाव	५००.००
३७	श्री वीरेन्द्रकुमार बालचन्द जैन	पारोला	५००.००
३८	श्रीमती केसरदेवी बण्डी	उदयपुर	५००.००
३९.	श्री माणकचन्द प्रभुलालजी	कुरावड	५००.००
४०	श्रीमती रत्नप्रभा सुपुत्री स्व. श्री ताराचन्दजी गगवाल	जयपुर	५००.००
४१	श्री माणकचन्द प्रभुलालजी भगनोत	कुरावड	५००.००
४२.	श्री नेमीचन्दजी जैन मगरोनी वाले	शिवपुरी	५००.००
४३.	स्व श्रीमती कुसुमलता एव सुनद वसल स्मृति निधि हस्ते डॉ. राजेन्द्र बसल	अमलाई	१११.००
४४.	श्री जयन्ति भाई धनजी भाई दोशी	दादर बम्बई	१११.००
४५.	श्रीमती धुडीबाई खेमराज गिडिया	खैरागढ	१०१.००
४६.	चौ० फूलचन्दजी जैन	बम्बई	१०१.००
४७.	फुटकर		५७७२.००
		योग	३२८२०.००

हे भव्य हो! शास्त्राभ्यास के अनेक अग है। शब्द या अर्थ का वाचन या सीखना, सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारम्बार चर्चा करना इत्यादि अनेक अग है-वहाँ जैसे बने तैसे अभ्यास करना। यदि सर्व शास्त्र का अभ्यास न बने तो इस शास्त्र मे सुगम या दुर्गम अनेक अर्थों का निरूपण है, वहाँ जिसका बने उसका अभ्यास करना। परन्तु अभ्यास मे आलसी न होना।

– प० भागचन्द जी

विषय-सूची

—०—

विषयजनित जो सुख है वह दुख ही है क्योकि विषय-सुख परनिमित्त से होता है, पूर्व और पश्चात् तुरन्त ही आकुलता सहित है और जिसके नाश होने के अनेक कारण मिलते ही हैं, आगामी नरकादि दुर्गति प्राप्त करानेवाला है··· ऐसा होने पर भी वह तेरी चाह अनुसार मिलता ही नही, पूर्व पुण्य से होता है, इसलिए विषम है। जैसे खाज से पीडित पुरुष अपने अंग को कठोर वस्तु से खुजाते हैं वैसे ही इन्द्रियो से पीड़ित जीव उनको पीडा सही न जाय तब किंचितमात्र जिनमें पीडा का प्रतिकार सा भासे ऐसे जो विषयसुख उनमे झपापात करते हैं, वह परमार्थ रूप सुख नहीं, और शास्त्राभ्यास करने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ उससे उत्पन्न आनन्द, वह सच्चा सुख है। जिससे वह सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, किसी द्वारा नष्ट नही होता, मोक्ष का कारण है, विषम नही है। जिस प्रकार खाज की पीडा नही होती तो सहज ही सुखी होता, उसी प्रकार वहाँ इन्द्रिय पीड़ने के लिए समर्थ नही होती तब सहज ही सुख को प्राप्त होता है। इसलिए विषयसुख को छोड़कर शास्त्राभ्यास करना, यदि सर्वथा न छुटे तो जितना हो सके उतना छोड़कर शास्त्राभ्यास मे तत्पर रहना।

इसी ग्रन्थ से अनुदित, पृष्ठ – १३ व १४

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पीठिका

।। मंगलाचरण ।।

बंदौ ज्ञानानंदकर, नेमिचन्द गुणकंद ।
माधव वंदित विमलपद, पुण्यपयोनिधि नंद ।। १ ।।
दोष दहन गुन गहन घन, अरि करि हरि अरहंत ।
स्वानुभूति रमनी रमन, जगनायक जयवंत ।। २ ।।
सिद्ध सुद्ध साधित सहज, स्वरससुधारसधार ।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार ।। ३ ।।
जैनी वानी विविध विधि, वरनत विश्वप्रमान ।
स्यात्पद-मुद्रित अहित-हर, करहु सकल कल्यान ।। ४ ।।
मै नमो नगन जैन जन, ज्ञान-ध्यान धन लीन ।
मैन मान बिन दान घन, एन हीन तन छीन ।। ५ ।। [१]
इहविधि मंगल करन तै, सबविधि मंगल होत ।
होत उदंगल दूरि सब, तम ज्यौ भानु उदोत ।। ६ ।।

सामान्य प्रकरण

अथ मंगलाचरण करि श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताकी देशभाषामयी टीका करने का उद्यम करौ हौ। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है जो सातिशय बुद्धि-बल संयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाहन होना दुर्लभ है । अर मैं मंदबुद्धि अर्थ प्रकाशनेरूप याकी टीका करनी विचारौ हौ ।

सो यहु विचार ऐसा भया जैसै कोऊ अपने मुख तै जिनेद्रदेव का सर्व गुण वर्णन किया चाहै, सो कैसैं बनै ?

इहां कोऊ कहै – नाहीं बनै है तो उद्यम काहे कौ करौ हौ ?

ताकौ कहिये है – जैसै जिनेद्रदेव के सर्व गुण कहने की सामर्थ्य नाही, तथापि भक्त पुरुष भक्ति के वश तै अपनी वुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै, तैसै इस ग्रंथ का संपूर्ण अर्थ प्रकाशने की सामर्थ्य नाही । तथापि अनुराग के वश तै मैं अपनी बुद्धि अनुसार (गुण)[२] अर्थ प्रकाशोंगा ।

१. यह चित्रालंकारयुक्त है ।
२. गुण शब्द घ प्रति मे मिला ।

बहुरि कोऊ कहै कि – अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनि कौं टीका करने का अधिकारी होना युक्त नाहीं ।

ताकौं कहिये है – जैसैं किसी शिष्यशाला विषैं बहुत बालक पढै हैं । तिनिविषैं कोऊ बालक विशेष ज्ञान रहित है, तथापि अन्य बालकनि तैं अधिक पढ्या है, सो आपतैं थोरे पढने वाले बालकनि कौं अपने समान ज्ञान होने के अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्य का अधिकारी हो है । तैसैं मेरे विशेष ज्ञान नाहीं, तथापि काल दोष तैं मोतैं भी मंदबुद्धि है, अर होंहिगे । तिनिकैं मेरे समान इस ग्रंथ का ज्ञान होने के अर्थि टीका करने का अधिकारी भया हौं ।

बहुरि कोऊ कहै कि – यहु कार्य करना तो विचार्या, परन्तु जैसैं छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करना विचारै, तहां उस कार्य विषै चूक होई ही, तहां वह हास्य कौं पावै है । तैसैं तुम भी मंदबुद्धि होय, इस ग्रंथ की टीका करनी विचारी हौ सो चूक होइगी, तहा हास्य कौं पावोगे ।

ताकौं कहिये है – यहु तौ सत्य है कि मैं मंदबुद्धि होइ ऐसे महान ग्रंथ की टीका करनी विचारी हौ, सो चूक तौ होइ, परन्तु सज्जन हास्य नाही करैंगे । जैसैं औरनि तैं अधिक पढ्या बालक कही भूलै तब बड़े ऐसा विचारै है कि बालक है, भूलै ही भूलै, परंतु और बालकनि तै भला है, ऐसे विचारि हास्य नाही करै है । तैसैं मैं इहां कही भूलोंगा तहां सज्जन पुरुष ऐसा विचारैंगे कि मंदबुद्धि था, सौ भूलै ही भूलै, परंतु केतेइक अतिमंदबुद्धीनि तै भला है, ऐसैं विचारि हास्य न करैंगे ।

सज्जन तो हास्य न करेंगे, परन्तु दुर्जन तौ हास्य करैंगे ?

ताकौं कहिये है कि – दुष्ट तौ ऐसैं ही है, जिनके हृदय विषै औरनि के निर्दोष भले गुण भी विपरीतरूप ही भासे । सो उनका भय करि जामै अपना हित होय ऐसे कार्य कौ कौन न करैगा ?

बहुरि कोऊ कहै कि – पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने-करावने तैं ही हित हो है, मंदबुद्धिनि करि ग्रंथ की टीका करने की महंतता काहेकौं प्रगट कीजिये ?

ताकौं कहिये है कि – ग्रंथ अभ्यास करने तैं ग्रंथ की टीका रचना करने विषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है । बहुरि अन्य जीवनि कौं ग्रंथ अभ्यास करावने का संयोग होना दुर्लभ है । अर संयोग होइ तौ कोई ही जीव के अभ्यास होइ । अर ग्रंथ की टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनि कैं अर्थ का ज्ञान होइ । तातैं अपना अर अन्य जीवनि का विशेष हित होने के अर्थि टीका करिये है, महंतता का तौ किछू प्रयोजन नाही ।

बहुरि कोऊ कहै कि इस कार्य विषै विशेष हित हो है सो सत्य, परंतु मंदबुद्धि तै कही भूलि करि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहां महत् पाप उपजने तै अहित भी तो होइ ?

ताकौ कहिए है – यथार्थ सर्व पदार्थनि का ज्ञाता तौ केवली भगवान है। औरनि कै ज्ञानावरण का क्षयोपशम के अनुसारी ज्ञान है, तिनिकौ कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै, परंतु जिनदेव का ऐसा उपदेश है – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनि के वचन की प्रतीति करि वा हठ करि वा क्रोध, मान, माया, लोभ करि वा हास्य, भयादिक करि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ, सो महापापी है। अर विशेष ज्ञानवान गुरु के निमित्त बिना, वा अपने विशेष क्षयोपशम बिना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेव का उपदेश ऐसै ही है, ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थ कौ अन्यथा श्रद्धै है वा उपदेश दे तौ याकौ महत् पाप न होइ । सोइ इस ग्रथ विषै भी आचार्य करि कहा है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।२७।। जीवकांड ।।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम विशेष ज्ञानी तै ग्रंथ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करि टीका करने का प्रारंभ क्यों न कीया ?

ताकौ कहिये है – काल दोष तै केवली, श्रुतकेवली का तौ इहां अभाव ही भया। बहुरि विशेष ज्ञानी भी विरले पाइए। जो कोई है तौ दूरि क्षेत्र विषै है, तिनिका संयोग दुर्लभ। अर आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए। तातैं जो बन्या सो अर्थ का निर्णय कीया, अवशेष जैसै है तैसै प्रमाण है।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम कही सो सत्य, परंतु इस ग्रथ विषै जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का किछू उपाय भी है ?

ताकौ कहिये है – एक उपाय यहु कीजिए है – जो विशेष ज्ञानवान पुरुषनि का प्रत्यक्ष तौ संयोग नाही, तातै परोक्ष ही तिनिस्यों ऐसी बीनती करौ हौ कि मैं मंद बुद्धि हौ, विशेषज्ञान रहित हौ, अविवेकी हौ, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रथनि का विशेष अभ्यास मेरे नाही है, तातै शक्तिहीन हौ, तथापि धर्मानुराग के वश तै टीका करने का विचार कीया, सो या विषै जहा-जहां चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां-तहां मेरे ऊपरि क्षमा करि तिस अन्यथा अर्थ कौ दूरि करि यथार्थ अर्थ लिखना। ऐसै विनती करि जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का उपाय कीया है।

बहुरि कोऊ कहै कि तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया, परतु ऐसे महान ग्रंथनि की टीका सस्कृत ही चाहिये। भाषा विषै याकी गंभीरता भासै नाही।

ताकौं कहिये है – इस ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका तौ पूर्वं है ही। परन्तु तहा सस्कृत, गणित, आम्नाय आदि का ज्ञान रहित जे मंदबुद्धि हैं, तिनिका प्रवेश न हो है। बहुरि इहां काल दोष तै बुद्धयादिक के तुच्छ होने करि संस्कृतादि ज्ञान रहित घने जीव है। तिनिके इस ग्रंथ के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थि भापा टीका करिए है। सो जे जीव सस्कृतादि विशेषज्ञान युक्त हैं, ते मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका तै अर्थ धारैंगे। वहुरि जे जीव संस्कृतादि विशेप ज्ञान रहित है, ते इस भापा टीका तै अर्थ धारौ। वहुरि जे जीव संस्कृतादि ज्ञान सहित हैं, परंतु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव तै मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका विपैं प्रवेश न पावै हैं, ते इस भाषा टीका तै अर्थ कौ धारि, मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विपैं प्रवेश करहु। वहुरि जो भाषा टीका तै मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विपैं अधिक अर्थ होइ, ताके जानने का अन्य उपाय वनै सो करहु।

इहां कोऊ कहै – संस्कृत ज्ञानवालों कै भापा अभ्यास विपैं अधिकार नाही।

ताकौं कहिये है – संस्कृत ज्ञानवालों कौ भाषा वांचने तै कोई दोप तो नाही उपजै है, अपना प्रयोजन जैसे सिद्ध होइ तैसे ही करना। पूर्वं अर्धमागधी आदि भापामय महान ग्रंथ थे। वहुरि बुद्धि की मंदता जीवनि के भई, तव संस्कृतादि भापामय ग्रंथ वने। अव विशेप वुद्धि की मंदता जीवनि कै भई तातै देश भापामय ग्रंथ करने का विचार भया। वहुरि संस्कृतादिक का अर्थ भी अव भाषाद्वार करि जीवनि कौ समझाइये है। इहां भाषाद्वार करि ही अर्थ लिख्या तो किछू दोष नाहीं है।

ऐसै विचारि श्रीमद् **गोम्मटसार** द्वितीयनामा **पंचसंग्रह** ग्रंथ की 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' नामा संस्कृत टीका, ताकै अनुसारि **'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'** नामा यहु देशभाषामयी टीका करने का निश्चय किया है। सो श्री अरहंत देव वा जिनवाणी वा निर्ग्रंथ गुरुनि के प्रसाद तै वा मूल ग्रंथकर्ता नेमिचद्र आदि आचार्यनि के प्रसाद तै यहु कार्य सिद्ध होहु।

अव इस शास्त्र के अभ्यास विषै जीवनि कौ सन्मुख करिए है। हे भव्यजीव हो! तुम अपने हित कौ वाछौ हौ तौ तुमकौ जैसै वनै तैसे या शास्त्र का अभ्यास करना। जातै आत्मा का हित मोक्ष है। मोक्ष विना अन्य जो है, सो परसयोगजनित है, विनाशीक है, दुःखमय है। अर मोक्ष है सोई निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनंत सुखमय है। तातै मोक्ष पद पावने का उपाय तुमकौ करना। सो मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। सो इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने ही तै हो है।

सो कहिए है – जीवादि तत्त्वनि का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । सो बिना जानें श्रद्धान का होना आकाश का फूल समान है । पहिलै जानै तब पीछै तैसै ही प्रतीति करि श्रद्धान कौ प्राप्त हो है । तातै जीवादिक का जानना श्रद्धान होने तै पहिले जो होइ सोई तिनके श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कारण जानना । बहुरि श्रद्धान भए जो जीवादिक का जानना होइ, ताही का नाम सम्यग्ज्ञान है । बहुरि श्रद्धानपूर्वक जीवादि जानै स्वयमेव उदासीन होइ, हेय कौ त्यागै, उपादेय कौ ग्रहै, तब सम्यक् चारित्र हो है । अज्ञानपूर्वक क्रियाकांड तै सम्यक्चारित्र होइ नाही । ऐसै जीवादिक कौ जानने ही तै सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायनि की प्राप्ति निश्चय करनी । सो इस शास्त्र के अभ्यास तै जीवादिक का जानना नीकै हो है । जातै ससार है सोई जीव अर कर्म का संबध रूप है । बहुरि विशेष जानै इनका संबध का जो अभाव होइ सोई मोक्ष है । सो इस शास्त्र विषै जीव अर कर्म का ही विशेष निरूपण है । अथवा जीवादिक षड् द्रव्य, सप्त तत्त्वादिकनि का भी या विषे नीकै निरूपण है । तातै इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना ।

अब इहां केइ जीव इस शास्त्र का अभ्यास विषै अरुचि होने कौ कारण विपरीत विचार प्रकट करै है । तिनिकौ समझाइए है । तहा जीव प्रथमानुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग का केवल पक्ष करि इस करणानुयोगरूप शास्त्र विषै अभ्यास कौ निषेधै है ।

तिनिविषै प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इदानी जीवनि की बुद्धि मद बहुत है, तिनिकै ऐसै सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र विषै किछू समझना होइ नाही तातै तीर्थकरादिक की कथा का उपदेश दीजिए तौ नीकै समझै, अर समझि करि पाप तै डरै, धर्मानुरागरूप होइ, तातै प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है ।

ताकौ कहिये है – अब भी सर्व ही जीव तौ एक से न भए है । हीनाधिक बुद्धि देखिए है । तातै जैसा जीव होइ, तैसा उपदेश देना । अथवा मदबुद्धि भी सिखाए हुए अभ्यास तै बुद्धिमान होते देखिए है । तातै जे बुद्धिमान है, तिनिकौ तौ यहु ग्रंथ कार्यकारी है ही अर जे मंदबुद्धि है, ते विशेषबुद्धिनि तै सामान्य-विशेप रूप गुणस्थानादिक का स्वरूप सीखि इस शास्त्र का अभ्यास विपै प्रवर्तौ ।

इहां मंदबुद्धि कहै है कि – इस गोम्मटसार शास्त्र विपै तौ गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन करि बहुत कठिनता सुनिए है, हम कैसै या विषै प्रवेश पावै ?

तिनकौ कहिये है – भय मति करौ, इस भाषा टीका विषै गणित आदि का अर्थ सुगमरूप करि कह्या है , तातै प्रवेश पावना कठिन रह्या नाही । बहुर या

शास्त्र विषै कथन कहीं सामान्य है, कहीं विशेष है, कहीं सुगम है, कहीं कठिन है; तहां जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै ही है, अर जो न बनै तौ अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करौ। अपने उपाय में आलस्य करना नाहीं।

बहुरि तै कह्या – प्रथमानुयोग संबंधी कथादिक सुनें पाप तें डरै है, अर धर्मानुरागरूप हो हैं।

सो तहां तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं। इहा पाप-पुण्य के कारणकार्यादिक विशेष जानने तें ते दोऊ कार्य दृढता लिए हो है। तातें याका अभ्यास करना। ऐसें प्रथमानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषै कह्या जीव-कर्म का स्वरूप, सो जैसे है तैसें है ही, तिनिकौं जानें कहा सिद्धि हो है ? जो हिंसादिक का त्याग करि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिक की पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिक स्यो उदासीन हूजे इत्यादि शुभ कार्य करिए तौ आत्महित होइ। तातें इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

ताकौं कहिए है – हे स्थूलबुद्धि ! तैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे, ते करने योग्य ही हैं। परन्तु ते सर्व सम्यक्त्व विना ऐसे है जैसे अंक विना बिंदी। अर जीवादिक का स्वरूप जानें विना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बांझ का पुत्र। तातें जीवादिक जानने के अर्थि इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना। बहुरि तैं जैसें व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितें पुण्यबंध हो है। तैसें जीवादिक का स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है, सो प्रधान शुभ कार्य है। यातें सातिशय पुण्य का बंध हो है। बहुरि तिन व्रतादिकनि विषै भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है, सो कहिए है–

जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवादिक के विशेष जानै, पीछै यथार्थ ज्ञान करि हिंसादिक कौं त्यागि व्रत धारै, सोई व्रती है। बहुरि जीवादिक के विशेष जानें विना कथंचित् हिंसादिक का त्याग तें आपकौं व्रती मानै, सो व्रती नाहीं। तातें व्रत पालनें विषै ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

बहुरि तप दोय प्रकार है – एक बहिरंग, एक अंतरंग। तहां जाकरि शरीर का दमन होइ, सो बहिरंग तप है, अर जातें मन का दमन होइ, सो अंतरंग तप है। इनि विषै बहिरंग तप तें अंतरंग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादि तौ बहिरंग तप है। ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है। सिद्धांत विषै भी छह प्रकार अंतरंग तपनि विषै चौथा स्वाध्याय नाम तप कह्या है। तिसतें

उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है । तातै तप करने विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । बहुरि जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिकनि का स्वरूप जानै ही अरहंतादिकनि का स्वरूप नीकै पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है । ऐसी पहिचानि भए जो तीव्र अंतरंग भक्ति प्रकट हो है, सोई बहुत कार्यकारी है । बहुरि जो कुलक्रमादिक तै भक्ति हो है, सो किंचिन्मात्र ही फल की दाता है । तातै भक्ति विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि दान चार प्रकार है – तिनिविषै आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधा के दुःख कौ वा रोग के दुःख कौ, वा मरणादि भय के दुःख ही कौ दूर करै है । **अर ज्ञानदान है सो अनंत भव संतान संबंधी दुःख दूर करने कौ कारण** है । तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनि कै भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है । तातै ज्ञानदान उत्कृष्ट है, सो अपनै ज्ञानाभ्यास होइ तो अपना भला करै, अर अन्य जीवनि कौ ज्ञानदान देवै । ज्ञानाभ्यास बिना ज्ञानदान देना कैसै होइ ? तातै दान विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि जैसै जन्म तै ही केई पुरुष ठिगनि के घर गए – तहा तिन ठिगनि कौ अपने मानै है । बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्त स्यो अपने कुल का वा ठिगनि का यथार्थ ज्ञान होनै ते ठिगनि स्यो अंतरंग विषै उदासीन भया, तिनिकौ पर जानि संबंध छुड़ाया चाहै है । बाह्य जैसा निमित्त है तैसा प्रवर्त्तै है । बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनि कौ अपना ही जानै है अर किसी कारण तै कोऊ ठिग स्यो अनुरागरूप प्रवर्तै है । कोई ठिग स्यो लड़ि करि उदासीन भया आहारादिक का त्यागी होइ है ।

तैसै अनादि तै सर्व जीव ससार विषै प्राप्त है, तहा कर्मनि कौ अपने मानै है । बहुरि कोइ जीव किसी निमित्त स्यो जीव का अर कर्म का यथार्थ ज्ञान होनै तै कर्मनि स्यो उदासीन भया, तिनिकौ पर जानने लगा, तिनस्यो सबध छुडाया चाहै है । वाह्य जैसै निमित्त है तैसै वर्त्तै है । ऐसै जो ज्ञानाभ्यास तै उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है । बहुरि कोई जीव तिन कर्मनि कौ अपने जानै है । अर किसी कारण तै कोई शुभ कर्म स्यो अनुराग रूप प्रवर्तै है । कोई अशुभ कर्म स्यो दुःख का कारण जानि उदासीन भया विषयादिक का त्यागी हो है । ऐसै ज्ञान बिना जो उदासीनता होइ सो पुण्यफल की दाता है, मोक्ष कार्य कौ न साधै है, तातै उदासीनता विषै भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । याही प्रकार अन्य भी शुभ कार्यनि विषै ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना । देखो ! महामुनीनि कै भी ध्यान-अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य है । तातै शास्त्र अध्ययन तै जीव-कर्म का स्वरूप जानि स्वरूप का ध्यान करना ।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि – कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है। अर विषयादिक का त्यागी न हो है, ताकै शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाही ? जो है तौ महंत पुरुष काहेकौ विषयादिक तजै, अर नाही है तो ज्ञानाभ्यास का महिमा कहा रह्या ?

ताका समाधान – शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार है, एक लोभार्थी, एक धर्मार्थी। तहां जो अंतरंग अनुराग विना-ख्याति-पूजा-लाभादिक के अर्थि शास्त्राभ्यास करै, सो लोभार्थी है, सो विषयादिक का त्याग नाही करै है। अथवा ख्याति, पूजा, लाभादिक कै अर्थि विषयादिक का त्याग भी करै है, तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाही।

बहुरि जो अंतरंग अनुराग तैं आत्म हित के अर्थि शास्त्राभ्यास करै है, सो धर्मार्थी है। सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे है जिनका धर्मार्थी होइ अभ्यास करै, सो विषयादिक का त्याग करै ही करै। ताकै तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही। बहुरि कदाचित् पूर्वकर्म का उदय की प्रबलता तै न्यायरूप विषयादिक का त्याग न बनै है तौ भी ताकै सम्यग्दर्शन, ज्ञान के होने तै ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है। जैसै असंयत गुणस्थान विषै विषयादिक का त्याग विना भी मोक्षमार्गपना सम्भवै है।

इहां प्रश्न – जो धर्मार्थी होइ जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकै विषयादिक का त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाही। जातै विषयादिक के सेवन परिणामनि तै हो है, परिणाम स्वाधीन है।

तहाँ समाधान – परिणाम ही दोय प्रकार है। एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक। तहा अपने अभिप्राय के अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक। अर दैव – निमित्त तै अपने अभिप्राय तै अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक। जैसै सामायिक करतै धर्मात्मा का अभिप्राय ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखों। तहा जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक। अर कर्मोदय तै स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ, सो अबुद्धिपूर्वक जानने। तैसै धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताको अभिप्राय तौ विषयादिक का त्याग रूप वीतराग भाव का ही होइ, तहां वीतराग भाव होइ, तौ बुद्धिपूर्वक है। अर चारित्रमोह के उदय तै सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है। तातै बिना वश तैं सरागभाव हो हैं, तिनकरि ताकै विषयादिक की प्रवृत्ति देखिये है। जातै बाह्य प्रवृत्ति को कारण परिणाम है।

इहां तर्क – जो ऐसै है तो हम भी विषयादिक सेवेंगे अर कहेंगे – हमारे उदासीन कार्य हो है।

ताकौ कहिये है – रे मूर्ख ! किछू कहने तैं तौ होता नाही ! सिद्धि तौ अभिप्राय के अनुसारि है। तातैं जैन शास्त्र के अभ्यास तैं अपना अभिप्राय कौं सम्यक्रूप करना। अर अंतरंग विषैं विषयादिक सेवन का अभिप्राय होतैं तौ धर्मार्थी नाम पावै नाहीं।

ऐसैं चरणानुयोग के पक्षपाती कौ इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं जीव के गुणस्थानादिक रूप विशेष अर कर्म के विशेष वर्णन किए, तिनकौ जानैं अनेक विकल्प तरग उठै, अर किछू सिद्धि नाही। तातैं अपने शुद्ध स्वरूप कौ अनुभवना वा अपना अर पर का भेदविज्ञान करना – इतना ही कार्यकारी है। अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनका ही अभ्यास करना योग्य है।

ताकौ कहिये है – हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! तैं कह्या सो सत्य, परतु अपनी अवस्था देखनी। जो स्वरूपानुभव विषै वा भेदविज्ञान विषै उपयोग निरतर रहै, तौ काहेकौं अन्य विकल्प करने। तहां ही स्वरूपानंदसुधारस का स्वादी होइ सतुष्ट होना। परन्तु नीचली अवस्था विषै तहां निरन्तर उपयोग रहै नाही। उपयोग अनेक अवलंवनि कौं चाहै है। तातैं जिस काल तहा उपयोग न लागै, तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना।

बहुरि तै कह्या कि - अध्यात्मशास्त्रनि का ही अभ्यास करना, सो युक्त ही है। परन्तु तहां भेदविज्ञान करने के अर्थि स्व-पर का सामान्यपनैं स्वरूप निरूपण है। अर विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट होइ नाही। तातैं जीव के अर कर्म के विशेष नीकैं जानैं ही स्व-पर का जानना स्पष्ट हो है। तिस विशेप जाननें कौ इस शास्त्र का अभ्यास करना। जातैं सामान्य शास्त्र तै विशेप शास्त्र वलवान है। सो ही कह्या है– **"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।"**

इहां वह कहै है कि – अध्यात्मशास्त्रनि विषै तो गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूप का अनुभवना उपादेय कह्या है। इहा गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। तातै अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्र विषै तौ विरुद्ध भासै है, सो कैसै है ?

ताकौ कहिये है नय दोय प्रकार है – एक निश्चय, एक व्यवहार। तहा निश्चयनय करि जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद वस्तु मात्र ही है। अर व्यवहारनय करि गुणस्थानादि विशेष संयुक्त अनेक प्रकार है। तहा जे जीव सर्वोत्कृष्ट, अभेद, एक स्वभाव कौ अनुभवै है, तिनकौ तौ तहा शुद्ध उपदेश रूप जो शुद्ध निश्चयनय सो ही कार्यकारी है।

वहुरि जे स्वानुभव दशा कौ न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशा तै छूटि सविकल्प दशा कौ प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहि विषै तिष्ठते जीव, तिनकौ व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषै कह्या है–

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरसीहि।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे ।। १

इस सूत्र की व्याख्या का अर्थ विचारि देखना।

वहुरि सुनि ! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा विषै तौ प्रवर्तै नाही। अर विकल्प जानि गुणस्थानादि भेदनि का विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही (विषै) प्रवर्त्तैगा, तहा तेरा बुरा होयगा।

वहुरि सुनि ! सामान्यपनै तौ वेदात आदि शास्त्राभासनि विषै भी जीव का स्वरूप शुद्ध कहै है, तहा विशेष जानै विना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसै होय ? तातै गुणस्थानादि विशेष जानै जीव की शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र अवस्था का ज्ञान होइ, तव निर्णय करि यथार्थ का अगीकार करै। **बहुरि सुनि ! जीव का गुण ज्ञान है, सो** विशेष जानै आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ होय। **जैसे सम्यक्त्व है,** सो केवलज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है। तातै विशेष जानना।

वहुरि वह कहै है – तुम कह्या सो सत्य, परतु करणानुयोग तै विशेष जानै भी द्रव्यलिगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान विना ससारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिक कै स्तोक श्रद्धान तै भी सम्यक्त्व हो है। वा तुपमाष भिन्न इतना ही श्रद्धान तै शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातै हमारी तौ बुद्धि तै विशेष विकल्पनि का साधन होना नाही। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करेंगे।

शुद्धभाव संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण कह्या, ताकौ द्रव्यलिंगी पहिचानै ही नाही। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिंगी के यथार्थ ज्ञान नाही। ऐसै अन्यथा साधन करै तौ शास्त्रनि का कहा दोष है ?

बहुरि तै तिर्यंचादिक कै सामान्य श्रद्धान तै कार्यसिद्धि कही, सो उनकै भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेष का जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनि विषै विशेष का अभ्यास कीया था, तिस संस्कार के बल तै हो है। बहुरि जैसै काहूनै कही गडचा धन पाया, सो हम भी ऐसै ही पावैगे, ऐसा मानि सब ही कौ व्यापारादिक का त्यजन न करना। तैसै काहूनै स्तोक श्रद्धान तै ही कार्य सिद्ध किया तो हम भी ऐसै ही कार्य सिद्धि करैगे – ऐसै मानि सर्व ही कौ विशेष अभ्यास का त्यजन करना योग्य नाही, जातै यहु राजमार्ग नाही। **राजमार्ग तौ यहु ही है – नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनि का निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है।**

बहुरि तै कह्या, मेरी बुद्धि तै विकल्पसाधन होता नाही, सो जेता बनै तेता ही अभ्यास कर। बहुरि तू पापकार्य विषै तौ प्रवीण, अर इस अभ्यास विषै कहै मेरी बुद्धि नाही, सो यहु तौ पापी का लक्षण है।

ऐसै द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कौ इस शास्त्र का अभ्यास विषै सन्मुख कीया।
अब अन्य विपरीत विचारवालो कौ समझाइए है।

तहां शब्द-शास्त्रादिक का पक्षपाती बोलै है कि – व्याकरण, न्याय, कोश, छद, अलकार, काव्यादिक ग्रंथनि का अभ्यास करिए तो अनेक ग्रथनि का स्वयमेव ज्ञान होय वा पडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्र के अभ्यास तै तो एक याही का ज्ञान होय वा पंडितपना विशेष प्रकट न होय, तातै शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

ताकौ कहिये है – जो तू लोक विषै ही पडित कहाया चाहै है तौ तू तिन ही का अभ्यास किया करि। अर जो अपना कार्य किया चाहै है तो ऐसे जैनग्रन्थनि का अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनि के निरूपक जे जैनग्रन्थ तिन ही का अभ्यास भए पडित मानैगे।

बहुरि वह कहै है कि – मै जैनग्रथनि का विशेष ज्ञान होने ही के अर्थि व्याकरणादिकनि का अभ्यास करौ हौ।

ताकौ कहिए है – ऐसै है तो भलै ही है, परंतु इतना है जैसै स्याना खितहर अपनी शक्ति अनुसारि हलादिक तै थोड़ा वहुत खेत कौ सवारि समय विषै वीज

बोवै तौ ताकौ फल की प्राप्ति होइ। वैसे तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिक का अभ्यास तै थोरी बहुत बुद्धि कौ संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इंद्रियनि की प्रवलता इत्यादिक वर्तं हैं, तावत् समय विषै तत्त्वज्ञान-कौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्यास करेगा तौ तुझकौ सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयगी।

वहुरि जैसे अयाना खितहर हलादिक तै खेत कौ सवारता सवारता ही समय कौं खोवै, तौ ताकौ फलप्राप्ति होने की नाही, वृथा ही खेदखिन्न भया। तैसे तू भी जो व्याकरणादिक तै बुद्धि कौ संवारता सवारता ही समय खोवैगा तौ सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने की नाही। वृथा ही खेदखिन्न भया। बहुरि इस काल विषै आयु बुद्धि आदि स्तोक है, तातै प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनि का तौ पार है नाही। वहुरि मुनि! केई जीव व्याकरणादिक का ज्ञानविना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनि करि, वा उपदेश सुनने करि, वा सीखने करि तत्त्वज्ञानी होते देखिये हैं। अर केई जीव केवल व्याकरणादिक का ही अभ्यास विषै जन्म गमावै है, अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये है।

वहुरि सुनि! व्याकरणादिक का अभ्यास करने तै पुण्य न उपजै है। धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै। बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास तै सातिशय महत् पुण्य उपजै है। तातै भला यहु है – ऐसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास करना। ऐसे शब्द शास्त्रादिक का पक्षपाती कौ सन्मुख किया।

वहुरि अर्थ का पक्षपाती कहै है कि - इस शास्त्र का अभ्यास किए कहा है? सर्व कार्य धन तै बनै है, धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै है। धनवान के निकट अनेक पंडित आनि (आय) प्राप्त होइ। अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ। तातै धन उपजावने का उद्यम करना।

ताकौं कहिए है - रे पापी! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्य तै हो है, सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधन तै जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है। वहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किए कैसे न होगा? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसे होगा? तातै धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यास विषै काहे कौं शिथिल हूजै। वहुरि सुनि! धन है सो तौ विनाशीक है, भय संयुक्त है, पाप तै निपजै है, नरकादिक का कारण है।

अर यहु शास्त्राभ्यासरूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग मोक्ष का कारण है। सो महंत पुरुष तौ धनकादिक कौ छोड़ि शास्त्राभ्यास विषै लगै है। तू पापी शास्त्राभ्यास कौ छुड़ाय धन उपजावने की बड़ाई करै है, सो तू अनंत संसारी है।

बहुरि तै कह्या - प्रभावना आदि धर्म भी धन ही तै हो है। सो प्रभावना आदि धर्म हैं सो किंचित् सावद्य क्रिया संयुक्त है। तिसतै समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है, सो प्रधान है। ऐसै न होइ तौ गृहस्थ अवस्था विषै प्रभावना आदि धर्म साधते थे, तिनि कौ छांड़ि संजमी होइ शास्त्राभ्यास विषै काहे को लागै है ? बहुरि शास्त्राभ्यास तै प्रभावनादिक भी विशेष हो है।

बहुरि तैं कह्या - धनवान के निकट पंडित भी आनि प्राप्त होइ। सो लोभी पंडित होंइ, अर अविवेकी धनवान होइ तहां ऐसै हो है। अर शास्त्राभ्यासवालों की तौ इंद्रादिक सेवा करै हैं। इहां भी बड़े बड़े महंत पुरुष दास होते देखिए है। तातै शास्त्राभ्यासवालौं तैं धनवान कौं महंत मति जानै।

बहुरि तै कह्या – धन तै सर्व कार्यसिद्धि हो है। सो धन तै तौ इस लोक संबंधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ, जातै बहुत काल पर्यंत नरकादि दुःख सहने होइ। अर शास्त्राभ्यास तै ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातै इहलोक विषै अर परलोक विषै अनेक सुखनि की परंपरा पाइए। तातैं धन उपजावने का विकल्प छोड़ि शास्त्राभ्यास करना। अर जो सर्वथा ऐसै न बनै तौ संतोष लिए धन उपजावने का साधनकरि शास्त्राभ्यास विषै तत्पर रहना। ऐसै अर्थ उपजावने का पक्षपाती कौ सन्मुख किया।

बहुरि कामभोगादिक का पक्षपाती बोलै है कि - शास्त्राभ्यास करने विषै सुख नाहीं, बड़ाई नाही। तातै जिन करि इहां ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषय, तिनका सेवन करिए। अथवा जिन करि यहा ही बड़ाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए।

ताकौ कहिए है – विषयजनित जो सुख है सो दुःख ही है। जातै विषय सुख है, सो परनिमित्त तै हो है। पहिले, पीछै, तत्काल आकुलता लिए है, जाकै नाश होने के अनेक कारण पाइए है। आगामी नरकादि दुर्गति कौ प्राप्त करणहारा है। ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाही, पूर्व पुण्य तै हो है, तातै विषम है। जैसे खाजि करि पीड़ित पुरुष अपना अंग कौ कठोर वस्तु तै खुजावै, तैसे इंद्रियनि करि

पीड़ित जीव, तिनकी पीड़ा सही न जाय तब किंचिन्मात्र तिस पीडा के प्रतिकार से भासै – ऐसै जे विषयसुख तिन विषै झंपापात लेवै है, परमार्थरूप सुख है नाहीं ।

वहुरि **शास्त्राभ्यास करनेतै भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या जो आनन्द, सो सांचा सुख है । जातै सो सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है,** काहू करि नष्ट न हो है, **मोक्ष का कारण है, विषम नाहीं ।** जैसे खाजि न पीडै, तब सहज ही सुखी होइ, तैसे तहां इंद्रिय पीड़ने कौं समर्थ न होइ, तब सहज ही, सुख कौं प्राप्त हो है । तातै विषय सुख छोड़ि शास्त्राभ्यास करना । (जो) सर्वथा न छूटे तौ जेता बनै तेता छोडि, शास्त्राभ्यास विषै तत्पर रहना ।

वहुरि तैं विवाहादिक कार्य विषै बडाई होने की कही, सो केतेक दिन बड़ाई रहेगी ? जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादि विषै बहुतकाल दुःख भोगना होइगा । अथवा तुझ ते भी तिन कार्यनि विषै धन लगावनेवाले बहुत हैं, तातैं विशेष बड़ाई भी होने की नाहीं ।

वहुरि शास्त्राभ्यास तैं ऐसी बडाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करे, इंद्रादिक भी प्रशंसा करै अर परंपरा स्वर्ग मुक्ति का कारण है । तातै विवाहादिक कार्यनि का विकल्प छोड़ि, शास्त्राभ्यास का उद्यम राखना । सर्वथा न छूटै तो बहुत विकल्प न करना । ऐसै काम भोगादिक का पक्षपाती कौं शास्त्राभ्यास विषै सन्मुख किया । या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचार ते इस ग्रंथ अभ्यास विषै अरुचि प्रगट करै, तिनकौं यथार्थ विचार तै इस शास्त्र के अभ्यास विषैं सन्मुख होना योग्य है ।

इहां अन्यमती कहै हैं कि – तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करने कौं दृढ किया । हमारे मत विषै नाना युक्ति आदि करि सयुक्त शास्त्र है, तिनका भी अभ्यास क्यों न कराइए ?

ताकौं कहिए है – तुमारे मत के शास्त्रनि विषै आत्महित का उपदेश नाहीं । जातैं कहीं शृंगार का, कही युद्ध का, कही काम सेवनादि का, कही हिंसादि का कथन है । सो ए तौ विना ही उपदेश सहज ही बनि रहे है । इनकौं तजे हित होई, ते तहा उलटे पोषे हैं, तातैं तिनतैं हित कैसे होइ ?

तहां वह कहै है – ईश्वरनै ऐसी लीला करी है, ताकौ गावैं हैं, तिसतैं भला हो है ।

तहां कहिये है – जो ईश्वर कै सहज सुख न होगा, तव संसारीवत् लीला करि सुखी भया । जो (वह) सहज सुखी होता तौ काहेकौं विषयादि सेवन वा

युद्धादिक करता ? जातै मदबुद्धि हू बिना प्रयोजन किंचिन्मात्र भी कार्य न करै। तातै जानिए है – वह ईश्वर हम सारिखा ही है, ताका जस गाएं कहा सिद्धि है ?

बहुरि वह कहै है कि – हमारे शास्त्रनि विषै वैराग्य, त्याग, अहिंसादिक का भी तौ उपदेश है।

तहां कहिए है – सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कही विषय पोषे है, कही निषेधे है। कही वैराग्य दिखाय, पीछै हिंसादि का करना पोष्या है। तहां वातुलवचनवत् प्रमाण कहा ?

बहुरि वह कहै है कि वेदांत आदि शास्त्रनि विषै तो तत्त्व ही का निरूपण है।

तहां कहिए है – सो निरूपण प्रमाण करि बाधित, अयथार्थ है। ताका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रनि विषै किया है, सो जानना। तातै अन्यमत के शास्त्रनि का अभ्यास न करना।

ऐसै जीवनि कौ इस शास्त्र के अभ्यास विषै सन्मुख किया, तिनकौ कहिए है–

हे भव्य ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग है। शब्द का वा अर्थ का वांचना, या सीखना, सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बार बार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग है। तहां जैसै बनै तैसै अभ्यास करना। जो सर्व शास्त्र का अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्र विषै सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनि का निरूपण है। तहा जिसका बनै तिसही का अभ्यास करना। परंतु अभ्यास विषै आलसी न होना।

देखो ! शास्त्राभ्यासकी महिमा, जाकौ होतै परंपरा आत्मानुभव दशा कौं प्राप्त होइ – सो मोक्ष रूप फल निपजै है; सो तौ दूर ही तिष्ठौ। शास्त्राभ्यास तै तत्काल ही इतने गुण हो है। १ क्रोधादि कषायनि की तौ मंदता हो है। २ पंचइंद्रियनि की विषयनि विषै प्रवृत्ति रुकै है। ३. अति चंचल मन भी एकाग्र हो है। ४. हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तै है। ५. स्तोक ज्ञान होतै भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनि का जानना हो है। ६. हेयोपादेय की पहिचान हो है। ७. आत्मज्ञान सन्मुख हो है (ज्ञान आत्मसन्मुख हो है)। ८ अधिक-अधिक ज्ञान होतै आनंद निपजै है। ९. लोकविषै महिमा, यश विशेष हो है।१०. सातिशय पुण्य का बंध हो है – इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतै तत्काल ही प्रगट होई हैं।

तातैं शास्त्राभ्यास अवश्य करना। बहुरि हे भव्य! शास्त्राभ्यास करने का समय पावना महादुर्लभ है। काहे तै? सो कहिए है—

एकेंद्रियादि असंज्ञी पर्यंत जीवनिकै तौ मन ही नाही। अर नारकी वेदना पीडित, तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, तातै मनुष्यनि कै अनेक सामग्री मिले शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्याय का पावना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि महादुर्लभ है।

तहा द्रव्य करि लोक विषै मनुष्य जीव बहुत थोरे हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषै निगोदिया अनंत है, और जीव असंख्याते हैं।

बहुरि क्षेत्र करि मनुष्यनि का क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषै एकेंद्रिनि का सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि काल करि मनुष्य पर्याय विषै उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनि विषै उत्कृष्ट रहने का काल – एकेंद्रिय विषै तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर और विषै संख्यातपल्य मात्र है।

बहुरि भाव करि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्याय कौ कारण परिणाम होने अति दुर्लभ है। अन्य पर्याय कौ कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। ऐसै शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्य पर्याय, ताका दुर्लभपना जानना।

तहा सुदेश, उच्चकुल, पूर्णआयु, इंद्रियनि की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादिक का पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतनी सामग्री मिले विना ग्रंथाभ्यास बनै नाही, सो तुम भाग्यकरि यहु अवसर पाया है। तातै तुमकौ हठ करि भी तुमारे हित होने के अर्थि प्रेरै है। जैसे बनै तैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो। बहुरि अन्य जीवनि कौं जैसे बनै तैसे शास्त्राभ्यास करावो। बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होंइ, तिनकी अनुमोदना करहु। बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढने, पढावनेवालों की स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यास कौ बाह्यकारण, तिनका साधन करना। जातै इनकरि भी परम्परा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजै है।

ऐसै इस शास्त्र का अभ्यासादि विषै जीवनि कौ रुचिवान किया।

गोम्मटसार जीवकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि जो यहु **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** नामा भाषा टीका, तिहिंविषै संस्कृत टीका तै कहीं अर्थ प्रकट करने के अर्थि, वा कही प्रसंगरूप, वा कही अन्य ग्रंथ का अनुसारि लेइ अधिक भी कथन करियेगा। अर कही अर्थ स्पष्ट न प्रतिभासैगा, तहां न्यून कथन होइगा ऐसा जानना। सो इस भाषा टीका विषै मुख्यपनै जो-जो मुख्य व्याख्यान है, ताकौ अनुक्रमतैं संक्षेपता करि कहिए है। जातै याके जानै अभ्यास करने-वालौ कै सामान्यपनै इतना तौ जानना होइ जो या विषै ऐसा कथन है। अर क्रम जाने जिस व्याख्यान कौ जानना होइ, ताकौ तहां शीघ्र अवलोकि अभ्यास करै, वा जिनने अभ्यास किया होइ, ते याकौ देखि अर्थ का स्मरण करैं, सो सर्व अर्थ की सूचनिका कीए तौ विस्तार होई, कथन आगै है ही, तातै मुख्य कथन की सूचनिका क्रम तैं करिए है।

तहाँ इस भाषा टीका विषै सूचनिका करि कर्माष्टक आदि गणित का स्वरूप दिखाइ संस्कृत टीका के अनुसारि मंगलाचरणादि का स्वरूप कहि मूल गाथानि की टीका कीजिएगा। तहां इस शास्त्र विषै दोय महा अधिकार हैं – एक जीवकांड, एक कर्मकांड। तहा जीवकांड विषै बाईस अधिकार है।

तिनिविषै **प्रथम गुणस्थानाधिकार** है। तिस विषै गुणस्थाननि का नाम, वा सामान्य लक्षण कहि तिनिविषै सम्यक्त्व, चारित्र अपेक्षा औदयिकादि सभवते भावनि का निरूपण करि क्रम तैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि का वर्णन है। तहा मिथ्यादृष्टि विषै पंच मिथ्यात्वादि का सासादन विषै ताके काल वा, स्वरूप का, मिश्र विषै ताके स्वरूप का वा मरण न होने का, असंयत विषै वेदकादि सम्यक्त्वनि का वा ताके स्वरूपादिक का, देश संयत विषै ताके स्वरूप का वर्णन है। बहुरि प्रमत्त का कथन विषै ताके स्वरूप का अर पंद्रह वा अस्सी वा साढ़े सैंतीस हजार प्रमाद भेदनि का अर तहां प्रसंग पाइ संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट करि वा गूढ यत्र करि अक्षसचार विधान का कथन है। जहा भेदनि कौ पलटि पलटि परस्पर लगाइए तहा अक्षसंचार विधान हो है। बहुरि अप्रमत्त का कथन विषै स्वस्थान अर सातिशय दोय भेद कहि, सातिशय अप्रमत्त कै अध करण हो है, ताके स्वरूप वा काल वा परिणाम वा समय-समय सबंधी परिणाम वा एक-एक समय विषै अनुकृष्टि विधान, वा तहां संभवते च्यारि आवश्यक इत्यादिक का विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ श्रेणी व्यवहार रूप गणित का कथन है। तिसविषै सर्वधन, उत्तरधन, मुख,

भूमि, चय, गच्छ इत्यादि संज्ञानि का स्वरूप वा प्रमाण ल्यावने कौ करणसूत्रनि का वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरण का कथन विषै ताके काल, स्वरूप, परिणाम, समय-समय संबंधी परिणामादिक का कथन है। बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषै ताके स्वरूपादिक का कथन है। बहुरि सूक्ष्मसांपराय का कथन विषै प्रसंग पाइ कर्मप्रकृतिनि के अनुभाग अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नाना-गुणहानिनि का अर पूर्वस्पर्द्धक, अपूर्वस्पर्धक, बादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि का वर्णन है। इत्यादि विशेष कथन है सो जानना। बहुरि उपशांतकषाय, क्षीणकषाय का कथन विषै तिनके दृष्टांतपूर्वक स्वरूप का, सयोगी जिन का कथन विषै नव केवललब्धि आदिक का, अयोगी विषै शैलेश्यपना आदिक का कथन है। ग्यारह गुणस्थाननि विषै गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है। तहा द्रव्य कौ अपकर्षण करि उपरितन स्थिति अर गुणश्रेणी आयाम अर उदयावली विषै जैसे दीजिए है, ताका वा गुणश्रेणी आयाम के प्रमाण का निरूपण है। तहां प्रसंग पाइ अंतर्मुहूर्त के भेदनि का वर्णन है। बहुरि सिद्धनि का वर्णन है।

बहुरि दूसरा जीवसमास अधिकार विषै – जीवसमास का अर्थ वा होने का विधान कहि चौदह, उगणीस, वा सत्तावन, जीवसमासनि का वर्णन है। बहुरि च्यारि प्रकारि जीवसमास कहि, तहां स्थानभेद विषै एक आदि उगणीस पर्यंत जीवस्थाननि का, वा इन ही के पर्याप्तादि भेद करि स्थाननि का वा अठ्याणवै वा च्यारि सै छह जीवसमासनि का कथन है। बहुरि योनि भेद विषै शंखावर्तादि तीन प्रकार योनि का, अर सम्मूर्च्छनादि जन्म भेद पूर्वक नव प्रकार योनि के स्वरूप वा स्वामित्व का अर चौरासी लक्ष योनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ च्यारि गतिनि विषै सम्मूर्च्छनादि जन्म वा पुरुषादि वेद संभवै, तिनका निरूपण है। बहुरि अवगाहना भेद विषै सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त आदि जीवनि की जघन्य, उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना का विशेष वर्णन है। तहा एकेंद्रियादिक की उत्कृष्ट अवगाहना कहने का प्रसंग पाइ गोलक्षेत्र, संखक्षेत्र, आयत, चतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल करने का, अर अवगाहना विषै प्रदेशनि की वृद्धि जानने के अर्थि अनंतभाग आदि चतु स्थानपतित वृद्धि का, अर इस प्रसंग तै दृष्टांतपूर्वक षट्स्थानपतित आदि वृद्धि-हानि का, सर्व अवगाहना भेद जानने के अर्थि मत्स्यरचना का वर्णन है। बहुरि कुल भेद विषै एक सौ साढा निण्याणवै लाख कोडि कुलनि का वर्णन है।

बहुरि तीसरा पर्याप्त नामा अधिकार विषै – पहलै मान का वर्णन है। तहा लौकिक-अलौकिक मान के भेद कहि। बहुरि द्रव्यमान के दोय भेदनि विषै, सख्या

मान विषै संख्यात, असंख्यात, अनंत कें इकईस भेदनि का वर्णन है। बहुरि सख्या के विशेष रूप चौदह धारानि का कथन है। तिनि विषै द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा द्विरूपघनाघनधारानि कै स्थाननि विषै जे पाइए है, तिनका विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पणट्ठी, बादाल, एकट्ठी का प्रमाण, अर वर्गशलाका, अर्धच्छेदनि का स्वरूप, वा अविभागप्रतिच्छेद का स्वरूप, वा उक्तम् च गाथानि करि अर्धच्छेदादिक के प्रमाण होनें का नियम, वा अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण ल्यावनें का विधान इत्यादिकनि का वर्णन है। बहुरि दूसरा उपमा मान के पल्य आदि आठ भेदनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ व्यवहारपल्य के रोमनि की संख्या ल्यावने कौ परमाणू तै लगाय अंगुल पर्यंत अनुक्रम का, अर तीन प्रकार अंगुल का, अर जिस जिस अंगुल करि जाका प्रमाण वर्णिए ताका, अर गोलगर्त के क्षेत्रफल ल्यावने का वर्णन है। अर उद्धारपल्य करि द्वीप-समुद्रनि की संख्या ल्याइए है। अद्धापल्य करि आयु आदि वर्णिए है, ताका वर्णन है। अर सागर की सार्थिक संज्ञा जानने कौ, लवण समुद्र का क्षेत्रफल कौं आदि देकर वर्णन है। अर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, जगत्-प्रतर, (जगत्घन) लोकनि का प्रमाण ल्यावने कौ विरलन आदि विधान का वर्णन है। बहुरि पल्यादिक की वर्गशलाका अरु अर्धच्छेदनि का प्रमाण वर्णन है। तिनिके प्रमाण जानने कौ उक्तम् च गाथा रूप करणसूत्रनि का कथन है। बहुरि पीछै पर्याप्ति प्ररूपणा है। तहां पर्याप्त, अपर्याप्त के लक्षण का, अर छह पर्याप्तिनि के नाम का, स्वरूप का, प्रारंभ संपूर्ण होने के काल का, स्वामित्व का वर्णन है। बहुरि लब्धिअपर्याप्त का लक्षण, वा ताके निरंतर क्षुद्रभवनि के प्रमाणादिक का वर्णन है। तहां ही प्रसंग पाइ प्रमाण, फल, इच्छारूप त्रैराशिक गणित का कथन है। बहुरि सयोगी जिन कै अपर्याप्तपना संभवने का, अर लब्धि अपर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, पर्याप्त के संभवते गुणस्थाननि का वर्णन है।

बहुरि चौथा प्राणाधिकार विषै – प्राणनि का लक्षण, अर भेद, अर कारण अर स्वामित्व का कथन है।

बहुरि पाँचमां संज्ञा अधिकार विषै – च्यारि संज्ञानि का स्वरूप, अर भेद, अर कारण, अर स्वामित्व का वर्णन है।

बहुरि छट्ठा मार्गणा महा अधिकार विषै – मार्गणा की निरुक्ति का, अर चौदह भेदनि का, अर सांतर मार्गणा के अतराल का, अर प्रसंग पाइ तत्त्वार्थसूत्र टीका के अनुसारि नाना जीव, एक जीव अपेक्षा गुणस्थाननि विषै, अर गुणस्थान

अपेक्षा लिऐ मार्गणानि विषै काल का, अर अंतर का कथन करि छठा गति मार्गणा अधिकार है। तहां गति के लक्षण का, अर भेदनि का अर च्यारि भेदनि के निरुक्ति लिए लक्षणनि का, अर पाँच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्यनि का अर सिद्धनि का वर्णन है। बहुरि सामान्य नारकी, जुदे-जुदे सात पृथ्वीनि के नारकी, अर पांच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्य, अर व्यंतर, ज्योतिषी, भवनवासी, सौधर्मादिक देव, सामान्य देवराशि इन जीवनि की संख्या का वर्णन है। तहां पर्याप्त मनुष्यनि की संख्या कहने का प्रसग पाइ "कटपयपुरस्थवर्णं" इत्यादि सूत्र करि ककारादि अक्षररूप अंक वा बिंदी की संख्या का वर्णन है।

बहुरि सातमां इंद्रियमार्गणा अधिकार विषै – इंद्रियनि का निरुक्ति लिए लक्षण का, अर-लब्धि उपयोगरूप भावेंद्रिय का, अर बाह्य अभ्यन्तर भेद लिए निवृत्ति-उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय का, अर इन्द्रियनि के स्वामी का, अर तिनके विषयभूत क्षेत्र का, अर तहां प्रसंग पाइ सूर्य के चार क्षेत्रादिक का अर इंद्रियनि के आकार का वा अवगाहना का, अर अतींद्रिय जीवनि का वर्णन है। बहुरि एकेन्द्रियादिकनि का उदाहरण रूप नाम कहि, तिनकी सामान्य संख्या का वर्णन करि, विशेषपने सामान्य एकेन्द्री, अर सूक्ष्म बादर एकेंद्री, बहुरि सामान्य त्रस, अर बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइंद्रिय, पचेन्द्रिय इन जीवनि का प्रमाण, अर इन विषै पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि आठमां कायमार्गणा अधिकार विषै – काय के लक्षण का वा भेदनि का वर्णन है। बहुरि पंच स्थावरनि के नाम, अर काय, कायिक जीवरूप भेद, अर बादर, सूक्ष्मपने का लक्षणादि, अर शरीर की अवगाहना का वर्णन है।

बहुरि वनस्पती के साधारण-प्रत्येक भेदनि का, प्रत्येक के सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेदनि का, अर तिनकी अवगावहना का अर एक स्कध विषै तिनके शरीरनि के प्रमाण का, अर योनीभूत बीज विषै जीव उपजने का, वा तहा सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित होने के काल का, अर प्रत्येक वनस्पती विषै सुप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जानने कौं तिनके लक्षण का, बहुरि साधारण वनस्पती निगोदरूप तहां जीवनि के उपजने, पर्याप्ति धरने, मरने के विधान का, अर निगोद शरीर की उत्कृष्ट स्थिति का, अर स्कध, अंडर, पुलवी, आवास, देह, जीव इनके लक्षण प्रमाणादिक का अर नित्यनिगोदादि के स्वरूप का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि का अर तिनके क्षेत्र का वर्णन है। बहुरि वनस्पतीवत् औरनि के शरीर विषै सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितपने का, अर स्थावर, त्रस

जीवनि के आकार का, अर काय सहित, काय रहित जीवनि का वर्णन है। बहुरि अग्नि, पृथ्वी, अप्, वात, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक-साधारण वनस्पती जीवनि की, अर तिनविषै सूक्ष्म-बादर जीवनि की, अर तिनविषै भी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की संख्या का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पृथ्वी आदि जीवनि की उत्कृष्ट आयु का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि की, अर तिनविषै पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की संख्या का वर्णन है। बहुरि बादर अग्निकायिक आदि की संख्या का विशेष निर्णय करने के अर्थि तिनके अर्धच्छेदादिक का, अर प्रसंग पाइ **"दिण्णछेदेणवहिद"** इत्यादिक करणसूत्र का वर्णन है।

बहुरि नवमां योगमार्गणा अधिकार विषै – योग के सामान्य लक्षण का अर सत्य आदि च्यारि-च्यारि प्रकार मन, वचन योग का वर्णन है। तहां सत्य वचन का विशेष जानने कौ दश प्रकार सत्य का, अर अनुभय वचन का विशेष जानने कौ आमंत्रणी आदि भाषानि का, अर सत्यादिक भेद होने के कारण का, अर केवली के मन, वचन योग संभवने का अर द्रव्य मन के आकार का इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि काय योग के सात भेदनि का वर्णन है। तहां औदारिकादिकनि के निरुक्ति पूर्वक लक्षण का, अर मिश्रयोग होने के विधान का, अर आहारक शरीर होने के विशेष का, अर कार्माणयोग के काल का विशेष वर्णन है। बहुरि युगपत् योगनि की प्रवृत्ति होने का विधान वर्णन है। अर योग रहित आत्मा का वर्णन है। बहुरि पंच शरीरनि विषैं कर्म-नोकर्म भेद का, अर पंच शरीरनि की वर्गणा वा समय प्रबद्ध विषै परमाणूनि का प्रमाण वा क्रम तै सूक्ष्मपना वा तिनकी अवगाहना का वर्णन है। बहुरि विस्रसोपचय का स्वरूप वा तिनकी परमाणुनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि कर्म-नोकर्म का उत्कृष्ट संचय होने का काल वा सामग्री का वर्णन है। बहुरि औदारिक आदि पंच शरीरनि का द्रव्य तौ समय प्रबद्धमात्र कहि। तिनकी उत्कृष्ट स्थिति, अर तहाँ सभवती गुणहानि, नाना गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दो गुणहानि का स्वरूप प्रमाण कहि, करणसूत्रादिक तै तहा चयादिक का प्रमाण ल्याय समय-समय संबंधी निषेकनि का प्रमाण कहि, एक समय विषै केते परमाणू उदयरूप होइ निर्जरै, केते सत्ता विषै अवशेष रहै, ताके जानने कौ अकसंदृष्टि की अपेक्षा लिये त्रिकोण यत्र का कथन है। बहुरि वैक्रियिकादिकनि का उत्कृष्ट सचय कौनकै कैसै होइ सो वर्णन है। बहुरि योगमार्गणा विषै जीवनि की संख्या का वर्णन विषै वैक्रियिक शक्ति करि संयुक्त बादर पर्याप्त अग्निकायिक, वातकायिक अर पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्यनि के प्रमाण का, अर भोगभूमियां आदि

जीवनि कै पृथक् विक्रिया, अर औरनि कै अपृथक् विक्रिया हो है, ताका कथन है। वहुरि त्रियोगी, द्वियोगी, एकयोगी जीवनि का प्रमाण कहि त्रियोगीनि विषै आठ प्रकार मन-वचनयोगी अर काययोगी जीवनि का, अर द्वियोगीनि विषै वचन-काययोगीनि का प्रमाण वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ सत्यमनोयोगादि वा सामान्य मन-वचन-काय योगनि के काल का वर्णन है। वहुरि काययोगीनि विषै सात प्रकार काययोगीनि का जुदा-जुदा प्रमाण वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण के काल का, वा व्यंतरनि विषै सोपक्रम, अनुपक्रम काल का वर्णन है। वहुरि यहु कथन है (जो)जीवनि की संख्या उत्कृष्टपनै युगपत् होने की अपेक्षा कही है।

वहुरि दशवां वेदमार्गणा अधिकार विषै – भाव-द्रव्यवेद होने के विधान का, अर तिनके लक्षण का, अर भाव-द्रव्यवेद समान वा असमान हो है ताका, अर वेदनि का कारण दिखाई ब्रह्मचर्य अगीकार करने का अर तीनों वेदनि का निरुक्ति लिये लक्षण का, अर अवेदी जीवनि का वर्णन है। वहुरि तहां संख्या का वर्णन विषै देव राशि कही। तहा स्त्री-पुरुषवेदीनि का, अर तिर्यचनि विषै द्रव्य-स्त्री आदि का प्रमाण कहि समस्त पुरुष, स्त्री, नपुसकवेदीनि का प्रमाण वर्णन है। वहुरि सैनी पचेन्द्री गर्भज, नपुसकवेदी इत्यादिक ग्यारह स्थाननि विषै जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

वहुरि ग्यारहवां कषायमार्गणा अधिकार विषै – कपाय का निरुक्ति लिये लक्षण का, वा सम्यक्त्वादिक घातने रूप दूसरे अर्थ विषै अनन्तानुवधी आदि का निरुक्ति लिए लक्षण का वर्णन है। वहुरि कपायनि के एक, च्यारि, सोलह, असख्यात लोकमात्र भेद कहि क्रोधादिक की उत्कृष्टादि च्यारि प्रकार शक्तिनि का दृष्टांत वा फल की मुख्यता करि वर्णन है। वहुरि पर्याय धरने के पहलै समय कपाय होने का नियम है वा नाही है सो वर्णन है। वहुरि अकषाय जीवनि का वर्णन है। वहुरि क्रोधादिक के शक्ति अपेक्षा च्यार, लेश्या अपेक्षा चौदह, आयुवंध अर अवंध अपेक्षा वीस भेद है, तिनका अर सर्व कपायस्थाननि का प्रमाण कहि तिन भेदनि विषै जेते-जेते स्थान संभवै तिनका वर्णन है। वहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यच गति विषै जुदा-जुदा क्रोधी आदि जीवनि का प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ तिन गतिनि विषै क्रोधादिक का काल वर्णन है।

वहुरि वारहवां ज्ञानमार्गणा अधिकार विषै – ज्ञान का निरुक्ति पूर्वक लक्षण कहि, ताके पंच भेदनि का अर क्षयोपशम के स्वरूप का वर्णन है। वहुरि तीन मिथ्या ज्ञाननि का, अर मिश्र ज्ञाननि का अर तीन कुज्ञाननि के परिणमन के उदाहरण का

वर्णन है । बहुरि मतिज्ञान का वर्णन विषै याके नामांतर का, अर इंद्रिय-मन तै उपजने का अर तहा अवग्रहादि होने का, अर व्यंजन-अर्थ के स्वरूप का, अर व्यंजन विषैं नेत्र, मन वा ईहादिक न पाइए ताका, अर पहले दर्शन होइ पीछै अवग्रहादि होने के क्रम का अर अवग्रहादिकनि के स्वरूप का, अर अर्थ-व्यंजन के विषयभूत बहु, बहुविध आदि बारह भेदनि का, तहां अनिसृति विषै च्यारि प्रकार परोक्ष प्रमाण गर्भितपना आदि का, अर मतिज्ञान के एक, च्यारि, चौबीस, अट्ठाईस अर इनतै बारह गुणे भेदनि का वर्णन है । बहुरि श्रुतज्ञान का वर्णन विषै श्रुतज्ञान का लक्षण निरुक्ति आदि का, अर अक्षर-अनक्षर रूप श्रुतज्ञान के उदाहरण वा भेद वा प्रमाण का वर्णन है । बहुरि भाव श्रुतज्ञान अपेक्षा बीस भेदनि का वर्णन है । तहां पहिला जघन्यरूप पर्याय ज्ञान का वर्णन विषै ताके स्वरूप का, अर तिसका आवरण जैसै उदय हो है ताका, अर यहु जाकै हो है ताका, अर याका दूसरा नाम लब्धि अक्षर है, ताका वर्णन है । अर पर्यायसमास ज्ञान का वर्णन विषै षट्स्थानपतित वृद्धि का वर्णन है । तहा जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कहि । अर अनंतादिक का प्रमाण अर अनंत भागादिक की सहनानी कहि, जैसै अनंतभागादिक षट्स्थानपतित वृद्धि हो है, ताके क्रम का यंत्र द्वार तै वर्णन करि अनंत भागादि वृद्धिरूप स्थाननि विषै अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण ल्यावने कौ प्रक्षेपक आदि का विधान, अर तहा प्रसंग पाइ एक बार, दोय बार, आदि संकलन धन ल्यावने का विधान, अर साधिक जघन्य जहां दूणा हो है, ताका विधान, अर पर्याय समास विषै अनतभाग आदि वृद्धि होने का प्रमाण इत्यादि विशेष वर्णन है । बहुरि अक्षर आदि अठारह भेदनि का क्रम तैं वर्णन है । तहां अर्थाक्षर के स्वरूप का, अर तीन प्रकार अक्षरनि का अर शास्त्र के विषयभूत भावनि के प्रमाण का, अर तीन प्रकार पदनि का अर चौदह पूर्वनि विषै वस्तु वा प्राभृत नामा अधिकारनि के प्रमाण का इत्यादि वर्णन है । बहुरि बीस भेदनि विषै अक्षर, अनक्षर श्रुतज्ञान के अठारह, दोय भेदनि का अर पर्यायज्ञानादि की निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि द्रव्यश्रुत का वर्णन विषै द्वादशाग के पदनि की अर प्रकीर्णक के अक्षरनि की संख्यानि का, बहुरि चौसठ मूल अक्षरनि की प्रक्रिया का, अर अपुनरुक्त सर्व अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषै प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगनि करि तिस प्रमाण ल्यावने का विधान अर सर्व श्रुत के अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषै अंगनि के पद अर प्रकीर्णकनि के अक्षरनि के प्रमाण ल्यावने का विधान इत्यादि वर्णन है । बहुरि आचारांग आदि ग्यारह अंग, अर दृष्टिवाद अंग के पांच भेद, तिनमैं परिकर्म के पाच

भेद, तहां सूत्र अर प्रथमानुयोग का एक-एक भेद, अर पूर्वगत के चौदह भेद, चूलिका के पांच भेद, इन सबनि के जुदा-जुदा पदनि का प्रमाण अर इन विषै जो-जो व्याख्यान पाइए, ताकी सूचनिका का कथन है। तहां प्रसंग पाइ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि होने का विधान, अर वर्द्धमान स्वामी के समय दश-दश जीव अंतःकृत केवली अर अनुत्तरगामी भए तिनकानाम अर तीन सौ तिरेसठि कुवादनि के धारकनि विषै केई कुवादीनि के नाम अर सप्त भंग का विधान, अर अक्षरनि के स्थान-प्रयत्नादिक, अर बारह भाषा अर आत्मा के जीवादि विशेषण इत्यादि वर्नै कथन हैं। बहुरि सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णकनि का स्वरूप वर्णन है। बहुरि श्रुतज्ञान की महिमा का वर्णन है।

बहुरि अवधिज्ञान का वर्णन विषै निरुक्ति पूर्वक स्वरूप कहि, ताके भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय भेदनि का, अर ते भेद कौनकै होय, कौन आत्मप्रदेशनि तै उपजै ताका, अर तहां गुणप्रत्यय, के छह भेदनि का, तिनविषै अनुगामी, अननुगामी के तीन-तीन भेदनि का वर्णन है। बहुरि सामान्यपनै अवधि के देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेदनि का, अर तिन विषै भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय के संभवपने का, अर ए कौनकै होइ-ताका, अर तहा प्रतिपाती, अप्रतिपाती, विशेष का, अर इनके भेदनि के प्रमाण का, वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा द्वितीयादि उत्कृष्ट पर्यंत क्रम तै भेद होने का विधान, अर तहां द्रव्यादिक के प्रमाण का अर सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ ध्रुवहार, वर्ग, वर्गणा, गुणकार इत्यादिक का अनेक वर्णन है। अर तहां ही क्षेत्र-काल अपेक्षा तिस देशावधि के उगणीस कांडकनि का वर्णन है।

बहुरि परमावधि के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा जघन्य तै उत्कृष्ट पर्यन्त क्रम तै भेद होने का विधान, वा तहां द्रव्यादिक का प्रमाण वा सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ संकलित धन ल्यावने का अर "इच्छिदरासिच्छेदं" इत्यादि दोय करणसूत्रनि का आदि अनेक वर्णन है।

बहुरि सर्वावधि अभेद है। ताकै विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधि तै सर्वावधि पर्यंत द्रव्य अर भाव अपेक्षा भेदनि की समानता का वर्णन है। बहुरि नरक विषै अवधि का वा ताके विषयभूत क्षेत्र का, अर मनुष्य, तिर्यंच विषै जघन्य-उत्कृष्ट अवधि होने का, अर देव विषै भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषीनि के अवधिगोचर क्षेत्रकाल का, सौधर्मादि द्विकनि विषै क्षेत्रादिक का, वा द्रव्य का भी वर्णन है।

बहुरि मनःपर्ययज्ञान का वर्णन विषै ताके स्वरूप का, अर दोय भेदनि का अर तहां ऋजुमति तीन प्रकार, विपुलमति छह प्रकार ताका, अर मनःपर्यय जहातैं उपजै है अर जिनकै हो है ताका, अर दोय भेदनि विषै विशेष है ताका, अर जीव करि चितया हुवा द्रव्यादिक कौ जानै ताका, अर ऋजुमति का विषयभूत द्रव्य का अर मनःपर्यय संबंधी ध्रुवहार का, अर विपुलमति के जघन्य तै उत्कृष्ट पर्यन्त द्रव्य अपेक्षा भेद होने का विधान, वा भेदनि का प्रमाण, वा द्रव्य का प्रमाण कहि, जघन्य उत्कृष्ट क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है ।

बहुरि केवलज्ञान सर्वज्ञ है, ताका वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की संख्या का वर्णन विषै मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञानी का अर च्यारो गति संबंधी विभंगज्ञानीनि का, अर कुमति-कुश्रुत-ज्ञानीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि तेरहवां संयममार्गणा अधिकार विषै – ताके स्वरूप का, अर संयम के भेद के निमित्त का वर्णन है । बहुरि संयम के भेदनि का स्वरूप वर्णन है । तहा परिहारविशुद्धि का विशेष, अर ग्यारह प्रतिमा, अट्ठाईस विषय इत्यादिक का वर्णन है । बहुरि इहां जीवनि को संख्या का वर्णन विषै सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसापराय, यथाख्यात संयमधारी, अर संयतासंयत, अर असयत जीवनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि चौदहवां दर्शनमार्गणा अधिकार विषै – ताके स्वरूप का, अर दर्शन भेदनि के स्वरूप का वर्णन है । बहुरि इहा जीवनि की सख्या का वर्णन विषै शक्ति चक्षुर्दर्शनी, व्यक्त चक्षुर्दर्शनीनि का अर अवधि, केवल, अचक्षुर्दर्शनीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि पंद्रहवां लेश्यामार्गणा अधिकार विषै – द्रव्य, भाव करि दोय प्रकार लेश्या कहि, भावलेश्या का निरुक्ति लिए लक्षण अर ताकरि बध होने का वर्णन है । बहुरि सोलह अधिकारनि के नाम है । बहुरि निर्देशाधिकार विषै छह लेश्यानि के नाम है । अर वर्णाधिकार विषै द्रव्य लेश्यानि के कारण का, अर लक्षण का, अर छहो द्रव्य लेश्यानि के वर्ण का दृष्टात का, अर जिनकै जो-जो द्रव्य लेश्या पाइए, ताका व्याख्यान है । बहुरि प्रमाणाधिकार विषै कषायनि के उदयस्थाननि विषै संक्लेशविशुद्धि स्थाननि के प्रमाण का, अर तिनविषै भी कृष्णादि लेश्यानि के स्थाननि के प्रमाण का, अर सक्लेशविशुद्धि की हानि, वृद्धि तै अशुभ, शुभलेश्या होने के

अनुक्रम का वर्णन है। बहुरि सक्रमणाधिकार विषै स्वस्थान-परस्थान सक्रमण कहि सक्लेशविशुद्धि का वृद्धि-हानि तै जैसै सक्रमण हो है ताका, अर सक्लेशविशुद्धि विषै जैसै लेश्या के स्थान होइ, अर तहा जैसै षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि संभवै, ताका वर्णन है। बहुरि कर्माधिकार विषै छहो लेश्यावाले कार्य विषै जैसै प्रवर्तै, ताके उदाहरण का वर्णन है। बहुरि लक्षणाधिकार विषै छहो लेश्यावालेनि का लक्षण वर्णन है।

बहुरि गति अधिकार विषै लेश्यानि के छब्बीस अश, तिनविषै आठ मध्यम अंश आयुबंध कौ कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषै होइ, तिन अपकर्षनि का उदाहरणपूर्वक स्वरूप का अर तिनविषै आयु न बंधै तौ जहा बधै ताका, अर सोप-क्रमायुष्क, निरुपक्रमायुष्क, जीवनि कै अपकर्षणरूप काल का, वा तहां आयु बधने का विधान वा गति आदि विशेष का, अर अपकर्षनि विषै आयु बधनेवाले जीवनि के प्रमाण का वर्णन करि पीछै लेश्यानि के अठारह अशनि विषै जिस-जिस अश विषै मरण भए, जिस-जिस स्थान विषै उपजै ताका वर्णन है।

बहुरि स्वामी अधिकार विषै भाव लेश्या की अपेक्षा सात नरकनि के नारकीनि विषै, अर मनुष्य-तिर्यच विषै, तहा भी एकेंद्रिय-विकलत्रय विषै, असैनी पचेद्रिय विषै लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच-मनुष्य विषै, अपर्याप्तक तिर्यंच-मनुष्य-भवनत्रिकदेव सासादन वालों विषै, पर्याप्त-अपर्याप्त भोगभूमियां विषै, मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानिनि विषै, पर्याप्त भवनत्रिक-सौधर्मादिक आदि देवनि विषै जो-जो लेश्या पाइए ताका वर्णन है। तहा असैनी के लेश्यानिमित्त तै गति विषै उपजने का आदि विशेष कथन है।

बहुरि साधन अधिकार विषै द्रव्य लेश्या अर भाव लेश्यानि के कारण का वर्णन है।

बहुरि सख्याधिकार विषै द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मान करि कृष्णादि लेश्या-वाले जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि क्षेत्राधिकार विषै सामान्यपनै स्वस्थान, समुद्घात, उपपाद अपेक्षा, विशेषपनै दोय प्रकार स्वस्थान, सात प्रकार समुद्घात, एक उपपाद इन दश स्थाननि विषै संभवते स्थाननि की अपेक्षा कृष्णादि लेश्यानि का (स्थान वर्णन कहिए) क्षेत्र वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ विवक्षित लेश्या विषै संभवतै स्थान, तिन विषै जीवनि के प्रमाण का, तिन स्थाननि विषै क्षेत्र के प्रमाण का, समुद्घातादिक के विधान का, [illegible] का, मरने वाले आदि देवनि के प्रमाण का, केवल समुद्घात विषै [illegible] का, तहा लोक के क्षेत्रफल का इत्यादिक का वर्णन है।

बहुरि स्पर्शाधिकार विषै पूर्वोक्त सामान्य-विशेषपनै करि लेश्यानि का तीन काल संबंधी क्षेत्र का वर्णन है । तहाँ प्रसंग पाइ मेरु तै सहस्रार पर्यंत सर्वत्र पवन के सद्भाव का, अर जंबूद्वीप समान लवणसमुद्र के खंड, लवणसमुद्र के समान अन्य समुद्र के खंड करने के विधान का, अर जलचर रहित समुद्रनि का मिलाया हुआ क्षेत्रफल के प्रमाण का, अर देवादिक के उपजने, गमन करने का इत्यादि वर्णन है ।

बहुरि काल अधिकार विषै कृष्णादि लेश्या जितने काल रहै ताका वर्णन है ।

बहुरि अंतराधिकार विषै कृष्णादि लेश्या का जघन्य, उत्कृष्ट जितने काल-अभाव रहै, ताका वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ एकेद्री, विकलेद्री विषै उत्कृष्ट रहने के काल का वर्णन है ।

बहुरि भावाधिकार विषै छहौ लेश्यानि विषै औदयिक भाव के सद्भाव का वर्णन है ।

बहुरि अल्पबहुत्व अधिकार विषै संख्या के अनुसारि लेश्यानि विषै परस्पर अल्प-बहुत्व का व्याख्यान है, ऐसे सोलह अधिकार कहि लेश्या रहित जीवनि का व्याख्यान है ।

बहुरि सोलहवां भव्यमार्गणा अधिकार विषै – दोय प्रकार भव्य अर अभव्य अर भव्य-अभव्यपना करि रहित जीवनि का स्वरूप वर्णन है । बहुरि इहां संख्या का कथन विषै भव्य-अभव्य जीवनि का प्रमाण वर्णन है । बहुरि इहां प्रसग पाइ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंचपरिवर्तननि के स्वरूप का, वा जैसे क्रम तै परिवर्तन हो है ताका, अर परिवर्तननि के काल का, अनादि तै जेते परिवर्तन भए, तिनके प्रमाण का वर्णन है । तहां गृहीतादि पुद्गलनि के स्वरूप सदृष्टि का, वा योग स्थान आदिकनि का वर्णन पाइए है ।

बहुरि सतरहवां सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार विषै – सम्यक्त्व के स्वरूप का, अर सराग-वीतराग के भेदनि का अर षट् द्रव्य, नव पदार्थनि के श्रद्धानरूप लक्षण का वर्णन है । बहुरि षट् द्रव्य का वर्णन विषै सात अधिकारनि का कथन है ।

तहा नाम अधिकार विषै द्रव्य के एक वा दोय भेद का, अर जीव-अजीव के दोय-दोय भेदनि का, अर तहा पुद्गल का निरुक्ति लिए लक्षण का, पुद्गल परमाणु के आकार का वर्णनपूर्वक रूपी-अरूपी अजीव द्रव्य का कथन है ।

बहुरि उपलक्षणानुवादाधिकार विषै छहो द्रव्यनि के लक्षणनि का वर्णन है । तहां गति आदि क्रिया जीव-पुद्गल कै है, ताका कारण धर्मादिक है, ताका दृष्टात-

पूर्वक वर्णन है। अर वर्तनाहेतुत्व काल कैं लक्षण का दृष्टांतपूर्वक वर्णन है । अर मुख्य काल के निश्चय होने का, काल कैं धर्मादिक कौ कारणपने का, समय, आवली आदि व्यवहारकाल के भेदनि का, तहा प्रसंग पाइ प्रदेश के प्रमाण का, वा अंतर्मुहूर्त के भेदनि का, वा व्यवहारकाल जानने कौ निमित्त का, व्यवहारकाल के अतीत, अनागत, वर्तमान भेदनि के प्रमाण का, वा व्यवहार निश्चय काल के स्वरूप का वर्णन है।

वहुरि स्थिति अधिकार विषै सर्व अपने पर्यायनि का समुदायरूप अवस्थान का वर्णन है।

वहुरि क्षेत्राधिकार विषै जीवादिक जितना क्षेत्र रोकै, ताका वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ तीन प्रकार आधार वा जीव के समुद्घातादि क्षेत्र का वा संकोच विस्तार शक्ति का वा पुद्गलादिकनि की अवगाहन शक्ति का वा लोकालोक के स्वरूप का वर्णन है ।

वहुरि संख्याधिकार विषै जीव द्रव्यादिक का वा तिनके प्रदेशनि का, वा व्यवहार काल के प्रमाण का, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मान करि वर्णन है।

वहुरि स्थान स्वरूपाधिकार विषै (द्रव्यनि का वा) द्रव्य के प्रदेशनि का चल, अचलपने का वर्णन है। वहुरि अणुवर्गणा आदि तेईस पुद्गल वर्गणानि का वर्णन है। तहां तिन वर्गणानि विषै जेती-जेती परमाणू पाइए, ताका आहारादिक वर्गणा तै जो-जो कार्य निपजै हैं ताका जघन्य, उत्कृष्ट, प्रत्येकादि वर्गणा जहां पाईए ताका, महास्कंध वर्गणा के स्वरूप का, अणुवर्गणा आदि का वर्गणा लोक विषै जितनी जितनी पाइए ताका इत्यादि का वर्णन है। वहुरि पुद्गल के स्थूल-स्थूल आदि छह भेदनि का, वा स्कंध, प्रदेश, देश इन तीन भेदनि का वर्णन है।

वहुरि फल अधिकार विषै धर्मादिक का गति आदि साधनरूप उपकार, जीवनि के परस्पर उपकार, पुद्गलनि का कर्मादिक वा सुखादिक उपकार, तिनका प्रश्नोत्तरादिक लिए वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ कर्मादिक पुद्गल ही है ताका, अर कर्मादिक जिस-जिस पुद्गल वर्गणा तै निपजै है ताका, अर स्निग्ध-रूक्ष के गुणनि के अंशनि करि जैसैं पुद्गल का संबंध हो है, ताका वर्णन है। ऐसैं षट् द्रव्य का वर्णन करि तहां काल बिना पंचास्तिकाय हैं, ताका वर्णन है। वहुरि नव पदार्थनि का वर्णन विषै जीव-अजीव का तौ षट् द्रव्यनि विषै वर्णन भया। वहुरि पाप जीव पुण्य जीवनि का वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ चौदह गुण-स्थाननि विषै जीवनि का

प्रमाण वर्णन है। तहां उपशम, क्षपक श्रेणीवाले निरंतर अष्ट समयनि विषै जेते जेते हौइ ताका, वा युगपत् बोधितबुद्धि आदि जीव जेते-जेते होंइ ताका, अर सकल संयमीनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि सात नरक के नारकी, भवनत्रिक, सौधर्मद्विकादिक देव, तिर्यंच, मनुष्य ए जेते-जेते मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषैं पाइए, तिनका वर्णन है। बहुरि गुणस्थाननि विषै पुण्य जीव, पाप जीवनि का भेद वर्णन है। बहुरि पुद्गलीक द्रव्य पुण्य-पाप का वर्णन है। बहुरि आस्रव, बंध, संवर निर्जरा, मोक्षरूप पुद्गलनि का प्रमाण वर्णन है। ऐसें षट् द्रव्यादिक का स्वरूप कहि, तिनके श्रद्धानरूप सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है।

तहां क्षायिक सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है।[1] तहा क्षायिक सम्यक्त्व होने के कारण का, ताके स्वरूप का, ताकौं पाएं जेते भवनि विषैं मुक्ति होइ ताका, तिसकी महिमा का, अर तिसका प्रारंभ, निष्ठापन जहां होइ, ताका वर्णन है।

बहुरि वेदकसम्यक्त्व के कारण का वा स्वरूप का वर्णन है। बहुरि उपशम सम्यक्त्व के स्वरूप का, कारण का, पंचलब्धि आदि सामग्री का, वा जाके उपशम सम्यक्त्व होइ ताका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ आयुबंध भए पीछै सम्यक्त्व, व्रत होने न होने का वर्णन है। बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यारुचि का वर्णन है। बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषै क्षायिक, उपशम, वेदक सम्यग्दृष्टिनि का अर मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र जीवनि का प्रमाण वर्णन है। बहुरि नव पदार्थनि का प्रमाण वर्णन है। तहां जीव अर अजीव विषै पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अर पुण्य-पाप रूप जीव, अर पुण्य-पाप रूप अजीव अर आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष इनके प्रमाण का निरूपण है।

बहुरि अठारहवां संज्ञी मार्गणा अधिकार विषै – संज्ञी के स्वरूप का, सज्ञी असंज्ञी जीवनि के लक्षण का वर्णन है। अर इहा सख्या का वर्णन विषै सज्ञी-असज्ञी जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि उगणीसवां आहारमार्गणा अधिकार विषै – आहारक के स्वरूप वा निरुक्ति का अर अनाहारक जिनकै हो है ताका, तहा प्रसग पाइ सात समुद्घातनि के नाम वा समुद्धात के स्वरूप का, अर आहारक अनाहारक के काल का वर्णन है। बहुरि तहा आहारक-अनाहारक जीवनि का प्रमाण वर्णन है। तहा प्रसंग पाइ **प्रक्षेपयोगोद्धृतिमिश्रपिंड** इत्यादि सूत्र करि मिश्र के व्यवहार का कथन है।

---

१. यह वाक्य छपी प्रति मे मिलता है, किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नही होता।

वहुरि वीसवां उपयोग अधिकार विषैं – उपयोग के लक्षण का, साकार-अनाकार भेदनि का, उपयोग है सो व्याप्ति, अव्याप्ति, असभवी दोष रहित जीव का लक्षण है ताका, अर केवलज्ञान-केवलदर्शन विना साकार-अनाकार उपयोगनि का काल अंतर्मूहूर्त मात्र है, ताका वर्णन है । वहुरि इहा जीवनि की संख्या साकारोपयोग विषै ज्ञानमार्गणावत् अर अनाकारोपयोग विषै दर्शनमार्गणावत् है ताका वर्णन है ।

वहुरि इक्कीसवां ओघादेशयो प्ररूपणा प्ररूपण अधिकार विषै – गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषै यथासंभव गुणस्थान अर जीवसमासनि का वर्णन है । तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै पर्याप्त-अपर्याप्त अपेक्षा गुणस्थाननि का विशेष कह्या है । वहुरि गुणस्थाननि विषै सभवते जे जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणानि के भेद, उपयोग, तिनका वर्णन है । तहां मार्गणा वा उपयोग के स्वरूप का भी किछू वर्णन है । तहा योग भव्यमार्गणानि के भेदनि का, वा सम्यक्त्वमार्गणा विषै प्रथम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का इत्यादि विशेष-सा वर्णन है । अर गति आदि केई मार्गणानि विषै पर्याप्त, अपर्याप्त अपेक्षा कथन है ।

वहुरि वावीसवां आलाप अधिकार विषै – मंगलाचरण करि सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त करि तीन आलाप, अर अनिवृत्तिकरण विषै पंच भागनि की अपेक्षा पंच आलाप, तिनका गुणस्थाननि विषै वा गुणस्थान अपेक्षा चौदह मार्गणा के भेदनि विषै यथासंभव कथन है । तहा गतिमार्गणा विषै किछू विशेष-सा कथन है । वहुरि गुणस्थान मार्गणास्थाननि विषै गुणस्थानादि वीस प्ररूपणा यथासंभव आलापनि की अपेक्षा निरूपण करनी । तहा पर्याप्त, अपर्याप्त एकेंद्रियादि जीवनी कै संभवते पर्याप्ति, प्राण, जीवसमासादिक का किछू वर्णन करि यथायोग्य सर्व प्ररूपणा जानने का उपदेश है । वहुरि तिनके जानने कौ यत्रनि करि कथन है । तहा पहिलै रचनानि विषै जैसै अनुक्रम है, वा समस्या है, वा विशेष है सो कथन है । पीछै एक-एक रचना विषै वीस-वीस प्ररूपणा का कथन स्वरूप छह सौ चौदह यंत्रनि की रचना है । तहां केई रचना समान जानि वहुत रचनानि की एक रचना है । वहुरि मनःपर्यय ज्ञानादि विषै एक होतें अन्य न होय ताका, उपशम श्रेणी तै उतरि मरण का प्रसंग का, सिद्धनि विषै संभवती प्ररूपणानि का निक्षेपादिक करि प्ररूपणा जानने का उपदेश का वर्णन है । वहुरि आशीर्वाद है । वहुरि टीकाकार के वचन है ।

इस जीवकाण्ड नामा महा अधिकार के वावीस अधिकारनि विषै क्रम तै व्याख्यान की सूचनिका जाननी ।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

ॐ नमः। अथ कर्म (अजीवकांड) नामा महाअधिकार के नव अधिकार हैं। तिनके व्याख्यान की सूचना मात्र क्रम तैं कहिए है —

तहां पहिला **प्रकृतिसमुत्कीर्तन-अधिकार** विषै मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि प्रतिज्ञा के स्वरूप का, जीव-कर्म के संबंध का, तिनके अस्तित्व का, दृष्टांतपूर्वक कर्म-परमाणूनि के ग्रहण का, बंध, उदय, सत्त्वरूप कर्मपरमाणूनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि ज्ञानावरणादिक आठ मूल प्रकृतिनि के नाम का, इन विषै घाती-अघाती भेद का, इनकरि कार्य हो है ताका, इनके क्रम संभवने का, दृष्टात निरुक्ति लिए इनके स्वरूप का वर्णन है। बहुरि इनकी उत्तर प्रकृतिनि का कथन है। तहां पंच निद्रा का, तीन दर्शनमोह होने के विधान का, पच शरीरनि के पंद्रह भंगनि का, विवक्षित संहननवाले देव-नरक गतिविषै जहा उपजै ताका, कर्मभूमि की स्त्रीनि के तीन संहनन है ताका, आताप प्रकृति के स्वरूप वा स्वामित्व का विशेष-व्याख्यान सा है।

बहुरि मतिज्ञानावरणादि उत्तर प्रकृतिनि के निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ अभव्य के केवलज्ञान के सद्भाव विषै प्रश्नोत्तर का, सात धातु, सात उपधातु का इत्यादि वर्णन है। बहुरि अभेद विवक्षाकरि जे प्रकृति गर्भित हो है, तिनका वर्णनकरि बंध-उदय-सत्तारूप जेती-जेती प्रकृति है, तिनका वर्णन है। बहुरि घातियानि विषै सर्वघाती-देशघाती प्रकृतिनि का, अर सर्व प्रकृतिनि विषै प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि अनंतानुबंधी आदि कषायनि का कार्य वा वासनाकाल का वर्णन है। बहुरि कर्म-प्रकृतिनि विषैं पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, जीवविपाकी प्रकृतिनि का वर्णन है।

बहुरि प्रसंग पाइ सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का वर्णनपूर्वक तीन प्रकार श्रोतानि का वर्णनकरि प्रकृतिनि के चार निक्षेपनि का वर्णन है। तहा नामादि निक्षेपनि का स्वरूप कहि नाम निक्षेप का अर तदाकार-अतदाकाररूप दोय प्रकार स्थापना निक्षेप का अर आगम-नोआगम रूप दोय प्रकार द्रव्य निक्षेप का, तहां नो-आगम के ज्ञायक, भावी, तद्व्यतिरिक्तरूप तीन प्रकार का, तहा भी भूत, भावी, वर्तमानरूप ज्ञायकशरीर के तीन भेदनि का, तहां भी च्युत, च्यावित, त्यक्तरूप भूत शरीर के तीन भेदनि का, तहा भी त्यक्त के भक्त, प्रतिज्ञा, इगिनी, प्रायोपगमनरूप भेदनि का, तहां भी भक्त प्रतिज्ञा के उत्कृष्ट, मध्य, जघन्यरूप तीन प्रकारनि का अर तद्व्यतिरिक्त नो-आगम द्रव्य के कर्म-नोकर्म भेदनि का, वहुरि भावनिक्षेप के आगम,

नोआगम भेदनि का वर्णन है। तहा मूल प्रकृतिनि विषै इनकौ कहि उत्तर प्रकृतिनि विषै वर्णनहै। तहा औरनि का सामान्यपनै संभवपना कहि, नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त-नो-आगम-द्रव्य का जुदी-जुदी प्रकृतिनि विषै वर्णन है। अर नोआगमभाव का समुच्चयरूप वर्णन है।

बहुरि दूसरा **बंध-उदय-सत्त्वयुक्तस्तवनामा** अधिकार है। तहां नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्तवनादिक का लक्षण वर्णन है। बहुरि बंध-व्याख्यान विषै बंध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप भेदनि का, अर तिनविषै उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्यपने का; अर इनविषै भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव संभवने का वर्णन है।

बहुरि प्रकृतिबंध का कथन विषै गुणस्थाननि विषै प्रकृतिबंध के नियम का; तहां भी तीर्थंकरप्रकृति बंधने के विशेष का, अर गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतिनि का, तहां भी व्युच्छित्ति के स्वरूप दिखावने कौ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा का, अर गति आदि मार्गणा के भेदनि विषै सामान्यपनै वा संभवते गुणस्थान अपेक्षा व्युच्छित्ति-बंध-अबंध प्रकृतिनि के विशेष का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि विषै संभवते सादिनै आदि देकर बंध का, तहां अध्रुव-प्रकृतिनि विषैं सप्रतिपक्ष-नि प्रतिपक्ष प्रकृतिनि का, अर निरंतर बंध होने के काल का वर्णन है।

बहुरि स्थितिबंध का वर्णन विषै मूल-उत्तर प्रकृतिनि के उत्कृष्ट स्थितिबंध का, अर उत्कृष्ट स्थितिबंध संज्ञी पंचेंद्रिय ही के होय ताका, अर जिस परिणाम तैं वा जिस जीव के जिस प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, तहां प्रसंग पाय उत्कृष्ट [illegible] मध्यम संक्लेश परिणामनि के स्वरूप दिखावने कौ अनुकृष्टि आदि विधान का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि के जघन्य स्थितिबंध के प्रमाण का, अर जघन्य-स्थितिबंध [illegible] [illegible] ताका वर्णन है। अर एकेंद्री, बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, असंज्ञी, संज्ञी पंचेंद्री [illegible] [illegible] की उत्कृष्ट-जघन्यस्थिति के प्रमाण का, तहा प्रसंग पाइ तिनके [illegible] के [illegible]कनि के प्रमाण कौं कहि भेद प्रमाण करि गुणितकांडक [illegible] [illegible] स्थितिनि विषैं घटाए जघन्यस्थिति का प्रमाण होने का वर्णन है।

[illegible] [illegible]न्द्रियादि जीवनि के स्थितिभेदनि कौं स्थापनकरि तहां चौदह [illegible] जघन्य-उत्कृष्ट-स्थितिबंध अर अबाधा अर भेदनि के प्रमाण अर [illegible] का [illegible] वर्णन है। तहां प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबंध जिनकै होइ

ताका, अर जघन्य आदि स्थितिबंध विषै सादि नै आदि देकर संभवपने का, अर विशुद्ध-संक्लेशपरिणामनि तै जैसें जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, अर आबाधा के लक्षण का, मोहादिक की आबाधा के काल का, आयु की आबाधा के विशेष का, तहां प्रसंग पाइ देव, नारकी, भोगभूमियां, कर्मभूमियांनि के आयुबंध होने के समय का, उदीर्णा अपेक्षा आबाधाकाल के प्रमाण का, प्रसंग पाइ अचलावली, उदयावली, उपरितन स्थिति विषै कर्मपरमाणु खिरने का, उदीर्णा के स्वरूप का, आयु वा अन्य कर्मनि के निषेकनि के स्वरूप का, अंकसंदृष्टिपूर्वक निषेकनि विषैं द्रव्यप्रमाण का, तहा गुणहानि आदि का वर्णन है ।

बहुरि अनुभागबंध का व्याख्यान विषै प्रकृतिनि का अनुभाग जैसे संक्लेश-विशुद्धिपरिणामनिकरि बंधै है ताका, अर जिस प्रकृति का जाकै तीव्र वा जघन्य अनुभाग बंधै है ताका, तहां प्रसंग पाइ अपरिवर्तमान, परिवर्तमान मध्यम परिणामनि के स्वरूपादिक का अर उत्कृष्टादि अनुभागबंध विषै सादि नै आदि देकरि भेदनि के संभवपने का वर्णन है। बहुरि घातियानि विषै लता, दारु, अस्थि शैलभागरूप अनुभाग का, तहां देशघातिया स्पर्द्धकनि का मिथ्यात्व विषै विशेष है ताका, अर जिन प्रकृतिनि विषै जेते प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै ताका, अर अघातियानि विषै प्रशस्त प्रकृतिनि का गुड़, खांड, शर्करा, अमृतरूप; अप्रशस्त प्रकृतिनि का निब, कांजीर, विष, हलाहलरूप अनुभाग का, अर इन प्रकृतिनि कै तीन-तीन प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै, ताका वर्णन है ।

बहुरि प्रदेशबंध का कथन विषै एकक्षेत्र, अनेकक्षेत्रसंबंधी वा तहां कर्मरूप होनै कौ योग्य-अयोग्यरूप; तिनविषै भी जीव का ग्रहण की अपेक्षा सादि-अनादिरूप पुद्गलनि का प्रमाणादिक कहि, तहां जिन पुद्गलनि कौ समयप्रबद्ध विषै ग्रहै है ताका, अर ग्रहे जे परमाणु तिनके प्रमाण कौ कहि तिनका आठ वा सात मूल प्रकृतिनि विषै जैसै विभाग हो है ताका, तहां हीनाधिक विभाग होने के कारण का वर्णन है। अर उत्तर प्रकृतिनि विषै विभाग के अनुक्रम का अर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय विषै सर्वघाती-देशघाती द्रव्य के विभाग का, तहां प्रसग पाइ मतिज्ञानावरणादि प्रकृतिनि विषैं सर्वघाती-देशघाती स्पर्द्धकनि का, तहां अनुभागसंबंधी नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि का प्रमाण कहि, तहा वर्गणानि का प्रमाण ल्याइ तिनविषै जहां सर्वघाती-देशघातीपना पाइए ताका वर्णनकरि च्यारि घातिया कर्मनि की उत्तर प्रकृतिनि विषै कर्मपरमाणुनि के विभाग का वर्णन है ।

तहां सज्वलन अर नोकपाय विषै विशेष है ताका, अर नोकषायनि विषै जिनका युगपत् बंध होइ तिनका, अर तिनके निरंतर बंधने के काल का, अर अंतराय की प्रकृतिनि विषै सर्वघातीपना नाही ताका वर्णन है। बहुरि युगपत् नामकर्म की तेईस आदि प्रकृति बंधै तिनविषै विभाग का, अर वेदनीयादिक की एक-एक ही प्रकृति बंधै; तातै तहां विभाग न करने का वर्णन है।

बहुरि मूल-उत्तर प्रकृतिनि का उत्कृष्टादि प्रदेशबंध विषै सादि इत्यादि भेद संभवने का, अर जिस प्रकृति का उत्कृष्ट-जघन्य प्रदेशबंध जाकै होय ताका, अर तहां प्रसंग पाइ स्तोकसा एक जीव के युगपत् जेते-जेते प्रकृति बंधे, ताका वर्णन है। बहुरि इहा प्रसंग पाइ योगनि का कथन है। तहां उपपाद, एकांतवृद्धि, परिणामरूप योगनि के स्वरूपादिक का वर्णन है। अर योगनि के अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि स्थाननि के स्वरूप, प्रमाण, विधान का योगशक्ति या प्रदेश अपेक्षा विशेष वर्णन है। अर योगनि का जघन्य स्थान तै लगाय स्थाननि विषै वृद्धि के अनुक्रम कौ आदि देकरि वर्णन है। अर सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि-अपर्याप्तक का जघन्य उपपादयोगस्थान कौ आदि देकरि चौरासी स्थाननि का, अर बीचि-बीचि जिनका स्वामी न पाइए तिनका, अर तिनविषै गुणकार के अनुक्रम का, अर जघन्य स्थान तै उत्कृष्ट स्थान के गुणकार का वर्णन है। अर तीन प्रकार योग निरंतर जेते काल प्रवर्त्तै ताका, अर पर्याप्त त्रस संबंधी परिणामयोगस्थाननि विषै जे-जे जेते-जेते योगस्थान दोय आदि आठ समयपर्यंत निरंतर प्रवर्त्तै तिनके प्रमाण ल्यावने कौं कालयवमध्य रचना का, अर पर्याप्त त्रससंबंधी परिणामयोगस्थाननि विषै जेते-जेते जीव पाइए तिनके प्रमाण जानने कौं गुणहानि आदि विशेष लीए जीवयवमध्य रचना का अर योगस्थाननि तै जेता-जेता प्रदेशबंध होय ताका, अर जघन्य तैं उत्कृष्ट स्थान पर्यंत बंधने के क्रम का बीचि-बीचि जेते अविभागप्रतिच्छेद होइ तिनका वर्णन है।

बहुरि च्यारि प्रकार बंध के कारणनि का वर्णन है। बहुरि योगस्थानादिक [illegible] का वर्णन है। तहां योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवा भागमात्र तिनका [illegible] तिनतै असंख्यात लोकगुणे कर्मप्रकृतिनि के भेदनि का वर्णन विषै [illegible] तैं भेदनि का, अर क्षेत्र अपेक्षा आनुपूर्वी के भेदनि का कथन है। [illegible] असंख्यातगुणे कर्मस्थितिनि के भेदनि का वर्णन विषै तिन एक-एक प्रकृति

की जघन्यादि उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति भेदनि का कथन है । बहुरि तिनतैं असख्यातगुणे स्थितिबंधाध्यवसायनि का वर्णन विषै द्रव्यस्थिति, गुणहानि, निषेक, चयादिककरि स्थितिबंध कौं कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है । बहुरि तिनतैं असंख्यात लोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थाननि का वर्णन विषैं द्रव्यस्थिति-गुणहान्यादिककरि अनुभाग कौं कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है । बहुरि तिनतैं अनंतगुणे कर्मप्रदेशनि का वर्णन विषै द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, चय, निषेकनि का अंकसंदृष्टि वा अर्थकरि कथन है । तहां एक समय विषै समय-प्रबद्धमात्र पुद्गल बंधै, एक-एक निषेक मिलि समयप्रबद्धमात्र ही निर्जरैं, असैं होतैं द्वयर्द्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व रहै, ताका विधान जानने कै अर्थि त्रिकोणयंत्र की रचना करी है ।

बहुरि असैं बध वर्णनकरि उदय का वर्णन विषै उदय-प्रकृतिनि का नियम कहि गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि इहां ही उदीर्णा विषै विशेष कहि गुणस्थाननि विषै व्युच्छित्ति, उदीर्णा, अनुदीर्णारूप प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि मार्गणा विषै उदय प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है । तहा प्रसंग पाइ अनेक कथन है ।

बहुरि सत्त्व का कथन विषै तीर्थंकर, आहारक की सत्ता का, मिथ्यादृष्टचादि विषै विशेष अर आयुबंध भए पीछे सम्यक्त्व-व्रत होने का विशेष, क्षायिक-सम्यक्त्व होने का विशेष कहि मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थाननि विषै सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि, ऊपरि क्षपकश्रेणी अपेक्षा व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषै सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णनकरि उपशम-श्रेणी विषै इकईस मोहप्रकृति उपशमावने का क्रम का, अर तहा सत्त्व-प्रकृतिनि का कथन है । बहुरि मार्गणानि विषै सत्ता-असत्ता प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषै संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है । तहा प्रसग पाइ इन्द्रिय-काय मार्गणा विषै प्रकृतिनि की उद्वेलना का इत्यादि अनेक वर्णन है ।

बहुरि विवेष सत्तारूप तीसरा सत्त्वस्थान-अधिकार विषै एक जीव कै एकै कालि प्रकृति पाइए तिनके प्रमाण की अपेक्षा स्थान, अर स्थान विषै प्रकृति बदलने की अपेक्षा भंग, तिनका वर्णन है । तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्थानभंगनि का

स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषै सामान्य सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि विशेप वर्णन विषै मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थाननि विषै जेते स्थान वा भंग पाइए तिनकौं कहि जुदा-जुदा कथन विषै तिनका विधान वा प्रकृति घटने, वधने, वदलने के विशेप का वद्धायु-अवद्धायु अपेक्षा वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ मिथ्यादृष्टि विषै तीर्थंकर सत्तावाले कै नरकायु ही का सत्त्व होइ ताका, वा एकेंद्रियादिक कै उद्वेलना का अर सासादन विषै आहार सत्ता के विशेष का, मिश्र विषै अनंतानुवंधीरहित सत्त्वस्थान जैसे संभवै ताका, असयत विषै मनुष्यायु-तीर्थंकर सहित एक सौ अडतीस प्रकृति की सत्तावाले के दोय वा तीन ही कल्याणक होइ ताका, अपूर्वकरणादि विषैं उपशमक-क्षपक श्रेणी अपेक्षा का इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि आचार्यनि के मतकरि जो विशेप है ताकौं कहि तिस अपेक्षा कथन है।

वहुरि चौथा त्रिचूलिका नामा अधिकार है। तहां प्रथम नव प्रश्नकरि चूलिका का व्याख्यान है। तिसविषैं पहिलै तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिन प्रकृतिनि की उदयव्युच्छित्ति तै पहिले वंधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति तै पीछै वंधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति-वंधव्युच्छित्ति युगपत् भई तिनका वर्णन है। वहुरि दूसरा — तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषै जिनका अपना उदय होतै ही वंध होइ तिनका, अर जिनका अन्य प्रकृतिनि का उदय होतै ही वंध होइ तिनका, अर जिनका अपना वा अन्य प्रकृतिनि का उदय होतै वंध होय तिन प्रकृतिनि का वर्णन है। वहुरि तीसरा — तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिनका निरन्तर वंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर वंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर वा निरंतर वंध होइ तिनका कथन है। इहां तीर्थंकरादि प्रकृति निरंतर वंधी जैसैं है ताका, अर सप्रतिपक्ष-नि प्रतिपक्ष अवस्था विषै सांतर-निरंतर वंध जैसे संभवै है ताका वर्णन है।

वहुरि दूसरी पंचभागहारचूलिका का व्याख्यान विषै मंगलाचरणकरि उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्वसंक्रम — इन पंच भागहारनि के नाम का, अर स्वरूप का, अर ते भागहार जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषै वा गुणस्थाननि विषै संभवै ताका वर्णन है। अर सर्वसंक्रमभागहार, गुणसंक्रमभागहार, उत्कर्षण वा अपकर्षणभागहार, अधःप्रवृत्तभागहार, योगनि विषै गुणकार, स्थिति विषैं नानागुणहानि, पल्य के अर्धच्छेद, पल्य का वर्गमूल, स्थिति विषै गुणहानि-आयाम, स्थिति विषै अन्योन्याभ्यस्त राशि, पल्य, कर्म की उत्कृष्ट स्थिति, विध्यातसंक्रमभागहार, उद्वेलनभागहार,

अनुभाग विषै नानागुणहानि, गुणहानि, द्वयर्द्धगुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनका प्रमाणपूर्वक अल्पबहुत्व का कथन है ।

बहुरि तीसरी दशकरणचूलिका का व्याख्यान विषै बंध, उत्कर्षण, सक्रम, अपकर्षण, उदीर्णा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निःकाचना – इन दशकरणनि के नाम का, स्वरूप का, जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषै वा गुणस्थाननि विषै जैसे संभवै तिनका वर्णन है ।

बहुरि पांचवां बंध-उदय-सत्त्वसहित स्थानसमुत्कीर्तन नामा अधिकार विषै मंगलाचरण करि एक जीव कैं युगपत् सभवतां बंधादिक प्रकृतिनि का प्रमाणरूप स्थान वा तहा प्रकृति बदलने करि भये भंगनि का वर्णन है । तहां मूल प्रकृतिनि के बंधस्थाननि का, अर तहां संभवते भुजाकारादि बध विशेष का, अर भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्यरूप बंध विशेषनि के स्वरूप का, अर मूल प्रकृतिनि कै उदयस्थान, उदीर्णास्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है । बहुरि उत्तर प्रकृतिनि का कथन विषै दर्शनावरण, मोहनीय, नाम की प्रकृतिनि विषै विशेष है ।

तहां दर्शनावरण के बधस्थाननि का, अर तहां गुणस्थान अपेक्षा भुजाकारादि विशेष संभवने का, अर दर्शनावरण के गुणस्थाननि विषैं सभवते बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि मोहनीय के बधस्थाननि का, अर ते गुणस्थाननि विषै जैसे सभवै ताका, अर तहां प्रकृतिनि के नाम जानने कौं ध्रुवबंधी प्रकृति, वा कूटरचना आदिक का, अर तहां प्रकृति बदलने तै भए भगनि का, अर तिन बधस्थाननि विषै सभवते भुजाकारादि विशेषनि का, वा भुजाकारादिक के लक्षण का, वा सामान्य-अवक्तव्य भंगनि की सख्या का, अर भुजाकारादि संभवने के विधान का, अर इहा प्रसंग पाइ गुणस्थाननि विषै चढना, उतरना इत्यादि विशेषनि का वर्णन है । बहुरि मोह के उदयस्थाननि का, अर गुणस्थाननि विषै संभवता दर्शनमोह का उदय कहि तहां संभवते मोह के उदयस्थाननि का, अर तहां प्रकृत्यादि के जानने कू कूटरचना आदि का, अर तहां प्रकृति बदलने तै भए भगनि का, अर अनिवृत्तिकरण विषै वेदादिक के उदयकालादिक का, अर सर्वमोह के उदयस्थान, अर तिनकी प्रकृतिनि का विधान, वा संख्या वा मिलाई हुई संख्या का, अर गुणस्थाननि विषै संभवते उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व तिनकी अपेक्षा मोह के उदयस्थाननि का, वा तिनकी प्रकृतिनि

का विधान, सख्या आदिक का, तहा अनंतानुबंधी रहित उदयस्थान मिथ्यादृष्टि की अपर्याप्त-अवस्था मे न पाइए इत्यादि विशेष का वर्णन है।

बहुरि मोह के सत्त्वस्थाननि का वा तहा प्रकृति घटने का, अर ते स्थान गुणस्थाननि विषै जैसे संभवै ताका, अर अनिवृत्तिकरण विषै विशेप है ताका वर्णन है।

बहुरि नामकर्म का कथन विषैं आधारभूत इकतालीस जीवपद, चौतीस कर्मपदनि का व्याख्यान करि नाम के बंधस्थाननि का अर ते गुणस्थाननि विषै जैसे संभवै ताका, अर ते जिस-जिस कर्मपदसहित बंधै है ताका, अर तिनविषै क्रम तै नवध्रुवबंधी आदि प्रकृतिनि के नाम का, अर तेइस के नै आदि दै करि नाम के बधस्थाननि विषै जे-जे प्रकृति जैसे पाइए ताका, अर तहां प्रकृति बदलने तै भए भंगनि का वर्णन है। अर इहां प्रसंग पाइ जीव मरि जहां उपजै ताका वर्णन विषै प्रथमादि पृथ्वी नारकी मरि जहां उपजै वा न उपजै ताका, तहा प्रसग पाइ स्वयंभू-रमरण-समुद्रपरै कूरानि विषै कर्मभूमिया तिर्यंच है इत्यादि विशेष का, अर बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त अग्निकायिक आदि जीव जहां उपजै ताका, तहा सूक्ष्मनिगोद तै आए मनुष्य सकल सयम न ग्रहै इत्यादि विशेष का, अर अपर्याप्त मनुष्य जहा उपजै ताका, अर भोगभूमि-कुभोगभूमि के तिर्यच-मनुष्य, अर कर्मभूमि के मनुष्य जहा उपजै ताका, अर सर्वार्थसिद्धि तै लगाय भवनत्रिक पर्यंत देव जहा उपजै ताका वर्णन है। बहुरि जैसे च्यवन-उत्पाद कहि चौदह मार्गणानि विषै गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए जैसे जे-जे नामकर्म के बंधस्थान संभवै तिनका वर्णन है।

तहा गति, इद्रिय, काय, योग, वेद मार्गणानि विषै तो लेश्या अपेक्षा बधस्थाननि का कथन है। कषाय मार्गणा विषै अनतानुबधी आदि जैसे उदय हो है ताका, वा इनके देशघाती-सर्वघाती स्पर्द्धकनि का, वा सम्यक्त्व-संयम घातने का, वा लेश्या अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है। अर ज्ञान मार्गणा विषै गति आदिक की अपेक्षा करि बंधस्थाननि का कथन है। अर सयम मार्गणा विषै सामायिकादिक के स्वरूप का, अर सयतासंयत विषै दोय गति अपेक्षा, अर असयम विषै च्यारि गति अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है। तहां निर्वृत्यपर्याप्त देव कै बधस्थान कहने कौ देवगति विषै जे-जे जीव जहां पर्यंत उपजै ताका, अर सासादन विषै बंधस्थान कहने कौ जे-जे जीव जैसे उपशम-सम्यक्त्व कौ छोडि सासादन होइ ताका इत्यादि कथन है। अर दर्शन मार्गणा विषै गति अपेक्षा बधस्थाननि का कथन है।

अर लेश्या मार्गणा विषै प्रथमादि नरक पृथ्वीनि विषै लेश्या सभवने का, जिस-जिस संहनन के धारी जे-जे जीव जहां-जहा पर्यंत नरकविषै उपजै ताका, नरकनिविषै पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था अपेक्षा बंधस्थाननि अर का, तिर्यंच विषै एकेंद्रियादिक कै वा भोगभूमियां तिर्यंच कै जो-जो लेश्या पाइए ताका, अर जे-जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि तिर्यंच विषै उपजै ताका, अर तिनकै निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था विषै बंधस्थाननि का, अर जहां तै आए सासादन वा असंयत होइ अर तिनके जे बंधस्थान होइ ताका, अर शुभाशुभलेश्यानि विषै परिणामनि का, तहा प्रसंग पाइ कषायनि के स्थान वा तहा सक्लेश-विशुद्धस्थान वा कषायनि के च्यारि शक्तिस्थान, चौदह लेश्या स्थान, बीस आयु बन्धाबन्धस्थान तिनका, अर लेश्यानि के छब्बीस अंश, तहा आठ मध्यम अश आयुबन्ध कौ कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषै होइ, अन्य अठारह अश च्यारि गतिनि विषै गमन कौ कारण तिनके विशेष का, अर लेश्यानि के पलटने के क्रम का वर्णन करि, तिर्यंच के मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसै मिथ्यात्व-कषायनि का उदय पाइए है ताकौ कहि, तहां जे बंधस्थान पाइए ताका, अर भोगभूमिया तिर्यंच कै वा प्रसग पाई औरनि कै जैसै निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसै लेश्याकरि बंधस्थान पाइए, वा भोगभूमि विषै जैसै उपजना होइ ताका वर्णन है ।

बहुरि मनुष्यगति विषै लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए वा तहां संभवते गुणस्थाननि विषै बधस्थान पाइए ताका वर्णन है ।

बहुरि देवगति विषै भवनत्रिकादिक कै निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए, वा देवनि के जहा जन्मस्थान है वा जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि जहा-जहां देवगति विषै उपजै, वा निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त-दशा विषै मिथ्यादृष्टि आदि जीवनी कै जे-जे बंधस्थान पाइए तिनका, अर तहा प्रासगिक गाथानिकरि जे-जे जीव जहां-जहा पर्यंत देवगति विषै उपजै, वा अनुदिशादिक विमाननि तै चयकरि जे पद न पावै, वा जे जीव देवगति तै चयकरि मनुष्य होइ निर्वाण ही जाय, वा जहा के आये तिरेसठि शलाका पुरुष न होइ, वा देवपर्याय पाइ जैसै जिनपूजादिक कार्य करै तिनका वर्णन है ।

बहुरि भव्यमार्गणा विषै बंधस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै सम्यक्त्व के लक्षण का, भेदनि का, जहां मरण न होय ताका, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व जाकै होइ ताका, वा वाकै जिन प्रकृतिनि

का उपशम होइ ताका, तहा लब्धि आदि होने का, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व भए मिथ्यात्व के तीन खंड हो हैं ताका, तहां नारकादिक कैं जे बंधस्थान पाइए तिनका, तहां नरक विषै तीर्थंकर के बंध होने के विधान का, वा साकार-उपयोग होने का, वा निसर्गज-अधिगमज के स्वरूप का अर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जाकै होइ ताका, तहां अपूर्वकरणादि विषै जो-जो क्रिया करता चढै वा उतरै ताका, तहां जे बंधस्थान संभवै ताका, वा तहां मरि देव होय ताकैं बंधस्थान संभवै ताका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ-निष्ठापन जाकै होइ ताका, वा तहां तीन करण हो हैं तिनका, तहां गुणश्रेणी आदि होने का अर अनंतानुबंधी का विसंयोजनकरि पीछे केई क्रिया करि करणादि विधान तै दर्शनमोह क्षपावने का, अर तहां प्रारंभ-निष्ठापन के काल का, वा तिनके स्वामीनि का, वा तहां तीर्थंकर सत्तावाले कै तद्भव-अन्यभव विषै मुक्ति होने का वर्णनकरि क्षायिक सम्यक्त्व विषै संभवते बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि वेदक-सम्यक्त्व जिनकै होइ अर प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तै वा मिथ्यात्व तै जैसें वेदक सम्यक्त्व होइ, अर तिनकै जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यात्व जहां-जहां जिस-जिस दशा विषै संभवै अर तहां जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ विवक्षित गुणस्थान तैं जिस-जिस गुणस्थान को प्राप्त होइ ताका वर्णन है।

बहुरि संज्ञी अर आहार मार्गणा विषै बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि नाम के बंधस्थाननि विषै भुजाकारादि कहने कौं पुनरुक्त, अपुनरुक्त भंगनि का, अर स्वस्थानादि तीन भेदनि का, प्रसंग पाइ गुणस्थाननि तै चढने-उतरने का, जहां मरण न होइ ताका, कृतकृत्य-वेदक सम्यग्दृष्टि मरि जहां उपजै ताका, भुजाकारादिक के लक्षण का, अर इकतालीस जीव पदनि विषै भंगसहित बंधस्थाननि का वर्णन करि मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थाननि विषै संभवते भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्य भगनि का वर्णन है।

बहुरि नाम के उदयस्थाननि का वर्णन विषै कार्माण[1], मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति इन पंचकालनि का स्वरूप प्रमाणादिक कहि, वा केवली के समुद्घात अपेक्षा इनका संभवपना कहि, नाम के उदयस्थान हानि

1. 'होने का' ऐसा ख पुस्तक मे पाठ है

का विधान विषै ध्रुवोदयी आदि प्रकृतिनि का वर्णन करि, तिन पंचकालनि की अपेक्षा लीए जिस-जिस प्रकार वीस प्रकृति रूप स्थान तै लगाय संभवते नाम के उदयस्थाननि का, अर तहां प्रकृति बदलने करि संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि नाम के सत्त्वस्थाननि का वर्णन विषै तिराणवे प्रकृतिरूप स्थान आदि जैसे जै सत्त्वस्थान है तिनका, अर तहां जिन प्रकृतिनि की उद्वेलना हो है तिनके स्वामी वा क्रम वा कालादिक विशेष का, अर सम्यक्त्व, देशसंयम, अनंतानुबंधी का विसंयोजन, उपशमश्रेणी चढना, सकलसंयम धरना, ए उत्कृष्टपनै केती वार होइ तिनका, अर च्यारि गति की अपेक्षा लीए गुणस्थाननि विषै जे सत्त्वस्थान संभवै तिनका, अर इकतालीस जीवपदनि विषैं सत्त्वस्थान संभवै तिनका वर्णन है।

बहुरि त्रिसंयोग विषै स्थान वा भंगनि का वर्णन है। तहा मूल प्रकृतिनि विषै जिस-जिस बंधस्थान होतै जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान होइ ताका, अर ते गुणस्थाननि विषै जैसै संभवै ताका वर्णन है। बहुरि उत्तर प्रकृतिनि विषै ज्ञानावरण, अतराय का तौ पांच-पांच ही का बंध, उदय, सत्त्व होइ; तातै तहां विशेष वर्णन नाही। अर दर्शनावरण विषै जिस-जिस बधस्थान होतै जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान गुणस्थान अपेक्षा संभवै ताका वर्णन है, अर वेदनीय विषै एक-एक प्रकृति का उदय-बंध होतै भी प्रकृति बदलने की अपेक्षा, वा सत्त्व दोय का वा एक का भी हो है, ताकी अपेक्षा गुणस्थान विषैं सभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि गोत्र विषै नीच-उच्च गोत्र के बंध, उदय, सत्त्व के बदलने की अपेक्षा गुणस्थाननि विषै सभवते भगनि का वर्णन है। बहुरि आयु विषै भोगभूमियां आदि जिस काल विषै आयुबध करै ताका, एकेंद्रियादि जिस आयु कौ बाधै ताका, नारकादिकनि कै आयु का उदय, सत्त्व संभवै ताका, अर आठ अपकर्ष विषै बंधै ताका, तहा दूसरी, तीसरी बार आयुबध होने विषै घटने-बधने का, अर बध्यमान-भुज्यमान आयु के घटनेरूप अपवर्तनघात, कदलीघात का वर्णन करि बंध, अबंध, उपरितबंध की अपेक्षा गुणस्थाननि विषै संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि वेदनीय, गोत्र, आयु इनके भंग मिथ्यादृष्टयादि विषै जेते-जेते संभवै, वा सर्व भग जेते-जेते है तिनका वर्णन है।

बहुरि मोह के स्थाननि की अपेक्षा भंग कहि गुणस्थाननि विषै बंध, उदय, सत्त्वस्थान जैसै पाइए ताका वर्णन करि मोह के त्रिसंयोग विषै एक आधार, दोय आधेय, तीन प्रकार, तहां जिस-जिस बंधस्थान विषै जो-जो उदयस्थान, वा

सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस उदयस्थान विपै जो-जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विपै जो-जो बंधस्थान वा उदयस्थान संभवै तिनका वर्णन है। बहुरि मोह के बंध, उदय, सत्त्वनि विपै दोय आधार, एक आधेय तीन प्रकार, तहा जिस-जिस बंधस्थानसहित उदयस्थान विपै जो-जो सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विपै जो-जो उदयस्थान संभवै अर जिस-जिस उदयस्थान सहित सत्त्वस्थान विपै जो-जो बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है। बहुरि नामकर्म के स्थानोक्त भंग कहि गुणस्थाननि विपै, अर चौदह जीवसमासनि विपै अर गति आदि मार्गणानि के भेदनि विपै संभवते बंध, उदय, सत्त्वस्थाननि का वर्णनकरि एक आधार, दोय आधेय का वर्णन विपै जिस-जिस बंधस्थाननि विपै जो-जो उदयस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार सभवै, अर जिस-जिस उदयस्थान विपै जो-जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार सभवै, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विपै जो-जो बंधस्थान वा उदयस्थान जिस-जिसप्रकार संभवै तिनका वर्णन है। बहुरि दोय आधार, एक आधेय विषै जिस-जिस बंधस्थानसहित उदय स्थान विपै जो-जो सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विपै जो-जो उदयस्थान संभवै अर जिस-जिस उदयस्थानसहित सत्त्वस्थान विपै जो-जो बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि छठा प्रत्यय अधिकार है, तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि च्यारि मूल आस्रव अर सत्तावन उत्तरआस्रवनि का, अर ते जैसै गुणस्थाननि विपै सभवै ताका, तहा व्युच्छित्ति वा आस्रवनि के प्रमाण, नामादिक का वर्णन करि, तहां विशेष जानने कौं पंच प्रकारनि का वर्णन है। तहा प्रथम प्रकार विषै एक जीव के एकै काल संभवै ऐसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप आस्रवस्थान जेते-जेते गुणस्थाननि विपै पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि दूसरा प्रकार विपै एक-एक स्थान विपै आस्रवभेद बदलने तै जेते-जेते प्रकार होइ तिनका वर्णन है।

बहुरि तीसरा प्रकार विपै तिन स्थाननि के प्रकारनि विपै संभवते आस्रवनि की अपेक्षा कूटरचना के विधान का वर्णन है।

बहुरि चौथा प्रकार विपै तिनहूं कूटनि के अनुसारि अक्षसंचारि विधान तै तैसे आस्रवस्थाननि कौं कहने का विधानरूप कूटोच्चारण विधान का वर्णन है। तहां

अविरत विषै युगपत् सभवतै हिंसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेदनि का, अर ते भेद जेते होइ ताका वर्णन है ।

बहुरि पांचवां प्रकार विषैं तिन स्थाननि विषै भंग ल्यावने के विधान का वा गुणस्थाननि विषैं संभवते भंगनि का, तहाँ अविरत विषै हिंसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग ल्यावने कौं गणितशास्त्र के अनुसार प्रत्येक द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगनि के ल्यावने के विधान का वर्णन है । बहुरि आस्रवनि के विशेषभूत जिनि-जिनि भाव तै स्थिति-अनुभाग की विशेषता लीयें ज्ञानावरणादि जुदि-जुदि प्रकृति का बंध होइ तिनका क्रम तै वर्णन है ।

बहुरि सातवां भावचूलिका नामा अधिकार है। तहा नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि भावनि तै गुणस्थानसज्ञा हो है ऐसै कहि पंच मूल भावनि का, अर इनके स्वरूप का, [१] अर तिरेपन उत्तर भावनि का, अर मूल-उत्तर भावनि विषै अक्षसचार विधान तै प्रत्येक परसयोगी, स्वसयोगी, द्विसंयोगी आदि भग जैसे होइ ताका, अर नाना जीव, नाना काल अपेक्षा गुणस्थान विषै संभवते भावनि का वर्णन है ।

बहुरि एक जीव कै युगपत् सभवते भावनि का वर्णन है । तहा गुणस्थाननि विषै मूल भावनि के प्रत्येक, परसयोगी, द्विसयोगी आदि संभवते भगनि का वर्णन है । तहां प्रसग पाइ प्रत्येक, द्विसयोगी, त्रिसयोगी आदि भग ल्यावने के गणितशास्त्र अनुसार विधान वर्णन है । बहुरि गुणस्थाननि विषै मूल भावनि की वा तिनके भगनि की संख्या का वर्णन है ।

बहुरि उत्तर भावनि के भंग स्थानगत, पदगत भेद तै दोय प्रकार कहे है । तहा एक जीव कै एक काल संभवते भावनि का समूह सो स्थान । तिस अपेक्षा जे स्थानगत भंग, तिन विषै स्वसंयोगी भंग के अभाव का अर गुणस्थाननि विषै संभवते औपशमिकादिक भावनि का अर औदयिक के स्थाननि के भगनि का वर्णन करि तहां संभवते स्थाननि के परस्पर संयोग की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेपादि विधान तै जैसें जेतै प्रत्येक भग अर परसंयोगी विषै द्विसंयोगी आदि भंग होइ तिनका, अर तहां गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्वभंगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

बहुरि जातिपद, सर्वपद भेदकरि पदगत भग दोय प्रकार, तिनका स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषै जेते-जेते जातिपद संभवै तिनका, अर तिनकौ परस्पर

१. ख पुस्तक मे यह पाठ नही है ।

लगावने की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेप आदि विधान तै जेते-जेते प्रत्येक स्वसंयोगी परसयोगी, द्विसंयोगी आदि भग संभवै तिनका, अर तहां गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्व भंगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

वहुरि पिंडपद, प्रत्येकपद भेदकरि सर्वपद भग दोय प्रकार है । तिनके स्वरूप का, अर गुणस्थान विषै ए जेतै जैसें सभवैं ताका, अर तहां परस्पर लगावने तै प्रत्येक द्विसयोगी आदि भग कीए जे भंग होहि तिनका, तहां मिथ्यादृष्टि का पन्द्रहवां प्रत्येक पद विषै भंग ल्यावने का, प्रसंग पाइ गणितशास्त्र के अनुसार एकवार, दोयवार आदि सूकलन धन के विधान का, अर गुणस्थाननि विषे प्रत्येकपद, पिंडपदनि की रचना के विधान का, अर प्रत्येकपदनि के प्रमाण का, अर तहां जेते सर्वपद भंग भए तिनका वर्णन है। वहुरि यहा तीनसै तिरेसठि कुवाद के भेदनि का अर तिन विषै जैसें प्ररूपण है ताका, अर एकान्तरूप मिथ्यावचन, स्याद्वादरूप सम्यग्वचन का वर्णन है ।

वहुरि आठवां त्रिकरण चूलिका नामा अधिकार है । तहां मंगलाचरण करि करणनि का प्रयोजन कहि अधःकरण का वर्णन विषै ताके काल का अर तहां सभवते सर्व परिणाम, प्रथम समय संवंधी परिणाम, अर समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, वा द्वितीयादि समय संवन्धी परिणाम, वा समय-समय सम्वन्धी परिणामनि विषै खंड रचनाकरि अनुकृष्टि विधान, तहां खंडनि विषै प्रथम खंड विषै वा खंड-खंड प्रति वृद्धिरूप वा द्वितीयादि खडनि विषै परिणाम तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है । तहां श्रेणीव्यवहार नामा गणित के सूत्रनि के अनुसार ऊर्ध्वरूप गच्छ, चय, उत्तर धन, आदि धन, सर्व धनादिक का, अर अनुकृष्टि विषै तिर्यग्रूप गच्छादिक के प्रमाण ल्यावने का विधान वर्णन है । अर तिन खंडनि विषै विशुद्धता का अल्प-वहुत्व का वर्णन है । वहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषै अनुकृष्टि विधान नाहीं, ऊर्ध्वरूप गच्छादिक का प्रमाण ल्यावने का विधान पूर्वक ताके काल का वा सर्व परिणाम, प्रथम समयसंवन्धी परिणाम, समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, द्वितीयादि समय सवन्धी परिणाम, तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। वहुरि अनिवृत्ति करण विषै भेद नाहीं, तातै तहां कालादिक का वर्णन है ।

वहुरि नवमा कर्मस्थिति अधिकार है । तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि आबाधा के लक्षण का वा स्थिति अनुसार ताके काल का, वा उदीर्णा [illegible]

आबाधाकाल का वर्णन है। बहुरि कर्मस्थिति विषै निषेकनि का वर्णन है। बहुरि प्रथमादि गुणहानिनि के प्रथमादि निषेकनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिरचना विषै द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनके स्वरूप, का, अर अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा तिनके प्रमाण का वर्णन है। तहां नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्त राशि सर्व कर्मनि का समान नाहीं, तातै इनका विशेष वर्णन है। तहां मिथ्यात्वकर्म की नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त जानने का विधान वर्णन है। इहा प्रसंग पाइ **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि करणसूत्रकरि गुणकाररूप पंक्ति के जोडने का विधान आदि वर्णन है। बहुरि गुणहानि, दो गुणहानि के प्रमाण का वर्णन है। तहां ही विशेष जो चय ताका प्रमाण वर्णन है। ऐसे प्रमाण कहि प्रथमादि गुणहानिनि का वा तिनविषैं प्रथमादि निषेकनि का द्रव्य जानने का विधान वा ताका प्रमाण अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। बहुरि मिथ्यात्ववत् अन्यकर्मनि की रचना है। तहा गुणहानि, दो गुणहानि तो समान है, अर नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त राशि समान नाहीं। तिनके जानने कौ सात पंक्ति करि विधान कहि तिनके प्रमाण का, अर जिस-जिसका जेता-जेता नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का प्रमाण आया, ताका वर्णन है। बहुरि ऐसे कहि अंकसंदृष्टि अपेक्षा त्रिकोणयंत्र, अर त्रिकोणयंत्र का प्रयोजन, अर तहां एक-एक निषेक मिलि एक समयप्रबद्ध का उदय त्रिकोणयंत्र हो है। अर सर्व त्रिकोणयंत्र के निषेक जोड़ें किंचिदून द्वयर्द्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है तिनका वर्णन है। बहुरि निरंतर-सांतररूप स्थिति के भेद, स्वरूप स्वामीनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिबंध कौ कारण जे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विषै आयु आदि कर्म के स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननि के प्रमाण का अर स्थितिबंधाध्यवसाय के स्वरूप जानने कौ सिद्धांत वचनिका वर्णनकरि स्थिति के भेदनि कौ कहि तिन विषै जेते-जेते स्थितिबंधाध्यवसायस्थान सभवै तिनके जानने कौ द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दो-गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का वा चय का, वा प्रथमादि गुणहानिनि का, वा तिनके निषेकनि का, वा आदि धनादिक का द्रव्यप्रमाण अर ताके जानने का विधान, ताका वर्णन है। बहुरि इहा एक-एक स्थितिभेद संबंधी स्थितिबन्धाध्यवसायस्थननि विषै नानाजीव अपेक्षा खंड हो है। तहां ऊपरली-नीचली स्थिति संबंधी खंड समान भी हो है; तातै तहां अनुकृष्टि-रचना का वर्णन है। तहा आयुकर्म का जुदा ही विधान है, तातै पहिले आयु की कहि, पीछे मोहादिक की अनुकृष्टि-रचना का अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। तहां

खंडनि की समानता-असमानता इत्यादि अनेक कथन है । बहुरि अनुभागबंध को कारण जे अनुभागाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विषै तिन सर्वनि का प्रमाण कहि, तहां एक-एक स्थितिभेद संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननि विषै द्रव्य, स्थिति, गुणहानि आदि का प्रमाणादिक कहि एक-एक स्थितिबंधाध्यवसायस्थानरूप जे निषेक तिनविषै जेते-जेते अनुभागाध्यवसायस्थान पाइए तिनका वर्णन है । बहुरि मूलग्रंथकर्त्ताकरि कीया हुवा ग्रंथ की संपूर्णता होने विषै ग्रथ के हेतु का, चामुंडराय राजा को आशीर्वाद का, ताकरि बनाया चैत्यालय वा जिनबिंब का, वीरमार्तंड राजा कौं आशीर्वाद का वर्णन है । बहुरि संस्कृत टीकाकार अपने गुरुनि का वा ग्रंथ होने के समाचार कहे है तिनका वर्णन है ।

ऐसे श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह मूलशास्त्र, ताकी जीवतत्त्व-प्रदीपिका नामा संस्कृतटीका के अनुसार इस भाषाटीका विषै अर्थ का वर्णन होसी ताकौं सूचनिका कही ।

अर्थसंदृष्टि सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि तहां जे संदृष्टि है, तिनका अर्थ, वा कहे अर्थ तिनकी संदृष्टि जानने कौं इस भाषाटीका विषै जुदा ही संदृष्टि अधिकार विषै वर्णन होसी ।

इहां कोऊ कहै – अर्थ का स्वरूप जान्या चाहिए, संदृष्टिनि के जानै कहा सिद्धि हो है ?

ताका समाधान – संदृष्टि जानै पूर्वाचार्यनि की परंपरा तै चल्या आया जो संकेतरूप अभिप्राय, ताकौ जानिए है । अर थोरे मे बहुत अर्थ कौ नीकै पहिचानिए है । अर मूलशास्त्र वा संस्कृतटीका विषै, वा अन्य ग्रंथनि विषै, जहां संदृष्टिरूप व्याख्यान है, तहां प्रवेश पाइये है । अर अलौकिक गणित के लिखने का विधान आदि चमत्कार भासै है । अर संदृष्टिनि कौ देखते ही ग्रथ की गंभीरता प्रगट हो है – इत्यादि प्रयोजन जानि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है ।

तहां केई संदृष्टि आकाररूप है, केई अंकरूप है, केई अक्षररूप है, केई गिनती ही का विशेषरूप है, सो तिस अधिकार विषै पहिले तौ सामान्यपनै संदृष्टिनि का वर्णन है, तहा पदार्थनि के नाम तै, संख्या तै अर अक्षरनि तै अंकनि की अर प्रभृति आदि की संदृष्टिनि का वर्णन है ।

बहुरि सामान्य संख्यात, असंख्यात,अनंत की, अर इनके इकईस भेदनि की, अर पल्य आदि आठ उपमा प्रमाण की, अर इनके अर्धच्छेद वा वर्गशलाकानि की सदृष्टिनि का वर्णन है। बहुरि परिकर्माष्टक विषै संकलनादि होतै जैसै सहनानि हो है अर बहुत प्रकार संकलनादि होतै वा संकलनादि आठ विषै एकत्र दोय, तीन आदि होतैं जो सहनानी हो है, वा संकलनादि विषै अनेक सहनानी का एक अर्थ हो है इत्यादिकिनि का वर्णन है। अर स्थिति-अनुभागादिक विषै आकाररूप सहनानी है, वा केई इच्छित सहनानी है, इत्यादिकनि का वर्णन है । असें सामान्य वर्णन करि पीछे श्रीमद् गोम्मटसार नामा मूलशास्त्र वा ताकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा टीका, ताविषै जिस-जिस अधिकार विषै कथन का अनुक्रम लीए संख्यादिक अर्थ की जैसे-जैसे संदृष्टि है, तिनका अनुक्रम तै वर्णन है। तहां केई करण वा त्रिकोणयंत्र का जोड़ इत्यादिकनि का संदृष्टिनि का संस्कृत टीका विषै वर्णन था अर भाषा करतै अर्थ न लिख्या था, तिनका इस संदृष्टि अधिकार विषै अर्थ लिखिएगा। अर मूलशास्त्र के यंत्ररचना विषै वा संस्कृत टीका विषै केई संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी। तिनकौ अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकार विषै लिखिएगा, सो इहां तिनकी सूचनिका लिखै विस्तार होई, तातै तहां ही वर्णन होगा सो जानना।

इहां कोऊ कहै – मूलशास्त्र वा टीका विषै जहां संदृष्टि वा अर्थ लिख्या था, तहां ही तुम भी तिनके अर्थनि का निरूपण करि क्यों न लिखान किया ? तहां छोडि तिनकौ एकत्र करि संदृष्टि अधिकार विषैं कथन किया सो कौन कारण ?

तहां समाधान – जो यहु टीका मंदबुद्धीनि कैं ज्ञान होने के अर्थि करिए है, सो या विषै बीचि-बीचि संदृष्टि लिखने तै कठिनता तिनकौ भासै, तव अभ्यास तै विमुख होइ, तातै जिनकौ अर्थमात्र ही प्रयोजन होहि, सो अर्थ ही का अभ्यास करौ अर जिनकौ संदृष्टि कौ भी जाननी होइ, ते संदृष्टि अधिकार विषै तिनका भी अभ्यास करौ।

बहुरि इहां कोई कहै – तुम असा विचार कीया, परंतु कोई इस टीका का अवलंबन तै संस्कृत टीका का अभ्यास कीया चाहै, तो कैसै अभ्यास करै ?

ताकों कहिए है – अर्थ का तौ अनुक्रम जैसै संस्कृत टीका विषै है, तैसे या विषै है ही। अर जहां जो सदृष्टि आदि का कथन वीचि मै आवै, ताकौ संदृष्टि अधिकार विषै तिस स्थल विषै बाकी कथन है; ताकौं जानि तहा अभ्यास करौ। ऐसै विचारि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है।

लब्धिसार-क्षपणासार सम्बन्धी प्रकरण

वहुरि ऐसा विचार भया जो लब्धिसार अर क्षपणासार नामा शास्त्र है, तिन विषै सम्यक्त्व का अर चारित्र का विशेषता लीए वहुत नीकै वर्णन है। अर तिस वर्णन कौ जानै मिथ्यादृष्टचादि गुणस्थाननि का भी स्वरूप नीकै जानिए है, सो इनका जानना वहुत कार्यकारी जानि, तिन ग्रंथनि के अनुसारि किछू कथन करना। तातै लब्धिसार शास्त्र के गाथा सूत्रनि की भाषा करि इस ही टीका विषै मिलाइएगा। तिस ही के क्षपक श्रेणी का कथन रूप गाथा सूत्रनि का अर्थ विषै क्षपणासार का अर्थ गर्भित होयगा ऐसा जानना।

इहां कोऊ कहै – तिन ग्रंथनि की जुदी ही टीका क्यों न करिए ? याही विषै कथन करने का कहा प्रयोजन ?

ताका समाधान – गोम्मटसार विषै कह्या हुवा केतेइक अर्थनि कौ जानै विना तिन ग्रंथनि विषै कह्या हुवा केतेइक अर्थनि का ज्ञान न होय, वा तिन ग्रंथनि विषै कह्या हुवा अर्थ कौ जानै इस शास्त्र विषै कहे हुए गुणस्थानादिक केतेइक अर्थनि का स्पष्ट ज्ञान होइ, सो ऐसा संवंध जान्या अर तिन ग्रंथनि विषै कहे अर्थ कठिन हैं, सो जुदा रहे प्रवृत्ति विशेष न होइ तातै इस ही विषै तिन ग्रंथनि का अर्थ लिखने का[1] विचार कीया है। सो तिस विषै प्रथमोपशम सम्यक्त्वादि होने का विधान धाराप्रवाह रूप वर्णन है। तातैं ताकी सूचनिका लिखै विस्तार होइ, कथन आगै होयहीगा। तातै इहां अधिकार मात्र ताकी सूचनिका लिखिए है।

प्रथम मंगलाचरण करि प्रकार कारण का वा प्रकृतिवंधापसरण, स्थितिवंधापसरण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, गुणश्रेणी फालि इत्यादि, केतीइक संज्ञानि का स्वरूप वर्णन करि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने का विधान वर्णन है।

तहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने योग्य जीव का, अर पंचलब्धिनि के नामादिक कहि, तिनके स्वरूप का वर्णन है। तहां प्रायोग्यता लब्धि का कथन विषै जैसे स्थिति घटै है अर तहा च्यारि गति अपेक्षा प्रकृतिवन्धापसरण हो है ताका, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेशवंध का वर्णन है। वहुरि च्यारि गति अपेक्षा एक जीव कैं युगपत् संभवता भंगसहित प्रकृतिनि के उदय का, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के

---

१. ग प्रति मे 'अर्थ लिखने का' स्थान पर 'अनुसारि किछू कथन' ऐसा पाठ मिलता है।

उदय का वर्णन है। बहुरि एक जीव कै युगपत् संभवती प्रकृतिनि के सत्त्व का अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के सत्त्व का वर्णन है। बहुरि करणलब्धि का कथन विषै तीन करणनि का नाम-कालादिक कहि तिनके स्वरूपादिक का वर्णन है।

तहां अधःकरण विषै स्थितिबंधापसरणादिक आवश्यक हो है, तिनका वर्णन है।

अर अपूर्वकरण विषैं च्यारि आवश्यक, तिनविषै गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है। तहां अपकर्षण किया हुआ द्रव्य कौ जैसें उपरितन स्थिति गुणश्रेणी आयाम उदयावली विषै दीजिए है, सो वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ उत्कर्षण वा अपकर्षण किया हुआ द्रव्य का निक्षेप अर अतिस्थापन का विशेष वर्णन है। बहुरि गुणसंक्रमण इहा न संभवै है, सो जहां संभवै है ताका वर्णन है। बहुरि स्थितिकांडक, अनुभाग-कांडक के स्वरूप, प्रमाणादिक का अर स्थिति, अनुभागकांडकोत्करण काल का वर्णनपूर्वक स्थिति, अनुभाग, सत्त्व घटावने का वर्णन है।

बहुरि अनिवृत्तिकरण विषै स्थितिकांडकादि विधान कहि ताके काल का संख्यातवां भाग रहे अंतरकरण हो है, ताके स्वरूप का, अर आयाम प्रमाण का, अर ताके निषेकनि का अभाव करि जहां निक्षेपण कीजिए है ताका इत्यादि वर्णन है। बहुरि अंतरकरण करने का अर प्रथम स्थिति का, अर अंतरायाम का काल वर्णन है। बहुरि अंतरकरण का काल पूर्ण भए पीछै प्रथम स्थिति का काल विषै दर्शनमोह के उपशमावने का विधान, काल, अनुक्रमादिक का, तहां आगाल, प्रत्यागाल जहां पाइए है वा न पाइए है ताका, दर्शनमोह की गुणश्रेणी जहा न होइ है, ताका इत्यादि अनेक वर्णन है।

बहुरि पीछै अंतरायाम का काल प्राप्त भए उपशम सम्यक्त्व होने का, तहा एक मिथ्यात्व प्रकृति कौ तीन रूप परिणमावने के विधान का वर्णन है। बहुरि उपशम सम्यक्त्व का विधान विषै जैसै काल का अल्पबहुत्व पाइए है, तैसैं वर्णन है।

बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषै मरण के अभाव का, अर तहा तै सासादन होने के कारण का, अर उपशम सम्यक्त्व का प्रारंभ वा निष्ठापन विषै जो-जो उपयोग, योग, लेश्या पाइए ताका, अर उपशम सम्यक्त्व के काल, स्वरूपादिक का, अर तिस काल कौ पूर्ण भए पीछै एक कोई दर्शनमोह की प्रकृति उदय आवने का, तहा जैसै

द्रव्य कौं अपकर्षण करि अंतरायामादि विषै दीजिए है ताका, अर दर्शनमोह का उदय भए वेदक सम्यक्त्व वा मिश्र गुणस्थान वा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हो है, तिनके स्वरूप का वर्णन है।

बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व का विधान वर्णन है। तहां क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ जहां होइ ताका, अर प्रारंभ-निष्ठापन अवस्था का वर्णन है। बहुरि अनंतानुबंधी के विसंयोजन का वर्णन है। तहां तीन करणनि का अर अनिवृत्तिकरण विषैं स्थिति घटने का अर अन्य कषायरूप परिणमने के विधान प्रमाणादिक का कथन है। बहुरि विश्राम लेइ दर्शनमोह की क्षपणा हो है, ताका विधान वर्णन है। तहां संभवता स्थितिकाडादिक का वर्णन है। अर मिथ्यात्व, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी विषै स्थिति घटावने का, वा संक्रमण होने का विधान वर्णन करि सम्यक्त्वमोहनी की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रहे अनेक क्रिया विशेष हो हैं, वा तहां गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादिक विषै विशेष हो है, तिनका वर्णन है। बहुरि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होने का वा तहां मरण होतै लेश्या वा उपजने का, वा कृतकृत्य वेदक भए पीछै जे क्रिया विशेष हो हैं अर तहां अंतकांडक वा अंतफालि विषै विशेष हो है, तिनका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व होने का वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के विधान विषै संभवते काल का तेतीस जायगां अल्पबहुत्व वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के स्वरूप का वा मुक्त होने का इत्यादि वर्णन है।

बहुरि चारित्र दोय प्रकार – देशचारित्र, सकलचारित्र। सो ए जाकैं होइ वा सन्मुख होतैं जो क्रिया होइ सो कहि देशचारित्र का वर्णन है। तहां वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र जो ग्रहै, ताके दोइ ही कारण होइ, गुणश्रेणी न होइ, देशसंयत को प्राप्त भए गुणश्रेणी होइ इत्यादि वर्णन है। बहुरि एकांतवृद्धि देशसंयत के स्वरूपादिक का वर्णन है। बहुरि अधःप्रवृत्त देशसंयत का वर्णन है। तहां ताके स्वरूप-कालादिक का, अर तहां स्थिति-अनुभागखंडन न होइ, अर तहां देशसंयत तैं भ्रष्ट होइ देशसंयत कौं प्राप्त होइ ताकै करण होने न होने का, अर देशसंयत विषैं संभवते गुणश्रेण्यादि विशेष का वर्णन है। बहुरि देशसंयम के विधान विषै संभवते काल का अल्पबहुत्वता का वर्णन है। बहुरि जघन्य, उत्कृष्ट देशसंयम जाकै होइ ताका, अर देशसंयम विषैं स्पर्द्धक का अविभागप्रतिच्छेद पाइए ताका वर्णन है। बहुरि देशसंयम के स्थाननि का, अर तिनके प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप तीन प्रकारनि का, अर ते क्रम

तैं जैसैं जिनकैं जेते पाइए, अर बीचि में स्वामीरहित स्थान पाइए तिनका, अर तहा विशुद्धता का वर्णन है।

बहुरि सकलचारित्र तीन प्रकार – क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक; तहां क्षायोपशमिक चारित्र का वर्णन है। तिसविषै यहु जाकै होइ ताका, वा सन्मुख होतै जो क्रिया होइ, ताका वर्णन करि वेदक सम्यक्त्व सहित चारित्र ग्रहण करनेवाले कैं दोय ही करण होइ इत्यादि अल्पबहुत्व पर्यंत सर्व कथन देशसंयतवत् है, ताका वर्णन है। बहुरि सकलसंयम स्पर्द्धक वा अविभागप्रतिच्छेदनि का कथन करि प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप स्थान कहि ते जैसैं जेते जिस जीव के पाइए, तिनका क्रम तैं वर्णन है। तहां विशुद्धता का वा म्लेच्छ के सकलसंयम संभवने का वा सामयिकादि संबंधी स्थाननि का इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि औपशमिक चारित्र का वर्णन है। तहां वेदक सम्यक्त्वी जिस-जिस विधानपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्वी वा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी होइ उपशम श्रेणी चढै है, ताका वर्णन है। तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होने का विधान विषैं तीन करण, गुणश्रेणी, स्थितिकाडकादिक वा अंतरकरणादिक का विशेष वर्णन है।

बहुरि उपशम श्रेणी विषैं आठ अधिकार हैं, तिनका वर्णन है। तहां प्रथम अधःकरण का वर्णन है। बहुरि दूसरा अपूर्वकरण का वर्णन है। इहां संभवते आवश्यकनि का वर्णन है। इहांतै लगाय उपशम श्रेणी का चढ़ना वा उतरणा विषैं स्थितिबधापसरण अर स्थितिकांडक वा अनुभागकांडक के आयामादिक के प्रमाण का, अर इनकौ होतै जैसा-जैसा स्थितिबंध अर स्थितिसत्त्व वा अनुभागसत्त्व अवशेष रहै, ताका यथा ठिकाणै बीचि-बीचि वर्णन है, सो कथन आगै होइगा तहां जानना। बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषैं प्रसंग पाइ, अनुभाग के स्वरूप का वा वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि का वर्णन है। अर इहां गुणश्रेणी, गुणसंक्रम हो है, अर प्रकृतिबंध का व्युच्छेद हो है, ताका वर्णन है। बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषैं दश करणनि विषैं तीन करणनि का अभाव हो है। ताका अनुक्रम लीएं कर्मनि का स्थितिबध करनेरूप क्रमकरण हो है ताका, तहां असंख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणादिक का, अर कर्मप्रकृतिनि के स्पर्द्धक देशघाती करनेरूप देशघातीकरण का, अर कर्मप्रकृतिनि कैं केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्य निषेकनि विषैं निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का, अर अंतरकरण की समाप्तता भए युगपत् सात करननि का प्रारंभ हो है ताका, तहां ही आनुपूर्वी संक्रमण का – इत्यादि वर्णन करि नपुंसकवेद

अर स्त्रीवेद अर छह हास्यादिक, पुरुषवेद, तीन क्रोध अर तीन माया अर दोय लोभ; इनके उपशमावने के विधान का अनुक्रम तैं वर्णन है। तहा गुणश्रेणी का वा स्थिति-अनुभागकांडकघात होने न होने का अर नपुंसकवेदादिक विषैं नवकबंध के स्वरूप-परिणमनादि विशेष का, वा प्रथम स्थिति के स्वरूप का आदि विशेष का, वा तहां आगाल-प्रत्यागाल गुणश्रेणी न हो है इत्यादि विशेषनि का, अर संक्रमणादि विशेष पाइए है, तिनका इत्यादि अनेक वर्णन पाइए है। बहुरि संज्वलन लोभ का उपशम विधान विषै लोभ-वेदककाल के तीन भागनि का, अर तहा प्रथम स्थिति आदिक का वर्णन करि सूक्ष्मकृष्टि करने का विधान वर्णन है। तहां प्रसग पाइ वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का कथन करि अर कृष्टि करने का वर्णन है। इहां बादरकृष्टि तौ है ही नाही, सूक्ष्मकृष्टि है, तिनविषै जैसे कर्मपरमाणु परिणमै है वा तहां ही जैसे अनुभागादिक पाइए है, वा तहां अनुसमयापवर्त्तनरूप अनुभाग का घात हो है इत्यादिकनि का, अर उपशमावने आदि क्रियानि का वर्णन है। बहुरि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान कौं प्राप्त होइ सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त जो लोभ, ताके उदय कौ भोगवने का, तहा संभवती गुणश्रेणी, प्रथम स्थिति आदि का इहां उदय-अनुदयरूप जैसे कृष्टि पाइए तिनका, वा संक्रमण-उपशमनादि क्रियानि का वर्णन है। बहुरि सर्व कषाय उपशमाय उपशांत कषाय हो है ताका, अर तहां संभवती गुणश्रेणी आदि क्रियानि का, अर इहा जे प्रकृति उदय हैं, तिनविषै परिणामप्रत्यय अर भवप्रत्ययरूप विशेष का वर्णन है। ऐसे संभवती इकईस चारित्रमोह की प्रकृति उपशमावने का विधान कहि उपशांत कषाय तें पडनेरूप दोय प्रकार प्रतिपात का, तहां भवक्षय निमित्त प्रतिपात तें देव सम्बन्धी असंयत गुणस्थान कौं प्राप्त हो है। तहा गुणश्रेणी वा अनुरागमन वा अंतर का पूरण करना इत्यादि जे क्रिया हो है, तिनका वर्णन है। अर अद्धाक्षय निमित्त तें क्रम तें पडि स्वस्थान अप्रमत्त पर्यंत आवै तहा गुणश्रेणी आदिक का, वा चढते जे क्रिया भई थी, तिनका अनुक्रम तें नष्ट होने का वर्णन है। बहुरि अप्रमत्त तें पडने का तहां संभवति क्रियानि का अर अप्रमत्त तें चढै तौ बहुरि श्रेणी मांडै ताका वर्णन है। ऐसे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध का उदय सहित जो श्रेणी मांडै, ताकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन मान सहित आदि ग्यारह प्रकार उपशम श्रेणी चढनेवालों कैं जो-जो विशेष पाइए है, तिनका वर्णन है। बहुरि इस उपशम चारित्र विधान विषै संभवते काल का अल्पबहुत्व वर्णन है।

बहुरि क्षपणासार के अनुसारि लीए क्षायिकचारित्र के विधान का वर्णन है। तहां [illegible] [illegible] [illegible] अधिकारनि का अर क्षपक श्रेणी कौं सन्मुख जीव का वर्णन है।

बहुरि अध.करण का वर्णन है। तहा विशुद्धता की वृद्धि आदि च्यारि आवश्यकनि का, अर तहां सभवते परिणाम, योग, कषाय, उपयोग, लेश्या, वेद, अर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप कर्मनि का सत्त्व, बध उदय, तिनका वर्णन है।

बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन है। तहा सभवते स्थितिकाडकघात, अनुभाग-काडकघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रम इनका विशेष वर्णन है। अर इहा प्रकृतिबध की व्युच्छित्ति हो है, तिनका वर्णन है। इहातै लगाय क्षपक श्रेणी विषै जहा-जहां जैसा-जैसा स्थितिबधापसरण, अर स्थितिकाडकघात, अनुभागकाडकघात पाइए अर इनकौ होतै जैसा-जैसा स्थितिबध, अर स्थितिसत्त्व अर अनुभागसत्त्व रहै, तिनका बीच-बीच वर्णन है, सो कथन होगा तहा जानना।

बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन है। तहा स्वरूप, गुणश्रेणी, स्थितिकाडकादि का वर्णन करि कर्मनि का क्रम लीए स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व करने रूप क्रमकरण का वर्णन है। बहुरि गुणश्रेणी विषै असख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणा होने लगी, ताका वर्णन है।

बहुरि प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यानरूप आठ कषायनि के खिपावने का विधान वर्णन है। बहुरि निद्रा-निद्रा आदि सोलह प्रकृति खिपावने का विधान वर्णन है। बहुरि प्रकृतिनि की देशघाती स्पर्द्धकनि का बध करनेरूप देशघातीकरण का वर्णन है। बहुरि च्यारि संज्वलन, नव नोकषायनि के केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्यत्र निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का वर्णन है। बहुरि नपुसकवेद खिपावने का विधान वर्णन है। तहा सक्रम का वा युगपत् सात क्रियानि का प्रारभ हो है, तिनका इत्यादि वर्णन है। बहुरि स्त्रीवेद क्षपणा का वर्णन है। बहुरि छह नोकषाय अर पुरुषवेद इनकी क्षपणा का विधान वर्णन है। बहुरि अश्वकर्णकरणसहित अपूर्वस्पर्द्धक करने का वर्णन है। तहा पूर्वस्पर्द्धक जानने कौ वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का अर तिन-विषै देशघाती, सर्वघातिनि के विभाग का, वा वर्गणा की समानता, असमानता आदिक का कथन करि अश्वकरण के स्वरूप, विधान क्रोधादिकनि के अनुभाग का प्रमाणादिक का अर अपूर्वस्पर्द्धकनि के स्वरूप प्रमाण का तिनविषै द्रव्य-अनुभागा-दिक का, तहा समय-समय सबधी क्रिया का वा उदयादिक का बहुत वर्णन है।

बहुरि कृष्टिकरण का वर्णन है। तहा क्रोधवेदककाल के विभाग का, अर बादर-कृष्टि के विधान विषै कृष्टिनि के स्वरूप का, तहां बारह सग्रहकृष्टि, एक-एक संग्रहकृष्टि

विषै अनती अतरकृष्टि तिनका, अर तिनविषै प्रदेश अनुभागादिक के प्रमाण का, तहां समय-समय सवधी क्रियानि का वा उदयादिक का अनेक वर्णन है। बहुरि कृष्टि वेदना का विधान वर्णन है। तहां कृष्टिनि के उदयादिक का, वा संक्रम का, वा घात करने का, वा समय-समय संबधी क्रिया का विशेष वर्णन करि क्रम तें दश संग्रहकृष्टिनि के भोगवने का विधान-प्रमाणादिक का बहुत कथन करि तिनकी क्षपणा का विधान वर्णन है। बहुरि अन्य प्रकृति संक्रमण करि इनरूप परिणामी, तिनके द्रव्यसहित लोभ की द्वितीय, तृतीय सग्रहकृष्टि के द्रव्य कौ सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है, ताके विधान-स्वरूप-प्रमाणादिक का वर्णन है। ऐसे अनिवृत्तिकरण का बहुत वर्णन है। याविषै गुणश्रेणी-अनुभागघात के विशेष आदि बीचि-बीचि अनेक कथन पाइए है, सो आगै कथन होइगा तहां जानना।

बहुरि सूक्ष्मसापराय का वर्णन है। तहां स्थिति, अनुभाग का घात वा गुण-श्रेणी आदि का कथन करि बादरकृष्टि संबंधी अर्थ का निरूपण पूर्वक सूक्ष्मसापराय सबंधी कृष्टिनि के अर्थ का निरूपण, अर तहां सूक्ष्मकृष्टिनि का उदय, अनुदय, प्रमाण अर संक्रमण, क्षयादिक का विधान इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि यहु तौ पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध का उदय सहित श्रेणी चढ्या, ताकी अपेक्षा कथन है। बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन मान आदि का उदय सहित ग्यारह प्रकार श्रेणी चढने वालों के जो-जो विशेष पाइए, ताका वर्णन है। ऐसे कृष्टिवेदना पूर्ण भए।

बहुरि क्षीणकषाय का वर्णन। तहां ईर्यापथबंध का, अर स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि का, वा तहां संभवते ध्यानादिक का अर ज्ञानावरणादिक के क्षय होने के विधान का, अर इहाँ शरीर सम्बन्धी निगोद जीवनि के अभाव होने के क्रम का इत्यादि वर्णन है।

बहुरि सयोगकेवली का वर्णन है। तहां ताके महिमा का अर गुणश्रेणी वा अर विहार-आहारादिक होने न होने का वर्णन करि अंतर्मुहूर्त्त मात्र आयु रहै आवर्जितकरण हो है ताका, तहां गुणश्रेणी आदि का, अर केवलसमुद्घात का, तहा दंड-कपाटादिक के विधान वा क्षेत्रप्रमाणादिक का, वा तहा संभवती स्थिति-अनुभाग घटने आदि क्रियानि का वा योगनि का इत्यादि वर्णन है। बहुरि बादर मन-वचन काय योग कौं निरोधि सूक्ष्म करने का, तहां जैसें योग हो है, ताका अर सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास, काययोग के निरोध करने का, तहां काययोग के

पूर्वस्पर्द्धकनि के अपूर्वस्पर्द्धक अर तिनकी सूक्ष्मकृष्टि करिए है, तिनका स्वरूप, विधान, प्रमाण, समय-समय सम्बन्धी क्रियाविशेष इत्यादिक का अर करी सूक्ष्मकृष्टि, ताकौं भोगवता सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान युक्त हो है, ताका वा तहा सभवते स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि विशेष का वर्णन है ।

बहुरि अयोगकेवली का वर्णन है । तहां ताकी स्थिति का, शैलेश्यपना का, ध्यान का, तहा अवशेष सर्व प्रकृति खिपवाने का वर्णन है ।

बहुरि सिद्ध भगवान का वर्णन है । तहां सुखादिक का, महिमा का, स्थान का, अन्य मतोक्त स्वरूप के निराकरण का इत्यादि वर्णन है । असैं लब्धिसार क्षपणा-सार कथन की सूचनिका जाननी ।

बहुरि अन्त विषैं अपने किछू समाचार प्रगट करि इस सम्यग्ज्ञानचद्रिका की समाप्तता होतैं कृतकृत्य होइ आनद दशा कौ प्राप्त होना होइगा । असैं सूचनिका करि ग्रंथसमुद्र के अर्थ संक्षेपपनै प्रकट किए है ।

इति सूचनिका ।

—०—

परिकर्माष्टक सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि इस करणानुयोगरूप शास्त्र के अभ्यास करने के अर्थि गणित का ज्ञान अवश्य चाहिये, जातै अलंकारादिक जानै प्रथमानुयोग का, गणितादिक जानै करणानुयोग का, सुभाषितादिक जानै चरणानुयोग का, न्यायादि जानै द्रव्यानुयोग का विशिष्ट ज्ञान हो है, तातैं गणित ग्रंथनि का अभ्यास करना । अर न बनै तौ परिकर्माष्टक तौ अवश्य जान्या चाहिये । जातै याकौ जाणै अन्य गणित कर्मनि का भी विधान जानि तिनकौ जानै अर इस शास्त्र विषै प्रवेश पावै । तातै इस शास्त्र का अभ्यास करने को प्रयोजनमात्र परिकर्माष्टक का वर्णन इहा करिए है—

तहां परिकर्माष्टक विषै संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल ए आठ नाम जानने । ए लौकिक गणित विषै भी सभवै है, अर अलौकिक गणित विषै भी संभवै है । सो लौकिक गणित तौ प्रवृत्ति विषै प्रसिद्ध ही है । अर अलौकिक गणित जघन्य संख्यातादिक वा पल्यादिक का व्याख्यान आगैं जीवसमासाधिकार पूर्ण भए पीछै होइगा, तहां जानना । अव संकलनादिक का स्वरूप

कहिए है। किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण विषै जोडिये तहां संकलन कहिए। जैसे सात विषै पांच जोडे वारह होइ, वा पुद्गलराशि विषै जीवादिक का प्रमाण जोडे सर्व द्रव्यनि का प्रमाण होइ है।

वहुरि किसी प्रमाण विषैं किसी प्रमाण कौ घटाइए, तहां व्यवकलन कहिए। जैसे वारह विषै पाच घटाऐ सात होय, वा संसारी राशि विषै त्रसराशि घटाऐं स्थावरनि का प्रमाण होइ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण करि गुणिए, तहां गुणकार कहिए। जैसे पाच कौ च्यारि करि गुणिए वीस होइ, वा जीवराशि कौं अनन्त करि गुणें पुद्गलराशि होइ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ किसी प्रमाण का जहां भाग दीजिए, तहा भागहार कहिए। जैसे वीस कौ च्यारि करि भाग दीऐ पांच होइ, वा जगत् श्रेणी कौ सात का भाग दीए राजू होइ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ दोय जायगां मांडि परस्पर गुणिए, तहां तिस प्रमाण का वर्ग कहिए। जैसे पांच कौ दोय जायगां मांडि परस्पर गुणें पाँच का वर्ग पचीस होइ, वा सूच्यंगुल कौं दोय जायगां मांडि, परस्पर गुणें, सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होइ।

वहुरि किसी प्रमाण कौ तीन जायगा मांडि, परस्पर गुणें, तिस प्रमाण को घन कहिए। जैसें पांच को तीन जायगां मांडि, परस्पर गुणें, पांच का घन एक सौ पचीस होइ। वा जगत् श्रेणी कौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणे लोक होइ।

वहुरि जो प्रमाण जाका वर्ग कीये होइ, तिस प्रमाण का सो वर्गमूल कहिए। जैसे पचीस पाच का वर्ग कीए होइ तातै पचीस का वर्गमूल पांच है। वा प्रतरांगुल है सो सूच्यंगुल का वर्ग कीए हो है, तातै प्रतरांगुल का वर्गमूल सूच्यंगुल है।

वहुरि जो प्रमाण जाका घन कीए होइ, तिस प्रमाण का सो घनमूल कहिए। जैसे एक सौ पचीस पांच का घन कीए होइ, तातै एक सौ पचीस का घनमूल पांच है। वा लोक है सो जगत्श्रेणी का घन कीए हो है, तातै लोक का घनमूल जगतश्रेणी है।

अब इहां केतेइक संज्ञाविशेष कहिए है। संकलन विषैं जोडने योग्य राशि का नाम धन है। मूलराशि कौ तिस धन करि अधिक कहिए। जैसैं पांच अधिक कोटि वा जीवराश्यादिक करि अधिक पुद्गल इत्यादिक जानने।

बहुरि व्यवकलन विषैं घटावने योग्य राशि का नाम ऋण है। मूलराशि कौं तिस ऋण करि हीन वा न्यून वा शोधित वा स्फोटित इत्यादि कहिए। जैसै पांच करि हीन कोटि वा त्रसराशि हीन संसारी इत्यादि जानने। कही मूलराशि का नाम धन भी कहिए है।

बहुरि गुणकार विषैं जाकौं गुणिए, ताका नाम गुण्य कहिए।

जाकरि गुणिए, ताका नाम गुणकार वा गुणक कहिए।

गुण्यराशि कौं गुणकार करि गुणित वा हत वा अभ्यस्त वा घ्नत इत्यादि कहिए। जैसैं पंचगुणित लक्ष वा असख्यात करि गुणित लोक कहिए। कही गुणकार प्रमाण गुण्य कहिए। जैसै पांच गुणां वीस कौ पांच वीसी कहिए वा असख्यातगुणां लोक कू असंख्यातलोक कहिए इत्यादिक जानने। गुनने का नाम गुणन वा हनन वा घात इत्यादि कहिए है।

बहुरि भागहार विषै जाकौ भाग दीजिए ताका नाम भाज्य वा हार्य इत्यादि है। अर जाका भाग दीजिए ताका नाम भागहार वा हार वा भाजक इत्यादि है। भाज्य राशि कू भागहार करि भाजित भक्त वा हत वा खडित इत्यादि कहिए। जैसैं पांच करि भाजित कोटि वा असंख्यात करि भाजित पल्य इत्यादिक जानने। भागहार का भाग देइ एक भाग ग्रहण करना होइ, तहा तेथवा भाग वा एक भाग कहिये। जैसें वीस का चौथा भाग, वा पल्य का असंख्यातवा भाग वा असंख्यातैक भाग इत्यादि जानना।

बहुरि एक भाग विना अवशेष भाग ग्रहण करने होई तहां बहुभाग कहिए। जैसै वीस के च्यारि बहुभाग वा पल्य का असख्यात बहुभाग इत्यादि जानने।

बहुरि वर्ग का नाम कृति भी है। बहुरि वर्गमूल का नाम कृतिमूल वा मूल वा पद वा प्रथम मूल भी है। बहुरि प्रथम मूल के मूल कौ द्वितीय मूल कहिए। द्वितीय मूल के मूल कौ तृतीय मूल कहिए। ऐसैं चतुर्थादि मूल जानने। जैसैं

पैंसठ हजार पाच सौ छत्तीस का प्रथम मूल दोय सै छप्पन, द्वितीय मूल सोलह, तृतीय मूल च्यारि, चतुर्थ मूल दोय होइ । ग्रैसै ही पल्य वा केवलज्ञानादि के प्रथमादि मूल जानने । ऐसै ग्रन्य भी ग्रनेक संज्ञाविशेष यथासंभव जानने ।

ग्रब इहा विधान कहिए है। सो प्रथम लौकिक गरिणत ग्रपेक्षा कहिए है। तहा ग्रैसा जानना **'ग्रंकानां वामतो गतिः'** ग्रंकनि का ग्रनुक्रम बाई तरफ सेती है। जैसे दोय सै छप्पन (२५६) के तीन ग्रंकनि विषै छक्का ग्रादि ग्रंक, पांचा दूसरा ग्रंक, दूवा ग्रत ग्रंक कहिये। ग्रैसे ही ग्रन्यत्र जानना। बहुरि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ग्रादि ग्रंकनि कौ क्रम तै एक स्थानीय, दश स्थानीय, शत स्थानीय, सहस्र स्थानीय ग्रादि कहिए। प्रवृत्ति विषै इनही कौ इकवाई, दहाई, सैकडा, हजार ग्रादि कहिए है।

वहुरि संकलनादि होतै प्रमारण ल्यावने कौ गणित कर्म कौ कारण जे कररण-सूत्र, तिनकरि गणित शास्त्रनि विषै ग्रनेक प्रकार विधान कह्या है, सो तहातै जानना वा त्रिलोकसार की भाषा टीका बनी है, तहां लौकिक गरिणत का प्रयोजन जानि पीठबंध विषै किछु वर्णन किया है, सो तहांतै जानना।

इस शास्त्र विषै गरिणत का कथन की मुख्यता नाही वा लौकिक गणित का बहुत विशेष प्रयोजन नाही तातै इहां बहुत वर्णन न करिए है। विधान का स्वरूप मात्र दिखावने कौं एक प्रकार करि किंचित् वर्णन करिए है।

तहा संकलन विषै जिनका संकलन करना होइ, तिनके एक स्थानीय ग्रादि ग्रंकनि कौं क्रम तै यथास्थान जोडै जो-जो ग्रंक ग्रावै, सो-सो ग्रंक जोड विषै क्रम तै यथास्थान लिखना। सो प्रवृत्ति विषै जैसे जोड देने का विधान है, तैसें ही यहु जानना। बहुरि जो एक स्थानीय ग्रादि ग्रंक जोडैं दोय, तीन ग्रादि ग्रंक ग्रावै तौ प्रथम ग्रंक कौं जोड विषै पहिले लिखिए। द्वितीय ग्रादि ग्रंकनि कौ दश स्थानीय ग्रादि ग्रंकनि विषै जोडिए। याकौ प्रवृत्ति विषै हाथिलागा कहिए है। ग्रैसै करतै जो ग्रंक होइ, सो जोड्या हुवा प्रमारण जानना।

तहा उदाहरण – जैसै दोय सै छप्पन ग्रर चौरासी (२५६+८४) जोडिए, तहा एक स्थानीय छह ग्रर च्यारि जोडे दश भए। तहां जोड विषै एक स्थानीय बिंदी लिखी, ग्रर रह्या एक, ताकौं ग्रर दश स्थानीय पांचा, ग्राठा इन कौं जोडे,

चौदह भए। तहां जोड विषै दश स्थानीय चौका लिख्या अर रह्या एका, ताकौ अर शत स्थानीय दूवा कौ जोडैं, तीन भया, सो जोड विषै शत स्थानीय लिख्या। असैं जोडैं तीन सै चालीस भये। असैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि व्यवकलन विषै मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंकनि विषै ऋण राशि के एक स्थानीय आदि अंकनि कौं यथाक्रम घटाइए। जो मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंक तै ऋणराशि के एक स्थानीय आदि अंक अधिक प्रमाण लीए होइ तौ धनराशि के दश स्थानीय आदि अंक विषै एक घटाइ धनराशि के एक स्थानीय आदि अंक विषै दश जोडि, तामै ऋणराशि का अंक घटावना। सो प्रवृत्ति विषै जैसै बाकी काढने का विधान है, तैसैं ही यहु जानना। असै करतै जो होइ, सो अवशेष प्रमाण जानना।

इहां उदाहरण – जैसै छह सै पिचहत्तरि मूलराशि विषै बाणवै (६७५–६२) ऋण घटावना होइ, तहां एक स्थानीय पांच में दूवा घटाए तीन रहे अर दश स्थानीय सात विषै नव घटै नाही तातै शतस्थानीय छक्का मैं एक घटाइ ताके दश सात विषै जोडै सतरह भए, तामैं नौ घटाइ आठ रहे शत स्थानीय छक्का में एक घटाये पांच रहे, तामै ऋण का अंक कोऊ घटावने कौ है नाही तातै, पाच ही रहे। असै अवशेष पाच सै तियासी प्रमाण आया। असै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि गुणकार विषै गुण्य के अंत अंक तै लगाय आदि अक पर्यंत एक-एक अंक कौ क्रम तै गुणकार के अंकनि करि गुणि यथास्थान लिखिए वा जोडिए, तब गुणित राशि का प्रमाण आवै।

इहां उदाहरण – जैसै गुण्य दोय सै छप्पन अर गुणकार सोलह (२५६×१६)। तहां गुण्य का अंत अंक दूवा कौ सोलह करि गुणना। तहा छक्का तौ दूवा ऊपरि अर एका ताके पीछै $\overset{१६}{२५६}$ असै स्थापन करि एक करि दूवा कौ गुणें, दोय पाये, सो तो एक के नीचै लिखना। अर छह करि दूवा कौ गुणैं बारह पाए, तिसविषै दूवा तौ गुण्य की जायगां लिखना एका पहिलै दोय लिख्या था तामैं जोडना तव असा भया [३२ ५६]। बहुरि असै ही गुण्य का उपात अक पांचा, ताकौ सोलह करि गुणना तहा असै $\overset{१६}{३२,५६}$ स्थापना करि एका करि पाचा कौ गुणें, पांच भये, सो तौ एका के नीचै दूवा, तामे जोडिए अर छक्का करि पांचा कौ गुणै तीस भए, तहां बिदी पांचा की जायगां मांडि तीन पीछले अंकनि विषै जोडिए असै कीए

ऐसा ४००६ भया। वहुरि गुण्य का आदि अंक छक्का कौ सोलह करि गुणना तहां

ऐसे $\overset{१६}{४००६}$ स्थापि एक करि छह को गुणै छह भये सो तौ एका के नीचै विंदी तामै जोडिए अर छ को छ करि गुणै छत्तीस भया, तहा छक्का तौ गुण्य का छक्का की जायगां स्थापना, तीया पीछला अंक छक्का तामै जोडना, ऐसै कीए ऐसा ४०९६ भया। या प्रकार गुणित राशि च्यारि हजार छिनवै आया। ऐसै ही अन्यत्र विधान जानना।

वहुरि भागहार विषै भाज्य के जेते अंकनि विषै भागहार का भाग देना संभवै, तितने अंकनि कौ ताका भाग देइ पाया अंक कौ जुदा लिखि तिस पाया अंक करि भागहार कौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना जाका भाग दीया था, तामै घटाय अवशेष तहा लिखना। वहुरि तैसै ही भाग दीए जो अंक पावै, ताकौ पूर्वे लिख्या था अंक, ताके आगै लिखि ताकरि भागहार कौ गुणि तैसै ही घटावना। ऐसै यावत् भाज्यराशि निःशेष होइ तावत् कीए जुदे लिखे अंक प्रमाण एक भाग आवै है।

इहा उदाहरण-जैसे भाज्य च्यारि हजार छिनवै, भागहार सोलह। तहां भाज्य का अन्त अंक च्यारि कौ तौ सोलह का भाग संभवै नाही तातै दोय अंके चालीस तिनकौं भाग देना, तहा ऐसै $\frac{४०९६}{१६}$ लिखि। इहां तीन आदि अंकनि करि सोलह कौं गुणै, तौ चालीस तै अधिक होइ जाय तातै दोइ पाये सो दूवा जुदा लिखि, ताकरि सोलह कौं गुणि चालीस मै घटाए ऐसा ८९६ भया।

वहुरि इहा निवासी कौं सोलह का भाग दीए $\frac{८९६}{१६}$ पांच पाए, सो दूवा के आगै लिखि, ताकरि सोलह कौं गुनि निवासी में घटाए ऐसा ९६ रह्या। याकौ सोलह का भाग दीएं छह पाय, सो पाचा के आगै लिखि, ताकरि सोलह कौ गुणि छिनवै भए, सो घटाए भाज्यराशि निःशेप भया। ऐसै जुदे लिखे अंक तिनकरि एक भाग का प्रमाण दोय सै छप्पन आवै है। वहुरि **'भागो नास्ति लब्धं शून्यं'** इस वचन तै जहां भाग टूटि जाय तहां बिंदी पावै। जैसै भाज्य तीन हजार छत्तीस (३०३६) भागहार छह (६) तहा तीस कौ छह का भाग दीए, पांच पाए, तिनकरि छह कौ गुणि, घटाए तीस निःशेष होय गया, सो इहां भाग टूट्या, तातै पांच के आगै बिंदी लिखना। वहुरि अवशेष छत्तीस कौं छह का भाग दीए छह पाए, सो बिंदी के आगै लिखि, ताकरि छह कौं गुणि घटाएं सर्व भाज्य निःशेप भया। ऐसै लब्ध प्रमाण पांच सै छह पाया। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि वर्ग विषै गुणाकारवत् विधान जानना। जातै दोय जायगां समान राशि लिखि एक कौं गुण्य, एक कौं गुणकार स्थापि परस्पर गुणै वर्ग हो है। जैसै सोलह कौ सोलह करि गुणै, सोलह का वर्ग दोय सै छप्पन हो है।

बहुरि घन विषै भी गुणकारवत् ही विधान है। जातैं तीन जायगां समान राशि मांडि परस्पर गुणन करना। तहां पहिला राशिरूप गुण्य कौ दूसरा राशिरूप गुणकार करि गुणै जो (प्रमाण) होइ ताकौ गुण्य स्थापि, ताकौ तीसरा राशिरूप गुणकार करि गुणैं जो प्रमाण आवै, सोइ तिस राशि का घन जानना।

जैसै सोलह कौ सोलह करि गुणै, दोय सै छप्पन, बहुरि ताकों सोलह करि गुणै च्यार हजार छिनवे होइ, सोई सोलह का घन है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि वर्गमूल विषै वर्गरूप राशि के प्रथम अंक उपरि विषम की दूसरे अंक उपरि सम की तीसरे (अंक) उपरि विषम की चौथे (अंक) उपरि सम की ऐसै क्रम तै अन्त अंक पर्यंत उभी आडी लीक करि सहनानी करनी। जो अन्त का अंक सम होय तो तहां उपांत का अर अन्त का दोऊ अंकनि कौ विषम संज्ञा जाननी। तहां अन्त का एक वा दोय जो विषम अंक, ताका प्रमाण विषै जिस अंक का वर्ग संभवै, ताका वर्ग करि अन्त का विषम प्रमाण मै घटावना। अवशेष रहै सो तहां लिखना। बहुरि जाका वर्ग कीया था, तिस मूल अंक कौ जुदा लिखना। बहुरि अवशेष रहे अंकनि करि सहित जो तिस विषम के आगै सम अंक, ताके प्रमाण कौं जुदा स्थाप्या जो अंक, तातै दूणा प्रमाण रूप भागहार का भाग दीए जो अंक पावै, ताकौ तिस जुदा स्थाप्या, अंक के आगै लिखना। अर तिस अंक करि गुण्या हुवा भागहार का प्रमाण को तिस भाज्य में घटाइ अवशेष तहा लिखि देना। बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस सम के आगैं विषम अंक, तामै जो अंक पाया था, ताका वर्ग कीए जो प्रमाण होइ, सो घटावना अवशेष तहा लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस विषम के आगै सम अंक, ताकौ तिन जुदे लिखे हुए सर्व अंकरूप प्रमाण तै दूणा प्रमाण रूप भागहारा का भाग देइ पाया अक कौ तिन जुदे लिखे हुए अकनि के आगै लिखना। अर इस पाया अंक करि भागहार कौ गुणि भाज्य में घटाइ, अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित जो सम अंक के आगै विषम अंक ताविषै पाया अंक का वर्ग घटावना। ऐसै ही क्रमतै यावत् वर्गित राशि निःशेष होय, तावत् कीए वर्गमूल का प्रमाण आवै है।

इहा उदाहरण – जैसै वर्गित राशि पैंसठ हजार पाच सौ छत्तीस (६५५३६) इहां विषम-सम की सहनानी अैसी $\overset{|-|-|}{६५५३६}$ करि अन्त का विपम छक्का तामैं तीन का वर्ग तौ बहुत होइ जाइ, तातैं संभवता दोय का वर्ग च्यारि घटाइ अवशेप दोइ तहां लिखना। अर मूल अंक दूवा जुदा पंक्ति विषैं लिखना। वहुरि तिस अवशेप सहित आगिला सब अंक ऐसा २५। ताकौं जुदा लिख्या जो दूवा तातै दूणा च्यारि का भाग दीए, छह पावै; परंतु आगै वर्ग घटावने का निर्वाहि नाही; तातै पांच पाया, सो जुदा लिख्या हुआ दूवा के आगै लिखना। अर पाया अंक पांच करि भागहार च्यारि कौ गुणि, भाज्य मै घटाएं, पचीस की जायगा पांच रह्या, तिस सहित आगिला विषम ऐसा (५५) तामै पाया अंक पाच का वर्ग पचीस घटाए, अवशेष ऐसा ३०, तिस सहित आगिला सम ऐसा ३०३, ताकौ जुदे लिखे अंकनि तै दूणा प्रमाण पचास का भाग दीए छह पाया, सो जुदे लिखे अंकनि के आगै लिखना। अर छह करि भागहार पचास कौ गुणि, भाज्य मै घटाए अवशेप ऐसा ३ रह्या, तिस सहित आगिला विषम ऐसा ३६, यामै पाया अंक छह का वर्ग घटाए राशि निःशेष भया। ऐसैं जुदे लिखे हूवे अंकनि करि पैसठ हजार पांच सै छत्तीस का वर्गमूल दोए सै छप्पन आया। ऐसै ही अन्यत्र विधान जानना।

वहुरि घनमूल विषै घन रूप राशि के अंकनि उपरि पहिला घन, दूजा-तीजा अघन चौथा घन, पाचवाँ-छठा अघन ऐसैं क्रमतै ऊभी आडी लीक रूप सहनानी करनी। जो अंत का घन अंक न होइ तो अन्त उपांत दोय अंकनि की घन संज्ञा जाननी। अर ते दोऊ घन न होइ तौ अन्त तैं तीन अंकनि की घन संज्ञा जाननी। तहा एक वा दोय वा तीन अंक रूप जो अन्त का घन, तामै जाका घन संभवै ताका घन करि ताकौं अंत का घन अकरूप प्रमाण मै घटाइ अवशेष तहां लिखना। अर जाका घन कीया था, तिस मूल अंक कौ जुदा पंक्ति विषै स्थापना। बहुरि तिस अवशेप सहित आगिला अंक कौं तिस मूल अंक के वर्ग तै तिगुणा भागहार का भाग देना जो अंक पावै, ताकौं जुदा लिख्या हुवा अंक के आगै लिखना। अर पाया अक करि भागहार कौं गुणी, भाज्य मे घटाइ अवशेष तहां लिखि देना। वहुरि इस अवशेप सहित आगिला अंक, ताविषै पाया अंक के वर्ग कौ पूर्वै पंक्ति विषैं तिष्ठते अंकनि करि गुणै, जो प्रमाण होइ, ताकौ तिगुणा करि घटाइ देना। अवशेष तहां लिखना। वहुरि इस अवशेप सहित आगिला अंक विषै तिस ही पाया अक का घन घटावना। वहुरि अवशेप सहित आगिला अंक कौं जुदा लिखि अंकनि के प्रमाण

का वर्ग कौं तिगुणा करि निर्वाह होइ, तैसैं भाग देना । पाया अंक पंक्ति विषै आगै लिखना । ऐसै ही अनुक्रम तै यावत् धनराशि निःशेष होइ तावत् कीए घनमूल का प्रमाण आवै है ।

इहां उदाहरण – जैसै घनराशि पंद्रह हजार छह सै पच्चीस (१५६२५) इहां घनअघन की सहनानी कीए ऐसा (१५६२५) इहां अन्त अंक घन नाहीं तातैं दोय अंक रूप अन्तघन १५ । इहां तीन का घन कीए बहुत होइ जाइ, तातै दोय का घन आठ घटाइ, तहां अवशेष सात लिखना । अर घनमूल दूवा जुदी पंक्ति विषै लिखना बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला अंक असा (७६) ताकौ मूल अंक का वर्ग च्यारि, ताका तिगुणा बारह, ताका भाग दिए छह पावै, परंतु आगै निर्वाह नाहीं तातै पांच पाया सो दूवा के आगै पंक्ति विषै लिखना अर इस पांच करि भागहार बारह कौ गुणि, भाज्य में घटाए, अवशेष सोलह (१६) तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१६२) तामैं पाया अंक पांच, ताका वर्ग पचीस, ताकौ पूर्व पंक्ति विषै तिष्ठै था दूवा, ताकरी गुणे पचास, तिनके तिगुणे ड्योढ सै घटाए अवशेष बारह, तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१२५), यामैं पांच का घन घटाएं राशि निःशेष भया ऐसैं पंद्रह हजार छ:सै पच्चीस का घनमूल पच्चीस प्रमाण आया । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

ऐसै वर्णन करि अब भिन्न परिकर्माष्टक कहिए है । तहां हार अर अशनि का संकलनादिक जानना । हार अर अंश कहा कहिए । जैसै जहा छह पंचास कहे, तहां एक के पंचास अंश कीए तिह समान छह अंश जानने । वा छह का पांचवां भाग जानना । तहां छह कौ तो हार वा हर वा छेद कहिए । अर पाच कौ अंश वा लव इत्यादिक कहिए । तहा हार कौ ऊपरि लिखिए, अंश कौ नीचै लिखिए। जैसै छह पंचास कौ असा $\frac{६}{५०}$ लिखिए । ऐसैं ही अन्यत्र जानना । तहाँ भिन्न संकलन-व्यवकलन के अर्थि भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबंध, भागापवाह ए च्यारि जाति है । तिन-विषैं इहां विशेष प्रयोजनभूत समच्छेद विधान लीए भागजाति कहिए है । जुदे-जुदे हार अर तिनके अंश लिखि एक-एक हार कौ अन्य हारनि के अंशनि करि गुणिए अर सर्व अंशनि कौ परस्पर गुणिए । ऐसे करि जो सकलन करना होइ तौ परस्पर हारनि कौ जोड दीजिए अर व्यवकलन करना होइ तो मूलराशि के हारनि विषै ऋणराशि के हार घटाइ दीजिए । अर अंश सबनि के समान भए । तातै अश परस्पर गुणे जेते भए तेते ही राखिए । ऐसैं समान अश होने तै याका नाम समच्छेद विधान है ।

इहां उदाहरण – तहां संकलन विषै पांच छट्ठा अंश दोय तिहाइ तीन पाव (चौथाई) इनकौ जोडना होइ तहां $\begin{vmatrix} ५ & २ & ३ \\ ६ & ३ & ४ \end{vmatrix}$ ऐसा लिखि तहां पांच हार कौ अन्य के तीन च्यारि-अंशनि करि अर दोय हार कौ अन्य के छह-च्यारि अंशनि करि अर तीन हार कौं अन्य के छह-तीन अंशनि करि गुणे साठि अडतालीस चौवन हार भए। अर अंशनि कौ परस्पर गुणे सर्वत्र बहत्तर अंश $\begin{vmatrix} ६० & ४८ & ५४ \\ ७२ & ७२ & ७२ \end{vmatrix}$ ऐसे भए। इहां हारनि कौ जोडे एक सो वासठ हार अर वहत्तर अश भए तहां हार कौ अंश का भाग दीए दोय पाये अर अवशेष अठारह का वहत्तरिवां भाग रह्या। ताका अठारह करि अपवर्त्तन कीए एक का चौथा भाग भया। ऐसे तिनका जोड सवा दोय आया। कोई संभवता प्रमाण का भाग देइ भाज्य वा भाजक राशि का महत् प्रमाण कौं थोरा कीजिए (वा निःशेष कीजिए) तहा अपवर्त्तन संज्ञा जाननी सो इहा अठारह का भाग दीए भाज्य अठारह था, तहां एक भया अर भागहार वहत्तर था, तहां च्यारि भया, तातै अठारह करि अपवर्त्तन भया कह्या। ऐसे ही अन्यत्र अपवर्त्तन का स्वरूप जानना।

वहुरि व्यवकलन विषैं जैसें तीन विषै पांच चौथा अंश घटावना। तहां 'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः' इस वचन तै जाकै अंश न होइ, तहा एक अंश कल्पना, सो इहां तीनका अंश नाही, तातै एक अंश कल्पि $\begin{vmatrix} ३ & ५ \\ १ & ४ \end{vmatrix}$ ऐसे लिखना इहां तीन हारनि कौ अन्य के च्यारि अंश करि, अर पांच हारनि कौ अन्य के एक अंश करि गुणे अर अंशनि कौं परस्पर गुणे $\begin{vmatrix} १२ & ५ \\ ४ & ४ \end{vmatrix}$ ऐसा भया। इहां वारह हारनि विषै पांच घटाएं सात हार भए। अर अंश च्यारि भए। तहां हार कौ अंश का भाग दीए एक अर तीन का चौथा भाग पौण इतना फल आया।

वहुरी भिन्न गुणाकार विषै गुण्य अर गुणाकार के हार कौ हार करि अंश कौ अंश करि गुणन करना। जैसे दश की चोथाइ कौ च्यारि की तिहाइ करि गुणना होइ, तहां ऐसा $\begin{vmatrix} १० & ४ \\ ४ & ३ \end{vmatrix}$ लिखि गुण्य-गुणकार के हार अर अंशनि कौ गुणे चालीस हार अर वारह अंश $\begin{vmatrix} ४० \\ १२ \end{vmatrix}$ भए तहां हार कौ अंश का भाग दीए तीन पाया। अव शेप च्यारि का वारहवां भाग ताकौ च्यारि करि अपवर्त्तन कीए एक का तीसरा भाग भया। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न भागहार विषै भाजक के हारनि कौ अंश कीजिए अर अंशनि कौ हार कीजिए। अैसै पलटि भाज्य-भाजक का गुण्य-गुणकारवत् विधान करना। जैसै संतीस के आधा कौं तेरह की चौथाई का भाग देना होइ तहां अैसै $\left|\frac{३७}{२}\right|\frac{१३}{४}\right|$ लिखिए बहुरि भाजक के हार अर अंश पलटै अैसै $\left|\frac{३७}{२}\right|\frac{४}{१३}\right|$ लिखिना। बहुरि गुणनविधि कीए एक सौ अडतालीस हार अर छव्वीस अंश $\frac{१४८}{२६}$ भए। तहां अंश का हार कौ भाग दीए पांच पाए। अर अवशेष अठारह छव्वीसवां भाग, ताका दोय करि अपवर्त्तन कीए नव तेरहवां भागमात्र भया। अैसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न वर्ग अर घन का विधान गुणकारवत् ही जानना। जातै समान राशि दोय कौ परस्पर गुणे वर्ग हो है। तीन कौ परस्पर गुणे घन हो है। जैसै तेरह का चौथा भाग कौ दोय जायगा मांडि $\left|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणे ताका वर्ग एक सौ गुणहत्तर का सोलहवां भागमात्र $\frac{१६९}{१६}$ हो है। अर तीन जायगा मांडि $\left|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणें इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग मात्र $\frac{२१९७}{६४}$ घन हो है। बहुरि भिन्न वर्गमूल, घनमूल विषै हारनि का अर अंशनि का पूर्वोक्त विधान करि जुदा-जुदा मूल ग्रहण करिए। जैसें वर्गित राशि एक सौ गुणहत्तरि का सोलहवा भाग $\frac{१६९}{१६}$। तहां पूर्वोक्त विधान तै एक सौ गुणहत्तरि का वर्गमूल तेरह, अर सोलह का च्यारि अैसै तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ वर्गमूल आया। बहुरि घनराशि इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग $\frac{२१९७}{६४}$। तहां पूर्वोक्त विधान करि इकईस सै सत्याणवे का घनमूल तेरह, चौसठि का च्यारि ऐसै तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ घनमूल आया। अैसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि अब शून्यपरिकर्माष्ट लिखिए है। शून्य नाम बिंदी का है, ताके संकलना-दिक कहिए है। तहां बिंदी विषै अंक जोडे अंक ही होय। जैसे पचास विषै पांच जोडिए। तहा एकस्थानीय बिंदी विषै पांच जोडै पाच भए। दशस्थानीय पांच है ही, अैसें पचावन भए। बहुरि अंक विषै बिंदी घटाए अंक ही रहै। जैसे पचावन मे दश

घटाए एक स्थानीय पांच में बिंदी घटाए पांच ही रहे, दशस्थानीय पाच मे एक घटाए च्यारि रहे ऐसे पैतालीस भए। बहुरि गुणकार विषै अंक को बिंदीकरि गुणे बिंदी होय। जैसे बीस कौ पाच करि गुणिए, तहां गुण्य के दूवा कौ पांच करि गुणे दश भए। बहुरि बिंदी कौ पांच करि गुणे, बिंदी ही भई ऐसे सौ भए।

बहुरि अंक कौं बिंदी का भाग दीए खहर कहिए। जातै जैसे-जैसे भागहार घटता होइ, तैसे-तैसे लब्धराशि बधती होइ। जैसे दश कौं एक का छट्ठा भाग का भाग दिए साठि होइ, एक का बीसवां भाग का भाग दीए दोय सै होय, सो बिंदी शून्यरूप, ताका भाग दीए फल का प्रमाण अवक्तव्य है। याका हार बिंदी है, इतना ही कह्या जाए। बहुरी बिंदी का वर्गघन, वर्गमूल, घनमूल विषै गुणकारादिवत् बिंदी ही हो है। ऐसे लौकिक गणित अपेक्षा परिकर्माष्टक का विधान कह्या।

बहुरि अलौकिक गणित अपेक्षा विधान है, सो सातिशय ज्ञानगम्य है। जातैं तहां अंकादिक का अनुक्रम व्यक्तरूप[1] नाही है। तहा कही तौ संकलनादि होतै जो प्रमाण भया ताका नाम कहिए है। जैसे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात विषै एक जोडै जघन्य परीतानंत होइ, (जघन्य परीतानत मे एक घटाएं उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होइ)[2] अर जघन्य परीतासंख्यात विषै एक घटाएं उत्कृष्ट संख्यात होइ। पल्य कौ दशकोडाकोडि करि गुणे सागर होइ जगत् श्रेणी कूं सात का भाग दीए राजू होइ। जघन्य युक्तासंख्यात का वर्ग कीए जघन्य असंख्यातासंख्यात होइ। सूच्यंगुल का घन कीये घनांगुल होइ। प्रतरांगुल का वर्गमूल ग्रहे सूच्यंगुल होइ। लोक का घनमूल ग्रहे जगत् श्रेणी होइ, इत्यादि जानना।

बहुरि कही संकलनादि होतै जो प्रमाण भया, ताका नाम न कहिए है, संकलनादिरूप ही कथन कहिए है। जातै सर्व संख्यात, असंख्यात, अनंतनि के भेदनि का नाम वक्तव्यरूप नाही है। जैसे जीवराशि करि अधिक पुद्गलराशि कहिए वा सिद्धराशि करि हीन जीवराशि कहिए, वा असंख्यात गुणा लोक कहिए वा संख्यात प्रतरांगुल करि भाजित जगत्प्रतर कहिए, वा पल्य का वर्ग कहिए, वा पल्य का घन कहिए, वा केवलज्ञान का वर्गमूल कहिए, वा आकाश प्रदेशराशि का घनमूल कहिए, इत्यादि

---

१. ध प्रति 'घनव्यक्तरूप' ऐसा पाठ है।
२. यह वाक्य सिर्फ छपी प्रति में है, हस्तलिखित छह प्रतियों में नहीं है।

जानना । बहुरि अलौकिक मान की सहनानी स्थापि, तिनके लिखने का वा तहां संकलनादि होतैं लिखने का जो विधान है, सो आगै सदृष्टि अधिकार विषै वर्णन करेंगे, तहां तै जानना । बहुरि तहा ही लौकिक मान का भी लिखने का वा तहां संकलनादि होतैं लिखने का जो विधान है, सो वर्णन करेगे । इहां लिखै ग्रन्थ विषै प्रवेश करते ही शिष्यनि कौ कठिनता भासती, तहां अरुचि होती, तातै इहां न लिखिए है । उदाहरण मात्र इतना ही इहा भी जानना, जो संकलन विषैं तौ अधिक राशि कौ ऊपरि लिखना जैसैं पच अधिक सहस्र "५" १००० अैसैं लिखने । व्यवकलन विषै हीन राशि कौ ऊपरि लिखि तहा पूछडीकासा आकार करि बिंदी दीजिए जैसैं पच हीन सहस्र ५~ १००० अैसै लिखिए । गुणकार विषै गुण्य के आगै गुणक कौ लिखिए । जैसै पंचगुणा सहस्र १०००×५ अैसैं लिखिए । भागहार विषै भाज्य के नीचै भाजक कौ लिखिए । जैसै पांच करि भाजित सहस्र $\frac{१०००}{५}$ अैसै लिखिए । वर्ग विषै राशि कौ दोय बार बराबर मांडिए । जैसै पांच का वर्ग कौ ५×५ अैसैं लिखिए । घन विषै राशि कौ तीन बार बराबरि मांडिए । जैसै पांच का घन कौ ५×५×५ अैसै लिखिए । वर्गमूल-घनमूल विषै वर्गरूप-घनरूप राशि के आगै मूल की सहनानी करनी । जैसे पचीस का वर्गमूल कौ "२५ व० मू०" अैसै लिखिए । एक सौ पचीस का घनमूल कौ "१२५ घ० मू०" अैसैं लिखिए । अैसै अनेक प्रकार लिखने का विधान है । अैसे परिकर्माष्टक का व्याख्यान कीया सो जानना ।

बहुरि त्रैराशिक का जहां-तहां प्रयोजन जानि स्वरूप मात्र कहिए है । तहां तीन राशि हो है – प्रमाण फल, इच्छा । तहा जिस विवक्षित प्रमाण करि जो फल प्राप्त होइ, सो प्रमाणराशि अर फलराशि जाननी । बहुरि अपना इच्छित प्रमाण होइ, सो इच्छा राशि जाननी । तहा फल कौ इच्छा करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए अपना इच्छित प्रमाण करि प्राप्त जो फल, ताका प्रमाण आवै है, इसका नाम लब्ध है । इहा प्रमाण अर इच्छा[1] की एकजाति जाननी । बहुरि फल अर लब्ध की एक जाति जाननी । इहां उदाहरण जैसे पाच रुपैया का सात मण अन्न आवै तौ सात रुपैया का केता अन्न आवै अैसैं त्रैराशिक कीया । इहा प्रमाण राशि पाच, फल राशि सात, इच्छा राशि सात, तहा फलकरि इच्छा कौ गुणि प्रमाण का भाग दीए गुणचास

---

१ छपी प्रति 'इच्छा' शब्द और अन्य हस्तलिखित प्रतियो मे 'फल' शब्द है ।

का पांचवां भाग मात्र लब्ध प्रमाण आया। ताका नव मरण अर च्यारि मण का पाचवां भाग मात्र लब्धराशि भया।

ऐसे ही छह से आठ (६०८) सिद्ध छह महीना आठ समय विषै होइ, तौ सर्व सिद्ध केते काल में होइ, ऐसे त्रैराशिक करिए, तहां प्रमाण राशि छह से आठ, अर फलराशि छह मास आठ समयनि की संख्यात आवली, इच्छा राशि सिद्धराशि। तहां फल करि इच्छा कौ गुरिण, प्रमाण का भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवली करि गुणित सिद्ध राशि मात्र अतीत काल का प्रमाण आवै है। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि केतेइक गणितनि का कथन आगे इस शास्त्र विषै जहां प्रयोजन आवैगा तहा कहिएगा। जैसे श्रेणी व्यवहार का कथन गुणस्थानाधिकार विषै करणनि का कथन करते कहिएगा। बहुरि एक बार, दोय बार आदि संकलन का कथन ज्ञानाधिकार विषै पर्यायसमासज्ञान का कथन करते कहिएगा। बहुरि गोल आदि क्षेत्र व्यवहार का कथन जीवसमासादिक अधिकारनि विषै कहिएगा। ऐसे ही और भी गरिणतनि का जहां प्रयोजन होइगा तहां ही कथन करिएगा सो जानना। बहुरि अज्ञात राशि ल्यावने का विधान वा सुवर्णगणित आदि गरिणतनि का इहां प्रयोजन नाही, ताते तिनका इहां कथन न करिए है। ऐसे गणित का कथन किया। ताकौ यादि राखि जहां प्रयोजन होइ, तहा यथार्थरूप जानना। बहुरि ऐसे ही इस शास्त्र विषै करणसूत्रनि का, वा केई संज्ञानि का वा केई अर्थनि का स्वरूप एक वार जहां कह्या होइ, तहाते यादि राखि, तिनका जहां प्रयोजन आवै, तहा तैसा ही स्वरूप जानना।

या प्रकार श्रीगोम्मटसार शास्त्र की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै पीठिका समाप्त भई।

—※—

गोम्मटसार जीवकाण्ड

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

भाषाटीका सहित

अब इस शास्त्र के मूल सूत्रनि की संस्कृत टीका के अनुसारि भाषा टीका करिए है। तहां प्रथम ही संस्कृत टीकाकार करि कथित ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा, वा मूल शास्त्र होने के समाचार वा मंगल करने की पुष्टता इत्यादि कथन कहिए है।

बंदौं नेमिचंद्र जिनराय, सिद्ध ज्ञानभूषण सुखदाय।
करि हौं गोम्मटसार सुटीक, करि कर्णाट टीक तै ठीक ।।१।।

असै संस्कृत टीकाकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करी है। बहुरि कहै है – श्रीमान् अर कौंहू करि हण्या न जाय है प्रभाव जाका, ऐसा जो स्याद्वाद मत, सोही भई गुफा ताके अभ्यंतर वास करता जो कुवादीरूप हस्तीनि कौ सिंहसमान सिंहनन्दि नामा मुनींद्र, तिहकरि भई है ज्ञानादिक की वृद्धि जाकै, ऐसा जो गंगनामा वंश विषै तिलक समान अर राजकार्य का सर्व जानने कौ आदि दे करि अनेक गुणसयुक्त श्रीमान् राजमल्ल नामा महाराजा देव, पृथिवी कौ प्यारा, ताका महान् जो मंत्रीपद, तिहविषै शोभायमान अर रण की रंगभूमि विषै शूरवीर अर पर का सहाय न चाहै, ऐसा पराक्रम का धारी, अर गुणरूपी रत्ननि का आभूषण जाके पाइए अर सम्यक्त्व रत्न का स्थानकपना कौ आदि देकरि नानाप्रकार के गुणन करि अंगीकार करी जो कीर्ति, ताका भर्त्तार असा जो श्रीमान् चामुंडराय राजा, ताका प्रश्न करि जाका अवतार भया, ऐसा इकतालीस पदनि विषै नामकर्म के सत्व का निरूपण, तिह द्वार करि समस्त शिष्य जननि के समूह कौ संबोधन के अर्थि श्रीमान् नेमीचन्द्र नामा सिद्धांतचक्रवर्ती, समस्त सिद्धांत पाठी, जननि विषै विख्यात है निर्मल यश जाका, अर विस्तीर्ण बुद्धि का धारक, यहु भगवान् शास्त्र का कर्त्ता।

सो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नामा मुख्य प्रथम सिद्धांत, तिहका १. जीवस्थान, २. क्षुद्रबंध, ३. बंधस्वामी, ४. वेदनाखण्ड, ५. वर्गणाखंड, ६. महाबंध – ए छह खंड है।

तिनविषे जीवादिक जो प्रमाण करनेयोग्य समस्त वस्तु, ताकौ उद्धार करि गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह नामा ग्रंथ के विस्तार कौ रचता संता तिस ग्रंथ कौ आदि ही विषै निर्विघ्न शास्त्र की सपूर्णता होने के अर्थि, वा नास्तिक वादी का परिहार के अर्थि, वा शिष्टाचार का पालने के अर्थि, वा उपकार कौ स्मरण के अर्थि विशिष्ट जो अपना इष्ट देव का विशेष, ताहि नमस्कार करै है।

भावार्थ – इहां अैसा जानना – सिहनन्दि नामा मुनि का शिष्य, जो गंगवंशी राजमल्ल नामा महाराजा, ताका मंत्री जो चामुंडराय राजा, तिहने नेमीचद्र सिद्धांत चक्रवर्ती प्रति अैसा प्रश्न कीया –

जो सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायादिक इकतालीस जीवपदनि विषै नामकर्म के सत्त्वनि का निरूपण कैसे है ? सो कहौ।

तहा इस प्रश्न के निमित्त कौ पाय अनेक जीवनि के संबोधने के अर्थि जीवस्थानादिक छह अधिकार जामै पाइए, अैसा महाकर्म प्रकृति प्राभृत है नाम जाका, अैसा अग्रायणीय पूर्व का पाचवा वस्तु, अथवा यति भूतबलि आचार्यकृत [१] धवल शास्त्र, ताका अनुसार लेइ गोम्मटसार अर याहीका द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ, ताके करने का प्रारभ किया। तहां प्रथम अपने इष्टदेव कौ नमस्कार करै हैं। ताके निर्विघ्नपने शास्त्र की समाप्तता होने कू आदि दैकरि च्यारि प्रयोजन कहे। अब इनकौ दृढ करै हैं।

इहा तर्क – जो इष्टदेव, ताकौ नमस्कार करने करि निर्विघ्नपनै शास्त्र की समाप्तता कहा हो है ?

तहा कहिए है – जो ऐसी आशंका न करनी, जातै शास्त्र का अैसा वचन है–

"विघ्नौघा: प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगा:।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥"

याका अर्थ – जो जिनेश्वरदेव कौ स्तवतां थकां विघ्न के जु समूह, ते नाश कौ प्राप्त हो हैं। वहुरि शाकिनी, भूत, सर्पादिक, ते नाश कौ प्राप्त हो है। वहुरि विष है, सो विषरहितपना कौ प्राप्त हो है। सो अैसा वचन थकी शंका न करना। वहुरि जैसे प्रायश्चित्त का आचरण करि व्रतादिक का दोष नष्ट हो है, वहुरि जैसे

---

१. यति वृषभाचार्य ने गुणधराचार्य विरचित कषायपाहुट के सूत्रो पर चूर्णिसूत्र लिखे है। भूतवली आचार्य ने षट्खण्डागम सूत्रों की रचना की है और आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम सूत्रो की 'धवला' टीका लिखी है

औषधि सेवन करि रोग नष्ट हो है; तैसें मंगल करने करि विघ्नकर्ता अन्तरायकर्म के नाश का अविरोध है, तातैं शंका न करनी। ऐसैं प्रथम प्रयोजन दृढ़ कीया।

बहुरि तर्क – जो ऐसा न्याय है—

"सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते नहि स कश्चिदुपाय सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥"

याका अर्थ – जो सर्वप्रकार करि अपना हित का आचरण करना। अपना हित करते बहुत बकै है जो मनुष्यलोक, सो कहा करैगा? अर कोऊ कहै जो सर्व प्रसन्न होइ, सो कार्य करना; तो लोक विषैं सो कोई उपाय ही नाही, जो सर्व लोक कौ संतोष करै। ऐसैं न्याय करि जाका प्रारभ करो हौ, ताका प्रारभ करौ।

नास्तिकवादी का परिहार करि कहा साध्य है?

तहा कहिए है – ऐसा भी न कहना। जातैं प्रशम, सवेग अनुकपा, आस्तिक्य गुण का प्रगट होनेरूप लक्षण का धारी सम्यग्दर्शन है। यातैं नास्तिकवादी का परिहार करि आप्त जो सर्वज्ञ, तिहने आदि देकरि पदार्थनि विषैं जो आस्तिक्य भाव हो है, ताकैं सम्यग्दर्शन का प्राप्ति करने का कारणपना पाइए है। बहुरि ऐसा प्रसिद्ध वचन है–

"यद्यपि विमलो योगी, छिद्रान् पश्यति मेदनि।
तथापि लौकिकाचारं, मनसापि न लंघयेत् ॥"

याका अर्थ – यद्यपि योगीश्वर निर्मल है, तथापि पृथ्वी वाके भी छिद्रनि कौ देखै है। तातैं लौकिक आचार कूं मन करि भी उल्लंघन न करै; ऐसें प्रसिद्ध है। तातैं नास्तिक का परिहार कीया चाहिये। ऐसैं दूसरा प्रयोजन दृढ कीया।

बहुरि तर्क – जो शिष्टचार का पालन किसैं अर्थ करिए?

तहां कहिए है – ऐसा विचार योग्य नाही, जातैं ऐसा वचन मुख्य है **"प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरंति शिष्याः।"** **याका अर्थ** – जे शिष्य है ते, अतिशय करि गुरुजन का जु स्वभाव, ताकौ अनुसार करि आचरण करै है। बहुरि ऐसा न्याय है – **"मगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वन्तु"** **याका अर्थ**–जो मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता इन छहों कौं पहिले करि

आचार्य है सो पीछे शास्त्र कौ करौ । असा न्याय आचार्यनि की परंपरा तै चल्या आया है । ताका उल्लघन कीए उन्मार्ग विषै प्रवर्तने का प्रसंग होय । तातै शिष्टाचार का पालना किसे अर्थ करिए है ? असा विचार योग्य नाही ।

अव इहा मंगलादिक छहों कहा ? सो कहिए है – तहां प्रथम ही पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ, सौख्य – इत्यादि मंगल के पर्याय है । मंगल ही के पुण्यादिक भी नाम है । तहां मल दोय प्रकार है – द्रव्यमल, भावमल तहां द्रव्यमल दोयप्रकार – वहिरंग, अन्तरंग । तहां पसेव, मल, धूलि, कादों इत्यादि वहिरग द्रव्यमल है । वहुरि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशनि करि आत्मा के प्रदेशनि विषै निविड वंध्या जो ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्म, सो अन्तरंग द्रव्यमल है ।

वहुरि भावमल अज्ञान, अदर्शनादि परिणामरूप है । अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव भेदरूप मल है । अथवा उपचार मल जीव के पाप कर्म है । तिस सव ही मल कौं गालयति कहिए विनाशै, वा घातै, वा दहै, वा हनै, वा शोधै, वा विध्वंसै, सो मंगल कहिए । अथवा मंगं कहिए सौख्य वा पुण्य, ताकौ लाति कहिए आदान करै, ग्रहण करै, सो मंगल है ।

वहुरि सो मंगल नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेद तै आनंद का उपजावनहारा छह प्रकार है । तहा अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इनका जो नाम, सो तौ नाम मंगल है । वहुरि कृत्रिम, अकृत्रिम जिनादिक के प्रतिविव,सो स्थापना मंगल है । वहुरि जिन, आचार्य, उपाध्याय, साधु इनका जो शरीर, सो द्रव्य मंगल है ।

वहुरि कैलाश, गिरिनार, सम्मेदाचलादिक पर्वतादिक, अर्हन्त आदिक के तप-केवलज्ञानादि गुणनि के उपजने का स्थान, वा साढा तीन हाथ ते लगाय पाच सै पचीस धनुष पर्यन्त केवली का शरीर करि रोक्या हूवा आकाश अथवा केवली का समुद्घात करि रोक्या हूवा आकाश, सो क्षेत्र मंगल है ।

वहुरि जिस काल विषै तप आदिक कल्याण भए होहि, वा जिस काल विषै [illegible] आदि जिनादिक के महान उत्सव वर्तै, सो काल मंगल है ।

वहुरि मंगल पर्याय करि संयुक्त जीवद्रव्यमात्र भाव मंगल है ।

सो यहु कह्या हूवा मंगल जिनादिक का स्तवनादिरूप है, सो शास्त्र की आदि विषै कीया हूवा शिष्यनि कौं थोरे कालादिक करि शास्त्रनि का पारगामी करै है ।

मध्य विषै कीया हूवा मंगल विद्या का व्युच्छेद न होइ, ताकौ करै है। अन्त विषै कीया हूवा विद्या का निर्विघ्नपनै कौ करै है।

कोई तर्क करै कि – इष्ट अर्थ की प्राप्ति परमेष्ठीनि के नमस्कार तैं कैसैं होइ ?

तहां काव्य कहिए है –

"नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतराय ।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः ॥"

याका अर्थ – अर्हन्तादिक कौ नमस्काररूप शुभ भावनि करी नष्ट भया है अनुभाग का आधिक्य जाका, असा जु अन्तराय नामा कर्म, सो इष्ट के घातने कौ प्रभु कहिए समर्थ न होइ, तातै तिस अभिलाष युक्त जीव करि गुणानुराग तै अर्हत आदिक कौ कह्या हूवा नमस्कारादिक, सो इष्ट अर्थ का करनहारा है - असा परमागम विषै प्रसिद्ध है, तातै सो मंगल अवश्य करना ही योग्य है।

बहुरि निमित्त इस शास्त्र का यहु है – जे भव्य जीव है, ते बहुत नय प्रमाणनि करि नानाप्रकार भेद कौ लीये पदार्थ कौ जानहु, इस कार्य कौ कारणभूत करिए है।

बहुरि हेतु इस शास्त्र के अध्ययन विषै दोय प्रकार है – प्रत्यक्ष, परोक्ष। तहां प्रत्यक्ष दोय प्रकार – साक्षात्प्रत्यक्ष, परपराप्रत्यक्ष। तहा अज्ञान का विनाश होना, बहुरि सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होनी, बहुरि देव-मनुष्यादिकनि करि निरतर पूजा करना, बहुरि समय-समय प्रति असख्यात गुणश्रेणीरूप कर्म निर्जरा होना, ये तौ साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु है। शास्त्राध्ययन करतै ही ए फल निपजै है। बहुरि शिष्य वा शिष्यनि के प्रति शिष्य, तिनकरि निरंतर पूजा का करना, सो परंपरा प्रत्यक्ष हेतु है। शास्त्राध्ययन कीए तै असी फल की परंपरा हो है।

बहुरि परोक्ष हेतु दोय प्रकार – अभ्युदयरूप, निःश्रेयसरूप। तहा सातावेदनीयादिक प्रशस्त प्रकृतिनि का तीव्र अनुभाग का उदय करि निपज्या तीर्थंकर, इंद्र, राजादिक का सुख, सो तौ अभ्युदयरूप है। बहुरि अतिशय संयुक्त, आत्मजनित, अनौपम्य, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर का सुख वा पंचेद्रियनि तै अतीत सिद्ध सुख, सो निःश्रेयसरूप है। ग्रंथ अध्ययन तै पीछै परोक्ष असा फल पाइए हैं। तातै यहु ग्रंथ ऐसे फलनि का हेतु जानना।

वहुरि प्रमाण इस शास्त्र का नानाप्रकार अर्थनि करि अनंत है। वहुरि अक्षर गणना करि संख्यात है; जातैं जीवकांड का सात सै पचीस गाथा सूत्र है।

वहुरि नाम-जीवादि वस्तु का प्रकाशने कौं दीपिका समान है। तातैं संस्कृत टीका की अपेक्षा जीवतत्त्वप्रदीपिका है।

वहुरि कर्ता इस शास्त्र का तीन प्रकार – अर्थकर्ता, ग्रंथकर्ता, उत्तर ग्रंथकर्ता।

तहां समस्तपनैं दग्ध कीया घाति कर्म चतुष्टय, तिहकरि उपज्या जो अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टयपना, ताकरि जान्या है त्रिकाल संवन्धी समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ स्वरूप जिहैं, वहुरि नष्ट भए हैं क्षुधादिक अठारह दोष जाके, वहुरि चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य करि संयुक्त, वहुरि समस्त सुरेंद्र-नरेंद्रादिकनि करि पूजित हैं चरण कमल जाका, वहुरि तीन लोक का एक नाथ, वहुरि अठारह महाभाषा अर सात सै क्षुद्र भाषा, वा संज्ञी संवधी अक्षर-अनक्षर भाषा तिहस्वरूप, अर तालवा, दांत, होठ, कंठ का हलावना आदि व्यापाररहित, अर भव्य जीवनि कौं आनन्द का कर्ता, अर युगपत् सर्व जीवनि कौं उत्तर का प्रतिपादन करनहारा ऐसी जु दिव्यध्वनि, तिहकरि संयुक्त, वहुरि वारह सभा करि सेवनीक, ऐसा जो भगवान श्री वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव, सो अर्थकर्ता जानना।

वहुरि तिस अर्थ का ज्ञान वा कवित्वादि विज्ञान अर सात ऋद्धि, तिनकरि संपूर्ण विराजमान ऐसा गौतम गणधर देव, सो ग्रंथकर्ता जानना। वहुरि तिसही के अनुक्रम का धारक, वहुरि नाहीं नष्ट भया है सूत्र का अर्थ जाकैं, वहुरि रागादि दोषनि करि रहित ऐसा जो मुनिश्वरनि का समूह, सो उत्तर ग्रंथकर्ता जानना।

या प्रकार मंगलादि छहोंनि का व्याख्यान इहां कीया। ऐसैं तीसरा प्रयोजन दृष्ट कीया है।

वहुरि तर्क – जो शास्त्र की आदि विषै उपकार स्मरण किसे अर्थ करिए है?

तहां कहिए है – जो ऐसा न कहना, जातैं ऐसा कथन है

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥"

याका अर्थ — श्रेय जो कल्याण, ताके मार्ग की सम्यक् प्रकार सिद्धि, सो परमेष्ठि के प्रसाद तै हो है । इस हेतु तै मुनि प्रधान है, ते शास्त्र की आदि विषै तिस परमेष्ठी का स्तोत्र करना कहै है । बहुरि ऐसा वचन है—

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं पण्डिताः (साधवो) विस्मरंति ।।

याका अर्थ – वांछित, अभीष्ट फल की सिद्धि होने का उपाय सम्यग्ज्ञान है । बहुरि सो सम्यग्ज्ञान शास्त्र तै हो है । बहुरि तिस शास्त्र की उत्पत्ति आप्त जो सर्वज्ञ तै है । इस हेतु तै सो आप्त सर्वज्ञदेव है, सो तिसका प्रसाद तै ज्ञानवंत भए जे जीव, तिनकरि पूज्य हो है, सो न्याय ही है व पंडित है, ते कीए उपकार कौ नाही भूलै है, तातै शास्त्र को आदि विषै उपकार स्मरण किसे अर्थ करिए ऐसा न कहना । ऐसै चौथा प्रयोजन दृढ किया ।

याहीतै विघ्न विनाशने कौ, बहुरि शिष्टाचार पालने कौ, बहुरि नास्तिक के परिहार कौ, बहुरि अभ्युदय का कारण जो परम पुण्य, ताहि उपजावने कौ, बहुरि कीया उपकार के यादि करने कौ शास्त्र की आदि विषै जिनेंद्रादिक कौ नमस्कारादि रूप जो मुख्य मगल, ताकौ आचरण करत संता, बहुरि जो अर्थ कहेगा, तिस अभिधेय की प्रतिज्ञा कौ प्रकाशता सता आचार्य है, सौ सिद्धं इत्यादि गाथा सूत्र कौ कहै है-

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं ।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं ।।१।।

सिद्धं शुद्धं प्रणम्य, जिनेंद्रवरनेमिचन्द्रमकलंकम् ।
गुणरत्नभूषणोदयं, जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्ये ।।१।।

टीका – **अहं वक्ष्यामि** । **अहं** कहिए मै जु हों ग्रंथकर्ता । सो **वक्ष्यामि** कहिये कहौगा करौगा । **किं** ? किसहि करौगा ? **प्ररूपणं** कहिये व्याख्यान अथवा अर्थ कौ प्ररूपै वा अर्थ याकरि प्ररूपिये ऐसा जु ग्रंथ, ताहि करौगा । **कस्य प्ररूपणं** ? किसका प्ररूपण कहौगा ? **जीवस्य** कहिये च्यारि प्राणनि करि जीवै है, जीवेगा, जीया ऐसा जीव जो आत्मा, तिस जीव के भेद का प्रतिपादन करण हारा शास्त्र

मैं कहौंगा; असी प्रतिज्ञा करि। इस प्रतिज्ञा करि इस शास्त्र कै संबन्धाभिधेय, शक्यानुष्ठान, इष्टप्रयोजनपना है; तातैं बुद्धिवंतनि करि आदर करना योग्य कह्या है।

तहां जैसा संबन्ध होइ, तैसा ही जहां अर्थ होइ; सो संबंधाभिधेय कहिये। बहुरि जाके अर्थ के आचरण करने की सामर्थ्य होइ, सो शक्यानुष्ठान कहिये। बहुरि जो हितकारी प्रयोजन लिए होइ, सो इष्टप्रयोजक कहिये।

कथंभूतं प्ररूपणं ? जाकौ कहौंगा, सो कैसा है प्ररूपण ? **गुणरत्नभूषणोदयं**– गुण जे सम्यग्दर्शनादिक, तेई भये रत्न, सोई है आभूषण जाकै, असा जो गुणरत्नभूषण चामुंडराय, तिसतैं है उदय कहिये उत्पत्ति जाकी असा शास्त्र है। जातैं चामुंडराय के प्रश्न के वश तैं याकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है। अथवा गुणरूप जो रत्न सो भूषयति कहिये शोभै जिहि विषै ऐसा गुणरत्नभूषण मोक्ष, ताकी है उदय कहिये उत्पत्ति जातैं ऐसा शास्त्र है।

भावार्थ – यहु शास्त्र मोक्ष का कारण है। बहुरि विकथादिरूप बंध का कारण नाहीं है। इस विशेषण करि १. बंधक २ बध्यमान ३. बंधस्वामी ४. बंधहेतु ५. बंधभेद - ये पंच सिद्धांत के अर्थ हैं।

तहां कर्मबंध का कर्ता संसारी जीव, सो बंधक। बहुरि मूल-उत्तर प्रकृतिबंध सो बध्यमान। बहुरि यथासंभव बंध का सद्भाव लीये गुणस्थानादिक, सो बंधस्वामी। बहुरि मिथ्यात्वादि आस्रव, सो बंधहेतु। बहुरि प्रकृति, स्थिति आदि बंधभेद – इनका निरूपण है, तातैं गोम्मटसार का द्वितीयनाम पंचसंग्रह है। तिहिविषै बंधक जो जीव, ताका प्रतिपादन करणहारा यहु शास्त्र जीवस्थान वा जीवकांड इनि दोय नामनिकरि विख्यात, ताहि मैं कहौंगा। असा शास्त्र के कर्ता का अभिप्राय यहु विशेषण दिखावै है।

बहुरि कथंभूतं प्ररूपणं ? कैसा है प्ररूपण ? **सिद्धं** कहिये पूर्वाचार्यनि की परंपरा करि प्रसिद्ध है, अपनी रुचि करि नाहीं रचनारूप किया है। इस विशेषण करि आचार्य अपना कर्तापना कौं छोडि पूर्व आचार्यादिकनि का अनुसार कौ कहै है। पुनः किं विशिष्टं प्ररूपणं ? बहुरि कैसा है प्ररूपण ? **शुद्धं** कहिये पूर्वापर विरोध कौं आदि देकरि दोषनि करि रहित है, तातैं निर्मल है। इस विशेषण करि सम्यग्ज्ञानी जीवनि कैं उपादेयपना इस शास्त्र का प्रकाशित कीया है।

किं कृत्य ? कहाकरि ? **प्रणम्य** कहिये प्रकर्षपने नमस्कार करि प्ररूपणा करौ हौं। **कं** किसहि ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** - कर्मरूप वैरीनि कौ जीतै, सो जिन। अपूर्वकरण परिणाम कौ प्राप्त प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं सन्मुख सातिशय मिथ्यादृष्टि, ते जिन कहिये। तेई भए इंद्र, कर्मनिर्जरारूप ऐश्वर्य, ताका भोक्ता कौ आदि देकरि सर्वजिनेंद्रनि विषै वर कहिये श्रेष्ठ, असंख्यातगुणी महानिर्जरा का स्वामी असा चामुंडराय करि निर्मापित महापूत चैत्यालय विषै विराजमान नेमि नामा तीर्थंकर देव, सोउ भव्य जीवनि कौ **चंद्रयति** कहिये आह्लाद करै वा समस्त वस्तुनि कौ प्रकाशै अथवा संसार आताप अर अज्ञान अंधकार का नाशक चंद्र असा जिनेंद्रवरनेमिचद्र। बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए कलंकरहित, ताकौ नमस्कार करि जीव का प्ररूपण मैं कहौगा।

अथवा अन्य अर्थ कहै - **कं प्रणम्य** ? किसहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौ ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** - नेमिचद्र नामा बाईसमा जिनेंद्र तीर्थंकर देव, ताहि नमस्कार करि जीव की प्ररूपणा करौ हौ। कैसा है सो ? **सिद्धं** कहिये समस्त लोक विषै विख्यात है। बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिये द्रव्य-भावस्वरूप घातिया कर्मनि करि रहित है। तथापि ताके कोई संशयी क्षुधादिदोष का सभव कहै है, तिस प्रति कहै है - कैसा है सो ? **अकलंकं** कहिये नाही विद्यमान है कलंक कहिये क्षुधादिक अठारह दोष जाके, ऐसा है। बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** - गुण जे अनंत ज्ञानादिक, तेई भए रत्न के आभूषण, तिनका है उदय कहिये उत्कृष्टपना जा विषै ऐसा है। इस प्रकार अन्य विषै न पाईए ऐसे असाधारण विशेषण, समस्त अतिशयनि के प्रकाशक, अन्य के आप्तपनै की वार्ता कौ भी जे सहै नाहो, तिन इनि विशेषणनि करि इस ही भगवान के परम आप्तपना, परम कृतकृत्यपना हम आदि दै जे अकृतकृत्य है, तिनकै शरणपना प्रतिपादन किया है, ऐसा जानना।

अथवा अन्य अर्थ कहै है - **कं प्रणम्य** ? किसहि नमस्कार करि जीव का प्रतिपादन करौ हौ ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** - सकल आत्मा के प्रदेशनि विषै सघन बंधे जे घाति कर्मरूप मेघपटल, तिनके विघटन तै प्रकटीभूत भए अनंतज्ञानादिक नव केवल लब्धिपना; तातै जिन कहिये। बहुरि अनौपम्य परम ईश्वरता करि संपूर्णपनां होनेकरि इंद्र कहिये। जिन सोई जो इंद्र सो जिनेंद्र, अपने ज्ञान के प्रभाव करि व्याप्त भया है तीन काल संबंधी तीन लोक का विस्तार जाकै ऐसा जिनेंद्र, **वर** कहिये अक्षर संज्ञा करि चौबीस, कैसे ? **'कटपयपुरस्थवर्णैः'** इत्यादि सूत्र अपेक्षा य र ल व विषै वकार

चौथा अक्षर, ताका च्यारि का अंक, अर रकार दूसरा अक्षर, ताका दोय का अंक, अंकनि की बाईं तरफ से गति है, ऐसैं वर शब्द करि चौबीस का अर्थ भया । बहुरि अपने अद्भुत पुण्य के माहात्म्य तै नागेंद्र, नरेंद्र, देवेंद्र का समूह कौ अपने चरणकमल विषै नमावे, सो नेमि कहिये । अथवा धर्मतीर्थरूपी रथ के चलावने विषै सावधान हैं, तातै जैसैं रथ के पहिए कै नेमि - धुरी है, तैसैं सो तीर्थंकरनि का समुदाय धर्मरथ विषै नेमि कहिये है । बहुरि चंद्रयति कहिये तीनलोक के नेत्ररूप चंद्रवंशी कमलवननि कौं आह्लादित करै, सो चंद्र कहिये । अथवा जाके तैसा रूप की संपदा का संपूर्ण उदय होय है, जिसरूप संपदा के तौलन के विषै इंद्रादिकनि की सुन्दरता की समीचीन सर्वस्व भी परमाणु समान हलवा (हलका) हो है, सो जो नेमि सोई चंद्र, सो नेमिचंद्र, वर - चौवीस संख्या लिए जो नेमिचद्र, सो वरनेमिचंद्र, जो जिनेन्द्र सोइ वर नेमिचंद्र, सो जिनेन्द्रवरनेमिचंद्र कहिए वृषभादि वर्धमानपर्यंत तीर्थंकरनि का समुदाय, ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपरण कहौ हौ; ऐसा अभिप्राय है । अवशेष सिद्ध आदि विशेषरणनि का पूर्वोक्त प्रकार संबंध जानना ।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – प्रणम्य कहिये नमस्कार करि कं ? किसहि ? जिनेन्द्रवरनेमिचंद्रं । जयति कहिये जीतै, भेदै, विदारै कर्मपर्वतसमूह कौ, सो जिन कहिए । बहुरि नाम का एकदेश संपूर्णनाम विषै प्रवर्तै है - इस न्याय करि इन्द्र कहिये इन्द्रभूति ब्राह्मण, ताका वा इन्द्र कहिये देवेद्र, ताका वर कहिए गुरू, ऐसा इन्द्रवर श्रीवर्धमानस्वामी, बहुरि 'नयति' कहिए अविनश्वर पद कौं प्राप्त करै शिष्य समूह कौं, सो नेमि कहिये । बहुरि समस्त तत्त्वनि कौ प्रकाशै है चंद्रवत्, तातै चंद्र कहिये । जिन सोई इन्द्रवर, सोई नेमि, सोई चन्द्र, ऐसा जिनेन्द्रवरनेमिचद्र वर्धमान-स्वामी ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौ । अन्य संबंध पूर्वोक्त प्रकार जानना ।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – प्रणम्य – नमस्कार करि । कं ? किसहि ? सिद्धं [illegible] सिद्ध भया, वा निष्ठित - संपूर्ण भया वा निष्पन्न (जो) होना था सो हूवा । वा [illegible] सो जानै कीया । वा सिद्धसाध्य, सिद्ध भया है साध्य जाकै, [illegible] बहुत है; तथापि जाति एक है, तातै द्वितीया विभक्ति का [illegible] । [illegible] सर्वक्षेत्र विषै, सर्वकाल विषै, सर्वप्रकार करि सिद्धनि का [illegible] । सो सर्वसिद्धसमूह कौं नमस्कार करि जीव का

प्ररूपण करौं हौ, असा अर्थ जानना। सो कैसा है ? **शुद्धं** कहिये ज्ञानावरणादि आठ प्रकार द्रव्य-भावस्वरूप कर्म करि रहित है। बहुरि कैसा है ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – अनेक संसार वन संबंधी विषम कष्ट देने कौ कारण कर्म वैरी, ताहि जीतै, सो जिन। बहुरि इदन कहिये परम ईश्वर ताका योग, ताकरि राजते कहिए शोभै, सो इंद्र। बहुरि यथार्थ पदार्थनि कौ **नयति** कहिये जानै, सो नेमि कहिये ज्ञान, वर कहिए उत्कृष्ट अनंतरूप जाके पाइए, सो वरनेमि। बहुरि **चंद्रयति** कहिए आह्लादरूप होइ परम सुख को अनुभवे सो चंद्र। इहां सर्वत्र जाति अपेक्षा एकवचन जानना। सो जो जिन, सोई इंद्र, सोई वर नेमि, सोई चंद्र, असा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र सिद्ध है। बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए नाही विद्यमान है **कलंक** कहिए अन्यमतीनि करि कल्पना कीया दोष जाकै ऐसा है। बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** गुण कहिए परमावगाढ सम्यक्त्वादि आठ गुण, तेई भए रत्न-आभूषण, तिनका है उदय कहिए अनुभवन वा उत्कृष्ट प्राप्ति जाकैं असा है।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – **प्रणम्य** नमस्कार करि **कं** ? किसहि ? **कं** कहिए आत्मद्रव्य, ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौं। कैसा है ? **अकलं** कहिये नाही विद्यमान हैं कल कहिये शरीर जाकै ऐसा है। बहुरि कैसा है ? **सिद्धं** कहिए नित्य अनादि-निधन है। बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिये शुद्धनिश्चयनय के गोचर है।

बहुरि कैसा है ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – जिन जे असंयत सम्यग्दृष्टी आदि, तिनका इंद्र कहिये स्वामी है, परम आराधने योग्य है। बहुरि **वर** कहिये समस्त पदार्थनि विषैं सारभूत है। बहुरि नेमिचंद्र कहिये ज्ञान-सुखस्वभाव कौ धरै है। सो जिनेंद्र, सोई वर, सोई नेमिचंद्र असा जिनेंद्रवरनेमिचद्र आत्मा है।

बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** - **गुणानां** कहिये समस्त गुणनि विषै रत्न कहिये रत्नवत् पूज्य प्रधान असा जो सम्यक्त्वगुण, ताकी है उदय कहिये उत्पत्ति जाकैं वा जातै आत्मानुभव तै सम्यक्त्व हो है, तातै आत्मा गुणरत्नभूपणोदय है।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – **प्रणम्य** नमस्कार करि, **कं** ? किसहि ? सिद्धं कहिये सिद्ध परमेष्ठीनि के समूह कौ, सो कैसा है ? **शुद्धं** कहिये दग्ध किए है आठ कर्ममूल जिहि। बहुरि किसहि ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** जिनेंद्र कहिये अर्हत् परमेष्ठीनि का समूह सो **वराः** कहिये उत्कृष्ट जीव गणधर, चक्रवर्ती, इंद्र, धरणेंद्रादिक भव्यप्रधान तेई भए नेमि कहिये नक्षत्र, तिनिविषै चद्र कहिये चद्रमावत् प्रधान, असा जिनेंद्र, सोई

वरनेमिचद्र, ताहि अर्हंतपरमेश्वरनि के समूह कौ। सो कैसा है ? अकलंकं कहिए दूर कीया है तरेसठि कर्मप्रकृतिरूप मल कलंक जानै अैसा है। केवल तिसही को नमस्कार करि नाही, वहुरि गुणरत्नभूषणोदयं गुणरूपी रतन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तेई भए भूषण कहिए आभरण, तिनका है उदय कहिए समुदाय (जाके) अैसा आचार्य, उपाध्याय, साधुसमूह ताकौ, अैसै सिद्ध, अरहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप पंचपरमेष्ठीनि कौ नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौं।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – **प्रणम्य** कहिये नमस्कार करि, कं कहिए किसहि ? **जीवस्य प्ररूपणं** कहिए जीवनि का निरूपण वा ग्रंथ, ताहि नमस्कार करि कहौं। सो कैसा है ? **सिद्धं** कहिए सम्यक् गुरुनि का उपदेश पूर्वकपनै करि अखंडित प्रवाहरूप करि अनादितै चल्या आया है। वहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिए प्रमाण तै अविरोधी अर्थ का प्रतिपादकपनै करि पूर्वापरतै, प्रत्यक्षतै अनुमान तै, आगम तै, लोक तै निजवचनादि तै विरोध, तिनिकरि अखंडित है। वहुरि कैसा है '**जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – जिनेंद्र कहिये सर्वज्ञ, सो है वर कहिए कर्ता जाका, अैसा जिनेद्रवर कहिए सर्वज्ञ-प्रणीत है। इस विशेषण करि वक्ता के प्रमाणपना तै वचन का प्रमाणपना दिखाया। वहुरि यथावस्थित अर्थ कौं **नयति** कहिए प्रतिपादन करै, प्रकासै, सो नेमि कहिए। वहुरि **चंद्रयति** कहिए आह्लादित करै, विकासै शब्द, अर्थ, अलंकारनि करि श्रोतानि के मनरूपी गढूलनि (कमल) कौ, सो चंद्र कहिए जिनेद्रवर, सोई नेमि, सोई चंद्र अैसा जिनेंद्रवरनेमिचन्द्र प्ररूपण है। वहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए दूरहि तै छोड्या है शब्द-अर्थ-गोचर दोषकलंक जिहि, अैसा है। वहुरि कैसा है ? **गुणरत्न-भूषणोदयं** – गुणरत्न जे रत्नत्रयरूप भूषण कहिये आभूषण, तिनकी है उदय कहिए उत्पत्ति वा प्राप्ति, हम आदि जीवनि कै जातै, ऐसा गुणरत्नभूषण प्ररूपण है।

अथवा अन्य अर्थ कहै है – चामुंडराय कै जीवप्ररूपणशास्त्र का कर्तापनै का आश्रय करि मंगलसूत्र व्याख्यान करिए है।

भावार्थ – इस गोम्मटसार का मूलगाथाबंध ग्रंथकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य है। ताकी टीका कर्णाटकदेशभाषाकरि चामुण्डराय करी है। ताकै अनुसारि केशवनामा ब्रह्मचारी संस्कृतटीका करी है। सो चामुण्डराय की अपेक्षा करि इस सूत्र का अर्थ करिए है। अहं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि मैं जु हौं चामुण्डराय, सो जीव का प्ररूपण रूप ग्रंथ का टिप्पण नाहि कहौंगा। किं कृत्वा ? कहाकरि ? प्रणम्य नमस्कार करि।

हं ? किसहि ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जिनेंद्र है वर कहिए भर्ता, स्वामी जाका, सो जिनेन्द्रवर इहां जिन कहिये कर्मनिर्जरा संयुक्त जीव, तिनि विषै इंद्र कहिए स्वामी अर्हंत्, सेद्ध । बहुरि जिन है इंद्र कहिए स्वामी जिनिका ऐसैं आचार्य, उपाध्याय, साधु; ऐसे जिनेद्र शब्दकरि पंच परमेष्ठी आए । तिनका आराधन तैं उपजै जे सम्यग्दर्शनादिक गुण, तिनिकरि संयुक्त अपना परमगुरु नेमिचंद्र आचार्य, ताहि नमस्कार करि जीव प्ररूपणा कहौंगा । सो कैसा है ? सिद्धं कहिये प्रसिद्ध है वा वर्तमान काल विषै प्रवृत्तिरूप समस्त शास्त्रनि मै निष्पन्न है । बहुरि कैसा है ? शुद्धं कहिये पचीस मलरहित सम्यक्त्व जाकै पाइये है वा अतिचार रहित चारित्र जाके पाइए है। वा देश, जाति, कुल करि शुद्ध है । बहुरि कैसा है ? अकलंकं कहिए विशुद्ध मन, वचन, काय संयुक्त है । बहुरि कैसा है ? गुणरत्नभूषणोदयं – गुणरत्नभूषण कहिए चामुण्डराय राजा, ताकै है उदय कहिये ज्ञानादिक की वृद्धि, जातै ऐसा नेमिचंद्र आचार्य है । ऐसै इष्ट विशेषरूप देवतानि कौं नमस्कार करना है लक्षण जाका, ऐसा परम मंगल कौ अंगीकार करि याकै अनंतर अधिकारभूत जीवप्ररूपणा के अधिकारनि कौ निर्देश करै है ।

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उओवगोवि य कमसो, वीसं तु परूवणा भणिदा ।।२।।[1]

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणाश्च ।
उपयोगोऽपि च क्रमशः, विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ।।२।।

टीका – इहां चौदह गुणस्थान, अठयाणवै जीवसमास, छह पर्याप्ति, दश प्राण, च्यारि संज्ञा; मार्गणा विषै च्यारि गतिमार्गणा, पांच इंद्रियमार्गणा, छह कायमार्गणा, पंद्रह योगमार्गणा, तीन वेदमार्गणा, च्यारि कषायमार्गणा, आठ ज्ञानमार्गणा, सात सयममार्गणा, च्यारि दर्शनमार्गणा, छह लेश्यामार्गणा, दोय भव्यमार्गणा, छह सम्यक्त्वमार्गणा, दोय संज्ञिमार्गणा, दोय आहारमार्गणा, दोय उपयोग – ऐसै ये जीव-प्ररूपणा वीस कही है ।

इहां निरुक्ति करिये है – गुण्यते कहिये जाणिये द्रव्य ते द्रव्यांतर कौं याकरि, सो गुण कहिये । बहुरि कर्म उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान-दर्शन उपयोगरूप चैतन्य प्राण करि जीवै है ते जीव, सम्यक् प्रकार आसते कहिये स्थितिरूप होइ इनि विषै

१-षट्खंडागम – धवला पुस्तक २, पृष्ठ ४१३, गाथा २२२

ते जीवसमास है। बहुरि परि कहिये समंतता तैं आप्ति कहिये प्राप्ति, सो पर्याप्ति है। शक्ति की निष्पन्नता का होना सो पर्याप्त जानना। बहुरि प्राणंति कहिये जीवें है जीवितव्यरूप व्यवहार कौं योग्य हो हैं जीव जिनिकरि, ते प्राण हैं। बहुरि आगम विषै प्रसिद्ध वांछा, संज्ञा, अभिलाषा ए एकार्थ है। बहुरि जिन करि वा जिन विषै जीव है, ते मृग्यंते कहिये अवलोकिये ते मार्गणा है। तहां अवलोकनहारा मृगयिता तो भव्यनि विषै उत्कृष्ट, प्रधान तत्त्वार्थ श्रद्धावान जीव जानना। अवलोकने योग्य, मृग्य चौदह मार्गणानि के विशेष लिये आत्मा जानना। बहुरि अवलोकना मृग्यता का साधन कौं वा अधिकरण कौं जे प्राप्त, ते गति आदि मार्गणा है। बहुरि मार्गणा जो अवलोकन, ताका जो उपाय, सो ज्ञान-दर्शन का सामान्य भावरूप उपयोग है। ऐसें इन प्ररूपणानि का साधारण अर्थ का प्रतिपादन कह्या।

आगै संग्रहनय की अपेक्षा करि प्ररूपणा का दोय प्रकार को मन विषैं धारि गुणस्थान-मार्गणास्थानरूप दोय प्ररूपणानि के नामांतर कहै है –

संखेओ ओघोत्ति य, गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसोत्ति य, मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥३॥

संक्षेप ओघ इति च गुणसंज्ञा, सा च मोहयोगभवा।
विस्तार आदेश इति च, मार्गणसंज्ञा स्वकर्मभवा ॥३॥

टीका – संक्षेप ऐसी ओघ गुणस्थान की संज्ञा अनादिनिधन ऋषिप्रणीत मार्ग विषै रूढ है, प्रसिद्ध है। गुणस्थान का ही संक्षेप वा ओघ ऐसा भी नाम है। बहुरि सो संज्ञा 'मोहयोगभवा' कहिए दर्शन-चारित्रमोह वा मन, वचन, काय योग, तिनकरि उपजी है। इहां संज्ञा के धारक गुणस्थान के मोह-योग तैं उत्पन्नपना है। तातैं तिनकी संज्ञा के भी मोह-योग करि उपजना उपचार करि कह्या है। बहुरि सूत्र विषै चकार कह्या है, तातैं सामान्य ऐसी भी गुणस्थान की संज्ञा है; ऐसा जानना।

बहुरि तैसे ही विस्तार, आदेश ऐसी मार्गणास्थान की संज्ञा है। मार्गणा का विस्तार, आदेश ऐसा नाम है। सो यहु संज्ञा अपना-अपना मार्गणा का नाम की प्रवृत्ति के व्यवहार कौं कारण जो कर्म, ताके उदय तैं हो है। इहां भी पूर्ववत् संज्ञा के कर्म तैं उपजने का उपचार जानना। निश्चय करि संज्ञा तौ शब्दजनित ही है।

बहुरि चकार तै विशेष ऐसी भी मार्गणास्थान की सज्ञा गाथा विषै विना कही भी जाननी ।

आगै प्ररूपणा का दोय प्रकार पना विषै अवशेष प्ररूपणानि का अंतर्भूतपना दिखावै हैं –

आदेसे संलीणा, जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ ।
उवओगोवि य भेदे, वीसं तु परूवणा भणिदा ।।४।।

आदेशे संलीना, जीवाः पर्याप्तिप्राणसंज्ञाश्च ।
उपयोगोऽपि च भेदे, विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ।।४।।

टीका – मार्गणास्थानप्ररूपणा विषै जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग – ए पांच प्ररूपणा **संलीना** कहिए गर्भित है, किसी प्रकार करि तिनि मार्गणाभेदनि विषै अंतर्भूत है । तैसे होतै गुणस्थानप्ररूपणा अर मार्गणास्थानप्ररूपणा असै संग्रहनय अपेक्षा करि प्ररूपणा दोय ही निरूपित हो है ।

आगै किस मार्गणा विषै कौन प्ररूपणा गर्भित है ? सो तीन गाथानि करि कहै हैं –

इंदियकाये लीणा, जीवा पज्जत्तिआणभासमणो ।
जोगे काओ णाणे, अक्खा गदिमग्गणे आऊ ।।५।।

इंद्रियकाययोर्लीना, जीवाः पर्याप्त्यानभाषामनांसि ।
योगे कायः ज्ञाने, अक्षीणि गतिमार्गणायामायुः ।।५।।

टीका – इंद्रियमार्गणा विषै, बहुरि कायमार्गणा विषै जीवसमास अर पर्याप्ति अर सासोश्वास, भाषा, मनबल प्राण ए अंतर्भूत है । कैसे है ? सो कहे है – जीवसमास अर पर्याप्ति इनिकै इद्रिय अर कायसहित तादात्म्यकरि कीया हूवा एकत्व सभवै है । जीवसमास अर पर्याप्ति ए इंद्रिय-कायरूप ही है । बहुरि सामान्य-विशेष करि कीया हूवा एकत्व सभवै है । जोवसमास, पर्याप्ति अर इद्रिय, काय विषै कही सामान्य का ग्रहण है, कहीं विशेष का ग्रहण है । बहुरि पर्याप्तिनि कै धर्म-धर्मीकरि कीया हुवा एकत्व संभवै है । पर्याप्ति धर्म है, इंद्रिय-काय धर्मी है । तातै जीवसमास अर पर्याप्ति

मिथ्यात्वादिक परिणाम, तिनकरि गुण्यंते कहिए लखिए वा देखिए वा लांछित करिए जीव, ते जीव के परिणाम गुणस्थान संज्ञा के धारक है, असा सर्वदर्शी जे सर्वज्ञदेव, तिनकरि निर्दिष्टाः कहिए कहे है। इस गुण शब्द की निरुक्ति की प्रधानता लीए सूत्र करि मिथ्यात्वादिक अयोगकेवलीपना पर्यन्त ये जीव के परिणाम विशेष, तेई गुणस्थान है, असा प्रतिपादन कीया है।

तहा अपनी स्थिति के नाश के वश तै उदयरूप निषेक विषै गले जे कार्माण स्कंध, तिनका फल देनेरूप जो परिणमन, सो उदय है। ताकौ होते जो भाव होइ, सो औदयिक भाव है।

बहुरि गुण का प्रतिपक्षी जे कर्म, तिनका उदय का अभाव, सो उपशम है। ताकौ होते संतै जो होय, सो औपशमिक भाव है।

बहुरि प्रतिपक्षी कर्मनि का बहुरि न उपजै असा नाश होना, सो क्षय; ताकौ होतै जो होइ, सो क्षायिक भाव है।

बहुरि प्रतिपक्षी कर्मनि का उदय विद्यमान होतै भी जो जीव के गुण का अंश देखिए, सो क्षयोपशम; ताकौ होतै जो होइ, सो क्षायोपशमिक भाव है।

बहुरि उदयादिक अपेक्षा तै रहित, सो परिणाम है; ताकौ होतै जो होइ, सो पारिणामिक भाव है। असै औदयिक आदि पंचभावनि का सामान्य अर्थ प्रतिपादन करि विस्तार तै आगै तिनि भावनि का महा अधिकार विषै प्रतिपादन करिसी।

आगै ते गुणस्थान गाथा दोय करि नाममात्र कहै है–

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य ॥९॥

उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीवसमासा, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥१०॥[१]

मिथ्यात्वं सासनः मिश्रः, अविरतसम्यक्त्वं च देशविरतश्च।
विरताः प्रमत्तः इतरः, अपूर्वः अनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च ॥९॥
उपशांतः क्षीणमोहः, सयोगकेवलिजिनः अयोगी च।
चतुर्दश जीवसमासाः, क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्या ॥१०॥

---

१. षट्खण्डागम धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९२ से २०१ तक, सूत्र ९ से २३ तक।

टीका – मिथ्या कहिए अतत्त्वगोचर है दृष्टि कहिए श्रद्धा जाकी, सो मिथ्यादृष्टि है । **'नाम्न्युत्तरपदश्च'** असा व्याकरण सूत्र करि दृष्टिपद का लोप करतैं 'मिच्छो' असा कह्या है । यहु भेद आगैं भी जानना ।

बहुरि आसादन जो विराधना, तिहि सहित वर्तै सो सासादना, सासादना है सम्यग्दृष्टि जाकै, सो सासादन सम्यग्दृष्टि है । अथवा आसादन कहिए सम्यक्त्व का विराधन, तीहि सहित जो वर्तमान, सो सासादन । बहुरि सासादन अर सो सम्यग्दृष्टि सो सासादन सम्यग्दृष्टि है । यहु पूर्वं भया था सम्यक्त्व, तिस न्याय करि इहा सम्यग्दृष्टिपना जानना ।

बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्व का जो मिश्रभाव, सो मिश्र है ।

बहुरि सम्यक् कहिए समीचीन है दृष्टि कहिए तत्त्वार्थश्रद्धान जाकै, सो सम्यग्दृष्टि अर सोई अविरत कहिए असंयमी, सो अविरतसम्यग्दृष्टि है ।

बहुरि देशत कहिए एकदेश तै विरत कहिए सयमी, सो देशविरत है, सयतासयत है, असा अर्थ जानना ।

इहा जो विरत पद है, सो ऊपरि के सर्व गुणस्थानवर्तीनि कै सयमीपना कौ जनावै है । बहुरि **प्रमाद्यति** कहिये प्रमाद करै, सो प्रमत्त है । बहुरि इतर कहिए प्रमाद न करै, सो अप्रमत्त है ।

बहुरि अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाकै, सो अपूर्वकरण है ।

बहुरि निवृत्ति कहिए परिणामनि विषै विशेष न पाइए है निवृत्तिरूप करण कहिए परिणाम जाकै, सो अनिवृत्तिकरण है ।

बहुरि सूक्ष्म है सापराय कहिये कषाय जाकै, सो सूक्ष्मसापराय है ।

बहुरि उपशांत भया है मोह जाका, सो उपशातमोह है ।

बहुरि क्षीण भया है मोह जाका, सो क्षीणमोह है ।

बहुरि घातिकर्मनि कौ जीतता भया, सो जिन, बहुरि केवलज्ञान याकै है यातै केवली, केवली सोई जिन, सो केवलिजिन, बहुरि योग करि सहित सो सयोग, सोई केवलिजिन, ऐसे सयोगकेवलीजिन है ।

ोग याकै है सो योगी, योगी नाही सो अयोगी, केवलिजिन ऐसी
ागी, सोई केवलिजिन अैसै अयोगकेवलिजिन है ।

मिथ्यादृष्टि आदि अयोगिकेवलिजिन पर्यन्त चौदह जीवसमास कहिए गुणस्थान ते जानने ।

कैसै यहु जीवसमास ऐसी संज्ञा गुणस्थान की भई ?

तहां कहिए है - जीव है, ते **समस्यंते** कहिए संक्षेपरूप करिए इनिविषै, ते जीवसमास अथवा जीव है । ते **सम्यक् आसते एषु** कहिए भले प्रकार तिष्ठै है, इनिविषै, ते जीवसमास, अैसै इहां प्रकरण जो प्रस्ताव, ताकी सामर्थ्य करि गुणस्थान ही जीवसमास शब्द करि कहिए है । जातै ऐसा वचन है - **'यादृशं प्रकरणं तादृशोर्थः'** जैसा प्रकरण तैसा अर्थ, सो इहां गुणस्थान का प्रकरण है, तातै गुणस्थान अर्थ का ग्रहण किया है ।

बहुरि ये कर्म सहित जीव जैसै लोक विषै है, तैसै नष्ट भए सर्वकर्म जिनके, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी भी है, ऐसा जानना । क्रमेण कहिए क्रम करि सिद्ध है, सो यहां क्रम शब्द करि पहिलै घातिकर्मनि कौ क्षपाइ सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थाननि विषै यथायोग्य काल तिष्ठि, अयोगकेवली का अंत समय विषै अवशेष अघातिकर्म समस्त खिपाइ सिद्ध हो है - ऐसा अनुक्रम जनाइए है । सो इस अनुक्रम की जनावनहारा क्रम शब्द करि युगपत् सर्वकर्म का नाशपना, बहुरि सर्वदा कर्म के अभाव तै सदा ही मुक्तपना परमात्मा के निराकरण कीया है ।

आगै गुणस्थाननि विषै औदयिक आदि भावनि का संभव दिखावै है -

मिच्छे खलु ओदइओ, बिदिये पुण पारणामिओ भावो ।
मिस्से खओवसमिओ, अविरदसम्मह्मि तिण्णेव ॥११॥[1]

मिथ्यात्वे खलु औदयिको द्वितीये पुनः पारिणामिको भावः ।
मिश्रे क्षायोपशमिकः अविरतसम्यक्त्वे त्रय एव ॥११॥

टीका - मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै दर्शनमोह का उदय करि निपज्या ऐसा औदयिक भाव, अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका, सो पाइए है । खलु कहिए

[1] षट्खण्डागम - धवला पुस्तक-५ पृष्ठ १९४ १९७ भावानुगम सूत्र २, से ५

प्रकटपनै । बहुरि दूसरा सासादनगुणस्थान विषै पारिणामिक भाव है । जातै इहां दर्शनमोह का उदय आदि की अपेक्षा का जु अभाव, ताका सद्भाव है ।

बहुरि मिश्रगुणस्थान विषै क्षायोपशमिक भाव है । काहे तै ?

मिथ्यात्वप्रकृति का सर्वघातिया स्पर्धकनि का उदय का अभाव, सोई है लक्षण जाका, ऐसा तो क्षय होते संते, बहुरि सम्यग्मिथ्यात्व नाम प्रकृति का उदय विद्यमान होते संते, बहुरि उदय कौ न प्राप्त भए ऐसे निषेकनि का उपशम होते संते, मिश्रगुणस्थान हो है । तातै ऐसा कारण तै मिश्र विषै क्षायोपशमिकभाव है ।

बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान विषै औपशमिक सम्यक्त्व, बहुरि क्षायोपशमिकरूप वेदकसम्यक्त्व, बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व ऐसे नाम धारक तीन भाव हैं, जातै इहां दर्शनमोह का उपशम वा क्षयोपशम वा क्षय संभवै है ।

आगै कहे है जु ए भाव, तिनके संभवने के नियम का कारण कहै है –

एदे भावा णियमा, दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु ।
चारित्तं णत्थि जदो, अविरदअंतेसु ठाणेसु ॥१२॥

एते भावा नियमाद्, दर्शनमोहं प्रतीत्य भाणिताः खलु ।
चारित्रं नास्ति यतो, ऽविरतांतेषु स्थानेषु ॥१२॥

टीका – असै पूर्वोक्त औदयिक आदि भाव कहे, ते नियम तै दर्शनमोह कौ **प्रतीत्य** कहिए आश्रयकरि, **भणिता** कहिए कहे है प्रगटपनै; जातै अविरतपर्यंत च्यारि गुणस्थान विषै चारित्र नाही है । इस कारण तै ते भाव चारित्र मोह का आश्रय करि नाही कहे है ।

तीहि करि सासादनगुणस्थान विषै अनंतानुबंधी की कोई क्रोधादिक एक कषाय का उदय विद्यमान होतै भी ताकी विवक्षा न करने करि पारिणामिकभाव सिद्धांत विषै प्रतिपादन कीया है, ऐसा तू जानि ।

बहुरि अनंतानुबंधी की किसी कषाय का उदय की विवक्षा करि औदयिक भाव भी है ।

आगै देशसंयतादि गुणस्थाननि विषै भावनि का नियम गाथा दोय करि दिखावै हैं –

देसविरदे पमत्ते, इदरे य खओवसमियभावो दु ।
सो खलु चरित्तमोहं, पडुच्च भरिणयं तहा उवरिं ।।१३।।

देशविरते प्रमत्ते, इतरे च क्षायोपशमिकभावस्तु ।
स खलु चरित्रमोहं, प्रतीत्य भणितस्तथा उपरि ।।१३।।

टीका – देशविरत विषै, वहुरि प्रमत्तसंयत विषै, वहुरि इतर अप्रमत्तसंयत विषै क्षायोपशमिक भाव है । तहां देशसंयत अपेक्षा करि प्रत्याख्यान कपायनि के उदय अवस्था कौं प्राप्त भए जे देशघाती स्पर्धकनि का अनंतवा भाग मात्र, तिनका जो उदय, तीहि सहित जे उदय कौं न प्राप्त भए ही निर्जरा रूप क्षय होते जे विवक्षित उदयरूप निषेक, तिनि स्वरूप जे सर्वघातिया स्पर्धक अनंत भागनि विषै एक भागविना वहुभाग, प्रमाण मात्र लीए तिनका उदय का अभाव, सो ही है लक्षण जाका ऐसा क्षय होते संते, वहुरि वर्तमान समय सवधी निषेक तै ऊपरि के निषेक जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए, तिनकी सत्तारूप जो अवस्था, सोई है लक्षण जाका, ऐसा उपशम होते संते देशसंयम प्रकटै है । तातै चारित्र मोह कौं आश्रय करि देशसंयम क्षायोपशमिक भाव है, ऐसा कह्या है ।

वहुरि तैसै ही प्रमत्त-अप्रमत्त विषै भी संज्वलन कपायनि का उदय आए जे देशघातिया स्पर्धक अंनतवा भागरूप, तिनिका उदय करि सहित उदय कौं न प्राप्त होतै ही क्षयरूप होते जे विवक्षित उदय निषेक, तिनिरूप सर्वघातिया स्पर्धक अनंत भागनि विषै एक भागविना वहुभागरूप, तिनिका उदय का अभाव, सो ही है लक्षण जाका ऐसा क्षय होते, वहुरि ऊपरि के निषेक जे उदय कौं प्राप्त न भए, तिनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका, ऐसा उपशम, ताकौं होते संतै प्रमत्त-अप्रमत्त हो है । तातै चारित्र मोह अपेक्षा इहां सकलसंयम है । तथापि क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कह्या है, ऐसा श्रीमान् अभयचंद्रनामा आचार्य सिद्धांतचक्रवर्ती, ताका अभिप्राय है ।

भावार्थ – सर्वत्र क्षयोपशम का स्वरूप ऐसा ही जानना । जहां प्रतिपक्षी कर्म के देशघातिया स्पर्धकनि का उदय पाइए, तीह सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदय-निषेक संबंधी, तिनका उदय न पाइए (विना ही उदय दीए) निर्जरै, सोई क्षय, अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक, तिनका सत्तास्वरूप उपशम, तिनि दोऊनि कौं होतै

क्षयोपशम हो है । सो स्पर्धकनि का वा निषेकनि का वा सर्वघाति-देशघातिस्पर्धकनि के विभाग का आगै वर्णन होगा, तातै इहां विशेष नाही लिख्या है । सो इहां भी पूर्वोक्तप्रकार चारित्रमोह को क्षयोपशम ही है । तातै क्षायोपशमिक भाव देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त विषै जानना । तैसे ही ऊपरि भी अपूर्वकरणादि गुणस्थाननि विषै चारित्रमोह कौ आश्रय करि भाव जानने ।

तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा, अजोगिचरिमोत्ति सिद्धे य ॥१४॥

तत उपरि उपशमभावः उपशामकेषु क्षपकेषु ।
क्षायिको भावो नियमात् अयोगिचरम इति सिद्धे च ॥१४॥

टीका – तातै ऊपरि अपूर्वकरणादि च्यारि गुणस्थान उपशम श्रेणी संबधी, तिनिविषै औपशमिक भाव है । जातै तिस सयम का चारित्रमोह के उपशम ही तै संभव है । बहुरि तैसे ही अपूर्वकरणादि च्यारि गुणस्थान क्षपक श्रेणी संबंधी अर सयोग-अयोगीकेवली, तिनिविषै क्षायिक भाव है नियमकरि, जातै तिस चारित्र का चारित्र-मोह के क्षय ही तै उपजना है ।

बहुरि तैसे ही सिद्ध परमेष्ठीनि विषै भी क्षायिक भाव हो है, जातै तिस सिद्धपद का सकलकर्म के क्षय ही तै प्रकटपना हो है ।

आगै पूर्वै नाममात्र कहे जे चौदह गुणस्थान, तिनिविषै पहिले कह्या जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, ताका स्वरूप कौ प्ररूपै है –

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्चअत्थाणं ।
एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं ॥१५॥

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानाम् ।
एकांतं विपरीतं, विनयं संशयितमज्ञानम् ॥१५॥

टीका – दर्शनमोहनी का भेदरूप मिथ्यात्व प्रकृति का उदय करि जीव कै अतत्त्व श्रद्धान है लक्षण जाका असा मिथ्यात्व हो है । बहुरि सो मिथ्यात्व १. एकांत २. विपरीत ३. विनय ४. संशयित ५. अज्ञान – असे पांच प्रकार है ।

तहां जीवादि वस्तु सर्वथा सत्वरूप ही है, सर्वथा असत्त्वरूप ही है, सर्वथा एक ही है, सर्वथा अनेक ही है – इत्यादि प्रतिपक्षी दूसरा भाव की अपेक्षारहित एकांतरूप अभिप्राय, सो एकांत मिथ्यात्व है।

बहुरि अहिंसादिक समीचीन धर्म का फल जो स्वर्गादिक सुख, ताकौं हिंसादिरूप यज्ञादिक का फल कल्पना करि मानै; वा जीव कै प्रमाण करि सिद्ध है जो मोक्ष, ताका निराकरण करि मोक्ष का अभाव मानै; वा प्रमाण करि खंडित जो स्त्री कैं मोक्षप्राप्ति, ताका अस्तित्व वचन करि स्त्री कौं मोक्ष है अैसा मानै इत्यादि एकांत अवलंबन करि विपरीतरूप जो अभिनिवेश – अभिप्राय, सो विपरीत मिथ्यात्व है।

बहुरि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सापेक्षा रहितपनैं करि गुरुचरणपूजनादिरूप विनय ही करि मुक्ति है – यहु श्रद्धान वैनयिक मिथ्यात्व है।

बहुरि प्रत्यक्षादि प्रमाण करि ग्रह्या जो अर्थ, ताका देशांतर विषै अर कालांतर विषै व्यभिचार जो अन्यथाभाव, सो संभवै है। तातैं अनेक मत अपेक्षा परस्पर विरोधी जो आप्तवचन, ताका भी प्रमाणता की प्राप्ति नाहीं। तातैं अैसैं ही तत्त्व है, अैसा निर्णय करने की शक्ति के अभाव तैं सर्वत्र संशय ही है, अैसा जो अभिप्राय, सो संशय मिथ्यात्व है।

बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण का तीव्र उदय करि संयुक्त जे एकेंद्रियादिक जीव, तिनके अनेकांत स्वरूप वस्तु है, अैसा वस्तु का सामान्य भाव विषै अर उपयोग लक्षण जीव है अैसा वस्तु का विशेष भाव विषै जो अज्ञान, ताकरि निपज्या जो श्रद्धान, सो अज्ञान मिथ्यात्व है।

अैसैं स्थूल भेदनि का आश्रय करि मिथ्यात्व का पंचप्रकारपना कह्या, जातैं सूक्ष्म भेदनि का आश्रय करि असंख्यात लोकमात्र भेद संभवै हैं। तातैं तहां व्याख्यानादिक व्यवहार की अप्राप्ति है।

आगै इन पंचनि का उदाहरण कौं कहै हैं –

एयंत बुद्धदरसी, विवरीओ बह्म तावसो विणओ।
इंदो विय संसइयो, मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥१६॥

एकांतो बुद्धदर्शी, विपरीतो ब्रह्म तापसो विनयः।
इंद्रोऽपि च संशयितो, मस्करी चैवाज्ञानी ॥१६॥

टीका – ए उपलक्षणपना करि कहे है । एक का नाम लेनै तै अन्य भी ग्रहण करने, तातै ऐसै कहने – बुद्धदर्शी जो बौद्धमती, ताकौ आदि देकरि एकांत मिथ्यादृष्टि है । बहुरि यज्ञकर्ता ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि है । बहुरि तापसी आदि विनय मिथ्यादृष्टि है । बहुरि इन्द्रनामा जो श्वेतांबरनि का गुरु, ताकौ आदि देकरि संशय मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि मस्करी (मुसलमान) संन्यासी कौ आदि देकरि अज्ञान मिथ्यादृष्टि है । वर्तमान काल अपेक्षा करि ए भरतक्षेत्र विषैं संभवते बौद्धमती आदि उदाहरण कहे है ।

आगै अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका, अैसे मिथ्यात्व कौ प्ररूपै है –

मिच्छंतं वेदंतो, जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥१७॥[१]

मिथ्यात्वं विदन् जीवो, विपरीतदर्शनो भवति ।
न च धर्मं रोचते हि, मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥१७॥

टीका – उदय आया मिथ्यात्व कौ वेदयन् कहिए अनुभवता जो जीव, सो विपरीतदर्शन कहिए अतत्त्वश्रद्धानसंयुक्त है, अयथार्थ प्रतीत करै है । बहुरि केवल अतत्त्व ही कौ नाही श्रद्धै है, अनेकांतस्वरूप जो धर्म कहिए वस्तु का स्वभाव अथवा रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का कारणभूत धर्म, ताहि न रोचते कहिए नाही रूचिरूप प्राप्त हो है ।

इहां दृष्टांत कहै है – जैसै ज्वरित कहिए पित्तज्वर सहित पुरुष, सो मधुर – मीठा दुग्धादिक रस, ताहि न रोचै है; तैसै मिथ्यादृष्टि धर्म कौ न रोचै है, ऐसा अर्थ जानना ।

इस ही वस्तु स्वभाव के श्रद्धान कौ स्पष्ट करै है –

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१८॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं, उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥१८॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक –१, पृष्ठ १६३, गाथा १०६.

टीका – मिथ्यादृष्टि जीव है, सो उपदिष्ट कहिए अर्हन्त आदिकनि करि उपदेस्या हूआ प्रवचन कहिए आप्त, आगम, पदार्थ इनि तीनो कौ नाहीं श्रद्धै है, जातै प्र कहिए उत्कृष्ट है वचन जाका, असा प्रवचन कहिए आप्त । बहुरि प्रकृष्ट जो परमात्मा, ताका वचन सो प्रवचन कहिए परमागम । बहुरि प्रकृष्ट उच्यते कहिए प्रमाण करि निरूपिए अैसा प्रवचन कहिए पदार्थ, या प्रकार निरुक्ति करि प्रवचन शब्द करि आप्त, आगम, पदार्थ तीनों का अर्थ हो है । बहुरि सो मिथ्यादृष्टि असद्भाव कहिए मिथ्यारूप; प्रवचन कहिए आप्त आगम, पदार्थ; उपदिष्टं कहिए आप्त कीसी आभासा लिए कुदेव जे है, तिनकरि उपदेस्या हूआ अथवा अनुपदिष्ट कहिए विना उपदेस्या हूआ, ताकौं श्रद्धान करै है । बहुरि वादी का अभिप्राय लेइ उक्तं च गाथा कहै हैं –

"घडपडथंभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं ।
सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो ।।"

याका अर्थ – घट, पट, स्तंभ आदि पदार्थनि विषै मिथ्यादृष्टि जीव यथार्थ ज्ञान लीए श्रद्धान करता भी अज्ञानी कहिए, जातै जिनवचन विषै श्रद्धान का अभाव है । अैसा सिद्धांत का वाक्य करि कह्या मिथ्यादृष्टि का लक्षण जानि सो मिथ्यात्व भाव त्यजना योग्य है । ताका भेद भी इस ही वाक्य करि जानना । सो कहिए हैं – कोऊ मिथ्यादर्शनरूप परिणाम आत्मा विषै प्रकट हूआ थका वर्ण-रसादि की उपलब्धि जो ज्ञान करि जानने की प्राप्ति, ताहि होते संतै कारणविपर्यास, बहुरि भेदाभेदविपर्यास, बहुरि स्वरूपविपर्यास कौं उपजावै है ।

तहां कारणविपर्यास प्रथम कहिए है । रूप-रसादिकनि का एक कारण है, सो अमूर्तीक है, नित्य है अैसै कल्पना करै है । अन्य कोई पृथ्वी आदि जातिभेद लीए भिन्न-भिन्न परमाणु हैं, ते पृथ्वी के च्यारि गुणयुक्त, अपके गंध विना तीन गुणयुक्त, अग्नि के रस विना दोय गुणयुक्त, पवन के एक स्पर्श गुणयुक्त परमाणु हैं, ते अपनी समान जाति के कार्यनि कौं निपजावनहारे हैं, अैसा वर्णन करै है । या प्रकार कारण विषै विपरीतभाव जानना ।

बहुरि भेदाभेदविपर्यास कहै हैं – कार्य तै कारण भिन्न ही है अथवा अभिन्न ही अैसी कल्पना भेदाभेद विषै अन्यथापना जानना ।

बहुरि स्वरूपविपर्यास कहै है – रूपादिक गुण निर्विकल्प है, कोऊ कहै – है ही नाहीं। कोऊ कहै – रूपादिकनि के जानने करि तिनके आकार परिणाया ज्ञान ही है नाही, तिनका अवलंबन बाह्य वस्तुरूप है। असा विचार स्वरूप विषै मिथ्यारूप जानना। या प्रकार कुमतिज्ञान का बल का आधार करि कुश्रुतज्ञान के विकल्प हो है। इनका सर्व मूल कारण मिथ्यात्व कर्म का उदय ही है, असा निश्चय करना।

आगै सासादनगुणस्थान का स्वरूप दोय सूत्रनि करि कहै है –

आदिमसम्मत्तद्धा, समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मोत्ति सासणक्खो सो ॥१६॥

आदिमसम्यक्त्वाद्धा, आसमयतः षडावलिरिति वा शेषे।
अनान्यतरोदयात् नाशितसम्यक्त्व इति सासानाख्यः सः ॥१९॥

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल विषै जघन्य एकसमय, उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहै, अनंतानुबंधी च्यारि कषायनि विषै अन्यतम कोई एक का उदय होते संतै, नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानै असा होई, सो सासादन असा कहिए। बहुरि वा शब्दकरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का काल विषै भी सासादन गुणस्थान की प्राप्ति हो है। असा (गुणधराचार्यकृत) कषायप्राभृतनामा यतिवृषभाचार्यकृत (चूर्णिसूत्र) जयधवल ग्रन्थ का अभिप्राय है।

जो मिथ्यात्व तै चतुर्थादि गुणस्थाननि विषै उपशम सम्यक्त्व होइ, सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व है।

बहुरि उपशमश्रेणी चढते क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तै जो उपशम सम्यक्त्व होय, सो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जानना।

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो, सासणणामो मुणेयव्वो ॥२०॥[1]

सम्यक्त्वरत्नपर्वतशिखरात् मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः।
नाशितसम्यक्त्वः सः, सासननामा मंतव्य ॥२०॥

---

१ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक – १, पृष्ठ १६७, गाथा १०८.

टीका – जो जीव सम्यक्त्वपरिणामरूपी रत्नमय पर्वत के शिखर तें मिथ्यात्व-परिणामरूपी भूमिका के सन्मुख होता संता, पडि करि जितना अंतराल का काल एक समय आदि छह आवली पर्यन्त है, तिहि विषै वर्तै, सो जीव नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानैं, ऐसा सासादन नाम धारक जानना ।

आगै सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का स्वरूप गाथा च्यारि करि कहै है -

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण ।
ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो ॥२१॥[1]

सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन च, जात्यंतरसर्वघातिकार्येण ।
न च सम्यक्त्वं मिथ्यात्वमपि च, सम्मिश्रो भवति परिणामः ॥२१॥

टीका – जात्यंतर कहिए जुदी ही एक जाति भेद लीए जो सर्वघातिया कार्यरूप सम्यग्मिथ्यात्व नामा दर्शनमोह की प्रकृति, ताका उदय करि मिथ्यात्व प्रकृति का उदयवत् केवल मिथ्यात्व परिणाम भी न होइ है । अर सम्यक्त्व प्रकृति का उदयवत् केवल सम्यक्त्व परिणाम भी न होइ है । तिहि कारण तैं तिस सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का कार्यभूत जुदी ही जातिरूप सम्यग्मिथ्यात्वपरिणाम मिलाया हूआ मिश्रभाव हो है, ऐसा जानना ।

दहिगुडमिव वामिस्सं, पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सयभावो, सम्मामिच्छोत्ति णादव्वो ॥२२॥[1]

दधिगुडमिव व्यामिश्रं, पृथग्भावं नैव कर्तुं शक्यम् ।
एवं मिश्रकभावः, सम्यग्मिथ्यात्वमिति ज्ञातव्यम् ॥२२॥

टीका – इव कहिए जैसे, व्यामिश्रं कहिए मिल्या हूआ, दही अर गुड सो पृथग्भावं कर्तुं कहिए जुदा-जुदा भाव करने कौं, नैव शक्यं कहिए नाही समर्थपना है, एवं कहिए तैसे, सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिल्या हूआ परिणाम, सो केवल सम्यक्त्वभाव करि अथवा केवल मिथ्यात्वभाव करि जुदा-जुदा भाव करि स्थापने कौं नाहीं समर्थपना है । इस कारण तैं सम्यग्मिथ्यादृष्टि ऐसा जानना योग्य है । समीचीन अर कोई मिथ्या, सो सम्यग्मिथ्या ऐसा है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकै, सो सम्यग्मिथ्या-

[1] – षट्खण्डागम–धवला पुस्तक १, पृ. १७१–गा. १०६

मिथ्यादृष्टि है। इस निरुक्ति तै भी पूर्वै ग्रह्या जो अतत्त्वश्रद्धान, ताका सर्वथा त्याग बिना, तीहिं सहित ही तत्त्व श्रद्धान हो है। जातै तैसै ही सभवता प्रकृति का उदयरूप कारण का सद्भाव है।

सो संजमं ण गिण्हदि, देसजमं वा ण बंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा, पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२३॥[1]

स संयमं न गृह्णाति, देशयमं वा न बध्नाति आयुः।
सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं, वा प्रतिपद्य म्रियते नियमेन ॥२३॥

टीका – सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है, सो सकलसंयम वा देशसयम कौ ग्रहण करै नाही, जातै तिनके ग्रहण योग्य जे करणरूप परिणाम, तिनिका तहां मिश्र-गुणस्थान विषै असंभव है। बहुरि तैसै ही सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव च्यारि गति संबंधी आयु कौ नाही बाधै है। बहुरि मरणकाल विषै नियमकरि सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणाम कौ छोडि, असंयत सम्यग्दृष्टीपना कौ वा मिथ्यादृष्टीपना कौ नियमकरि प्राप्त होइ, पीछै मरै है।

भावार्थ – *मिश्रगुणस्थान तै पंचमादि गुणस्थान विषै चढना नाही है।* बहुरि तहां आयुबध वा मरण नाही है।

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥२४॥[2]

सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामेषु यत्रायुष्कं पुरा बद्धम्।
तत्र मरणं मरणांतसमुद्घातोऽपि च न मिश्रे ॥२४॥

टीका – सम्यक्त्वपरिणाम अर मिथ्यात्वपरिणाम इनि दोऊनि विषै जिह परिणाम विषै पुरा कहिए सम्यग्मिथ्यादृष्टीपनाकौ प्राप्ति भए पहिले, परभव का आयु बंध्या होइ, तीहि सम्यक्त्वरूप वा मिथ्यात्वरूप परिणाम विषै प्राप्त भया ही जीव का मरण हो है, ऐसा नियम कहिए है। बहुरि अन्य केई आचार्यनि के

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ३४१, गाथा ३३
२. षट्खडागम – धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ३४९ गाथा ३३ एव पुस्तक ५, पृष्ठ ३१ टीका.

अभिप्राय करि नियम नाही है । सोई कहिए है – सम्यक्त्वपरिणाम विषै वर्तमान कोई जीव यथायोग्य परभव के आयु कौ बांधि बहुरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि होइ पीछै सम्यक्त्व कौ वा मिथ्यात्व कौ प्राप्त होइ मरै है । बहुरि कोई जीव मिथ्यात्व-परिणाम विषै वर्तमान, सो यथायोग्य परभव का आयु बांधि, बहुरि सम्यग्मिथ्या-दृष्टि होइ पीछै सम्यक्त्व कौं वा मिथ्यात्व कौ प्राप्त होइ मरै है । बहुरि तैसे ही माराणांतिक समुद्घात भी मिश्रगुणस्थान विषै नाही है ।

आगै असंयत गुणस्थान के स्वरूप कौ निरूपै है ।

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥२५॥

सम्यक्त्वदेशघातेरुदयाद्वेदकं भवेत्सम्यक्त्वम् ।
चलं मलिनमगाढं तन्नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥२५॥

टीका – अनंतानुबंधी कषायनि का प्रशस्त उपशम नाही है, इस हेतु तै तिन अनंतानुबंधी कषायनि का अप्रशस्त उपशम कौ होते अथवा विसंयोजन होते, बहुरि दर्शनमोह का भेदरूप मिथ्यात्वकर्म अर सम्यग्मिथ्यात्वकर्म, इनि दोऊनि कौ प्रशस्त उपशमरूप होतै वा अप्रशस्त उपशम होते वा क्षय होने के सन्मुख होतै बहुरि सम्यक्त्व प्रकृतिरूप देशघातिया स्पर्धकों का उदय होते ही जो तत्त्वार्थश्रद्धान है लक्षण जाका, ऐसा सम्यक्त्व होइ, सो वेदक ऐसा नाम धारक है ।

जहा विवक्षित प्रकृति उदय आवने योग्य न होइ अर स्थिति, अनुभाग घटनै वा वधनै वा संक्रमण होनै योग्य होइ, तहा अप्रशस्तोपशम जानना ।

बहुरि जहां उदय आवने योग्य न होइ अर स्थिति, अनुभाग घटने-बधने वा संक्रमण होने योग्य भी न होइ, तहां प्रशस्तोपशम जानना ।

बहुरि तीहि सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होतै देशघातिया स्पर्धकनि कै तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करने की सामर्थ्य का अभाव है; तातै सो सम्यक्त्व चल, मलिन अगाढ हो है । जातै सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का तत्त्वार्थश्रद्धान कौ मल उपजावने मात्र ही विषै व्यापार है । तीहि कारण तै तिस सम्यक्त्व प्रकृति कै देशघातिपना है । ऐसै सम्यक्त्व प्रकृति के उदय कौ अनुभवता जीव के उत्पन्न भया

जो तत्त्वार्थश्रद्धान, सो वेदक सम्यक्त्व है, असा कहिए है। यह ही वेदक सम्यक्त्व है, सो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व असा नामधारक है, जातै दर्शनमोह के सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय का अभावरूप है लक्षण जाका, ऐसा क्षय होतै, बहुरि देशघातिस्पर्धकरूप सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होतै, बहुरि तिसही का वर्तमान समयसबंधी तै ऊपरि के निषेक उदय कौ न प्राप्त भए, तिनिसंबंधी स्पर्धकनि का सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका, ऐसा उपशम होतै वेदक सम्यक्त्व हो है। तातै याही का दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, भिन्न नाही है।

सो वेदक सम्यक्त्व कैसा है? नित्यं कहिए नित्य है। इस विशेषण करि याकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त है, तथापि उत्कृष्टपना करि छ्यासठि सागरप्रमाण काल रहै है। तातै उत्कृष्ट स्थिति अपेक्षा दीर्घकाल ताई रहै है, तातै नित्य कह्या है। बहुरि सर्वकाल अविनश्वर अपेक्षा नित्य इहा न जानना। बहुरि कैसा है? कर्मक्षपणहेतु (कहिए) कर्मक्षपावने का कारण है। इस विशेषण करि मोक्ष के कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम है, तिनि विषै सम्यक्त्व ही मुख्य कारण है, ऐसा सूचै है। बहुरि वेदक सम्यक्त्व विषै शंकादिक मल है, ते भी यथासंभव सम्यक्त्व का मूल तै नाश करने कौ कारण नाही, असे सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तै उपजे है।

बहुरि औपशमिक अर क्षायिक सम्यक्त्व विषै मल उपजावने कौ कारण तिस सम्यक्त्व प्रकृति का उदय का अभाव तै निर्मलपना सिद्ध है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।

बहुरि चलादिकनि का लक्षण कहै है, तहा चलपना कहिए है -

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं।
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ॥
स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते।
अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥

याका अर्थ - नाना प्रकार अपने ही विशेष कहिए आप्त, आगम, पदार्थरूप श्रद्धान के भेद, तिनि विषै जो चलै - चंचल होइ, सो चल कह्या है। सोई कहिए है - अपना कराया अर्हन्तप्रतिबिबादिक विषै यहु मेरा देव है, ऐसे ममत्व करि, बहुरि

अन्यकरि कराया अर्हन्तप्रतिबिंबादिक विषै यहु अन्य का है, ऐसे पर का मानिकरि भेदरूप भजन करै है; तातै चल कह्या है।

इहा दृष्टांत कहै है – जैसै नाना प्रकार कल्लोल तरंगनि की पंक्ति विषै जल एक ही अवस्थित है, तथापि नाना रूप होइ चल है; तैसे मोह जो सम्यक्त्व प्रकृति का उदय, तातै श्रद्धान है, सो भ्रमण रूप चेष्टा करै है।

भावार्थ – जैसे जल तरंगनि विषै चंचल होइ, परन्तु अन्यभाव कौ न भजै, तैसे वेदक सम्यग्दृष्टि अपना वा अन्य का कराया जिनबिंबादि विषै यहु मेरा, यहु अन्य का इत्यादि विकल्प करै है, परंतु अन्य देवादिक कौ नाही भजै है।

अब मलिनपना कहिए है –

तदप्यलब्धमाहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः।
मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

याका अर्थ – सो भी वेदक सम्यक्त्व है, सो सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तै न पाया है माहात्म्य जिहि, ऐसा हो है। बहुरि सो शकादिक मल का संगकरि मलिन हो है। जैसे शुद्ध सोना बाह्य मल का संयोग तै मलिन हो है, तैसे वेदक सम्यक्त्व शकादिक मल का संयोग तै मलिन हो है।

अब अगाढ कहिए है –

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते।
वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥
समेप्यनंतशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं।
देवोऽस्मै प्रभुरेषोस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

याका अर्थ – स्थान कहिए आप्त, आगम, पदार्थनि का श्रद्धान रूप अवस्था, तिहि विषै तिष्ठता हुआ ही कांपै, गाढा न रहै, सो अगाढ ऐसा कहिए है।

ताका उदाहरण कहैं हैं – अैसे तीव्र रुचि रहित होय सर्व अर्हन्त परमेष्ठीनि कै अनतशक्तिपना समान होते संते, भी इस शातिकर्म, जो शाति क्रिया ताकै अर्थि शातिनाथ देव है, सो प्रभु कहिए समर्थ है। बहुरि इस विघ्ननाशन आदि क्रिया के अर्थि पार्श्वनाथ देव समर्थ है। इत्यादि प्रकार करि रुचि, जो प्रतीति, ताकी शिथिलता संभवै है। तातै बूढे का हाथ विषै लाठी शिथिल संबंधपना करि अगाढ है, तैसे सम्यक्त्व अगाढ है।

भावार्थ – जैसें बूढे के हाथ तें लाठी छूटै नाही, परंतु शिथिल रहै। तैसें वेदक सम्यक्त्व का श्रद्धान छूटै नाहीं। शांति आदि के अर्थि अन्य देवादिकनि कौ न सेवैं, तथापि शिथिल रहै। जैन देवादिक विषैं कल्पना उपजावै।

असा इहा चल, मलिन, अगाढ का वर्णन उपदेशरूप उदाहरण मात्र कह्या है। सर्व तारतम्य भाव ज्ञानगम्य है।

आगैं औपशमिक, क्षायिक सम्यक्त्वनि का उपजने का कारण अर स्वरूप प्रतिपादन करै है –

सत्तण्हं उवसमदो, उवसमसम्मो खयादु खइयो य।
बिदियकसायुदयादो, असंजदो होदि सम्मो य ॥२६॥

सप्तानामुपशमतः, उपशमसम्यक्त्वं क्षयात्तु क्षायिकं च।
द्वितीयकषायोदयादसंयतं भवति सम्यक्त्वं च ॥२६॥

टीका – नाही पाइए है अंत जाका, असा अनंत कहिए मिथ्यात्व, ताहि **अनुबध्नंति** कहिए आश्रय करि प्रवर्तैं असैं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; बहुरि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति नाम धारक दर्शनमोह प्रकृति तीन; असैं सात प्रकृतिनि का सर्व उपशम होनें करि औपशमिक सम्यक्त्व हो है। बहुरि तैसैं तिन सात प्रकृतिनि का क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व हो है। बहुरि दोऊ सम्यक्त्व ही निर्मल है, जातैं शंकादिक मलनि का अंश की भी उत्पत्ति नाही संभवै है। बहुरि तैसैं दोऊ सम्यक्त्व निश्चल है, जातैं आप्त, आगम, पदार्थ गोचर श्रद्धान भेदनि विषै कही भी स्खलित न हो है। बहुरि तैसैं ही दोऊ सम्यक्त्व गाढ है, जातैं आप्तादिक विषै तीव्र रुचि संभवै है। यहु मल का न सभवना, स्खलित न होना तीव्ररुचि का संभवना – ए तीनों सम्यक्त्व प्रकृति का उदय का इहां अत्यंत अभाव है, तातैं पाइए है असा जानना।

बहुरि या प्रकार कहे तीन प्रकार सम्यक्त्वनि करि परिणया जो सम्यग्दृष्टि जीव, सो द्वितीय कषाय जे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; इन विषै एक किसी का उदय करि असंयत कहिए असंयमी हो है, याही तैं याका नाम असंयत-सम्यग्दृष्टी है।

आगै तत्त्वार्थश्रद्धान का सम्यक् प्रकार ग्रहण अर त्याग का अवसर नाही, ताहि गाथा दोय करि प्ररूपे है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥[1]

सम्यग्दृष्टिर्जीवः, उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं, अज्ञायमानो गुरुनियोगात् ॥२७॥

टीका – जो जीव अर्हन्तादिकनि करि उपदेस्या हूवा असा जु प्रवचन कहिए आप्त, आगम, पदार्थ ए तीन, ताहि श्रद्दधाति कहिए श्रद्धै है, रोचै है । बहुरि तिनि आप्तादिकनि विषै असद्भावं कहिए अतत्त्व, अन्यथा रूप ताकौ भी अपने विशेष ज्ञान का अभाव करि केवल गुरु ही का नियोग तै जो इस गुरु ने कह्या, सो ही अर्हन्त की आज्ञा है, असा प्रतीति तै श्रद्धान करै है, सो भी सम्यग्दृष्टि ही है, जातै तिस की आज्ञा का उल्लंघन नाही करै है ।

भावार्थ – जो अपनै विशेष ज्ञान न होइ, बहुरि जैनगुरु मंदमति तै आप्तादिक का स्वरूप अन्यथा कहै, अर यहु अर्हन्त की असी ही आज्ञा है, असै मानि जो असत्य श्रद्धान करै तौ भी सम्यग्दृष्टि का अभाव न होइ, जातै इसनै तो अर्हन्त की आज्ञा जानि प्रतीति करी है ।

सुत्तादो तं सम्मं, दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥२८॥

सूत्रात्तं सम्यग्दर्शयंतं, यदा न श्रद्दधाति ।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः तदा प्रभृति ॥२८॥

टीका – तैसै असत्य अर्थ श्रद्धान करता आज्ञा सम्यग्दृष्टी जीव, सो जिस काल प्रवीण अन्य आचार्यनि करि पूर्वै ग्रह्या हुवा असत्यार्थरूप श्रद्धान तै विपरीत भाव सत्यार्थ, सो गणधरादिकनि के सूत्र दिखाइ सम्यक् प्रकार निरूपण कह्या हुवा होइ, ताकौ खोटा हठ करि न श्रद्धान करै तौ, तीहि काल सौ लगाय, सो जीव

1. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७४, गाथा ११०

मिथ्यादृष्टी हो है। जातै सूत्र का अश्रद्धान करि जिन आज्ञा का उल्लंघन का सुप्रसिद्धपना है, तीहि कारण तै मिथ्यादृष्टी हो है ।

आगै असंयतपना अर सम्यग्दृष्टीपना कै सामानाधिकरण्य कौ दिखावै है –

णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि ।
जो सद्दहदि जिणुत्तं, सम्माइट्ठी अविरदोसो ॥२९॥[१]

नो इंद्रियेषु विरतो, नो जीवे स्थावरे त्रसे वापि ।
यः श्रद्दधाति जिनोक्तं, सम्यग्दृष्टिरविरतः सः ॥२९॥

टीका – जो जीव इंद्रियविषयनि विषै **नोविरत** – विरति रहित है, बहुरि तैसै ही स्थावर, त्रस जीव की हिंसा विषै भी नाही विरत है – त्याग रहित है । बहुरि जिन करि उपदेश्या प्रवचन कौ श्रद्धान करै है, सो जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हो है । या करि असंयत, सोई सम्यग्दृष्टी, सो असयतसम्यग्दृष्टी है ऐसै समानाधिकरणपना दृढ कीया । बहुत विशेषणनि का एक वस्तु आधार होइ, तहां कर्मधारेय समास विषै समानाधिरणपना जानना । बहुरि अपि शब्द करि ताकै सवेगादिक सम्यक्त्व के गुण भी याकै पाइए है, ऐसा सूचै है । बहुरि इहां जो अविरत विशेषण है, सो अंत्यदीपक समान जानना । जैसै छैहडै धरचा हुवा दीपक, पिछले सर्वपदार्थनि कौ प्रकाशै, तैसै इहा अविरत विशेषण नीचे के मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषै अविरतपना कौ प्रकाशै है, ऐसा संबंध जानना । बहुरि अपि शब्द करि अनुकंपा भी है ।

भावार्थ—कोऊ जानैगा कि विषयनि विषै अविरती है, तातै विषयानुरागी बहुत होगा, सो नाही है, संवेगादि गुणसंयुक्त है । बहुरि हिंसादि विषै अविरति है, तातै निर्दयी होगा, सो नाही है; दया भाव सयुक्त है, ऐसा अविरतसम्यग्दृष्टि है ।

आगै देशसंयत गुणस्थान कौ गाथा दोय करि निर्देश करै है –

पच्चक्खाणुदयादो, संजमभावो ण होदि णवरिं तु ।
थोववदो होदि तदो, देसवदो होदि पंचमओ ॥३०॥[२]

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७४, गाथा १११.
२ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७६, गाथा ११२.

प्रत्याख्यानोदयात् संयमभावो न भवति नवरि तु ।
स्तोकव्रतं भवति ततो, देशव्रतो भवति पंचमः ॥३०॥

टीका – अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायनि का उपशम तैं प्रत्याख्यानावरण कषायनि का देशघाती स्पर्धकनि का उदय होतैं संतैं सर्वघाती स्पर्धकनि का उदयाभाव रूप लक्षण जाका, ऐसा क्षय करि जाकै सकल संयमरूप भाव न हो है । विशेष यहु देशसंयम कहिए, किंचित् विरति हो है, ताकौ धरैं-धरैं, देशसंयत नामा पंचमगुणस्थानवर्ती जीव जानना ।

जो तसवहाउ विरदो, अविरदओ तह य थावरवहादो ।
एक्कसमयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥३१॥

यस्त्रसवधाद्विरत, अविरतस्तथा च स्थावरवधात् ।
एकसमये जीवो, विरताविरतो जिनैकमतिः ॥३१॥

टीका – सोई देशसंयत विरताविरत ऐसा भी कहिए है । एक काल ही विषै जो जीव त्रसहिंसा तैं विरत है अर स्थावरहिंसा तैं अविरत है, सो जीव विरत अर सोई अविरत ऐसैं विरत-अविरत विषै विरोध है; तथापि अपने-अपने गोचर भाव त्रस-स्थावर के भेद अपेक्षा करि विरोध नाही । तीहि करि विरत-अविरत ऐसा उपदेश योग्य है । बहुरि तैसैं चकार शब्द करि प्रयोजन विना स्थावर हिंसा कौं भी नाहीं करै है, ऐसा व्याख्यान करना योग्य है । सो कैसा है ? **जिनैकमतिः** कहिए जिन जे आप्तादिक, तिनही विषै है एक केवल मति कहिए इच्छा - रुचि जाकैं ऐसा है । इस करि देशसयत कैं सम्यग्दृष्टीपना है, ऐसा विशेषण निरूपण कीया है । यहु विशेषण आदि दीपक समान है, सो आदि विषै धरचा हूवा दीपक जैसैं अगिले सर्व पदार्थनि कौं प्रकाशै, तैसैं इहांतै आगैं भी सर्व गुणस्थानकनि विषै इस विशेषण करि संबंध करना योग्य है – सर्व सम्यग्दृष्टी जानने ।

आगैं प्रमत्तगुणस्थान कौं गाथा दोय करि कहैं है –

संजलण णोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा ।
मलजणणपमादो वि, य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥३२॥

संज्वलननोकषायाणामुदयात्संयमो भवेद्यस्मात् ।
मलजननप्रमादोऽपि च तस्मात्खलु प्रमत्तविरतः सः ॥३२॥

टीका – जा कारण तै संज्वलनकषाय के सर्वघाती स्पर्धकनि का उदयाभाव लक्षण धरैं क्षय होतैं, बहुरि बारह कषाय उदय कौ न प्राप्त तिनका, अर संज्वलन कषाय अर नोकषाय, इनके निषेकनि का सत्ता अवस्था रूप लक्षण धरै उपशम होतै; बहुरि संज्वलनकषाय, नोकषायनि का देशघाती स्पर्धकनि का तीव्र उदय तै सकलसयम अर मल का उपजावनहारा प्रमाद दोऊ हो है। तीहि कारण तै प्रमत्त सोई विरत, सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्तसंयत असा कहिए है।

"विवक्खिदस्स संजमस्स खम्रोवसमियत्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कथं संजलणणोकसायाणं चरित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं ? देशघादित्तेण सपडिवक्ख गुणं विणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणो वि ण स कज्जकार ओत्ति संजमहेदुत्तेण विविक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादोविय 'अविय इत्यवधारणे' मलजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा हु पमत्ताविरदो सो तमुवलक्खदि।"

याका अर्थ – विवक्षित जो संयम, ताकै क्षायोपशमिकपना का उत्पादनमात्र फलपना है। संज्वलन अर नोकषाय जे चारित्र के विरोधी, तिनकै चारित्र का करना – उपजावना कैसै संभव है ?

तहां कहै है – एक देशघाती है, तीहि भावकरि अपना प्रतिपक्षी संयमगुण, ताहि निर्मूल नाश करने की शक्ति रहित है। सो इनका उदय विद्यमान भी है, तथापि अपना कार्यकारी नाही, सयम नाश न करि सकै है। अैसै संयम का कारणपना करि विवक्षा तै संज्वलन अर नोकषायनि कै चारित्र उपजावना उपचार करि जानना। वस्तु तै यथार्थ निश्चय विचार करिए, तव ए सज्वलन अर नोकपाय अपने कार्य ही कौ उपजावै है। इनि तै मल का उपजावनहारा प्रमाद हो है। अपि च अैसा शब्द है सो प्रमाद भी है, अैसा अवधारण अर्थ विषै जानना। मल का उपजावनहारा प्रमाद है, जातै अैसै तातै प्रकट प्रमत्तविरत, सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव है।

ताहि लक्षण करि कहै है –

वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणशीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो ॥३३॥[1]

---

१. पट्खडागम – धवला, पुस्तक १, पृष्ठ १७६, गाथा ११३

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति ।
सकलगुणशीलकलितो, महाव्रती चित्रलाचरणः ।।३३।।

टीका – **व्यक्त** कहिए आपके जानने में आवै, वहुरि **अव्यक्त** कहिए प्रत्यक्ष ज्ञानीनि के ही जानने योग्य असा जो प्रमाद, तीहिविषै जो संयत प्रवर्तै, सो चारित्र-मोहनीय का क्षयोपशम का माहात्म्य करि समस्त गुण अर शील करि सयुक्त महाव्रती हो है । **अपि** शब्द करि प्रमादी भी हो है, अर महाव्रती भी हो है । इहां सकलसंयमपनों महाव्रतीपनो देशसंयत अपेक्षा करि जानना, ऊपरि के गुणस्थाननि की अपेक्षा नाही है । तिस कारण तै ही प्रमत्तसंयत चित्रलाचरण है, असा कह्या है । **चित्रं** कहिए प्रमाद करि मिश्ररूप कौ **'लाति'** कहिए गहै – करै, सो चित्रल कहिए । चित्रल आचरण जाकै होइ, सो चित्रलाचरण जानना । अथवा चित्रल कहिए सारंग, चीता, तिहिं समान मिल्या हूवा काबरा आचरण जाका होइ, सो चित्रलाचरण जानना । अथवा **चित्तं** लाति कहिए मन कौ प्रमादरूप करि कहै, सो चित्तल कहिए । चित्तल है आचरण जाका, सो चित्तलाचरण जानना । असी विशेष निरुक्ति भी पाठातर अपेक्षा जाननी ।

आगै तिनि प्रमादनि का नाम, सख्या दिखावने के अर्थि सूत्र कहै है –

विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं, होंति पमादा हु पण्णरस ।।३४।।[1]

विकथा तथा कषाया, इंद्रियनिद्राः तथैव प्रणयश्च ।
चतुश्चतुः पञ्चैकैकं, भवंति प्रमादाः खलु पंचदश ।।३४।।

टीका – संयमविरुद्ध जे कथा, ते विकथा कहिए । वहुरि **कषंति** कहिए संयमगुण कौं घातैं, ते कषाय कहिए । वहुरि संयम विरोधी इंद्रियनि का विषय प्रवृत्तिरूप व्यापार, ते इद्रिय कहिए । वहुरि स्त्यानगृद्धि आदि तीन कर्मप्रकृतिनि का उदय करि वा निद्रा, प्रचला का तीव्र उदय करि प्रकट भई जो जीव कै अपने दृश्य पदार्थनि का सामान्यमात्र ग्रहण कौ रोकनहारी जडरूप अवस्था, सो निद्रा है । वहुरि वाह्य पदार्थनि विषै ममत्वरूप भाव सो, प्रणय कहिए स्नेह है । ए क्रम तै विकथा च्यारि, कपाय च्यारि, इंद्रिय पांच, निद्रा एक, स्नेह एक असै सर्व मिलि प्रमाद पंद्रह

---

१. षट्खंडागम – धवला, पुस्तक १, पृष्ठ १७९ गाथा ११४.

हो है। इहा सूत्र विषै पहिलै चकार कह्या, सो सर्व ही ए प्रमाद है, असा साधारण भाव जानने के अर्थि कह्या है। बहुरि दूसरा तथा शब्द कह्या, सो परस्पर समुदाय करने के अर्थि कह्या है।

आगै इनि प्रमादनि के अन्य प्रकार करि पांच प्रकार है, तिनकौ नव गाथानि करि कहै है –

संखा तह पत्थारो, परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं।
एदे पंच पयारा, पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥३५॥

संख्या तथा प्रस्तारः, परिवर्तन नष्टं तथा समुद्दिष्टम्।
एते पंच प्रकाराः, प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेयाः ॥३५॥

टीका – सख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट ए पांच प्रकार प्रमादनि का व्याख्यान विषै जानना। तहा प्रमादनि का आलाप कौ कारणभूत जो अक्ष-संचार के निमित्त का विशेष, सो संख्या है। बहुरि इनका स्थापन करना, सो प्रस्तार है। बहुरि अक्षसंचार परिवर्तन है। संख्या धरि अक्ष का ल्यावना नष्ट है। अक्ष धरि संख्या का ल्यावना समुद्दिष्ट है। इहा भंग कौ कहने का विधान, सो आलाप जानना। बहुरि भेद वा भंग का नाम अक्ष जानना। बहुरि एक भेद अनेक भंगनि विषै क्रम तै पलटै, ताका नाम अक्षसचार जानना। बहुरि जेथवा भग होइ, तीहि प्रमाण का नाम सख्या जानना।

आगै विशेष संख्या की उत्पत्ति का अनुक्रम कहै है –

सव्वे पि पुव्वभंगा, उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंति त्ति य कमसो, गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

सर्वेऽपि पूर्वभंगा, उपरिमभंगेषु एकैकेषु।
मिलंति इति च क्रमशो, गुणिते उत्पद्यते संख्या ॥३६॥

टीका – सर्व ही पहिले भंग ऊपरि-ऊपरि के भंगनि विषै एक-एक विषै मिलै है, संभवै है। यातै क्रम करि परस्पर गुणै, विशेष संख्या उपजै है। सोई कहिए है – पूर्व भंग विकथाप्रमाद च्यारि, ते ऊपरि के कषायप्रमादनि विषै एक-एक विषै सभवै

हैं। अैसे च्यारि विकथानि करि गुणे, च्यारि कषायनि के सोलह प्रमाद हो है। वहुरि ए नीचले भंग सोलह भए, ते ऊपरि के इंद्रियप्रमादनि विषै एक-एक विषै संभवै हैं। असे सोलह करि गुणे, पंच इंद्रियनि के असी प्रमाद हो है। तैसे ही निद्रा विषैं, वहुरि स्नेह विषै एक-एक ही भेद है। तातै एक-एक करि गुणै भी असी-असी ही प्रमाद हो हैं। अैसे विशेष संख्या की उत्पत्ति कही।

आगै प्रस्तार का अनुक्रम दिखावै है –

पढमं पमदपमाणं, कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केकं, णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥

प्रथमं प्रमादप्रमाणं, क्रमेण निक्षिप्य उपरिमाणं च।
पिंडं प्रति एकैकं, निक्षिप्ते भवति प्रस्तारः ॥३७॥

टीका – प्रथम विकथास्वरूप प्रमादनि का प्रमाण का विरलन करि एक-एक जुदा विखेरी, पीछै क्रम करि नीचै विरल कीया था। ताकै एक-एक भेद प्रति एक-एक ऊपरि का प्रमादपिंड कौ स्थापन करना, तिनकौ मिलै प्रस्तार हो है। सो कहिए है – विकथा प्रमाद का प्रमाण च्यारि, ताकौ विरलन करि क्रम तै स्थापि (१ १ १ १) वहुरि ताकै ऊपरि का दूसरा कषाय नामा प्रमाद, ताका पिंड जो समुदाय, ताका प्रमाण च्यारि (४) ताहि विरलनरूप स्थापे जे नीचले प्रमाद, तिनिका एक-एक भेद प्रति देना।

भावार्थ – एक-एक विकथा भेद ऊपरि च्यारि-च्यारि कषाय स्थापने

क ४ ४ ४ ४
वि १ १ १ १ सो इनकौ मिलाए जोडे, सोलह प्रमाद हो है। वहुरि ऊपरि की अपेक्षा लीए याकौं पहिला प्रमादपिंड कहिए, सो याकौ विरलन करि क्रम ते स्थापि, याते ऊपरी का तिस पहिला की अपेक्षा याको दूसरा इंद्रियप्रमाद, ताका पिड प्रमाण पाच, ताहि पूर्ववत् विरलन करि स्थापे, जे नीचले प्रमाद, तिनके एक-एक भेद प्रति एक-एक पिडरूप स्थापिए –

५ ५ ५ ५　　५ ५ ५ ५　　५ ५ ५ ५　　५ ५ ५ ५
१ १ १ १　　१ १ १ १　　१ १ १ १　　१ १ १ १
क्रो मा मा लो, क्रो मा मा लो, क्रो मा मा लो, क्रो मा मा लो,
स्त्री स्त्री स्त्री स्त्री, भ भ भ भ, रा रा रा रा, अ अ अ अ,

भावार्थ – सोलह भेदनि विषै एक-एक भेद ऊपरि पांच-पांच इंद्रिय स्थापने, सो इनकौं जोडै, असी भंग हो हैं। यहु प्रस्तार आगै कहिए जो अक्षसंचार, ताका कारण है। अैसें प्रस्ताररूप स्थापे जे असी भंग, तिनिका आलाप जो भंग कहने का विधान, ताहि कहिए है – स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्री-कथालापी अैसैं यहु असी भंगनि विषै पहिला भंग है। बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-रसना इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु दूसरा भंग है। बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-घ्राण इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु तीसरा भंग भया। बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-चक्षु इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु चौथा भंग है। बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु पांचवा भंग है। अैसै पांच भंग भए। याही प्रकार क्रोधी की जायगा मानी स्थापि पंच भंग करने।

बहुरि मायावी स्थापि पंच भंग करने। बहुरि लोभी स्थापि पंच भंग करने। अैसैं एक-एक कषाय के पांच-पांच होइ, च्यारि कषायनि के एक स्त्रीकथा प्रमाद विषै वीस आलाप हो हैं। बहुरि जैसैं स्त्रीकथा आलापी की अपेक्षा वीस भेद कहे, तैसै ही स्त्रीकथालापी की जायगा भक्तकथालापी, बहुरि राष्ट्रकथालापी, बहुरि अवनिपालकथालापी क्रम तैं स्थापि एक-एक विकथा के वीस-वीस भंग होइ। च्यारौ विकथानि के मिलि करि सर्वप्रमादनि के असी आलाप हो है, अैसा जानना।

आगै अन्य प्रकार प्रस्तार दिखावै हैं –

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं, पढमं तस्सुवरि बिदयमेक्केक्कं।
पिंडं पडि णिक्खेओ, एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥३८॥

निक्षिप्त्वा द्वितीयमात्रं, तस्योपरि द्वितीयमेकैकम्।
पिंडं प्रति निक्षेप, एवं सर्वत्र कर्तव्यः ॥३८॥

टीका – कषायनामा दूसरा प्रमाद का जेता प्रमाण, तीहिमात्र स्थानकनि विषै विकथास्वरूप पहिला प्रमाद का समुदायरूप पिंड जुदा-जुदा स्थापि (४४४४), बहुरि एक-एक पिंडप्रति द्वितीय प्रमादनि का प्रमाण का एक-एक रूप ऊपरि स्थापना।

भावार्थ – च्यारि-च्यारि प्रमाण लीए, एक-एक विकथा प्रमाद का पिंड, ताकौं दूसरा प्रमाद कषाय का प्रमाण च्यारि, सो च्यारि जायगा स्थापि, एक-एक पिंड के ऊपरि क्रम तैं एक-एक कषाय स्थापिए $\begin{pmatrix} १ & १ & १ & १ \\ ४ & ४ & ४ & ४ \end{pmatrix}$ अैसें स्थापन कीए, तिन का जोड सोलह पिंड प्रमाण होइ। वहुरि 'अैसें ही सर्वत्र करना' इस वचन तें यहु सोलह प्रमाण पिंड जो समुदाय, सो तीसरा इंद्रिय प्रमाद का जेता प्रमाण, तितनी जायगा स्थापिए। सो पांच जायगा स्थापि (१६ १६ १६ १६ १६), इनके ऊपरी तीसरा इंद्रिय प्रमाद का प्रमाण एक-एक रूपकरि स्थापन करना।

भावार्थ – पूर्वोक्त सोलह भेद जुदे-जुदे इंद्रिय प्रमाद का प्रमाण पांचा, सो पांच जायगा स्थापि, एक-एक पिंड के ऊपरि एक-एक इंद्रिय भेद स्थापन करना $\begin{pmatrix} १ & १ & १ & १ \\ १६ & १६ & १६ & १६ \end{pmatrix}$ अैसें स्थापन कीए, अधस्तन कहिए नीचे की अपेक्षा अक्षसंचार कौं कारण दूसरा प्रस्तार हो है।

सो इस प्रस्तार अपेक्षा आलाप जो भंग कहने का विधान, सो कैसें हो है ?

सोई कहिए है – स्त्रीकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन-इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् अैसा असी भंगनि विषै प्रथम भंग है। वहुरि भक्तकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान अैसा दूसरा भंग है। वहुरि राष्ट्रकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् अैसा तीसरा भंग है। वहुरि अवनिपालकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् अैसा चौथा भंग है। अैसें ही क्रोध की जायगा मानी वा मायावी वा लोभी क्रम तैं कहि च्यारि-च्यारि भंग होइ, च्यारौं कषायनि के एक स्पर्शन इंद्रिय विषै सोलह आलाप हो है।

वहुरि अैसें ही स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत की जायगा रसना वा घ्राण वा चक्षु वा श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत क्रम तैं कहि एक-एक के सोलह-सोलह भेद होइ पाचों इंद्रियनि के असी प्रमाद आलाप हो है। तिनि सवनि को जानि व्रती पुरुषनि करि प्रमाद छोडने।

भावार्थ – एकै जीव कै एक काल कोई एक-एक, कोई भेदरूप विकथादिक हो हैं। तातैं तिनके पलटने की अपेक्षा पद्रह प्रमादनि के असी भग हो हैं। अैसा ही यहु अनुक्रम चौरासी लाख उत्तरगुण, अठारह हजार शील के भेद, तिनका भी प्रस्तार विषै करना।

आगै पीछे कह्या जो दूसरा प्रस्तार, ताकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहिए अक्षसंचार, ताका अनुक्रम कहै हैं -

पढमक्खो अंतगदो, आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णिवि गंतूणंतं, आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥३९॥

प्रथमाक्ष अंतगतः आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः ।
द्वावपि गत्वांतमादिगते, संक्रामति तृतीयाक्षः ॥३९॥

टीका - पहिला प्रमाद का अक्ष कहिए भेद विकथा, सो आलाप का अनुक्रम करि अपने पर्यन्त जाइ, बहुरि बाहुडि करि अपने प्रथम स्थान कौ युगपत् प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो अपने दूसरे स्थान कौ प्राप्त होइ ।

भावार्थ - आलापनि विषै पहिलै तो विकथा के भेदनि कौ पलटिए, क्रम तैं स्त्री, भक्त, राष्ट्र, अवनिपालकथा च्यारि आलापनि विषै कहिए । अर अन्य प्रमादनि का पहिला-पहिला ही भेद इन चारौ आलापनि विषै ग्रहण करिए । तहां पीछैं पहिला विकथा प्रमाद अपना अंत अवनिपालकथा तहां पर्यंत जाइ, बाहुडि करि अपना स्त्रीकथारूप प्रथम भेद कौ जब प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद कषाय, सो अपना पहला स्थान क्रोध को छोडि, द्वितीय स्थान मान कौ प्राप्त होइ । बहुरि प्रथम प्रमाद का अक्ष पूर्वोक्त अनुक्रम करि संचार करता अपना पर्यन्त कौ जाइ, बाहुडि करि युगपत् अपना प्रथम स्थान कौ जब प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो अपना तीसरा स्थान कौ प्राप्त होइ ।

भावार्थ - दूसरा कषाय प्रमाद दूसरा भेद मान कौ प्राप्त हुवा, तहां भी पूर्वोक्त प्रकार पहला भेद क्रम तै च्यारि आलापनि विषै क्रम तै पलटी, अपना पर्यन्त भेद ताईं जाइ, बाहुडि अपना प्रथम भेद स्त्रीकथा कौ प्राप्त होइ, तब कषाय प्रमाद अपना तीसरा भेद माया कौ प्राप्त हो है । बहुरि अैसै ही संचार करता, पलटता दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो जब अपने अत पर्यन्त भेद कौ प्राप्त होइ, तब प्रथम अक्ष विकथा, सो भी अपना पर्यन्त भेद कौ प्राप्त होइ तिष्ठै ।

भावार्थ - पूर्वोक्त प्रकार च्यारि आलाप माया विषै, च्यारि आलाप लोभ विषै भए कषाय अक्ष अपना पर्यन्त भेद लोभ, ताकौ प्राप्त भया । अर इनिविषै

पहिला अक्ष विकथा, सो भी अपना पर्यन्त भेद अवनिपालकथा, ताकौं प्राप्त भया; ऐसैं होते सोलह आलाप भए ।

बहुरि ए दोऊ अक्ष विकथा अर कषाय बाहुडि करि अपने प्रथम स्थान कौं प्राप्त भए, तब तीसरा प्रमाद का अक्ष अपना प्रथम स्थान छोडि, दूसरा स्थान कौं प्राप्त हो है । अर इस ही अनुक्रम करि प्रथम अर द्वितीय अक्ष का क्रम तैं अपने पर्यन्त भेद ताईं जानना । बहुरि बाहुडना तिनकरि तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो अपना तीसरा आदि स्थान कौं प्राप्त होइ, ऐसा जानना ।

भावार्थ – विकथा अर कषाय अक्ष बाहुडि अपना प्रथम स्थान स्त्रीकथा अर क्रोध कौं प्राप्त होइ, तब इंद्रिय अक्ष विषै पूर्वै सोलह आलापनि विषै पहिला भेद स्पर्शन इंद्रिय था, सो तहां रसना इंद्रिय होइ, तहां पूर्वोक्त प्रकार अपना-अपना पर्यंत भेद ताईं जाय, तब रसना इंद्रिय विषै सोलह आलाप होइ । बहुरि तैसैं ही ते दोऊ अक्ष बाहुडि अपने प्रथम स्थान कौं प्राप्त होइ, तब इंद्रिय अक्ष अपना तीसरा भेद घ्राण इंद्रिय कौं प्राप्त होइ, या विषै पूर्वोक्त प्रकार सोलह आलाप होइ ।

बहुरि इस ही क्रमकरि सोलह-सोलह आलाप चक्षु, श्रोत्र इंद्रिय विषैं भए, सर्व प्रमाद के अक्ष अपने पर्यन्त भेद कौं प्राप्त होइ तिष्ठैं हैं । यहु अक्षसंचार का अनुक्रम नीचै के अक्ष तैं लगाय, ऊपरि के अक्ष पर्यन्त विचार करि प्रवर्तावना । बहुरि अक्ष की सहनानी हंसपद है, ताका आकार (×) ऐसा जानना ।

आगै प्रथम प्रस्तार की अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहै हैं –

तदियक्खो अंतगदो, आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णिवि गंतूणंतं, आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥४०॥

तृतीयाक्षः अंतगतः, आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः ।
द्वावपि गत्वांतमादिगते संक्रामति प्रथमाक्षः ॥४०॥

टीका – तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो आलाप का अनुक्रम करि अपने पर्यन्त जाइ स्पर्शनादि क्रम तै पांच आलापनि विषै श्रोत्र पर्यन्त जाइ, बहुरि बाहुडि युगपत् अपने प्रथम स्थान स्पर्शन कौं प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, जो पहलै क्रोधरूप प्रथम स्थान कौं प्राप्त था, ताकौं छोडि अपना दूसरा स्थान मान

कौ प्राप्त हो है । तहां बहुरि तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो पूर्वोक्त अनुक्रम करि अपने अंत भेद पर्यन्त जाइ, बाहुडि युगपत् प्रथम स्थान कौ प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो दूसरा स्थान मान कौ छोडि, अपना तृतीय स्थान माया कौं प्राप्त होइ । तहा भी पूर्वोक्त प्रकार विधान होइ, असै क्रम तै दूसरा प्रमाद का अक्ष जब एक बार अपना पर्यन्त भेद लोभ कौ प्राप्त होइ, तब तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो भी क्रम करि संचार करता अपने अत भेद कौ प्राप्त होइ, तब बीस आलाप होइ ।

भावार्थ – एक-एक कषाय विषै पांच-पाच आलाप इंद्रियनि के संचार करि होइ । बहुरि ते इंद्रिय अर कषाय दोऊ ही अक्ष बाहुडि अपने-अपने प्रथम स्थान कौ युगपत् प्राप्त होइ, तब पहिला प्रमाद का अक्ष विकथा, सो पहिलै बीसों आलापनि विषै अपना प्रथम स्थान स्त्रीकथा रूप, ताकौ प्राप्त था । सो अब प्रथम स्थान कौ छोडि, अपना द्वितीय स्थान भक्तकथा कौ प्राप्त होइ । बहुरि इस ही अनुक्रम करि पूर्वोक्त प्रकार तृतीय, द्वितीय प्रमाद का अक्ष इंद्रिय अर कषाय, तिनिका अपने अंत पर्यन्त जानना । बहुरि बाहुडना इनि करि प्रथम प्रमाद का अक्ष विकथा, सो अपना तृतीयादि स्थानकनि कौ प्राप्त होइ, असा सचार जानना ।

भावार्थ – पूर्वोक्त प्रकार एक-एक विकथा भेद विषै इंद्रिय-कषायनि के पलटने तै बीस आलाप होइ, ताके चारौ विकथानि विषै असी आलाप हो है । यहु अक्षसंचार का अनुक्रम ऊपरि अंत का भेद इंद्रिय का पलटन तै लगाय क्रम तै अधस्तन पूर्व-पूर्व अक्ष का परिवर्तन कौ विचारि पलटना, असै अक्षसचार कह्या । अक्ष जो भेद, ताका क्रम तै पलटने का विधान असै जानना ।

आगै नष्ट ल्यावने का विधान दिखावै है –

सगमाणेहिं विभत्ते, सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं ।
लद्धे रूवं पक्खिव, सुद्धे अंते ण रूवपक्खेओ ॥४१ ॥

स्वकमानैर्विभक्ते, शेषं लक्षयित्वा जानीहि अक्षपदम् ।
लब्धे रूपं प्रक्षिप्य शुद्धे अंते न रूपप्रक्षेपः ॥४१॥

टीका – कोऊ जेथवां प्रमाद भंग पूछै, तीहि प्रमाद भंग का आलाप की खबरि नाही, जो यहु आलाप कौन है, तहा ताकौ नष्ट कहिए । ताके ल्यावने

का, जानने का उपाय कहिए है। कोऊ जेथवां प्रमाद पूछ्या होइ, ताकौ अपना प्रमाद पिंड का भाग दीजिए, जो अवशेष रहै, सो अक्षस्थान जानना। बहुरि जेते पाए होइ, तिनिविषै एक जोडि, जो प्रमाण होइ, ताकौ द्वितीय प्रमाद पिंड का भाग देना, तहां भी तैसें ही जानना। असें ही क्रम तै सर्वत्र करना। इतना विशेष जानना, जो जहा भाग दीएं राशि शुद्ध होइ जाय, कछु भी अवशेष न रहै; तहा तिस प्रमाद का अत भेद ग्रहण करना। बहुरि तहां जो लब्धराशि होइ, तिहि विषै एक न जोडना। बहुरि असें करतै अंत जहा होइ, तहां एक न जोड़ना, सो कहिए है।

जेथवा प्रमाद पूछ्या, तिस विवक्षित प्रमाद की सख्या कौ प्रथम प्रमाद विकथा, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग देइ, अवशेष जितना रहै, सो अक्ष-स्थान है। जितने अवशेष रहै, तेथवा विकथा का भेद, तिस आलाप विषै जानना। बहुरि इहा भाग दीए, जो पाया, तीह लब्धराशि विषै एक और जोड़ना। जोडें जो प्रमाण होइ, ताका ऊपरि का दूसरा प्रमाद कषाय, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग देइ, जो अवशेष रहै, सो तहां अक्षस्थान जानना। जितने अवशेष रहै, तेथवां कषाय का भेद तिस आलाप विषै जानना बहुरि जो इहा लब्धराशि होइ, तीहि विषै एक जोडि, तीसरा प्रमाद इंद्रिय, ताका प्रमाण पिंड पाच, ताका भाग दीजिए। बहुरि जहा अवशेष शून्य रहै, तहां प्रमादनि का अंतस्थान विषै ही अक्ष तिष्ठै है। तहा अंत का भेद ग्रहण करना, बहुरि लब्धिराशि विषै एक न जोडना।

इहां उदाहरण कहिए है – काहूने पूछ्या कि असी भगनि विषै पंद्रहवा प्रमाद भंग कौन है ?

तहा ताके जानने को विवक्षित नष्ट प्रमाद की संख्या पंद्रह, ताकौ प्रथम प्रमाद का प्रमाण पिंड च्यारि का भाग देइ तीन पाए, अर अवशेष भी तीन रहै, सो तीन अवशेष रहै, तातै विकथा का तीसरा भेद राष्ट्रकथा, तीहि विषै अक्ष है, तहां अक्ष देइकरि देखै।

भावार्थ – तहां पंद्रहवां आलाप विषै राष्ट्रकथालापी जानना। बहुरि तहां तीन पाए थे। तिस लब्धराशि तीन विषै एक जोडें, च्यारि होइ, ताकौ ताके ऊपरि कषाय प्रमाद, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग दीएं अवशेष शून्य है, किछु न रह्या, तहां तिस कषाय प्रमाद का अंत भेद जो लोभ, ताका आलाप विषै अक्ष सूचै है। जातै जहां राशि शुद्ध होइ जाइ, तहां ताका अंत भेद ग्रहण करना।

भावार्थ – पंद्रहवा आलाप विषै लोभी जानना। बहुरि तहा लब्धराशि एक, तीहि विषै एक न जोडना। जातै जहा राशि शुद्ध होइ जाय, तहा पाया राशि विषै एक और न मिलावना सो एक का एक ही रह्या, ताकौ ऊपरि का इद्रिय प्रमाण पिंड पांच का भाग दीए, लब्धराशि शून्य है। जातै भाज्य तै भागहार का प्रमाण अधिक है, तातै इहा लब्धराशि का अभाव है। अवशेष एक रह्या, तातै इद्रिय का स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत असा प्रथम भेद रूप अक्ष पंद्रहवा आलाप विषै सूचै है। असै पंद्रहवां राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान ऐसा आलाप जानना।

याही प्रकार जेथवां आलाप जान्यां चाहिए, तेथवां नष्ट आलाप कौ साधै।

बहुरि इहां द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा विकथादिक का क्रम करि जैसै नष्ट ल्यावने का विधान कह्या, तैसै ही प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरि तै इंद्रिय, कषाय, विकथा का अनुक्रम करि पूर्वोक्त भागादिक विधान तै नष्ट ल्यावने का विधान करना।

तहां उदाहरण – किसी ने पूछा प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पंद्रहवा आलाप कौन ?

तहां इस संख्या कौ पांच का भाग दीए, अवशेष शून्य, तातै इहां अंत का भेद श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत ग्रहण करना।

बहुरि इहां पाए तीन, ताकौ कषाय पिड प्रमाण च्यारि, ताका भाग दीए, लब्धराशि शून्य, अवशेष तीन, तातै तहां तीसरा कषाय भेद मायावी जानना। बहुरि लब्धराशि शून्य विषै एक मिलाएं एक भया, ताकौ विकथा का प्रमाद पिड च्यारि का भाग दीएं लब्धराशि शून्य, अवशेष एक, सो स्त्रीकथालापी जानना। ऐसें प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पद्रहवां स्नेहवान्-निद्रालु-श्रोत्र इद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी असा आलाप जानना। असै ही अन्य नष्ट आलाप साधने।

आगे आलाप धरि संख्या साधने कौ अगिला सूत्र कहै है –

संठाविदूण रूवं, उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।
अवणिज्ज अणंकिदयं, कुज्जा एमेव सव्वत्थ ॥४२॥

संस्थाप्य रूपमुपरितः संगुणित्वा स्वकमानम्।
अपनीयानंकितं, कुर्यात् एवमेव सर्वत्र ॥४२॥

टीका – प्रथम एक रूप स्थापन करि ऊपरि तै अपना प्रमाण करि गुणें, जो प्रमाण होई, तामैं अनंकित स्थान का प्रमाण घटावना, ऐसैं सर्वत्र करना। इहां जो भेद ग्रहण होइ, ताकैं परै स्थानकनि की जो संख्या, ताकौ अनंकित कहिए। जैसें विकथा प्रमाद विषैं प्रथम भेद स्त्रीकथा का ग्रहण होइ, तौ तहा ताकै परै तीन स्थान रहैं, तातै अनंकित का प्रमाण तीन है। बहुरि जो भक्तकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकै परै दोय स्थान रहै, तातै अनंकित स्थान दोय है। बहुरि जो राष्ट्रकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकै परै एक स्थान है, तातै अनंकित स्थान एक है। बहुरि जो अवनिपालकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकै परै कोऊ भी नहीं, तातै तहां अनंकित स्थान का अभाव है। ऐसै ही कषाय, इंद्रिय प्रमाद विषै भी अनंकित स्थान जानना।

सो कोऊ कहै कि अमुक आलाप केथवां है ? तहां आलाप कह्या, ताकी संख्या न जानिए, तो ताकी संख्या जानने कौं उद्दिष्ट कहिए है। प्रथम एक रूप स्थापिए, बहुरि ऊपरि का इंद्रिय प्रमाद संख्या पांच, ताकरि तिस एक कौ गुणिए, तहां अनंकित स्थानकनि की संख्या घटाइ, अवशेष कौं ताके अनंतर नीचला कषाय प्रमाद का पिंड की संख्या च्यारि, ताकरि गुणिए, तहां भी अनंकित स्थान घटाइ, अवशेष कौं ताके अनंतरि नीचला विकथा प्रमाद का पिंड च्यारि, ताकरि गुणिए, तहां भी अनंकित स्थान घटाइ, अवशेष रहै तितनां विवक्षित आलाप की संख्या हो है। ऐसैं ही सर्वत्र उत्तरगुण वा शीलभेदनि विषैं उद्दिष्ट ल्यावने का अनुक्रम जानना।

इहां भी उदाहरण दिखाइए है – काहूने पूछ्या कि राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान ऐसा आलाप केथवा है ?

तहां प्रथम एक रूप स्थापि, ताकौं ऊपरि का इंद्रिय प्रमाद, ताकी संख्या पांच, तीहिकरि गुणें पांच भए। तींहि राशि विषै पंद्रहवां उद्दिष्ट की विवक्षा करि, तामैं पहला भेद स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत ऐसा आलाप विषै कह्या था, तातै ताके परै रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ए च्यारि अनंकित स्थान हैं। तातै इनकौं घटाएं, अवशेष एक रहै, ताकौं नीचला कषाय प्रमाद की संख्या च्यारि करि गुणें, च्यारि भए, सो इस लब्धराशि च्यारि विषैं इहां आलाप विषै लोभी कह्या था, सो लोभ के परै कोऊ भेद नाहीं। तातैं अनंकित स्थान कोऊ नाहीं। इस हेतु तै इहां शून्य घटाए, राशि जैसा का तैसा ही रह्या, सो च्यारि ही रहै। बहुरि इस राशि कौ याके नीचे विकथा प्रमाद की संख्या च्यारि ताकरि गुणे सोलह भए। इहां आलाप विषै

राष्ट्रकथालापी कह्या, सो याके परै एक भेद अवनिपाल कथा है, यातै अनंकित स्थान एक घटाएं, पंद्रह रहै, सोई पूछ्या था, ताका उत्तर असा – जो राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान, असा आलाप पंद्रहवां है। सो यहु विधान दूसरा प्रस्तार की अपेक्षा जानना।

बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा नीचे तै अनुक्रम जानना।

तहां उदाहरण कहिए है – स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी, असा आलाप केथवां है ?

तहां एक रूप स्थापि, प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरि का प्रमाद विकथा, ताका प्रमाण च्यारि करि गुणै, च्यारि भए, सो इहा स्त्रीकथालापी ग्रह्या, सो याकै परै तीन भेद है। तातै अनंकित स्थान तीन घटाएं, अवशेष एक रह्या, ताकौ कषाय प्रमाद च्यारि करि गुणै, च्यारि भए, सो इहा मायावी ग्रह्या, ताकै परै एक लोभ अनकित स्थान है, ताकौ घटाएं तीन रहै, याकौ इद्रिय प्रमाद पाच करि गुणे, पद्रह भए, सो इहां श्रोत्र इद्रिय का ग्रहण है। ताके परै कोऊ भेद नाही, तातै अनंकित स्थान का अभाव है। इस हेतु तै शून्य घटाए भी पंद्रह ही रहै। असै स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी, ऐसा आलाप पद्रहवा है। या ही प्रकार विवक्षित प्रमाद का आलाप की सख्या हो है, ऐसै अक्ष धरि सख्या का ल्यावना, सो उद्दिष्ट सर्वत्र साधै।

आगै प्रथम प्रस्तार का अक्षसंचार कौ आश्रय करि नष्ट, उद्दिष्ट का गूढ यत्र कहै है –

इगिबितिचपणखपणदसपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य।
संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४३॥

एकद्वित्रिचतुः पंचखपंचदशपंचदशखविंशच्चत्वारिंशत्षष्टीश्च।
संस्थाप्य प्रमाद स्थाने, नष्टोद्दिष्टे च जानीहि त्रिस्थाने ॥४३॥

टीका – प्रमादस्थानकनि विषै इद्रियनि के पंच कोठानि विषै क्रम तै एक, दोय, तीन, च्यारि, पांच इन अंकनि कौ स्थापि; कषायनि के च्यारि कोठानि विषै क्रम तै बिदी, पांच, दश, पंद्रह इन अंकनि कौ स्थापि; तैसे विकथानि के च्यारि कोठानि विषै क्रम तै बिदी, बीस, चालीस, साठि इनि अंकनि कौ स्थापि; निद्रा,

स्नेह के दोय, तीन आदि भेदनि का अभाव है । तीहि करि ताके निमित्त तें हुई जो आलापनि की बहुत संख्या, सो न संभवै है । यातें तिन तीनों स्थानकनि विषें स्थापे अंक, तिन विषें नष्ट उद्दिष्ट तू जानि ।

भावार्थ – निद्रा, स्नेह का तौ एक-एक भेद ही है । सो इनकी तौ सर्वभगनि विषें पलटनि नाही । तातें इनिकों तो कहि लैने । अर अवशेष तीन प्रमादनि का तीन पंक्ति रूप यंत्र करना । तहां ऊपरि की पंक्ति विषें पंच कोठे करने । तिन विषें क्रम तें स्पर्शन आदि इंद्रिय लिखने । अर एक, दोय, तीन, च्यारि, पाच ए अंक लिखने । बहुरि ताके नीचली पंक्ति विषें च्यारि कोठे करने, तिन विषें क्रम तें क्रोधादि कषाय लिखने । अर बिंदी, पांच, दश, पंद्रह ए अंक लिखने । बहुरि ताके नीचली पंक्ति विषें च्यारि कोठे लिखने, तहां स्त्री आदि विकथा क्रम तें लिखनी । अर बिंदी, वीस, चालीस, साठ ए अंक लिखने ।

स्पर्शन १	रसन २	घ्राण ३	चक्षु ४	श्रोत्र ५
क्रोध ०	मान ५	माया १०	लोभ १५	
स्त्री ०	भक्त २०	राष्ट्र ४०	अवं ६०	

इहां कोऊ नष्ट बूझै तो जेथवा प्रमाद भंग पूछ्या सो प्रमाण तीनों पंक्ति विषें जिन-जिन कोठेनि के अंक जोडें होंइ, तिन-तिन कोठेनि विषें जो-जो इंद्रियादि लिखा होइ, सो-सो तिस पूछ्या हूवा आलाप विषें जानने । बहुरि जो उद्दिष्ट बूझै तौ, जो आलाप पूछ्या, तिस आलाप विषें जो इंद्रियादिक ग्रहे होंइ, तिनके तीनों पंक्तिनि के कोठेनि विषें जे-जे अंक लिखे होंइ, तिनकौं जोडें जो प्रमाण होइ, तेथवां सो आलाप जानना ।

तहां नष्ट का उदाहरण कहिए है –

जैसें पैंतीसवा आलाप कैसा है ?

ऐसा पूछें इंद्रिय, कषाय, विकथानि कैं तीनों पंक्ति संबंधी जिन-जिन कोठानि के अंक वा शून्य मिलाएं, सो पैंतीस की संख्या होइ, तिन-तिन कोठानि विषें लिखे हूवे इंद्रियादि प्रमाद अर स्नेह-निद्रा विषें आगै उच्चारण कीए स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-भक्तकथालापी ऐसा पूछ्या हूआ पैंतीसवां आलाप जानना ।

भावार्थ – यंत्र विषैं इंद्रियपक्ति का पांचवां कोठा, कषायपंक्ति का तीसरा कोठा, विकथापक्ति का दूसरा कोठा, इन कोठेनि का अक जोडे पैंतीस होंइ, तातै इन कोठेनि विषै जे-जे इद्रियादि लिखे, ते-ते पैंतीसवा आलाप विषै जानने। स्नेह, निद्रा कौ पहिलै कहि लीजिये।

बहुरि दूसरा उदाहरण नष्ट का ही कहिए है। इकसठिवा आलाप कैसा है ?

असैं पूछै, इहा भी इद्रिय कषाय विकथानि के जिन-जिन कोठानि के अक वा शून्य जोडे, सो इकसठि सख्या होइ, तिन-तिन कोठानि विषै प्राप्त प्रमाद पूर्ववत् कहे। स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-अवनिपालकथालापी असा पूछ्या हूवा इकसठिवां आलाप हो है।

भावार्थ – इद्रियपक्ति का प्रथम कोठा का एका अर कषायपक्ति का प्रथम कोठा की बिदी, विकथा का चौथा कोठा का साठि जोडे, इकसठि होइ। सो इनि कोठानि विषै जे-जे इंद्रियादि लिखे है, ते इकसठिवा आलाप विषै जानने। असैं ही अन्य आलाप का प्रश्न भए भी विधान करना।

बहुरि उद्दिष्ट का उदाहरण कहिए है – स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इद्रिय के वशीभूत-मानी-राष्ट्रकथालापी असा आलाप केथवा है ?

असा प्रश्न होतै स्नेह, निद्रा बिना जे-जे इद्रियादिक इस आलाप विषै कहे, ते तीनो पक्तिनि विषै जिस-जिस कोठे विषै ये लिखे होइ, सो ये इद्रियपक्ति का प्रथम कोठा, कषायपक्ति का दूसरा कोठा, विकथापक्ति का तीसरा कोठानि विषै ये आलाप लिखे है। सो इन कोठानि के एक, पांच, चालीस ये अंक मिलाइ, छियालीस होइ है, सो पूछ्या हूआ आलाप छयालीसवा है।

बहुरि दूसरा उदाहरण कहिए है – स्नेहवान-निद्रालु-चक्षु इदिय के वशीभूत लोभी-भक्तकथालापी ऐसा आलाप केथवां है ?

तहा इस आलाप विषै कहे इंद्रियादिकनि के कोठे, तिनि विषै लिखे हुवे च्यारि, पंद्रह, बीस ये अक जोडे गुणतालीस होइ, सो पूछ्या आलाप गुणतालीसवा है। ऐसै ही अन्य आलाप पूछै भी विधान करना।

आगै द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा नष्ट, उद्दिष्ट का गूढ यंत्र कहै है –

इगिवितिचखचडवारं, खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं ।
संठविय पमपठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४४॥

एकद्वित्रिचतुःखचतुरष्टद्वादश खषोडशरागाष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्टिम् ।
संस्थाप्य प्रमादस्थाने, नष्टोद्दिष्टे च जानीहि त्रिस्थाने ॥४४॥

टीका – प्रमादस्थानकनि विषै विकथा प्रमाद के च्यारि कोठानि विषै क्रम तैं एक, दोय, तीन, च्यारि अंकनि कौं स्थापि; तैसे ही कषाय प्रमाद के च्यारि कोठानि विषै क्रम तैं बिंदी, आठ, बारह अंकनि कौ स्थापि; तैसे ही इंद्रिय प्रमादनि के पंच कोठानि विषै क्रम तैं बिंदी, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस, चौंसठि अंकनि कौं स्थापि, पूर्वोक्त प्रकार हेतु तैं तिन तीनों स्थानकनि विषै स्थापे जे अंक, तिनि विषै नष्ट अर समुद्दिष्ट कौं तू जानहु ।

भावार्थ – यहां भी पूर्वोक्त प्रकार तीन पंक्ति का यन्त्र करना । तहां ऊपर की पंक्ति विषै च्यारि कोठे करने, तहां क्रम तें स्त्री आदि विकथा लिखनी अर एक, दोय, तीन, च्यारि, ए अंक लिखने । बहुरि ताके नीचै पंक्ति विषै च्यारि कोठे करने, तहां क्रम तैं क्रोधादि कषाय लिखने अर बिंदी, च्यारि, आठ, बारा ए अंक लिखने । बहुरि नीचै पंक्ति विषै पांच कोठे करने, तहां क्रम तैं स्पर्शनादि इंद्रिय लिखने, अर बिंदी, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस, चौसठि ए अंक लिखने ।

स्त्री १	भक्त २	राष्ट्र ३	अवनि ४	
क्रोध ०	मान ४	माया ८	लोभ १२	
स्पर्शन ०	रसना १६	घ्राण ३२	चक्षु ४८	श्रोत्र ६४

ऐसें यंत्र करि पूर्वै जैसें विधान कह्या, तैसें इहां भी नष्ट, समुद्दिष्ट का ज्ञान करना ।

तहां नष्ट का उदाहरण – जैसें पंद्रहवां आलाप कैसा है ?

ऐसा प्रश्न होतें विकथा, कषाय, इंद्रियनि के जिस-जिस कोठा के अंक वा शून्य मिलाएं, सो पंद्रह संख्या होइ, तिस-तिस कोठा कौं प्राप्त विकथादिक जोड़ें, राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान ऐसा तिस पंद्रहवां आलाप कौं कहै ।

तथा दूसरा उदाहरण – तीसवां आलाप कैसा है ?

असा प्रश्न होतै विकथा, कषाय, इंद्रिय के जिस-जिस कोठा के अंक जोड़े सो तीस संख्या होइ, तिस-तिस कोठा कों प्राप्त विकथादि प्रमाद जोड़े, भक्तकथा-लापी-लोभी-रसना इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा तिस तीसवां आलाप को कहै ।

अब उद्दिष्ट का उदाहरण कहिए हैं – स्त्रीकथालापी-मानी-घ्राण इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान अैसा आलाप केथवां है ?

असा प्रश्न होतै इस आलाप विषैं जो-जो विकथादि प्रमाद कह्या है, तीह-तींह प्रमाद का कोठा विषैं जो-जो अंक एक, च्यारि, बत्तीस, लिखे है; तिनकौ जोडें, सैंतींस होइ, तातैं सो आलाप सैंतीसवां कहिए ।

बहुरि दूसरा उदाहरण अवनिपालकथालापी-लोभी-चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा आलाप कैथवां है ?

तहां इस आलाप विषै जे प्रमाद कहे, तिनके कोठानि विषैं प्राप्त च्यारि, बारह, अड़तालीस अंक मिलाएं, जो संख्या चौसठि होइ, सोई तिस आलाप कौ चौसठिवां कहै, असै ही अन्य आलाप पूछे भी विधान करना ।

अैसै मूल प्रमाद पाच, उत्तर प्रमाद पंद्रह, उत्तरोत्तर प्रमाद असी, इनका यथासंभव संख्यादिक पाच प्रकारनि कौ निरूपण करि ।

अब और प्रमाद की संख्या का विशेष कौ जनावै है, सो कहै है । स्त्री की सो स्त्रीकथा, धनादिरूप अर्थकथा, खाने की सो भोजन कथा, राजानि की सो राज-कथा चोर की सो चोरकथा, वैर करणहारी सो वैरकथा, पराया पाखडादिरूप सो परपाखंडकथा, देशादिक की सो देशकथा, कहानी इत्यादि भाषाकथा, गुण रोकनेरूप गुणबंधकथा, देवी की सो देवीकथा, कठोररूप निष्ठुरकथा, दुष्टतारूप परपैशून्यकथा, कामादिरूप कंदर्पकथा, देशकाल विषै विपरीत सो देशकालानुचितकथा, निर्लज्जता-दिरूप भडकथा, मूर्खतारूप मूर्खकथा, अपनी बढाईरूप आत्मप्रशसाकथा, पराई निदा रूप परपरिवादकथा, पराई घृणारूप परजुगुप्साकथा, पर कौ पीड़ा देनेरूप परपीड़ा कथा, लड़नैरूप कलहकथा, परिग्रह कार्यरूप परिग्रहकथा, खेती आदि का आरभरूप कृष्याद्यारंभकथा, संगीत वादित्रादिरूप संगीतवादित्रादि कथा – अैसै विकथा पचीस भेदसंयुक्त है ।

बहुरि सोलह कषाय अर नव नो कषाय भेद करि कषाय पचीस है। बहुरि स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन नाम धारक इंद्रिय छह है। बहुरि स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला भेद करि निद्रा पांच है। बहुरि स्नेह, मोह भेद करि प्रणय दोय है। इनकौं परस्पर गुणें, पांचसै अधिक सैंतीस हजार प्रमाण हो है (३७५००)। ए भी मिथ्यादृष्टि आदि प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यंत प्रवर्तें है। जे बीस प्ररूपणा, तिनि विषै यथासंभव बंध का हेतुपणाकरि पूर्वोक्त संख्या आदि पांच प्रकार लीए जैनागम तैं अविरुद्धपनें जोडने।

अब प्रमादनि के साड़ा सैंतीस हजार भेदनि विषैं संख्या, दोय प्रकार प्रस्तार, तिन प्रस्तारनि की अपेक्षा अक्षसंचार, नष्ट, समुद्दिष्ट पूर्वोक्त विधान तैं यथासंभव करना।

बहुरि गूढ यंत्र करने का विधान न कह्या, सो गूढ यंत्र कैसे होइ ?

तातैं इहां भाषा विषै गूढ यंत्र करने का विधान कहिए है। जाकौं जानैं, जाका चाहिए, ताका गूढ यंत्र कर लीजिये। तहां पहिले प्रथम प्रस्तार की अपेक्षा कहिए है। जाका गूढ यंत्र करना होइ, तिस विवक्षित के जे मूलभेद जितने होंइ, तितनी पंक्ति का यंत्र करना। तहां तिन मूल भेदनि विषै अंत का मूलभेद होइ, ताकी पंक्ति सबनि के ऊपरि करनी। तहां तिस मूल भेद के जे उत्तर भेद होंहि, तितने कोठे करने। तिन कोठानि विषैं तिस मूल भेद के जे उत्तर भेद होंहि, ते क्रम तैं लिखने। बहुरि तिनही प्रथमादि कोठानि विषैं एक, दोय इत्यादि क्रम तैं एक-एक बधता का अंक लिखना। बहुरि ताके नीचे जो अंत भेद तैं पहला उपांत मूल भेद होइ, ताकी पंक्ति करनी। तहां उपांत मूल भेद के जेते उत्तर भेद होइ तिनके कोठे करने। तहां उपान्त मूल भेद के उत्तर भेदनि कौं क्रम तैं लिखने। बहुरि तिनही कोठानि विषैं प्रथम कोठा विषैं बिंदी लिखनी। दूसरे कोठा विषैं ऊपरि की पंक्ति का अंत का कोठा विषैं जेते का अंक होइ, सो लिखना। बहुरि तृतीयादि कोठानि विषैं दूसरा कोठा विषैं जेते का अंक लिख्या, तितना-तितना ही बधाई-बधाई क्रम तैं लिखने। बहुरि ताके नीचै-नीचै जे उपांत तैं पूर्वं मूल भेद होंइ, ताकौं आदि देकरि आदि के मूल भेद पर्यंत जे मूल भेद होइ, तिनकी पंक्ति करनी। तहां तिनके जेते-जेते उत्तर भेद होइ, तितने-तितने कोठे करने। बहुरि तिन कोठानि विषैं अपना-मूल भेद के जे उत्तर भेद होइ, ते क्रम तैं लिखने।

बहुरि तिन सर्व पंक्तिनि के प्रथम कोठानि विषै तौं बिंदी लिखनी, बहुरि द्वितीय कोठा विषै अपनी पंक्ति तै ऊपरि की सर्व पक्ति के अंत का कोठानि विषै जितने-जितने का अंक लिख्या होइ, तिनकौं जोडे जो प्रमाण होइ, तितने का अंक लिखना। बहुरि तृतीयादि कोठानि विषै जेते का अंक दूसरा कोठा विषै लिख्या होइ तितना-तितना ही क्रम तै बधाइ-बधाइ लिखना। अैसै विधान करना।

अब द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा कहिए है। जो विधान प्रथम प्रस्तार अपेक्षा लिख्या, सोई विधान द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जानना। विशेष इतना – इहां विवक्षित का जो प्रथम मूल भेद होइ, ताकी पंक्ति ऊपरि करनी। ताकै नीचै दूसरे मूल भेद की पंक्ति करनी। अैसें ही नीचै-नीचै अंत के मूल भेद पर्यंत पंक्ति करनी। बहुरि तहां जैसै अंत मूल भेद संबंधी ऊपरि पंक्ति तै लगाइ क्रम वर्णन कीया था, तैसै यहां प्रथम मूल भेद संबंधी पंक्ति तैं लगाइ क्रम तै विधान जानना। अन्य या प्रकार साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूड यंत्र कह्या।

तहां कोऊ नष्ट पूछै कि एथवां आलाप भंग कौन?

तहा जिस प्रमाण का आलाप पूछ्या, सो प्रमाण सर्व पंक्तिनि के जिस-जिस कोठानि के अंक वा बिंदी मिलाएं होइ, तिस-तिस कोठा विषै जे-जे उत्तर भेद लिखे, तिनरूप सो पूछ्या हूवा आलाप जानना।

बहुरि कोई उद्दिष्ट पूछै कि अमुक आलाप केथवा है?

तौ तहां पूछे हुए आलाप विषै जे-जे उत्तर भेद ग्रहे है, तिन-तिन उत्तर भेदनि के कोठानि विषै जे-जे अंक वा बिंदी लिखी है, तिनकौ जोडै जो प्रमाण होइ, तेथवां सो पूछ्या हूवा आलाप जानना। अब इस विधान तै साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र लिखिए है।

इहा प्रमाद के मूल भेद पांच है, तातै पांच पंक्ति करनी। तहां ऊपरि प्रणय पक्ति विषै दोय कोठे करि, तहां स्नेह मोह लिखे अर एक दोय का अक लिखे, ताके नीचै निद्रा पंक्ति के पांच कोठे करि तहां स्त्यानगृद्धि आदि लिखे अर प्रथम कोठा विषै बिंदी लिखी। द्वितीय कोठा विषै ऊपरि की पंक्ति के अंत के कोठे में अंक दोय था, सो लिख्या। अर तृतीयादि कोठे विषै तितने-तितने ही बधाइ च्यारि, छह, आठ लिखे। बहुरि ताके नीचै इंद्रिय पंक्ति के छह कोठे करि, तहां स्पर्शनादि लिखे।

अर प्रथम कोठा विषै बिंदी, द्वितीय कोठा विषै ऊपरि की दोय पंक्ति के अंत का कोठा के जोडैं दश होंइ सो, अर तृतीयादि कोठानि विषै सोई दश-दश वधाइ लिखे हैं। अर ताके नीचैं कषाय पंक्ति विषैं पचीस कोठे करि, तहां अनंतानुवंधी क्रोधादि लिखे। अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी, दूसरा कोठा विषै ऊपरि की तीन पंक्ति का अंत के कोठानि का जोड साठि लिखि, तृतीयादि कोठानि विषै तितने-तितने वधाइ लिखे। बहुरि ताके नीचै विकथा पंक्ति विषैं पचीस कोठा करि तहां स्त्रीकथादि लिखे। अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी, द्वितीय कोठा विषै ऊपरि की च्यारि पंक्तिनि के अंत कोठानि का जोड पंद्रह सै, तृतीयादि कोठानि विषैं तितने-तितने ही वधाइ लिखे है। अैसें प्रथम प्रस्तार अपेक्षा यंत्र भया। (देखिए पृष्ठ १२५)

बहुरि साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र लिखिए हैं।

तहां ऊपरि विकथा पंक्ति करी, तहां पचीस कोठे करि, तहां स्त्रीकथादि लिखे। अर एक, दोय आदि एक-एक वधता अंक लिखे, ताके नीचैं-नीचैं कषाय पंक्ति अर इंद्रिय पंक्ति अर निद्रा पंक्ति अर प्रणय पंक्ति विषै क्रम तै पचीस, पचीस, छह, पांच, दोय कोठे करि तहां अपने-अपने उत्तर भेद लिखे। बहुरि इन सब पंक्तिनि के प्रथम कोठा विषै बिंदी लिखी। अर दूसरा कोठा विषै अपनी-अपनी पंक्ति तै ऊपरि क्रम तै एक, दोय, तीन, च्यारि पंक्ति, तिनके अंत कोठा संबंधी अंकनि कौं जोडैं, पचीस, छह सै पचीस, साडा सैंतीस सै, अठारह हजार सात सै पचास लिखे। बहुरि तृतीयादि कोठानि विषै जेते दूसरे कोठा विषैं लिखे, तितने-तितने वधाइ, क्रम तै अंत कोठा पर्यंत लिखे है। अैसें द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यंत्र जानना। (सोही यंत्र का कोठा की विधि वा अक्षर अंकादिक कही विधि मूजिब क्रम तै यंत्र रचना विधि लिखि है।)[1] इसप्रकार साढा सैंतीस हजार प्रमाद का गूढ यंत्र कीए। (देखिए पृष्ठ १२६)

तहां प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोऊ पूछै कि इन भंगनि विषै पैंतीस हजारवां भंग कौन है ?

तहां प्रणय पंक्ति का दूसरा कोठा, निद्रा पंक्ति का पांचवां कोठा, इंद्रिय पंक्ति का दूसरा कोठा, कषाय पंक्ति का नवमा कोठा, विकथा पंक्ति का चौवीसवां कोठा,

---

[1] यह वाक्य छह हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिला।

०	स्त्री	अनतानुबधी क्रोध ०	स्पर्शन ०	सस्त्यानग्रद्धि ०	१ स्नेह
१५००	अर्थ	अनतानुबधी मान ६०	रसन १०	निद्रानिद्रा २	२ मोह
३०००	भोजन	अनतानुबधी माया १२०	घ्राण २०	प्रचलाप्रचला ४	
४५००	राजा	अनतानुबधी लोभ १८०	चक्षु ३०	निद्रा ६	
६०००	चोर	अप्रत्याख्यान क्रोध २४०	श्रोत्र ४०	प्रचला ८	
७५००	वैर	अप्रत्याख्यान मान ३००	मन ~~४०~~ 50		
९०००	परपाखड	अप्रत्याख्यान माया ३६०			
१०५००	देश	अप्रत्याख्यान लोभ ४२०			
१२०००	भाषा	प्रत्याख्यान क्रोध ४८०			
१३५००	गुणवध	प्रत्याख्यान मान ५४०			
१५०००	देवी	प्रत्याख्यान माया ६००			
१६५००	निष्ठुर	प्रत्याख्यान लोभ ६६०			
१८०००	परपैशून्य	सज्वलन क्रोध ७२०			
१९५००	कदर्प	सज्वलन मान ७८०			
२१०००	देशकाला-नुचित	सज्वलन माया ८४०			
२२५००	भंड	सज्वलन लोभ ९००			
२४०००	मूर्ख	हास्य ९६०			
२५५००	आत्मप्रशसा	रति १०२०			
२७०००	परपरिवाद	अरति १०८०			
२८५००	परजुगुप्सा	शोक ११४०			
३००००	परपीडा	भय १२००			
३१५००	कलह	जुगुप्सा १२६०			
३३०००	परिग्रह	पुरुष १३२०			
३४५००	कृष्याद्यारभ	स्त्री १३८०			
३६०००	सगीतवाद्य	नपुमक १४४०			

सर्व विधान पूर्वोक्त जानना, ऐसे गूढ यंत्र करना। तहां प्रमाद के साडे सैतीस हजार भेद, तिनिका यंत्र लिखिए।

१	स्त्री	अनतानुवधी क्रोध ०	स्पर्शन ०	स्त्यानगृद्धि ०	० स्नेह
२	अर्थ	अनतानुवधी मान २५	रसन ६२५	निद्रानिद्रा ३७५०	१८७५० मोह
३	भोजन	अनतानुवधी माया ५०	घ्राण १२५०	प्रचलाप्रचला ७५००	
४	राजा	अनतानुवधी लोभ ७५	चक्षु १८७५	निद्रा ११२५०	
५	चोर	अप्रत्याख्यान क्रोध १००	श्रोत्र २५००	प्रचला १५०००	
६	वैर	अप्रत्याख्यान मान १२५	मन ३१२५		
७	परपाखड	अप्रत्याख्यान माया १५०			
८	देश	अप्रत्याख्यान लोभ १७५			
९	भाषा	प्रत्याख्यान क्रोध २००			
१०	गुणवध	प्रत्याख्यान मान २२५			
११	देवी	प्रत्याख्यान माया २५०			
१२	निष्ठुर	प्रत्याख्यान लोभ २७५			
१३	परपैशून्य	सज्वलन क्रोध ३००			
१४	कदर्प	सज्वलन मान ३२५			
१५	देशकाला-नुचित	सज्वलन माया ३५०			
१६	भड	सज्वलन लोभ ३७५			
१७	मूर्ख	हास्य ४००			
१८	आत्मप्रशसा	रति ४२५			
१९	परपरिवाद	अरति ४५०			
२०	परजुगुप्सा	शोक ४७५			
२१	परपीडा	भय ५००			
२२	कलह	जुगुप्सा ५२५			
२३	परिग्रह	पुरुष ५५०			
२४	कृष्याद्यारभ	स्त्री ५७५			
२५	सगीतवाद्य	नपुसक ६००			

इनि कोठानि के अंक जोडे पैंतीस हजार होइ। तातै इनि कोठानि विषै तिष्ठते उत्तर भेदरूप मोही-प्रचलायुक्त-रसना इद्रिय के वशीभूत-प्रत्याख्यान क्रोधी-कृष्याद्यारंभकथालापी असा आलाप पैंतीस हजारवा जानना। याकौ दृढ करनें कौ 'सगमाणेहिं विभत्ते' इत्यादि पूर्वोक्त सूत्र करि भी याकौ साधिए है। पूछनहारेने पैंतीस हजारवां आलाप पूछ्या, तहा प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पहलै प्रणय का प्रमाण दोय, ताकौ भाग दीए, साढे सतरा हजार पाए, अवशेष किछू रह्या नाही। तातै इहां अंत भेद स्नेह ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशि विषै किछू अवशेष न रह्या, तातै एक न जोडना। बहुरि तिस लब्धराशि कौ याके नीचै निद्राभेद पांच, ताका भाग दीए, पैंतीस सै पाए, इहा भी किछू अवशेष न रह्या, तातै अंत भेद प्रचला का ग्रहण करना। इहां भी लब्धराशि विषै एक न जोडि, तिस लब्धराशि कौ छह इंद्रिय का भाग दीएं पाच सै तियासी पाए, अवशेष दोय रहै, सो इहा दूसरा अक्ष रसना इंद्रिय का ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशि विषै इहा एक जोडिए, तब पांच सै चौरासी होंइ, तिनकौ कषाय पचीस का भाग दीए, तेवीस पाए, अवशेष नव रहै सो इहा नवमां कषाय प्रत्याख्यान क्रोध का ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशि तेवीस विषै एक जोडिए, तब चौवीस होइ, ताकौ कषाय भेद पचीस का भाग दीए, शून्य पावै, अवशेष चौवीस रहै, सो इहा चौवीसवा विकथा भेद कृष्याद्यारंभ का ग्रहण करना। असै पूछ्या हुवा पैंतीस हजारवा आलाप मोही-प्रचलायुक्त-रसना इद्रिय के वशीभूत-प्रत्याख्यान क्रोधी-कृष्याद्यारंभकथालापी अैसा भगरूप हो है। अैसै ही अन्य नष्ट का साधन करना। असै नष्ट का उदाहरण कह्या।

अब उद्दिष्ट का कहिए है – कोऊ पूछै कि स्नेही-निद्रायुक्त-मन के वशीभूत अनंतानुबन्धी क्रोधयुक्त-मूर्खकथालापी असा आलाप केथवा है ?

तहा उत्तर भेद जिस-जिस कोठानि विषै लिखे है, तिस-तिस कोठानि के अक एक, छह, पचास, बिदी, चौवीस हजार मिलाए, चौवीस हजार सत्तावनवा भेद है, अैसा कहिए। बहुरि याही कू 'संठाविदूणरूवं' इत्यादि सूत्रोक्त उद्दिष्ट ल्यावने का विधान साधिए है। प्रथम एकरूप स्थापि, ताकौ प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पहिलै पचीस विकथानि करि गुणिए। अर इहा आलाप विषै मूर्खकथा का ग्रहण है, तातै याके परै आठ अनकित स्थान है। तिनकौ घटाएं, तब सतरह होइ। बहुरि इनिकौ पचीस कषायनि करि गुणिए अर यहा प्रथम कषाय का ग्रहण है, तातै याके परै

चौवीस अनंकित स्थान घटाइए, तब च्यारि सै एक होंड । बहुरि इनिकौं छह इंद्रिय करि गुणिए अर इहां अतभेद का ग्रहण है, तातै अनकित न घटाइए, तब चौवीस सै छह होंइ । बहुरि इनकौ पांच निद्रा करि गुणिए अर इहां चौथी निद्रा का ग्रहण है, तातै याके परै एक अनंकित स्थान है, ताकौ घटाइए, तब बारह हजार गुणतीस होंइ । याकौं दोय प्रणय करि गुणिए अर इहां प्रथम भेद का ग्रहण है; तातै याके परै एक अनंकित स्थान घटाइए, तब चौवीस हजार सत्तावन होंड, ऐसै स्नेहवान-निद्रालु-मन के वशीभूत-अनंतानुबंधीक्रोधयुक्त-मूर्खकथालापी ऐसा पूछ्या हुवा आलाप चौवीस हजार सत्तावनवां जानना । याही प्रकार अन्य उद्दिष्ट साधने । बहुरि जैसै प्रथम प्रस्तार अपेक्षा विधान कह्या; तैसै ही द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यथा-संभव नष्ट, उद्दिष्ट ल्यावने का विधान जानना । ऐसै साडा सैतीस हजार प्रमाद भंगनि के प्रकार जानने ।

बहुरि याही प्रकार अठारह हजार शील भेद, चौरासी लाख उत्तर गुण, मतिज्ञान के भेद वा पाखंडनि के भेद वा जीवाधिकरण के भेद इत्यादिकनि विषैं जहां अक्षसंचार करि भेदनि की पलटनी होइ, तहां संख्यादिक पांच प्रकार जानने । विशेष इतना पूर्वै प्रमादनि की अपेक्षा वर्णन कीया है । इहां जाका विवक्षित वर्णन होइ, ताकौ अपेक्षा सर्वविधान करना । तहां जैसै प्रमादनि के विकथादि मूलभेद कहे हैं, तैसै विवक्षित के जेते मूलभेद होइ, ते कहने । बहुरि जैसै प्रमाद के मूल भेदनि के स्त्रीकथादिक उत्तरभेद कहे हैं, तैसै विवक्षित के मूलभेदनि के जे उत्तर भेद हो हैं, ते कहने । बहुरि जैसै प्रमादनि के आदि-अंतादिरूप मूलभेद ग्रहि विधान कह्या है, तैसैं विवक्षित के जे आदि-अंतादि मूलभेद होंइ, तिनकौ ग्रहि विधान करना । बहुरि जैसैं प्रमाद के मूलभेद-उत्तरभेद का जेता प्रमाण था, तितना ग्रहण कीया । तैसैं विवक्षित के मूल भेद वा उत्तर भेदनि का जेता-जेता प्रमाण होइ, तितना ग्रहण करना । इत्यादि संभवते विशेष जानि, संख्या अर दोय प्रकार प्रस्तार अर तिन प्रस्तारनि की अपेक्षा अक्षसंचार अर नष्ट अर समुद्दिष्ट ए पांच प्रकार हैं, ते यथा-संभव साधन करने ।

तहां उदाहरण – तत्त्वार्थसूत्र का षष्ठम अध्याय विषैं जीवाधिकरण के वर्णन स्वरूप ऐसा सूत्र है –

"आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः" ।

इस सूत्र विषै संरंभ, समारभ, आरंभ – ए तीन; अर मन, वचन, काय – ए योग तीन; अर कृत, कारित, अनुमोदित – ए तीन; अर क्रोध, मान, माया, लोभ ए कषाय च्यारि, इनके एक-एक मूल भेद के एक-एक उत्तर भेद कौ होतै अन्य सर्व मूल भेदनि के एक-एक उत्तर भेद संभवै है। तातै क्रम तै ग्रहे, इनका परस्पर गुणने तैं एक सो आठ भेद हो हैं, सो यहु संख्या जानना।

बहुरि पहला-पहला प्रमाण का विरलन करि ताके एक-एक के ऊपरी आगला प्रमाण पिड कौ स्थापै, प्रथम प्रस्तार हो है। बहुरि पहला-पहला प्रमाण पिड की संख्या कौ आगला मूल भेद के उत्तर भेद प्रमाण स्थानकनि विषै स्थापि, तिनके ऊपरि तिनि उत्तर भेदनि कौ स्थापै, द्वितीय प्रस्तार हो है। (देखिए पृष्ठ १३० पर)

बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा अंत का मूल भेद तै लगाय आदि भेद पर्यन्त अर द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा आदि मूल भेद तै लगाय अंत भेद पर्यन्त क्रम तै उत्तर भेदनि का अंत पर्यन्त जाइ-जाइ बाहुड़ना का अनुक्रम लीए उत्तर भेदनि के पलटनेरूप अक्ष संचार जानना। **'बहुरि सगमार्णेहिं विभत्ते'** इत्यादि पूर्वोक्त सूत्र करि नष्ट का विधान करिए।

तहां उदाहरण – प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोउ पूछै कि पचासवां आलाप कौन है?

तहां पचास कौ पहलै च्यारि कषाय का भाग दीए, बारह पाए, अर अवशेष दोय रहै, तातैं दूसरा कषाय मान ग्रहना। बहुरि अवशेष बारह विषै एक जोड़ि कृतादि तीन का भाग दीए, च्यारि पाए, अवशेष एक रह्या, तातै पहला भेद कृत जानना। बहुरि पाए च्यारि विषै एक जोडि, योग तीन का भाग दीए, एक पाया, अवशेष दोय, सो दूसरा वचन योग ग्रहना। बहुरि पाया एक विषै एक जोड़ै सरभादि तीन भाग दीए किछू भी न पाया, अवशेष दोय, सो दूसरा भेद समारंभ ग्रहना। असै पूछ्या हुवा पचासवा आलाप मान कषायकृत वचन समारभ असा भग रूप हो है। असै ही अन्य नष्ट साधने।

बहुरि **'संठाविदूणरूवं'** इत्यादि पूर्वोक्त सूत्र करि उद्दिष्ट का विधान करिए। तहा उदाहरण।

प्रश्न – जो माया कषाय कारित मन आरंभ असा आलाप केथवां है?

यह जीवाधिकरण का प्रथम प्रस्तार है । यहा संरभादिक की प्रथम अक्षर की सहनानी है । ऊपरि च्यारि कषायनि की सहनानी है ।

४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ
म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का
स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ

बहुरि यह द्वितीय प्रस्तार है । इहा क्रोधादि कषायनि विषै क्रम तैं सत्ताईस-सत्ताईस भंग कहने ।

क्रोध	मान	माया	लोभ
१	१	१	१
२७	२७	२७	२७

तहां प्रथम एक स्थापि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा उपरि तैं संरंभादि तीन करि गुणी, इहा अतस्थान का ग्रहण है, तातैं अनंकित कौ न घटाए, तीन ही भए। बहुरि इनकौ तीन योग करि गुणि, इहां वचन, काय ए दोय अनंकित घटाए सात भए। बहुरि इनकौ कृतादि तीन करि गुणि, अनुमोदन अनंकित स्थान घटाए, वीस हो है। बहुरि इनकौ च्यारि कषाय करि गुणिए, एक लोभ अनंकित स्थान घटाए गुन्यासी हो है। असा पूछ्या हुवा आलाप गुण्यासीवा है; अैसें ही अन्य उद्दिष्ट साधने। बहुरि इस ही प्रकार तै द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा भी नष्ट-उद्दिष्ट समुद्दिष्ट साधने। बहुरि पूर्वे जो विधान कह्या है, तातैं याके गूढयंत्र अैसें करने।

प्रथम प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरण का गूढयंत्र।

क्रोध १	मान २	माया ३	लोभ ४
कृत ०	कारित ४	अनुमोदित ८	
मन ०	वचन १२	काय २४	
सरंभ ०	समारंभ ३६	आरंभ ७२	

द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरण का गूढयंत्र।

सरंभ १	समारंभ २	आरंभ ३	
मन ०	वचन ३	काय ६	
कृत ०	कारित ९	अनुमोदित १८	
क्रोध ०	मान २७	माया ५४	लोभ ८१

तहा नष्ट पूछै तौ जैसे च्यारो पंक्तिनि के जिस-जिस कोठा के अंक मिलाए पूछ्या हुवा प्रमाण मिलै, तिस-तिस कोठा विषे स्थित भेदरूप आलाप कहना। जैसे साठिवां आलाप पूछै तौ च्यारि, आठ, बारह, छत्तीस अंक जोडे साठि अंक होइ।

तातैं इन अंक संयुक्त कोठानि के भेद ग्रहै, लोभ अनुमोदित वचन समारंभ ऐसा आलाप कहिए ।

बहुरि उद्दिष्ट पूछै तौ, तिस आलाप विषै कहे भेद संयुक्त कोठेनि के अंक मिलाए, जो प्रमाण होइ, तेथवां आलाप कहना । जैसैं पूछ्या कि मान कृत काय आरंभ केथवा आलाप है ? तहां इस आलाप विषै कहे भेद संयुक्त कोठेनि के दोय, विदी, चौवीस, बहत्तरि ए अंक जोडि, अठचाणवैवां आलाप है; ऐसा कहना । याही प्रकार प्रथम प्रस्तार अपेक्षा अन्य नष्ट-समुद्दिष्ट वा दूसरा प्रस्तार अपेक्षा ते नष्ट-समुद्दिष्ट साधन करने । ऐसें ही शील भेदादि विषै यथासभव साधन करना । या प्रकार प्रमत्तगुणस्थान विषै प्रमाद भग कहने का प्रसग पाइ सख्यादि पांच प्रकारनि का वर्णन करि प्रमत्तगुणस्थान का वर्णन समाप्त किया ।

आगै अप्रमत्त गुणस्थान के स्वरूप कौ प्ररूपै है –

संजलणणोकसायाणुदयो मंदो जदा तदा होदि ।
अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि ॥४५॥

संज्वलननोकषायाणामुदयो मंदो यदा तदा भवति ।
अप्रमत्तगुणस्तेन च, अप्रमत्तः संयतो भवति ॥४५॥

टीका – यदा कहिए जिस काल विषै संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ च्यारि कषाय अर हास्यादि नव नोकषाय इनका यथासंभव उदय कहिए फल देनेरूप परिणमन, सो मंद होइ, प्रमाद उपजावने की शक्ति करि रहित होइ, तदा कहिए तीहि काल विषै अतर्मुहूर्त पर्यंत जीव कै अप्रमत्तगुण कहिए अप्रमत्तगुणस्थान हो है, तीहि कारणकरि तिस अप्रमत्त गुणस्थान संयुक्त संयत कहिए सकलसंयमी, सो अप्रमत्तसंयत है । चकार करि आगै कहिए हैं जे गुण, तिनकरि सयुक्त है ।

आगै अप्रमत्त संयत के दोय भेद है; स्वस्थान अप्रमत्त, सातिशय अप्रमत्त । तहा जो श्रेणी चढने कौं सन्मुख नाही भया, सो स्वस्थान अप्रमत्त कहिए । बहुरि जो श्रेणी चढने कौं सन्मुख भया, सो सातिशय अप्रमत्त कहिए ।

तहां स्वस्थान अप्रमत्त संयत के स्वरूप कौं निरूपै हैं –

णट्ठासेसपमादो, वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ अखवओ, झाणणिलीणो हु अपमत्तो ।। ४६ ।।[1]

नष्टाशेषप्रमादो, व्रतगुणशीलावलिमंडितो ज्ञानी ।
अनुपशमकः अक्षपको, ध्याननिलीनो हि अप्रमत्तः ।। ४६ ।।

टीका – जो जीव नष्ट भए है समस्त प्रमाद जाके असा होइ, बहुरि व्रत, गुण, शील इनकी आवली - पंक्ति, तिनकरि मडित होइ – आभूषित होइ, बहुरि सम्यग्ज्ञान उपयोग करि संयुक्त होइ, बहुरि धर्मध्यान विषै लीन है मन जाका असा होइ, असा अप्रमत्त संयमी यावत् उपशम श्रेणी वा क्षपक श्रेणी के सन्मुख चढने कौ न प्रवर्तै, तावत् सो जीव प्रकट स्वस्थान अप्रमत्त है; असा कहिए । इहा ज्ञानी ऐसा विशेषण कह्या है, सो जैसैं सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र मोक्ष के कारण है, तैसैं सम्यक्ज्ञान कैं भी मोक्ष का कारणपना कौ सूचै है ।

भावार्थ – कोऊ जानेगा कि चतुर्थ गुणस्थान विषै सम्यक्त्व का वर्णन कीया, पीछै चारित्र का कीया, सो ए दोय ही मोक्षमार्ग है; तातै ज्ञानी असा विशेषण कहि सम्यग्ज्ञान भी इनि की साथि ही मोक्ष का कारण है असा अभिप्राय दिखाया है ।

आगै सातिशय अप्रमत्तसयत के स्वरूप कौ कहै है –

इगवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापवत्तं, करणं तु करेदि अपमत्तो ।। ४७ ।।

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तेषु ।
प्रथममधःप्रवृत्तं, करणं तु करोति अप्रमत्तः ।। ४७ ।।

टीका – इहां विशेष कथन है; सो कैसै है ? सो कहिए है – जो जीव समय-समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता करि वर्धमान होइ, मंदकषाय होने का नाम विशुद्धता है, सो प्रथन समय की विशुद्धता तै दूसरे समय की विशुद्धता अनतगुणी, तातै तीसरे समय की अनन्त गुणी, असै समय-समय विशुद्धता जाकै वधती होइ, असा जो

---

1 षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८०, गाथा ११७

वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव, सो प्रथम ही अनंतानुबंधी के चतुष्क कौं अध करणादि तीन करणरूप पहिलै करि विसंयोजन करै है ।

विसयोजन कहा करै है ?

अन्य प्रकृतिरूप परिणमावनेरूप जो सक्रमण, ताका विधान करि इस अनता-नुवन्धी के चतुष्क के जे कर्म परमाणु, तिनकौ बारह कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमावै है ।

बहुरि ताके अनंतरि अंतर्मुहूर्त्तकाल ताई विश्राम करि जैसा का तैसा रहि, बहुरि तीन करण पहिले करि, दर्शन मोह की तीन प्रकृति, तिन कौ उपशमाय, द्वितीयो-पशम सम्यग्दृष्टि हो है ।

अथवा तीनकरण पहिलै करि, तीन दर्शनमोह की प्रकृतिनि कौ खिपाइ, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो है ।

वहुरि ताके अनंतर अतर्मुहूर्त काल ताई अप्रमत्त तै प्रमत्त विषै प्रमत्त तै अप्रमत्त विषै हजारांबार गमनागमन करि पलटनि करै है । बहुरि ताके अनंतर समय-समय प्रति अनतगुणी विशुद्धता की वृद्धि करि वर्धमान होत सता इकईस चारित्र मोह की प्रकृतिनि के उपशमावने कौ उद्यमवत हो है । अथवा इकईस चारित्र मोह की प्रकृति क्षपावने कौ क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उद्यमवत हो है ।

भावार्थ – उपशम श्रेणी कौ क्षायिक सम्यग्दृष्टि वा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि दोऊ चढै अर क्षपक श्रेणी कौ क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही चढने कौ समर्थ है । उपशम सम्यग्दृष्टि क्षपक श्रेणी कौ नाही चढै है । सो यहु अैसा सातिशय अप्रमत्तसयत, सो अनतानुबंधी चतुष्क विना इकईस प्रकृतिरूप, तिस चारित्रमोह कौ उपशमावने वा क्षय करने कौ कारणभूत अैसे जे तीन करण के परिणाम, तिन विषै प्रथम अध.-प्रवृत्तकरण कौ करै है; अैसा अर्थ जानना ।

आगै अध प्रवृत्तकरण का निरुक्ति करि सिद्ध भया अैसा लक्षण कौ कहै है –

जह्मा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तह्मा पढमं करणं, अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

यस्मादुपरितनभावा, अधस्तनभावैः सदृशका भवंति ।
तस्मात्प्रथमं करणं, अधःप्रवृत्तिमिति निर्दिष्टम् ॥४८॥

टीका – जा कारण तै जिस जीव का ऊपरि-ऊपरि के समय सबधी परिणामनि करि सहित, अन्य जीव के नीचे-नीचे के समय सबधी परिणाम सदृश - समान हो है, ता कारण तै सो प्रथम करण अध.करण है – ऐसा **णिद्दिट्ठं** कहिए परमागम विषै प्रतिपादन कीया है ।

भावार्थ – तीनों करणनि के नाम नाना जीवनि के परिणामनि की अपेक्षा है । तहां जैसी विशुद्धता वा सख्या लीए किसी जीव के परिणाम ऊपरि के समय सबधी होइ, तैसी विशुद्धता वा सख्या लीए किसी अन्य जीव के परिणाम अधस्तन समय सबधी भी जिस करण विषै होइ, सो अध प्रवृत्त करण है । **अधःप्रवृत्त कहिए नीचले समय संबंधी परिणामनि की समानता कौ प्रवर्तै ऐसे हैं करण कहिए परिणाम जा विषै, सो अधःप्रवृत्तकरण है** । इहां करण प्रारभ भए पीछै घने-घने समय व्यतीत भए जे परिणाम होहि, ते ऊपरि ऊपरि समय संबधी जानने । बहुरि थोरे-थोरे समय व्यतीत भए जे परिणाम होहि, ते अधस्तन-अधस्तन समय सबधी जानने । सो नाना जीवनि कै इनकी समानता भी होइ ।

ताका उदाहरण - जैसे दोय जीव कै एकै कालि अध प्रवृत्ताकरण का प्रारभ करे, तहा एक जीव कै द्वितीयादि घने समय व्यतीत भये, जैसै सख्या वा विशुद्धता लीये परिणाम भये, तैसै सख्या वा विशुद्धता लीये द्वितीय जीव कै प्रथम समय विषै भी होइ । याही प्रकार अन्य भी ऊपरि नीचै के समय सबधी परिणामनि की समानता इस करण विषै जानि याका नाम अध प्रवृत्ताकरण निरूपण कीया है ।

आगै अधःप्रवृत्ताकरण के काल का प्रमाण कौ चय का निर्देश के अर्थि कहै है –

अंतोमुहुत्तमेत्तो, तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखमिदा, उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥४९॥

अंतर्मुहूर्तमात्रस्तत्कालो भवति तत्र परिणामाः ।
लोकानामसंख्यमिता, उपर्युपरि सदृशवृद्धिगताः ॥४९॥

टीका – तीनों करणनि विषै स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण अनिवृत्तिकरण का काल है। यातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरण का काल है। यातैं संख्यातगुणा इस अधः-प्रवृत्तकरण का काल है, सो भी अंतर्मुहूर्त मात्र ही है। जातैं अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं। बहुरि तीह अधःप्रवृत्तकरण के काल विषै अतीत, अनागत, वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीव संबंधी विशुद्धतारूप इस करण के सर्व परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। लोक के प्रदेशनि का प्रमाण तैं असंख्यात गुणे हैं। बहुरि तिनि परिणामनि विषै तिस अधःप्रवृत्तकरण का काल प्रथम समय संबंधी जेते परिणाम हैं, तिन तैं लगाय द्वितीयादि समयनि विषै ऊपरि-ऊपरि अंत समय पर्यन्त समान वृद्धि करि वर्धमान हैं। प्रथम समय संबंधी परिणाम तैं द्वितीय समय संबंधी परिणाम जितने बधती हैं, तितने ही द्वितीय समय संबंधी परिणामनि तैं तृतीय समय संबंधी परिणाम बधती हैं। इस क्रम तैं ऊपरि-ऊपरि अंत समय पर्यंत सदृश वृद्धि कौं प्राप्त जानने। सो जहां समान वृद्धिहानि का अनुक्रम स्थानकनि विषै होइ, तहां श्रेणी व्यवहाररूप गणित संभवै है; तातैं इहां श्रेणी व्यवहार करि वर्णन करिए है।

तहां प्रथम संज्ञा कहिए है, विवक्षित सर्व स्थानक संबंधी सर्व द्रव्य जोडें जो प्रमाण होइ, सो सर्वधन कहिए वा पदधन कहिए। बहुरि स्थानकनि का जो प्रमाण, ताकौं पद कहिए वा गच्छ कहिए। बहुरि स्थान-स्थान प्रति जितना-जितना बधै, ताकौं चय कहिए वा उत्तर कहिए वा विशेष कहिए। बहुरि आदि स्थान विषै जो प्रमाण, ताकौं मुख कहिए वा आदि कहिए वा प्रथम कहिए। बहुरि अंतस्थान विषै जो द्रव्य का प्रमाण होइ, ताकौं अंतधन कहिए वा भूमि कहिए। बहुरि सर्व स्थानकनि के बीचि जो स्थान, ताका द्रव्य के प्रमाण कौं मध्यधन कहिए। जहां स्थानकनि का प्रमाण सम होइ तहां बीचि के दोय स्थानकनि का द्रव्य जोडि आधा कीए जो प्रमाण होइ, ताकौं मध्यधन कहिए। बहुरि जेता मुख का प्रमाण होइ, तितना-तितना सर्व स्थानकनि का ग्रहण करि जोडें जो प्रमाण होइ, सो आदिधन कहिए। बहुरि सर्व स्थानकनि विषै जेते-जेते चय बधे, तिन सर्व चयनि कौं जोडें जो प्रमाण होइ, ताकौं उत्तरधन कहिए वा चयधन कहिए। बहुरि ऐसें आदिधन, उत्तरधन मिलें सर्वधन हो है। इन सबनि के प्रमाण जानने के अर्थि करण सूत्र कहिए है।

"**मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि**" इस सूत्र करि मुख आदिस्थान अर भूमि अंतस्थान, इनकौ जोडि, ताका आधा करि, ताकौ गच्छकरि गुणैं, पदधन कहिए सर्वधन हो है।

बहुरि '**आदि अंते सुद्धे वट्टिहदे रूवसंजुदे ठाणे।**' इस सूत्र करि आदि कौ अंतधन विषै घटाए, जेते अवशेष रहै, तिनकौ वृद्धि जो चय, ताका भाग दीयें, जो होइ, तामैं एक मिलाए स्थानकनि का प्रमाणरूप पद वा गच्छ का प्रमाण आवै है। बहुरि '**पदकदिसंखेण भाजियं पचयं**' पद जो गच्छ, ताकी जो कृति कहिए वर्ग, ताका भाग सर्वधन कौ दीएं जो प्रमाण आवै, ताकू संख्यात का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सो चय जानना। सो इहां अध करण विषै पहिलै मुखादिक का ज्ञान न होइ तातैं अैसै कथन कीया है। बहुरि सर्वत्र सर्वधन कौ गच्छ का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तामैं मुख का प्रमाण घटाइ, अवशेष रहै, तिनकौ एक गच्छ का आधा प्रमाण का भाग दीए चय का प्रमाण हो है।

अथवा '**आदिधनोणं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजित प्रचयः**' इस वचन तै सर्वस्थानक संबंधी आदिधन कौ सर्वधन विषै घटाइ, अवशेष कौ गच्छ के प्रमाण का वर्ग विषै गच्छ का प्रमाण घटाइ अवशेष रहै, ताका आधा जेता होय, ताका भाग दीये चय का प्रमाण आवैं है। बहुरि उत्तरधन कौ सर्वधन विषै घटाएं, अवशेष रहै, ताकौ गच्छ का भाग दीएं मुख का प्रमाण आवै है।

बहुरि "**व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं**" इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ कौ चय करि गुणै, जो प्रमाण होइ, ताकौ मुख का प्रमाण सहित जोडे, अंतधन हो है। बहुरि मुख अर अंतधन कौ मिलाइ ताका आधा कीए मध्यधन हो है।

बहुरि '**पदहतमुखमादिधन**' इस सूत्र करि पद करि गुण्या हुवा मुख का प्रमाण, सो आदिधन हो है।

बहुरि "**व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं**" इस सूत्र करि एक घाटि जो गच्छ, ताका आधा प्रमाण कौ चय करि गुणै, जो प्रमाण होइ, ताकौ गच्छ करि गुणै, उत्तरधन हो है। सो आदिधन, उत्तरधन मिलाए भी सर्वधन का प्रमाण हो

है । अथवा मध्यधन कौं गच्छ करि गुणैं भी सर्वधन का प्रमाण आवै है । ऐसैं श्रेणी व्यवहाररूप गणित का किंचित् स्वरूप प्रसंग पाइ कह्या ।

अब अधिकारभूत अधःकरण विषै सर्वधन आदि का वर्णन करिए है । तहां प्रथम अंकसंदृष्टि करि कल्पनारूप प्रमाण लीएं दृष्टांतमात्र कथन करिए है । सर्व अधः-करण का परिणामनि की संख्यारूप सर्वधन तीन हजार वहत्तरि (३०७२) । बहुरि अध.करण के काल का समयनि का प्रमाणरूप गच्छ सोलह (१६) । बहुरि समय-समय परिणामनि की वृद्धि का प्रमाणरूप चय च्यारि (४) । बहुरि इहां संख्यात का प्रमाण तीन (३) । अब उर्ध्व रचना विषै धन ल्याइए है । सो युगपत् अनेक समय की प्रवृत्ति न होइ, तातै समय संबंधी रचना ऊपरि-ऊपरि ऊर्ध्वरूप करिए है । तहां आदि धनादिक का प्रमाण ल्याइये है ।

'पदकदिसंखेण भाजियं पचयं' इस सूत्र करि सर्वधन तीन हजार वहत्तरी, ताकौ पद सोलह की कृति दोय सै छप्पन, ताका भाग दीएं बारह होइ । अर ताकौं संख्यात का प्रमाण तीन, ताका भाग दीए च्यारि होइ । अथवा दोय सौ छप्पन कौं तिगुणा करि, ताका भाग सर्व धन कौं दीये भी च्यारि होइ सो समय-समय प्रति परिणामनि का चय का प्रमाण है । अथवा याकौं अन्य विधान करि कहिए है । सर्वधन तीन हजार वहत्तरि, ताकौं गच्छ का भाग दीएं एक सौ बाणवै, तामैं आगै कहिए है मुख का प्रमाण एक सौ बासठि, सो घटाइ तीस रहे । इनकौ एक घाटि गच्छ का आधा साढा सात, ताका भाग दीये च्यारि पाए, सो चय जानना ।

अथवा 'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितं' इस सूत्र करि आगै कहिए है – आदिधन पचीस सै बाणवै, तीहकरि रहित सर्वधन च्यारि सै असी, ताकौ पद की कृति दोय सै छप्पन विषै पद सोलह घटाइ, अवशेष का आधा कीये, एक सौ बीस होइ, ताका भाग दीये च्यारि पाये, सो चय का प्रमाण जानना ।

बहुरि 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ पंद्रह, ताका आधा साढा सात ($\frac{15}{2}$) ताकौ चय च्यारि, ताकरि गुणें तीस, ताकौं गच्छ सोलह करि गुणें, च्यारि सौ असी चयधन का प्रमाण हो है । बहुरि इस चयधन करि सर्वधन तीन हजार वहत्तरि सो हीन कीये, अवशेष दोय हजार पांच

सै बाणवै रहे। इनकौ पद सोलह, ताका भाग दीये एक सौ बासठि पाये, सोई प्रथम समय सबंधी परिणामनि की सख्या हो है। बहुरि यामै एक-एक चय बधाये संते द्वितीय, तृतीयादि समय संबंधी परिणामनि की संख्या हो है। तहां द्वितीय समय संबधी एक सौ छ्यासठ, तृतीय समय सबधी एक सौ सत्तरि इत्यादि क्रम तै एक-एक चय बधती परिणामनि की संख्या हो है। १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ ।

इहा अत समय संबंधी परिणामनि की संख्यारूप अतधन ल्याइये है।

'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं' इस सूत्र तै एक घाटि गच्छ पंद्रह, ताकौ चय च्यारि करि गुणै साठि, बहुरि याकौ आदि एक सौ बासठि करि युक्त कीएं दोय सै बाईस होइ; सोई अंत समय सबधी परिणामनि का प्रमाण जानना। बहुरि यामै एक चय च्यारि घटाए दोय सै अठारह द्विचरम समय सबधी परिणामनि का प्रमाण जानना। असै कहै जो धन कहिए समय-समय संबधी परिणामनि का प्रमाण, तिनकौ अध:प्रवृतकरण का प्रथम समय तै लगाइ अंत समय पर्यन्त ऊपरि-ऊपरि स्थापन करने।

आगै अनुकृष्टिरचना कहिए है - तहा नीचै के समय संबंधी परिणामनि के जे खड, तिनके ऊपरि के समय सबंधी परिणामनि के जे खंडनि करि जो सादृश्य कहिए समानता, सो अनुकृष्टि असा नाम धरै है।

भावार्थ – ऊपरि के अर नीचे के समय सबंधी परिणामनि के जे खंड, ते परस्पर समान जैसै होइ, तैसै एक समय के परिणामनि विषै खंड करना, तिसका नाम अनुकृष्टि जानना। तहा ऊर्ध्वगच्छ के संख्यातवां भाग अनुकृष्टि का गच्छ है, सो अंकसदृष्टि अपेक्षा ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण सोलह, ताकौ संख्यात का प्रमाण च्यारि का भाग दीए जो च्यारि पाए; सोई अनुकृष्टि विषै गच्छ का प्रमाण है। अनुकृष्टि विषै खंडनि का प्रमाण इतना जानना। बहुरि ऊर्ध्व रचना का चय कौ अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीए, अनुकृष्टि विषै चय होइ, सो ऊर्ध्व चय च्यारि कौ अनुकृष्टि गच्छ च्यारि का भाग दीएं एक पाया; सोई अनुकृष्टि चय जानना। खड-खंड प्रति वधती का प्रमाण इतना है। बहुरि प्रथम समय सबंधी समस्त परिणामनि का प्रमाण एक सौ बासठि, सो इहां प्रथम समय सबंधी अनुकृष्टि रचना विषै सर्वधन जानना। बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ तीन,

ताका आधा कौं चय एक करि गुणी अर गच्छ च्यारि करि गुणे छह होइ, सो इहां उत्तरधन का प्रमाण जानना। बहुरि इस उत्तरधन छह कौ (६) सर्वधन एक सौ बासठि (१६२) विषै घटाएं, अवशेष एक सौ छप्पन रहे, तिनकौ अनुकृष्टि गच्छ च्यारि का भाग दीएं गुणतालीस पाए, सोई प्रथम समय संबंधी परिणामनि का जो प्रथम खण्ड, ताका प्रमाण है, सो यहु ही सर्व जघन्य खण्ड है; जातैं इस खण्ड तैं अन्य सर्व खडनि के परिणामनि की संख्या अर विशुद्धता करि अधिकपनों संभवै है। बहुरि तिस प्रथम खंड विषै एक अनुकृष्टि का चय जोडैं, तिसही के दूसरा खंड का प्रमाण चालीस हो है। अैसै ही तृतीयादिक अंत खंड पर्यंत तिर्यक् एक-एक चय अधिक स्थापने। तहां तृतीय खंड विषै इकतालीस अंत खड विषै बियालीस परिणामनि का प्रमाण हो है। ते ऊर्ध्वरचना विषै जहा प्रथम समय संबंधी परिणाम स्थापे, ताकै आगै-आगै बराबरि ए खंड स्थापन करने। ए (खड) एक समय विषै युगपत् अनेक जीवनि के पाइए, तातै इनिको बराबरि स्थापन कीए है। बहुरि तातै परै ऊपरि द्वितीय समय का प्रथम खंड प्रथम समय का प्रथम खड ३९ तैं एक अनुकृष्टि चय करि (१) एक अधिक हो है; तातै ताका प्रमाण चालीस है। जातै द्वितीय समय सबंधी परिणाम एक सो छचासठि, सो ही सर्वधन, तामें अनुकृष्टि का उत्तर धन छह घटाइ, अवशेष कौ अनुकृष्टि का गच्छ च्यारि का भाग दीये, तिस द्वितीय समय का प्रथम खड की उत्पत्ति सभवै है। बहुरि ताकै आगै द्वितीय समय के द्वितीयादि खड, ते एक-एक चय अधिक सभवै है ४१, ४२, ४३। इहां द्वितीय समय का प्रथम खंड सो प्रथम समय का द्वितीय खंड करि समान है।

अैसै ही द्वितीय समय का द्वितीयादि खंड, ते प्रथम समय का तृतीयादि खडनि करि समान है। इतना विशेष - जो द्वितीय समय का अंत का खड प्रथम समय का सर्व खडनि विषै किसी खड करि भी समान नाही। बहुरि तृतीयादि समयनि के प्रथमादि खंड द्वितीयादि समयनि के प्रथमादि खंडनि तैं एक विशेष अधिक है।

तहा तृतीय समय के ४१, ४२, ४३, ४४। चतुर्थ के ४२, ४३, ४४, ४५। पंचम समय के ४३, ४४, ४५, ४६। षष्ठम समय के ४४, ४५, ४६, ४७। सप्तम समय के ४५, ४६, ४७, ४८। अष्टम समय के ४६, ४७, ४८, ४९। नवमा समय के ४७, ४८, ४९, ५०। दशवा समय के ४८, ४९, ५०, ५१। ग्यारहवां समय के ४९, ५०, ५१, ५२। बारहवा समय के ५०, ५१, ५२, ५३। तेरहवां समय

के ५१, ५२, ५३, ५४ । चौदहवां समय के ५२, ५३, ५४, ५५ । पंद्रहवां समय के ५३, ५४, ५५, ५६ । सोलहवां समय के ५४, ५५, ५६, ५७ खंड जानने ।

जातै ऊपरि-ऊपरि सर्वधन एक-एक ऊर्ध्व चय करि अधिक है। इहा सर्व जघन्य खंड जो प्रथम समय का प्रथम खंड, ताके परिणामनि के अर सर्वोत्कृष्ट खंड अंत समय का अंत का खंड, ताके परिणामनि के किस ही खंड के परिणामनि करि सहित समानता नाही है; जातै अवशेष समस्त ऊपरि के वा नीचले समय सबंधी खडनि का परिणाम पुंजनि कै यथासंभव समानता संभवै है । बहुरि इहां ऊर्ध्व रचना विषै **'मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि'** इस सूत्र करि मुख एक सौ बासठि, अर भूमि दोय सौ बाइस, इनिकौं जोड़ि ३८४ । आधा करि १९२ गच्छ, सोलह करि गुणै सर्वधन तीन हजार बहत्तरी हो है । अथवा मुख १६२, भूमि २२२ कौ जोडै ३८४, आधा कीये मध्यधन का प्रमाण एक सौ बाणवै होइ, ताकौ गच्छ सोलह करि गुणै सर्वधन का प्रमाण हो है । अथवा **'पहदतमुखमादिधनं'** इस सूत्र करि गच्छ सोलह करि मुख एक सौ बासठि कौ गुणै, पचीस सै बाणवै सर्वसमय संबंधी आदि धन हो है । बहुरि उत्तरधन पूर्वै च्यारि सै असी कह्या है, इनि दोऊनि कौ मिलाएं सर्वधन का प्रमाण हो है । बहुरि गच्छ का प्रमाण जानने कौ **'आदी अंते सुध्दे वट्ठिहदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस सूत्र करि आदि एक सौ बासठि, सो अत दोय सै बाईस में घटाएं अवशेष साठि, ताकौ वृद्धिरूप चय च्यारि का भाग दीएं पद्रह, तामै एक जोडे गच्छ का प्रमाण सोलह आवै है । असे दृष्टांतमात्र सर्वधनादिक का प्रमाण कल्पना करि वर्णन कीया है, सो याका प्रयोजन यहु - जो इस दृष्टात करि अर्थ का प्रयोजन नीकै समझने मे आवै ।

अब यथार्थ वर्णन करिए है - सो ताका स्थापन असंख्यात लोकादिक की अर्थ-संदृष्टि करि वा सदृष्टि के अर्थि समच्छेदादि विधान करि संस्कृत टीका विषै दिखाया है, सो इहा भाषा टीका विषै आगै सदृष्टि अधिकार जुदा कहैगे, तहां इनिकी भी अर्थ-सदृष्टि का अर्थ-विधान लिखैगे तहा जानना । इहां प्रयोजन मात्र कथन करिए है । आगै भी जहां अर्थसंदृष्टि होय, ताका अर्थ वा विधान आगै सदृष्टि अधिकार विषै ही देख लेना । जायगा-जायगा संदृष्टि का अर्थ लिखने तै ग्रथ प्रचुर होइ, अर कठिन होइ; तातै न लिखिए है । सो इहां त्रिकालवर्ती नाना जीव सबंधी समस्त अधः-प्रवृत्तकरण के परिणाम असंख्यात लोकमात्र है; सो सर्वधन जानना । बहुरि अधः-

प्रवृत्तकरण का काल अंतर्मूहूर्तमात्र, ताके जेते समय होंइ, सो इहां गच्छ जानना। वहुरि सर्वधन कौ गच्छ का वर्ग करि, ताका भाग दीजिए। वहुरि यथासभव संख्यात का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै; सो ऊर्ध्वचय जानना। वहुरि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि चय कौ गुणि, बहुरि गच्छ का प्रमाण करि गुणै जो प्रमाण आवै, सो उत्तरधन जानना। बहुरि इस उत्तरधन कौ सर्वधन विषै घटाइ, अवशेष कौ ऊर्ध्वगच्छ का भाग दीए, त्रिकालवर्ती समस्त जीवनि का अधःप्रवृत्तकरण काल के प्रथम समय विषै संभवते परिणामनि का पुज का प्रमाण हो है। वहुरि याके विषें एक उर्ध्व चय जोडे, द्वितीय समय सबधी नाना जीवनि के समस्त परिणामनि के पुंज का प्रमाण हो है। अैसे ही ऊपरि भी समय-समय प्रति एक-एक ऊर्ध्वचय जोडें, परिणाम पुज का प्रमाण जानना।

तहां प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज विषैं एक घाटि गच्छ प्रमाण चय जोडे अंत समय संबंधी नाना जीवनि के समस्त परिणामनि के पुज का प्रमाण हो है; सो ही कहिए है – **'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनं भवेत्'** इस करण सूत्र करि एक घाटि गच्छ का प्रमाण करि चय कौ गुणै जो प्रमाण होइ, ताकौ प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज प्रमाण विषै जोडे, अंत समय संबंधी परिणाम पुज का प्रमाण हो है। वहुरि या विषै एक चय घटाए, द्विचरम समयवर्ती नाना जीव संबंधी समस्त विशुद्ध परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। अैसें ऊर्ध्वरचना जो ऊपरि-ऊपरि रचना, तीहि विषै समय-समय सबंधी अध.प्रवृत्तकरण के परिणाम पुज का प्रमाण कह्या।

भावार्थ – आगें कषायाधिकार विषै विशुद्ध परिणामनि की संख्या कहैगे, तिस विषै अधःकरण विषै संभवते शुभलेश्यामय संज्वलन कषाय का देशघाती स्पर्धकनि का उदय संयुक्त विशुद्ध परिणामनि की संख्या त्रिकालवर्ती नाना जीवनि कै असंख्यात लोकमात्र है। तिनि विषै जिनि जीवनि कौ अध प्रवृत्तकरण मांडै पहला समय है, अैसे त्रिकाल संवधी अनेक जीवनि कै जे परिणाम संभवै, तिनिके समूह कौं प्रथम समय परिणाम पुज कहिए। वहुरि जिनि जीवनि कौ अधःकरण माड़ै, दूसरा समय भया, अैसे त्रिकाल सबधी अनेक जीवनि कै जे परिणाम संभवै, तिनिके समूह कौं द्वितीय समय परिणाम पुंज कहिए। अैसै ही क्रम तै अन्त समय पर्यंत जानना।

तहा प्रथमादि समय संबंधी परिणाम पुंज का प्रमाण श्रेणी व्यवहार गणित का विधान करि जुदा-जुदा कह्या, सो सर्वसमय सबंधी परिणाम पुजनि की जोडें

असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ है। बहुरि इन अध प्रवृत्तकरण काल का प्रथमादि समय सबंधी परिणामनि विषै त्रिकालवर्ती नाना जीव सबन्धी प्रथम समय के जघन्य मध्यम, उत्कृष्ट भेद लीए जो परिणाम पुज कह्या, ताके अध.प्रवृत्तकरण काल के जेते समय, तिनकौ संख्यात का भाग दीए जेता प्रमाण आवै, तितना खंड करिए। ते खंड निर्वर्गणा कांडक के जेते समय, तितने हो है। वर्गणा कहिए समयनि की समानता, तीहिकरि रहित जे ऊपरि-ऊपरि समयवर्ती परिणाम खड, तिनका जो कांडक कहिए पर्व प्रमाण; सो निर्वर्गणा कांडक है। तिनिके समयनि का जो प्रमाण सो अधःप्रवृत्तकरण कालरूप जो ऊर्ध्वगच्छ, ताके सख्यातवे भागमात्र है, सो यहु प्रमाण अनुकृष्टि के गच्छ का जानना। इस अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण एक-एक समय सबधी परिणामनि विषै खड हो है। बहुरि ते खड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक हैं। तहां ऊर्ध्व रचना विषै जो चय का प्रमाण कह्या, ताकौ अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीए जो पाइए; सो अनुकृष्टि के चय का प्रमाण है।

बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि अनुकृष्टि के गच्छ का आधा प्रमाण कौ अनुकृष्टि चय करि गुणी, बहुरि अनुकृष्टि गच्छ करि गुणै जो प्रमाण होइ; सो अनुकृष्टि का चयधन हो है। याकौ ऊर्ध्व रचना विषै जो प्रथम समय सबधी समस्त परिणाम पुज का प्रमाणरूप सर्वधन, तीहि विषै घटाइ, अवशेष जो रहै, ताकौ अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीए जो प्रमाण होइ; सोई प्रथम समय सबधी प्रथम खड का प्रमाण है। बहुरि या विषै एक अनुकृष्टि चय कौ जोडे, प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामनि के द्वितीय खड का प्रमाण हो है। ऐसे ही तृतीयादिक खड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक अपने अत खंड पर्यन्त क्रम तै स्थापन करने।

तहा अनुकृष्टि का प्रथम खंड विषै एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ का प्रमाण अनुकृष्टि चय जोडै जो प्रमाण होइ, सोई अंत खंड का प्रमाण जानना। यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं, प्रथम समय संबंधी द्विचरम खड का प्रमाण हो है। ऐसे प्रथम समय संबंधी परिणाम पुजरूप खंड सख्यात आवली प्रमाण है, ते क्रम तै जानने। इहां तीन वार संख्यात करि गुणित आवली प्रमाण जो अध करण का काल, ताके संख्यातवे भाग खंडनि का प्रमाण, सो दोइ वार सख्यात करि गुणित आवली प्रमाण है, ऐसा जानना।

बहुरि द्वितीय समय संबधी परिणाम पुज का प्रथम खड है, सो प्रथम समय संबंधी प्रथम खंड तै अनुकृष्टि चय करि अधिक है । काहे तै ? जातै द्वितीय समय संबंधी समस्त परिणाम पुजरूप जो सर्वधन, तामै पूर्वोक्त प्रमाण अनुकृष्टि का चय-धन घटाएं अवशेष रहै, ताकौ अनुकृष्टि का भाग दीएं, सो प्रथम खंड सिद्ध हो है । बहुरि इस द्वितीय समय का प्रथम खंड विषै एक अनुकृष्टि चय कौ जोडै, द्वितीय समय संबंधी परिणामानि का द्वितीय खंड का प्रमाण हो है । ऐसै तृतीयादिक खंड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक स्थापन करने । तहा एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय द्वितीय समय परिणाम का प्रथम खंड विषै जोडै, द्वितीय समय संबंधी अंत खंड का प्रमाण हो है । यामै एक अनुकृष्टि चय घटाएं द्वितीय समय संबंधी द्विचरम खंड का प्रमाण हो है । बहुरि इहा द्वितीय समय का प्रथम खड अर प्रथम समय का द्वितीय खंड, ए दोऊ समान है । तैसैं ही द्वितीय समय का द्वितीयादि खंड अर प्रथम समय का तृतीयादि खण्ड दोऊ समान हो है । इतना विशेप द्वितीय समय का अंत खंड, सो प्रथम समय का खंडनि विषै किसीही करि समान नाही । बहुरि याके आगै ऊपरि तृतीयादि समयनि विषै अनुकृष्टि का प्रथमादिक खंड, ते नीचला समय सम्बन्धी प्रथमादि अनुकृष्टि खंडनि तै एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक है । ऐसै अधःप्रवृत्तकरण काल का अंत समय पर्यन्त जानने । तहां अन्त समय का समस्त परिणामरूप सर्वधन विषै अनुकृष्टि का चयधन कौ घटाई, अवशेप कौ अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीएं, अत समय सम्बन्धी परिणाम का प्रथम अनुकृष्टि खड हो है । यामै एक अनुकृष्टि चय जोडै, अंत समय का द्वितीय अनुकृष्टि खड हो है । ऐसै तृतीयादि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक जानने । तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टि चय अन्त समय सम्बन्धी परिणाम का प्रथम खण्ड विषै जोडै, अंत समय सम्बन्धी अंत अनुकृष्टि खण्ड के परिणाम पुज का प्रमाण हो है । बहुरि यामें एक अनुकृष्टि चय घटाए, अन्त समय सम्बन्धी द्विचरम खण्ड के परिणाम पुज का प्रमाण हो है । ऐसै अत समय संबंधी अनुकृष्टि खड, ते अनुकृष्टि के गच्छ प्रमाण है ; ते बरोबरि आगै-आगै क्रम तै स्थापने । बहुरि अत समय सबधी अनुकृष्टि का प्रथम खड विषै एक अनुकृष्टि चय घटाएं, अवशेप द्विचरम समय संबंधी प्रथम खड का परिणाम पुंज का प्रमाण हो है । बहुरि यामै एक अनुकृष्टि चय जोडै, द्विचरम समय संबधी द्वितीय खंड का परिणाम पुज हो है । बहुरि ऐसै ही तृतीयादि खड एक-एक चय अधिक जानने । तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टि चय द्विचरम

समय संबधी परिणाम का प्रथम खण्ड विषै जोडै, द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि का अंत खंड का परिणाम पुज का प्रमाण हो है । बहुरि यामै एक अनुकृष्टि चय घटाएं, तिस ही द्विचरम समय का द्विचरम खंड का प्रमाण हो है । अैसै अध.प्रवृत्तकरण के काल का द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि खंड, ते अनुकृष्टि का गच्छप्रमाण है, ते क्रम तैं एक-एक चय अधिक स्थापन करने । अैसे तिर्यक्‌रचना जो बरोबर रचना, तीहि विषै एक-एक समय संबंधी खंडनि विषै परिणामनि का प्रमाण कह्या ।

भावार्थ - पूर्वै अधःकरण का एक-एक समय विषै संभवते नाना जीवनि के परिणामनि का प्रमाण कह्या था । अब तिस विषै जुदे जुदे संभवते अैसे एक-एक समय संबंधी खंडनि विषैं परिणामनि का प्रमाण इहा कह्या है । सो ऊपरि के अर नीचै के समय संबंधी खंडनि विषै परस्पर समानता पाइए है । तातै अनुकृष्टि अैसा नाम इहां संभवै है । जितनी सख्या लीये ऊपरि के समय विषै परिणाम खंड हो है, तितनी संख्या लीये नीचले समय विषैं भी परिणाम खण्ड होइ है । अैसे नीचले समय सबंधी परिणाम खड तैं ऊपरि के समय संबधी परिणाम खण्ड विषै समानता जानि इसका नाम अधःप्रवृत्तकरण कह्या है ।

बहुरि इहां विशेष है, सो कहिए है । प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि का प्रथम खण्ड, सो सर्व तै जघन्य खण्ड है; जातै सर्वखण्डनि तै याकी संख्या घाटि है । बहुरि अंतसमय संबधी अत का अनुकृष्टि खण्ड, सो सर्वोत्कृष्ट है; जातै याकी संख्या सर्व खण्डनि तै अधिक है; सो इन दोऊनि कै कही अन्य खण्ड करि समानता नाही है । बहुरि अवशेष ऊपरि समय सबधी खण्डनि के नीचले समय सबंधी खण्डनि सहित अथवा नीचले समय संबधी खण्डनि कै ऊपरि समय सवधी खण्डनि सहित यथासंभव समानता है । तहां द्वितीय समय तै लगाय द्विचरम समय पर्यंत जे समय, तिनका पहला-पहला खण्ड अर अंत समय का प्रथम खण्ड तै लगाइ द्विचरम खण्ड पर्यंत खण्ड, ते अपने-अपने ऊपरि के समय सबंधी खडनि करि समान नाहीं है । तातै असदृश है, सो द्वितीयादि द्विचरम पर्यन्त समय सवधी प्रथम खण्डनि की ऊर्ध्वरचना कीए । अर ऊपरि अत समय के प्रथमादि द्विचरम पर्यन्त खण्डनि की तिर्यक् रचना कीए अकुश के आकार रचना हो है । तातै याकी अंकुश रचना कहिए ।

यहु अक सदृष्टि अपेक्षा अकुश-रचना															
	५४	५३	५२	५१	५०	४६	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
	५५														
	५६														

वहुरि द्वितीय समय तै लगाइ द्विचरम समय पर्यंत समय सबधी अंत-अंत के खण्ड अर प्रथम समय संवधी प्रथम खंड विना अन्य सर्व खण्ड, ते अपने-अपने नीचले समय संवधी किसी ही खण्डनि करि समान नाही, तातै असदृश हैं। सो इहां द्वितीयादि द्विचरम पर्यंत समय सवंधी अंत-अंत खण्डनि की ऊर्ध्वरचना कीएं अर नीचे प्रथम समय के द्वितीयादि अंत पर्यंत खण्डनि की तिर्यक्‌रचना कीए हल के आकार रचना हो है। तातै याकौ लागल रचना कहिए।

यह अक सदृष्टि अपेक्षा लागल रचना

														४०
														४१
५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२

वहुरि जघन्य उत्कृष्ट खंड अर ऊपरि नीचै समय संवंधी खण्डनि की अपेक्षा कहे असदृश खण्ड, तिनि खडनि विना अवशेष सर्व खण्ड अपने ऊपरि के अर नीचले समय सवधी खण्डनि करि यथासंभव समान जानने।

अव विशुद्धता के अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा वर्णन करिए हैं। जाका दूसरा भाग न होइ – असा शक्ति का अंश, ताका नाम अविभागप्रतिच्छेद जानना। तिनकी अपेक्षा गणना करि पूर्वोक्त अधःकरण के खडनि विषै अल्पवहुत्वरूप वर्णन करै हैं। तहां अध प्रवृत्तकरण के परिणामनि विषै प्रथम समय संवंधी जे परिणाम, तिनके खंडनि विषैं जे प्रथम खंड के परिणाम, ते सामान्यपनै असंख्यात लोकमात्र हैं। तथापि पूर्वोक्त विधान के अनुसारि स्थापि, भाज्य भागहार का यथासंभव अपवर्तन किये, संख्यात प्रतरावली का जाकौ भाग दीजिये, ऐसा असंख्यात लोक मात्र है। ते ए परिणाम अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद लिये हैं। तहां एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का घन करि तिसही का वर्ग कौ गुणें जो प्रमाण होइ, तितने परिणामनि विषै जो एक वार षट्स्थान होइ, तो सख्यात प्रतरावली भक्त असंख्यात लोक प्रमाण प्रथम समय सवंधी प्रथम खंड के परिणामनि विषै केती वार षट्स्थान होइ? ऐसे त्रैराशिक करि पाए हुए असंख्यात लोक वार षट्स्थाननि कौं प्राप्त जो विशुद्धता की वृद्धि, तीहि करि वर्धमान हैं।

भावार्थ – आगै ज्ञानमार्गणा विषै पर्याय समास श्रुतज्ञान का वर्णन करतैं जैसै अनंतभाग वृद्धि आदि षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम कहैंगे, तैसें इहां अध. प्रवृत्तकरण सम्बन्धी विशुद्धतारूप कषाय परिणामनि विषै भी अनुक्रम तैं अनन्तभाग,

असंख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनंतगुण वृद्धिरूप षट्-स्थानपतित वृद्धि सभवै है। तहां तिस अनुक्रम के अनुसारि एक अधिक जो सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग, ताका घन करि ताही का वर्ग कौ गुणिए।

भावार्थ ऐसा – पांच जायगा मांडि परस्पर गुणिये जो प्रमाण आवै, तितने विशुद्धि परिणाम विषैं एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि हो है। ऐसैं क्रम तै प्रथम परिणाम तैं लगाइ, इतने-इतने परिणाम भये पीछैं एक-एक बार षट्स्थान वृद्धि पूर्ण होते असंख्यात लोकमात्र वार षट्स्थानपतित वृद्धि भए, तिस प्रथम खंड के सव परिणामनि की सख्या पूर्ण होइ है। यातै असख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित वृद्धि करि वर्धमान प्रथम खड के परिणाम है। वहुरि तैसैं ही द्वितीय समय के प्रथम खंड का परिणाम एक अनुकृष्टि चय करि अधिक है, ते जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टभेद लिये है। सो ए भी पूर्वोक्त प्रकार असख्यात लोकमात्र षट्स्थान-पतित वृद्धि करि वर्धमान है।

भावार्थ – एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवा भाग का घन करि गुणित तिस ही का वर्गमात्र परिणामनि विषै जो एक बार षट्स्थान होइ, तो अनुकृष्टि चय प्रमाण परिणामनि विषै केती वार षट्स्थान होइ ? ऐसैं त्रैराशिक किये जितने पावैं, तितनी वार अधिक षट्स्थानपतित वृद्धि प्रथम समय के प्रथम खण्ड तै द्वितीय समय के प्रथम खण्ड विषै संभवै है। ऐसैं ही तृतीयादिक अत पर्यन्त समयनि कै प्रथम-प्रथम खड के परिणाम एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक है। वहुरि तैसै ही प्रथमादि समयनि के अपने-अपने प्रथम खण्ड तै द्वितीयादि खण्डनि के परिणाम भी क्रम तै एक-एक चय अधिक है। तहा यथासम्भव षट्स्थानपतित वृद्धि जेती वार होइ, तिनका प्रमाण जानना।

अथ तिन खण्डनि के विशुद्धता का अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा अल्प-बहुत्व कहिये है। प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड का जघन्य परिणाम की विशुद्धता अन्य सर्व तै स्तोक है। तथापि जीव राशि का जो प्रमाण, तातै अनतगुणा अविभाग-प्रतिच्छेदनि के समूह कौ धरै है। बहुरि यातै तिस ही प्रथम समय का प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम की विशुद्धता अनतगुणी है। बहुरि तातै द्वितीय खण्ड का जघन्य परिणाम की विशुद्धता अनतगुणी है। तातै तिस हि का उत्कृष्ट परिणाम की विशुद्धता अनंतगुणी है। ऐसैं ही क्रम तै तृतीयादि खण्डनि विषै भी जघन्य,

उत्कृष्ट परिणामनि की विशुद्धता अनंतगुणी-अनंतगुणी अंत के खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त प्रवर्ते है ।

बहुरि प्रथम समय संबंधी प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता तै द्वितीय समय के प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातै तिस ही की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है ।

बहुरि तातै द्वितीय खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातै तिस ही की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । ऐसै तृतीयादि खण्डनि विषै भी जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रम करि द्वितीय समय का अंत का खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त प्राप्त हो है । बहुरि इस ही मार्ग करि तृतीयादि समयनि विषै भी पूर्वोक्त लक्षणयुक्त जो निर्वर्गणाकांडक, ताका द्विचरम समय पर्यन्त जघन्य उत्कृप्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रम करि ल्यावनी ।

बहुरि निर्वर्गणाकाण्डक का अंत समय संबंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता तैं प्रथम समय का अंत खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातै दूसरा निर्वर्गणाकांडक का प्रथम समय सवंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनतगुणी है । तातै तिस प्रथम निर्वर्गणाकाडक का द्वितीय समय सवंधी अंत के खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनतगुणी है । तातै द्वितीय निर्वर्गणाकांडक का द्वितीय समय संवधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम
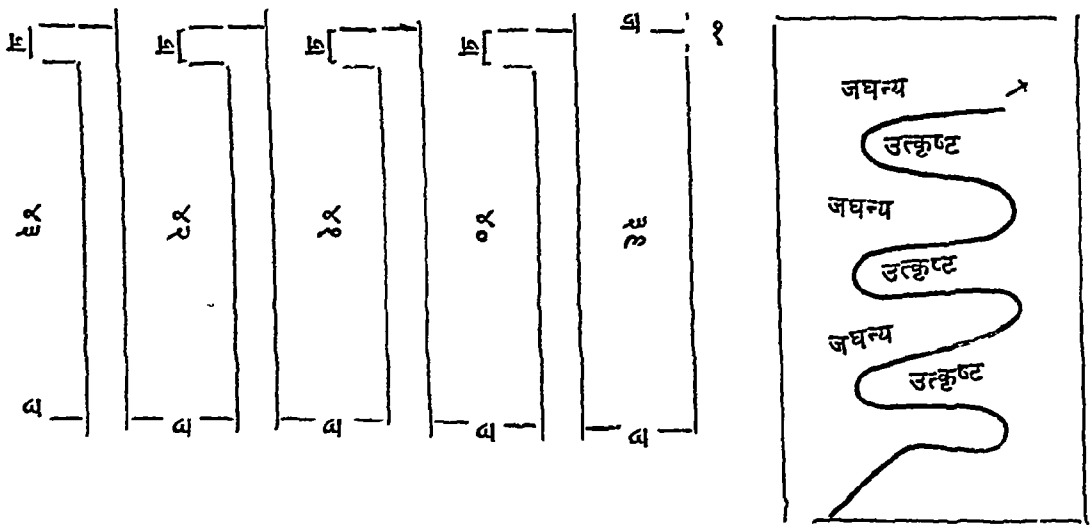
१ – भाषाटीका मे सर्प का आकार वनाकर वीच मे जघन्य उत्कृष्ट तीन-तीन वार लिखकर सदृष्टि लिखी है, परतु मंदप्रवोधिका मे इस प्रकार है ।

विशुद्धता अनंतगुणी है। तातै प्रथम निर्वर्गणाकांडक का तृतीय समय सबधी उत्कृष्ट खण्ड की उत्कृष्ट विशुद्धता अनतगुणी है। या प्रकार जैसै सर्प की चाल इधर तै ऊधर, ऊधर तै इधर पलटनिरूप हो है; तैसै जघन्य तै उत्कृष्ट, उत्कृष्ट तै जघन्य असै पलटनि विषै अनतगुणी अनुक्रम करि विशुद्धता प्राप्त करिए, पीछे अत का निर्वर्गणाकांडक का अंत समय संबधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतानंतगुणी है। काहे तै ? जातै पूर्व-पूर्व विशुद्धता तैं अनंतानंतगुणापनौ सिद्ध है। बहुरि तातै अंत का निर्वर्गणाकांडक का प्रथम समय संबंधी उत्कृष्ट खण्ड की परिणाम विशुद्धता अनतगुणी है। तातै ताके ऊपरि अंत का निर्वर्गणाकांडक का अंत समय सबंधी अत खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त उत्कृष्ट खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतानतगुणा अनुक्रम करि प्राप्त हो है। तिनि विषै जे जघन्य तै उत्कृष्ट परिणामनि की विशुद्धता अनतानतगुणी है, ते इहा विवक्षारूप नाही है; असा जानना।

या प्रकार विशुद्धता विशेष धरै जे अधःप्रवृत्तकरण के परिणाम, तिनि विषै गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसक्रमण, स्थितिकांडकोत्करण, अनुभागकांडकोत्करण भए च्यारि आवश्यक न सभवै है। जातै तिस अधःकरण के परिणामनि के तैसा गुण-श्रेणि निर्जरा आदि कार्य करने की समर्थता का अभाव है। इनका स्वरूप आगै अपूर्वकरण के कथन विषै लिखैगे।

तौ इस करण विषै कहा हो है ?

केवल प्रथम समय तै लगाइ समय-समय प्रति अनतगुणी-अनतगुणी विशुद्धता की वृद्धि हो है। बहुरि स्थितिबधापसरण हो है। पूर्वै जेता प्रमाण लीए कर्मनि का स्थितिबध होता था, तातै घटाइ-घटाइ स्थितिबध करै है। बहुरि साता वेदनीय कौ आदि दैकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनि का समय-समय प्रति अनतगुणा-अनंतगुणा बधता गुड, खड, शर्करा, अमृत समान चतुस्थान लीए अनुभाग बंध हो है। बहुरि असाता वेदनीय आदि अप्रशस्त कर्म प्रकृतिनि का समय-समय प्रति अनंतगुणा-अनतगुणा घटता निब, काजीर समान द्विस्थान लीए अनुभाग बध हो है, विष-हलाहल रूप न हो है। अैसें च्यारि आवश्यक इहां संभवै है। अवश्य हो हैं, तातै **इनिकौ आवश्यक कहिए है।**

बहुरि असै यहु कह्या जो अर्थ, ताकी रचना अंकसंदृष्टि अपेक्षा लिखिए है।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा अधःकरण रचना

सोलह समयनि की ऊर्ध्व रचना	अनुकृष्टिरूप एक-एक समय संबंधी च्यारि-च्यारि खडनि की तिर्यक् रचना			
	प्रथम खड	द्वितीय खड	तृतीय खड	चतुर्थ खड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

अर्थसंदृष्टि अपेक्षा रचना है, सो आगे सदृष्टि अधिकार विषै लिखेंगे। तथा याका यहु अभिप्राय है – एक जीव एकै काल ऐसा कहिए, तहां विवक्षित अधःप्रवृतकरण का परिणामरूप परिणया जो एक जीव, ताका परमार्थवृत्ति करि वर्तमान अपेक्षा काल एक समय मात्र ही है; तातै एक जीव का एकै काल समय प्रमाण जानना। बहुरि एक जीव नानाकाल ऐसा कहिए, तहा अधःप्रवृत्तकरण का नानाकालरूप अंतर्मुहूर्त के समय ते अनुक्रम तै एक जीव करि चढिए है, यातै एक जीव का नानाकाल अतर्मुहूर्त का समय मात्र है। बहुरि नानाजीवनि का एक काल ऐसा कहिए, तहां विवक्षित एक समय अपेक्षा अध.प्रवृत्तकाल के असंख्यात समय हैं, तथापि तिनिविषै यथासभव एक सौ आठ समयरूप जे स्थान, तिनिविषै संग्रहरूप जीवनि की विवक्षा करि एक काल है; जातै वर्तमान एक कोई समय विषै अनेक जीव है, ते पहिला, दूसरा तीसरा आदि अध.करण के असंख्यात समयनि विषै यथासंभव एक सौ आठ समय विषै ही प्रवर्तते पाइए है। तातै अनेक जीवनि का एक काल एक सौ आठ समय प्रमाण है। बहुरि नानाजीव, नानाकाल ऐसा कहिए; तहा अध.प्रवृत्तकरण के परिणाम असंख्यात लोकमात्र है, ते त्रिकालवर्ती अनेक जीव संबंधी है। बहुरि जिस परिणाम कौ कह्या, तिसको

फेर न कहना; असै अपुनरुक्तरूप है । तिनकौ अनेक जीव अनेक काल विषै आश्रय करै है । सो एक-एक परिणाम का एक-एक समय की विवक्षा करि नाना जीवनि का नानाकाल असंख्यातलोक प्रमाण समय मात्र है; असा जानना ।

बहुरि अब अधःप्रवृत्तकरण का काल विषै प्रथमादि समय संबधी स्थापे जे विशुद्धतारूप कषाय परिणाम, तिनिविषै प्रमाण के अवधारने कौ कारणभूत जे करणसूत्र, तिनिका गोपालिक विधान करि बीजगणित का स्थापन कहिए है; जातै पूर्वोक्त करणसूत्रनि का अर्थ विषै संशय का अभाव है । तहा **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस करणसूत्र की वासना अकसंदृष्टि अपेक्षा दिखाइए है । **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ'** असा शब्द करि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण चय सर्वस्थानकनि विषै ग्रहण कीया, ताका प्रयोजन यहु जो ऊपरि वा नीचै के स्थानकनि विषै हीनाधिक चय पाइए, तिनकौ समान करि स्थापै, एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण चय सर्व स्थानकनि विषै समान हो है । सो इहां एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण साड़ा सात है, सो इतने-इतने चय सोलह समयनि विषै समान हो है । कैसै ? सो कहिए है – प्रथम समय विषै तो आदि प्रमाण ही है, ताके चय की वृद्धि वा हानि नाही है । बहुरि अंत समय विषै एक घाटि गच्छ का प्रमाण चय है, यातै **व्येकपद** शब्द करि एक घाटि गच्छ प्रमाण चयनि की संख्या कही । बहुरि **अर्ध** शब्द करि अत समय के पंद्रह चयनि विषै साड़ा सात चय काढि प्रथम समय का स्थान विषै रचे दोऊ जायगा साड़ा सात, साड़ा सात चय समान भए । असै ही ताके नीचे पद्रहवां समय के चौदह चयनि विषै साड़ा छह चय काढि, द्वितीय समय का एक चय के आगे रचनारूप कीएं, दोऊ जाएगा साडा सात, साडा सात चय हो है । बहुरि ताके नीचै चौदहवां समय के तेरह चयनि विषै साड़ा पाच चय काढि, तीसरा समय का स्थान विषै दोय चय के आगै रचे दोऊ जायगा साड़ा सात, साड़ा सात चय हो है । असै ही ऊपरि तै चौथा स्थान तेरहवा समय, ताकौ आदि देकरि समयनि के साड़ा च्यारि आदि चय काढि नीचै तै चौथा समय आदि स्थानकनि के तीन आदि चयनि के आगै स्थापै सर्वत्र साडा सात, साडा सात चय हो है । असै सोलह स्थानकनि विषै जैसै समपाटीका आकार हो है, तैसै साड़ा सात, साड़ा सात चय स्थापिए है । इहां का यंत्र है–

यह अंक संदृष्टि अपेक्षा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र की वासना कहने की रचना है।

सर्व स्थानकनि विषै आदि का प्रमाण	सर्वस्थानकनि विषै समानरूप कीए चयनि की रचना इहां च्यारि-च्यारि तौ एक-एक चय का प्रमाण, आगै दोय आधा चय का प्रमाण जानना	ऊपरि समयवर्ती चयकादि नीचले समय स्थान विषै स्थापे, तिनकी रचना
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	२
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१९२	४।४।४।४।४।४।४।२	
[illegible] ३०७२	इनको जोड़े उत्तरधन ४८०	

बहुरि एक स्थान विषै साडा सात चय का प्रमाण होइ, तौ सोलह स्थानकनि विषै केते चय हो है ? ऐसैं त्रैराशिक करि प्रमाण राशि एक स्थान, फलराशि साडा सात चय, तिनिका प्रमाण तीस, इच्छाराशि सोलह स्थान, तहा फल कौ इच्छा करि गुणि, प्रमाण का भाग दिये लब्धराशि च्यारि सै असी पूर्वोक्त उत्तरधन का प्रमाण आवै है । ऐसैं ही अनुकृष्टि विषै भी अंकसंदृष्टि करि प्ररूपण करना ।

बहुरि याही प्रकार अर्थसंदृष्टि करि भी सत्यार्थरूप साधन करना । ऐसैं **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र की वासना बीजगणित करि दिखाई । बहुरि अन्य करण सूत्रनि की भी यथासंभव बीजगणित करि वासना जानना ।

ऐसैं अप्रमत्त गुणस्थान कौ व्याख्यान करि याके अनन्तर अपूर्वकरण गुण-स्थान कौ कहै है —

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं ।
पडिसमयं सुज्भंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥५०॥

अंतर्मूहूर्तकालं, गमयित्वा अधःप्रवृत्ताकरणं तत् ।
प्रतिसमयं शुध्द्यन् अपूर्वकरणं समाश्रयति ॥५०॥

टीका – ऐसे अंतर्मुहूर्तकाल प्रमाण पूर्वोक्त लक्षण धरें अध.प्रवृत्तकरण कौ गमाइ, विशुद्ध सयमी होइ, समय-समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धता की वृद्धि करि वधता सता अपूर्वकरण गुणस्थान कौ आश्रय करै है ।

एदह्मि गुणट्ठाणे, विसरिस समयट्ठियेहिं जीवेहिं ।
पुव्वमपत्ता जह्मा, होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥५१॥ [1]

एतस्मिन् गुणस्थाने, विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः ।
पूर्वमप्राप्ता यस्माद्, भवंति अपूर्वा हि परिणामाः ॥५१॥

टीका – जा कारण तै इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषै [illegible] समानरूप नाही, ऐसे जे ऊपरि-ऊपरि के समयनि विषै [illegible] विशुद्ध परिणाम पाइए हैं; ते पूर्व-पूर्व समयनि विषै [illegible] न पाइ

---

१ [illegible] १, पृष्ठ [illegible], गाथा [illegible]

ऐसे हैं; ता कारण तै अपूर्व है करण कहिए परिणाम जा विषै, सो अपूर्वकरण गुण-स्थान है – ऐसा निरुक्ति करि लक्षण कह्या है ।

भिण्णसमयट्ठियेहिं दु, जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा ॥५२॥[1]

भिन्नसमयस्थितैस्तु, जीवैर्न भवति सर्वदा सादृश्यम् ।
करणैरेकसमयस्थितैः सादृश्यं वैसादृश्यं वा ॥५२॥

टीका – जैसैं अध.प्रवृत्तकरण विषै भिन्न-भिन्न ऊपरि नीचै के समयनि विषै तिष्ठते जीवनि के परिणामनि की संख्या अर विशुद्धता समान संभवै है; तैसे इहां अपूर्वकरण गुणस्थान विषै सर्वकाल विषै भी कोई ही जीव कै सो समानता न संभवै है । वहुरि एक समय विषै स्थित करण के परिणाम, तिनके मध्य विवक्षित एक परिणाम की अपेक्षा समानता अर नाना परिणाम की अपेक्षा असमानता जीवनि के अध करणवत् इहां भी संभवै है, नियम नाही; अैसा जानना ।

भावार्थ – इस अपूर्वकरण विषै ऊपरि के समयवर्ती जीवनि कै अर नीचले समयवर्ती जीवनि कै समान परिणाम कदाचित् न होइ । वहुरि एक समयवर्ती जीवनि के तिस समय सबधी परिणामनि विषै परस्पर समान भी होइ अर समान नाही भी होइ ।

ताका उदाहरण - जैसै जिनि जीवनि कौं अपूर्वकरण मांडे पांचवा समय भया, तहां तिन जीवनि के जैसे परिणाम होहि, तैसे परिणाम जिन जीवनि कौ अपूर्वकरण मांडे प्रथमादि चतुर्थ समय पर्यन्त वा षष्ठमादि अंत समय पर्यन्त भए होहि, तिनकै कदाचित् न होड, यहु नियम है । वहुरि जिनि जीवनि कौ अपूर्वकरण माडे पाचवां समय भया. अैसे अनेक जीवनि के परिणाम परस्पर समान भी होंइ, जैसा एक जीव का परिणाम होइ, तैसा अन्य का भी होइ अथवा असमान भी होइ । एक जीव का औरसा परिणाम होइ, एक जीव का औरसा परिणाम होइ । अैसैं ही अन्य-अन्य समयवर्ती जीवनि कै तौ जैसैं अध करण विषै परस्पर समानता भी थी, तैसें इहां नाही है । वहुरि एक समयवर्ती जीवनि के जैसे अध करण विषै

---

१ - षट्खण्डागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८४, गाथा न ११६.

समानता वा असमानता थी, तैसें इहा भी है । या प्रकार त्रिकालवर्ती नाना जीवनि के परिणाम इस अपूर्वकरण विषै प्रवर्तंते जानने ।

अंतोमुहुत्तमेत्ते, पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढा पुव्वगुणे, अणुकट्ठी णत्थि णियमेण ।।५३।।

अंतर्मुहूर्तमात्रे, प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
क्रमवृद्धा अपूर्वगुणे, अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ।।५३।।

टीका – अंतर्मुहूर्तमात्र जो अपूर्वकरण का काल, तीहि विषै समय-समय प्रति क्रम तै एक-एक चय बधता असख्यात लोकमात्र परिणाम है । तहा नियम करि पूर्वापर समय सबंधी परिणामनि के समानता का अभाव तै अनुकृष्टि विधान नाही है ।

इहा भी अंक सदृष्टि करि दृष्टांतमात्र प्रमाण कल्पना करि रचना का अनुक्रम दिखाइये है । अपूर्वकरण के परिणाम च्यारि हजार छिनवै, सो सर्वधन है । बहुरि अपूर्वकरण का काल आठ समय मात्र, सो गच्छ है । बहुरि सख्यात का प्रमाण च्यारि (४) है । सो **'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयो होदि'** इस सूत्र करि गच्छ ८ का वर्ग ६४ अर संख्यात च्यारि का भाग सर्वधन ४०९६ कौ दीए चय होइ, ताका प्रमाण सोलह भया । बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ ७, ताका आधा $\frac{7}{2}$ कौ चय १६ करि गुणे जो प्रमाण ५६ होय, ताका गच्छ (८) आठ करि गुणे चय धन च्यारि सै अडतालीस (४४८) होइ । याकौ सर्वधन ४०९६ में घटाइ, अवशेष ३६४८ कौ गच्छ आठ (८) का भाग दीए, प्रथम समय सबंधी परिणाम च्यारि सै छप्पन (४५६) हो है । यामैं एक चय १६ मिलाए द्वितीय समय सबंधी हो है । असैं तृतीयादि समयनि विषै एक-एक चय बधता परिणाम पुज है, तहां एक घाटि गच्छ मात्र चय का प्रमाण एक सौ बारह, सो प्रथम समय संबधी धन विषै जोडे, अत समय सबंधी परिणाम पुज पाच सै अडसठि हो है । यामै एक चय घटाए द्विचरम समय सबधी परिणाम पुज पांच सै बावन हो है । असैं ही एक चय घटाए आठौ गच्छ कौ प्रमाण जानना ।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा समय-समयसंबंधी अपूर्व-करण परिणाम रचना	अब यथार्थ कथन करिये है । तहां अर्थसंदृष्टि करि रचना है, सो आगै संदृष्टि अधिकार विषै लिखेंगे । सो त्रिकालवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण के विशुद्धतारूप
५६८	परिणाम, ते सर्व ही अध प्रवृत्तकरण के जेते परिणाम हैं,
५५२	तिनतै असंख्यात लोक गुणे है । काहे तै ? जातै अधःप्रवृत्त-
५३६	करण काल का अंत समय संबंधी जे विशुद्ध परिणाम
५२०	है, तिनका अपूर्वकरण काल का प्रथम समय विषै प्रत्येक
५०४	एक-एक परिणाम के असंख्यात लोक प्रमाण भेदनि की
४८८	उत्पत्ति का सद्भाव है । तातैं अपूर्वकरण का सर्व परिणाम-
४७२	रूप सर्वधन, सो असंख्यात लोक कौ असंख्यात लोक करि
४५६	गुणै जो प्रमाण होइ, तितना है; सो सर्वधन जानना ।
सर्व परिणाम जोड	बहुरि ताका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है; ताके जेते समय, सो
४०९६	गच्छ जानना । बहुरि 'पदकदिसंखेण भाजिदं पचयं' इस

सूत्र करि गच्छ का वर्ग का अर संख्यात का भाग सर्वधन कौ दीए जो प्रमाण होइ; सो चय जानना । बहुरि 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि चय कौ गुणि गच्छ कौ गुणै जो प्रमाण होइ, सो चय धन जानना । याकौं सर्वधन विषै घटाइ अवशेष कौ गच्छ का भाग दीएं जो प्रमाण आवै, सोई प्रथम समयवर्ती त्रिकाल गोचर नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण परिणाम का प्रमाण हो है । बहुरि यामै एक चय जोडे, द्वितीय समयवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण परिणामनि का पुंज प्रमाण हो है । ऐसे ही तृतीयादि समयनि विषै एक-एक चय की वृद्धि का अनुक्रम करि परिणाम पुंज का प्रमाण ल्याएं संतै अंत समय विषै परिणाम धन है । सो एक घाटि गच्छ का प्रमाण चयनि कौ प्रथम समय संबंधी धन विषै जोडे जितना प्रमाण होइ, तितना हो है । बहुरि यामैं एक चय घटाएं, द्विचरम समयवर्ती नाना जीव संबंधी विशुद्ध परिणामनि का पुंज प्रमाण हो है। ऐसे समय-समय संबंधी परिणाम क्रम तै बधते जानने ।

बहुरि इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषै पूर्वोत्तर समय संबंधी परिणामनि कै सदा ही समानता का अभाव है; तातै इहां खंडरूप अनुकृष्टि रचना नाही है ।

भावार्थ – आगै कषायाधिकार विषै शुक्ल लेश्या संबंधी विशुद्ध परिणामनि का प्रमाण कहेंगे । तिसविषै इहां अपूर्वकरण विषै संभवते जे परिणाम, तिनिविषैं

अपूर्वकरण काल का प्रथमादि समयनि विषै जेते-जेते परिणाम संभवै, तिनका प्रमाण कह्या है। बहुरि इहां पूर्वापर विषै समानता का अभाव है; तातै खंड करि अनुकृष्टि विधान न कह्या है। बहुरि इस अपूर्वकरण काल विषै प्रथमादिक अंत समय पर्यंत स्थित जे परिणाम स्थान, ते पूर्वोक्त विधान करि असंख्यात लोक बार षट्स्थान पतित वृद्धि कौ लीएं जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद संयुक्त है। तिनका समय-समय प्रति अर परिणाम-परिणाम प्रति विशुद्धता का अविभागप्रतिच्छेदनि का प्रमाण अवधारणे के अर्थि अल्पबहुत्व कहिए है।

तहां प्रथम समयवर्ती सर्वजघन्य परिणाम विशुद्धता, सो अधःप्रवृत्तकरण का अंत समय संबंधी अंत खंड की उत्कृष्ट विशुद्धता तै भी अनंतगुणा अविभागप्रतिच्छेदमयी है, तथापि अन्य अपूर्वकरण के परिणामनि की विशुद्धता तै स्तोक है। बहुरि तातै प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। बहुरि तातै द्वितीय समयवर्ती जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। जातै प्रथम समय उत्कृष्ट विशुद्धता तै असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धिरूप अंतराल करि सो द्वितीय समयवर्ती जघन्य विशुद्धता उपजै है। बहुरि तातै तिस द्वितीय समयवर्ती उत्कृष्ट विशुद्धता अनंतगुणी है। ऐसै उत्कृष्ट तै जघन्य अर जघन्य तै उत्कृष्ट विशुद्ध स्थान अनंतगुणा-अनंतगुणा है। या प्रकार सर्प की चालवत् जघन्य तै उत्कृष्ट, उत्कृष्ट तै जघन्यरूप अनुक्रम लीए अपूर्वकरण का अत समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यंत जघन्य, उत्कृष्ट विशुद्धता का अल्पबहुत्व जानना।

या प्रकार इस अपूर्वकरण परिणाम का जो कार्य है, ताके विशेष कौ गाथा दोय करि कहै है –

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं ।
मोहस्सपुव्वकरणा, खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥५४॥[1]

तादृशपरिणामस्थितजीवा हि जिनैर्गलिततिमिरैः ।
मोहस्यापूर्वकरणा, क्षपणोपशमनोद्यता भणिताः ॥८४॥

टीका – तादृश कहिए तैसा पूर्व-उत्तर समयनि विषै असमान जे अपूर्वकरण के परिणाम, तिनिविषै स्थिताः कहिए परिणए ऐसे जीव, ते अपूर्वकरण है।

---

१. षट्खडगम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८४, गाथा ११८

असैं गल्या है ज्ञानावरणादि कर्मरूप अंधकार जिनिका, असे जिनदेवनि करि कह्या है ।

बहुरि ते अपूर्वकरण जीव सर्व ही प्रथम समय तैं लगाइ चारित्र मोहनीय नामा कर्म के क्षपावने कौं वा उपशम करने कौं उद्यमवंत हो हैं । याका अर्थ यहु – जो गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागखंडन असैं लक्षण धरैं जे च्यारि आवश्यक, तिनकौं करैं हैं ।

तहां पूर्वै बांध्या था असा सत्तारूप जो कर्म परमाणुरूप द्रव्य, तामैं सौं काढि जो द्रव्य गुणश्रेणी विषैं दीया, ताका गुणश्रेणी का काल विषैं समय-समय प्रति असंख्यात-असंख्यातगुणा अनुक्रम लीए पंक्तिबंध जो निर्जरा का होना, सो गुणश्रेणि-निर्जरा है ।

बहुरि समय-समय प्रति गुणकार का अनुक्रम तैं विवक्षित प्रकृति के परमाणु पलटि करि अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं, सो गुण संक्रमण है ।

बहुरि पूर्वै बांधी थी असी सत्तारूप कर्म प्रकृतिनि की स्थिति, ताका घटावना; सो स्थिति खंडन कहिए ।

बहुरि पूर्वै बांध्या था असा सत्तारूप अप्रशस्त कर्म प्रकृतिनि का अनुभाग, ताका घटावना सो अनुभाग खंडन कहिए । असैं च्यारि कार्य अपूर्वकरण विषैं अवश्य हो हैं । इनिका विशेष वर्णन आगैं लब्धिसार, क्षपणासार अनुसार अर्थ लिखेंगे, तहां जानना ।

णिद्दापयले णट्ठे, सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया, णियमेण खवंति मोहं तु ॥५५॥

निद्राप्रचले नष्टे, सति आयुषि उपशमयंति उपशमकाः ।
क्षपकं ढौकमानाः, क्षपका नियमेन क्षपयंति मोहं तु ॥५५॥

टीका – इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषैं विद्यमान मनुष्य आयु जाकैं पाइए, असा अपूर्वकरण जीव के प्रथम भाग विषै निद्रा अर प्रचला – ए दोय प्रकृति बंध होने तैं व्युच्छित्तिरूप हो हैं ।

अर्थ यहु - जो उपशम श्रेणी चढनेवाले अपूर्वकरण जीव का प्रथम भाग विषैं मरण न होइ, बहुरि निद्रा-प्रचला का बंध व्युच्छेद होइ, तिसको होतैं ते अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव जो उपशम श्रेणी प्रति चढै तो चारित्रमोह को नियमकरि उपशमावैं है। बहुरि क्षपक श्रेणी प्रति चढनेवाले क्षपक, ते नियम करि तिस चारित्र मोह को क्षपावैं है। बहुरि क्षपक श्रेणी विषै सर्वत्र नियमकरि मरण नाही है।

आगै अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का स्वरूप कौ गाथा दोय करि प्ररूपैं है -

एक्कह्मि कालसमये, संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥५६॥

होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा ॥५७॥[1] (जुग्मम्)

एकस्मिन् कालसमये, संस्थानादिभिर्यथा निवर्तते।
न निवर्तते तथापि च, परिणामैर्मिथो यैः ॥५६॥

भवंति अनिवर्तिनस्ते, प्रतिसमयं येषामेकपरिणामाः।
विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवना ॥५७॥ (युग्मम्)

टीका - अनिवृत्तिकरण काल विषै एक समय विषै वर्तमान जे त्रिकालवर्ती अनेक जीव, ते जैसैं शरीर का संस्थान, वर्ण, वय, अवगाहना अर क्षयोपशमरूप ज्ञान उपयोगादिक, तिनकरि परस्पर भेद कौं प्राप्त है; तैसें विशुद्ध परिणामनि करि भेद कौं प्राप्त न हो है प्रगटपने, ते जीव अनिवृत्तिकरण है, असैं सम्यक् जानना। जातै नाही विद्यमान है निवृत्ति कहिए विशुद्ध परिणामनि विषै भेद जिनकै, ते अनिवृत्तिकरण है, ऐसी निरुक्ति हो है।

भावार्थ - जिन जीवनि कौं अनिवृत्तिकरण माडै पहला, दूसरा आदि समान समय भए होहि, तिनि त्रिकालवर्ती अनेक जीवनि के परिणाम समान ही होंइ। जैसैं अधःकरण, अपूर्वकरण विषैं समान वा असमान होते थे, तैसैं इहा नाही। बहुरि अनिवृत्तिकरण काल का प्रथम समय कौं आदि दैकरि समय-समय प्रति वर्त-

---

१ षट्खंडागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८७ गाथा ११, २०

मान जे सर्व जीव, ते हीन-अधिकपना तैं रहित समान विशुद्ध परिणाम धरै हैं। तहां समय-समय प्रति ते विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे-अनंतगुणे उपजै है। तहां प्रथम समय विषै जे विशुद्ध परिणाम हैं; तिनतैं द्वितीय समय विषै विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे हो है। असैं पूर्व-पूर्व समयवर्ती विशुद्ध परिणामनि तैं जीवनि के उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा अनंतगुणा-अनंतगुणा अनुक्रम करि वधता हुआ प्रवर्तै हैं। ऐसा यहु विशेष जैनसिद्धांत विषै प्रतिपादन किया है, सो प्रतीति में ल्यावना।

भावार्थ – अनिवृत्तिकरण विषै एक समयवर्ती जीवनि के परिणामनि विषै समानता है। बहुरि ऊपरि-ऊपरि समयवर्तीनि के अनंतगुणी-अनंतगुणी विशुद्धता वधती है।

ताका उदाहरण – जैसै जिनकौ अनिवृत्तिकरण मांडै पांचवां समय भया, ऐसे त्रिकालवर्ती अनेक जीव, तिनकै विशुद्ध परिणाम परस्पर समान ही होंइ, कदाचित् हीन-अधिक न होंइ। बहुरि ते विशुद्ध परिणाम जिनकौ अनिवृत्तिकरण मांडै चौथा समय भया, तिनकै विशुद्ध परिणामनि तै अनंतगुणे हैं। बहुरि इनतै जिनकौ अनिवृत्तिकरण मांडै छठा समय भया, तिनकै अनंतगुणे विशुद्ध परिणाम हो है; ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि तिस अनिवृत्तिकरण परिणाम संयुक्त जीव, ते अति निर्मल ध्यानरूपी हुतभुक् कहिए अग्नि, ताकी शिखानि करि दग्ध कीए हैं कर्मरूपी वन जिनने ऐसे है। इस विशेषण करि चारित्र मोह का उपशमावना वा क्षय करना अनिवृत्तिकरण परिणामनि का कार्य है; ऐसा सूच्या है।

आगै सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के स्वरूप कौ कहै है –

धुदकोसुंभयवत्थं, होदि जहा सुहमरायसंजुत्तं।
एवं सुहमकसाओ, सुहमसरागो त्ति णादव्वो ॥५८॥

धौतकौसुंभवस्त्रं भवति यथा सूक्ष्मरागसंयुक्तं।
एवं सूक्ष्मकषायः, सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥५८॥

टीका – जैसैं धोया हुआ कसूंमल वस्त्र, सो सूक्ष्म लाल रंग करि संयुक्त हो है। तैसैं अगिला सूत्र विषै कह्या विधान करि सूक्ष्म कृष्टि कौ प्राप्त जो लोभ कषाय, ताहिकरि जो संयुक्त, सो सूक्ष्मसांपराय है; ऐसा जानना।

आगै सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्तपने का स्वभाव कौ गाथा दोय करि प्ररूपै है –

पुव्वापुव्वप्फड्ढय, बादरसुहुमगयकिट्टिअणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवराढु वरं च हेट्ठस्स ।।५६।। [१]

पूर्वापूर्वस्पर्धकबादरसूक्ष्मगतकृष्टचनुभागाः ।
हीनक्रमा अनंतगुणेन, अवरात्तु वरं चाधस्तनस्य ।।५९।।

टीका – पूर्वें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान विषै वा संसार अवस्था विषै जे सभवै ऐसै कर्म की शक्ति समूहरूप पूर्वस्पर्धक, बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनि करि कीए तिनके अनंतवे भाग प्रमाण अपूर्वस्पर्धक, बहुरि तिनहि करि करी जे बादर-कृष्टि, बहुरि तिनही करि करी जे कर्म शक्ति का सूक्ष्म खंडरूप सूक्ष्मकृष्टि, इनिका क्रम तै अनुभाग अपने उत्कृष्ट तै अपना जघन्य, अर ऊपरि के जघन्य तै नीचला उत्कृष्ट ऐसा अनंतगुणा घाटि क्रम लीए है ।

भावार्थ – पूर्व स्पर्धकनि का उत्कृष्ट अनुभाग, सो अविभागप्रतिच्छेद अपेक्षा जो प्रमाण धरै है, ताके अनतवें भाग पूर्व स्पर्धकनि का जघन्य अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग अपूर्वस्पर्धकनि का उत्कृष्ट अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग अपूर्वस्पर्धकनि का जघन्य अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग बादरकृष्टि का उत्कृष्ट अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग बादरकृष्टि का जघन्य अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग सूक्ष्मकृष्टि का उत्कृष्ट अनुभाग है । बहुरि ताके अनंतवे भाग सूक्ष्मकृष्टि का जघन्य अनुभाग है; ऐसा अनुक्रम जानना ।

बहुरि इन पूर्वस्पर्धकादिकनि का स्वरूप आगै लब्धिसार-क्षपणासार का कथन लिखेगे, तहा नीकै जानना । तथापि इनिका स्वरूप जानने के अर्थि इहां भी किंचित् वर्णन करिये है ।

कर्म प्रकृतिरूप परिणए जे परमाणु, तिनिविषै अपने फल देने की जो शक्ति, ताकौ अनुभाग कहिये । तिस अनुभाग का ऐसा कोई केवलज्ञानगम्य अंश, जाका दूसरा भाग न होइ, सो इहां अविभागप्रतिच्छेद जानना ।

बहुरि एक परमाणु विषै जेते अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनके समूह का नाम वर्ग है ।

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८६, गाथा १२१

बहुरि जिन परमाणुनि विषै परस्पर समान गणना लीए अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनिके समूह का नाम वर्गणा है ।

तहां अन्य परमाणुनि तै जाविषै थोरे अविभागप्रतिच्छेद पाइए, ताका नाम जघन्य वर्ग है ।

बहुरि तिस परमाणु के समान जिन परमाणुनि विषै अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनके समूह का नाम जघन्य वर्गणा है । बहुरि जघन्य वर्ग तै एक अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक जिनिविषै पाइए असी परमाणुनि का समूह; सो द्वितीय वर्गणा है । असै जहां ताईं एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधने का क्रम लीए जेती वर्गणा होंइ, तितनी वर्गणा के समूह का नाम जघन्य स्पर्धक है । बहुरि यातै ऊपरि जघन्य वर्गणा के वर्गनि विषै जेते अविभागप्रतिच्छेद थे, तिनतै दूणे जिस वर्गणा के वर्गनि विषै अविभागप्रतिच्छेद होहि, तहांतै द्वितीय स्पर्धक का प्रारंभ भया । तहां भी पूर्वोक्त प्रकार एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधने का क्रमयुक्त वर्गनि के समूहरूप जेती वर्गणा होंइ, तिनके समूह का नाम द्वितीय स्पर्धक है । बहुरि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गनि विषै जेते अविभागप्रतिच्छेद थे, तिनतै तिगुणे जिस वर्गणा के वर्गनि विषैं अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तहांतै तीसरे स्पर्धक का प्रारंभ भया, तहां भी पूर्वोक्त क्रम जानना ।

अर्थ इहां यहु – जो यावत् वर्गणा के वर्गनि विषै क्रम तै एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बधै, तावत् सोई स्पर्धक कहिए । बहुरि जहां युगपत् अनेक अविभागप्रति-च्छेद बधै, तहांतै नवीन अन्य स्पर्धक का प्रारंभ कहिए । सो चतुर्थादि स्पर्धकनि की आदि वर्गणा का वर्ग विषै अविभागप्रतिच्छेद प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा के वर्गनि विषै जेते थे, तिनतै चौगुणा, पंचगुणा आदि क्रम लीए जानने । बहुरि अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणा के वर्ग विषै अपनी-अपनी प्रथम वर्गणा के वर्ग तैं एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधता अनुक्रम तै जानना । असैं स्पर्धकनि के समूह का नाम प्रथम गुणहानि है । इस प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषै जेता परमाणुरूप वर्ग पाइए है, तिनितै एक-एक चय प्रमाण घटते द्वितीयादि वर्गणानि विषैं वर्ग जानने । असै क्रम तै जहां प्रथम गुणहानि की वर्गणा के वर्गनि तै आधा जिस वर्गणा विषै वर्ग होइ, तहांतै दूसरी गुणहानि का प्रारंभ भया । तहां द्रव्य, चय आदि का प्रमाण आधा-आधा जानना । इस क्रम तैं जेती गुणहानि सर्व कर्म परमाणुनि विषैं पाइए, तिनिके समूह का नाम नानागुणहानि है ।

इहां वर्गणादि विषै परमाणुनि का प्रमाण ल्यावने कौ द्रव्य, स्थिति, गुण-हानि, दोगुणहानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि ए छह जानने ।

तहां सर्व कर्म परमाणुनि का प्रमाण त्रिकोण यंत्र के अनुसारि स्थिति संबंधी किंचित्ऊन द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्ध प्रमाण, सो सर्वद्रव्य जानना ।

बहुरि नानागुणहानि करि गुणहानि आयाम कौ गुणै जो सर्वद्रव्य विषैं वगर्णानि का प्रमाण होई, सो स्थिति जाननी ।

बहुरि एक गुणहानि विषै अनंतगुणा अनंत प्रमाण वर्गणा पाइए है, सो गुणहानि आयाम जानना ।

याकौ दूणा किए जो प्रमाण होई, सो दोगुणहानि है ।

बहुरि सर्वद्रव्य विषै जे गुणहानि प्रमाण अनंत पाइए, तिनिका नाम नाना-गुणहानि है; जातै दोय का गुणकार रूप घटता-घटता जाविषै द्रव्यादिक पाइए, सो गुणहानि; अनेक जो गुणहानि, सो नानागुणहानि जानना ।

बहुरि नानागुणहानि प्रमाण दुये मांडि परस्पर गुणै, जो प्रमाण होई, सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ।

तहा एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्वद्रव्य कौ दीए जो प्रमाण होई, सो अंत की गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण है । यातै दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य का प्रमाण है । बहुरि **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इस सूत्र करि साधिक ड्योढ गुणहानि आयाम का भाग सर्वद्रव्य कौ दीए जो प्रमाण होइ, सोई प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषै परमाणुनि का प्रमाण है । बहुरि याकौ दो गुणहानि का भाग दीए चय का प्रमाण आवै है, सो द्वितीयादि वर्गणानि विषै एक-एक चय घटता परमाणुनि का प्रमाण जानना । ऐसै क्रम तै जहा प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा तै जिस वर्गणा विषै आधा परमाणुनि का प्रमाण है. सो द्वितीय गुण-हानि की प्रथम वर्गणा है । याके पहले जेती वर्गणा भई, ते सर्व प्रथम गुणहानि संबंधी जाननी ।

बहुरि इहां द्वितीय गुणहानि विषै भी द्वितीयादि वर्गणानि विषै एक-एक चय घटता परमाणुनि का प्रमाण जानना । इहा द्रव्य, चय आदि का प्रमाण प्रथम गुण-

हानि तै सर्वत्र आधा-आधा जानना, ऐसै क्रम तै सर्वद्रव्य विषै नानागुणहानि अनंत हैं। बहुरि इहां प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा तै लगाइ अंत वर्गणा पर्यन्त जे वर्गणा, तिनिके वर्गनि विषै अविभागप्रतिच्छेदनि का प्रमाण प्रवाहरूप पूर्वोक्त प्रकार अनुक्रमरूप बधता-बधता जानना ।

अब इस कथन कौ अंकसंदृष्टि करि दिखाइए है।

सर्वद्रव्य इकतीस सै ३१००, स्थिति चालीस ४०, गुणहानि आयाम आठ ८, दोगुण हानि सोलह १६, नानागुणहानि पांच ५, अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीस ३२, तहां एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० कौ दीएं सौ पाये, सो अंत गुणहानि का द्रव्य है। यातै दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना। १६००, ८००, ४००, २००, १००। बहुरि साधिक ड्योढ गुणहानि का भाग सर्वद्रव्य कौ दीए, दोय सै छप्पन (२५६) पाए, सो प्रथम गुणहानि विषै प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषै इतना-इतना घटता वर्ग जानना ऐसे वर्गनि का प्रमाण है। याकौ दो गुणहानि सोलह (१६) का भाग दीए सोलह पाए, सो चय का प्रमाण है। सो द्वितीयादि वर्गणा विषै इतना-इतना घटता वर्ग जानना। ऐसै आठ वर्गणा प्रथम गुणहानि विषै जाननी। बहुरि द्वितीय गुणहानि विषै आठ वर्गणा हैं। तिनि विषै पूर्व तै द्रव्य वा चय का प्रमाण आधा-आधा जानना। ऐसै आधा-आधा क्रम करि पाच नानागुणहानि सर्व द्रव्य विषै हो हैं।

इनकी रचना –

अंकसंदृष्टी अपेक्षा गुणहानि की वर्गणानि विषै वर्गनि के प्रमाण का यंत्र है।

प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
१४४	७२	३६	१८	९
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	४४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	१२०	६०	३०	१५
२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़ १६००	जोड़ ८००	जोड़ ४००	जोड़ २००	जोड़ १००

बहुरि च्यारि-च्यारि वर्गणा का समूह एक-एक स्पर्धक है, तातै एक-एक गुणहानि विषैं दोय-दोय स्पर्धक हैं। तहां प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथमवर्गणा का वर्गनि विषै आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद पाइये है। दूसरी वर्गणा का वर्गनि विषै नव-नव, तीसरी का विषै दश-दश, चौथी का विषै ग्यारह-ग्यारह जानने। बहुरि प्रथम गुणहानि का द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का वर्गनि विषै सोलह-सोलह, दूसरीकानि विषै सतरह-सतरह, तीसरीकानि विषै अठारह-अठारह, चौथीकानि विषै उगणीस-उगणीस अविभागप्रतिच्छेद है। बहुरि द्वितीय गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गनि विषै चौईस-चौईस, ऊपरि एक-एक बधती ऐसै ही अनंतगुणहानि का अंत स्पर्धक की अन्त वर्गणा पर्यन्त अनुक्रम जानना। इनकी रचना –

अंकसदृष्टि अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेदनि की रचना का यंत्र

प्रथम गुणहानि		द्वितीय गुणहानि		तृतीय गुणहानि		चतुर्थ गुणहानि		पञ्चम गुणहानि	
प्रथम स्पर्धक	द्वीतय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक
११	१९	२७	३५	४३	५१	५९	६७	७५	८३
१०।१०	१८।१८	२६।२६	३४।३४	४२।४२	५०।५०	५८।५८	६६।६६	७४।७४	८२।८२
९।९।९	१७।१७।१७	२५।२५।२५	३३।३३।३३	४१।४१।४१	४९।४९।४९	५७।५७।५७	६५।६५।६५	७३।७३।७३	८१।८१।८१
८।८।८।८	१६।१६।१६।१६	२४।२४।२४।२४	३२।३२।३२।३२	४०।४०।४०।४०	४८।४८।४८।४८	५६।५६।५६।५६	६४।६४।६४।६४	७२।७२।७२।७२	८०।८०।८०।८०

इहा च्यारि, तीन आदि स्थानकनि विषै आठ, नव आदि अविभागप्रतिच्छेद स्थापे है। तिनकी सहनानी करि अपनी-अपनी वर्गणा विषै जेते-जेते वर्ग है; तितने-तितने स्थानकनि विषै तिन अविभागप्रतिच्छेदनि का स्थापन जानना।

ऐसै अंकसंदृष्टि करि जैसै दृष्टांत कह्या, तैसै ही पूर्वोक्त यथार्थ कथन का अवधारण करना। या प्रकार कहे जे अनुभागरूप स्पर्धक, ते पूर्वै संसार अवस्था विषै जीवनि के संभवै है; तातै इनिकौ पूर्वस्पर्धक कहिये। इनि विषै जघन्य स्पर्धक तै लगाइ लताभागादिकरूप स्पर्धक प्रवर्तै है। तिनि विषै लताभागादिरूप केई स्पर्धक देशघाती है। ऊपरि के केई स्पर्धक सर्वघाती है, तिनिका विभाग आगै लिखेंगे। बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनि करि कबहू पूर्वै न भए ऐसे अपूर्वस्पर्धक हो है। तिनि विषै जघन्य पूर्वस्पर्धक तै भी अनंतवे भाग उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक विषै भी अनुभाग शक्ति पाइए है। विशुद्धता का माहात्म्य तै अनुभाग शक्ति घटाए कर्म परमाणुनि कौ ऐसै परिणामावै है। इहां विशेष इतना ही भया – जो पूर्वस्पर्धक की जघन्य वर्गणा के वर्ग तै इस अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा के वर्ग विषै अनंतवे भाग अनुभाग है। वहुरि तातै अन्य वर्गणानि विषै अनुभाग घटता है, ताका विधान पूर्वस्पर्धकवत् ही जानना। वहुरि वर्गणानि विषै परमाणुनि का प्रमाण पूर्वस्पर्धक की जघन्य वर्गणा तै एक-एक चय वधता पूर्व स्पर्धकवत् क्रम तै जानना। इहां चय का प्रमाण पूर्वस्पर्धक की आदि गुणहानि का चय तै दूणा है। वहुरि पीछै अनिवृत्तिकरण के परिणामनि ही करि कृष्टि करिये है। **अनुभाग का कृष करना, घटावना, सो कृष्टि कहिये। तहां संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का अनुभाग घटाइ स्थूल खण्ड करना, सो बादरकृष्टि** है। तहां उत्कृष्ट बादरकृष्टि विषै भी जघन्य अपूर्वस्पर्धक तै भी अनंतगुणा अनुभाग घटता हो है। तहां च्यारों कषायनि की वारह संग्रहकृष्टि हो है। अर एक-एक संग्रहकृष्टि के विषै अनन्त-अनन्त अतर कृष्टि हो है। तिनि विषै लोभ की प्रथम सग्रह की प्रथमकृष्टि तै लगाइ क्रोध की तृतीय सग्रह की अतकृष्टि पर्यन्त क्रम तै अनन्तगुणा-अनन्तगुणा अनुभाग है। तिस क्रोध की तृतीय कृष्टि की अतकृष्टि तै अपूर्वस्पर्धकनि की प्रथम वर्गणा विषै अनन्तगुणा अनुभाग है। सो स्पर्धकनि विषै तौ पूर्वोक्त प्रकार अनुभाग का अनुक्रम था। इहां अनन्तगुणा घटता अनुभाग का क्रम भया, सोई स्पर्धक अर कृष्टि विषैं विशेष जानना। वहुरि तहां परमाणुनि का प्रमाण लोभ की प्रथम संग्रह की जघन्य कृष्टि विषै यथासभव वहुत है, तातै क्रोध की तृतीय सग्रह की अंतकृष्टि पर्यन्त चय घटता क्रम लीए है। सो याका विशेष आगै लिखेंगे, सो जानना। सो यहु अपूर्व

स्पर्धक अर बादरकृष्टि क्षपक श्रेणी विषै ही हो है, उपशम श्रेणी विषै न हो है। बहुरि अनिवृत्तिकरण के परिणामनि करि ही कषायनि के सर्व परमाणु आनुपूर्वी संक्रमादि विधान करि एक लोभरूप परिणमाइ बादरकृष्टिगत लोभरूप करि पीछैं तिनिकौं सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है, सो सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त भया लोभ, ताका जघन्य बादरकृष्टि तै भी अनतवे भाग उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि विषै अनुभाग हो है। तहां अनंती कृष्टिनि विषै क्रम तै अनंतगुणा अनुभाग घटता है। बहुरि परमाणुनि का प्रमाण जघन्य कृष्टि तै लगाइ उत्कृष्ट कृष्टि पर्यन्त चय घटता क्रम लीए है, सो विशेष आगे लिखैंगे सो जानना। सो यहु विधान क्षपक श्रेणी विषै हो है।

उपशम श्रेणी विषै पूर्वस्पर्धकरूप जे लोभ के केई परमाणु, तिन ही कौ सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमावै हैं, ताका विशेष आगै लिखैंगे।

बहुरि असैं अनिवृत्तिकरण विषै करी जो सत्ता विषै सूक्ष्म कृष्टि, सो जहां उदयरूप होइ प्रवर्तें, तहां सूक्ष्मसापराय गुणस्थान हो है अैसा जानना।

अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहमसांपराओ, जहखादेणूणओ किंचि ॥६०॥

अणुलोभं विदन्, जीवः उपशामको व क्षपको वा।
स सूक्ष्मसांपरायो, यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥६०॥

टीका – अनिवृत्तिकरण काल का अत समय के अनतरि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान कौ पाइ, सूक्ष्म कृष्टि कौ प्राप्त जो लोभ, ताके उदय कौ भोगवता संता उपशमावनेवाला वा क्षय करने वाला जीव, सो सूक्ष्मसांपराय है; अैसा कहिए है।

सोई सामायिक, छेदोपस्थापना संयम की विशुद्धता तै अति अधिक विशुद्धतामय जो सूक्ष्मसांपराय संयम, तीहिकरि संयुक्त जो जीव, सो यथाख्यातचारित्र संयुक्त जीव तै किंचित् मात्र ही हीन है। जातै सूक्ष्म कहिए सूक्ष्म कृष्टि कौ प्राप्त अैसा जो सांपराय कहिए लोभ कषाय, सो जाकै पाइए, सो सूक्ष्मसापराय है अैसा सार्थक नाम है।

आगै उपशांत कषाय गुणस्थान के स्वरूप का निर्देश करै है।

कदकफलजुदजलं[1] वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो, उवसंतकसायओ होदि ॥६१॥[2]

---

१. 'कदकफलजुदजल' के स्थान पर 'सकयगहल जल' ऐसा पाठान्तर है।

२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९०, गाथा १२२

कतकफलयुतजलं वा शरदि सरःपानीयं व निर्मलं ।
सकलोपशांतमोहः, उपशांत कषायको भवति ॥६१॥

टीका – कतकफल का चूर्ण करि संयुक्त जो जल, सो जैसें प्रसन्न हो है अथवा मेघपटल रहित जो शरत्काल, तीहि विषै जैसें सरोवर का पानी प्रसन्न हो है, ऊपरि तें निर्मल हो है; तैसें समस्तपने करि उपशांत भया है मोहनीय कर्म जाका, सो उपशांत कषाय है। उपशांतः कहिए समस्तपनेकरि उदय होने कौं अयोग्य कीए है कषाय-नोकषाय जानें, सो उपशांत कषाय है। असी निरुक्त करि अत्यंत प्रसन्न-चित्तपना सूचन किया है।

आगें क्षीण कषाय गुणस्थान का स्वरूप कौं प्ररूपैं हैं –

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥६२॥[1]

निश्शेषक्षीणमोहः, स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः ।
क्षीणकषायो भण्यते, निर्ग्रन्थो वीतरागैः ॥६२॥

टीका – अवशेष रहित क्षीण कहिए प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश करि रहित भई है मोहनीय कर्म की प्रकृति जाकैं; सो निःशेष क्षीणकषाय है। असें निःशेष मोह प्रकृतिनि का सत्त्व करि रहित जीव, सो क्षीण कषाय है। ता कारण तें स्फटिक का भाजन विषै तिष्ठता जल सदृश प्रसन्न – सर्वथा निर्मल है चित्त जाका असा क्षीणकषाय जीव है, असें वीतराग सर्वज्ञदेवनि करि कहिए है। सोई परमार्थ करि निर्ग्रन्थ है। उपशांत कषाय भी यथाख्यात चारित्र की समानता करि निर्ग्रन्थ है, असें जिनवचन विषैं प्रतिपादन करिए है।

भावार्थ – उपशांत कषाय कैं तौ मोह के उदय का अभाव है, सत्त्व विद्यमान है। बहुरि क्षीणकषाय कैं उदय, सत्त्व सर्वथा नष्ट भए हैं; परन्तु दोऊनि के परिणामनि विषैं कषायनि का अभाव है। तातें दोऊनि कैं यथाख्यात चारित्र समान है। तींहिकरि दोऊ बाह्य, अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ कहे है।

आगें सयोगकेवलिगुणस्थान कौं गाथा दोय करि कहैं हैं –

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥६३॥[2]

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १६१, गाथा १२३
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९२, गाथा १२४

केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः ।
नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः ॥६३॥

टीका – **केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः** कहिए केवलज्ञान-रूपी दिवाकर जो सूर्य, ताके किरणनि का कलाप कहिए समूह, पदार्थनि के प्रकाशने विषै प्रवीण दिव्यध्वनि के विशेष, तिनकरि प्रनष्ट कीया है शिष्य जननि का अज्ञानां-धकार जानै ग्रैसा सयोगकेवली है । इस विशेषण करि सयोगी भट्टारक कै भव्यलोक कौं उपकारीपना है लक्षण जाका, अैसी परार्थरूप संपदा कही । बहुरि **नवकेवल-लब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः'** कहिए क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यरूप लक्षण धरे जे नव केवललब्धि, तिनिका उदय कहिए प्रकट होना, ताकरि सुजनित कहिए वस्तुवृत्ति करि निपज्या है परमात्मा, अैसा व्यपदेश कहिए नाम जाका, अैसा सयोगकेवली है । इस विशेषण करि भगवान अर्हंतपरमेष्ठी कै अनंत ज्ञानादि लक्षण धरैं स्वार्थरूप संपदा दिखाइए है ।

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण ।
जुत्तो त्ति सजोगिजिणो,[1] अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥६४॥ [2]

असहायज्ञानदर्शनसहितः इति केवली हि योगेन ।
युक्त इति सयोगिजिनः अनादिनिधनार्षे उक्तः ॥६४॥

टीका – योग करि सहित सो सयोग, अर परसहाय रहित जो ज्ञान-दर्शन, तिनिकरि सहित सो केवली, सयोग सो ही केवली, सो सयोगकेवली । बहुरि घाति-कर्मनि का निर्मूल नाशकर्ता, सो जिन सयोगकेवली सोई जिन, सो सयोगकेवलिजिन कहिए । अैसें अनादि-निधन ऋषिप्रणीत आगम विषैं कह्या है ।

आगै अयोग केवलि गुणस्थान कौं निरूपैं है –

सीलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को, गयजोगो केवली होदि ॥६५॥ [3]

---

१. 'सजोगिजिणो' इसके स्थान पर 'सजोगो इदि' ऐसा पाठान्तर है ।
२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १६३, गाथा १२५
३. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २००, गाथा १२६

शीलेश्यं संप्राप्तो निरुद्धनिश्शेषास्रवो जीवः ।
कर्मरजोविप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ।।६५।।

टीका – अठारह हजार शील का स्वामित्वपना कौ प्राप्त भया । बहुरि निरोधे है समस्त आस्रव जानै; तातै नवीन बध्यमान कर्मरूपी रज करि सर्वथा रहित भया । बहुरि मन, वचन, काय योग करि रहितपना तै अयोग भया । सो नाही विद्यमान है योग जाकै, अैसा अयोग अर अयोग सोई केवली, सो अयोग केवली भगवान परमेष्टी जीव अैसा है ।

या प्रकार कहे चौदह गुणस्थान, तिनिविषै अपने आयु बिना सात कर्मनि की गुणश्रेणी निर्जरा संभवै है । ताका अर तिस गुणश्रेणी निर्जरा का काल विशेष कौं गाथा दोय करि कहै है –

सम्मत्तुप्पत्तीये, सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवगे, कसायउवसामगे य उवसंते ।।६६।।

खवगे य खीणमोहे, जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा ।
तव्विवरीया काला, संखेज्जगुणक्कमा होंति ।।६७।।

सम्यक्त्वोत्पत्तौ, श्रावकविरते अनंतकर्मांशे ।
दर्शनमोहक्षपके, कषायोपशामके चोपशांते ।।६६।।

क्षपके च क्षीणमोहे, जिनेषु द्रव्याण्यसंख्यगुणितक्रमाणि ।
तद्विपरीताः कालाः सख्यातगुणक्रमा भवंति ।।६७।।

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौ कारण तीन करणनि के परिणामनि का अंत समय, तीहिविषै प्रवर्तमान अैसा जो विशुद्धता का विशेष धरै मिथ्यादृष्टि जीव, ताकै आयु बिना अवशेष ज्ञानावरणादि कर्मनि का जो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य है; तातै देशसंयत कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है । बहुरि तातै सकलसंयमी के गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असख्यात गुणा है । तातै अनंतानुबंधी कषाय का विसयोजन करनहारा जीव कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । तातै दर्शन मोह का क्षय करने वाले कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै कषाय उपशम करने वाले अपूर्वकरणादि

तीन गुणस्थानवर्ती जीवनि कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीव कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै क्षपक श्रेणीवाले अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती जीव कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीव कै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै समुद्घात रहित जो स्वस्थान केवली जिन, ताकै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातै समुद्घात सहित जो स्वस्थान समुद्घात केवली जिन, ताकै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । असै ग्यारह स्थानकनि विषै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य के स्थान-स्थान प्रति असंख्यातगुणापना कह्या ।

अब तिस गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य का प्रमाण कहिए है । कर्मप्रकृतिरूप परिणए पुद्गल परमाणु, तिनका नाम इहां द्रव्य जानना । अनादि संसार के हेतु तै बंध का संबध करि बंधरूप भया जो जगच्छ्रेणी का घनमात्र लोक, तीहि प्रमाण एक जीव के प्रदेशनि विषै तिष्ठता ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृति संबंधी सत्तारूप सर्वद्रव्य, सो आगै कहिएगा जो त्रिकोण रचना, ताका अभिप्राय करि किंचित् ऊन ड्योढ गुणहानि आयाम का प्रमाण करि समयप्रबद्ध का प्रमाण कौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना है ।

बहुरि इस विषै आयु कर्म का स्तोक द्रव्य है, तातै या विषै किंचित् ऊन किए अवशेष द्रव्य सात कर्मनि का है । तातै याकौ सात का भाग दीए एक भाग प्रमाण ज्ञानावरण कर्म का द्रव्य हो है । बहुरि याकौ देशघाती, सर्वघाती द्रव्य का विभाग के अर्थि जिनदेव करि देखा यथासंभव अनंत, ताका भाग दीए एक भाग प्रमाण तौ सर्वघाती केवलज्ञानावरण का द्रव्य है । अवशेष बहुभाग प्रमाण मति-ज्ञानादि देशघाति प्रकृतिनि का द्रव्य है । बहुरि इस देशघाती द्रव्य कौ मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, ज्ञानावरणरूप च्यारि देशघाती प्रकृतिनि का विभाग के अर्थि च्यारि का भाग दीए एक भाग प्रमाण मतिज्ञानावरण का द्रव्य हो है ।

भावार्थ – इहा मतिज्ञानावरण के द्रव्य की गुणश्रेणी का उदाहरण करि कथन कीया है । तातै मतिज्ञानावरण द्रव्य का ही ग्रहण कीया है । असै ही अन्य प्रकृतिनि का भी यथासंभव जानि लेना । बहुरि इस मतिज्ञानावरण द्रव्य कौ अपकर्षण भागहार का भाग देइ, तहां बहुभाग तौ तैसै ही तिष्ठै है; असा जानि एक भाग का ग्रहण कीया ।

भावार्थ - जैसें अन्न का राशि मे स्यों च्यारि का भाग देइ, कोई कार्य के अर्थि एक भाग जुदा काढिए, अवशेष वहुभाग जैसे थे तैसे ही राखिए। तैसें इहां मतिज्ञानावरणरूप द्रव्य मे स्यों अपकर्षण भागहार का भाग देइ, एकभाग कौं अन्यरूप परणमावेने के अर्थि जुदा ग्रहण कीया। अवशेष वहुभाग प्रमाण द्रव्य,जैसें पूर्व अपनी स्थिति के समय-समय संवंधी निषेकनि विषै तिष्ठै था, तैसै ही रह्या। इहां कर्म परमाणुरूप राशि विषै स्थिति घटावने कौं जिस भागहार का भाग संभवै, ताका नाम अपकर्षण भागहार जानना। सो इस अपकर्षण भागहार का प्रमाण, आगे कर्मकांड विषै पंच भागहार चूलिका अधिकार विषै कहैंगे, तहां जानना। वहुरि विवक्षित भागहार का भाग दीए, तहा एक भाग विना अवशेष सर्व भागनि के समूह का नाम वहुभाग जानना। सो अपकर्षण भागहार का भाग देई, वहुभाग कौ तैसें ही राखि, एकभाग कौ जुदा ग्रह्या था, ताकौ कैसें-कैसें परिणमाया सो कहै है।

तिस एक भाग कों पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग देई, तहां वहुभाग तौ उपरितन स्थिति विषै देना, सो एक जायगा स्थापै, वहुरि अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ बहुरि असंख्यात लोक का भाग देइ, तहां वहुभाग तौ गुणश्रेणी का आयाम विषै देना, सो एक जायगा स्थापै अवशेष एक भागहार रह्या, सो उदयावली विषै दीजिए है।

अव उदयावली, गुणश्रेणी, उपरितन स्थिति विषै दीया हुवा द्रव्य कैसें परिणमै है ? सो कहिए है। तहां उदयावली विषै दीया हुआ द्रव्य वर्तमान समय तै लगाइ एक आवली प्रमाण काल विषै पूर्वं जे आवली के निषेक थे, तिनकी साथि अपना फल कौ देइ खिरै है।

तहां आवली का काल के प्रथमादि समयनि विषै केता-केता द्रव्य उदय आवै है ? सो कहैं है - एक समय संबंधी जेता द्रव्य का प्रमाण, ताका नाम निषेक जानना। तहां उदयावली विषैं दीया जो द्रव्य, ताकौं उदयावली काल के समयनि का जो प्रमाण, ताका भाग दीए वीचि के समय संवंधी द्रव्यरूप जो मध्यधन, ताका प्रमाण आवै है। ताकौ एक घाटि आवली का आधा प्रमाण करि हीन ऐसा जो निषेकहार कहिए गुणहानि आयाम का प्रमाण तै दूणा जो दो गुणहानि का प्रमाण, ताका भाग दीए चय का प्रमाण हो है। वहुरि इस चय कौ दोगुणहानि करि गुणै, उदयावली का प्रथम समय सवंधी प्रथम निषेक का प्रमाण आवै है। यामैं एक चय घटाए,

उदयावली का द्वितीय समय संबंधी द्वितीय निषेक का प्रमाण आवै है। ऐसें ही क्रम तैं उदयावली का अत निषेक पर्यन्त एक-एक चय घटाए, एक घाटि आवली प्रमाण चय उदयावली का प्रथम निषेक विषैं घटें उदयावली का अंत का निषेक का प्रमाण हो है। याकौ अंकसंदृष्टि करि व्यक्ति करिए है।

जैसें उदयावली विषै दीया द्रव्य दोय सै, बहुरि गच्छ आवली, ताका प्रमाण आठ, बहुरि एक-एक गुणहानि विषैं जो निषेकनि का प्रमाण सो गुणहानि का आयाम, ताका प्रमाण आठ, याकौ दूणा कीए दो गुणहानि का प्रमाण सोलह, तहां सर्वद्रव्य दोय सै कौ आवली प्रमाण गच्छ आठ का भाग दीए पचीस मध्यधन का प्रमाण होइ। याकौ एक घाटि आवली का आधा साढा तीन, सो निषैकहार सोलह मे घटाए साढ बारा, ताका भाग दीए दोय पाए, सो चय का प्रमाण जानना। याकौ दोगुणहानि सोलह, ताकरि गुणें, बत्तीस पाए, सो प्रथम निषेक का प्रमाण है। यामै एक-एक चय घटाए द्वितीयादि निषेकनि का तीस आदि प्रमाण हो है। ऐसें एक घाटि आवली प्रमाण चय के भये चौदह, ते प्रथम निषेक विषै घटाए, अवशेष अठारह अंत निषेक का प्रमाण हो है। इनि सर्वनि कौ जोडें ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८ दोय सै (२००) सर्वद्रव्य का प्रमाण हो है। ऐसें ही अर्थसंदृष्टि करि पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूप अवधारण करना।

बहुरि यातै परै उदयावली काल पीछै अंतर्मुहूर्तमात्र जो गुणश्रेणी का आयाम कहिए काल प्रमाण, ताविषैं दीया हुवा द्रव्य, सो तिस काल का प्रथमादि समय विषै जे पूर्वै निषेक थे, तिनकी साथि क्रम तैं असख्यातगुणा-असख्यातगुणा होई निर्जरै है। सो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग प्रमाण था, सो सम्यक्त्व की उत्पत्तिरूप करणकाल संबधी गुणश्रेणी का आयाम अतर्मुहूर्तमात्र, तिसविषै असंख्यात-असंख्यात गुणी अनुक्रम करि निषेक रचना करिए है।

इहा सम्यक्त्व की उत्पत्ति सबंधी गुणश्रेणी का कथन मुख्य कीया, तातै तिस ही के काल का ग्रहण कीया है। तहा **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति'** इस करण सूत्र करि प्रक्षेप जो शलाका, तिनिका जो योग कहिए जोड, ताकरि उद्धृत कहिए भाजित, ऐसा जो मिश्रपिड कहिए मिल्या हुवा द्रव्य का जो प्रमाण, सो प्रक्षेप कहिए। अपनी-अपनी शलाकनि का प्रमाण, ताका गुणक कहिए

गुणकार हो है। अथवा यहु गुण्य हो है, ते प्रक्षेप गुणकार हो है, अैसे भी करिए तो दोप नाहीं, जातें दोऊनि का प्रयोजन एक है। सो इहां तिस गुणश्रेणी आयाम का प्रथम समय विषें जेता द्रव्य दीया, तीहि प्रमाण एक शलाका है। बहुरि तातें दूसरे समय तैसें ही असंख्यात गुणी शलाका है। तातें तीसरे समय असंख्यातगुणी शलाका हैं। अैसें असंख्यातगुणा अनुक्रम करि अंत समय विषै यथायोग्य असंख्यातगुणी शलाका हो है। इनि सर्व प्रथमादि समय संबंधी शलाकानि का जोड दीए, जो प्रमाण होइ, सो प्रक्षेपयोग जानना। ताका भाग गुणश्रेणी विषै दीया हुवा द्रव्य कौं लीए जो प्रमाण आवैं, ताकौं प्रक्षेपक, जो अपना-अपना समय संबंधी शलाका का प्रमाण, ताकरि गुणें, अपने-अपने द्रव्य का प्रमाण आवै है। अैसें जिस-जिस समय विषें जेता-जेता द्रव्य का प्रमाण आवै है, तितना-तितना द्रव्य तिस-तिस समय विषै निर्जरै है। या प्रकार गुणश्रेणी आयाम विषै सर्व गुणश्रेणी विषै दीया हुवा जो द्रव्य, सो निर्जरै है।

अब इस कथन कौं अंकसंदृष्टि करि व्यक्त करिए है।

जैसें गुणश्रेणी विषै दीया हुवा द्रव्य का प्रमाण छ सै अस्सी, गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण च्यारि, असंख्यात का प्रमाण च्यारि। तहां प्रथम समय संबंधी जेता द्रव्य, तीहि प्रमाण शलाका एक, दूसरा समय संबंधी तातें असंख्यात गुणी शलाका च्यारि (४), तीसरा समय संबंधी तातें असंख्यातगुणी शलाका सोलह (१६), चौथा समय संबंधी तातें असंख्यातगुणी शलाका चौसठि (६४); सो इनि शलाकनि का नाम प्रक्षेप है। इनिका जो योग कहिये जोड, सो पिच्यासी हो है। ताकरि मिश्रपिंड जो सबनि का मिल्या हुआ द्रव्य छ सै असी, ताकौं भाग दीजिये, तब आठ पाये। बहुरि यहु पाया हुआ राशि, ताकौ प्रक्षेप कहिए। अपनी-अपनी शलाका का प्रमाण, ताकरि गुणिये है। तहां आठ कौं एक करि गुणें प्रथम समय संबंधी निपेक का प्रमाण आठ (८) हो है। बहुरि च्यारि कौं गुणें द्वितीय निपेक का प्रमाण बत्तीस हो है। बहुरि सोलह करि गुणें तृतीय निपेक का प्रमाण एक सौ अट्ठाईस (१२८) हो है। बहुरि चौसठि करि गुणें अंत निपेक का प्रमाण पांच सै बारह (५१२) हो है। ऐसें सर्व समयनि विषै ८, ३२, १२८, ५१२ मिलि करि छ सै असी (६८०) द्रव्य निर्जरै हैं।

भावार्थ – लोक विषै जाकौ बिसवा कहिए, ताका नाम इहां शलाका है। बहुरि जाकौं लोक विषै सीर का द्रव्य कहिए, ताका नाम इहां मिश्रपिंड कह्या है, सो

सब विसवा मिलाइ, इनिका भाग देइ अपना-अपना विसवानि करि गुणै, जैसै अपना-अपना द्रव्य का प्रमाण आवै, तैसैं इहां समय-समय विषैं जेता-जेता द्रव्य निर्जरै, ताका प्रमाण वर्णन किया है। ऐसैं इहां सम्यक्त्व की उत्पत्तिरूप करण का गुणश्रेणी आयाम विषैं वर्णन उदाहरण मात्र किया; ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। तहां काल का वा द्रव्य का विशेष है, सो यथासंभव जानना।

बहुरि यातै आगै जो उपरितन स्थिति विषै दीया द्रव्य, सो विवक्षित मतिज्ञानावरण की स्थिति के निषेक पूर्वै थे, तिन विषै इस गुणश्रेणी आयाम के काल के पीछै अनन्तर समय संबंधी जो निषेक, तातै लगाइ अंत विषै अतिस्थापनावली के निषेकनि कौं छोडि जे पूर्वै निषेक थे, तिनि विषै क्रम तैं दीजिए है। पूर्वै तिनि निषेकनि कौं द्रव्य विषैं याकौं भी क्रम करि मिलाइए है। तहा नानागुणहानि विषैं पहला-पहला निषेकनि विषै आधा-आधा दीजिये, द्वितीयादि निषेकनि विषै चय हीन का अनुक्रम करि दीजिए, सो इस वर्णन विषै त्रिकोण रचना संभवै है। ताका विशेष आगै करैगे। इहां प्रयोजन का अभाव है, तातै विशेष न कीया है। अैसै जो एक भाग मात्र जुदा द्रव्य ग्रह्या था, ताकौ वर्तमान समय तै लगाइ उदयावली का काल, ताके पीछै गुणश्रेणी आयाम का काल, ताके पीछै अवशेष सर्वस्थिति का काल, अंत विषै अतिस्थापनावली बिना सो उपरितनस्थिति का काल, तिनके निषेक पूर्वै थे, तिनिविषै मिलाइए है; सो यह मिलाया हुवा द्रव्य पूर्व निषेकनि की साथि उदय होइ निर्जरै है; अैसा भाव जानना।

बहुरि पूर्वै कह्या जो-जो गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य, सो-सो श्रावकादि दश स्थानकनि विषै असंख्यात-असंख्यात गुणा है, सो कैसे ?

ताका समाधान – तिस गुणश्रेणी द्रव्य कौ कारणभूत जो अपकर्षण भागहार, तिनके अधिक-अधिक विशुद्धता का निमित्त करि असंख्यातगुणा घाटिपना है, तातै तिस गुणश्रेणी द्रव्य कै असंख्यातगुणा अनुक्रम की प्रसिद्धता है।

भावार्थ – श्रावकादि दश स्थानकनि विषै विशुद्धता अधिक-अधिक है, तातै जो पूर्वस्थान विषै अपकर्षण भागहार का प्रमाण था, ताके असंख्यातवें भाग उत्तर स्थान विषै अपकर्षण भागहार का प्रमाण जानना। सो जेता भागहार घटता होइ, तेता लब्धराशि का प्रमाण अधिक होइ। तातै इहां लब्धराशि जो गुणश्रेणी का द्रव्य, सो भी क्रम तै असंख्यातगुणा हो है।

वहुरि गुणश्रेणी आयाम का काल तातै विपरीत उलटा अनुक्रम धरै है, सोई कहिए है – 'समुद्घात जिनकौ आदि देकरि विशुद्ध मिथ्यादृष्टि पर्यंत गुणश्रेणी आयाम का काल क्रम करि संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है' । समुद्घात जिनका गुणश्रेणी आयामकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है । तातै स्वस्थान जिनका गुणश्रेणी आयामकाल संख्यात गुणा है । तातै क्षीणमोह का संख्यातगुणा है । असै ही क्रम तै पीछै तै क्षपकश्रेणी वाले आदि विषै संख्यात-संख्यात गुणा जानना ।

तहां अंत विषै बहुत वार संख्यातगुणा भया, तौ भी करण परिणाम संयुक्त विशुद्ध मिथ्यादृष्टि कै गुणश्रेणी आयाम का काल अतर्मुहूर्तमात्र ही है, अधिक नाही । काहे तै ?

जातै अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं । तहां जघन्य अंतर्मुहूर्त एक आवली प्रमाण है, सो सर्व तै स्तोक है । बहुरि यातै एक समय अधिक आवली तै लगाइ एक-एक समय बधता मध्यम अंतर्मुहूर्त होइ । अंत का उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त एक समय घाटि दोय घटिकारूप मुहूर्त प्रमाण है । तहां ताके उच्छ्वास तीन हजार सात सै तेहत्तरि अर एक उच्छ्वास की आवली संख्यात, यातै दोय वार संख्यातगुणी आवली प्रमाण उत्कृष्ट मुहूर्त है । बहुरि – 'आदि अंते सुद्धे वड्ढिहदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्र करि आवलीमात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त कौं दोय वार संख्यातगुणित आवली प्रमाण उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त विषै घटाइ, वृद्धि का प्रमाण एक समय का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक और जोडैं जो प्रमाण होइ, तितने अंतर्मुहूर्त के भेद संख्यात आवली प्रमाण हो हैं ।

आगै असै कर्म सहित जीवनि का गुणस्थानकनि का आश्रय लीए स्वरूप अर तिस-तिस का कर्म की निर्जरा का द्रव्य वा काल आयाम का प्रमाण, ताकौं निरूपण करि अब निर्जरे हैं सर्व कर्म जिनकरि असे जे सिद्ध परमेष्ठी, तिनका स्वरूप कौं अन्यमत के विवाद का निराकरण लीए गाथा दोय करि कहैं हैं –

अट्ठविधकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६८॥[1]

अष्टविधकर्मविकलाः, शीतीभूता निरंजना नित्याः ।
अष्टगुणाः कृतकृत्याः, लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥६८॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०१, सूत्र २३, गाथा १२७

टीका – केवल कहे जे गुणस्थानवर्ती जीव, तेई नाही है सिद्ध कहिये अपने आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप लक्षण धरै जो सिद्धि, ताकरि सयुक्त मुक्त जीव भी लोक विषै है। ते कैसे है ? **अष्टविधकर्मविकलाः** कहिये अनेक प्रकार उत्तर प्रकृतिरूप भेद जिन विषै गर्भित ऐसे जो ज्ञानावरणादिक आठ प्रकार कर्म आठ गुणनि के प्रतिपक्षी, तिनका सर्वथा क्षय करि प्रतिपक्ष रहित भए है। कैसे आठ कर्म आठ गुणनि के प्रतिपक्षी है ? सो कहै है –

उक्तं च

मोहो खाइय सम्मं, केवलणाणं च केवलालोयं।
हणदि उ आवरणदुगं, अणंतविरयं हणेदि विग्घं तु ॥
सुहमं च णामकम्मं, हणेदि, आऊ हणेदि अवगहणं।
अगुरुलहुगं गोदं अव्वाबाहं हणेइ वेयणियं ॥

इनिका अर्थ – मोहकर्म क्षायिक सम्यक्त्व कौ घातै है। केवलज्ञान अर केवलदर्शन कौ आवरणद्विक जो ज्ञानावरण-दर्शनावरण, सो घातै है। अनंतवीर्य कौ विघन जो अंतराय कर्म, सो घातै है। सूक्ष्मगुण कौ नाम कर्म घातै है। आयुकर्म अवगाहन गुण कौ घातै है। अगुरुलघु कौ गोत्र कर्म घातै है। अव्याबाध कौ वेदनीयकर्म घातै है। ऐसै आठ गुणनि के प्रतिपक्षी आठ कर्म जानने।

इस विशेषण करि जीव के मुक्ति नाहीं है, ऐसा मीमांसक मत, बहुरि सर्वदा कर्ममलनि करि स्पर्शा नाही, तातै सदाकाल मुक्त ही है, सदा ही ईश्वर है ऐसा सदाशिव मत, सो निराकरण किया है।

बहुरि कैसे है सिद्ध ? **शीतीभूता** कहिये जन्म-मरणादिरूप सहज दुःख अर रोगादिक तै निपज्या शरीर दुःख अर सर्पादिक तै उपज्या आगंतुक दुःख अर आकुलतादिरूप मानसदुःख इत्यादि नानाप्रकार संसार सबधी दुःख, तिनकी जो वेदना, सोई भया आतप, ताका सर्वथा नाश करि शीतल भए है, सुखी भए है। इस विशेषण करि मुक्ति विषै आत्मा के सुख का अभाव है, ऐसै कहता जो सांख्यमत, सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे है सिद्ध ? **निरंजनाः** कहिये नवीन आस्रवरूप जो कर्ममल, सो ही भया अंजन, ताकरि रहित है। इस विशेषण करि मुक्ति भए पीछे, बहुरि कर्म अंजन का सयोग करि संसार हो है, ऐसै कहता जो सन्यासी मत, सो निराकरण कीया है।

वहुरि कैसे है सिद्ध ? **नित्याः** कहिये यद्यपि समय-समयवर्ती अर्थपर्यायिनि करि परिणमए सिद्ध अपने विषै उत्पाद, व्यय कौ करै है; तथापि विशुद्ध चैतन्य स्वभाव का सामान्यभावरूप जो द्रव्य का आकार, सो अन्वयरूप है, भिन्न न हो है, ताके माहात्म्य तै सर्वकाल विषै अविनाशीपणा कौ आश्रित है, तातै ते सिद्ध नित्यपना कौ नाही छोडै है। इस विशेषण करि क्षण-क्षण प्रति विनाशीक चैतन्य के पर्याय ते, एक संतानवर्ती है, परमार्थ तै कोई नित्य द्रव्य नाही है, ऐसै कहता जो वौद्धमती की प्रतिज्ञा, सो निराकरण करी है।

वहुरि कैसे है सिद्ध ? **अष्टगुणाः** कहिए क्षायिक सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघुत्व, अव्याबाध नाम धारक जे आठ गुण, तिनकरि संयुक्त है। सो यहु विशेषण उपलक्षणरूप है, ताकरि तिनि गुणनि के अनुसार अनंतानंत गुणनि का तिन ही विषै अंतर्भूतपना जानना। इस विशेषण करि ज्ञानादि गुणनि का अत्यन्त अभाव होना, सोई आत्मा के मुक्ति है ऐसै कहता जो नैयायिक अर वैशेषिक मत का अभिप्राय, सो निराकरण कीया है।

वहुरि कैसे है सिद्ध ? **कृतकृत्याः** कहिए संपूर्ण कीया है कृत्य कहिए सकल कर्म का नाश अर ताका कारण चारित्रादिक जिनकरि ऐसे है। इस विशेषण करि ईश्वर सदा मुक्त है, तथापि जगत का निर्मापण विषै आदर कीया है, तीहि करि कृतकृत्य नाही, वाकै भी किछू करना है, ऐसे कहता जो ईश्वर सृष्टिवाद का अभिप्राय, सो निराकरण कीया है।

वहुरि कैसे है सिद्ध ? **लोकाग्रनिवासिनः** कहिए विलोकिए है जीवादि पदार्थ जाविषै, ऐसा जो तीन लोक, ताका अग्रभाग, जो तनुवात का भी अंत, तीहिविषै निवासी है; तिष्ठै है। यद्यपि कर्म क्षय जहां कीया, तिस क्षेत्र तै ऊपरि ही कर्मक्षय के अनंतरि ऊर्ध्वगमन स्वभाव तै ते गमन करै है; तथापि लोक का अग्रभाग पर्यंत ऊर्ध्वगमन हो है। गमन का सहकारी धर्मास्तिकाय के अभाव तै तहां तै ऊपरि गमन न हो है, ऐसै लोक का अग्रभाग विषै ही निवासीपणा तिन सिद्धनि के युक्त है। अन्यथा कहिए तौ लोक-अलोक के विभाग का अभाव होइ। इस विशेषण करि आत्मा के ऊर्ध्वगमन स्वभाव ते मुक्त अवस्था विषै कही भी विश्राम के अभाव तै ऊपरि-ऊपरि गमन हुवा ही करै है; ऐसै कहता जो मांडलिक मत, सो निराकरण कीया है।

आगै श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव ते 'अष्टविधकर्मविकला:' इत्यादि सात विशेषणनि का प्रयोजन दिखावै है —

सदसिवसंखो मक्कडि, बुद्धो णैयाइयो य वेसेसी ।
ईसरमंडलिदंसण,–विदूसणट्ठं कयं एदं ॥ ६६ ॥

सदाशिवः सांख्यः मस्करी, बुद्धो नैयायिकश्च वैशेषिकः ।
ईश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थ कृतमेतत् ॥ ३९ ॥

टीका – सदाशिवमत, सांख्यमत, मस्करी सन्यासी मत, बौद्धमत, नैयायिक मत, वैशेषिकमत, ईश्वरमत, मंडलिमत ए जु दर्शन कहिए मत, तिनके दूषने के अर्थि ए पूर्वोक्त विशेषण कीए है ।

उक्तं च –

सदाशिवः सदाकर्म, सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम् ।
मस्करी किल मुक्तानां, मन्यते पुनरागतिम् ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव, बुद्धो यौगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं तमीशानो, मंडली चोर्ध्वगामिनम् ॥

इनिके अर्थ – सदाशिव मतवाला सदा कर्म रहित मानै है । सांख्य मतवाला मुक्त जीव कौ सुख रहित मानै है । मस्करी सन्यासी, सो मुक्त जीव कै संसार विषै बहुरि आवना मानै है । बहुरि बौद्ध अर योग मतवाले क्षणिक अर निर्गुण आत्मा कौ मानै है । बहुरि ईशान जो सृष्टिवादी, सो ईश्वर कौ अकृतकृत्य मानै है । बहुरि माडलिक आत्मा कौ ऊर्ध्वगमन रूप ही मानै है । असैं माननेवाले मतनि का पूर्वोक्त विशेषण तैं निराकरण करि यथार्थ सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप निरूपण कीया । ते सिद्ध भगवान आनन्दकर्ता होहु ।

इति श्रीआचार्य नेमिचद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रन्थ की जीव
तत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम
भाषा टीका के विषै जीव काडविषै कही जे वीस प्ररूणा
तिन विषै **गुणस्थान प्ररूपणा** है नाम जाका
असा प्रथम अधिकार सपूर्ण भया ॥१॥

———

दूसरा अधिकार : जीवसमास प्ररूपणा

कर्मघातिया जीति जिन, पाय चतुष्टय सार[1] ।
विश्वस्वरूप प्रकाशियो, नमौं अजित सुखकार[2] ।।

टीका – ऐसें गुणस्थान संबन्धी संख्यादिक प्ररूपणा के अनन्तरि जीवसमास प्ररूपणा कौं रचता संता निरुक्ति पूर्वक सामान्यपनैं तिस जीवसमास का लक्षण कहैं है –

जेहिं अणेया जीवा, णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था, जीवसमासा त्ति विण्णेया ।। ७० ।।

यैरनेके जीवाः, ज्ञायंते बहुविधा अपि तज्जातयः ।
ते पुनः संगृहितार्था, जीवसमासा इति विज्ञेयाः ।। ७० ।।

टीका – **यैः** कहिए जिनि समान पर्यायरूप धर्मनि करि **जीवा** कहिए जीव हैं, ते **अनेके अपि** कहिए यद्यपि बहुत हैं, **बहुविधाः** कहिए बहुत प्रकार हैं, तथापि **तज्जातयः** कहिए विवक्षित सामान्यभाव करि एकठा करने तैं एक जाति विषै प्राप्त कीए हुए **ज्ञायंते** कहिए जानिए ते कहिये जीव समान पर्यायरूप **धर्मसंगृहीतार्थाः** कहिए अंतर्भूत करी हैं अनेक व्यक्ति जिनिकरि ऐसे **जीवसमासाः** कहिए जीवसमास हैं, ऐसैं जानना ।

भावार्थ – जैसें एक गऊ जाति विषै अनेक खांडी, मुंडी, सावरी गऊरूप व्यक्ति सास्नादिमत्त्व समान धर्म करि अंतर्गर्भित हो है । तैसैं एकेंद्रियत्वादि जाति विषै अनेक पृथ्वीकायादिक व्यक्ति जिनि एकेंद्रियत्वादि युक्त लक्षणनि करि अंतर्गर्भित करिए, तिनिका नाम जीवसमास है । काहे तैं ? जातैं **'जीवाः समस्यते यैर्येषु वा ते जीवसमासाः'** जीव हैं ते संग्रहरूप करिए जिनि समानधर्मनि करि वा जिनि समान लक्षणनि विषै ते वे समानरूप लक्षण जीवसमास हैं, ऐसी निरुक्ति हो है । इस विशेषण करि समस्त संसारी जीवनि का संग्रहणरूप ग्रहण करना है प्रयोजन जाका, ऐसा जीवसमास का प्ररूपण है, सो प्रारंभ कीया है, ऐसा जानना । अथवा अन्य अर्थ कहै है 'जीवा अज्ञेया अपि' कहिए यद्यपि जीव अज्ञात है । काहे तैं ? **बहुविधत्वात्** कहिए जातैं जीव बहुत प्रकार हैं । नानाप्रकार आत्मा की पर्यायरूप व्यक्ति तैं

---

१. 'सार' के स्थान पर 'अनन्त' ऐसा पाठान्तर है ।
२. 'सुखकार' के स्थान पर 'शिवमग' ऐसा पाठान्तर है ।

समस्तपना करि केवलज्ञान विना न जानिये है, यातै सर्वपर्यायरूप जीव जानने कौ असमर्थपना है, तथापि **तज्जातयः** कहिए सोई एकेन्द्रियत्वादिरूप है जाति जिनकी। बहुरि **संगृहीतार्थाः** कहिए समस्तपना करि गर्भित कीए है, एकठे कीये है व्यक्ति जिनिकरि, ऐसे जीव है, तेई जीवसमास है, ऐसा जानना। अथवा अन्य अर्थ कहै है – **संगृहीतार्थाः** कहिए समस्तपना करि गर्भित करी है, एकठी करी है व्यक्ति जिन करि ऐसी **तज्जातयः** कहिए ते जाति है। जातै विशेष विना सामान्य न होइ। काहे तै ? जातै असा वचन है – **'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्'** याका अर्थ – विशेष रहित जो सामान्य, सो ससा के सीग समान अभावरूप है, तातै संगृहीतार्थ जे वे जाति, तिनका कारणभूत जातिनि करि जीव प्राणी है, ते **'अनेकेऽपि'** कहिए यद्यपि अनेक है, **बहुविधा अपि** कहिए बहुत प्रकार है ; तथापि ज्ञायते कहिए जानिए है, ते वे जाति जीवसमास है, असा जानना।

भावार्थ – जीवसमास शब्द के तीन अर्थ कहे। तहां एक अर्थ विषै एकेंद्रिय-युक्तत्वादि समान धर्मनि कौ जीवसमास कहे। एक अर्थ विषै एकेंद्रियादि जीवनि कौ जीवसमास कहे। एक अर्थ विषै एकेंद्रियत्वादि जातिनि कौ जीवसमास कहे, असै विवक्षा भेद करि तीन अर्थ जानने।

आगै जीवसमास की उत्पत्ति का कारण बहुरि जीवसमास का लक्षण कहै है –

तसचदुजुगाणमज्झे, अविरुद्धेहिं जुदजादिकम्मुदये।
जीवसमासा होंति हु, तब्भवसारिच्छसामण्णा॥ ७१॥

त्रसचतुर्युगलानां मध्ये, अविरुद्धैर्युतजातिकर्मोदये।
जीवसमासा भवंति हि, तद्भवसादृश्यसामान्याः॥ ७१॥

टीका – त्रस-स्थावर, बहुरि बादर-सूक्ष्म, बहुरि पर्याप्त-अपर्याप्त, बहुरि प्रत्येक-साधारण ऐसै नाम कर्म की प्रकृतिनि के च्यारि युगल है। तिनिके विषै यथासंभव परस्पर विरोध रहित जे प्रकृति, तिनिकरि सहित मिल्या ऐसा जो एकेंद्रियादि जातिरूप नाम कर्म का उदय, ताकौ होते सतै प्रकट भए ऐसे तद्भवसादृश्य सामान्य-रूप जीव कै धर्म, ते जीवसमास है।

तहां तद्भव सामान्य का अर्थ कहै है – विवक्षित एकद्रव्य विषै प्राप्त जो त्रिकाल संबंधी पर्याय, ते **भवंति** कहिए विद्यमान जाविषै होइ, सो तद्भव सामान्य है। ऊर्ध्वता सामान्य का नाम तद्भव सामान्य है। जहां अनेक काल संबंधी पर्याय का ग्रहण होइ, तहां ऊर्ध्वता सामान्य कहिए। जातै काल के समय है, ते ऊपरि-ऊपरि क्रम तै प्रवर्तै है, युगपत् चौड़ाईरूप नाही प्रवर्तै है; तातै इहां नाना काल विषै एक विवक्षित व्यक्ति विषै प्राप्त जे पर्याय, तिनिका अन्वयरूप ऊर्ध्वता सामान्य है; सो एक द्रव्य के आश्रय जो पर्याय, सो अन्वयरूप है। जैसे स्थास, कोश, कुशूल, घट, कपालक आदि विषै माटी अन्वयरूप आकार धरै द्रव्य है।

भावार्थ – माटी क्रम तै इतने पर्यायरूप परिणया। प्रथम स्थास कहिए पिंडरूप भया। बहुरि कोश कहिए चाक के ऊपरि ऊभा कीया, पिंडरूप भया। बहुरि कुशूल कहिए हाथ अगूंठनि करि कीया आकाररूप भया। बहुरि घट कहिए घडारूप भया। बहुरि कपाल कहिए फूट्या घडारूप भया। असे एक माटीरूप व्यक्ति विषै अनेक-कालवर्ती पर्याय हो हैं। तिनि सबनि विषै माटीपना पाइए है। ताकरि सर्वत्र माटी द्रव्य अवलोकिए है। असे इहां भी अनेक कालवर्ती अनेक अवस्थानि विषै एकेंद्रिय आदि जीव द्रव्यरूप व्यक्ति, सो अन्वयरूप द्रव्य जानना। सो याका नाम तद्भव सामान्य वा ऊर्ध्वता सामान्य है। तीहि तद्भव सामान्य करि उपलक्षणरूप संयुक्त असे जो सादृश्य सामान्य कहिए, तिर्यक् सामान्य ते जीवसमास हैं। सो एक काल विषै नाना व्यक्तिनि कौं प्राप्त भया असा एक जातिरूप अन्वय, सो तिर्यक् सामान्य है। याका अर्थ यहु – जो समान धर्म का नाम सादृश्य सामान्य है। जैसे खांडी, मूंडी, सावरी इत्यादि नाना प्रकार की व्यक्तिनि विषै गऊपणा समान धर्म है।

भावार्थ – एक कालवर्ती खांडा, मूडा, सांवला इत्यादि अनेक बैल, तिनि विषै बैलपना समान धर्म है; सो यहु सादृश्य सामान्य है। तैसे एक कालवर्ती पृथ्वीकायिक आदि नाना प्रकार जीवनि विषै एकेंद्रिय युक्तपना आदि धर्म हैं, ते समान परिणामरूप है; तातै इनिकौं सादृश्य सामान्य कहिए। असे जे सादृश्य सामान्य, तेई जीवसमास हैं; असा तात्पर्य जानना। बहुरि तिनि च्यारि युगलनि की आठ प्रकृतिनि विषै एकेंद्रिय जाति नाम कर्म सहित त्रस नाम कर्म का उदय विरोधी है। बहुरि द्वीन्द्रियादिक जातिरूप नाम कर्म की च्यारि प्रकृतिनि का उदय सहित स्थावर-सूक्ष्म-साधारण नाम प्रकृतिनि का उदय विरोधी है, अन्य कर्म का

उदय अविरोधी है। बहुरि तैसै ही त्रस नाम कर्म सहित स्थावर-सूक्ष्म-साधारण नाम कर्म का उदय विरोधी है, अन्य कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि स्थावर नाम कर्म सहित त्रस नाम कर्म का उदय एक ही विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि बादर नाम कर्म सहित सूक्ष्म नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष प्रकृतिनि का उदय अविरोधी है। बहुरि सूक्ष्म नाम कर्म सहित त्रस बादर नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि पर्याप्त नाम कर्म सहित अपर्याप्त नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष सर्व कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि अपर्याप्त नाम कर्म का उदय सहित पर्याप्त नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष सर्व कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि प्रत्येक शरीर नाम कर्म का उदय सहित साधारण शरीर नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है। बहुरि साधारण शरीर नाम कर्म का उदय सहित प्रत्येक शरीर नाम कर्म का उदय अर त्रस नाम कर्म का उदय विरोधी है; अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है। अैसै अविरोधी प्रकृतिनि का उदय करि निपजे जे सदृश परिणामरूप धर्म, ते जीवसमास है; अैसा जानना।

आगै संक्षेप करि जीवसमास के स्थानकनि कौ प्ररूपै है –

बादरसुहमेइंदिय, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णी य।
पज्जत्तापज्जत्ता, एवं ते चोद्दसा होंति ॥७२॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिनश्च।
पर्याप्तापर्याप्ता, एवं ते चतुर्दश भवंति ॥७२॥

टीका – एकेंद्रिय के बादर, सूक्ष्म ए दोय भेद। बहुरि विकलत्रय के द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय ए तीन भेद। बहुरि पंचेंद्रिय के सज्ञी, असज्ञी ए दोय भेद, अैसै सात जीवभेद भए। ये एक-एक भेद पर्याप्त, अपर्याप्त रूप है। अैसै सक्षेप करि चौदह जीवसमास हो है।

आगै विस्तार तै जीवसमास कौ प्ररूपै है –

भूआउतेउवाऊ, णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा।
पत्तेयपदिट्ठिदरा, तसपण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥७३॥

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः।
प्रत्येकप्रतिष्ठेतराः, त्रसपंच पूर्णा अपूर्णद्विकाः ॥७३॥

टीका – पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेज कायिक, वायुकायिक, अर वनस्पति-कायिकनि विषै दोय भेद नित्यनिगोद साधारण, चतुर्गतिनिगोद साधारण ए छह भेद भए। ते एक-एक भेद बादर, सूक्ष्म करि दोय-दोय भेदरूप हैं; असैं वारह भए। बहुरि प्रत्येक शरीररूप वनस्पतीकायिक के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित ए दोय भेद हैं। बहुरि विकलेंद्रिय के बेइद्री, तेइद्री, चौइद्री, ए तीन भेद। बहुरि पचेंद्रिय के संज्ञी पचेंद्रिय, असज्ञी पचेंद्रिय ए दोय भेद। ए सर्व मिलि सामान्य अपेक्षा उगणीस जीवसमास हो हैं। बहुरि ए सर्व ही प्रत्येक पर्याप्तक, निर्वृत्ति अपर्याप्रक, लब्धि अपर्याप्तक असैं तीन-तीन भेद लीए हैं। तातैं विस्तार तैं जीवसमास सत्तावन भेद सयुक्त हो है।

आगै इनि सत्तावन जीव-भेदनि के गर्भित विशेष दिखावने के अर्थि स्थानादिक च्यारि अधिकार कहै है –

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि, देहोग्गाहणकुलाण भेदेहिं ।
जीवसमासा सव्वे, परूविदव्वा जहाकमसो ॥७४॥

स्थानैरपि योनिभिरपि, देहावगाहनकुलानां भेदैः ।
जीवसमासाः सर्वे, प्ररूपितव्या यथाक्रमशः ॥७४॥

टीका – स्थानकनि करि, वहुरि योनि भेदनि करि, बहुरि देह की अवगाहना के भेदनि करि, बहुरि कुलभेदनि, करि सर्व ही ते जीवसमास यथाक्रम सिद्धांत परिपाटी का उल्लंघन जैसैं न होइ, तैसैं प्ररूपण करने योग्य है।

आगै जैसैं उद्देश कहिए नाम का क्रम होइ, तैसैं ही निर्देश कहिए स्वरूप निर्णय क्रम करि करना। इस न्याय करि प्रथम कह्या जो जीवसमास विषै स्थानाधिकार, ताकौं गाथा च्यारि करि कहै है –

सामण्णजीव तसथावरेसु, इगिविगलसयलचरिमदुगे ।
इंदियकाये चरिमस्स य, दुतिचदुपणगभेदजुदे ॥७५॥

सामान्यजीवः त्रसस्थावरयोः, एकविकलसकलचरमद्विके ।
इंद्रियकाययोः　चरमस्य　च,　द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते ॥७५॥

टीका – तहां उपयोग लक्षण धरै सामान्यमात्र जीवद्रव्य, सो द्रव्यार्थिक नय करि ग्रहण कीए जीवसमास का स्थान एक है। बहुरि संग्रहनय करि ग्रह्या जो अर्थ, ताका भेद करणहारा जो व्यवहारनय, ताकी विवक्षा विषै संसारी जीव के मुख्य भेद त्रस-स्थावर, ते अधिकाररूप है; असैं जीवसमास के स्थान दोय है। बहुरि अन्य प्रकार करि व्यवहारनय की विवक्षा होतै एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय, जीवनि कौ अधिकाररूप करि जीवसमास के स्थान तीन है। बहुरि असैं ही आगै भी सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकारनि करि व्यवहारनय की विवक्षा जाननी। सो कहै हैं – एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय दोय तौ ए, अर सकलेंद्रिय जो पंचेंद्रिय, ताके असंज्ञी, संज्ञी ए दोय भेद, असैं मिलि जीवसमास के स्थान च्यारि हो हैं। बहुरि तैसैं ही एकेंद्रिय, बेइंद्री तेइंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री भेद तै जीवसमास के स्थान पांच है। बहुरि तैसैं ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रसकायिक भेद तै जीवसमास के स्थान छह है। बहुरि तैसैं ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति ए पांच स्थावर अर अन्य त्रसकाय के विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय ए दोय भेद, असैं मिलि जीवसमास के स्थानक सप्त हो हैं। बहुरि तैसैं ही पृथ्वी आदि स्थावरकाय पांच, विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पचेंद्रिय ए तीन मिलि करि जीवसमास के स्थान आठ हो है। बहुरि स्थावरकाय पांच अर बेंद्री, तेइंद्री, चौंद्री, पचेंद्री ए च्यारि मिलि करि जीव-समास के स्थान नव हो है। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय पाच, अर बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पचेंद्री, सज्ञी पचेंद्री ए पांच मिलि करि जीवसमास के स्थान दश हो है।

पणजुगले तससहिये, तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयह्मि य, तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे ॥७६॥

पंचयुगले त्रससहिते, त्रसस्य द्वित्रिचतुःपंचकभेदयुते।
षड्द्विकप्रत्येके च, त्रसस्य त्रिचतुःपंचभेदयुते ॥७६॥

टीका – तैसैं ही स्थावरकाय पाच, ते प्रत्येक बादर-सूक्ष्म भेद सयुक्त, ताके दश अर त्रसकाय ए मिलि जीवसमास के स्थान ग्यारह हो है। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय, मिलि करि जीवसमास के स्थान बारह हो है। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर त्रसकाय के विकलेंद्रिय, सज्ञी, असज्ञी पंचेंद्रिय ए तीन मिलि करि जीवसमास के स्थान तेरह हो हैं। बहुरि स्थावरकाय दश अर त्रसकाय के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, पचेंद्री ए च्यारि भेद मिलि जीवसमास के

स्थान चौदह हो है। वहुरि तैसे ही स्थावरकाय के दश, वहुरि त्रसकाय के वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पचेद्री, संज्ञी पंचेद्री ए पांच मिलि करि जीवसमास के स्थान पंद्रह हो है। वहुरि तैसै ही पृथिवी, अप्, तेज, वायु ए च्यारि अर साधारण वनस्पति के नित्यनिगोद, इतरनिगोद ए दोय भेद मिलि छह भए। ते ए जुदे-जुदे वादर सूक्ष्म भेद लीए है। ताके वारह अर एक प्रत्येक वनस्पती, असै स्थावरकाय तेरह अर त्रसकाय विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेद्रिय ए तीनि मिलि जीवसमास के स्थान सोलह हो हैं। वहुरि तैसै ही स्थावरकाय के तेरह अर त्रसकाय के वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, पचेंद्री ए च्यारि भेद मिलि करि जीवसमास के स्थान सतरह हो है। वहुरि स्थावरकाय के तेरह अर त्रसकाय के वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलि जीवसमास के स्थान अठारह हो है।

सगजुगलह्मितसस्स य, पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा।
एयादुणवीसो त्ति य, इगिबितिगुणिदे हवे ठाणा ॥७७॥

सप्तयुगले त्रसस्य च, पंचभंगयुतेषु भवंति एकोनविंशतिः।
एकादेकोनविंशतिरिति च, एकद्वित्रिगुणिते भवेयुः स्थानानि ॥७७॥

टीका – तैसैं ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद ए छहों वादर-सूक्ष्मरूप, ताके वारह अर प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित ए दोय अर त्रस के वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय ए पांच मिलि जीवसमास के स्थान उगणीस हो है। असैं कहे जे ए सामान्य जीवरूप एक स्थान कौं आदि देकरि उगणीस भेदरूप स्थान पर्यन्त स्थान, तिनिकौं एक, दोय तीन करि गुणैं, अनुक्रम तैं अंत विषैं उगणीस भेदस्थान, अड़तीस भेदस्थान, सत्तावन भेदस्थान हो हैं।

सामण्णेण तिपंती, पढमा बिदिया अपुण्णगे इदरे।
पज्जत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती ॥७८॥

सामान्येन त्रिपंक्तयः, प्रथमा द्वितीया अपूर्णके इतरस्मिन्।
पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्तेऽप्रथमा भवेत् पंक्तिः ॥७८॥

टीका – पूर्वैं कहे जे एक कौं आदि देकरि एक-एक वधते उगणीस भेदरूप स्थान, तिनिकी तीन पंक्ति नीचैं-नीचैं करनी। तिनि विषैं प्रथम पंक्ति तौ पर्याप्तादिक

की विवक्षा कौ न करि सामान्य आलाप करि गुणनी। बहुरि दूसरी पंक्ति दोय जे पर्याप्त, अपर्याप्त भेद, तिनि करि गुणनी। बहुरि अप्रथमा कहिए तीसरी पक्ति, सो तीन जे पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद तिनि करि गुणनी। इहां दूसरी, तीसरी दोय पक्ति अप्रथमा है। तथापि दूसरी पंक्ति कांठै ही कही, तीहिकरि अप्रथमा ऐसै शब्द करि अवशेष रही पक्ति तीसरी सोई ग्रहण करी है।

भावार्थ – एक कौ आदि देकरि उगणीस पर्यन्त जीवसमास के स्थान कहे। तिनिका सामान्यरूप ग्रहण कीएं एक आदि एक-एक बधते उगणीस पर्यन्त, स्थान हो है। इहां सामान्य विषै पर्याप्तादि भेद गर्भित जानने। बहुरि तिन ही एक-एक के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद कीए दोय कौ आदि देकरि दोय-दोय बधते अडतीस पर्यन्त स्थान हो है। इहा अपर्याप्त विषै निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त दोऊ गर्भित जानने। बहुरि तिन ही एक-एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद कीये तिनिकौ आदि देकरि तीन-तीन बधते सत्तावन पर्यन्त स्थान हो है। इहा जुदे-जुदे भेद जानने।

अब कहे भेदनि की यंत्र में रचना अकनि करि लिखिये है।

जीवसमास के स्थानकनि का यंत्र

सामान्य अपेक्षा स्थान	पर्याप्त, अपर्याप्त अपेक्षा स्थान	पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त अपेक्षा स्थान
१	२	३
२	४	६
३	६	९
४	८	१२
५	१०	१५
६	१२	१८
७	१४	२१
८	१६	२४
९	१८	२७
१०	२०	३०
११	२२	३३
१२	२४	३६
१३	२६	३९
१४	२८	४२
१५	३०	४५
१६	३२	४८
१७	३४	५१
१८	३६	५४
१९	३८	५७
१९०	३८०	५७०

अब इनि पंक्तिनि का जोड देने के अर्थि करणसूत्र कहिए है '**मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि**' मुख आदि अर भूमी अंत, इनिकौ जोडैं, आधा करि पद जो स्थान प्रमाण, तीहि करि गुणैं, सर्वपदधन हो है ।

सो प्रथम पंक्ति विषै मुख एक अर भूमी उगणीस जोडैं वीस, ताका आधा दश, पद उगणीस करि गुणैं एक सौ नब्बे सर्व जोड हो है ।

बहुरि द्वितीय पंक्ति विषै मुख दोय, भूमी अड़तीस जोडै चालीस, आधा कीए वीस पद, उगणीस करि गुणैं, तीन सै असी सर्व जोड हो है ।

बहुरि तीसरी पंक्ति विषै मुख तीन, भूमी सत्तावन जोडै साठि, आधा कीएं तीस, पद उगणीस करि गुणैं पांच सै सत्तरि सर्व जोड हो है ।

आगै एकेंद्रिय, विकलत्रय जीवसमासनि करि मिले हुए ऐसैं पंचेंद्रिय संबंधी जीवसमास स्थान कै विशेषनि कौ गाथा दोय करि कहै है –

इगिवण्णं इगिविगले, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो ॥७९॥

अज्जवमलेच्छमणुए, तिदु भोगकुभोगभूमिजे दो दो ।
सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु अडणउदी ॥८०॥

एकपंचाशत् एकविकले, असंज्ञिसंज्ञिगतजलस्थलखगानाम् ।
गर्भभवे सम्मूर्छे, द्वित्रिकं भोगस्थलखेचरे द्वौ द्वौ ॥७९॥

आर्यम्लेच्छमनुष्ययोस्त्रयो द्वौ भोगकुभोगभूमिजयोर्द्वौ द्वौ ।
सुरनिरयोर्द्वौ द्वौ इति, जीवसमासा हि अष्टानवतिः ॥८०॥

टीका – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद-इतरनिगोद के सूक्ष्म, बादर भेद करि छह युगल अर प्रत्येक वनस्पती का सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित भेद करि एक युगल, ऐसें एकेन्द्रिय के सात युगल ।बहुरि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री ए तीन ऐसैं ए सतरह भेद पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद करि तीन-तीन प्रकार है । ऐसैं एकेंद्रिय, विकलेंद्रियनि विषै इक्यावन भेद भये । बहुरि पंचेंद्रियरूप तिर्यंच गति विषैं कर्मभूमि के तिर्यंच तीन प्रकार हैं । तहा जे जल विषैं गमनादि करैं, ते जलचर; अर जे भूमि

विषै गमनादि करै, ते स्थलचर, अर जे आकाश विषै उडना आदि गमनादि करै, ते नभचर; ते तीनों प्रत्येक संज्ञी, असंज्ञी भेदरूप है, तिनिके छह भए। बहुरि ते छहौ गर्भज अर सम्मूर्छन हो हैं। तहां गर्भज विषै पर्याप्त अर निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय-दोय भेद संभवै है, तिनिके बारह भए। बहुरि सम्मूर्छन विषै पर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त ऐ तीन-तीन भेद संभवै है, तिनिके अठारह भए। ऐसै कर्मभूमिया पंचेद्रिय तिर्यंच के तीस भेद भये।

बहुरि भोगभूमि विषै सज्ञी ही है, असंज्ञी नाही। बहुरि स्थलचर अर नभ-चर ही है, जलचर नाही। बहुरि पर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त ही है, लब्धि अपर्याप्त नाहीं। तातै संज्ञी स्थलचर, नभचर के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करि च्यारि ए भए; ऐसै तिर्यंच पंचेद्रिय के चौतीस भेद भये।

बहुरि मनुष्यनि के कर्मभूमि विषै, आर्यखड विषै तौ गर्भज के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय भेद अर सम्मूर्छन का लब्धि अपर्याप्तरूप एक भेद ऐसै तीन भए। बहुरि म्लेच्छखंड विषै गर्भज ही है। ताके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय भेद। बहुरि भोगभूमि अर कुभोगभूमि इन दोऊनि विषै गर्भज ही है। तिनके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय-दोय भेद भए। च्यारि भेद मिलि करि मनुष्यगति विषै नव भेद भए।

बहुरि देव, नारकी औपपादिक है, तिनिके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि दोय-दोय भेद होई च्यारि भेद। ऐसै च्यारि गतिनि विषै पचेद्रिय के जीवसमास के स्थान सैंतालीस है।

बहुरि ए सैंतालीस अर एकेद्री, विकलेद्रिय के इक्यावन मिलि करि अठ्याणवै जीवसमास स्थान हो है, ऐसा सूत्रनि का तात्पर्य जानना।

इहां विवक्षा करि स्थावरनि के बियालीस, विकलेंद्रियनि के नव, तिर्यंच पंचेद्रियनि के चौतीस, देवनि के दोय, नारकीनि के दोय, मनुष्यनि के नव, सर्व मिलि अठ्याणवे भए। ऐसै ए कहे जीवसमास के स्थान, ते ससारी जीवनि के ही जानने, मुक्त जीवनि के नाही है। जातै विशुद्ध चैतन्यभाव ज्ञान-दर्शन उपयोग का संयुक्तपनां करि तिन मुक्त जीवनि के त्रस-स्थावर भेदनि का अभाव है। अथवा **'संसारिणस्त्रस-स्थावराः'** ऐसा तत्त्वार्थसूत्र विषै वचन है, तातै ए भेद ससारी जीवनि के ही जानने।

अब कहे जे जीवसमासनि तें विशेष जीवसमास का कहनहारा अन्य आचार्य करि कह्या हुवा गाथा सूत्र कहै है –

सुद्ध-खरकु-जल-ते-वा, णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पदिठिदरपंचपत्तिय, वियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा ॥

इगिविगले इगिसीदी, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो ॥

अज्जसमुच्छिगिगब्भे, मलेच्छभोगतियकुणरछपणत्तीससये ।
सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु छहियचारिसयं ॥

टीका – माटी आदिरूप शुद्ध पृथ्वीकायिक, पाषाणादिरूप खरपृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद का दूसरा नाम चतुर्गतिनिगोद असें इनि सातनि के वादर-सूक्ष्म भेद तें चोदह भए । वहुरि तृण, वेलि, छोटे वृक्ष, वड़े वृक्ष, कंदमूल असें ए पांच प्रत्येक वनस्पति के भेद है । ए जब निगोद शरीर करि आश्रित होंइ, तब प्रतिष्ठित कहिए । निगोद रहित होंइ, तव अप्रतिष्ठित कहिए । असें इनिके दश भेद भए ।

वहुरि वेइंद्री, त्रींद्रिय, चतुरिद्रय असें विकलेद्रिय के तीन, ए सर्व मिलि सत्ताइस भेद एकेद्रिय-विकलेद्रियनि के भए । इन एक-एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद करि इक्यासी भए ।

वहुरि पंचेद्रियनि विषे – तिर्यंच कर्मभूमि विषें तौ संज्ञी, असंज्ञी भेद लीयें जलचर, स्थलचर, नभचर भेद करि छह, तिनि छहौं गर्भजनि विषै तौ पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि वारह, अर तिनि छहौ सम्मूर्छननि विषै पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेदनि करि अठारह । वहुरि उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य भोगभूमि के संज्ञी थलचर, नभचर इनि छहौं विषै पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि वारह, सर्व मिलि पचेद्री तिर्यच, के वियालीस भेद भए ।

वहुरि मनुष्यनि विषै आर्यखंड विषै उपज्या सम्मूर्छन विषै लब्धि अपर्याप्तकरूप एक स्थान है । वहुरि आर्यखण्ड विषै उपजे गर्भज अर म्लेच्छखंड विषै उपजे गर्भज ही हैं । अर उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य भोगभूमि उपजे गर्भज ही है । अर कुभोगभूमि विषै उपजे गर्भज ही है । असें छह प्रकार तौ मनुष्य, वहुरि तैसें ही दश प्रकार

भवनवासी, आठ प्रकार व्यंतर, पांच प्रकार ज्योतिषी, पटलनि की अपेक्षा करि तरेसठि प्रकार वैमानिक, सर्व मिलि छियासी प्रकार देव ।

बहुरि प्रस्तारनि की अपेक्षा करि गुणचास प्रकार नारकी ए सर्व मिलि सर्व एक सौ इकतालीस भए । तिन एक-एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद कीए दोय सै बियासी होंइ । असैं एकेन्द्री, विकलेंद्रिय के इक्यासी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच के बियालीस, सम्मूर्छन मनुष्य का एक, गर्भज मनुष्य, देव, नारकिनि के दोय सै बियासी मिलि करि छह अधिक च्यारि सै जीवसमास प्रकटरूप हो है ।

इति जीवसमासनि का स्थान अधिकार समाप्त भया ।

आगै योनि प्ररूपणा विषै प्रथम आकार योनि के भेदनि कौं कहै है –

संखावत्तयजोणी, कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य ।
तत्थ य संखावत्ते, णियमादु विवज्जदे गब्भो ।।८१।।

शंखावर्तकयोनिः, कूर्मोन्नतवंशपत्रयोनि च ।
तत्र तु शंखावर्ते, नियमात्तु विवर्ज्यते गर्भः ।। ८१ ।।

टीका – शंखावर्तयोनि कूर्मोन्नतयोनि, वंशपत्र योनि असैं स्त्री शरीर विषै संभवती आकाररूप योनि तीन प्रकार है । योनि कहिए मिश्ररूप होइ औदारिकादिक नोकर्मवर्गणारूप पुद्गलनि करि सहित बंधै जीव जाविषै, सो योनि कहिए । जीव का उपजने का स्थान सो योनि है । तहां तीन प्रकार योननि विषै शंखावर्तयोनि विषै तो गर्भ नियम करि विवर्जित है, गर्भ रहै ही नाही । अथवा कदाचित रहै तौ नष्ट होइ है ।

कुम्मण्णयजोणीए, तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामा वि य जायंते, सेसाये सेसगजणो दु ।। ८२ ।।

कूर्मोन्नतयोनौ, तीर्थंकराः द्विविधचक्रवर्तिनश्च ।
रामा अपि च जायंते, शेषायां शेषकजनस्तु ।।८२।।

टीका – कूर्मोन्नतयोनि विषै तीर्थंकर वा सकलचक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वा बलभद्र उपजै है । अपि शब्द करि अन्य कोई नाही

उपजै है। बहुरि अवशेष वंशपत्रयोनि विषै अवशेष जन उपजै है; तीर्थंकरादि नाही उपजै है।

आगै जन्मभेदनि का निर्देश पूर्वक गुणयोनि निर्देश करै है –

जम्मं खलु संमुच्छण, गब्भुववादा[1] दु होदि तज्जोणी।
सच्चित्तसीदसंउडसेदर मिस्सा[2] य पत्तेयं॥ ८३॥

जन्म खलु संमूर्छनगर्भोपपादास्तु भवति तद्योनयः।
सचित्तशीतसंवृतसेतरमिश्राश्च प्रत्येकं॥८३॥

टीका – सम्मूर्छन, गर्भज, उपपाद ए तीन संसारी जीवनि के जन्म के भेद हैं। सं कहिए समस्तपने करि **मूर्छनं** कहिए जन्म धरता जो जीव, ताकौ उपकारी असें जे शरीर के आकारि परिणमने योग्य पुद्गलस्कंध, तिनिका स्वयमेव प्रकट होना, सो सम्मूर्छन जन्म है।

बहुरि जन्म धरता जीव करि शुक्र-शोणितरूप पिंड का **गरणं** कहिए अपना शरीररूप करि ग्रहण करना, सो गर्भ है। बहुरि **उपपादनं** कहिए संपुट शय्या वा उष्ट्रादि मुखाकार योनि विषै लघु अंतर्मुहूर्त काल करि ही जीव का उपजना, सो उपपाद है। असें तीन प्रकार जन्म भेद है।

भावार्थ – माता-पितादिक का निमित्त विना स्वयमेव शरीराकार पुद्गल का प्रकट होने करि जीव का उपजना; सो सम्मूर्छन जन्म है।

बहुरि माता का लोही अर पिता का वीर्यरूप पुद्गल का शरीररूप ग्रहण करि जीव का उपजना, सो गर्भ जन्म है। बहुरि देवनि का संपुट शय्या विषै, नारकीनि का उष्ट्रमुखादि आकाररूप योनि स्थानकनि विषै लघु अंतर्मुहूर्त करि संपूर्ण शरीर करि जीव का उपजना, सो उपपाद जन्म है। असें तीन प्रकार जन्म भेद जानने।

बहुरि इनि सम्मूर्छनादि करि तिनि जीवनि की योनि कहिए। जीव के शरीर ग्रहण का आधारभूत स्थान, ते यथासंभव नव प्रकार है। सचित्त, शीत,

---

१ सम्मूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥
२ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा

संवृत; इनिके प्रतिपक्षी इतर अचित्त, उष्ण विवृत; बहुरि इनिके मिलने से मिश्र – सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत असैं नव प्रकार है। बहुरि ते योनि सम्मूर्छनादिकनि विषै प्रत्येक यथासंभव जानना।

तहां चित्त कहिए अन्य चेतन, तीहिकरि सहित वर्तें, ते सचित्त है। अन्य प्राणी करि पूर्वें ग्रहे हुवे पुद्गल स्कंध सचित्त कहिए। बहुरि तातैं विपरीत अन्य प्राणीनिकरि न ग्रहे जे पुद्गल स्कंध, ते अचित्त है। बहुरि सचित्त-अचित्त दोऊरूप जे पुद्गल स्कंध, ते मिश्र है। बहुरि प्रगट है शीत स्पर्श जिनके ऐसे पुद्गल, ते शीत हैं। बहुरि प्रगट है उष्ण स्पर्श जिनिके असैं पुद्गल, ते उष्ण है। बहुरि शीत, उष्ण दोऊरूप जे पुद्गल, ते मिश्र है। बहुरि प्रकट जाकौ न अवलोकिए असा गुप्त आकार जाका, सो पुद्गल स्कंध संवृत है। बहुरि प्रकट आकाररूप जाकौं अवलोकिए असा पुद्गल स्कंध, सो विवृत है। बहुरि संवृत-विवृत दोऊरूप पुद्गल स्कंध, सो मिश्र है। असैं जीव उपजने के आधाररूप पुद्गल स्कंध, नव प्रकार जानने।

भावार्थ – गुण कौ धरैं त्रैलोक्य विषै यथासंभव जीव जहां उपजै, असैं योनिरूप पुद्गल स्कंध, तिनिके भेद नव है।

आगैं सम्मूर्छनादिक जन्मभेद के जे स्वामी है, तिनका निर्देश करैं है –

पोतजरायुजअंडज, जीवाणं गब्भ देवणिरयाणं।
उववादं सेसाणं, सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ।।८४।।[1]

पोतजरायुजांडजजीवानां गर्भः देवनारकाणाम् ।
उपपादः शेषाणां, सम्मूर्छनकं तु निर्दिष्टम् ।।८४।।

टीका – किछू भी शरीर ऊपरि आवरण विना सम्पूर्ण है अवयव जाका अर योनि तै निकसता ही चलनादिक की सामर्थ्य, ताकरि संयुक्त असा जीव, सो पोत कहिए। बहुरि जालवत् प्राणी का शरीर ऊपरि आवरण, मांस, लोही जामें विस्तार रूप पाइए असा जो जरायु, ता विषै जो जीव उपज्या, सो जरायुज कहिए। बहुरि शुक्र, लोहीमय आवरण कठिनता कौं लीए नख की चामडी समान गोल आकार

१, जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ।।३३।। देवनारकाणामुपपादः ।।३४।।
शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ।।३५।। तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा

धरै, सो अंड; तीहि विषै उपज्या जो जीव, सो अंडज कहिए। इनि पोतजरायुज अंडज जीवनि के गर्भरूप ही जन्म का भेद जानना।

बहुरि च्यारि प्रकार देव अर धम्मादि विषै उपजे नारकी, तिनिके उपपाद ही जन्म का भेद है।

इनि कहे जीवनि विना अन्य सर्व एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री अर केई पंचेंद्री तिर्यञ्च अर लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य, इनिकै सम्मूर्छन ही जन्म का भेद पाइए है; असा सिद्धांत विषै कह्या है।

आगै सचित्तादि योनिभेदनि का सम्मूर्छनादि जन्मभेद विषै संभवपना, असंभवपना गाथा तीन करि दिखावै हैं –

उववादे अच्चित्तं, गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे।
सच्चित्तं अच्चित्तं, मिस्सं च य होदि जोणी हु ॥८५॥

उपपादे अचित्ता, गर्भे मिश्रा तु भवति संमूर्च्छे।
सचित्ता अचित्ता, मिश्रा च च भवति योनिर्हि ॥८५॥

टीका – देव, नारकी संबंधी जो उपपाद जन्म का भेद, तीहिविषै अचित्त ही योनि हैं। तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध सर्व अचित्त ही हैं।

गर्भजन्म का भेदरूप सचित्त, अचित्त दोऊरूप मिश्र ही पुद्गल स्कंधरूप योनि है। तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध विषै कोई पुद्गल सचित्त हैं, कोई अचित्त हैं।

बहुरि सम्मूर्छन जन्म विषै सचित्त, अचित्त, मिश्र ए तीन प्रकार योनि पाइए है। कहीं योनिरूप पुद्गल स्कंध सचित्त ही हैं, कहीं अचित्त ही हैं, कहीं मिश्र हैं।

उववादे सीदुसणं, सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि।
उववादेयक्खेसु य संउड वियलेसु विउलं तु ॥८६॥

उपपादे शीतोष्णे, शेषे शीतोष्णमिश्रका भवंति।
उपपादैकाक्षेषु च, संवृता विकलेषु विवृता तु ॥८६॥

टीका – उपपाद जन्मभेद विषै शीत अर उष्ण ए दोय योनि है। योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत है वा उष्ण है। तहां नारकीनि के रत्नप्रभा का बिलनि तैं लगाइ धूमप्रभा बिलनि का तीन चौथा भाग पर्यन्त बिलनि विषै उष्ण योनि ही है। बहुरि धूमप्रभा बिलनि का चौथा भाग तैं लगाइ महातम प्रभा का बिलनि पर्यन्त बिलनि विषै शीत योनि ही है, असा विशेष जानना। बहुरि अवशेष गर्भ जन्मभेद विषैं अर सम्मूर्छन जन्म के भेद विषै शीत, उष्ण, मिश्र तीनों योनि हैं। कोई योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत ही है, कोऊ उष्ण ही है। कोऊ योनिरूप पुद्गल स्कंध विषैं कोई पुदगल शीत है, कोई उष्ण है, तातै मिश्र है। तहा तेजस्कायिक जीवनि विषै उष्ण ही योनि है। तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध उष्ण ही है। बहुरि जलकायिक जीवनि विषै शीत ही योनि है। तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत ही है। बहुरि उपपादज देव-नारकी अर एकेंद्रिय इन विषै संवृत ही योनि है; जहां उपजै असा योनिरूप पुद्गल स्कंध, सो अप्रकट आकाररूप ही है। बहुरि विकलेंद्रिय विषै विवृत योनि ही है; जहां उपजै असा योनिरूप पुद्गल स्कंध, सो प्रकट ही है।

गब्भजजीवाणं पुण, मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु।
सम्मुच्छणपंचक्खे, वियलं वा विउलजोणी हु ॥८७॥

गर्भजजीवानां पुनः, मिश्रा नियमेन भवति योनिर्हि।
संमूर्च्छनपंचाक्षेषु, विकलं वा विवृतयोनिर्हि ॥८७॥

टीका – बहुरि गर्भज जीवनि कै संवृत, विवृत दोऊरूप मिश्र योनि है। जहां उपजै असा योनिरूप पुद्गल स्कंध विषै किछु प्रकट, किछु अप्रकट है। बहुरि सम्मूर्च्छन पंचेंद्रियनि विषै विकलेंद्रियवत् विवृत योनि ही है।

आगै योनिभेदनि की संख्या का उद्देश के आगै कथन का संकोचनि कौ कहै है –

सामण्णेण य एवं, णव जोणीओ हवंति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी, जोणीओ होंति णियमेण ॥८८॥

सामान्येन च एवं, नव योनयो भवंति विस्तारे।
लक्षाणां चतुरशीतिः, योनयो भवंति नियमेन ॥८८॥

टीका – ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार करि सामान्येन कहिए संक्षेप करि नव योनि है। बहुरि विस्तार करि चौरासी लाख योनि है नियमकरि।

भावार्थ – जीव उपजने का आधारभूत पुद्गल स्कंध का नाम योनि है। ताके सामान्यपनै नव भेद है, विस्तार करि तिस ही के चौरासी लाख भेद हैं।

आगै तिनि योनिनि की विस्तार करि संख्या दिखावै हैं –

णिच्चिदरधादुसत्त य, तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥८९॥

नित्येतरधातुसप्त च, तरुदश विकलेंद्रियेषु षट् चैव।
सुरनिरयतिर्यक्चतस्रः, चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राः ॥८९॥

टीका – नित्यनिगोद, इतरनिगोद अर धातु कहिए पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक वायुकायिक इनि छहौं स्थाननि विषै प्रत्येक सात-सात लाख योनि हैं। बहुरि तरु जो प्रत्येक वनस्पति, तिनि विषै दश लाख योनि है। बहुरि विकलेंद्रीरूप बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री इनि विषै प्रत्येक दोय-दोय लाख योनि हैं। बहुरि देव, नारकी, पंचेंद्री तिर्यंच इनि विषै प्रत्येक च्यारि-च्यारि लाख योनि हैं। बहुरि मनुष्यनि विषै चौदह लाख योनि हैं। ऐसैं समस्त संसारी जीवनि के योनि सर्व मिलि चौरासी लाख संख्यारूप प्रतीति करनी।

आगैं गतिनि का आश्रय करि जन्मभेद कौं गाथा दोय करि कहै हैं –

उववादा सुरणिरया, गब्भजसमुच्छिमा हु णरतिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा ॥९०॥

उपपादाः सुरनिरयाः, गर्भजसंमूर्छिमा हि नरतिर्यंचः।
सम्मूर्छिमा मनुष्या, अपर्याप्ता एकविकलाक्षाः ॥९०॥

टीका – देव अर नारकी उपपाद जन्म संयुक्त हैं। बहुरि मनुष्य अर तिर्यंच ए गर्भज अर सम्मूर्च्छन यथासंभव हो हैं। तहां लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर एकेंद्रिय विकलेंद्रिय ए केवल सम्मूर्च्छन ही हैं।

पंचक्खतिरिक्खाओ, गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं।
भोगभुमा गब्भभवा, नरपुण्णा गब्भजा चेव ॥९१॥

पंचाक्षतिर्यंचः, गर्भजसम्मूर्छिमा तिरश्चाम् ।
भोगभूमा गर्भभवा, नरपूर्णा गर्भजाश्चैव ॥९१॥

टीका – पंचेद्रिय तिर्यंच, ते गर्भज अर सम्मूर्च्छन हो है। बहुरि तिर्यचनि विषै भोगभूमियां तिर्यंच गर्भज ही है। बहुरि पर्याप्त मनुष्य गर्भज ही है।

आगै औपपादिकादिनि विषै लब्धि अपर्याप्तकपना का संभवपना-असभवपना कौं कहै है –

उववादगब्भजेसु य, लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण।
णरसम्मुच्छिमजीवा, लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥९२ ॥

उपपादगर्भजेषु च, लब्ध्यपर्याप्तका न नियमेन ।
नरसम्मूर्छिमजीवा, लब्ध्यपर्याप्तकाश्चैव ॥९२॥

टीका – औपपादिकनि विषै, बहुरि गर्भजनि विषै लब्धि अपर्याप्तक नियम करि नाही है। बहुरि सम्मूर्च्छन मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक ही हो है, पर्याप्त न हो है।

आगै नरकादि गतिनि विषै वेदनि कौ अवधारण करै है –

णेरइया खलु संढा, णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा।
संढा सुरभोगभुमा, पुरिसिच्छीवेदगा चेव ॥९३॥

नैरयिकाः खलु षंढा, नरतिरश्चोस्त्रयो भवंति सम्मूर्छाः ।
षंढाः सुरभोगभुमाः पुरुषस्त्रीवेदकाश्चैव ॥९३॥

टीका – नारकी सर्व ही नियमकरि षंढा कहिए नपुंसक वेदी ही हैं। बहुरि मनुष्य-तिर्यंचनि विषै स्त्री, पुरुष, नपुसक भेदरूप तीनो वेद है। बहुरि सम्मूर्च्छन तिर्यंच अर मनुष्य सर्व नपुसक वेदी ही है। ते सम्मूर्च्छन मनुष्य स्त्री की योनि वा कांख वा स्तननि का मूल, तिनि विषै अर चक्रवर्ती की पट्टराज्ञी विना मूत्र, विष्टा आदि अशुचिस्थानकनि विषै उपजै है, ऐसा विशेष जानना। बहुरि देव अर भोग

भूमिया ते पुरुष वेद, स्त्री वेद का ही उदय सयुक्त नियम करि है। तहां नपुंसक न पाइए है।

इति तीन प्रकार योनिनि का अधिकार जीवसमासनि का कह्या।

आगै शरीर की अवगाहना आश्रय करि जीवसमासनि कौं कहने का है मन जाका, ऐसा आचार्य; सो प्रथम ही सर्व जघन्य अर उत्कृष्ट अवगाहना के जे स्वामी, तिनिका निर्देश करै है –

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥६४॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अंगुलासख्यभागं, जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥९४॥

टीका – जितना आकाश क्षेत्र शरीर रोकै, ताका नाम इहां अवगाहना है। सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव, तीहि पर्याय विषे ऋजुगति करि उत्पन्न भया, ताके तीसरा समय विषै घनांगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण प्रदेशनि की अवगाह विशेष धरै शरीर हो है। सो यहु अन्य सर्व अवगाहना भेदनि तै जघन्य है। वहुरि स्वयंभूरमण नामा समुद्र के मध्यवर्ती जो महामत्स्य, ताका उत्कृष्ट अवगाहना तै भी सवनि तै सर्वोत्कृष्ट अवगाहना विशेष धरै शरीर हो है।

इहां तर्क – जो उपजने तै तीसरा समय विषै सर्व तै जघन्य अवगाहना कैसे सभवै है ?

तहां समाधान – जो उपजता ही प्रथम समय विषै तो निगोदिया जीव का शरीर लंबा वहुत, चौडा थोडा, ऐसा चौकोर हो है। वहुरि दूसरा समय विषै लंबा-चौडा समान ऐसा चौकोर हो है। वहुरि तीसरे समय कोण दूर करणे करि गोल आकार हो है; तव ही तिस शरीर कै अवगाहना का अल्प प्रमाण हो है, जातै लंबा चौकोर, सम चौकोर तै गोल क्षेत्रफल स्तोक हो है।

वहुरि तर्क – जो ऐसें है तो ऋजुगति करि उपज्या ही कै होइ – ऐसे कैसे कह्या ?

ताका समाधान – जीव पर भव कौ गमन करै, ताकी विदिशा करि वर्जित च्यारि दिशा वा अध:, ऊर्ध्व विषै गमन क्रिया होइ है, सो च्यारि प्रकार है - ऋजु गति, पाणिमुक्ता गति, लांगल गति, गोमूत्रिका गति । तहां सूधा गमन होइ, सो ऋजु गति है । जामै बीचि एक बार मुडे, सो पाणिमुक्ता गति है । जामै बीच दोय बार मुडे, सो लांगल गति है । जामै बीच तीन बार मुडे, सो गोमूत्रिका गति है । सो मुडने रूप जो विग्रह गति, ताविषैं जीव योगनि की वृद्धि करि युक्त हो है । ताकरि शरीर की अवगाहना भी वृद्धिरूप हो है । तातैं ऋजुगति करि उपज्या जीव कै जघन्य अवगाहना कही, सो सर्वजघन्य अवगाहन का प्रमाणक है है । घनागुल रूप जो प्रमाण, ताका पल्य का असंख्यातवां भाग उगणीस बार, बहुरि आवली का असंख्यातवा भाग नव बार, बहुरि एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग बाईस बार, बहुरि संख्यात का भाग नव बार इतने तौ भागहार जानने । बहुरि तिस घनागुल कों आवली का असंख्यातवां भाग का बाईस बार गुणकार जानने । तहां पूर्वोक्त भागहारनि कौं मांडि परस्पर गुणन कीए, जेता प्रमाण आवै, तितना भागहार का प्रमाण जानना । बहुरि बाईस जायगा आवली का असंख्यातवा भाग कौ माडि परस्पर गुणै जो प्रमाण आवै, तितना गुणकार का प्रमाण जानना । तहां घनागुल के प्रमाण कौ भागहार के प्रमाण का भाग दीए, अर गुणकार का प्रमाण करि गुणै जो प्रमाण आवै, तितना जघन्य अवगाहना के प्रदेशनि का प्रमाण जानना । असैं ही आगै भी गुणकार, भागहार का अनुक्रम जानना ।

आगै इद्रिय आश्रय करि उत्कृष्ट अवगाहनानि का प्रमाण, तिनिके स्वामीनि कौ निर्देश करै है –

साहियसहस्समेकं, बारं कोसूणमेकमेक्कं च ।
जोयणसहस्सदीहं, पम्मे वियले महामच्छे ॥९५॥

साधिकसहस्रमेकं, द्वादश क्रोशोनमेकमेकं च ।
योजनसहस्रदीर्घं, पद्मे विकले महामत्स्ये ॥९५॥

टीका – एकेंद्रियनि विषै स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यवर्ती जो स्वयंप्रभ नामा पर्वत, ताका परला भाग संबंधी कर्मभूमिरूप क्षेत्र विषै उपज्या असा जो कमल, तीहि विषै किछू अधिक एक हजार योजन लवा, एक योजन चौडा असा उत्कृष्ट

अवगाह है । याका क्षेत्रफल कहिए है – समान प्रमाण लीए खंड कल्पे जितने खंड होइ, तिस प्रमाण का नाम क्षेत्रफल है । तहां ऊचा, लम्बा, चौडा क्षेत्र का ग्रहण जहां होइ, तहा घन क्षेत्रफल वा खात क्षेत्रफल जानना । बहुरि जहां ऊचापना की विवक्षा न होइ अर लम्बा-चौडा ही का ग्रहण होइ, तहां प्रतर क्षेत्रफल वा वर्ग क्षेत्रफल जानना । बहुरि जहा ऊचा-चौडापना की विवक्षा न होइ, एक लम्बाई का ही ग्रहण होइ, तहां श्रेणी क्षेत्रफल जानना ।

सो इहा खात क्षेत्रफल कहिए है । तहा कमल गोल है, तातै गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल साधनरूप करण सूत्र करि साधिए है –

वासोत्तिगुणो परिही, वासचउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं, खादफलं होइ सव्वत्थ ।।

याका अर्थ – व्यास, जो चौडाई का प्रमाण, तातै तिगुणा गिरदभ्रमणरूप जो परिधि, ताका प्रमाण हो है । बहुरि परिधि कौ व्यास का चौथा भाग करि गुणे, प्रतररूप क्षेत्रफल हो है । बहुरि याकौ वेध, जो ऊचाई का प्रमाण, ताकरि गुणे सर्वत्र खातफल हो है । सो इहा कमल विषै व्यास एक योजन, ताकौ तिगुणा कीए परिधि तीन योजन हो है । याकौ व्यास का चौथा भाग पाव योजन करि गुणे, प्रतर क्षेत्रफल पौणा योजन हो है । याकौ वेध हजार योजन करि गुणे, च्यारि करि अपवर्तन कीए, योजन स्वरूप कमल का क्षेत्रफल साड़ा सात सौ योजन प्रमाण हो है ।

भावार्थ – एक-एक योजन लम्बा, चौडा, ऊचा खड कल्पे इतने खड हो है ।

बहुरि द्वीन्द्रियनि विषै तीहि स्वयभूरमण समुद्रवर्ती शख विषै बारह योजन लम्बा, योजन का पाच चौथा भाग प्रमाण चौडा, च्यारि योजन मुख व्यास करि युक्त, ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है । याका क्षेत्रफल करणसूत्र करि साधिए है –

व्यासस्तावद् गुणितो, वदनदलोनो मुखार्धवर्गयुतः ।
द्विगुणश्चतुर्भिर्भक्तः, पंचगुणः शंखखातफलं ।।

याका अर्थ – प्रथम व्यास कौ व्यास करि गुणिए, तामे मुख का आधा प्रमाण घटाइ, तामे मुख का आधा प्रमाण का वर्ग जोडिए, ताका दूणा करिए, ताकौ च्यारि

का भाग दीजिए, ताकौ पाचगुणा करिए,ऐसै करते शंख क्षेत्र का खातफल हो है। सो इहां व्यास बारह योजन कौ याही करि गुणैं एक सौ चवालीस होइ। यामें मुख का आधा प्रमाण दोय घटाए, एक सौ ब्यालीस होइ। यामें मुख का आधा प्रमाण का वर्ग च्यारि जोडै, एक सौ छियालीस होइ। याकौ दूणा कीए दोय सै बाणवे होइ। याकौ च्यारि का भाग दीए तेहत्तरि होइ। याकौ पांच करि गुणें, तीन सौ पैंसठि योजन प्रमाण शंख का क्षेत्रफल हो है।

बहुरि त्रीद्रियनि विषै स्वयंभूरमण द्वीप का परला भाग विषै जो कर्मभूमि संबंधी क्षेत्र है, तहा रक्त बीछू जीव है। तीहि विषै योजन का तीन चौथा भाग प्रमाण $(\frac{३}{४})$ लम्बा, लम्बाई के आठवें भाग $(\frac{३}{३२})$ चौडा, चौडाई तै आधा $(\frac{३}{६४})$ ऊचा ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है। यहु क्षेत्र आयत चतुरस्र है। लम्बाई लीए चौकोर है, सो याका प्रतर क्षेत्रफल भुज कोटि बधतैं हो है। सन्मुख दोय दिशानि विषै कोई एक दिशा विषै जितना प्रमाण, ताका नाम भुज है। बहुरि अन्य दोय दिशा विषै कोई एक दिशा विषै जितना प्रमाण, ताका नाम कोटि है। अर्थ यहु जो लम्बाई-चौडाई विषै एक का नाम भुज, एक का नाम कोटि जानना। इनिका वेध कहिए परस्पर गुणना, तीहि थकी प्रतर क्षेत्रफल हो है। सो इहा लम्बाई तीन चौथा भाग, चौडाई तीन बत्तीसवां भाग, इनिको परस्पर गुणे नव का एक सौ अठाईसवां भाग $(\frac{९}{१२८})$ भया। बहुरि याकौ वेध ऊंचाई का प्रमाण तिनिका चौसठिवा भाग, ताकरि गुणै, सत्ताईस योजन को इक्यासी सै बाणवै का भाग दीए एक भाग $(\frac{२७}{८१९२})$ प्रमाण रक्त बीछ का घन क्षेत्रफल हो है।

बहुरि चतुरिद्रियनि विषै स्वयंभूरमण द्वीप का परला भागवर्ती कर्मभूमि संबधी क्षेत्र विषै भ्रमर हो है। सो तिहि विषै एक योजन लांबा, पौन योजन $(\frac{३}{४})$ चौडा, आधा योजन $(\frac{१}{२})$ ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। ताकौ भुज कोटि बेध - एक योजन अर तीन योजन का चौथा भाग, अर एक योजन का दूसरा भाग, इनिकौ परस्पर गुणे, तीन योजन का आठवां भाग $(\frac{३}{८})$ प्रमाण घन क्षेत्रफल हो है।

बहुरि पंचेद्रियनि विषै स्वयंभूरमण समुद्र के मध्यवर्ती महामच्छ, तीहि विषै हजार (१०००) योजन लांबा, पांच सै (५००) योजन चौडा, पचास अधिक दोय सै (२५०) योजन ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। तहां भुज, कोटि, वेध हजार

(१०००) अर पांच सै (५००) अर अढाई सै (२५०) योजन प्रमाण, इनिकौं परस्पर गुणैं साढे बारा कोडि (१२५०००००) योजन प्रमाण घनफल हो है। ऐसैं कहे जो योजन रूप घनफल, तिनके प्रदेशनि का प्रमाण कीए एकेंद्रिय के च्यारि बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, द्वींद्रिय के तीन बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, त्रींद्रिय के एक बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, चतुरिंद्रिय के दोय बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, पंचेंद्रिय के पांच बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण प्रदेश उत्कृष्ट अवगाहना विषैं हो है।

आगै पर्याप्त द्वींद्रियादिक जीवनि का जघन्य अवगाहना का प्रमाण अर ताका स्वामी का निर्देश कौं कहै हैं -

बितिचपपुण्णजहण्णं, अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु ।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखं संखगुणिदकमा ॥९६॥

द्वित्रिचपपूर्णजघन्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासु ।
सिक्थकमत्स्ये वृंदांगुलसंख्यं संख्यगुणितक्रमाः ॥९६॥

टीका - पर्याप्त द्वींद्रिय विषैं अनुंधरी, त्रींद्रियनि विषैं कुंथु, चतुरिंद्रियनि विषैं काणमक्षिका, पंचेंद्रियनि विषैं तंदुलमच्छ इनि जीवनि विषैं जघन्य अवगाहना विर्षे धरै जो शरीर, तानरि रोक्या हुवा क्षेत्र (प्रदेशनि) का प्रमाण घनांगुल का संख्यातवां भाग तैं लगाइ, संख्यातगुणा अनुक्रम करि जानना। तहां द्वींद्रिय विषैं च्यारि बार, त्रींद्रिय विषैं तीन बार, चतुरिंद्रिय विषैं दोय बार, पंचेंद्रिय विषैं एक बार, संख्यात का भाग ताकौं दीजिए, ऐसा घनांगुल मात्र पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना के प्रदेशनि का प्रमाण जानना। इनिका अब चौडाई, लम्बाई, ऊंचाई का उपदेश इहां नाहीं है। घनफल कीए जो प्रदेशनि का प्रमाण भया, सो इहां कह्या है।

आगै सर्व तैं जघन्य अवगाहना कौं आदि देकरि उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत शरीर की अवगाहना के भेद, तिनिका स्वामी वा अल्पबहुत्व वा क्रम तैं गुणकार, तिनिकौं गाथा पंच करि इहां दिखावै हैं -

सुहुमणिवातेआभू वातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं ।
बितिचपमादिल्लाणं, एयाराणं तिसेढीय ॥९७॥

सूक्ष्मनिवातेआभूः वातेअपूनिप्रतिष्ठितमितरत् ।
द्वित्रिचपमाद्यानामेकादशानां त्रिश्रेण्यः ॥९७॥

टीका – इहां नाम का एक देश, सो संपूर्ण नाम विषै वर्तै है । इस लघु-करण न्याय कौ आश्रय करि गाथा विषै कह्या हुवा **णिवा** इत्यादि आदि अक्षरनि करि निगोद वायुकायिक आदि जीवनि का ग्रहण करना । सो इहां अवगाहना के भेद जानने के अर्थि एक यंत्र करना ।

तहां सूक्ष्म निगोदिया, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म तेजःकायिक, सूक्ष्म अप्-कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक नाम धारक पांच सूक्ष्म तिस यंत्र के प्रथम कोठे विषै लिखे हो हैं ।

बहुरि ताकी बरोबरि आगै बादर – वायु, तेज, जल, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक नाम धारक ये छह बादर पूर्ववत् अनुक्रम करि दूसरा कोठा विषै लिखे हो है । पहिलै जिनिके नाम लीए थे, तिन ही के फेरी लीए, इस प्रयोजन की समर्थता तै प्रथम कोठा विषैं सूक्ष्म कहे थे; इहां दूसरा कोठा विषै बादर ही है, असा जानना ।

बहुरि ताके आगै अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिद्रिय, पंचेद्रिय नाम धारक ए पांच बादर तीसरा कोठा विषै लिखे हो है । इनि सोलहौ विषै आदि के सूक्ष्म निगोदादिक ग्यारह, तिनिकै आगै तीन पंक्ति करनी । तहां एक-एक पक्ति विषै दोय-दोय कोठे जानने । कैसैं ? सो कहिए है - पूर्वै तीसरा कोठा कह्या था, ताके आगै दोय कोठे करने । तिनि विषै जैसै पहला, दूसरा कोठा विषै पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे थे, तैसै इहां भी लिखे हो है । बहुरि तिनि दोऊ कोठानि के नीचै पंक्ति विषै दोय कोठे और करने । तहां भी तैसै ही पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे हो है । बहुरि तिनिके नीचै पंक्ति विषै दोय कोठे और करने, तहा भी तैसै ही पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे हो है । असै सूक्ष्म निगोदादि ग्यारह स्थानकनि का दोय-दोय कोठानि करि संयुक्त तीन पंक्ति भई । या प्रकार ऊपरि की पंक्ति विषै पांच कोठे, तातै नीचली पंक्ति विषै दोय कोठे, तातै नीचली पंक्ति विषै दोय कोठे मिलि नव कोठे भए ।

अपदिट्ठिदपत्तेयं, बितिचपतिचबि-अपदिट्ठिदं सयलं ।
तिचवि-अपदिट्ठिदं च य, सयलं बादालगुणिदकमा ॥९८॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येकं द्वित्रिचपत्रिचद्वचप्रतिष्ठितं सकलम् ।
त्रिचद्वचप्रतिष्ठितं च च सकलं द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाः ॥९८॥

टीका – बहुरि तिनि तीनि पंक्तिनि के आगे ऊपर पंक्ति विषैं दशवां कोठा करना तीहि विषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो हैं। बहुरि ताके आगे ग्यारहवां कोठा विषैं त्रींद्रिय, चौइंद्रिय, बेंद्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो है। बहुरि ताके आगे बारहवां कोठा विषै त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, द्वींद्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पंचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो है। ऐसे ए चौसठि जीवसमासनि की अवगाहना के भेद हैं। तिनि विषै ऊपरि की पंक्तिनि के आठ कोठानि विषैं प्राप्त ऐसे जे बियालीस जीवसमास, तिनकी अवगाहना के स्थान, ते गुणितक्रम हैं। अनुक्रम तैं पूर्व स्थान कौं यथासंभव गुणकार करि गुणैं उत्तरस्थान हो हैं। बहुरि तातैं इनि नीचैं की दोय पंक्तिनि विषै प्राप्त भए बाईस स्थान, ते 'सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो' इस वचन तैं अधिक रूप है। तहां एक प्रतिभाग का अधिकपना जानना। पूर्वस्थान कौं संभवता भागहार का भाग देइ एक भाग कौं पूर्वस्थान विषै अधिक कीए उत्तरस्थान हो हैं; ऐसा सूचन कीया है।

अवरमपुण्णं पढमं, सोलं पुण पढमबिदियतदियोली।
पुण्णिदरपुण्णियाणं, जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं ॥९९॥

अवरमपूर्णं प्रथमे, षोडश पुनः प्रथमद्वितीयतृतीयावलिः।
पूर्णेतरपूर्णानां, जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं ॥९९॥

टीका – पहलैं तीन कोठेनि विषैं प्राप्त जे सोलह जीवसमास, तिनिकी अपर्याप्त विषै जघन्य अवगाहना जाननी। बहुरि आगैं ऊपरि तैं पहली, दूसरी, तीसरी पंक्तिनि विषैं एक-एक पंक्ति विषैं दोय-दोय कोठे कीए, ते क्रम तैं पर्याप्त, अपर्याप्त, पर्याप्तरूप तीन प्रकार जीव की जघन्य, उत्कृष्ट अर उत्कृष्ट अवगाहना है। याका अर्थ यहु – जो ऊपरि तैं प्रथम पंक्ति के दोय कोठानि विषैं पांच सूक्ष्म, छह बादर इनि ग्यारह पर्याप्त जीवसमासनि की जघन्य अवगाहना के स्थान है। तैसे ही नीचैं दूसरी पंक्ति विषैं प्राप्त तिनि ग्यारह अपर्याप्त जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान है। तैसे ही तीसरी पंक्ति विषैं प्राप्त तिनि ग्यारह पर्याप्त जीव समासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान हैं।

पुण्णजहण्णं तत्तो, वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं ।
बीपुण्णजहण्णो त्ति, असंखं संखं गुणं तत्तो ॥१००॥

पूर्णजघन्यं ततो, वरमपूर्णस्य पूर्णोत्कृष्टं ।
द्विपूर्णजघन्यमिति असंख्यं संख्यं गुणं ततः ॥१००॥

टीका – ताके आगै दशवां कोठा विषै प्राप्त पर्याप्त पांच जीवसमासनि की जघन्य अवगाहना के स्थान है । बहुरि तहां तै आगै ग्यारहवां कोठा विषै अपर्याप्त पांच जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान है । बहुरि ताके आगै बारहवां कोठा विषै पर्याप्त पंच जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान है । ऐसे ए कहे स्थान, तिनि विषै प्रथम कोठा विषै प्राप्त सूक्ष्म अपर्याप्त निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना तै लगाइ दशवा कोठा विषै प्राप्त बादर पर्याप्त द्वीद्रिय की जघन्य अवगाहना पर्यंत ऊपरि की पंक्ति संबंधी गुणतीस अवगाहना के स्थान, ते असंख्यात-असंख्यात गुणा क्रम लीए है । बहुरि तिसतैं आगै बादर पर्याप्त पंचेंद्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत तेरह अवगाहना के स्थान, ते संख्यातगुणां, सख्यातगुणां अनुक्रम लीए है; ऐसा जानना ।

सुहमेदरगुणगारो, आवलिपल्ला असंखभागो दु ।
सट्ठाणे सेढिगया, अहिया तत्थेक्कपडिभागो ॥१०१॥

सूक्ष्मेतरगुणकार, आवलिपल्यासंख्येयभागस्तु ।
स्वस्थाने श्रेणिगता, अधिकास्तत्रैकप्रतिभागः ॥१०१॥

टीका – इहां गुणतीस स्थान असख्यातगुणे कहे, तिनिविषै जे सूक्ष्म जीवनि के अवगाहना के स्थान है, ते आवली का असंख्यातवा भाग करि गुणित जानने । पूर्वस्थान कौ घनावली[1] का असंख्यातवां भाग करि तहां एक भाग करि गुणै उत्तर स्थान हो है । बहुरि जे बादर जीवनि के अवगाहन के स्थान है, ते पल्य का असख्यातवां भाग करि गुणित है । पल्य का असख्यात भाग करि तहां एक भाग करि पूर्वस्थान कौ गुणै, उत्तर स्थान हो है । ऐसै स्वस्थान विषै गुणकार है, या प्रकार असंख्यात का गुणकार विषै भेद है, सो देखना । बहुरि नीचली दूसरी, तीसरी पंक्ति

---

१. अ प्रति मे 'आवली' है, बाकी चार प्रतियो मे 'घनावली' है ।

सूक्ष्मनिगोद १ वात २ तेज ३ अप् ४ पृथ्वी ५ इनि पांच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	बादर वात ६ तेज ७ अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्रतिष्ठित प्रत्येक ११ इनि छह अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	अप्रतिष्ठित प्रत्येक १२ बेंद्री १३ तेंद्री १४ चौंद्री १५ पचेंद्री १६ इनि पाच अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	सूक्ष्मनिगोद १७ वात १८ तेज १९ अप् २० पृथ्वी २१ इनि पच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	बादर घात २२ तेज २३ अप् २४ पृथ्वी २५ निगोद २६ प्रतिष्ठित प्रत्येक २७ इनि छहो प्रर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	अप्रतिष्ठित प्रत्येक ५० बेंद्री ५१ तेंद्री ५२ चौंद्री ५३ पचेंद्री ५४ इनि पाच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	तेंद्री ५५ चौइंद्री ५६ बेंद्री ५७ अप्रतिष्ठित ५८ पचेंद्री ५९ इनि पाच अप्रर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।	तेंद्री ६० चौइंद्री ६१ बेंद्री ६२ अप्रतिष्ठित पत्येक ६३ पचेंद्री ६४ इनि पाच पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।
			सूक्ष्मनिगोद २८ वात २९ तेज ३० अप् ३१ पृथ्वी ३२ इनि पाच प्रपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।	बादर वात ३३ तेज ३४ अप् ३५ पृथ्वी ३६ निमोद ३७ प्रतिष्ठित प्रत्येक ३८ इनि छहो अपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।			
			सूक्ष्मनिगोद ३९ घात ४० तेज ४१ अप् ४२ पृथ्वी ४३ इनि पचपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।	बादर वात ४४ तेज ४५ अप् ४६ पृथ्वी ४७ निगोद ४८ प्रतिष्ठित प्रत्येक ४९ इनि छहो पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।			

विषै प्राप्त जे अवगाहना के स्थान ते अधिक अनुक्रम धरै है। तहां सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान कौं आदि देकरि उत्तर-उत्तर स्थान पूर्व-पूर्व अवगाहना स्थान तै ताही कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, तहां एक भागमात्र अधिक है। पूर्वस्थान कौ आवली का असंख्यातवा (भाग का) भाग दीए जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वस्थान विषै अधिक कीए उत्तरस्थान विषै प्रमाण हो है। इहां अधिक का प्रमाण ल्यावने के अर्थि भागहार वा भागहार का भागहार, सो आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है। अैसै परमगुरु का उपदेश तै चल्या आया प्रमाण जानना। बहुरि यहां यहु जानना - सूक्ष्मनिगोदिया का तीनो पंक्ति विषै अनुक्रम करि पीछै सूक्ष्म वातकायिक का तीनो पक्तिनि विषै अनुक्रम करना। अैसै ही क्रम तै ग्यारह जीवसमासनि का अनुक्रम जानना।

यहु यंत्र जीवसमासनि की अवगाहना का है। इहां ऊपरि की पंक्ति विषै प्राप्त बियालीस स्थान गुणकाररूप है। तहा पहला, चौथा कोठा विषै सूक्ष्म जीव कहे, ते क्रम तैं पूर्वस्थान तै उत्तरस्थान आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणित है। बहुरि दूसरा, तीसरा, सातवां कोठा विषै बादर कहे अर दशवा कोठा विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक वा बेद्री कहे, ते क्रम तै पल्य के असंख्यातवां भाग करि गुणित है। बहुरि दशवां कोठा विषै तेद्री सौ लगाइ बारहवा[1] कोठा विषै प्राप्त पंचेद्री पर्यत सख्यात करि गुणित है। बहुरि नीचली दोय पक्तिनि के च्यारि कोठानि विषै जे स्थान कहे, ते आवली का असख्यातवां भाग करि भाजित पूर्वस्थान प्रमाण अधिक है।

(देखिए पृष्ठ २०६)

अब इहा कहे जे अवगाहना के स्थान, तिनके गुणकार का विधान कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना का स्थान, सो आगै कहैगे गुणकार, तिनकी अपेक्षा अैसा है। उगणीस बार पल्य का भाग, नव बार आवली का असंख्यातवां भाग, बाईस बार एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग, नव बार संख्यात, इनिका तौ जाकौ भाग दीजिए। बहुरि बाईस बार आवली का असख्यातवां भाग करि जाकौ गुणिए अैसा जो घनागुल, तीहि प्रमाण है, सो याकौ आदिभूत स्थान स्थापि, यातै सूक्ष्म अपर्याप्तक वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवा भाग करि गुणित है, सो याका गुणकार आवली का असंख्यातवां भाग अर पूर्वै आवली का असख्यातवा भाग का भागहार

[1] छपी हुई प्रति मे 'ग्यारहवा', अन्य छह हस्तलिखित प्रतियो, मे 'बारहवां' है।

नव वार कह्या था, तामैं एक वार आवली का असंख्यातवा भाग सदृश देखि दोऊनि का अपवर्तन कीए, पूर्वं जहां नव वार कह्या था, तहां इहां आठ वार आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार जानना। असै ही आगै भी गुणकार भागहार कौं समान देखि, तिनि दोऊनि का अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्-कायिक की जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन कीए आठ वार की जायगा सात वार आवली का असंख्यात भाग का भागहार हो है। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां पूर्ववत् अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायिक का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। असैं इहां आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार तौ पांच वार रह्या, अन्य सर्व गुणाकार भागहार पूर्ववत् जानने। बहुरि इहां पर्यंत सूक्ष्म तैं सूक्ष्म का गुणकार भया, तातैं स्वस्थान गुणाकार कहिए है। अब सूक्ष्म तैं वादर का गुणाकार कहिए है, सो यहु परस्थान गुणकार जानना। आगै भी सूक्ष्म तैं वादर, वादर तैं सूक्ष्म का जहां गुणकार होइ, सो परस्थान गुणकार है; असा विशेष जानना। बहुरि इस सूक्ष्म अपर्याप्त पृथिवीकायिक का जघन्य अवगाहन स्थान तैं स्वस्थान गुणाकार कौं उलंघि परस्थानरूप वादर अपर्याप्त वातकायिक का जघन्य अवगाहना स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां इस गुणकार करि उगणीस वार पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार था, तामें एक वार का अपवर्तन करना। बहुरि यातैं वादर तेजःकायिक अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। असैं ही पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा अनुक्रम करि अपर्याप्त वादर, अप्, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येकनि के जघन्य अवगाहना स्थान, अर अपर्याप्त अप्रतिष्ठित प्रत्येक, वेद्री, तेद्री, चौइंद्री पचेंद्री, के जघन्य अवगाहना स्थान, इन नव स्थानकनि कौं प्राप्त करि पूर्ववत् अपवर्तन करतैं अपर्याप्त पंचेंद्रिय का जघन्य अवगाहना स्थान विषै आठ वार पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार रहै हैं। अन्य भागहार गुणकार पूर्ववत् जानना। बहुरि यातैं सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान, सो परस्थानरूप आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। सो पूर्वं आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार पांच वार रह्या था, तामें एक वार करि इस गुणकार का अपवर्तन करना।

बहुरि यातै सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना स्थान विशेष करि अधिक है। विशेष का प्रमाण कह्या सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, तहा एक भाग मात्र विशेष का प्रमाण है। याकौ तिस ही सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य स्थान विषै समच्छेद विधान करि मिलाइ राशि कौ अपवर्तन कीए, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना हो है।

अपवर्तन कैसै करिए ?

जहा जिस राशि का भागहार देइ एक भाग कोई विवक्षित राशि विषै जोडना होइ, तहा तिस राशि तै एक अधिक का तौ गुणकार अर तिस पूर्णराशि का भागहार विवक्षित राशि कौ दीजिए। जैसै चौसठि का चौथा भाग चौसठि विषै मिलावना होइ तौ चौसठि कौ पांच गुणा करि च्यारि का भाग दीजिए। तैसै इहा भी आवली का असंख्यातवा भाग का भाग देइ एक भाग मिलावना है, तातै एक अधिक आवली का असख्यातवा भाग का गुणकार अर आवली का असख्यातवा भाग का भागहार करना। बहुरि पूर्वै राशि विषै बाईस बार एक अधिक आवली का असख्यातवां भाग का भागहार है। अर वाईस बार ही आवली का असख्यात भाग का गुणकार है। सो इनि विषै एक बार का भागहार गुणकार करि अबै कहे जे गुणकार भागहार, तिनिका अपवर्तन कीए बाईस बार की जायगा गुणकार भागहार इकईस बार ही रहै है। अैसै ही आगै भी जहा विशेष अधिक होइ, तहां अपवर्तन करि आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर एक अधिक आवली का असंख्यातवा भाग का भागहार एक-एक बार घटावना। बहुरि सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन तै सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना विशेष करि अधिक है। इहा विशेष का प्रमाण सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहनां कौ आवली का असंख्यातवा भाग का भाग दीए एक भागमात्र है। याकौ पूर्व अवगाहन विषै जोडि, पूर्ववत् अपवर्तन करना। बहुरि यातै सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाह आवली का असख्यातवा भाग गुणा है। सोई यहा अपवर्तन कीए च्यारि बार आवली का असख्यातवा भाग का भाग था, सो तीन बार ही रहै है। बहुरि यातै सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। इहा विशेष का प्रमाण पूर्वराशि कौ आवली का असख्यातवा भाग का भाग दीए एक भागमात्र है, ताकौ जोडि अपवर्तन करना। बहुरि यातै याकै नीचै सूक्ष्म वायुकायिक

पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन, सो विशेष करि अधिक है। पूर्वराशि कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीये, तहां एक भाग करि अधिक जानना। इहा भी अपवर्तन करना। बहुरि यातै सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्तक का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां अपवर्तन करिए, तहा आवली का असंख्यातवा भाग का भागहार तीन वार की जायगा दोय वार ही रहै है; ऐसैं ही यातै सूक्ष्म तेज कायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट आवगाहन विशेप करि अधिक है। यातै सूक्ष्म तेज.कायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेप करि अधिक है। यातै सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्तक का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। यातै सूक्ष्म अपकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेप करि अधिक है। यातै सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातै सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग-गुणा है, यातै सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेप करि अधिक है। यातै सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है, ऐसैं दोय-दोय तौ आवली का असंख्यातवां भाग करि भाजित पूर्वराशि प्रमाण विशेप करि अधिक अर एक-एक अपना-अपना पूर्वराशि तै आवली का असख्यातवां भाग गुणा जानना। अैसैं आठ अवगाहना स्थाननि कौं उलंघि तहां आठवां सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन, सो पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन करतै बारह वार आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर आठ वार पल्य का असख्यात भाग, बारह वार एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग, नव वार सख्यात का भाग जाकै पाइए, अैसा घनांगुल प्रमाण हो है। बहुरि यातै बादर वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन परस्थानरूप है, तातै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार आठ वार था, तामैं एकवार करि अपवर्तन कीए सात वार रहै है। बहुरि यातै आगैं दोय-दोय स्थान तौ विशेप करि अधिक अर एक-एक स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा जानना। तहा विशेप का प्रमाण अपना-अपना पूर्वराशि कौं आवली का असंख्यातवां भागरूप प्रतिभाग का भाग दीए एक भाग प्रमाण जानना। सो जहां अधिक होइ, तहां अपवर्तन कीए बारह वार आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर एक अधिक आवली का असंख्यातवा भाग का भागहार थे, तिनिविपै एक-एक वार घटता हो है। बहुरि जहां पल्य का असंख्यातवा भाग का गुणकार होइ, तहां अपवर्तन कीए सात वार पल्य का

असंख्यातवां भाग का भागहार थे, तिनि विषै एक-एक बार घटता हो है, अैसा क्रम जानना। सो बादर वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन तै बादर वायुकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातै बादर वायुकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातै बादर तेजकाय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है, यातै बादर तेजकाय अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै बादर तेजकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातै बादर अप्कायिक अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। यातै बादर अप्कायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातै बादर अप्कायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै बादर पृथ्वी पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। यातै बादर पृथ्वी अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै बादर पृथ्वी पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै बादर निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। यातै बादर निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै बादर निगोद पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य के असंख्यातवां भाग गुणा है। यातै प्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातै प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। अैसे सतरह अवगाहन स्थाननि कौ उलंघि पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन कीए सतरहवा बादर पर्याप्त प्रतिष्ठित प्रत्येक का उत्कृष्ट अवगाहन दोय बार पल्य का असख्यातवा भाग अर नव बार सख्यात का भाग जाकौ दीजिए, अैसा घनागुल प्रमाण हो है। बहुरि यातैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असख्यातवा भाग गुणा है, इहा भी अपवर्तन करना।

बहुरि यातै बेद्री पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवा भाग गुणा है। इहा भी अपवर्तन कीए पल्य का असंख्यातवा भाग का भागहार था, सो दूरि होइ घनागुल का नव बार सख्यात का भागहार रह्या। बहुरि यातै तेद्री, चौद्री, पचेद्री पर्याप्तनि के जघन्य अवगाहन ते क्रम तै पूर्व-पूर्व तै सख्यात-सख्यात गुणे है। यातै तेद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन सख्यात गुणा है। यातै चौद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन सख्यात गुणा है। यातै बेद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातै अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन सख्यात

गुणा है । यातै पंचेद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन सख्यात गुणा है । असैं एक-एक वार संख्यात का गुणकार करि नव वार संख्यात का भागहार विषै एक-एक वार का अपवर्तन करतै पंचेद्री अपर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन एक वार संख्यात करि भाजित घनांगुल प्रमाण हो है । वहुरि यातै त्रीद्रिय पर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है, सो अपवर्तन करिए; तथापि इहां गुणकार के सख्यात का प्रमाण भागहार के संख्यात का प्रमाण तै वहुत है । तातै त्रीद्रिय पर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा घनांगुल प्रमाण है । यातै चौइंद्री पर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन सख्यात गुणा है । यातै वेद्री पर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । यातै अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । यातै पंचेद्री पर्याप्ति का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । असैं क्रम तै अवगाहन के स्थान जानने ।

आगै सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्ति का जघन्य अवगाहन तै सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्ति के जघन्य अवगाहन का गुणकार स्वरूप आवली का असंख्यात भाग कह्या । ताकी उत्पत्ति का अनुक्रम कौं अर तिन दोऊनि के मध्य अवगाहन के भेद है, तिनके प्रकारनि कौं गाथा नव करि कहै है –

अवरुवरि इगिपदेसे,जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए ।
आदी णिरंतरमदो, एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥१०२॥

अवरोपरि एकप्रदेशे, युते असंख्यातभागवृद्धेः ।
आदिः निरंतरमतः, एकैकप्रदेशपरिवृद्धिः ॥१०२॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव का जघन्य अवगाहन पूर्वोक्त प्रमाण, ताकी लघु संदृष्टि करि यहु सर्व तैं जघन्य भेद है, तातै याका आदि अक्षर ज ऐसा स्थापन करि वहुरि यातैं दूसरा अवगाहना का भेद के अर्थि इस जघन्य अवगाहन विषै एक प्रदेश जोडै, सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का दूसरा अवगाहन का भेद हो है । वहुरि ऐसै ही एक-एक प्रदेश वधता अनुक्रम करि तावत् जान होना. यावत् सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना, सो सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना तै आवली का असंख्यातवां भाग गुणा होइ । तहां असंख्यात भाग वृद्धि, सख्यात भाग वृद्धि, सख्यात गुण वृद्धि असंख्यात गुण वृद्धि ऐसे चतुःस्थान पतित वृद्धि अर वीचि-वीचि अवक्तव्य भाग वृद्धि

वा अवक्तव्य गुण वृद्धि, तिनिकरि बधते जे अवगाहन के स्थान, तिनिके उपजने का विधान कहिए है ।

भावार्थ – जघन्य अवगाहना का जेता प्रदेशनि का प्रमाण, ताकौ जघन्य अवगाहना प्रमाण असख्यात तै लगाइ जघन्य परीतासंख्यात पर्यंत जिस-जिसका भाग देना संभवे, तिस-तिस असंख्यात का भाग देते (जघन्य अवगाहन) जिस-जिस अवगाहन भेद विषै प्रदेश बधती का प्रमाण होइ, तहा-तहा असंख्यात भाग वृद्धि कहिए । बहुरि तिस जघन्य अवगाहना का प्रदेश प्रमाण कौ उत्कृष्ट संख्यात तै लगाइ यथा सभव दोय पर्यंत सख्यात के भेदनि का भाग देतै जघन्य अवगाहना तै जिस-जिस अवगाहना विषै बधती का प्रमाण होइ, तहा-तहा संख्यात भाग वृद्धि कहिये । बहुरि दोय तै लगाइ उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत (संख्यात के भेदनि करि) [1]जघन्य अवगाहना कौ गुणे जिस-जिस अवगाहना विषै प्रदेशनि का प्रमाण होइ, तहा-तहा सख्यात गुण वृद्धि कहिए । बहुरि जघन्य परीतासख्यात तै लगाइ आवली का असंख्यातवां भाग पर्यंत असख्यात के भेदनि करि जघन्य अवगाहना कौ गुणै, जिस-जिस अवगाहना के भेद विषै प्रदेशनि का प्रमाण होइ तहा-तहा असंख्यात गुण वृद्धि कहिए । बहुरि जहा-जहा इनि सख्यात वा असख्यात के भेदनि का भागहार गुणकार न सभवै ऐसे प्रदेश जघन्य अवगाहना ते जहा-जहा बधती होइ, सो अवक्तव्य भाग वृद्धि वा अवक्तव्य गुण वृद्धि कहिए । सो यहु (अवक्तव्य) वृद्धि पूर्वोक्त चतु स्थान पतित वृद्धि के बीचि-बीचि होइ है । बहुरि यहाँ जघन्य अवगाहना प्रमाण तै बधता असख्यात का अर अनत का भाग की वृद्धि न संभवै है, जातै इनिका भाग जघन्य अवगाहना कौ न बनै है । बहुरि इहा आवली का असख्यातवा भाग तै बधता असख्यात का अर अनन्त का गुणकाररूप वृद्धि न संभवै है, जातै इनि करि जघन्य अवगाहना कौ गुणे प्रमाण बधता होइ । इहा सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक का जघन्य अवगाहना पर्यंत ही विवक्षा है ।

अैसे इहा प्रदेश वृद्धि का स्वरूप जानना, सोई विशेष करि कहिए है । सर्व तै जघन्य अवगाहना कौ इस जघन्य अवगाहना प्रमाण असख्यात का भाग दीए एक पाया, सो जघन्य अवगाहना के ऊपरि एक प्रदेश जोडै, दूसरा अवगाहना का भेद हो है, सो यहु असख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान है । बहुरि जघन्य अवगाहना तै आधा प्रमाणरूप असख्यात का भाग तिस जघन्य अवगाहना कौ दीए दोय पाए,

1. ब प्रति के अनुसार पाठभेद है ।

सो जघन्य अवगाहना विषै जोडें, तीसरा अवगाहना का भेद होइ, सो यहु असंख्यात भाग वृद्धि का दूसरा स्थान है। असें ही क्रम करि जघन्य अवगाहना कौं यथायोग्य असंख्यात का भाग दीए तीन, च्यारि, पाच इत्यादि सख्यात असख्यात पाए, ते जघन्य अवगाहना विषै जोडे निरतर एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि संयुक्त अवगाहना के स्थान असंख्यात हो है। तिनिकौ उलघि कहा होइ सो कहै है –

अवरोग्गाहणमाणे, जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे ।
अवरस्सुवरिं उड्ढे, जेट्ठमसंखेज्जभागस्स ॥१०३॥

अवरावगाहनाप्रमाणे, जघन्यपरिमितासंख्यातराशिहृते ।
अवरस्योपरि वृद्धे, ज्येष्ठमसंख्यातभागस्य ॥१०३॥

टीका – एक जायगा जघन्य अवगाहना कौ जघन्य परिमित असंख्यात राशि का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य अवगाहना विषै जोडे जितने होइ, तितने प्रदेश जहां अवगाहना भेद विषै होइ, तहा असख्यात भाग वृद्धिरूप अवगाहना स्थाननि का अंतस्थान हो है। एते ए असंख्यात भाग वृद्धि के स्थान कितने भए ? सो कहिए है – **'आदी अंते सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस करण सूत्र करि असंख्यात भाग वृद्धिरूप अवगाहना का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण कौ अंतस्थान का प्रदेश प्रमाण मे स्यौ घटाए अवशेष रहै, ताकौ स्थान-स्थान प्रति एक-एक प्रदेश वधता है, तातै एक का भाग दीए भी तितने ही रहै, तिनमे एक और जोडे जितने होइ, तितने असख्यात भाग वृद्धि के स्थान जानने।

तस्सुवरि इगिपदेसे, जुदे अवत्तव्वभागपारंभो ।
वरसंखमवहिदवरे, रूऊणे अवरउवरिजुदे ॥१०४॥

तस्योपरि एकप्रदेशे, युते अवक्तव्यभागप्रारंभ. ।
वरसंख्यातावहितावरे, रूपोने अवरोपरियुते ॥१०४॥

टीका – पूर्वोक्त असख्यात भाग वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान, तीहि विषै एक प्रदेश जुडे अवक्तव्य भाग वृद्धि का प्रारंभरूप प्रथम अवगाहना स्थान हो है। वहुरि ताके आगे एक-एक प्रदेश वधता अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थानकनि कौं उलघि एक वार उत्कृष्ट सख्यात का भाग जघन्य अवगाहना कौ दीए जो

प्रमाण आवै, तामै एक घटाए जितने होंइ, तितने प्रदेश जघन्य अवगाहना के ऊपरि जुडे कहा होइ, सो कहै है –

तव्वड्ढीए चरिमो, तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा ।
संखेज्जभागउड्ढी, उवरिमदो रूवपरिवड्ढी ॥१०५॥

तद्वृद्धेश्चरमः, तस्योपरि रूपसंयुते प्रथमा ।
संख्यातभागवृद्धिः उपर्यतो रूपपरिवृद्धिः ॥१०५॥

टीका – तीहि अवक्तव्य भाग वृद्धि का अंत अवगाहन स्थान हो है । बहुरि ए अवक्तव्य भाग वृद्धि स्थानकनि के भेद कितने है ? सो कहिए है – **'आदी अंते सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस करण सूत्र करि अवक्तव्य भाग वृद्धि का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण अतस्थान का प्रदेश प्रमाण विषै घटाइ, अवशेष कौ वृद्धि प्रमाण एक-एक का भाग देइ जे पाए तिनि में एक जोडै जितने होंइ, तितने अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान है ।

बहुरि अब अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थानकनि की उत्पत्ति कौ अंक सदृष्टि करि व्यक्त करै है । जैसै जघन्य अवगाहना का प्रमाण अडतालीस सै (४८००), जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण सोलह, उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण १५, तहा भागहारभूत जघन्य परीतासंख्यात सोलह (१६) का भाग जघन्य अवगाहना अड़तालीस सै (४८००) कौ दीए तीन सै पाए, सो इतने जघन्य अवगाहना तै वधै असख्यात भाग वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान हो है । वहुरि तिस जघन्य अवगाहना अडतालीस सै कौ उत्कृष्ट संख्यात पंद्रह, ताका भाग दीए तीन सै बीस (३२०) पाए, सो इतने बधै सख्यात भाग वृद्धि का प्रथम अवगाहना स्थान हो है । वहुरि इनि दोऊनि के बीच अंतराल विषै तीन सै एक कौ आदि देकरि तीन सै उगणीस ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९ पर्यन्त वधै जे ए उगणीस स्थान भेद हो है, ते असंख्यात भाग वृद्धिरूप वा संख्यात भाग वृद्धिरूप न कहे जाइ, जातै जघन्य असख्यात का भी वा उत्कृष्ट संख्यात का भी भाग दीए ते तीन से एक आदि न पाइए है । काहे तै ? जातै जघन्य असंख्यात का भाग दीए तीन सै पाए, उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीए तीन सै वीस पाए, इनि तै तिनकी सख्या हीन अधिक है । तातै इनिकौ अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप स्थान कहिए तौ इहां अवक्तव्य भाग वृद्धि विषै भागहार का प्रमाण कैसा सभवै है ? सो कहिए है – जघन्य का प्रमाण अडतालीस

सै, ताकौ इस तीन सै एक प्रमाण भागहार का भाग दीए जो पाइए, तितने का भागहार संभवै है । तहां 'हारस्य हारो गुणकोंऽशराशेः' इस करण सूत्र करि भागहार का भागहार है, सो भाज्य राशि का गुणकार होइ, असै भिन्न गणित का आश्रय करि अडतालीस सै कौ तीन सै एक करि ताकौ अडतालीस सै का भाग दीए इतने प्रमाण तिस अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रथम अवगाहन भेद के वृद्धि का प्रमाण हो है । सो अपवर्तन कीए तीन सै एक ही आवै है । सो यहु संख्यात-असंख्यातरूप भागहाररूप न कह्या जाय; तातै अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप कह्या है ।

भावार्थ – इहां असा जो भिन्न गणित का आश्रय करि इहां भागहार का प्रमाण असा आवै है । बहुरि जैसै यहु अंकसदृष्टि करि कथन कीया, असै ही अर्थ-संदृष्टि करि कथन जोडना । इस ही अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के अंतस्थान पर्यन्त स्थान ल्यावने । बहुरि तिस अवक्तव्य भाग वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान विषै एक प्रदेश जुडै संख्यात भाग वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । ताके आगै एक-एक प्रदेश की वृद्धि का अनुक्रम करि अवगाहन स्थान असंख्यात प्राप्त हो है ।

अवरद्धे अवरुवरिं, उड्ढे तव्वड्ढिपरिसमत्तीहु ।
रूवे तदुवरि उड्ढे, होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥१०६॥

अवरार्धे अवरोपरिवृद्धे तद्वृद्धिपरिसमाप्तिर्हि ।
रूपे तदुपरिवृद्धे, भवति अवक्तव्यप्रथमपदम् ॥१०६॥

टीका – जघन्य अवगाहना का आधा प्रमाणरूप प्रदेश जघन्य अवगाहना के ऊपरि वधते सते संख्यात भाग वृद्धि का अंतस्थान हो है । जातै जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है, ताका भाग दीए राशि का आधा प्रमाण हो है । बहुरि ए संख्यात भाग वृद्धि के स्थान केते है ? सो कहिए है - **'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसजुदे ठाणे'** इस सूत्र करि संख्यात भाग वृद्धि का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण कौ अंतस्थान का प्रदेश प्रमाण विषै घटाइ अवशेष कौ वृद्धि का प्रमाण एक का भाग दीए भी तितने ही रहै । तहां एक जोडै जो प्रमाण होइ, तितने संख्यात भाग वृद्धि के स्थान है । बहुरि संख्यात भाग वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान विषै एक प्रदेश जुडै, अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान उपजै है । बहुरि ताके आगै एक-एक प्रदेश बधता अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान असंख्यात उलंघि एक जायगा कह्या, सो कहै है ।

रूऊणवरे अवरुस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं ।
तम्हि पदेसे उड्ढे, पढ़मा संखेज्जगुणवड्ढि ॥१०७॥

रूपोनावरे अवरस्योपरि संवर्धिते तदुत्कृष्टं ।
तस्मिन् प्रदेशे वृद्धे प्रथमा सख्यातगुणवृद्धिः ॥१०७॥

टीका – एक घाटि जघन्य अवगाहना का प्रदेश प्रमाण जघन्य अवगाहना के ऊपरि बधतै सतै अवक्तव्य भाग वृद्धि का अंत उत्कृष्ट अवगाहना स्थान हो है । जातै जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है, सो दूणा भए संख्यात गुण वृद्धि का आदि स्थान होइ । तातै एक घाटि भए, याका अतस्थान हो है । इहा अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान केते है ? सो कहिए है – **'आदी अंते सुद्धे'** इत्यादि सूत्र करि याके आदि कौ अत विषै घटाइ, अवशेष कौ वृद्धि एक का भाग देइ एक जोडै जो प्रमाण होइ, तितने अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान हो है । बहुरि तिस अवक्तव्य भाग वृद्धि का अंत स्थान विषै एक प्रदेश जुडै, संख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । ताकै आगै एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि संख्यात गुण वृद्धि के असख्यात अवगाहना स्थान कौ प्राप्त होइ, एक स्थान विषै कह्या, सो कहै है –

अवरे वरसंखगुणे, तच्चरिमो तह्मि रूवसंजुत्ते ।
उग्गाहणह्मि पढमा, होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥१०८॥

अवरे वरसंख्यगुणे, तच्चरमः तस्मिन् रूपसयुक्ते ।
अवगाहने प्रथमा, भवति अवक्तव्यगुणवृद्धिः ॥१०८॥

टीका – जघन्य अवगाहना कौ उत्कृष्ट संख्यात करि गुणै जितने होइ, तितने प्रदेश जहां पाइए, सो संख्यात गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान है । बहुरि ए संख्यात गुण वृद्धि के स्थान केते है ? सो कहिए है – पूर्ववत् **'आदी अंते सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इत्यादि सूत्र करि याका आदि कौ अत विषै घटाइ, वृद्धि एक का भाग देई, एक जोडै, जितने पावै तितने है । बहुरि आगै संख्यात गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान विषै एक प्रदेश जोडै, अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । यातै आगै एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान असंख्यात प्राप्त करि एक स्थान विषै कह्या, सो कहै है –

अवरपरितासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे ।
तच्चरिमो रूवजुदे, तह्मि असंखेज्जगुणपढमं ॥१०९॥

अवरपरीतासंख्येनावरं संगुण्य रूपपरिहीने ।
तच्चरमो रूपयुते, तस्मिन् असंख्यातगुणप्रथमम् ॥१०९॥

टीका – जघन्य परीता असंख्यात करि जघन्य अवगाहना कौं गुणि, तामै एक घटाए जो प्रमाण होइ, तितने प्रदेशरूप तिस अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान हो है । ए अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान केते है ? सो कहिए है – पूर्ववत् 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्र करि याका आदि कौं अंत विषै घटाए, अवशेष कौं वृद्धि एक का भाग देइ एक जोडै, जितने होंइ तितने हैं । वहुरि इहां अवक्तव्य गुण वृद्धि का स्वरूप अंकसंदृष्टि करि अवलोकिए हैं । जैसै जघन्य अवगाहना का प्रमाण सोलह (१६), एक घाटि जघन्य परीता असंख्यात प्रमाण जो उत्कृष्ट संख्यात, ताका प्रमाण तीन, ताकरि जघन्य कौ गुणै अडतालीस होंइ । वहुरि जघन्य परिमित असंख्यात का प्रमाण च्यारि, ताकरि जघन्य कौं गुणै चौसठि होंइ, इनिके वीचि जे भेद, ते अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान हैं । जातैं इनि कौ संख्यात वा असंख्यात गुण वृद्धि रूप कहे न जाइ, तहां जघन्य अवगाहन सोलह कौ एक घाटि परीता संख्यात तीन करि गुणै अडतालीस होंइ, तामें एक जोडैं अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान हो है । याकौ जघन्य अवगाहन सोलह का भाग दीए पाया गुणचास का सोलहवा भाग प्रमाण अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान ल्यावने कौ गुणकार हो है । याकरि जघन्य अवगाहन कौ गुणि अपवर्तन कीए अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान गुणचास प्रदेश प्रमाण हो है । अथवा अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान एक अधिक तिगुणां सोलह, ताकौ जघन्य अवगाहना सोलह, ताका भाग देइ पाया एक सोलहवा भाग अधिक तीन, ताकरि जघन्य अवगाहन सोलह कौं गुणें गुणचास पाए, तितने ही प्रदेश प्रमाण अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । ऐसैं अन्य उत्तरोत्तर भेदनि विषै भी गुणकार का अनुक्रम जानना । तहा अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत का अवगाहना स्थान, सो जघन्य अवगाहन सोलह कौं जघन्य परिमिता संख्यात च्यारि करि गुणें जो पाया, तामें एक घटाए, तरेसठि होइ, सो इतने प्रदेश प्रमाण है । वहुरि याकौ जघन्य अवगाहन सोलह का भाग देइ, पाया तरेसठि का सोलहवां भाग, सोई अवक्तव्य गुण वृद्धि का

अंत अवगाहना स्थान ल्यावने विषै गुणकार हो है । याकरि जघन्य अवगाहन सोलह कौ गुणें, अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहन स्थान की उत्पत्ति हो है; सो अवलोकनी । अथवा अवक्तव्य गुण वृद्धि के अंत अवगाहन स्थान तरेसठि कौ जघन्य अवगाहन सोलह का भाग देइ पाया तीन अर पंद्रह सोलहवा भाग, इस करि जघन्य अवगाहन सोलह कौ गुणै, अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान का प्रदेश प्रमाण हो है । सो सर्व अवक्तव्य गुण वृद्धि का स्थापन गुणचास आदि एक-एक बधता तरेसठि पर्यन्त जानना । ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३ । बहुरि इस ही अनुक्रम करि अर्थसदृष्टि विषै भी एक घाटि जघन्य अवगाहन प्रमाण इस अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान जानने । बहुरि अब पूर्वोक्त अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहन स्थान विषै एक प्रदेश जुडै, असंख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है ।

रूवुत्तरेण तत्तो, आवलियासंखभागगुणगारे ।
तप्पाउग्गे जादे, वाउस्सोग्गाहणं कमसो ॥११०॥

रूपोत्तरेण तत, आवलिकासंख्यभागगुणकारे ।
तत्प्रायोग्ये जाते, वायोरवगाहन क्रमशः ॥११०॥

टीका – **ततः** कहिए तीहि असख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान तै आगै एक-एक प्रदेश वृद्धि करि असख्यात गुण वृद्धि के अवगाहन स्थान असख्यात हो है । तिनिकौ उलघि एक स्थान विषै यथायोग्य आवलि का असख्यातवा भाग प्रमाण असंख्यात का गुणकार, सो सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त निगोद का जघन्य अवगाहन गुण्य का होते साते सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान की उत्पत्ति हो है । इहा ए केते स्थान भए ? तहा 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्र करि आदि स्थान कौ अत स्थान विषै घटाइ, अवशेष कौ वृद्धि एक का भाग देइ लब्ध राशि विषै एक जोडै, स्थानकनि का प्रमाण हो है ।

आगै सर्व अवगाहन के स्थानकनि का गुणकार की उत्पत्ति का अनुक्रम कहै हैं–

एवं उवरि वि णेओ, पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कह्मि य, जीवसमासाण विच्चाले ॥१११॥

एवमुपर्यपि ज्ञेयः, प्रदेशवृद्धिक्रमो यथायोग्यम् ।
सर्वत्रैकैकस्मिश्च जीवसमासानामंतराले ॥१११॥

टीका – एवं कहिए इस ही प्रकार जैसैं सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यन्त पूर्वोक्त प्रकार चतुःस्थान पतित प्रदेश वृद्धि का अनुक्रम विधान कह्या, तैसैं ऊपरि भी सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक तेजकाय का जघन्य अवगाहन तैं लगाइ द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यन्त जीवसमास का अवगाहना स्थानकनि का अंतरालनि विषै प्रत्येक जुदा-जुदा चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम करि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकार की उत्पत्ति का विधान जानना ।

भावार्थ – जैसैं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान अर सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान के बीचि अंतराल विषै चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम विधान कह्या । तैसैं ही सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त अर सूक्ष्म तेजःकायिक लब्धि अपर्याप्तकनि का अंतराल विषै वा ऐसैं ही द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यंत अगिले अतरालनि विषै चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम विधान जानना । विशेष इतना - तहां आदि अवगाहन स्थान का वा भाग वृद्धि, गुण वृद्धि विषैं असंख्यात का प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनि का प्रमाण इत्यादि यथासंभव जानने ।

बहुरि तैसैं ही ताके आगैं तेइंद्री पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान आदि देकरि सैनी पंचेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत अवगाहन स्थानकनि का एक-एक अंतराल विषै असंख्यात गुण वृद्धि विना त्रिस्थान पतित प्रदेशनि की वृद्धि का अनुक्रम करि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकार की उत्पत्ति का विधान जानना ।

भावार्थ – इहां पूर्वस्थान तै अगिला स्थान संख्यात गुणा ही है । तातै तहां असंख्यात गुण वृद्धि न संभवै है, त्रिस्थान पतित वृद्धि ही संभवै है । इहां भी विशेष इतना – जो आदि अवगाहना स्थान का वा भाग वृद्धि विषैं असंख्यात का वा गुण वृद्धि विषै संख्यात का प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनि का प्रमाण इत्यादिक यथासंभव जानने । ऐसैं इहां प्रसंग पाइ चतुःस्थान पतित वृद्धि का वर्णन कीया है ।

बहुरि कहीं षट्स्थान पतित, कहीं पंचस्थान पतित, कहीं चतुःस्थान पतित, कहीं त्रिस्थान पतित, कहीं द्विस्थान पतित, कहीं एकस्थान पतित वृद्धि संभवै है । बहुरि कहीं ऐसे ही हानि संभवै है, तहां भी ऐसैं ही विधान जानना । तहां जाका [illegible] जो विवक्षित, ताके आदि स्थान के प्रमाण तै अगले स्थान विषैं

प्रमाण बधता होइ, तहा वृद्धि संभवै है; जहां घटता होइ, तहां हानि संभवै है । सो इनिका स्वरूप नीकै जानने के अर्थि इस भाषाटीका विषै किछू कथन करिए है ।

प्रथम षट्स्थान पतित वृद्धि वा हानि का स्वरूप कहिये है । अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि ऐसै षट्स्थान पतित वृद्धि जाननी । बहुरि अनत भागहानि, असख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि संख्यात गुणहानि, असंख्यात गुणहानि, अनत गुणहानि असै षट्स्थानपतित हानि जाननी । बहुरि इनिके बीचि-बीचि अवक्तव्य वृद्धि वा हानि सभवै है । सो इनिका स्वरूप अकसंदृष्टिरूप दृष्टात करि दिखाइए है, जातै याके जानै यथार्थ स्वरूप का ज्ञान सुगम होइ है ।

तहां जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय (२), उत्कृष्ट संख्यात का पाच (५), जघन्य असंख्यात का छह (६), उत्कृष्ट असख्यात का पद्रह (१५), जघन्य अनत का सोलह (१६), उत्कृष्ट अनत का प्रमाण बहुत है । तथापि इहा भागहार विषै तौ आदिस्थान प्रमाण जानना अर गुणाकार विषै आदिस्थान तै जितने गुणा बधता वा घटता अत स्थान होई, तीहि प्रमाण ग्रहण करना । सो इहा अकसदृष्टि विषै आदि स्थान का प्रमाण चौवीस सै स्थापना कीया । बहुरि वृद्धिरूप होइ दूसरा स्थान चौवीस सै एक प्रमाण-रूप भया । तहा अनत भाग वृद्धि का आदि सभवै है, जातै आदि स्थान के प्रमाण कौ आदि स्थान प्रमाण जो अनत का भेद, ताका भाग दीए एक पाया, सो आदि स्थान तै इहा एक की वृद्धि भई है । असै ही जिस-जिस स्थान विषै आदि स्थान तै जो अधिक का प्रमाण होइ, सो प्रमाण सभवतै कोई अनत के भेद का भाग आदि स्थान कौ दीए आवै, तहा-तहा अनत भाग वृद्धि सभवै है । तहा जो स्थान पचीस सै पचास प्रमाणरूप भया, तहा अनंत भाग वृद्धि का अत जानना । जातै जघन्य अनत का प्रमाण सोलह, ताका भाग आदि स्थान कौ दीए एक सो पचास पाए, सोई इहा आदि स्थान तै अधिक का प्रमाण है । बहुरि पचीस सै इक्यावन तै लगाइ पचीस सै गुणसठि पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान, ते अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप है । जातै जघन्य अनत का भी वा उत्कृष्ट असख्यात का भी भाग की वृद्धि कीए जो प्रमाण होइ, तातै इनिका प्रमाण हीन अधिक है । यद्यपि भिन्न गणित करि इहा भागहार का प्रमाण सोलह तै किछू हीन वा पंद्रह तै किछू अधिक पाइए, तथापि सोलह प्रमाण जघन्य अनत तै भी याका प्रमाण हीन भया । तातै याकौ अनंत भागरूप न कहा जाय ।

अर उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह तै भी याका प्रमाण अधिक भया, तातै याकौं असंख्यात भागरूप न कह्या जाय। जातै उत्कृष्ट तै अधिक अर जघन्य तै हीन कहना असंभव है, तातै इहां अवक्तव्य भाग का ग्रहण कीया। अैसे ही आगै भी यथासंभव अवक्तव्य भाग वृद्धि वा गुण वृद्धि वा अवक्तव्य भाग हानि वा गुण हानि का स्वरूप जानना। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान पचीस सै साठि प्रमाण रूप भया, तहां असंख्यात भाग वृद्धि आदि संभवै है। जातै उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह का भाग आदि स्थान कौं दीए एक सौ साठि पाए, सोई इहा आदि स्थान तै अधिक का प्रमाण है। बहुरि ऐसै ही जिस-जिस स्थान विषै आदि स्थान तै अधिक का प्रमाण संभवनै असंख्यात के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए आवै, तहां-तहां असंख्यात भाग वृद्धि संभवै है। तहां जो स्थान अठाइस सै प्रमाणरूप भया, तहां असंख्यात भाग वृद्धि का अंत जानना। जातै जघन्य असंख्यात छह, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए च्यारि सै पाए, सोई इहां इतने आदि स्थान तें अधिक है। बहुरि जे स्थान अट्ठाइस सै एक आदि अट्ठाईस सै गुण्यासी पर्यंत प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य भाग वृद्धि संभवै है। जातै जघन्य असंख्यात का भी वा उत्कृष्ट संख्यात का भी भाग की वृद्धिरूप प्रमाण तै इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अठ्ठाईस सै असी प्रमाणरूप भया. तहां संख्यात भाग वृद्धि का आदि संभवै है। जातै उत्कृष्ट संख्यात पाच, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए च्यारि सै असी पाए, सोई इतने इहां आदि स्थान तै अधिक हैं। बहुरि अैसे ही जिस-जिस स्थान विषै आदि स्थान तै अधिक का प्रमाण संभवने संख्यात के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए आवै, तहां-तहां संख्यात भाग वृद्धि संभवै है। यहां जो स्थान छत्तीस सै प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात भाग वृद्धि का अंत जानना। जातैं जघन्य संख्यात दोय, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए बारह सै पाए. सो इतने इहां आदि स्थान तैं अधिक हैं। बहुरि जे स्थान छत्तीस सै एक आदि सैंतालीस सै निन्याणवे पर्यन्त प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य भाग वृद्धि संभवै है। जातै जघन्य संख्यात भाग वृद्धि वा जघन्य संख्यात गुण वृद्धिरूप प्रमाण तै भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अडतालीस सै प्रमाणरूप भया. तहां संख्यात गुण वृद्धि का आदि संभवै है; जातै जघन्य संख्यात दोय. ताकरि आदि स्थान कौं गुणैं इतना प्रमाण हो है। अैसे ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवते संख्यात के भेद करि आदि स्थान कौं गुणैं आवै, तहां-तहां संख्यात गुण वृद्धि संभवै है। तहां जो स्थान बारह हजार प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात

गुण वृद्धि का अंत जानना । जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच, ताकरि आदि स्थान कौं गुणे इतना प्रमाण हो है । बहुरि जे स्थान बारह हजार एक तै लगाई चौदह हजार तीन सौ निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि संभवै है । जातैं उत्कृष्ट संख्यात गुण वृद्धि वा जघन्य असंख्यात गुण वृद्धिरूप प्रमाण तै भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होई जो स्थान चौदह च्यारि सै प्रमाणरूप भया, तहा असंख्यात भागवृद्धि[1] का आदि संभव है । जातै जघन्य असंख्यात छह, ताकरि आदि स्थान कौं गुणै, इतना प्रमाण हो है । बहुरि अैसे ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण सभवते असंख्यात के भेद करि आदि स्थान कौ गुणे आवै, तहां-तहा असख्यात गुण वृद्धि[2] संभवै है । तहां जो स्थान छत्तीस हजार प्रमाणरूप भया, तहां असख्यात गुण वृद्धि [3] का अंत जानना । जातै उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह, ताकरि आदि स्थान कौ गुणै इतना प्रमाण हो है । बहुरि जे स्थान छत्तीस हजार एक आदि अडतीस हजार तीन सै निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप है, तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि संभवै है । जातै उत्कृष्ट असंख्यात गुण वृद्धि वा जघन्य अनंत गुण वृद्धिरूप प्रमाण तै भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अड़तीस हजार च्यारि सै प्रमाणरूप भया, तहां अनंत गुणवृद्धि का आदि संभवै है, जातै जघन्य अनत सोलह, ताकरि आदि स्थान कौ गुणे इतना प्रमाण हो है ।

बहुरि अैसें ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण सम्भव तै अनन्त का भेद करि आदि स्थान कौ गुणें आवै, तहां अनन्त गुण वृद्धि सम्भवै है । तहां जो स्थान दोय लाख चालीस हजार प्रमाण रूप भया, तहा अनन्त गुण वृद्धि का अंत जानना । जातै यद्यपि अनन्त का प्रमाण बहुत है, तथापि इहां जिस अनन्त के भेद करि गुणित अंतस्थान होइ, सोई अनन्त का भेद इहा अंत विषै ग्रहण करना । सो अंकसंदृष्टि विषै एक सौ प्रमाण अनन्त के भेद का अंत विषै ग्रहण कीया । तीहिकरि आदि स्थान कौ गुणै दोय लाख चालीस हजार होइ, सोई विवक्षित के अतस्थान का प्रमाण जानना । अैसे इहां षट्स्थान पतित वृद्धि का विधान दिखाया ।

अब षट्स्थान पतित हानि का विधान दिखाइए है । इहा विवक्षित का आदि स्थान दोय लाख चालीस हजार प्रमाणरूप स्थापन कीया । यातै घटि करि दूसरा स्थान जो दोय लाख गुणतालीस हजार नौ सै निन्याणवै प्रमाणरूप भया, सो

---

१. ख प्रति मे गुणवृद्धि है । २ ब प्रति मे यहा भागवृद्धि है । ३ ब प्रति मे यहा भागवृद्धि है ।

स्थान कौं कीए जो प्रमाण होइ, तिनि तै इनिका प्रमाण हीन अधिक है। बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान पंद्रह हजार प्रमाणरूप भया, तहां अनंत गुणहानि का आदि जानना। जातै जघन्य अनंत सोलह, सो आदि स्थान कौं सोलह गुणा घाटि कीए इतना प्रमाण आवै है। बहुरि असै ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवतै अनंत का भेद करि गुणें आदि स्थान मात्र होइ, सो-सो स्थान अनंत गुणहानिरूप जानना। तहां जो स्थान चौवीस सै प्रमाण रूप भया, सो स्थान अनंत गुणहानि का अंतरूप है। जातै यद्यपि अनंत का प्रमाण बहुत है; तथापि इहा आदि स्थान तै अंत स्थान जितने गुणा घाटि होइ, तितने प्रमाण ही अनंत का अत विषै ग्रहण करना, सो अंकसंदृष्टि विषै जो प्रमाण अनत का भेद ग्रहण कीया, सो आदि स्थान कौं सौ गुणा घाटि कीए इतना ही प्रमाण आवै है। या प्रकार जैसै अंक-संदृष्टि करि कथन कीया, तैसै ही यथार्थ कथन अवधारण करना। इतना विशेष – तहां जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है। उत्कृष्ट सख्यात का एक घाटि जघन्य परीतासंख्यात मात्र है। जघन्य असंख्यात का जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण है। उत्कृष्ट असंख्यात का उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात मात्र है। जघन्य अनंत का जघन्यपरीतानत प्रमाण है। उत्कृष्ट अनंत का केवलज्ञानमात्र है, तथापि इहां भाग वृद्धि वा हानि विषै तौ आदि स्थान प्रमाण अर गुण वृद्धि वा हानि विषै आदि स्थान तै अंत स्थान जितने गुणा बधता वा घटता होइ, तीहि प्रमाण अनंत का ही अंत विषैं ग्रहण करना। बहुरि जाका निरूपण कीजिए, ताकौं विवक्षित कहिए, ताका आदि भेद विषै जितना प्रमाण होइ, सो आदि स्थान का प्रमाण जानना। ताके आगै अगिले स्थान वृद्धिरूप वा हानिरूप होइ, तिनिका प्रमाण यथासम्भव जानना। इत्यादिक विशेष होइ, सो विशेष जानना अर अन्य विधान अंकसंदृष्टि करि जानना। बहुरि जहां आदि स्थान का प्रमाण असंख्यातरूप ही होइ, तहां अनंत भाग की वृद्धि वा हानि न संभवै, जहा आदि स्थान का प्रमाण सख्यातरूप ही होइ, तहा अनंत भाग अर असंख्यात भाग की वृद्धि वा हानि न संभवै है। बहुरि जहाँ आदि स्थान तै अंत स्थान का प्रमाण असंख्यात गुणा ही अधिक वा हीन होइ, तहां अनंत गुण वृद्धि वा हानि न संभवै है। जहां आदि स्थान तै अंत स्थान का प्रमाण संख्यात गुणा ही अधिक वा हीन होइ, तहां अनंत वा असंख्यात गुणी वृद्धि वा गुणहानि न संभवै है; तातै कहीं पच स्थान पतित, कही चतुस्थान पतित, कहीं त्रीस्थान पतित, कहीं द्विस्थान पतित, कहीं एकस्थान पतित वृद्धि वा हानि यथासंभव जाननी। वैसै

ही आदि स्थान की अपेक्षा लीए वृद्धि-हानि का स्वरूप कह्या । बहुरि कहीं एक स्थान का प्रमाण की अपेक्षा दूसरा स्थान विषै वृद्धि वा हानि कही, दूसरा स्थान का प्रमाण की अपेक्षा तीसरा स्थान विषै वृद्धि वा हानि कही; असें स्थान-स्थान प्रति वृद्धि वा हानि का अनुक्रम हो है । तहां अनंत भागादिरूप वृद्धि वा हानि होइ, सो यथासंभव जाननी । बहुरि पर्यायसमास नामा श्रुतज्ञान के भेद वा कषाय स्थान इत्यादिकनि विषैं संभवती षट्स्थान पतित वृद्धि वा हानि के अनुक्रम का विधान आगे ज्ञानमार्गणा अधिकार विषै लिखेंगे, सो जानना । असें वृद्धि-हानि का विधान अनुक्रम अनेक प्रकार है, सो यथासंभव है । असें प्रसंग पाइ षट्गुणी आदि हानि-वृद्धि का वर्णन कीया ।

आगै जिस-जिस जीवसमास के अवगाहन कहे, तिस-तिसके सर्व अवगाहन के भेदनि के प्रमाण कौ ल्यावै है –

हेट्ठा जेसिं जहण्णं, उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ ।
तत्थंतरगा सव्वे, तेसिं उग्गाहणविअप्पा ॥११२॥

अधस्तनं येषां, जघन्यमुपर्युत्कृष्टकं भवेद्यत्र ।
तत्रांतरगाः सर्वे, तेषामवगाहनविकल्पाः ॥११२॥

टीका – इहा मत्स्यरचना कौ मन विषै विचारि यहु कहिये है – जो जिन अवगाहना स्थाननि का प्रदेश प्रमाण थोरा होइ, ते अधस्तन स्थान है । बहुरि जिन अवगाहना स्थाननि का प्रदेश प्रमाण बहुत होइ, ते उपरितन स्थान है, ऐसा कहिये है । सो जिन जीवनि का जघन्य अवगाहना स्थान तौ नीचै तिष्ठै अर जहां उत्कृष्ट अवगाहना स्थान ऊपरि तिष्ठै, तिनि दोऊनि का अतराल विषै वर्तमान सर्व ही अवगाहना के स्थान तिन जीवनि के मध्य अवगाहना स्थान के भेदरूप है – ऐसा सिद्धात विषै प्रतिपादन कीया है ।

भावार्थ – पूर्वं अवगाहन के स्थान कहे, तिनि विषै जिसका जघन्य स्थान जहा कह्या होइ, तहातै लगाइ एक-एक प्रदेश की वृद्धि का अनुक्रम लीए जहा तिस ही का उत्कृष्ट स्थान कह्या होइ, तहा पर्यंत जेते भेद होंइ, ते सर्व ही भेद तिस जीव की अवगाहना के जानने । तहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का पूर्वोक्त प्रमाणरूप जो जघन्य स्थान, सो तो आदि जानना । बहुरि इस ही का पूर्वोक्त प्रमाणरूप जो

उत्कृष्ट स्थान, सो अंत जानना। तहां 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस करण सूत्र करि आदि का प्रमाण कौं अंत का प्रमाण समच्छेद विषै अपवर्तनादि विधान करि घटाए जो अवशेष प्रमाण रहै, ताकौं स्थान-स्थान प्रति वृद्धिरूप जो एक प्रदेश, ताका भाग दीए भी तेता ही रहै, तामैं एक जोडे जो प्रमाण होइ, तितने सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवनि के सब अवगाहना के भेद हैं। इनिमैं आदि स्थान अर अंत स्थान, इनि दोऊनि कौं घटाये अवशेष तिस ही जीव के मध्यम अवगाहना के स्थान हो हैं। बहुरि इस ही प्रकार सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक वायुकायिक जीव आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त पर्यंत जीवनि के अपने-अपने जघन्य अवगाहना स्थान तै लगाइ, अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यंत सर्व अवगाहना के स्थान, अर तिनि विषै जघन्य-उत्कृष्ट दोय स्थान घटाये तिन ही के मध्य अवगाहना स्थान, ते सूत्र के अनुसारि ल्याईये।

अब मत्स्यरचना के मध्य प्राप्त भए ऐसे सर्व अवगाहना स्थान, तिनिके स्थापना का अनुक्रम कहिये है। पूर्वै अवगाहना के स्थान चौसठि कहे थे, तिनि विषै ऊपरि की पंक्ति विषै प्राप्त जे वियालीस गुणाकाररूप स्थान, तिनिकौं गुणित क्रमस्थान कहिये। बहुरि नीचै की दोय पंक्तिनि विषै प्राप्त जे बावीस अधिकरूप स्थान, तिनिकौं अधिक स्थान कहिये। तहां चौसठि स्थाननि विषै गुणित क्रमरूप वा अधिकरूप स्थान अपने-अपने जघन्य तै लगाइ अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यंत जेते-जेते होंइ, तिनि एक-एक स्थान की दोय-दोय बिंदी बरोबरि लिखनी; जातै एक-एक स्थान के बीचि अवगाहना के भेद बहुत हैं। तिनिकी संदृष्टि के अर्थि दोय बिंदी स्थापी, बहुरि तिनि जीवसमासनि विषै संभवते स्थाननि की नीचै-नीचै पंक्ति करनी। ऐसे स्थापैं माछलेकासा आकार हो है, सो कहिए है। (देखिए पृष्ठ २२९-२३०)

प्रथम सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान तै लगाइ ताही का उत्कृष्ट पर्यंत सतरह स्थान हैं। तहां सोलह गुणित स्थान हैं। एक अधिकस्थान है। सो प्रथमादि एक-एक स्थान की दोय-दोय बिंदी की संदृष्टि करने करि चौंतीस बिंदी बरोबरि ऊपरि पंक्ति विषै लिखनी। इहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य स्थान पहला है, उत्कृष्ट अठारहवां है, तथापि गुणाकारपना वा अधिकपनारूप अंतराल सतरह ही है; तातै सतरह ही स्थान ग्रहे है। ऐसे आगे भी जानना। बहुरि तैसे ही तिस पंक्ति के नीचैं दूसरी पंक्ति विषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहना स्थान तै लगाइ ताके उत्कृष्ट

ऐसी वायुकायिककी इत्यादि आदि अक्षररूप सह-
(सूक्ष्म अपर्याप्त ऐसा लिखि आगैं लकीर काढि
(आव)लीकी असंख्यातवां भाग गुणकारकी
(अ)क्षररूप सहनानी जाननी ।

अवगाहना स्थान पर्यंत उगणीस स्थान है, तिनकी अड़तीस बिंदी लिखना। सो इहा दूसरा स्थान तै लगाइ स्थान है, तातै ऊपरि की पंक्ति विषै दोय बिंदी प्रथम स्थान की लिखी थी, तिनकी नीचा कौ छोडि द्वितीय स्थान की दोय बिदी तै लगाइ आगै बरोबरि अडतीस बिदी लिखनी। बहुरि तैसै ही तिस पंक्ति के नीचै तीसरी पंक्ति विषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक तेजस्कायिक का जघन्य अवगाहन तै उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत इकईस स्थान है, तिनकी बियालीस बिदी लिखनी। सो इहा तीजा स्थान तै लगाइ स्थान है, तातै ऊपरि की पंक्ति विषै दूसरा स्थान की दोइ बिदी लिखी थी, तिनके नीचा कौ भी छौडि तीसरी स्थानक की दोइ बिदी तै लगाइ बियालीस बिदी लिखनी। बहुरि तैसैं ही तिस पंक्ति के नीचै चौथी पंक्ति विषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक अप्कायिक का जघन्य अवगाहन स्थान तै लगाइ, ताका उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यंत तेवीस स्थाननि की छियालीस बिदी लिखनी। सो इहा चौथा स्थान तै लगाइ स्थान है, तातै तीसरा स्थानक की दोय बिदी का नीचा कौ छोडि चौथा स्थानक की दोय बिदी तै लगाइ छियालीस बिंदी लिखनी। बहुरि तैसै ही तिस पंक्ति के नीचै पाचमी पंक्ति विषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक का जघन्य अवगाहन तै लगाइ ताका उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत पचीस स्थान है; तिनकी पचास बिदी लिखनी। सो इहा पांचवां स्थान तै लगाइ स्थान है, तातै चौथा स्थान की दोय बिदी का भी नीचा कौ छोडि पाचवा स्थानक की दोय बिदी तै लगाइ पचास बिदी लिखनी। बहुरि तैसै हो तिस पंक्ति के नीचै-नीचै छठी, सातमी, आठवी, नवमी, दशमी, ग्यारहमी बारहवी, तेरहवी, चौदहवी, पंद्रहवी, सोलहवी पंक्ति विषै बादर लब्धि अपर्याप्तक वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय, पचेद्रिय इनि ग्यारहनि का अपना-अपना जघन्य स्थान तै लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यंत अनुक्रम तै सत्ताईस, गुणतीस, इकतीस, तेतीस, पैतीस, सैतीस, छियालिस, चवालीस, इकतालीस, इकतालीस, तियालीस स्थान है। तिनिकी चौवन, अठावन, बासठि, छयासठि, सत्तरि, चौहत्तरि, बाणवै, अठासी, बियासी, छियासी बिदी लिखनी। सो इहा छठा, सातवा आदि स्थान तै लगाइ स्थान है, तातै ऊपरि पंक्ति का आदि स्थान की दोय-दोय बिदी का नीचा कौ छोडि छठा, सातवा आदि स्थान की दोय बिदी तै लगाइ ए बिदी तिनि पंक्तिनि विषै क्रम तै लिखनी।

बहुरि तिस पचेद्रिय लब्धि अपर्याप्तक की पंक्ति के नीचे सतरहवी पंक्ति विषै सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान तै लगाइ, उत्कृष्ट अवगाहना स्थान

पर्यन्त दोय स्थान है, तिनिकी च्यारि विदी लिखनी । वहुरि इस ही प्रकार आगै इस एक ही पंक्ति विषै सूक्ष्म पर्याप्त वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, वहुरि बादर पर्याप्त वायु, तेज, पृथ्वी, अप्, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक इनिका अपना-अपना जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि अपना-अपना उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यन्त दोय-दोय स्थाननि की च्यारि-च्यारि विदी लिखनी । वहुरि असैं ही प्रतिष्ठित प्रत्येक का उत्कृष्ट अवगाहन स्थान तै आगै तिस ही पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान तै लगाइ उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यन्त तेरह स्थान हैं । तिनिकी छब्बीस विदी लिखनी । असैं इस एक ही पंक्ति विषै विदी लिखनी कही । तहां पर्याप्त सूक्ष्म निगोद का आदि स्थान सतरहवा है, तातै इनिके दोय स्थाननि की सोलहवां स्थान की दोय विदीनि का नीचा कौ छोडि सतरहवां अठारहवां स्थान की च्यारि विदी लिखनी । वहुरि सूक्ष्म पर्याप्त का आदि स्थान वीसवां है । तातै तिस ही पंक्ति विषै उगणीसवां स्थान की दोय विदी का नीचा कौ छोडि वीसवां, इकईसवां दोय स्थाननि की च्यारि विदी लिखनी । असैं ही वीचि-वीचि एक स्थान की दोय-दोय विदी का नीचा कौ छोडि-छोडि सूक्ष्म पर्याप्त तेज आदिक के दोय-दोय स्थाननि की च्यारि-च्यारि विदी लिखनी । वहुरि तिस ही पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक के पचासवा तै लगाइ स्थान है, तातै पचासवा स्थानक की विदीनि तै लगाइ तेरह स्थाननि की छब्बीस बिदी लिखनी, असे एक-एक पंक्ति विषै कहे । वहुरि तिस पंक्ति के नीचे-नीचै अठारमी, उगणीसमी, वीसमी, इकवीसमी पंक्ति विषै पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेंद्रिय जीवनि का अपना-अपना जघन्य अवगाहन स्थान तै लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त ग्यारह, आठ, आठ, दश स्थान हैं । तिनिकी क्रम तैं वाईस, सोलह, सोलह, वीस विदी लिखनि । तहा पर्याप्त वेंद्रिय के इक्यावन तै लगाइ स्थान हैं, तातै सतरहवी पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक की छब्बीस विदी लिखी थी, तिनिके नीचे आदि की पचासवा स्थान की दोय विदी का नीचा कौ छोडि आगै वाईस विदी लिखनी । वहुरि असैं ही नीचे-नीचे आदि की दोय-दोय विदी का नीचा कौ छोडि वावनवां, तरेपनवां, चौवनवा स्थानक की विदी तै लगाइ क्रम तै सोलह, सोलह, वीस विदी लिखनी । या प्रकार मत्स्यरचना विषै सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि सज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यन्त सर्व अवगाहन स्थाननि की प्रत्येक दोय-दोय गुण की विवक्षा करि तिन स्थानकनि की गणती के आश्रय असा हीनाधिक तै

रहित बिदीनि के स्थापन का अनुक्रम, सो अनादिनिधन ऋषि प्रणीत आगम विषै कह्या है। ऐसैं जीवसमासनि की अवगाहना कहि।

अब तिनके कुल की सख्या का जो विशेष, ताकौ गाथा च्यारि करि कहै है –

बावीस सत्त तिण्णि य, सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं।
णेया पुढविदगागणि, वाउक्कायाण परिसंखा ॥११३॥

द्वाविंशतिः सप्त त्रीणि, च सप्त च कुलकोटिशतसहस्राणि।
ज्ञेया पृथिवीदकाग्निवायुकायिकानां परिसंख्या ॥११३॥

टीका – पृथ्वी कायिकनि के कुल बाईस लाख कोडि है। अप् कायिकनि के कुल सात लाख कोडि है। तेज कायिकनि के कुल तीन लाख कोडि है। वायु कायिकनि के कुल सात लाख कोडि है; ऐसैं जानना।

कोडिसयसहस्साइं, सत्तट्ठणव य अट्ठवीसाइं।
बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियहरिदकायाणं॥११४॥

कोटिशतसहस्राणि, सप्ताष्ट नव च अष्टाविंशतिः।
द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियहरितकायानाम् ॥११४॥

टीका – बेद्रिय के कुल सात लाख कोडि है। त्रीद्रियनि के कुल आठ लाख कोडि है। चतुरिद्रियनि के कुल नव लाख कोडि है। वनस्पति कायिकनि के कुल अठाईस लाख कोडि है।

अद्धत्तेरस बारस, दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं।
जलचर-पक्खि-चउप्पय-उरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

अर्धत्रयोदश द्वादश, दशकं कुलकोटिशतसहस्राणि।
जलचरपक्षिचतुष्पदोरुपरिसर्पेषु नव भवंति ॥११५॥

टीका – पंचेद्रिय विषै जलचरनि के कुल साडा बारा लाख कोडि हैं। पक्षीनि के कुल बारा लाख कोडि है। चौपदनि के कुल दश लाख कोडि है। उरसर्प जे सरीसृप आदि, तिनिके कुल नव लाख कोडि है।

छप्पंचाधियवीसं, बारसकुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुर-णेरइय-णराणं, जहाकमं होंति णेयाणि ॥११६॥

षट्पंचाधिकविंशतिः, द्वादश कुलकोटिशतसहस्राणि ।
सुरनैरयिकनराणां, यथाक्रम भवति ज्ञेयानि ॥११६॥

टीका – देवनि के कुल छब्बीस लाख कोडि है । नारकीनि के कुल पचीस लाख कोडि है । मनुष्यनि के कुल बारह लाख कोडि है । ए सर्व कुल यथाक्रम करि कहे, ते भव्य जीवनि करि जानने योग्य है ।

आगै सर्व जीवसमासनि के कुलनि के जोड कौ निर्देश करै है –

एया य कोडिकोडी, सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा, सव्वंगीणं कुलाणं य ॥११७॥

एका च कोटिकोटी, सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि ।
पचाशत्कोटिसहस्राणि सर्वांगिनां कुलानां च ॥११७॥

टीका – असै कहे जे पृथ्वीकायिकादि मनुष्य पर्यन्त सर्व प्राणी, तिनके कुलनि का जोड एक कोडा-कोडि अर सत्याणवै लाख पचास हजार कोडि प्रमाण (१९७५०००००००००००) है ।

इहा कोऊ कहै कि कुल अर जाति विषै भेद कहा ?

ताका समाधन – जाति है सो तो योनि है, तहा उपजने के स्थानरूप पुद्गल स्कंध के भेदनि का ग्रहण करना । बहुरि कुल है सो जिनि पुद्गलनि करि शरीर निपजै, तिनके भेदरूप हैं । जैसे शरीररूप पुद्गल आकारादि भेद करि पचेंद्रिय तिर्यंच विषै हाथी, घोडा इत्यादि भेद है, असै यथासभव जानने ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा इस भाषाटीका विषै जीवकाड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा, तिनि विषै जीवसमास प्ररूपणा है नाम जाका, असा दूसरा अधिकार सपूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार : पर्याप्ति प्ररूपणा

संभव स्वामि नमौ सदा, घातिकर्म विनसाय ।
पाय चतुष्टय जो भयो, तीजो श्रीजिनराय ।।

अब इहां जहां-तहां अलौकिक गणित का प्रयोजन पाइए, तातै अलौकिक गणित कहिए है संदृष्टि इनिकी आगै संदृष्टि अधिकार विषै जानना ।

मान दोय प्रकार है, एक लौकिक एक अलौकिक । तहां लौकिक मान छह प्रकार – मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान एवं छह प्रकार जानना । तहां पाइ माणी इत्यादिक मान जानना । ताखडी का तौल उन्मान जानना । चल इत्यादिक का प्रमाण (परिमाण) अवमान जानना । एक-दोय कौ आदि देकरि गणितमान जानना । चरिम तोला, मासा, इत्यादिक प्रतिमान जानना । घोडा का मोल इत्यादि तत्प्रतिमान जानना ।

बहुरि अलौकिक मान के च्यारि भेद है – द्रव्य मान, क्षेत्र मान, काल मान, भाव मान । तहा द्रव्य मान विषै जघन्य एक परमाणु अर उत्कृष्ट सब पदार्थनि का परिमाण । क्षेत्र मान विषै जघन्य एक प्रदेश अर उत्कृष्ट सब आकाश । काल मान विषै जघन्य एक समय अर उत्कृष्ट तीन काल का समय समूह । भाव मान विषै जघन्य सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक का लब्धि अक्षर ज्ञान अर उत्कृष्ट केवलज्ञान ।

बहुरि द्रव्य मान के दोय भेद – एक सख्या मान एक उपमा मान । तहा सख्या मान के तीन भेद – सख्यात, असख्यात, अनत । तहा संख्यात जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तै तीन प्रकार है । बहुरि असख्यात है, सो परीतासख्यात, युक्तासख्यात, असख्याता-सख्यात इनि तीनों के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि नव प्रकार है । बहुरि अनत है, सो परीतानत, युक्तानंत, अनंतानंत इनि तीनो के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि नव प्रकार है – ऐसं सख्यामान के इकईस भेद भए । तिनि विषै जघन्य सख्यात दोय सख्यामात्र है । इहां एक का गुणकार भागहार कीए किछू वृद्धि-हानि होइ नाही, तातै दोय के ही भेद का ग्राहकपना है, एक के नाही है । बहुरि तीनि आदिकनि के मध्यम संख्यात का भेदपना है, तातै दोय ही को जघन्य संख्यात

कहिये । वहुरि तीनि कौ आदि देकरि एक घाटि उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यात जानना ।

सो जघन्य (परीतासंख्यात) कितना है ?

ताके जानने निमित्त उपाय कहै है । अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका ए नाम धारक च्यारि कुंड करने । तिनिका प्रत्येक प्रमाण जबूद्वीप समान

लाख योजन चौडा अर एक हजार योजन ऊंढा जानना । तिनि विषै अनवस्था कुंड कौ सिघाउ गोल सरसौ करि भरना । केते सरसौनि करि भरै, सो कहिए है – एक, नव, सात, नव, एक, दोय, विंदी, नव, दोय, नव, नव, नव, छह, आठ इतने तो अंक अनुक्रम तै लिखने, तिनके आगै इकतीस बिंदी और लिखनी, इतने प्रमाण सरिसौ तौ उस कुंड के माही मावै । (१९७९१२०९२९९९६८००००००००००००००००० ००००००००००००००) वहुरि उस कुंड के ऊपरि आकाश विषै राशि करिए, सो सिघाउ भरना कहिए, सो ऊपरि कितने सरसौ का ढेर होइ, सो कहिए है । एक सात, नव, नव, दोय विंदी, बिंदी, आठ, च्यारि, पाच, च्यारि, पांच, एक, छह इतने तौ अनुक्रम तै लिखने अर इनिके आगै सोलह बार छत्तीस-छत्तीस लिखने । (१७ ९९२००८४५४५१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६) इतनी सरसौं, वहुरि च्यारि सरसौ का ग्यारहवा भाग ($\frac{४}{११}$) इतनी सरसौं का ऊपरि ढेर होइ । इनिका फलावना गोल घनरूप क्षेत्रफल के करण सूत्रनि करि वा अन्य राशि के करण सूत्रनि करि होइ है, सो त्रिलोकसारादिक सौ जानना । इनि दोऊ राशि कौ जोड दीजिए, तव एक हजार नव सै सत्ताणवै कोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि ग्यारा लाख गुणतीस हजार तीन सै चौरासी कोडाकोडि कोडाकोडिकोडि इक्यावन लाख इकतीस हजार छ सै छत्तीस कोडाकोडि कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सै त्रेसठि कोडाकोडि कोडि तरेसठि लाख तरेसठि हजार छ सै छत्तीस कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सै तरेसठि कोडि

तरेसठि लाख तरेसठि हजार छ सै छत्तीस सरसौ अर च्यारि सरसौ का ग्यारहवां भाग (१६१७, ११२६३८४, ५१३१६३६, ३६३६३६३, ६३६३६३६, ३६ ३६ ३६३ ६३ ६३ ६३६ । $\frac{४}{११}$) इतनी सरसौ करि अनवस्था कुंड सिघाऊ भरचा । सो भरि करि अन्य एक सरसौ कौ शलाका कुड में नाखि, तिस अनवस्था कुड की सर्व सरसौनि कौ मनुष्य है, सो बुद्धि करि अथवा देव है, सो हस्तादि करि ग्रहण करि जबूंद्वीपादिक द्वीप-समुद्रनि विषै अनुक्रम तै एक द्वीप विषै एक समुद्र विषै गेरता गया, वे सरिस्यो जहा द्वीप विषैं वा समुद्र विषैं पूर्ण होइ, तहां तिस द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण चौडा अर ऊंडा पूर्वोक्त हजार ही योजन अैसा दूसरा अनवस्था कुड तहां ही करना ।

सूची कहा कहिए ?

विवक्षित के सन्मुख अंत के दोऊ तटनि के बीचि जेता चौडाई का परिणाम होइ, सोई सूची जाननी । जैसै लवण समुद्र की सूची पांच लाख जोजन है । जिस द्वीप की वा समुद्र की सूची कहिए, तिस तै पहिले द्वीप वा समुद्र ते वाकी सूची के मध्य आाय गये । अैसा वहां कीया हुवा अनवस्था कुड कौ सरसोनि करि सिघाऊ भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौ उस ही शलाका कुंड विषै गेरणी । अर इस दूसरे अनवस्था कुंड की सरिसोनि कौ लेइ, तहा तै आगै एक द्वीप विषै, एक समुद्र विषै गेरते जाइए, तेऊ जहा द्वीप वा समुद्र विषै पूर्ण होइ तिस सहित पूर्व के द्वीप समुद्र तिनि का व्यासरूप जो सूची, तीहि प्रमाण चौडा अर ऊंडा पूर्वोक्त हजार जोजन अैसा तीसरा अनवस्था कुंड सिघाऊ सरिसोनि करि भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौ उस ही शलाका कुड मे गेरि, इस तीसरे अनवस्था कुड की सरिसौ लेइ, तहा तै आगै एक द्वीप विषै एक समुद्र विषै गेरणी । वह जहा पूर्ण होइ, तहा तिस की सूची प्रमाण चौथा अनवस्था कुड करना, ताकौ सरिसो करि सिघाऊ भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौ शलाका कुड विषै गेरिए, इनि सरसो को तहां तै आगै एक द्वीप विषै एक समुद्र विषै गेरणी, अैसै ही व्यास करि वधता-वधता अनवस्था कुड करि एक-एक सरिसौ शलाका कुड विषै गेरतै जहा शलाका कुड भरि जाइ, तव एक सरिसौ प्रतिशलाका कुड विषै गेरिए । अैसै एक नव आदि अंक प्रमाण जितनी सरिसो पहिला अनवस्था कुड विषै माई थी, तितने प्रमाण अनवस्था कुंड भए शलाका कुड एक वार सिघाऊ भरचा गया । वहुरि इस शलाका कुंड कौं रीता

कीया अर पिछला अनवस्था कुड की सरिसौ तहां तै आगै एक द्वीप विषै एक समुद्र विषै गेरता जहां पूर्ण भई, तहां फेरि उसकी सूची प्रमाण चौडा अनवस्था कुंड करि एक सरिसौ जो रीता कीया था शलाका कुंड, तिस विषै गेरी । असै ही पूर्ववत् व्यास करि वधता-वधता तितना ही अनवस्था कुंड कीजिए, तव दूसरी बार शलाका कुंड पूर्ण होइ । तव प्रतिशलाका कुंड विषै एक सरिसौ और गेरणी । पीछै फेरी शलाका कुड रीता करि तैसै ही भरणा । जव भरे, तव एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंड विषै और गेरणी । असै ही जव एक, नव आदिक प्रमाण कौ एक नवादिक अंकनि तै गुणै जो परिणाम होइ, तितने अनवस्था कुंड जव होंइ, तव प्रतिशलाका कुड संपूर्ण भरै; तव ही एक सरिसौ महाशलाका कुंड विषै गेरणी । वहुरि वे शलाका कुड वा प्रतिशलाका कुड दोऊ रीते करणे । वहुरि पूर्वोक्त रीति करि एक-एक अनवस्था कुड करि एक-एक सरिसौं शलाका कुड विषै गेरणी । जव शलाका कुड भरे, तव एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंड विषैं गेरणी । असै करते-करते प्रतिशलाका कुड फेरी संपूर्ण भरै, तव दूसरी सरिसौ महाशलाका कुंड विषै फेरी गेरणी । वहुरि वैसै ही शलाका प्रतिशलाका कुंड रीता करि उस ही रीति सौ प्रतिशलाका कुंड भरे, तव सपूर्ण तीसरी सरिसौ महाशलाका कुंड विषै गेरणी । असै करते-करते एक नव नै आदि देकरि जे अंकनि का घन कीये जो परिणाम होइ, तितने अनवस्था कुड जव होइ, तव महाशलाका कुड भी सपूर्ण भरे, तव प्रतिशलाका का शलाका, अनवस्था कुड भी भरै । इहा जे एक नव नै आदि देकरि अकनि का घन प्रमाण अनवस्था कुंड कहे, ते सर्व ऊडे तौ हजार योजन ही जानने । वहुरि इनिका व्यास, अपना द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण वधता-वधता जानना । सो लक्ष योजन का जेथवा द्वीप वा समुद्र होइ, तितनी वार दूणा कीये तिस द्वीप वा समुद्र का व्यास आवै है । वहुरि व्यास कौं चौगुणा करि तामैं तीन लाख योजन घटायें सूची का प्रमाण आवै है । तातै तहां प्रथम अनवस्था कुड का व्यास का प्रमाण लाख योजन है । वहुरि पहला कुड मे जितनी सरिसों माई थी, तितनी ही वार लक्ष योजन का दूणा-दूणा कीयें जहा द्वीप वा समुद्र विषै वे सरिसौ पूर्ण भई थी, तिस द्वीप वा समुद्र के व्यास का परिमाण आवै है । वहुरि व्यास का परिमाण कौं चौगुणा करि तीहि मे तीन लाख योजन घटाइए, तव तिस ही द्वीप वा समुद्र का सूची परिमाण आवै । जो सूची परिमाण आवै, सो ही दूसरा कुड का व्यास परिमाण जानना । वहुरि पहिला वा दूसरा कुड विषै जितनी सरिसौं माई, तितनी वार लक्ष योजन कौ दूणा-दूणा करि

जो परिमाण आवै, ताकौ चौगुणा करि तीन लाख योजन घटाइए, तब तीसरा अनवस्था कुड का व्यास परिमाण आवै है । बहुरि पहिला वा दूसरा वा तीसरा अनवस्था कुंड विषै जेती सरिसों माई होइ, तेती बार लक्ष योजन कौ दूणा-दूणा करि जो परिमाण आवै, ताकौ चौगुणा करि तीन लाख योजन घटाएं, चौथे अनवस्था कुड का व्यास परिमाण आवै, ऐसै बधता-बधता व्यास परिमाण अंत का अनवस्था कुड पर्यन्त जानना । तहां जो अंत का अनवस्था कुड भया, तीहि विषैं जेती सरिसों का परिमाण होइ, तितना जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण जानना । इहां शलाका कुड विषै एक सरिसों गेरै जो एक अनवस्था कुंड होइ, तो शलाका कुंड विषै एक, नव आदि अक प्रमाण सरिसों गेरै केते अनवस्था कुंड होइ ? ऐसें त्रैराशिक करिये, तब प्रमाण राशि एक, फल राशि एक, इच्छा राशि एक नवादि अंक प्रमाण । तहां फल राशि करि इच्छा कौ गुणि प्रमाण का भाग दीए लब्ध राशि एक नवादि अंक प्रमाण हो है । बहुरि प्रतिशलाका कुड विषै एक सरिसौ गेरै एक नवादि अंक प्रमाण अनवस्था कुड होइ, तो प्रतिशलाका कुड विषै एक नवादि अंक प्रमाण सरिसों गेरै केते होइ ? ऐसे त्रैराशिक कीए प्रमाण १ फल १६=इच्छा १६== लब्धराशि एक नवादि अंकनि का वर्ग प्रमाण हो है । बहुरि महाशलाका कुंड विषैं एक सरिसो गेरै, अनवस्था कुड एक नवादि (अंकनि) का वर्ग प्रमाण होइ, तो महा-शलाका कुड विषै एक नवादि अंक प्रमाण सरिसौ गेरै केते अनवस्था कुंड होइ ? ऐसें त्रैराशिक कीए, प्रमाण १, फल १६= वर्ग इच्छा १६= लब्धराशि एक नवादि अकनि का घन प्रमाण हो है । सो इतना अनवस्था कुड होइ है, ऐसा अनवस्था कुंडनि का प्रमाण जानना । बहुरि जघन्य परीतासंख्यात के ऊपरि एक-एक बधता क्रम करि एक घाटि उत्कृष्ट परीतासख्यात पर्यन्त मध्य परीतासंख्यात के भेद जानने । बहुरि एक घाटि जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट परीतासंख्यात जानना ।

अब जघन्य युक्तासख्यात का परिमाण कहिए है – जघन्य परीतासंख्यात का विरलन कीजिए । विरलन कहा ? जेता वाका परिमाण होइ, तितना ही एक-एक करि जुदा-जुदा स्थापन कीजिये । बहुरि एक-एक की जायगा एक-एक परीतासंख्यात माडिए, पीछै सबनि कौ परस्पर गुणिए, पहिला जघन्य परीतासंख्यात कौ दूसरा जघन्य परीतासंख्यात करि गुणिए, जो परिमाण आवै, ताहि तीसरा जघन्य परीता-संख्यात करि गुणिये । बहुरि जो परिमाण आवै, तीनै चौथा करि गुणिए, ऐसै अंत

ताई परस्पर गुणे जो परिमाण आवै, सो परिमाण जघन्य युक्तासंख्यात का जानना। याही कौ अंक सदृष्टि करि दिखाइए है –

जघन्य परीतासंख्यात का परिमाण च्यारि (४) याका विरलन कीया १, १, १, १। बहुरि एक-एक के स्थानक, सोहि दीया
४ ४ ४ ४
१ १ १ १ परस्पर गुणन कीया, तब दोय सै छप्पन भया। ऐसे ही जानना। सो इस ही जघन्य युक्तासंख्यात का नाम आवली है, जातै एक आवली के समय जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण है। बहुरि याके ऊपरि एक-एक वधता एक घाटि उत्कृष्ट युक्तासंख्यात पर्यन्त मध्यम युक्तासंख्यात के भेद जानने। बहुरि एक घाटि जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट युक्तासंख्यात जानना।

अब जघन्य असंख्यातासंख्यात कहिए है – जघन्य युक्तासंख्यात कौं जघन्य युक्तासंख्यात करि एक बार परस्पर गुणे, जो परिमाण आवै, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानना। याके ऊपरि एक-एक वधता एक घाटि उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात पर्यन्त मध्यम असंख्यातासंख्यात जानने। एक घाटि जघन्य परीतानंत प्रमाण उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात जानना।

अब जघन्य परीतानंत कहिए है – जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण तीन राशि करना – एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देय राशि। तहां विरलन राशि का तौ विरलन करना, बखेरि करि जुदा-जुदा एक-एक रूप करना, अर एक-एक के ऊपरि एक-एक देय राशि धरना।

भावार्थ – यहु जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण स्थानकनि विषै जघन्य असंख्यातासंख्यात जुदे-जुदे मांडने। बहुरि तिनिकौ परस्पर गुणिए, ऐसें करि उस शलाका राशि मैं स्यों एक घटाइ देना। बहुरि ऐसे कीए जो परिमाण आया, तितने परिमाण दोय राशि करना, एक विरलन राशि, एक देय राशि। तहा विरलन राशि का विरलन करि एक-एक ऊपरि एक-एक देय राशि कौं स्थापन करि, परस्पर गुणिए। ऐसे करि उस शलाका राशि मैं स्यो एक और घटाइ देना। बहुरि ऐसे कीए जो परिमाण आया, तितने प्रमाण विरलन-देय स्थापि, विरलन राशि का विरलन करि एक-एक प्रति देय राशि कौ देइ परस्पर गुणिये, तब शलाका राशिसुं एक और घटाइ देना, ऐसे करते-करते जब यहु पहिली बार किया शलाका राशि सर्व संपूर्ण होइ, तब तहा जो किछू परिमाण हुवा, सो यहु महाराशि असंख्यातासंख्यात का मध्य

भेद है, सो तितने-तितने परिमाण तीन राशि बहुरि करना – एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देय राशि। तहां विरलन राशि का विरलन करि एक-एक के स्थान के देय राशि का स्थापन करि परस्पर गुणीये, तब शलाका राशि में सू एक काढि लेना बहुरि जो परिमाण आया, ताका विरलन करि एक-एक प्रति तिस ही परिमाण को स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब एक और शलाका राशि में सूं काढि लेना। असैं करते-करते जब दूसरी बार भी किया हुआ शलाका राशि संपूर्ण होइ, तब असै करता जो परिमाण मध्यम असंख्यातासंख्यात का भेदरूप आया, तिस परिमाण तीन राशि स्थापन करनी – शलाका, विरलन, देय। तहां विरलन राशि कौ बखेरि एक-एक स्थानक विषै देय राशि कौ स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब तीसरी शलाका राशि में सौ एक काढि लेना। बहुरि असैं करतै जो परिमाण आया था, तिस परिमाण राशि का विरलन करि एक-एक स्थानक विषै तिस परिमाण ही का स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब शलाका राशि में स्यो एक और काढि लेना। असैं करते-करते जब तीसरी बार भी शलाका राशि संपूर्ण भया, तब शलाका त्रय निष्ठापन हुवा कहिये। आगै भी जहां शलाका त्रय निष्ठापन कहियेगा, तहां असा ही विधान जानना। विशेष इतना जो शलाका, विरलन, देय का परिमाण वहां जैसा होइ, तैसा जानना। अब असैं करते जो मध्यम असंख्यातासंख्यात का भेदरूप राशि उपज्या, तीहि विषै ये छह राशि मिलावना। लोक प्रमाण धर्म द्रव्य के प्रदेश, लोक प्रमाण अधर्म द्रव्य के प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाण लोकाकाश के प्रदेश, तातै असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवनि का परिमाण, तातै असंख्यात लोकगुणा तो भी सामान्यपनै असंख्यातलोक प्रमाण सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवनि का परिमाण – ये छहों राशि पूर्वोक्त प्रमाण विषै जोडने। जोडै जो परिमाण होइ, तीहि परिमाण शलाका, विरलन देय राशि करनी। पीछे अनुक्रम तै पूर्वोक्त प्रकार करि शलाका त्रय निष्ठापन करना असैं करतै जो कोई महाराशि मध्य असख्यातासंख्यात का भेदरूप भया, तीहि विषै च्यारि राशि और मिलावने। बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी दोय कालरूप कल्पकाल के संख्यात पल्यमात्र समय; बहुरि असख्यात लोकमात्र अनुभाग बंध कौ कारणभूत जे परिणाम, तिनिके स्थान; बहुरि इनि तै असंख्यात लोकगुणै तो भी असंख्यात लोकमात्र अनुभाग बध कौं कारणभूत जे परिणाम, तिनिके स्थान; बहुरि इनितै असंख्यात लोकगुणै तो भी असंख्यात लोकमात्र मन,

वचन, काय योगनि के अविभाग प्रतिच्छेद; ऐसै ये च्यारि राशि पूर्वोक्त परिमाण विषै मिलावने। मिलायें जो परिमाण होइ, तीहि महाराशि प्रमाण शलाका, विरलन, देय राशि करि अनुक्रम तै पूर्वोक्त प्रकार शलाका त्रय निष्ठापन करना। ऐसें करतै जो परिमाण होइ, सो जघन्य परीतानंत है। बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट परीतानंत पर्यन्त मध्यम परीतानत जानना। बहुरि एक घाटि जघन्य युक्तानंत परिमाण उत्कृष्ट परीतानंत जानना।

अब जघन्य युक्तानंत कहिये है – जघन्य परीतानंत का विरलन करि-करि बखेरि एक-एक स्थान विषै एक-एक जघन्य परीतानंत का स्थापन करि परस्पर गुणे जो परिमाण आवै, सो जघन्य युक्तानंत जानना। सो यहु अभव्य राशि समान है। अभव्य जीव राशि जघन्य युक्तानंत परिमाण है। बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट युक्तानंत पर्यन्त मध्यम युक्तानंत के भेद जानना। बहुरि एक घाटि जघन्य अनंतानन्त परिमाण उत्कृष्ट युक्तानन्त जानना।

अब जघन्य अनंतानंत कहिये है – जघन्य युक्तानंत कौं जघन्य युक्तानंत करि एक ही बार गुणें जघन्य अनंतानंत होइ है। बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनंतानंत पर्यन्त मध्यम अनंतानत जानने। सो याके भेदनि कौं जानता संता ऐसै विधान करै – जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका, विरलन, देयरूप तीन राशि करि अनुक्रम तै शलाका त्रय निष्ठापन पूर्वोक्त प्रकार करि करना। ऐसें करतै जो मध्यम अनंतानंत भेदरूप परिमाण होइ, तीहिं विषै ए छह राशि और मिलावना। जीव राशि के अनंतवे भाग सिद्ध राशि, बहुरि तातै अनंतगुणा ऐसा पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, त्रस राशि रहित संसारी जीव राशि मात्र निगोद राशि, बहुरि प्रत्येक वनस्पति सहित निगोद राशि प्रमाण वनस्पति राशि, बहुरि जीव राशि तें अनंतगुणा पुद्गल राशि, बहुरि यातै अनन्तानन्त गुणा व्यवहार काल के समयनि की राशि, बहुरि यातै अनंतानन्त गुणा अलोकाकाश के प्रदेशनि की राशि – ऐसें छहो राशि के परिमाण पूर्व परिमाण विषै मिलावने। बहुरि मिलाए जो परिमाण होइ, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय करि क्रम तै पूर्ववत् शलाका त्रय निष्ठापन कीयें जो कोई मध्यम अनंतानंत का भेदरूप परिमाण पावै, तीहि विषैं धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य के अगुरुलघु गुण का अविभाग प्रतिच्छेदनि का परिमाण अनंतानंत है, सो जोडिए। यौं करतैं जो महा

परिमाण होइ, तींहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय करि क्रम तै पूर्वोक्त विधि करि शलाका त्रय निष्ठापन कीये जो कोई मध्यम अनतानत का भेदरूप महा परिमाण होइ, तिस परिमाण कौ केवलज्ञान शक्ति का अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप परिमाण विषै घटाइ, पीछे ज्यूं का त्यूं मिलाइये, तब केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होइ है ।

इहां प्रश्न – जो पूर्वोक्त परिमाण कौ पहिलै केवलज्ञान में सौ काढि, पीछै फेरि मिलाया सो कौन कारण ?

ताका समाधान - केवलज्ञान का परिमाण असा नाही जो पूर्वोक्त परिमाण के गुणनादि क्रम करि जाण्या जाय । अर उस परिमाण कौ केवलज्ञान मे मिलाइये तौ केवलज्ञान तै अधिक प्रमाण होइ, सो है नाही । बहुरि किछू न कहिए तौ गणित विषै संबंध टूटे, तातै पूर्वोक्त परिमाण कौ पहिलै केवलज्ञान में सौ घटाइ, पीछै मिलाइ, केवलज्ञान मात्र उत्कृष्ट अनंतानत कह्या है । असै ये इकईस भेद संख्यामान के कहे ।

अब संख्या के विशेषरूप जे चौदह धारा, तिनिका कथन कीजिए है – १. सर्व धारा, २. समधारा, ३. विषमधारा, ४. कृतिधारा, ५ अकृति धारा, ६. घनधारा, ७ अघनधारा, ८ कृति मात्रिकधारा, ९. अकृति मात्रिकधारा, १० घन मातृकधारा ११. अघन मातृकधारा, १२ द्विरूप वर्गधारा, १३. द्विरूपघनधारा, १४. द्विरूपघनाघनधारा – असै ये चौदह धारा जाननी ।

तहा कहे जे सर्व संख्यातादि भेद, ते एक आदि तै होंहि असे जे सर्व संख्यात विशेषरूप सो सर्वधारा है ।

अवशेष तेरह धारा याही विषै उत्पन्न जाननी । या धारा का प्रथम स्थान एक प्रमाण, दूसरा स्थान दोय प्रमाण, तीसरा स्थान तीन प्रमाण – असै एक-एक बधता केवलज्ञान पर्यन्त जानने । केवलज्ञान शब्द करि उत्कृष्ट अनतानत जानने । इस धारा विषै सर्व ही संख्या के विशेष आये, तातै याके सर्वस्थान केवलज्ञान परिमाण जानने ।

बहुरि जिस विषै समरूप संख्या के विशेष पाइये, सो समधारा है । याका आदि स्थान दोय, दूसरा स्थान च्यारि, तीसरा स्थान छह, असै दोय-दोय बधता

केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञान का आधा परिणाम है। सर्व-धारा विषै सर्वसख्यात के विशेष थे, तिनिमें आधे तौ समरूप हैं, आधे विषमरूप हैं; तातै याके स्थान केवलज्ञान का आधे प्रमाण कहे।

बहुरि जिस विषै विषमरूप संख्या विशेष पाइये, सो विषमधारा है। याका आदि स्थान एक, दूसरा स्थान तीन, तीसरा स्थान पाच, ऐसै दोय-दोय बधता एक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान आधा केवलज्ञान प्रमाण हैं।

बहुरि जिस विषै वर्गरूप सख्या विशेष पाइये, सो कृतिधारा है। याका प्रथम स्थान एक, जातै एक का वर्ग एक ही है। बहुरि दूसरा स्थान च्यारि, जातै दोय का वर्ग च्यारि हो है। बहुरि तीसरा स्थान नव, जातै तीनि का वर्ग नव है। बहुरि चौथा स्थान सोलह, जातै च्यारि का वर्ग सोलह है। ऐसै ही पंचादिक के वर्ग पचीस नै आदि देकरि याके स्थान केवलज्ञान पर्यत जानने। याके सर्वस्थान केवल-ज्ञान का वर्गमूल परिमाण जानने। जिस परिमाण का वर्ग कीये केवलज्ञान का परिमाण होइ, इतने याके स्थान है।

बहुरि जिस विषै वर्गरूप संख्या विशेप न पाइये, सो अकृतिधारा है। सर्व धारा के स्थानकनि में स्यों कृतिधारा के स्थान दूरि कीए अवशेष सर्वस्थान इस धारा के जानने। याका पहिला स्थानक दोय, दूसरा तीन, तीसरा पांच, चौथा छह, (पाचवां सात, छठा आठ) इत्यादि एक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्व-स्थान केवलज्ञान का वर्गमूल करि हीन केवलज्ञान परिमाण जानने।

बहुरि जिस विषै घनरूप संख्या विशेष पाइये, सो घनधारा है। याका पहिला स्थान एक, जातै एक का घन एक ही है। बहुरि दूसरा स्थान आठ, जातै दोय का घन आठ हो है। बहुरि तीसरा स्थान सत्ताईस, जातै तीन का घन सत्ताईस हो है। चौथा स्थान चौसठि, जातै च्यारि का घन चौसठि हो है। ऐसै पंचादिक का घन सवासौ नै आदि देकरि याके स्थान केवलज्ञान के आसन्न घन पर्यत जानने।

केवलज्ञान का आसन्न घन कहा कहिये?

सो अंकसंदृष्टि करि दिखाइये है – केवलज्ञान का परिमाण पैसठि हजार पाच सै छत्तीस (६५५३६)। याका आधा कीजिए, तब घनधारा का स्थान होइ (३२७६८)। याका घनमूल बत्तीस (३२)। बहुरि याके ऊपरि तेतीस नै आदि

देकरि चालीस पर्यंत घनमूल के स्थान है, जातें चालीस का घन कीए चौसठि हजार होइ, सो आसन्न घन जानना । जातैं इकतालीस का घन कीजिए, तौ अड़सठि हजार नव सै इकवीस होइ, सो केवलज्ञान के परिमाण सौ बधता होइ, सो संभवै नाहीं । तातैं केवलज्ञान के नीचैं जो परिमाण घनरूप होइ, ताको केवलज्ञान का आसन्न घन कहिए । इस आसन्न घन का जो घनमूल, ताका जो परिमाण, तितने इस धारा के स्थान जानने ।

कोउ कहै कि केवलज्ञान के अर्धपरिमाण कौ घनस्थान तुम कैसैं जान्या ?

ताका समाधान – द्विरूप वर्गधारा के जे स्थान कहैगे, तिनि विषै पहिला, तीसरा, पांचवा नैं आदि देकरि जे विषम स्थान है, तिनिका तौ चौथा भाग परिमाण घनधारा का स्थान जानना । जैसें द्विरूप वर्गधारा का पहिला स्थान च्यारि, ताका चौथा भाग एक, सो घनधारा का स्थान है । बहुरि तीसरा स्थान दोय सै छप्पन, ताका चौथा भाग चौसठि, सो घनधारा का स्थान है, असा सर्वत्र जानना । बहुरि जे दूसरा, चौथा, छठा नैं आदि देकरि समस्थान है, तिनिका आधा प्रमाण घनस्थान जानना । जैसैं दूसरा स्थान सोलह, ताका आधा आठ, सौ घनधारा का स्थान है । चौथा स्थान पैसठि हजार पांच सै छत्तीस, ताका आधा बत्तीस हजार सात सै अड-सठि, सो भी घनस्थान है । यातैं यहु केवलज्ञान भी द्विरूप वर्गधारा के समस्थान विषै है, तातैं याका आधा परिमाण कौ घनस्थान कह्या ।

बहुरि प्रश्न – जो केवलज्ञान कौ द्विरूप वर्गधारा के समस्थान विषै कैसैं जान्या ?

ताका समाधान – केवलज्ञान की वर्गशलाका का भी परिमाण द्विरूप वर्ग-धारा के ही विषै कह्या है अर द्विरूप वर्गधारा के जे स्थान है, तिनि विषै प्रमाण समरूप ही है, तातैं जानिए है । असैं घनधारा कही ।

बहुरि जिस विषै घनरूप सख्या विशेष न पाइए, सो अघनधारा है । सर्वधारा विषै जे स्थान है, तिनि विषै घनधारा के स्थान घटाए अवशेष सर्वस्थान इस धारा के जानने । याका प्रथम स्थान दोय, दूसरा स्थान तीन, इत्यादिक केवलज्ञान पर्यन्त जानना । याके सर्वस्थान घनधारा के स्थान का परिमाण करि हीन केवलज्ञान परिमाण जानने ।

वहुरि जिनिका वर्ग होइ अैसे सख्या विशेष जिस धारा विषै पाइए, सो कृति मातृकधारा है, सो एक नै आदि देकरि सर्व ही का वर्ग होइ है परतु याका अंतस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल ही जानना। केवलज्ञान के वर्गमूल तै एक भी अधिक का जो वर्ग करिए तौ केवलज्ञान तै अधिक का परिमाण होइ, तातै याके स्थान एक सो लगाइ एक-एक वधता केवलज्ञान के वर्गमूल पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल परिमाण जानने।

वहुरि जिनिका वर्ग न होइ अैसे संख्या जिस धारा विषै पाइए, सो अकृतिमातृक धारा है। सो एक अधिक केवलज्ञान का वर्गमूल कौ आदि देकरि एक-एक वधता केवलज्ञान पर्यंत जानना। इनका वर्ग न हो है। याके सर्वस्थान केवलज्ञान के वर्ग-मूल करि हीन केवलज्ञान मात्र जानने। अंकसदृष्टि करि केवलज्ञान का प्रमाण सोलह, ताका वर्गमूल च्यारि, सो च्यारि पर्यंत का तौ वर्ग होय अर पंचम तै आदि दै करि सोलह पर्यंत का वर्ग न होइ, जो कीजिये तो केवलज्ञान तै अधिक परिमाण होइ, सो है नाहीं।

वहुरि जिनिका घन होइ सकै अैसे संख्या विशेष जिस धारा विषै पाइये सो घन मातृकधारा है, सो एक नै आदि देकरि सर्व का घन होइ; परंतु याका अंत स्थान केवलज्ञान का जो आसन्न घन, ताका घनमूल परिमाण ही जानना। याके सर्व-स्थान केवलज्ञान के आसन्न घन का घनमूल समान जानने।

वहुरि जिनका घन न होइ सकै अैसे संख्या विशेष जिस धारा मे पाइये, सो अघन मातृकधारा है; सो केवलज्ञान का एक अधिक आसन्न घनमूल तै लगाइ एक-एक वधता केवलज्ञान पर्यत याके स्थान जानने। अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञान पैसठि-हजार पांच सै छत्तीस प्रमाण (६५५३६), याका आसन्न घन चौसठि हजार (६४०००) ताका घनमूल चालीस (४०), सो चालीस पर्यंत का घन होइ, इकतालीस तै लगाइ केवलज्ञान पर्यंत याका घन न होइ, जो कीजिये तौ केवलज्ञान तै अधिक परिमाण होइ, सो है नाहीं।

वहुरि द्विरूप का वर्ग सौं लगाइ पूर्व-पूर्व का वर्ग करतै जे संख्या विशेष होइ, ते जिस धारा विषै पाइये, सो द्विरूपवर्गधारा है। याका प्रथम स्थान दोय का वर्ग च्यारि, वहुरि च्यारि का वर्ग दूसरा सोलह, वहुरि याका वर्ग तीसरा स्थान छप्पन अधिक दोय सै (२५६)। वहुरि याका वर्ग चौथा स्थान पणट्टी, सो पैसठि हजार

पाच से छत्तीस (६५५३६) प्रमाण का नाम पणट्ठी कहिये है। बहुरि याका वर्ग पाचवा स्थान बादाल, सो बियालीस चौराणवै, छिनवै, बहत्तरि, छिनवै ये अंक लिखें जो प्रमाण होइ, ताकौ बादाल कहिये (४२ ९४ ९६ ७२ ९६)।

बहुरि याका वर्ग छठा स्थान एकट्टी, सो एक, आठ, च्यारि-च्यारि, छह, सात, च्यारि-च्यारि, बिंदी, सात, तीन, सात, बिंदी, नव, पांच, पांच, एक, छह, एक, छह इनि अंकनि करि जो प्रमाण होइ ताकूं एकट्टी कहिये है (१ ८ ४ ४ ६ ७ ४ ४ ० ७ ३ ७ ० ९ ५ ५ १ ६ १ ६)। बहुरि याका वर्ग सातवां स्थान असें ही पहला-पहला स्थाननि का वर्ग कीए एक-एक स्थान होइ। तहां सख्यात स्थान भए जघन्य परीतासख्यात की वर्गशलाका होइ।

सो वर्गशलाका कहा कहिए ?

दोय के वर्ग तै लगाइ जितनी बार वर्ग कीए विवक्षित राशि होइ, तितनी ही विवक्षित राशि की वर्गशलाका जाननी। तातै द्विरूप वर्गधारा आदि तीन धारानि विषै जितने स्थान भए जो राशि होइ, तीहि राशि की तितनी वर्गशलाका है। जैसै पणट्ठी की वर्ग शलाका च्यारि, बादाल की पाच, इत्यादि जाननी। बहुरि जघन्य परीता-सख्यात की वर्गशलाका स्थान तै लगाइ सख्यात स्थान भए, तब जघन्य परीता-सख्यात के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ।

सो अर्धच्छेद कहा कहिए ?

विवक्षित राशि का जेती बार आधा-आधा होइ, तितने तिस राशि के अर्धच्छेद जानने। जैसै सोलह कौ एक बार आधा कीये आठ होइ, दूसरा आधा कीये च्यारि होइ, तीसरा आधा कीये दोय होइ, चौथा आधा कीये एक होइ, असे च्यारि बार आधा भया, तातै सोलह का अर्धच्छेद च्यारि जानने। असें ही चौसठि के अर्धच्छेद छह होइ। असै सर्व के अर्धच्छेद जानने। बहुरि तिस जघन्य परीतासख्यात के अर्धच्छेदरूप स्थान तै संख्यात वर्ग स्थान गये जघन्य परीतासख्यात का वर्गमूल होइ, यातै एक स्थान गये इस वर्गमूल का वर्ग कीये जघन्य परीतासख्यात होइ। बहुरि यातै सख्यात स्थान गये जघन्य युक्तासख्यात होइ, सोई आवली का परिमाण है। इहा वर्गशलाकादिक न कहे, ताका कारण आगे कहियेगा। बहुरि यातै एक स्थान जाइये, याका एक बार वर्ग कीजिये, तब प्रतरावली होइ; जातै आवली के वर्ग ही कौ प्रतरावली कहिये है।

बहुरि इहांतै असंख्यात स्थान जाइ अद्धापल्य का वर्ग शलाका राशि होइ है। बहुरि यातै असख्यात स्थान जाइ, अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि होइ। बहुरि यातै असख्यात स्थान जाइ अद्धापल्य का वर्गमूल होइ। बहुरि यातै असंख्यात स्थान गये सूच्यंगुल होइ। बहुरि यातै एक स्थान गये प्रतरागुल होइ। बहुरि यातै असंख्यात स्थान गये जगत् श्रेणी का घनमूल होइ। बहुरि यातै असख्यात संख्यात स्थान गये क्रम तै जघन्य परीतानत का वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेद राशि अर वर्गमूल होइ। यातै एक स्थान गये जघन्य परीतानत होइ। बहुरि यातै असंख्यात स्थान गये जघन्य युक्तानंत होइ। बहुरि यातै एक स्थान गये जघन्य अनतानंत होइ। बहुरि यातै अनंतानन्त अनतानत स्थान गये क्रम तै जीव राशि का वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेद राशि अर वर्गमूल होइ। यातै एक स्थान गये जीव राशि होइ। बहुरि अब इहां तै आगै जे राशि कहिए है, तिनिका वर्गशलाका राशि, अर्धच्छेद राशि, वर्गमूल सबका असै कहि लेना। सो जीवराशि तै अनतानत वर्गस्थान गए पुद्गल परमाणुनि का परिमाण होइ। यातै अनतानत वर्गस्थान गए तीनि काल के समयनि का परिमाण होइ। यातै अनतानंत स्थान गये श्रेणीरूप आकाश के प्रदेशनि का परिमाण होइ, सो यहु लोक-अलोकरूप सब अकाश के लबाईरूप प्रदेशनि का परिमाण है। यामै चौडाई-ऊचाई न लीनी। बहुरि यातै एक स्थान गये प्रतराकाश के प्रदेशनि का परिमाण है, सो यहु लोक-अलोकरूप सर्व आकाश के प्रदेशनि का लंबाईरूप वा चौडाईरूप प्रदेशनि का परिमाण है, यामै ऊचाई न लीनी। ऊचाई सहित घनरूप सर्व आकाश के प्रदेशनि का प्रमाण द्विरूप घनधारा विषै है, इस धारा विषै नाही है। बहुरि यातै अनतानत स्थान जाइ धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के अगुरुलघु गुणनि का अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ। जिसका भाग न होइ असा कोई शक्ति का सूक्ष्म अश, ताका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है। बहुरि यातै अनंतानत वर्गस्थान गये एक जीव के अगुरुलघु गुण के षट्स्थान पतित वृद्धि-हानि रूप अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ है। बहुरि यातै अनंतानंत वर्गस्थान गये सूक्ष्म निगोदिया के जो लब्ध्यक्षर नामा जघन्य ज्ञान होइ है, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का परिमाण होइ। बहुरि यातै अनतानंत वर्गस्थान गए असयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंच के जो जघन्य सम्यक्त्व-रूप क्षायिक लब्धि हो है, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ। बहुरि यातै अनंतानत स्थान गए केवलज्ञान का वर्गशलाका राशि होइ। बहुरि यातै अनंतानंत वर्गस्थान गए केवलज्ञान का अर्धच्छेद राशि होइ। बहुरि यातै अनंतानत वर्गस्थान

गये केवलज्ञान का अष्टम वर्गमूल होइ । बहुरि यातै एक-एक स्थान गए क्रम तै केवलज्ञान का सप्तम, षष्ठम, पचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्गमूल होइ ।

जो विवक्षित राशि का वर्गमूल होइ, ताकौ प्रथम वर्गमूल कहिए । बहुरि उस प्रथम वर्गमूल का वर्गमूल कू द्वितीय वर्गमूल कहिए । बहुरि तिस द्वितीय वर्गमूल का भी वर्गमूल होइ, ताकौ तृतीय वर्गमूल कहिए । अैसै ही चतुर्थादिक वर्गमूल जानने । बहुरि उस प्रथम वर्गमूल तै एक स्थान जाइए, वाका वर्ग कीजिए, तब गुण-पर्याय सयुक्त जे त्रिलोक के मध्यवर्ती त्रिलोक सबधी जीवादिक पदार्थनि का समूह, ताका प्रकाशक जो केवलज्ञान सूर्य, ताकी प्रभा के प्रतिपक्षी कर्मनि के सर्वथा नाश तै प्रकट भए समस्त अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप सर्वोत्कृष्ट भाग प्रमाण उपजै है, सोई उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि है । इहां ही इस धारा का अत स्थान है । यह ही सर्वोत्कृष्ट परिमाण है । यातै कोऊ अधिक परिमाण नाही । अैसै यहु द्विरूप वर्ग-धारा कही । याके वर्गरूप सर्वस्थान केवलज्ञान की वर्गशलाका परिमाण जानने ।

अब इहा केतेइक नियम दिखाइए है – जो राशि विरलन देय क्रम करि निपजै, सो राशि जिस धारा विषै कही होइ, तिस धारा विषै ही तीहि राशि की वर्गशलाका वा अर्धच्छेद न होइ । जैसै विरलन राशि सोलह (१६), ताका विरलन करि एक-एक प्रति सोलहौ जायगा देय राशि जो सोलह सो स्थापि, परस्पर गुणन कीए एकट्ठी प्रमाण होइ, सो एकट्ठी प्रमाण राशि द्विरूप वर्गधारा विषै पाइये है । याके अर्धच्छेद चौसठि (६४), वर्गशलाका छह, सो इस धारा मे न पाइये, अैसै ही सूच्यगुल वा जगत्श्रेणी इत्यादिक का जानना । अैसा नियम इस द्विरूप वर्गधारा विषै अर द्विरूप घनधारा अर द्विरूप घनाघनधारा विषै जानना । तहातै सूच्यगुला-दिक द्विरूप वर्गधारा विषै अपनी-अपनी देय राशि के स्थान तै ऊपरि विरलन राशि के जेते अर्धच्छेद होइ, तितने वर्गस्थान गये उपजे है । तहा सूच्यगुल का विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण है, देय राशि पल्य प्रमाण है । बहुरि जगच्छ्रेणी की विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असख्यातवा भागमात्र जानना, देय राशि घनागुलमात्र जानना । तहा अपना-अपना विरलन राशि का विरलन करि एक-एक बखेरि तहा एक-एक प्रति देय राशि कौ देइ परस्पर गुणै जो-जो राशि उपजै है, सो आगै कथन करेंगे । बहुरि द्विरूप वर्गधारादिक तीनि धारानि विषै पहला-पहला वर्गस्थान तै ऊपरला-ऊपरला वर्गस्थान विषै अर्धच्छेद-अर्धच्छेद तौ दूणे-दूणे जानने अर वर्गशलाका एक-एक अधिक जाननी । जैसै दूसरा

वर्गस्थान सोलह, ताका अर्धच्छेद च्यारि अर तीसरा वर्गस्थान दोय सै छप्पन, ताका अर्धच्छेद आठ, अैसे ही दूणे-दूणे जानने । बहुरि वर्गशलाका सोलह की दोय, दोय सै छप्पन की तीन अैसे एक अधिक जाननी । बहुरि तीहि ऊपरला स्थानक के निकटवर्ती जेथवां ऊपरला स्थानक होइ, तेथवा अन्य धारा विषै स्थान होइ, तौ तहां तिस पहिले स्थान तै अर्धच्छेद तिगुणे होंड, जैसे द्विरूप वर्गधारा का द्वितीय स्थान सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, अर तातै ऊपरिला द्विरूप घनधारा का तीसरा स्थान च्यारि हजार छिनवै, ताके अर्धच्छेद बारह, अैसे सर्वत्र जानना । बहुरि वर्गशलाका दोऊ की समान जाननी, जैसे दोय सै छप्पन की भी तीन वर्गशलाका, च्यारि हजार छिनवै की भी तीन वर्गशलाका हो है । बहुरि राशि के जेते अर्धच्छेद होइ, तिनि अर्धच्छेदनि के जेते अर्धच्छेद होइ, तितनी राशि की वर्गशलाका जाननी । जैसे राशि का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, याहू के अर्धच्छेद दोय, राशि सोलह, ताकी वर्गशलाका दोय है, अैसे सर्वत्र जानना । बहुरि जेती वर्गशलाका होइ, तितनी जायगा दोय-दोय माडि परस्पर गुणिए, तब अर्धच्छेदनि का परिमाण आवै । जैसे सोलह की वर्गशलाका दोय, सो दोय जायगा दोय-दोय मांडि परस्पर गुणिए, तब च्यारि होइ, सो सोलह के च्यारि अर्धच्छेद है, सो यहु नियम द्विरूप वर्गधारा विषै ही है । बहुरि जेते अर्धच्छेद होइ, तितना दुवा माडि परस्पर गुणिए, तब राशि का परिमाण होइ । जैसे च्यारि अर्धच्छेद के च्यारि जायगा दुवा माडि परस्पर गुणिए, तब जो राशि सोलह, तीहिका परिमाण आवै ।

वर्गशलाका कहा ?

जेती बार वर्ग कीये राशि होइ, सो वर्गशलाका है । अथवा द्विरूप धारा विषै अर्धच्छेदनि का अर्धच्छेद प्रमाण वर्गशलाका हो है ।

बहुरि अर्धच्छेद कहा ?

राशि का जेता बार आधा-आधा होइ, सो अर्धच्छेद राशि है । इत्यादि यथा संभव जानना ।

बहुरि द्विरूप का घन कौ आदि देकरि पहला-पहला वर्ग करते संख्या विशेष जिस धारा विषै होइ, सो द्विरूप घनधारा है । सो दोय का घन आठ हो है, सो तो यहां पहिला स्थान । बहुरि याका वर्ग चौसठि, सो दूसरा स्थान । बहुरि याका वर्ग च्यारि हजार छिनवै, सो तीसरा स्थान, सो यहु सोलह का घन है । बहुरि

याका वर्ग दोय सै छप्पन का घन सो चौथा स्थान । बहुरि पणट्ठी का घन पांचवां स्थान । बादाल का घन छठा स्थान । अैसै पहला-पहला स्थानक का वर्ग कीए एक-एक स्थान होइ, सो अैसै सख्यात स्थान गए जघन्य परीतासंख्यात का घन होइ । यातै सख्यात स्थान गए आवली का घन होइ । यातै एक स्थान गए प्रतरावली का घन होइ । यातै असख्यात असंख्यात स्थान गए क्रम तै पल्य की वर्गशलाका का घन अर अर्धच्छेद का घन अर वर्गमूल का घन होइ । यातै एक स्थान गए पल्य का घन होइ । बहुरि यातै असंख्यात स्थान गए घनांगुल होइ । यातै असख्यात स्थान गए जगच्छे्रणी होइ । यातै एक स्थान गए जगत्प्रतर होइ । यातै अनंतानंत-अनंतानंत स्थान गए क्रम तै जीवराशि की वर्गशलाका का घन अर अर्धच्छेद का घन अर वर्ग-मूल का घन होइ । यातै एक स्थान गये जीवराशि का घन होइ । यातै अनतानत स्थान गए श्रेणीरूप सर्व आकाश की वर्गशलाका का घन होइ । तातै अनंतानत वर्ग स्थान जाइ, ताही का अर्धच्छेद का घन होइ । तातै अनतानंत वर्गस्थान जाइ, ताही का प्रथम मूल का घन होइ । तातै एक स्थान जाइ श्रेणी आकाश का घन होइ, सोई सर्व आकाश के प्रदेशनि का परिमाण है ।

बहुरि यातै अनंतानत स्थान गए केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल का घन होइ, सो याही कौ अत स्थान जानना । प्रथम वर्गमूल अर द्वितीय वर्गमूल कौ परस्पर गुणै जो परिमाण होइ, सोई द्वितीय वर्गमूल का घन जानना । जैसै सोलह का प्रथम वर्गमूल च्यारि, द्वितीय वर्गमूल दोय, याका परस्पर गुणन कीए आठ होइ, सोई द्वितीय वर्गमूल जो दोय, ताका घन भी आठ ही होइ, बहुरि द्वितीय वर्गमूल के अनंतरि वर्ग केवलज्ञान का प्रथम मूल, ताका घन कीए केवलज्ञान तै उलघन होइ, सो केवलज्ञान तै अधिक संख्या का अभाव है, तातै सोई अत स्थान कह्या । अैसे या धारा के सर्वस्थान दोय घाटि केवलज्ञान की वर्गशलाका मात्र जानने । द्विरूपवर्ग-धारा विषै जिस राशि का जहा वर्ग ग्रहण कीया, तहा तिसका घन इस धारा विषै जानना । बहुरि दोय रूप का घन का जो घन, ताकौ आदि देकरि पहला-पहला स्थान का वर्ग करते जो सख्या विशेष होइ, ते जिस धारा विषै पाइये, सो द्विरूप घनाघन-धारा है । सो दोय का घन आठ, ताका घन पांच सै बारा, सो याका आदि स्थान जानना । बहुरि याका वर्ग दोय लाख बासठि हजार एक सौ चवालीस (२६२१४४), सो याका दूसरा स्थान जानना । अैसै ही पहला-पहला स्थान का वर्ग करतै याके स्थान होंहि । अैसै असंख्यात वर्ग स्थान गये लोकाकाश के प्रदेशनि का परिमाण

होइ । बहुरि यातै असंख्यात वर्गस्थान गये अग्निकायिक जीवनि की गुणकार शलाका होहि । जेती बार गुणन कीये अग्निकायिक जीवनि का परिमाण होइ, तितनी गुणकार शलाका जाननी । सो याके परिमाण दिखावने के निमित्त कहिये – लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण जुदा-जुदा तीन राशि करना शलाका, विरलन, देय । तहां विरलन राशि कौं एक-एक स्थान विषै देय राशि कौं स्थापन करि परस्पर गुणन करना । असैं कीये संतै शलाका राशि मे स्यों एक काढि लेना । इहां जो राशि भया, ताकी गुणकार शलाका एक भई अर वर्ग शलाका पल्य के असंख्यातवे भागमात्र हुई, जातै विरलन राशि के अर्धच्छेद देय राशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेदनि विषै जोडै विवक्षित राशि की वर्गशलाका का प्रमाण होइ है । बहुरि अर्धच्छेद राशि असंख्यात लोक प्रमाण भया, जातै देय राशि के अर्धच्छेदनि करि विरलन राशि कौं गुणं विवक्षित राशि का अर्धच्छेदनि का प्रमाण हो है । बहुरि उत्पन्न भया राशि सो असंख्यात लोक प्रमाण हो है । बहुरि यौं करतै जो राशि भया, तीहि प्रमाण विरलन देय राशि करि विरलन राशि का विरलन करना, एक-एक प्रति देय राशि कौं देना, पीछै परस्पर गुणन करना, तब शलाका राशि में स्यों एक और काढि लेना । इहा गुणकार शलाका दोय भई, अर वर्गशलाका राशि अर अर्धच्छेद राशि अर यो करतां जो राशि उत्पन्न भया, सो ये तीनों ही असंख्यात लोक प्रमाण भये । बहुरि जहां ताई वह लोकमात्र शलाका राशि एक-एक काढने तै पूर्ण होइ, तहा ताई असैं ही करना । असैं करतै जो राशि उपज्या, ताकी गुणकार शलाका तौ लोकमात्र भई, और सर्व तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असख्यात लोकमात्र भये । बहुरि जो यहु राशि का प्रमाण भया, तीहि प्रमाण जुदा-जुदा शलाका, विरलन, देय, असे तीन राशि स्थापि, तहां विरलन राशि कौं एक-एक वखेरि, एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ, परस्पर गुणनि करि दूसरी वार स्थाप्या हुआ शलाका राशि तै एक और काढि लेना । इहां जो राशि उपज्या, ताकी गुणकार शलाका एक अधिक लोकप्रमाण है, अवशेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र हैं । बहुरि जो राशि भया तीहि प्रमाण विरलन देय राशि स्थापि, विरलन राशि कौं वखेरि, एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ, परस्पर गुणन कर दूसरा शलाका राशि तै एक और काढि लेना. तब गुणकार शलाका दोय अधिक लोक प्रमाण भई । अवशेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र भई । बहुरि याही प्रकार दोय घाटि उत्कृष्ट संख्यात लोकमात्र गुणकार शलाका प्राप्त करि इन विषै पूर्वोक्त दोय अधिक लोकमात्र गुणकार शलाका जोडिये । तब गुणकार शलाका भी असंख्यात लोकप्रमाण

भई, तब इहा तै लगाइ गुणाकार शलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि, उत्पन्न भई राशि चारि (४)। ये च्यारौ विशेष करि हीनाधिक है। तथापि सामान्य-पनै असख्यात लोक असंख्यात लोकप्रमाण जाननी। असैं क्रम तै जाइ दूसरी बार स्थापी हुई शलाका राशि कौ भी एक-एक काढने तै पूर्ण करै। बहुरि तहां उत्पन्न भया जो राशि, तीहि प्रमाण शलाका विरलन, देय जुदा-जुदा तीन राशि स्थापना। पूर्वोक्त प्रकार तै इस तीसरी बार स्थाप्या हुवा शलाका राशि कौ भी पूर्ण करि बहुरि तहा जो राशि उत्पन्न भया, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि स्थापना। तहां जो पूर्व कही तीन गुणकार शलाका राशि, तिनिका प्रमाण इस चौथी बार स्थाप्या हुवा शलाका राशि मे स्यो घटाये जो अवशेष प्रमाण रहै, सो पूर्वोक्त प्रकार करि एक-एक काढने तै जब पूर्ण होइ, तब तहा जो उत्पन्न राशि होइ, तीहि प्रमाण अग्निकायिक जीवराशि है। असैं देखि—

'आउड्ढराशिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेओ'

असैा आचार्यनि करि कह्या है। याका अर्थ यहु – जो साढा तीन बार शलाका राशि करि लोक कौ परस्पर गुणैं अग्निकायिक जीवराशि हो है। या प्रकार अग्निकायिक जीवराशि की गुणकार शलाका तै ऊपरि असंख्यात-असंख्यात वर्ग-स्थान जाइ ताका वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि अर प्रथम मूल होइ, ताकौ एक बार वर्गरूप कीये तेजस्कायिक जीवनि का प्रमाण होइ है। बहुरि यातै असख्यात असख्यात वर्गस्थान जाइ तेजस्कायिक की स्थिति की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल होइ है। यातै एक स्थान जाइ तेजस्कायिक को स्थिति हो है, सो स्थिति कहा कहिये ? अन्य काय तै आय करि तेजस्काय विषै जीव उपज्या, तहा उत्कृष्टपने जेते काल और काय न धरै, तेजस्काय ही के पर्यायनि को धार्‌या करै, तिस काल के समयनि का प्रमाण जानना ।

बहुरि यातै असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ अवधि सबधी उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्गशलाका, अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। ताकौ एक बार वर्गरूप कीये, अवधि सबधी उत्कृष्ट क्षेत्र हो है, सो कहा ?

सर्वावधि ज्ञान के जेता क्षेत्र पर्यत जानने की शक्ति, ताके प्रदेशनि का प्रमाण हो है, सो यहु क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है ।

इहां कोऊ कहै अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थनि कौ जानै, सो रूपी पदार्थ एक लोक प्रमाण क्षेत्र विषै ही है। इहा इतना क्षेत्र कैसे कह्या ?

ताका समाधान – जैसे अहमिंद्रनि कै सप्तम नरक पृथ्वी पर्यंत गमन शक्ति है, तथापि इच्छा विना कदाचित् गमन न हो है। तैसे सर्वावधि विषै असी शक्ति है – इतने क्षेत्र विषै जो रूपी पदार्थ होइ तौ तितने कौं जानैं, परतु तहां रूपी पदार्थ नाहीं, तातै सो शक्ति व्यक्त न हो है।

बहुरि तातै असंख्यात-असंख्यात स्थान जाइ स्थिति बंधाध्यवसाय स्थाननि की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। याकौ एक वार वर्गरूप कीयें स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान हो है, ते कहा ?

सो कहिये है ज्ञानावरणादिक कर्मनि का ज्ञान कौं आवरना इत्यादिक स्वभाव करि संयुक्त रहने का जो काल, ताकौ स्थिति कहिये। तिसके बंध कौं कारणभूत जे परिणामनि के स्थान, तिनिका नाम स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान है।

बहुरि तातै असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननि की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। ताकौ एक वार वर्गरूप कीये अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान हो है। ते कहा ?

सो कहिये है – ज्ञानावरणादि कर्मनि का वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि स्थानक तिष्ठता जो अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप अनुभाग, ताके बंध कौं कारणभूत जे परिणाम, तिनके स्थाननि का नाम अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान है। स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान अर अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननि का विशेष व्याख्यान आगैं कर्मकांड के अंत अधिकार विषै लिखेंगे। बहुरि तातै असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ निगोद शरीरनि की उत्कृष्ट संख्या का वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है।

छोडै, तिस काल के समयनि का प्रमाण जानना । इहां निगोद जीव निगोद पर्याय कौ छोडि अन्य पर्याय उत्कृष्टपनै यावत् काल न धरै, तिस काल का ग्रहण न करना; जातै सो काल अढाई पुद्गल परिवर्तन परिमाण है, सो अनंत है; तातै ताका इहां ग्रहण नाहीं । बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ, उत्कृष्ट योग स्थाननि के अविभाग प्रतिच्छेदनि का वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है । याका एक बार वर्ग कीए एक-एक समान प्रमाणरूप चय करि अधिक अैसे जो जगतश्रेणी के असंख्यातवैं भाग प्रमाण योग स्थान है, तिनिविषै जो उत्कृष्ट योग स्थान हैं, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है । ते लोक प्रमाण जे एक जीव के प्रदेश, तिनिविषै कर्म-नोकर्म पर्यायरूप परिणमने को योग्य जे तेइस वर्गणानि विषै कार्माण वर्गणा अर आहार वर्गणा, तिनिकौ तिस कर्म-नोकर्म पर्यायरूप परिणमने विषै प्रकृतिबंध अर प्रदेशबंध का कारणभूत जानने । बहुरि तातै अनंतानंत वर्गस्थान जाइ केवलज्ञान का चौथा मूल का घन का घन हो है, सो केवलज्ञान का प्रथम मूल अर चतुर्थ मूल कौ परस्पर गुणै जो प्रमाण होइ, तीहि मात्र है । जैसें अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञान का प्रथम पणट्ठी (६५५३६), ताका प्रथम मूल दोय सै छप्पन, चतुर्थ मूल दोय, इनिकौ परस्पर गुणै पांच सै बारह होई, चतुर्थ मूल दोय का घन आठ, ताका घन पांच सै बारह हो है, सो यहु द्विरूप घनाघनधारा का अंतस्थान है, यातै अधिक का घनाघन कीए केवलज्ञान तैं उल्लघन हो है, सो है नही । बहुत कहने करि कहा ? द्विरूप वर्गधारा विषै जिस-जिस स्थान विषै जिस-जिस राशि का वर्ग ग्रहण कीया, तिस-तिस राशि कौ तिस-तिस स्थान विषै नव जायगा माडि, परस्पर गुणै इस द्विरूप घनाघन धारा विषै प्रमाण हो है । इस धारा के सर्वस्थान च्यारि घाटि केवलज्ञान का वर्गशलाका मात्र है । अैसैं इहा सर्वधारा अर द्विरूपवर्गादिक तीन धारानि का प्रयोजन जानि विशेष कथन कह्या ।

अब शेष सम, विषम, कृति, अकृति, कृतिमूल, अकृतिमूल, घन, अघन, घनमूल अघनमूल इन धारानि का विशेष प्रयोजन न जानि सामान्य कथन कीया, जो इनिका विशेष जान्या चाहै ते त्रिलोकसार विषै वृहद्धारा परिकर्म नाम ग्रंथ विषै जानहु ।

अब उपमा मान आठ प्रकार का वर्णन करिए है। अथ एक, दोय गणना करि कहने कौ असमर्थ रूप अैसा जो राशि, ताका कोई उपमा करि प्रतिपादन, सो उपमा मान है । तिसरूप प्रमाण (तिस उपमा मान के) आठ प्रकार है । १. पल्य, २ सागर,

३ सूच्यंगुल, ४ प्रतरांगुल, ५ घनांगुल, ६ जगत श्रेणी, ७ जगत्प्रतर ८ जगद्घन । तहां पल्य तीन प्रकार है – व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य, अद्धा पल्य । तहा पहिला पल्य करि बालनि की संख्या कहिए है । दूसरा करि द्वीप-समुद्रनि की संख्या वर्णिए है । तीसरा करि कर्मनि की वा देवादिकनि की स्थिति वर्णित है । अब परिभाषा का कथनपूर्वक तिनि पल्यनि का स्वरूप कहिए है ।

जो तीक्ष्ण शस्त्रनि करि भी छेदने भेदने मोडने को समर्थ न हूजे अैसा है, बहुरि जल-अग्नि आदिनि करि नाश कौ न प्राप्त हो है, बहुरि एक-एक तो रस, वर्ण, गंध अर दोय स्पर्श अैसे पाच गुण संयुक्त है; बहुरि शब्दरूप स्कंध का कारण है, आप शब्द रहित है, बहुरि स्कंध रहित भया है, बहुरि आदि-मध्य-अंत जाका कह्या न जाइ अैसा है; बहुरि बहु प्रदेशनि के अभाव तै अप्रदेशी है, बहुरि इंद्रियनि करि जानने योग्य नही है, बहुरि जाका विभाग न होइ अैसा है – अैसा जो द्रव्य, सो परमाणु कहिए। सो परमाणु अंतरंग बहिरंग कारणनि तै अपने वर्ण, रस, गंध, स्पर्शनि करि सदा काल पूरे कहिए जुडै अर गलै कहिए बिखरै, तब स्कंधवान आपकौ करै है; तातै पुद्गल अैसा नाम है ।

बहुरि तिनि अनंतानंत परमाणुनि करि जो स्कंध होइ, सो अवसन्नासन्न नाम धारक है । बहुरि तातै सन्नासन्न, तृटरेणु, त्रसरेणु, उत्तम भोगभूमिवालौ का बाल का अग्रभाग, रथरेणु, मध्यम भोगभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, जघन्य भोगभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, कर्मभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, लीख, सरिसौ, यव अंगुल ए बारह पहिला पहिला तै क्रम करि आठ-आठ गुणे है ।

तहां अंगुल तीन प्रकार है उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, आत्मांगुल । तहां पूर्वोक्त क्रम करि उपज्या सो उत्सेधांगुल है । याकरि नारकी, तिर्यच, मनुष्य, देवनि के शरीर वा भवनवासी आदि च्यारि प्रकार देवनि के नगर अर मदिर इत्यादिकनि का प्रमाण [illegible] है । बहुरि तिस उत्सेधांगुल तै पाच सौ गुणा जो भरत क्षेत्र का अवसर्पिणी काल विषै पहला चक्रवर्ती का अंगुल है; सोई प्रमाणांगुल है । याकरि द्वीप, समुद्र, पर्वत, वेदी, नदी, कुंड, जगती, वर्ष इत्यादिकनि का प्रमाण वर्णिए है । [illegible] भरत, ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यनि का अपने-अपने वर्तमान काल विषै जो अगुल [illegible] आत्मांगुल है । याकरि भारी, कलश, आरसा, धनुष, ढोल, जूडा, शय्या, गाडा, [illegible], [illegible], सिंहासन, बाण, चमर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यनि के मंदिर

वा नगर वा उद्यान इत्यादिकनि का प्रमाण वर्णिए है । असै जहाँ जैसा सभवै, तहा तैसा ही अगुल करी निपज्या प्रमाण जानना ।

बहुरि छह अंगुलनि करि पद होइ है । बहुरि तातै दोय पाद की एक विलस्ति, दोय विलस्ति का एक हाथ, दोय हाथ का बीख, दोय वीख का एक धनुष, बहुरि दोय हजार धनुषनि करि एक कोश, तिन च्यारि कोशनि करि एक योजन हो है । सो प्रमाणांगुलनि करि निपज्या असा एक योजन प्रमाण औडा वा चौड़ा असा एक गर्त – खाड़ा करना ।

चौडा १ योजन　　　औडा १ योजन
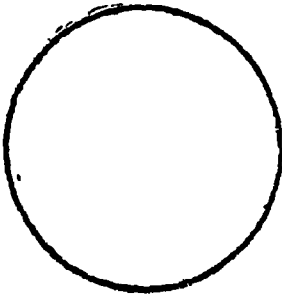
सो गर्त उत्तम भोगभूमि विषै निपज्या जो जन्म तै लगाइ एक आदि सात दिन पर्यंत ग्रहे जे मीढा का युगल, तिनिके बालनि का अग्रभाग, तिनिकी लंबाई चौडाईनि करि अत्यंत गाढा भूमि समान भरना, सिघाऊ न भरना । केते बाल माये सो प्रमाण ल्याइये है —

विक्खंभवग्गदहगुण, करणी वट्टस्स परिरयो होदि ।
विक्खंभचउत्थाभे, परिरयगुणिदे हवे गुणियं ।।

इस करण सूत्र कर गोल क्षेत्र का फल प्रथम ही ल्याइए है । या सूत्र का अर्थ – व्यास का वर्ग कौ दश गुणा कीए वृत्त क्षेत्र का करणिरूप परिधि हो है । जिस राशि का वर्गमूल ग्रहण करना होइ, तिस राशि कौ करण कहिए । बहुरि व्यास का चौथा भाग करि परिधि कौ गुणै क्षेत्रफल हो है । सो इहां व्यास एक योजन, ताका वर्ग भी एक योजन, ताकौ दश गुणा कीए दश योजन प्रमाण करणिरूप परिधि होइ सो याका वर्गमूल ग्रहण करना । सो नव का मूल तीन अर अवशेष एक रह्या, ताकौ दूणा मूल का भाग देना, सो एक का छठा भाग भया । इनिकौ समच्छेद करि मिलाए उगणीस का छठा भाग प्रमाण परिधि भया $\left(\frac{१९}{६}\right)$ याकौ व्यास का चौथा भाग पाव योजन $\left(\frac{१}{४}\right)$, ताकरि गुणै उगणीस का चौवीसवा भाग प्रमाण $\left(\frac{१९}{२४}\right)$ क्षेत्रफल भया । बहुरि याकौ वेध एक योजन करि गुणै, उगणीस का चौवीसवा भाग प्रमाण ही घन क्षेत्रफल भया । अब इहाँ एक योजन के आठ हजार (८०००) धनुष, एक धनुष का छिनवै (९६) अंगुल, एक प्रमाण अंगुल के पांच सै (५००) उत्सेधांगुल,

आगै एक-एक के आठ-आठ यव, जू, लीख, कर्मभूमिवालों का वाल का अग्रभाग, जघन्य भोगभूमिवालों का वालाग्र, मध्यम भोगभूमिवालो का वालाग्र, उत्तम भोग भूमिवालों का वालाग्र होइ है । सो इहाँ घन राशि का गुणकार-भागहार घनरूप ही हो है । तातै इन सबनि का घनरूप गुणकार करनै कौं उगणीस का चौवीसवां भाग माडि आगै आठ हजार आदि तीन-तीन जायगा मांडि परस्पर गुणन करना । १९/२४

८००० । ८००० । ८००० । ९६ । ९६ ।९६ । ५०० । ५०० । ५०० । ८ । सो राशि का गुणकार वा भागहार का अपवर्तनादि विधान करि गुणै व्यवहार पल्य के सर्व वालनि के खडनि का प्रमाण अंक अनुक्रम करि वांही तरफ तै लगाइ पहले अठारह विंदी अर पीछै दोय, नव, एक, दोय, एक, पाच, नव, च्यारि, सात, सात, सात, एक, तीन, विंदी, दोय, आठ, विंदी, तीन, विंदी, तीन, छह, दोय, पांच, च्यारि, तीन, एक, च्यारि ए अंक लिखने ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००। इनि अंकनि करि च्यारि सै तेरा कोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि पैतालिस लाख छव्वीस हजार तीन सै तीन कोडाकोड़ि कोडाकोडि कोडि आठ लाख वीस हजार तीन सै सत्रह कोडाकोडि कोडाकोडि सतहत्तरि लाख गुणचास हजार पाच सै वारा कोडा-कोडि कोडि उगणीस लाख वीस हजार कोडाकोडि प्रमाण हो है, इतने रोम खड सो व्यवहार पल्य के जानने । वहुरि तिस एक-एक रोम खंड कौं सौ-सौ वर्ष गए काढिए, जितने काल विषै वे सर्व रोम पूर्ण होइ, सो सर्व व्यवहार पल्य का काल जानना ।

सो इहां एक वर्ष के दो अयन, एक अयन का तीन ऋतु, एक ऋतु का दोय मास, एक मास का तीस अहोरात्र, एक अहोरात्र के तीस मुहूर्त, एक मुहूर्त की संख्यात आवली, एक आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय, सो क्रम तै गुणन कीये तिस काल के समयनि का प्रमाण हो है ।

बहुरि तिस एक-एक रोम के अग्रभाग का असंख्यात कोडि वर्ष के जेते समय होंइ तितने-तितने खंड कीए दूसरा उद्धार पल्य के रोम खंड होइ है । इहा याके समय भी इतने ही जानने । सो ए कितने है? सो ल्याइये है – विरलन राशि कौं देय राशि का अर्धच्छेदनि करि गुणें उत्पन्न राशि के अर्धच्छेदनि का प्रमाण हो है । तातै अद्धा-पल्य का अर्धच्छेद राशि कौं अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि ही करि गुणें सूच्यंगुल का

अर्धच्छेद राशि हो है । बहुरि याकौ तिगुणी कीए घनांगुल का अर्धच्छेद राशि हो है। बहुरि याकरि अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि का असख्यातवां भाग कौं गुरणैं जगत् श्रेणी का अर्धच्छेद राशि हो है । यामैं तीन घटाए एक राजू के अर्धच्छेदनि के प्रमाण हो है । इहा एक अर्धच्छेद तो बीचि मेरु के मस्तक विषै प्राप्त भया । तीहि सहित लाख योजननि के संख्यात अर्धच्छेद भये एक योजन रहै । अर एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल होंइ, सो इनके संख्याते अर्धच्छेद भये एक अंगुल होय, सो ये सर्व मिलि संख्याते अर्धच्छेद भए, तिनिकरि अधिक एक सूच्यंगुल रही थी, ताके अर्धच्छेदनि का जो प्रमाण होइ, सो घटाइए, तब समस्त द्वीप-समुद्रनि की सख्या हो है । सो घटावना कैसे होइ ? इहां तिगुणा सूच्यंगुल का अर्धच्छेद प्रमाण गुणकार है, सो इतने घटावने होइ, तहां अद्धापल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग प्रमाण मे सौ एक घटाइए तौ इहा संख्यात अधिक सूच्यंगुल का अर्धच्छेद घटावना होइ, तो कितना घटाइए ? असैं त्रैराशिक करि किछू अधिक त्रिभाग घटाइए, असैं साधिक एक का तीसरा भाग कर हीन पल्य के अर्धच्छेद का असंख्यातवां भाग कों पल्य के अर्धच्छेद के वर्ग तै तिगुणा प्रमाणकरि गुणैं समस्त द्वीप-समुद्रनि की संख्या हो है । सो इतने ए द्वीप-समुद्र अढाई उद्धार सागर प्रमाण है,तिनके पचीस कोडाकोडि पल्य भए, सो इतने पल्य की पूर्वोक्त संख्या होइ, तौ एक उद्धार पल्य की केती होइ ? असैं त्रैराशिक कीए पूर्वोक्त द्वीप-समुद्रनि की संख्या कौ पचीस कोडाकोडि का भाग दीजिए, तहां जो प्रमाण आवै तितनी उद्धार पल्य के रोम खंडनि की संख्या जानना । बहुरि इनि एक-एक रोम खंडनि के असंख्यात वर्ष के जेते समय होहि, तितने खंड कीए जेते होंइ, तितने अद्धापल्य के रोम खंड है, ताके समय भी इतने ही है । जातैं एक-एक समय विषै एक-एक रोम खड काढै सर्व जेते कालकरि पूर्ण होंइ, सो अद्धा पल्य का काल है।

तै असंख्यात वर्ष के समय कितने है ?

सो कहिए है – उद्धार पल्य के सर्व रोम खडनि का प्रत्येक असख्यात वर्ष समय प्रमाण खंड कीए एक अद्धा पल्य प्रमाण होइ, तो एक रोम खडनि के खडनि का केता प्रमाण होइ ? अैसैं त्रैराशिक करि जितना लब्ध राशि का प्रमाण होइ, तितने एक उद्धार पल्य का रोम खंड के खडनि का प्रमाण जानना । बहुरि अद्धा पल्य है, सो द्विरूप वर्गधारा मे अपने अर्धच्छेद राशि तै ऊपरि असख्यात वर्गस्थान जाइ उपजै है । याकों तिगुणा पल्य का अर्धच्छेद राशि का वर्ग कौ किंचिदून पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग करि गुणै जो प्रमाण आवै, ताकौ पचीस कोडाकोडि

का भाग दीए जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीए जितने पावै, तितने असख्यात वर्पनि के समय जानने। इस प्रमाण करि तिस उद्धार पल्य के रोम खडनि कौ गुणै अद्धा पल्य के रोमनि की संख्या आवै है। अैसे तीन प्रकार पल्य कहे। जैसे खास विषै अन्न भरिए, तैसे इहां गर्त विषै रोम भरि प्रमाण कह्या, ताते याका नाम पल्योपम कह्या है।

बहुरि इनिकौ प्रत्येक दश कोडाकोडि करि गुणै अपने-अपने नाम का सागर होइ। दश कोडाकोडि व्यवहार पल्य करि व्यवहार सागर, उद्धार पल्य करि उद्धार सागर, अद्धा पल्य करि अद्धा सागर जानना।

इहां लवण समुद्र की उपमा है, ताते याका नाम सागरोपम है, सो याकी उत्पत्ति कहिए है – लवण समुद्र की छेहड की सूची पाच लाख योजन ५००००० (५ ल) आदिकी सूची एक लाख योजन (१०००००) इनिकौं मिलाय ६ ल आधा व्यास का प्रमाण लाख योजन करि गुणिये, तव ६ ल ल। वहुरि याके वर्ग कों दशगुणा करिये, तव करणिरूप सूक्ष्म क्षेत्र होइ ६ ल ल ६ ल ल १०। याका वर्गमूल प्रमाण लवण समुद्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल है। वहुरि तिस करणिरूप लवण समुद्र के क्षेत्रफल कौ पल्य का गर्त एक योजन मात्र, ताका करणिरूप सूक्ष्म क्षेत्रफल एक योजन का वर्ग दशगुणा कौ योजन का चौथा भाग के वर्ग का भाग दीए जो होइ, तीहि प्रमाण है। ताका भाग देना ६ ल ल ६ ल ल १० । सो इहां दश करणि

$$\frac{१}{४} \quad \frac{१}{४} \quad १०$$

करि दश करणि का अपवर्तन करना। बहुरि भागहार का भागहार राशि का गुणकार होइ, इस न्याय करि भागहार दोय जायगा च्यारि करि राशि का दोय जायगा छक्का का गुणकार करना २४ ल ल २४ ल ल, तब पल्य गर्तनि के प्रमाण का वर्ग होइ। याका वर्गमूल ग्रहै सर्व गर्तनि का प्रमाण लाख गुणा चोवीस लाख प्रमाण हो है। याकौ हजार योजन का औडापन करि गुणै सर्व लवण समुद्र विषै पल्यगर्त मारिखे गर्तनि का प्रमाण हो है – २४ लल १०००। याकौ अपने-अपने विवक्षित पल्य के रोम खंडनि करि गुणै गर्तनि के रोमनि का प्रमाण हो है। वहुरि छह रोम जितना क्षेत्र रोकै, तितने क्षेत्र का जल निकासने विषै पचीस समय व्यतीत होय, तौ सर्व रोमनि के क्षेत्र का जल निकासने मे केते समय होय ? अैसे त्रैराशिक करना। तहां प्रमाण राशि रोम छह (६), फल राशि समय पचीस (२५), इच्छा राशि सर्व

गर्तनि के रोमनि का प्रमाण । तहा फल करि इच्छा कौ गुणि प्रमाण का भाग दीए समयनि का प्रमाण आवै । बहुरि पूर्वोक्त अपना-अपना समयनि का प्रमाणकरि एक पल्य-होय, तौ इतने इहां समय भए, तिनके केते पल्य होय ? ऐसैं त्रैराशिक कीए, दश कोडाकोडि पल्यनि का प्रमाण हो है । तातैं दश कोडाकोडि पल्यनि के समूह का नाम सागर कह्या है । बहुरि अद्धा पल्य का अर्धच्छेद राशि का विरलन करि एक-एक करि बखेरि एक-एक रूप प्रति अद्धा पल्य कौ देइ परस्पर गुणन कीए सूच्यंगुल उपजै है । एक प्रमाणांगुल का प्रमाण लंबा, एक प्रदेश प्रमाण चौड़ा-ऊचा क्षेत्र का इतने प्रदेश जानने । जैसैं पल्य का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, तिनिका विरलन करि । १ । १ । १ । १ । एक-एक प्रति-प्रति पल्य सोलह कों देइ, १६ । १६ । १६ । १६ ।
१ १ १ १
परस्पर गुणैं पणट्ठी प्रमाण (६५५३६) होइ, तैसैं इहां जानना । बहुरि सूच्यंगुल का जो वर्ग सो प्रतरागुल है । एक अंगुल चौडा, एक अंगुल लम्बा, एक प्रदेश ऊंचा क्षेत्र का इतना प्रदेशनि का प्रमाण है । जैसैं पणट्ठी कौ पणट्ठी करि गुणैं बादाल होइ, तैसैं इहा सूच्यंगुल कौ सूच्यंगुल करि गुणै प्रतरांगुल हो है । बहुरि सूच्यंगुल का घन, सो घनांगुल है । एक अंगुल चौडा, एक अंगुल लम्बा, एक अंगुल ऊंचा क्षेत्र का इतना प्रदेशनि का प्रमाण है । जैसैं बादाल को पणट्ठी करि गुणै पणट्ठी का घन होई, तैसैं प्रतरांगुल को सूच्यंगुल करि गुणै घनांगुल हो है । बहुरि अद्धापल्य के जेते अर्धच्छेद, तिनिका असंख्यातवा भाग का जो प्रमाण, ताकौ विरलनि करि एक-एक प्रति घनांगुल देय परस्पर गुणैं जगत्श्रेणी उपजै है । क्षेत्रखंडन विधान करि हीनाधिक कौ समान कीये, लोक का लम्बा श्रेणीबद्ध प्रदेशनि का प्रमाण इतना है । जातैं जगत्श्रेणी का सातवां भाग राजू है । सात राजू का घनप्रमाण लोक है । जैसैं पल्य का अर्धच्छेद च्यारि, ताका असंख्यातवां भाग दोय, सो दोय जायगा पणट्ठी गुणा बादाल कौ माडि परस्पर गुणै विवक्षित प्रमाण होइ, तैसैं इहां भी जगत्श्रेणी का प्रमाण जानना । बहुरि जगत्श्रेणी का वर्ग, सो जगत्प्रतर है । क्षेत्रखडन विधान करि हीनाधिक समान कीए लम्बा-चौड़ा लोक के प्रदेशनि का इतना प्रमाण है ।

भावार्थ यहु – यह जगत्श्रेणी कौ जगत्श्रेणी करि गुणैं प्रतर हो है । बहुरि जगत्श्रेणी का घन सो लोक है । लम्बा, चौड़ा, ऊंचा, सर्व लोक के प्रदेशनि का प्रमाण इतना है ।

भावार्थ यहु – जगत्प्रतर कौ जगत्श्रेणी करि गुणैं लोक का प्रमाण हो है ।

अब इनके अर्धच्छेद अर वर्गशलाकनि का प्रमाण कहिए है – तहां प्रथम अद्धा पल्य के अर्धच्छेद द्विरूप वर्गधारा विषै अद्धा पल्य के स्थान तै पहिले असख्यात वर्ग स्थान नीचै उतरि जो राशि भया, तीहि प्रमाण हैं। बहुरि अद्धा पल्य की वर्गशलाका तिसही द्विरूप वर्गधारा विषै तिस पल्य ही के अर्धच्छेद स्थान तै पहले असंख्यात वर्गस्थान नीचै उतरि उपजी है। बहुरि सागरोपम के अर्धच्छेद सर्वधारा विषै पाइए है, ते पल्य के अर्धच्छेदनि विषै गुणकार जो दश कोडाकोडि, ताके संख्यात अर्धच्छेद जोडै जो प्रमाण होइ, तितने है। बहुरि ताकी वर्गशलाका इहां पल्य राशि तै गुणकार सख्यात ही का है, तातै न बनै है। बहुरि सूच्यगुल है सो द्विरूप वर्गधारा विषै प्राप्त है, सो यहु राशि विरलन देय का अनुक्रम करि उपज्या है, तातै याके अर्धच्छेद अर वर्गशलाका सर्वधारा आदि यथासंभव धारानि विषै प्राप्त है, द्विरूप वर्गधारा आदि तीन धारानि विषै प्राप्त नाही है। तहां विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद, इनिकौ देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने तौ सूच्यंगुल के अर्धच्छेद है। बहुरि द्विरूप वर्गधारा विषै पल्यरूप स्थान तै ऊपरि सूच्यगुल का विरलन राशि जो पल्य के अर्धच्छेद, ताके जेते अर्धच्छेद है तितने वर्गस्थान जाइ सूच्यंगुल स्थान उपजै है। तातै पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण तै सूच्यंगुल की वर्गशलाका का प्रमाण दूणा है। तातै पल्य पर्यन्त एक बार पल्य की वर्गशलाका प्रमाण स्थान भए पीछै पल्य के अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि का जो प्रमाण होय, सोई पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण, सो पल्य तै ऊपरि दूसरी बार पल्य की वर्गशलाका प्रमाण स्थान भए सूच्यंगुल हो है। तातै दूणी पल्य की वर्गशलाका प्रमाण सूच्यगुल की वर्गशलाका कही। अथवा विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेद, तिनिके जेते अर्धच्छेद, तिनिविषै देय राशि पल्य, ताका अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि कौ जोडै, सूच्यगुल की वर्गशलाका हो है। सो पल्य के अर्धच्छेदनि का अर्धच्छेद प्रमाण पल्य की वर्गशलाका है। सो इहां भी दूणी भई, सो या प्रकार भी पल्य की वर्गशलाका तै दूणी सूच्यगुल की वर्गशलाका है। बहुरि प्रतरागुल है, सो द्विरूप वर्गधारा विषै प्राप्त है। ताकी वर्गशलाका अर्धच्छेद यथा योग्य धारानि विषै प्राप्त जानने। तहां 'वरगादुवरिमवग्गे दुगुणा-दुगुणा हवंति अद्धछिदा' इस सूत्र करि वर्ग तै ऊपरला वर्ग स्थान विषै दूणा-दूणा अर्धच्छेद कहे, तातै इहां सूच्यंगुल के अर्धच्छेदनि तै दूणे प्रतरांगुल के अर्धच्छेद जानने। अथवा गुण्य अर गुणकार का अर्धच्छेद जोडैं राशि का अर्धच्छेद होइ, तातै इहां सूच्यंगुल गुण्य कौ सूच्यगुल का गुणकार है, तातै दोय सूच्यंगुल

के अर्धच्छेद मिलाए भी सूच्यगुल के अर्धच्छेदनि तै दूणे प्रतरांगुल के अर्धच्छेद हो है। बहुरि **'वग्गसला रूवहिया'** इस सूत्र करि वर्गशलाका ऊपरला स्थान विषै एक अधिक होइ, तातै इहा सूच्यगुल के अनतर प्रतरागुल का वर्गस्थान है, तातै सूच्यगुल की वर्गशलाका तै एक अधिक प्रतरागुल की वर्गशलाका है । बहुरि घनांगुल है, सो द्विरूप घनधारा विषै प्राप्त है, सो यहु अन्य धारा विषै उत्पन्न है, सो **'तिगुणा तिगुणा परद्वाणे'** इस सूत्र करि अन्य धारा का ऊपरला स्थान विषै तिगुणा-तिगुणा अर्धच्छेद होहि, तातै सूच्यगुल के अर्धच्छेदनि तै तिगुणे घनांगुल के अर्धच्छेद है । अथवा तीन जायगा सूच्यगुल माडि परस्पर गुणै, घनागुल हो है । तातै गुण्य-गुणकार रूप तीन सूच्यंगुल, तिनका अर्धच्छेद जोडै भी घनागुल के अर्धच्छेद तितने ही हो है । बहुरि **'परसम'** इस सूत्र करि अन्य धारा विषै वर्गशलाका समान हो है । सो इहा द्विरूप वर्गधारा विषै जेथवा स्थान विषै सूच्यगुल है, तेथवां ही स्थान विषै द्विरूप घनधारा विषै घनागुल है । तातै जेती सूच्यंगुल की वर्गशलाका, तितनी ही घनागुल की वर्गशलाका जानना । बहुरि जगत्श्रेणी है, सो द्विरूप घनधारा विषै प्राप्त है; सो याके अर्धच्छेद वर्गशलाका अन्य धारा विषै उपजै है । तहां **'विरलज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धछिदीहिं संगुणिदे लद्धछेदा होंति'** इस सूत्र करि विरलनरूप राशि कौ देय राशि का अर्धच्छेदनि करि गुणै लब्ध राशि के अर्धच्छेद होहि । तातै इहा विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असख्यातवा भाग, ताको देय राशि घनागुल, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणै जो प्रमाण होइ, तितने जगत् श्रेणी के अर्धच्छेद है । बहुरि दूणा जघन्य परीतासंख्यात का भाग अद्धा पल्य की वर्गशलाका कौ दीए जो प्रमाण होइ, तितना विरलन राशि का अर्धच्छेद है । ताकौ देय राशि घनागुल की वर्गशलाका विषै जोडै जो प्रमाण होइ, तितनी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका है । अथवा जगत्श्रेणी विषै देय राशि घनागुल, तीहिरूप द्विरूप घनधारा का स्थान तै ऊपरि विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग, ताके जेते अर्धच्छेद होइ, तितने वर्गस्थान जाइ जगत्श्रेणीरूप स्थान उपजै है । तातै भी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका पूर्वोक्त प्रमाण जाननी ।

सो जगत्श्रेणी विषै विरलन राशि का प्रमाण कितना है ?

सो कहिए है, अद्धा पल्य का जो अर्धच्छेद राशि ताका प्रथम वर्गमूल, द्वितीय वर्गमूल इत्यादि क्रम तै दूणा जघन्य परीतासख्यात के जेते अर्धच्छेद होहि, तितने

वर्गमूल करने, सो द्विरूप वर्गधारा के स्थाननि विषें पल्य का अर्धच्छेदरूप स्थान तें नीचें तितने स्थान आइ अंत विषें जो वर्गमूलरूप स्थान होइ, ताके अर्धच्छेद दूणा जघन्य परीतासंख्यात का भाग पल्य की वर्गशलाका कों दीये जो प्रमाण होइ, तितने होइ। बहुरि 'लम्मिस्तदुगे गुणेरासी' इस सूत्र करि अर्धच्छेदनि का जेता प्रमाण, तितने दुवे मांडि परस्पर गुणें राशि होइ, सो इहां पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण भाज्य है, सो तितने दुवे मांडि परस्पर गुणें तो पल्य का अर्धच्छेद राशि होय; अर दूणा जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण भागहार है, सो तितने दुवे मांडि परस्पर गुणें यथासंभव असंख्यात होइ। असें तिस अंत के मूल का प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदनि के असंख्यातवे भाग प्रमाण जानना, सोई इहां जगत्श्रेणी विषें विरलन राशि है। बहुरि जगत्प्रतर है, सो द्विरूप घनधारा विषें प्राप्त है, सो याके अर्धच्छेद वर्गशलाका अन्य धारानि विषें प्राप्त जानने। तहां जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदनि तें दूणे जगत्प्रतर के अर्धच्छेद है। 'वग्गसला रूवहिया' इस सूत्र करि जगत्श्रेणी की वर्गशलाका तें एक अधिक जगत् प्रतर की वर्गशलाका है। बहुरि घनरूप लोक, सो द्विरूप घनाघन धारा विषें उपजै है। तहां 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे' इस सूत्र करि द्विरूप घनधारा विषें प्राप्त जो जगत्-श्रेणी, ताके अर्धच्छेदनि ते लोक के अर्धच्छेद तिगुणे जानने। अथवा तीन जायगा जगत्श्रेणी मांडि परस्पर गुणें लोक होइ, सो गुण्य-गुणाकार तीन जगत्श्रेणी के अर्ध-च्छेद जोडें भी तितने ही लोक के अर्धच्छेद हो हैं। बहुरि 'परसम' इस सूत्र करि जगत् श्रेणी की वर्गशलाका मात्र ही लोक की वर्गशलाका है। इहां प्रयोजनरूप गाथा सूत्र कहिये हैं। उक्तं च –

> गुणयारद्धच्छेदा, गुणिज्जमाणस्स अद्धच्छेदजुदा।
> लद्धस्सद्धच्छेदा, अहियस्सच्छेदणा णत्थि ॥

याका अर्थ – गुणकार के अर्धच्छेद गुण्यराशि के अर्धच्छेद सहित जोडें लब्ध-राशि के अर्धच्छेद होंहि। जैसें गुणकार आठ, ताके अर्धच्छेद तीन अर गुण्य सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, इनिकों जोडें लब्धराशि एक सौ अठाईस के अर्धच्छेद सात हो है। ऐसे ही गुणकार दश कोडाकोडि के संख्यात अर्धच्छेद गुण्यराशि पल्य, ताके अर्ध-च्छेदनि में जोडें, लब्धराशि सागर के अर्धच्छेद हो है। बहुरि अधिक के छेद नाही हैं, जातैं सो कहिये है, अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्गशलाका होइ, सो इहां पल्य के अर्धच्छेदनि तें संख्यात अर्धच्छेद सागर के अधिक कहे। सो इनि अधिक अर्धच्छेदनि के

अर्धच्छेद होंइ, परन्तु वर्गशलाकारूप प्रयोजन की सिद्धि नाही, तातै अधिक के अर्धच्छेद नाही करने अैसा कह्या, याही तै सागर की वर्गशलाका का अभाव है । उक्त च –

भज्जस्सद्धछेदा, हारद्धछेदणाहि परिहीणा ।
अद्धच्छेदसलागा, लद्धस्स हवति सव्वत्थ ।।

अर्थ – भाज्यराशि के अर्धच्छेद भागहार के अर्धच्छेदनि करि हीन करिए, तब लब्धराशि की अर्धच्छेद शलाका सर्वत्र हो है । जैसै एक सौ अट्ठाईस के भाज्य के अर्धच्छेद सात, इनमे भागहार आठ के तीन अर्धच्छेद घटाए लब्धराशि सोलह के च्यारि अर्धच्छेद हो है, अैसै ही अन्यत्र जानना ।

विरलज्जमाणरासिं, दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु, सव्वत्थुपण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि कौ देय राशि के अर्धच्छेदनि करि गुणै उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद सर्वत्र हो है । जैसै विरलन राशि च्यारि, ताकौ देय राशि सोलह के अर्धच्छेद च्यारि करि (गुणै) उत्पन्न राशि पणट्ठी के सोलह अर्धच्छेद हो है । अैसै इहां भी पल्य अर्धच्छेद प्रमाण विरलन राशि कौ देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणै उत्पन्न राशि सूच्यगुल के अर्धच्छेद हो है । अैसै ही अन्यत्र जानना ।

विरलिदराशिच्छेदा, दिण्णद्धच्छेदच्छेदसंमिलिदा ।
वग्गसलागपमाणं, होंति समुप्पण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि के अर्धच्छेद देयराशि के अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि करि सहित जोडै उत्पन्न राशि की वर्गशलाका का प्रमाण हो है । जैसै विरलन राशि च्यारि के अर्धच्छेद दोय अर देय राशि सोलह के अर्धच्छेद च्यारि, तिनिके अर्धच्छेद दोय, इनको मिलाए उत्पन्न राशि पणट्ठी की वर्गशलाका च्यारि हो है । अैसै ही विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद, तिनिके अर्धच्छेद तिनिविषै देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेद जोडै उत्पन्न राशि सूच्यगुल के वर्गशलाका का प्रमाण हो है। अैसै ही अन्यत्र जानना ।

दुगुणपरित्तासखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
विदंगुलवग्गसला, सहिया सेढिस्स वग्गसला ।।

अर्थ – दूणा जघन्य परीतासंख्यात का भाग अद्धापल्य की वर्गशलाका कौं दीए जो प्रमाण होइ, तीहि करि संयुक्त घनांगुल की वर्गशलाका का जो प्रमाण, तितनी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका हो है ।

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, गुणयारो लद्धरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि तैं जेते अधिक रूप होंइ, तिनिका परस्पर गुणन कीए लब्ध राशि का गुणकार होइ । जैसैं च्यारि अर्धच्छेदरूप विरलन राशि अर तीन अर्धच्छेद अधिक राशि, तहां विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण दुवा मांडि परस्पर गुणें २×२×२×२ सोलह १६ लब्ध राशि होइ । अर अधिक राशि तीन अर्धच्छेद प्रमाण दुवा माडि २×२×२ परस्पर गुणें आठ गुणकार होय, सो लब्धि राशि कौं गुणकार करि गुणें सात अर्धच्छेद जाका पाइए, ऐसा एक सौ अट्ठाईस होइ । ऐसैं ही पल्य के अर्धच्छेद विरलन राशि, सो इतने दूवा मांडि परस्पर गुणें लब्ध राशि पल्य होइ अर अधिक राशि संख्यात अर्धच्छेद, सो इतने दुवे मांडि परस्पर गुणें दश कोडाकोडि गुणकार होइ । सो पल्य कौं दश कोडाकोडि करि गुणें सागर का प्रमाण हो है । ऐसें ही अन्यत्र जानना ।

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि तैं जेते हीनरूप होइ, तिनिका परस्पर गुणन कीए उत्पन्न राशि का भागहार होइ । जैसें विरलन राशि अर्धच्छेद सात अर हीनरूप अर्धच्छेद तीन, तहां विरलन राशिमात्र दुवा माडि २×२×२×२×२×२×२ परस्पर गुणें एक सौ अट्ठाईस उत्पन्न राशि होइ । बहुरि हीनरूप प्रमाण दुवा माडि २×२×२ परस्पर गुणें आठ भागहार राशि होइ, सो उत्पन्न राशि कौं भागहाररूप राशि का भाग दीए च्यारि अर्धच्छेद जाका पाइए ऐसा सोलह हो है, ऐसे ही अन्यत्र जानना । ऐसें मान वर्णन कीया ।

सो ऐसे मान भेदनि करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का परिमाण कीजिए है; तहां जहां द्रव्य का परिमाण होइ, तहा तितने पदार्थ जुदे-जुदे जानने ।

बहुरि जहां क्षेत्र का परिमाण होय, तहां तितने प्रदेश जानने ।

जहा काल का परिमाण होइ, तहा तितने समय जानने ।

जहां भाव का परिमाण होइ, तहा तितने अविभाग प्रतिच्छेद जानने ।

इहा दृष्टात कहिए है – जैसै हजार मनुष्य है, असा कहिए तहां वे हजार जुदे-जुदे जानने, तैसै द्रव्य परिमाण विषै जुदे-जुदे पदार्थ जानने ।

बहुरि जैसै यहु वस्त्र वीस हाथ है, तहां उस वस्त्र विषै वीस अंश जुदे-जुदे नाही, परन्तु एक हाथ जितना क्षेत्र रोकै, ताकी कल्पना करि वीस हाथ कहिए है । तैसै क्षेत्र परिमाण विषै जितना क्षेत्र परमाणु रोकै, ताकौ प्रदेश कहिए, ताकी कल्पना करि क्षेत्र का परिमाण कहिए है ।

बहुरि जैसै एक वर्ष के तीन सै छ्यासठि दिन-रात्रि कहिए, तहां अखंडित काल प्रवाह विषै अंश है नाहीं, परन्तु सूर्य के उदय-अस्त होने की अपेक्षा कल्पना करि कहिए है । तैसै काल परिमाण विषै जितने काल करि परमाणु मंद गति करि एक प्रदेश तै दूसरे प्रदेश कौ जाइ, तीहि काल को समय कहिए । तीहि अपेक्षा कल्पना करि काल का परिमाण कहिए है ।

बहुरि जैसै यहु सोला वानी का सोना है, तहां उस सोना विषै सोला अश है नाही, तथापि एक वान के सोना विषै जैसे वरणादिक पाइए है, तिनकी अपेक्षा कल्पना करि कहिए है । तैसै भाव परिणाम विषै केवलज्ञानगम्य अति सूक्ष्म जाका दूसरा भाग न होइ, असा कोई शक्ति का अश ताकौ अविभाग प्रतिच्छेद कहिए, ताकी कल्पना करि भाव का परिमाण कहिए । मुख्य परिमाण तौ असे जानना, विशेष जैसा विवक्षित होइ, सो जानना ।

बहुरि जहा क्षेत्र परिमाण विषै आवली का परिमाण कहिए, तहा आवली के जेते समय होइ, तितने तहा प्रदेश जानने ।

बहुरि काल परिमाण विषै जहा लोक परिमाण कहे, तहा लोक के जितने प्रदेश होइ, तितने समय जानने, इत्यादि असै जानने । बहुरि जहा सख्यात, असंख्यात अनंत सामान्यपनै कहे, तहा तिनिका भेद यथायोग्य जानना ।

सर्वभेद कहने मे न आवै, ज्ञानगम्य है, तातै कौन रीति सौ कहिए ?

परन्तु जैसै लोक विषै कहिए याके लाखा रुपैया छै, तहा असा जानिए, कोड्यो नाही, हजारों नाही, तसै हीनाधिक भाव करि स्थूलपणै परिमाण जानना,

सूक्ष्मपणो परिमाण ज्ञानगम्य है । या प्रकार इस ग्रन्थ विषै जहां-तहां मान का प्रयोजन जानि मान वर्णन कीया है ।

अब पर्याप्ति प्ररूपणा का प्रारम्भ करता संता प्रथम ही दृष्टांतपूर्वक जीवनि के तिनि पर्याप्तनि करि पूर्णता-अपूर्णता दिखावै है –

जह पुण्णापुण्णाइं, गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं ।
तह पुण्णिदरा जीवा, पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥

यथा पूर्णापूर्णानि, गृहघटवस्त्रादिकानि द्रव्याणि ।
तथा पूर्णेतरा जीवाः. पर्याप्तेतरा मंतव्याः ॥११८॥

टीका – जैसें लोक विषै गृह, घट, वस्त्र इत्यादिक पदार्थ व्यंजन पर्यायरूप, ते पूर्ण अर अपूर्ण दीसैं हैं; जे अपने कार्यरूप शक्ति करि सम्पूर्ण भए, तिनिकौं पूर्ण कहिए । बहुरि जिनका आरंभ भया किछू भए किछू न भये ते अपने कार्यरूप शक्ति करि सपूर्ण न भए, तिनिकौं अपूर्ण कहिए ।

तैसें पर्याप्त, अपर्याप्त नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय करि संयुक्त जीव भी अपनी-अपनी पर्याप्तिनि करि पूर्ण अर अपूर्ण हो हैं । जो सर्व पर्याप्तिनि की शक्ति करि संपूर्ण होइ, सो पूर्ण कहिए । बहुरि जो सर्व पर्याप्तिनि की शक्ति करि पूर्ण न होइ, सो अपूर्ण कहिये ।

आगें ते पर्याप्ति कौन ? अर कौंनके केती पाइए ? सो विशेष कहै है –

आहार-सरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण-भास-मणो ।
चत्तारि[1] पंच[2] छप्पि[3] य, एइन्दिय-वियल-सण्णीणं[4] ॥११९॥

आहारशरीरेंद्रियाणि, पर्याप्तः आनप्राणभाषामनांसि ।
चतस्रः पंच षडपि च, एकेंद्रिय-विकल-संज्ञिनां ॥११९॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला, पुस्तक–१, पृष्ठ ३१६, सूत्र नं ७४,७५
२ " " " " " ३१५ सूत्र नं. ७२,७३
३ " " " " " ३१३, ३१४ सूत्र न. ७०,७१
४ द्रव्यसग्रह गाथा न. १२ की संस्कृत टीका मे भी यह उद्धृत है ।

टीका – १ आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इंद्रिय पर्याप्ति, ४. आनपान कहिए श्वासोश्वास पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति, ६. मनः पर्याप्ति असैं छह पर्याप्ति है। इनिविषै एकेद्रिय कै तौ भाषा अर मन विना पहिली च्यारि पर्याप्ति पाइये है। बेद्री, तेद्री, चौइद्री, असैनी पंचेद्री इनि विकल चतुष्क कै मन विना पांच पर्याप्ति पाइए है। सैनी पंचेद्रिय कै छहों पर्याप्ति पाइए है।

तहा औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इनिविषै किस ही शरीररूप नाम कर्म की प्रकृति का उदय होने का प्रथम समय सौ लगाइ करि जो तीन शरीर वा छह पर्याप्तिरूप पर्याय परिणमने योग्य जे पुद्गलस्कंध, तिनिकौ खल-रस भागरूप परिणमावने की पर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय तै भई असी जो आत्मा के शक्ति निपजै, जैसे तिल कौ पेलि करि खलि अर तेलरूप परिणमावै है, तैसै केई पुद्गल नै तौ खलरूप परिणमावै, केई पुद्गल नै रसरूप परिणमावै है – असी शक्ति होने कौ आहार पर्याप्ति कहिए।

बहुरि खल-रस भागरूप परिणए पुद्गल, तिनिविषै जिनकौ खलरूप परिणमाए थे, तिनिकौ तौ हाड-चर्म इत्यादि स्थिर अवयवरूप परिणमावै अर जिनिकौ रसरूप परिणमाए थे, तिनिको रुधिर-शुक्र इत्यादिक द्रव अवयवरूप परिणमावै – असी जो शक्ति होइ, ताकौ शरीर पर्याप्ति कहिए है।

बहुरि इद्रियरूप मति, श्रुतज्ञान अर चक्षु, अचक्षु दर्शन का आवरण अर वीर्यान्तराय, इनिकै क्षयोपशम करि निपजी जो आत्मा के यथायोग्य द्रव्येद्रिय का स्थानरूप प्रदेशनि तै वर्णादिक ग्रहणरूप उपयोग की शक्ति जाति नामा नामकर्म के उदय तै निपजै, सो इद्रिय पर्याप्ति कहिए है।

बहुरि तेवीस जाति का वर्गणानि विषै आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कधनि की श्वासोश्वासरूप परिणमावने की शक्ति, श्वासोश्वास नामकर्म के उदय तै निपजै, सो श्वासोश्वास पर्याप्ति कहिए।

बहुरि स्वर नामा नाम कर्म के उदय तै भाषा वर्गणारूप पुद्गल स्कधनि कौ सत्य, असत्य, उभय, अनुभय भाषारूप परिणमावने की शक्ति होइ, सो भाषा पर्याप्ति कहिए।

बहुरि मनोवर्गणारूप जे पुद्गल स्कध, तिनिकौ अगोपाग नामा नामकर्म का बल तै द्रव्यमनरूप परिणमावने की शक्ति होय, तीहि द्रव्यमन का आधार तै मन

का आवरण अर वीर्यान्तराय के क्षायोपशम विशेप करि गुण-दोप का विचार, अतीत का याद करना, अनागत विपै याद रखना, इत्यादिकरूप भावमन के परिणमावने की शक्ति होइ, ताकौ मन-पर्याप्ति कहिए है । ऐसैं छह पर्याप्ति जानना ।

पज्जत्तीपट्ठवणं, जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं ।
अन्तो मुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥१२०॥

पर्याप्तिप्रस्थापनं, युगपत्तु क्रमेण भवति निष्ठापनम् ।
अंतर्मुहूर्तकालेन, अधिकक्रमास्तावदालापात् ॥१२०॥

टीका – जेते-जेते अपने पर्याप्ति होइ, तिनि सवनि का प्रतिष्ठापन कहिए प्रारंभ, सो तो युगपत् शरीर नामा नामकर्म का उदय के पहिले ही समय हो हैं । बहुरि निष्ठापन कहिए तिनिकी संपूर्णता, सो अनुक्रम करि हो है । सो निष्ठापन का काल अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त करि अधिक है, तथापि तिनि सवनि का काल सामान्य आलाप करि अंतर्मुहूर्त ही कहिए, जातै अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं ।

कैसे निष्ठापन का काल है ?

सो कहै है – आहार पर्याप्ति का निष्ठापन का काल सवनि तै स्तोक है, तथापि अंतर्मुहूर्त मात्र है । बहुरि याकौं संख्यात का भाग दीए जो काल का परिमाण आवै, सो भी अंतर्मुहूर्त है । सो यहु अंतर्मुहूर्त उस आहार पर्याप्ति का अंतर्मुहूर्त मे मिलायें जो परिमाण होइ, सो शरीर पर्याप्ति का निष्ठापन काल जानना । सो यहु भी अंतर्मुहूर्त ही जानना । बहुरि याहु का संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही मे मिलायें इंद्रिय पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है । बहुरि याका संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही मे मिलाए श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है । ऐसै एकेंद्रिय पर्याप्ति कै तौ ए च्यारि ही पर्याप्ति इस अनुक्रम करि संपूर्ण होइ है । बहुरि श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति काल का संख्यातवाँ भाग का प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही में मिलाए भाषा पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है । ऐसैं विकलेंद्रिय पर्याप्ति जीवनि कै ए पांच पर्याप्ति इस अनुक्रम करि संपूर्ण होइ हैं । बहुरि भाषा पर्याप्ति काल का संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही मे मिलाए मन पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है । ऐसै संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ति कै छह पर्याप्ति इस अनुक्रम करि संपूर्ण होइ है । ऐसै इनिका निष्ठापन काल कह्या ।

आगै पर्याप्ति, निर्वृत्ति अपर्याप्ति काल का विभाग कहै हैं —

पज्जत्तस्स य उदये, णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि ।
जाव शरीरमपुण्णं, णिव्वत्तिअपुण्णगो ताव ।। १२१ ।।

पर्याप्तस्य च उदये, निजनिजपर्याप्तिनिष्ठितो भवति ।
यावत् शरीरमपूर्णं, निर्वृत्यपूर्णकस्तावत् ।। १२१ ।।

टीका – पर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय होते अपने-अपने एकेंद्रिय कै च्यारि, विकलेंद्रिय कै पांच, सैनी पंचेंद्रिय कै छह पर्याप्तिनि करि **'निष्ठिताः'** कहिए संपूर्ण शक्ति युक्त होंइ, तेई यावत् काल शरीर पर्याप्ति दूसरा, ताकरि पूर्ण न होइ, तावत् काल एक समय घाटि शरीर पर्याप्ति संबंधी अंतर्मुहूर्त पर्यन्त निर्वृत्ति अपर्याप्ति कहिए । जातै निर्वृत्ति कहिए शरीर पर्याप्ति की निष्पत्ति, तीहि करि जे अपर्याप्त कहिए संपूर्ण न भए, ते निर्वृत्ति अपर्याप्त कहिए है ।

आगै लब्धि अपर्याप्त का स्वरूप कहै है –

उदये दु अपुण्णस्स य, सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि ।
अन्तोमुहुत्तमरणं, लद्धिअपज्जत्तगो सो दु ।। १२२ ।।

उदये तु अपूर्णस्य च, स्वकस्वकपर्याप्तिर्न निष्ठापयति ।
अन्तर्मुहूर्तमरणं, लब्ध्यपर्याप्तकः स तु ।। १२२ ।।

टीका – अपर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय होते सतै, अपने-अपने एकेंद्रिय विकलेंद्रिय, सैनी जीव च्यारि, पाच, छह पर्याप्ति, तिनिकौ न **'निष्ठापयति'** कहिए सम्पूर्ण न करै, उसास का अठारहवा भाग प्रमाण अतर्मुहूर्त ही विषै मरण पावै, ते जीव लब्धि अपर्याप्त कहिए । जातै लब्धि कहिए अपने-अपने पर्याप्तिनि की सपूर्णता की योग्यता, तीहि करि **'अपर्याप्त'** कहिए निष्पन्न न भए, ते लब्धि अपर्याप्त कहिए ।

आगै एकेंद्रियादिक संज्ञी पर्यन्त लब्धि अपर्याप्तक जीवनि का निरंतर जन्म वा मरण का कालप्रमाण कौ कहै है –

तिण्णिसया छत्तीसा, छावट्टिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अन्तोमुहुत्तकाले, तावदिया चेव खुद्दभवा ।। १२३ ।।

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत्, षट्षष्टिसहस्रकानि मरणानि ।
अंतर्मुहूर्तकाले, तावंतश्चेव क्षुद्रभवाः ।। १२३ ।।

टीका – क्षुद्रभव कहिए लब्धि अपर्याप्तक जीव, तिनिकौं जो वीचि विषैं पर्याप्तिपनौ विना पाया निरतरपनै उत्कृष्ट होइ, तौ अंतर्मुहूर्त काल विषै छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) मरण होंइ; वहुरि इतने ही भव कहिए जन्म होइ ।

आगै ते जन्म-मरण एकेंद्रियादि जीवनि के केते-केते सभवै अर तिनिके काल का प्रमाण कहा ? सो विशेष कहिए है –

सीदी सट्ठी तालं, वियले चउवीस होंति पच्चक्खे ।
छावट्ठिं च सहस्सा, सयं च बत्तीसमेयक्खे ।।१२४।।

अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशत्, विकले चतुर्विंशतिर्भवंति पंचाक्षे ।
षष्टिश्च सहस्राणि, शतं च द्वात्रिंशमेकाक्षे ।। १२४ ।।

टीका – पूर्वै कहे थे लब्धि अपर्याप्तकनि के निरंतर क्षुद्रभव, तिनिविषैं एकेंद्रियनि के छ्यासठि हजार एक सौ वत्तीस निरतर क्षुद्रभव हो है; सो कहिए है – कोऊ एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक जीव, सो तिस क्षुद्रभव का प्रथम समय तै लगाइ सांस के अठारहवें भाग अपनी आयु प्रमाण जीय करि मरै, वहुरि एकेंद्रिय भया तहां तितनी ही आयु कौ भोगि, मरि करि वहुरि एकेंद्रिय होइ । असें निरंतर लब्धि अपर्याप्त करि क्षुद्रभव एकेंद्रिय के उत्कृष्ट होंइ तौ छ्यासठि हजार एक सौ वत्तीस होंइ, अधिक न होइ । असें ही लब्धि अपर्याप्तक बेइंद्रिय कै असी (८०) होइ । तेइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक के साठि (६०) होइ । चौइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक कैं चालीस (४०) होइ । पंचेंद्रिय लब्धि अपर्याप्त के चौवीस होईं, तीहिविषै भी मनुष्य के आठ (८) असैनी तिर्यंच के आठ, (८) सैनी तिर्यंच के आठ(८) असैं पचेंद्रिय के चौवीस (२४) होइ । असैं लब्धि अपर्याप्तकनि का निरतर क्षुद्रभवनि का परिमाण कह्या ।

अव एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक के निरन्तर क्षुद्रभव कहे, तिनकी सख्या स्वामीनि की अपेक्षा कहै है –

पुढविदगागणिमारुद, साहारणथूलसुहमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य, एक्केक्के बार खं छक्कं ।। १२५ ।।

पृथ्वीदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः ।
एतेषु अपूर्णेषु च एकैकस्मिन् द्वादश खं षट्कम् ।। १२५ ।।

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पति इनि – पांचों के सूक्ष्म-बादर करि दश भेद भये अर एक प्रत्येक वनस्पती – इनि ग्यारह लब्धि अपर्याप्तकनि विषै एक-एक भेद विषै बारह, बिंदी, छह इनि अंकनिकरि छह हजार बारह (६०१२) निरंतर क्षुद्रभव जानने । पूर्वें निरंतर क्षुद्रभव एकेंद्रिय के छयासठि हजार एक सौ बत्तीस कहे । तिनिकौं ग्यारह का भाग दीए एक-एक के छह हजार बारह क्षुद्र भवनि का प्रमाण आवै है । असें लब्धि अपर्याप्त के निरंतर क्षुद्रभव कहे, तहां तिनकी सख्या वा काल का निर्णय करने कौं च्यारि प्रकार अपवर्तन त्रैराशिक करि दिखावै हैं । सो त्रैराशिक का स्वरूप ग्रंथ का पीठबंध विषै कह्या था, सो जानना । सो यहां दिखाइये है – जो एक क्षुद्रभव का काल सांस का अठारहवां भाग होइ, तो छयासठि हजार तीन सौ छत्तीस निरंतर क्षुद्रभवनि का कितना काल होइ ? तहां प्रमाण राशि १, फलराशि एक का अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$ अर इच्छा राशि छयासठि हजार तीन सैं छत्तीस (६६३३६), तहां फल कौं इच्छा करि गुणैं प्रमाण का भाग दिए लब्ध राशि विषै छत्तीस सैं पिच्यासी अर एक का त्रिभाग $3685\frac{1}{3}$ इतना उस्वास भए; असें सब क्षुद्रभवनि का काल का परिमाण भया । यहां इतने प्रमाण अंतर्मुहूर्त्त जानना । जातै असा वचन है, उक्तम् च–

आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिप्रमितैः ।
आहुर्मुहूर्तमंतर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः ।।

याका अर्थ – सुखी, धनवान, आलस रहित, निरोगी मनुष्य का सैंतीस सैं तेहत्तरि (३७७३) उस्वासनि का एक मुहूर्त; तहां अठयासी उस्वास अर एक उस्वास का तीसरा भाग (हीन) घटाए सर्व क्षुद्रभवनि का काल अंतर्मुहूर्त होइ । बहुरि उक्तम् च–

आयुरंतर्मुहूर्तः स्यादेषोस्याष्टादशांशकः ।
उच्छ्वासस्य जघन्य च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ।।

याका अर्थ – लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य तिर्यचनि का आयु एक उस्वास का अठारहवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त मात्र है । सो असैं कह्या सांस का अठारहवा भाग

काल का एक क्षुद्रभव होइ, तौ छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग प्रमाण उसासनि का कितना क्षुद्रभव होइ? इहां प्रमाण राशि $\frac{1}{18}$, फलराशि १, इच्छाराशि ३६८५ $\frac{1}{3}$ यथोक्त करते लब्ध राशि छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) क्षुद्रभवनि का परिमाण आया। बहुरि जो छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभवनि का काल छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग इतना उस्वास होइ, तौ एक क्षुद्रभवनि का कितना कालहोइ? इहां प्रमाण राशि ६६३३६, फलराशि ३६८५ $\frac{1}{3}$, इच्छा राशि १, यथोक्त करतां लब्ध राशि एक सांस का अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$ एक क्षुद्रभव का काल भया। बहुरि छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग ३६८५ $\frac{1}{3}$ इतना सांस का छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभव होंइ, तौ सांस का अठारहवां भाग का कितना क्षुद्रभव होइ ? इहां प्रमाण राशि ६३८५ $\frac{1}{3}$, फल राशि ६६३३६, इच्छा राशि एक का अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$, यथोक्त करतां लब्ध राशि १ क्षुद्रभव हुआ। इहां सर्व फल राशि कौं इच्छा राशि करि गुणना, प्रमाण राशि का भाग देना, तब लब्ध राशि प्रमाण हो है। ऐसै एक क्षुद्रभव का काल समस्त क्षुद्रभव, समस्त क्षुद्रभव का काल इनिकौं क्रम तै प्रमाण राशि करने तैं च्यारि प्रकार त्रैराशिक किया है। और भी जायगा जहां त्रैराशिक का वर्णन होइ, तहां ऐसैं ही यथासंभव जानना।

आगें समुद्घातकेवली के अपर्याप्तपनैं का संभव कहै हैं -

पज्जत्तसरीरस्स य, पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं, अपुण्णजोगोत्ति णिद्दिट्ठं ॥१२६॥

पर्याप्तशरीरस्य च, पर्याप्त्युदयस्य काययोगस्य।
योगिनोऽपूर्णत्वमपूर्णयोगः इति निर्दिष्टम् ॥१२६॥

टीका - संपूर्ण परम औदारिक शरीर जाकैं पाइए, बहुरि पर्याप्ति नामा नामकर्म का उदय करि संयुक्त, बहुरि काययोग का धारी - ऐसा जो सयोगकेवली भट्टारक, ताके समुद्घात करतै कपाट का करिवा विषै अर संहार विषै अपूर्ण काययोग कह्या है। जातै तहां संज्ञी पर्याप्तवत् पर्याप्तिनि का आरंभ करि क्रम तै निष्ठा-

पन करै है । तातै औदारिक मिश्र काययोग का धारी केवली भगवान, सो कपाट युगल का काल विषैं अपर्याप्तपना कौ भजैं है, ऐसा सिद्धात विषै कह्या है ।

आगै लब्धि अपर्याप्तकादि जीवनि कै गुणस्थाननि का सभवने-असंभवने का विशेष कहै है –

लद्धिअपुण्णं मिच्छे, तत्थवि विदिये चउत्थ-छट्ठे य ।
णिव्वत्तिअपज्जत्ती, तत्थ वि सेसेसु पज्जत्ती ।। १२७ ।।

लब्ध्यपूर्ण मिथ्यात्वे, तत्रापि द्वितीये चतुर्थषष्ठे च ।
निर्वृत्यपर्याप्तिस्तत्रापि शेषेषु पर्याप्तिः ।। १२७ ।।

टीका – लब्धि अपर्याप्तक जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै ही पाइए है, और गुणस्थान वाकै संभवै नाही; जातै सासादनपना आदि विशेष गुणनि का ताकै अभाव है । बहुरि तीहि पहिला मिथ्यादृष्टि विषै, दूसरा सासादन विषै, चौथा असंयत विषै, छठा प्रमत्त विषै – इनि चारों गुणस्थाननि विषै निर्वृत्ति अपर्याप्तक पाइए है । तहां पहला वा चौथा सू तो मरि करि जीव चारों गतिनि विषै उपजै है । अर सासादन सौ मरिकरि नरक विना तीनि गतिनि विषै उपजै है । सो इनि तीनो गुणस्थान विषै जन्म का प्रथम समय तै लगाइ यावत् औदारिक, वैक्रियिक शरीर पर्याप्त पूर्ण न होइ, तावत् एक समय घाटि शरीर पर्याप्ति का काल पर्यत निर्वृत्ति अपर्याप्तक है । बहुरि प्रमत्त गुणस्थान विषै यावत् आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होइ, तावत् एक समय घाटि आहारक शरीर पर्याप्ति काल पर्यत निर्वृत्ति अपर्याप्तक है । बहुरि इन कहे चारो गुणस्थाननि विषै अर अवशेष रहे मिश्रादिक सयोगी पर्यन्त नव गुणस्थान विषै पर्याप्तक जीव पाइए है, जातै ताका कारणभूत पर्याप्ति नामा नामकर्म का उदय सर्वत्र संभवै है ।

भावार्थ – लब्धि अपर्याप्तकनि के गुणस्थान एक पहिला, निर्वृत्ति अपर्याप्तकनि के गुणस्थान च्यारि – पहिला, दूसरा, चौथा, छठ्ठा; पर्याप्तनि कै गुणस्थान सर्वसयोगी पर्यन्त जानना ।

आगै अपर्याप्त काल विषै सासादन अर असंयत गुणस्थान जहां नियम करि न संभवै, सो कहै है –

हेट्ठिमछप्पुढवीणं, जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं ।
पुण्णिदरे णहि सम्मो, ण सासणो णारयापुण्णे ।। १२८ ।।

अधस्तनषट्पृथ्वीनां, ज्योतिष्कवानभवनसर्वस्त्रीणाम् ।
पूर्णेतरस्मिन् नहि सम्यक्त्वं न सासनो नारकापूर्णे ।। १२८ ।।

टीका – नरक गति विषै रत्नप्रभा विना छह पृथ्वी संबंधी नारकीनि के अर ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी देवनि के अर सर्व ही स्त्री – देवांगना, मनुष्यणी, तिर्यचनी, तिनिकै निर्वृत्ति अपर्याप्त दशा विषै सम्यक्त्व न पाइए । जातै तीहि दशा विषै सम्यक्त्व ग्रहण कौ योग्य काल नाही । अर सम्यक्त्व सहित मरै तिर्यच मनुष्य, सो तहां उपजै नाही । बहुरि सम्यक्त्व तै भ्रष्ट होइ जो जीव मिथ्यादृष्टि वा सासादन होइ, तो तिनिका यथासंभव तहां नरकादि विषै उपजने का विरोध है नाही । बहुरि सर्व ही सातो पृथ्वी के नारकी, तिनिकै निर्वृत्ति अपर्याप्त दशा विषै सासादन गुणस्थान न पाइए, ऐसा नियम जानना । जातै नरक विषै उपज्या जीव के तिस काल विषै सासादनपने का अभाव है ।

इति श्री आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसंग्रह ग्रथ जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा सस्कृत टीका के अनुसार इस सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै पर्याप्ति प्ररूपण नामा तीसरा अधिकार पूर्ण भया ।। ३ ।।

चौथा अधिकार : प्राण प्ररूपणा

अभिनंदन वंदौ सदा, त्रेसठि प्रकृति खिपाय ।
जगतनमतपद पाय, जिनधर्म कह्यो सुखदाय ।।

अथ प्राण प्ररूपणा कौ निरूपै हैं —

बाहिरपाणेहिं जहा, तहेव अब्भंतरेहिं पाणेहिं ।
पाणंति जेहिं जीवा, पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ।। १२६ ।।

बाह्यप्राणैर्यथा, तथैवाभ्यंतरैः प्राणैः ।
प्राणंति यैर्जीवाः, प्राणास्ते भवन्ति निर्दिष्टाः ।। १२९ ।।

टीका –जिनि अभ्यंतर भाव प्राणनि करि जीव हैं, ते प्राणंति कहिए जीवै है; जीवन के व्यवहार योग्य हो है, कौनवत् ? जैसै बाह्य द्रव्य प्राणनि करि जीव जीवै है, जातै यथा शब्द दृष्टातवाचक है; तातै जे आत्मा के भाव है, तेई प्राण हैं अैसा कह्या है । अैसे कहने ही करि प्राण शब्द का अर्थ का जानने का समर्थपणा हो है, तातै तिस प्राण का लक्षण जुदा न कह्या है । तहा पुद्गल द्रव्य करि निपजे जे द्रव्य इद्रियादिक, तिनके प्रवर्तनरूप तो द्रव्य प्राण है । बहुरि तिनिका कारणभूत ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय के क्षयोपशमादिक तै प्रकट भए चैतन्य उपयोग के प्रवर्तनरूप भाव प्राण हैं ।

इहां प्रश्न – जो पर्याप्ति अर प्राण विषै भेद कहा ?

ताका समाधान – पंच इद्रियनि का आवरण का क्षयोपशम तै निपजे अैसे पाच इंद्रिय प्राण है । बहुरि तिस क्षयोपशम तै भया जो पदार्थनि के ग्रहण का समर्थपना, ताकरि जन्म का प्रथम समय तै लगाइ अतर्मुहूर्त ऊपरि निपजै अैसी इद्रिय पर्याप्ति है । इहां कारण-कार्य का विशेष है ।

बहुरि मन सम्बन्धी ज्ञानावरण का क्षयोपशम का निकट तै प्रगट भई अैसी मनोवर्गणा करि निपज्या द्रव्य मन करि निपजी जो जीव की शक्ति, सो अनुभया पदार्थ को ग्रहण करि उपजी, सो अंतर्मुहूर्त मनःपर्याप्ति काल के अन्ति सपूर्ण भई,

असी मन.पर्याप्ति है । बहुरि अनुभया पदार्थ का ग्रहण करना अर अनुभया पदार्थ का ग्रहण करने का योग्यपना का होना, सो मन.प्राण है ।

वहुरि नोकर्मरूप शरीर का संचयरूप शक्ति की जो संपूर्णता, सो जीव के योग्य काल विषै प्राप्त भई जो भाषा वर्गणा, तिनिकौ विशेष परिणमन की करण-हारी, सो भाषा पर्याप्ति है ।

वहुरि स्वर नामा नामकर्म का उदय है सहकारी जाका, असी भाषा पर्याप्ति पूर्ण भए पीछै वचन का विशेषरूप उपयोगादिक का परिणमावना, तीहि स्वरूप वचन प्राण है ।

वहुरि कायवर्गणा का अवलबन करि निपजी जो आत्मा के प्रदेशनि का समु-च्चयरूप होने की शक्ति, सो कायबल प्राण है ।

वहुरि खल भाग, रस भागरूप परिणए नोकर्मरूप पुद्गलनि कौ हाड आदि स्थिररूप अर रुधिर आदि अस्थिररूप अवयव करि परिणमावने की शक्ति का संपूर्ण होना, सो जीव के शरीर पर्याप्ति है ।

वहुरि उस्वास-निस्वास के निकसने की शक्ति का निपजना, सो आनपान पर्याप्ति है । वहुरि सासोस्वास का परिणमन, सो सासोस्वास प्राण है । असे कारण-कार्यादि का विशेष करि पर्याप्ति अर प्राणनि विषै भेद जानना ।

आगे प्राण के भेदनि कौ कहै है –

पंचवि इंदियपाणा, मणवचकायेसु तिण्णि बलपाणा ।
आणापाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥१३०॥

पंचापि इंद्रियप्राणाः, मनोवचःकायेषु त्रयो बलप्राणाः ।
आनपानप्राणा, आयुष्कप्राणेन भवंति दश प्राणाः ॥१३०॥

टीका – पांच इंद्रिय प्राण है – १. स्पर्शन, २. रसन, ३. घ्राण, ४. चक्षु, ५. श्रोत्र । वहुरि तीन वलप्राण है – १. मनोवल, २. वचनवल ३. कायबल । बहुरि एक आनपान कहिए सासोस्वास प्राण है । वहुरि एक आयु प्राण है । ऐसे प्राण दश है, अधिक नाही है ।

आगे तिनि द्रव्य-भाव प्राणनि का उपजने की सामग्री कौ कहै है –

वीरियजुदमदिखउवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला ।
देहुदये कायाणा, वचीबला आउ आउदये ॥ १३१ ॥

वीर्ययुतमतिक्षयोपशमोत्था नोइन्द्रियेंद्रियेषु बलाः ।
देहोदए कायानौ, वचोबल आयुः आयुरुदये ॥१३१॥

टीका – स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र करि निपजे पांच इद्रिय प्राण अर नो इंद्रिय करि निपज्या एक मनोबल प्राण, ए छहो तो मतिज्ञानावरण अर वीर्यान्त-राय, तिनके क्षयोपशम तै हो है । बहुरि शरीर नामा नामकर्म के उदय होतै काय-बल अर सासोस्वास प्राण हो है । बहुरि शरीर नामा नामकर्म का उदय होतै अर स्वर नामा कर्म का उदय होतै वचनबल प्राण हो है । बहुरि आयुकर्म का उदय होतै आयु प्राण हो है । असैं प्राणनि के उपजने की सामग्री कही ।

आगे ए प्राण कौन-कौन के पाइए सो भेद कहै है –

इंदियकायाऊणि य, पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
बीइंदियादिपुण्णे, वचीमणो सण्णिपुण्णेव ॥१३२॥

इन्द्रियकायायूषि च, पूर्णापूर्णेषु पूर्णके आनः ।
द्वीन्द्रियादिपूर्णे, वचो मनः संज्ञिपूर्णे एव ॥ १३२ ॥

टीका – इंद्रिय प्राण, कायबल प्राण, आयु प्राण – ए तो तीन प्राण पर्याप्ति वा अपर्याप्ति दोऊ दशा विषै समान पाइए है । बहुरि सासोस्वास प्राण पर्याप्ति दशा विषै ही पाइए, जातै ताका कारण उच्छवास निश्वास नामा नाम कर्म का उदय पर्याप्त काल विषै सभवै है । बहुरि वचनबल प्राण बेइद्रियादिक पचेन्द्रिय पर्यंत जीवनि कै पर्याप्त दशा ही विषै पाइए है, जातै ताका कारणभूत स्वर नामा नामकर्म का उदय अन्यत्र न सभवै है । बहुरि मनबल प्राण सैनी पचेद्रिय के पर्याप्त दशा विषै ही पाइए है, जातै ताका कारण वीर्यान्तराय अर मन आवरण का क्षयोपशम, सो अन्यत्र न सभवै है ।

आगै एकेंद्रियादिक जीवनि के केते-केते प्राण पाइए, सो कहै है –

दस सण्णीणं पाणा, सेसेगूणंतिमस्स बेऊणा ।
पज्जत्तेसिदरेसु य, सत्त दुगे सेसगेगूणा ॥ १३३ ॥

दश संज्ञिनां प्राणाः शेषैकोनमंतिमस्य व्यूनाः ।
पर्याप्तिष्वितरेषु च, सप्त द्विके शेषकैकोनाः ॥१३३॥

टीका – पहिलै कह्या जो प्राणनि के स्वामीनि का नियम, ताही करि असें भेद पाइए है, सो कहिए है । सैनी पचेंद्री पर्याप्त के तौ दश प्राण सर्व ही पाइए । पीछै अवशेष असंज्ञी आदि द्वीद्रिय पर्यन्त पर्याप्त जीवनि के एक-एक घाटि प्राण पाइए । तहा असैनी पचेंद्रिय के मन विना नव प्राण पाइए । चौइंद्रिय के मन अर कर्ण इंद्रिय विना आठ प्राण पाइए , तेइंद्रिय के मन, कर्ण, नेत्र इंद्रिय विना सात प्राण पाइए । द्वीन्द्रिय के मन, कर्ण, नेत्र, नासिका विना छह प्राण पाइए । वहुरि अंतिम एकेंद्रिय विषै द्वीन्द्रिय के प्राणनि तै दोय घटावना, सो मन, कर्ण, नेत्र, नासिका अर रसना इंद्रिय अर वचनवल, इनि विना एकेंद्रिय के च्यारि ही प्राण पाइए हैं । असें ए प्राण पर्याप्त दशा की अपेक्षा कहे ।

अव इतर जो अपर्याप्त दशा, ताकी अपेक्षा कहिए है – सैनी वा असैनी पचेंद्रिय के तौ सात-सात प्राण है । जातै पर्याप्तकाल विषै संभवै असे सासोस्वास, वचन वल, मनोवल ए तीन प्राण तहा न होइ । वहुरि चौइंद्रिय कै श्रोत्र विना छह पाइए, तेंद्री के नेत्र विना पाच पाइए, वेंद्री के नासिका विना च्यारि पाइए, एकेंद्री के रसना विना तीन पाइए, असें प्राण पाइए है ।

इति श्री आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा इस भाषाटीका विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनि विषै प्राण प्ररूपणा नामा चौथा अधिकार संपूर्ण भया ॥ ४ ॥

पाँचवां अधिकार : संज्ञा प्ररूपणा

मंगलाचरण

गुण अनंत पाए सकल, रज रहस्य अरि जीति ।
दोषरहित जगस्वामि सो, सुमति नमौ जुत प्रीति ।।

अथ संज्ञा प्ररूपणा कहै है —

इह जाहि बाहयावि य, जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंतावि य उभये, ताओ चत्तारि सण्णाओ ।। १३४ ।।

इह याभिर्बाधिता अपि च, जीवाः प्राप्नुवंति दारुणं दुक्खं ।
सेवमाना अपि च, उभयस्मिन ताश्चतस्रः संज्ञाः ।। १३४ ।।

टीका – आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इनिके निमित्त तै जो वांछा होइ, ते च्यारि संज्ञा कहिए । सो जिनि संज्ञानि करि बाधित, पीडित हुए जीव ससार विषै विषयनि कौ सेवते भी इहलोक अर परलोक विषै तिनि विषयनि की प्राप्ति वा अप्राप्ति होतै दारुण भयानक महा दुःख कौ पावै है, ते च्यारि सज्ञा जाननी। वाछा का नाम सज्ञा है । वांछा है, सो सर्व दुःख का कारण है ।

आगे आहार संज्ञा उपजने के बाह्य, अभ्यंतर कारण कहै है –

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए ।
सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसण्णा हु ।। १३५ ।।

आहारदर्शनेन च, तस्योपयोगेन अवमकोष्ठतया ।
सातेतरोदीरणया, भवति हि आहारसंज्ञा हि ।। १३५ ।।

टीका – विशिष्ट अन्नादिक च्यारि प्रकार आहार का देखना, बहुरि आहार का यादि करना, कथा सुनना इत्यादिक उपयोग का होना, बहुरि कोठा जो उदर, ताका खाली होनो क्षुधा होनी ए तौ बाह्य कारण है । बहुरि असाता वेदनीय कर्म का तीव्र उदय होना वा उदीरणा होनी अतरंग कारण है । इनि कारणनि तै आहार

संज्ञा हो है । आहार कहिए अन्नादिक, तीहिविषैं संज्ञा कहिए वांछा, सो आहार संज्ञा जाननी ।

आगै भय संज्ञा उपजने के कारण कहै है –

अइभीमदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए ।
भयकम्मुदीरणाए, भयसण्णा जायदे चदुहिं ॥१३६॥

अतिभीमदर्शनेन, च, तस्योपयोगेन अवमसत्वेन ।
भयकर्मोदीरणया, भयसंज्ञा जायते चतुर्भिः ॥१३६॥

टीका – अतिभयकारी व्याघ्र आदि वा क्रूर मृगादिक वा भूतादिक का देखना वा उनकी कथादिक का सुनना, उनकौं यादि करना इत्यादिक उपयोग का होना, वहुरि अपनी हीन शक्ति का होना ए तौ वाह्य कारण हैं । वहुरि भय नामा नोकषाय-रूप मोह कर्म, ताका तीव्र उदय होना, यहु अंतरंग कारण है । इनि कारणनि करि भय संज्ञा हो है । भय करि भई जो भागि जाना, छिपि जाना इत्यादिक रूप वांछा, सो भय संज्ञा कहिए ।

आगै मैथुन संज्ञा उपजने के कारण कहै हैं –

पणिदरसभोयणेण य, तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए, मेहुसण्णा हवदि एवं ॥ १३७ ॥

प्रणीतरसभोजनेन च, तस्योपयोगे कुशीलसेवया ।
वेदस्योदीरणया, मैथुनसंज्ञा भवति एवं ॥ १३७ ॥

टीका – वृष्य जो कामोत्पादक गरिष्ठ भोजन, ताका खाना अर काम कथा का सुनना अर भोगे हुवे काम विषयादिक का यादि करना इत्यादिकरूप उपयोग होना, बहुरि कुशीलवान कामी पुरुषनि करि सहित संगति करनी, गोष्ठी करनी ए तौ वाह्य कारण हैं । बहुरि स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदनि विषै किसी ही वेदरूप नोकषाय की उदीरणा सो अंतरंग कारण है । इनि कारणनि तैं मैथुन संज्ञा हो है । मैथुन जो कामसेवन-रूप स्त्री-पुरुष का युगल सम्बन्धी कर्म, तीहिविषैं वांछा, मैथुनसंज्ञा जाननी ।

आगै परिग्रह संज्ञा उपजने के कारण कहै हैं –

उवयरणदंसणेण य, तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ।। १३८ ।।

उपकरणदर्शनेन च, तस्योपयोगेन मूर्छितायै च ।
लोभस्योदीरणया परिग्रहे जायते संज्ञा ।। १३८ ।।

टीका – धन-धान्यादिक बाह्य परिग्रहरूप उपकरण सामग्री का देखना अर तीहि धनादिक की कथा का सुनना, यादि करना इत्यादिक उपयोग होना, मूर्छित जो लोभी, ताकै परिग्रह उपजावने विषै आसक्तता, ताका इस जीव सहित सम्बन्धी होना इत्यादिक बाह्य कारण है । बहुरि लोभ कषाय की उदीरणा, सो अंतरंग कारण है । इनि कारणनि करि परिग्रह संज्ञा हो है । परिग्रह जो धन-धान्यादिक, तिनिके उपजावने आदिरूप वांछा, सो परिग्रह संज्ञा जाननी ।

आगै ए संज्ञा कौनके पाइए, सो भेद कहै है –

णट्ठपमाए पढमा, सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि णहि कज्जे ।।१३९।।

नष्टप्रमादे प्रथमा, संज्ञा नहि तत्र कारणाभावात् ।
शेषाः कर्मास्तित्वेन उपचारेण संति नहि कार्ये ।।१३९।।

टीका – नष्ट भये है प्रमाद जिनिके, ऐसे जे अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती जीव, तिनिकै प्रथम आहार सज्ञा नाही है । जातै आहार संज्ञा का कारणभूत जो असाता वेदनीय की उदीरणा, ताकी व्युच्छित्ति प्रमत्त गुणस्थान ही विषै भई है; तातै कारण के अभाव तै कार्य का भी अभाव है । ऐसे प्रमाद रहित जीवनि कै पहिली सज्ञा नाही है । बहुरि इनि कै जो अवशेष तीन संज्ञा है, सो भी उपचार मात्र है; जातै उन सज्ञानि का कारणभूत जे कर्म, तिनि का उदय पाइए है; तीहि अपेक्षा है । बहुरि ते भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा अप्रमादी जीवनि के कार्यरूप नाही है ।

इति श्री आचार्य नेमिचद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषा टीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा, तिनिविषै संज्ञा प्ररूपणा नाम पंचम अधिकार सम्पूर्ण भया ।।५।।

———

छठवां अधिकार : गति प्ररूपणा

पद्मप्रभ जिनकौं भजौं, जीति घाति सब कर्म ।
गुण समूह फुनि पाय जिनि, प्रगट कियो हितधर्म ।।

आगै अरहंतदेव कौं नमस्काररूप मंगलपूर्वक मार्गणा महा अधिकार प्ररूपण की प्रतिज्ञा करै हैं –

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता ।
मग्गणमहाहियारं, विविहहियारं भणिस्सामो ।।१४०।।

धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिवलं जिनं नमस्कृत्वा ।
मार्गणामहाधिकारं, विविधाधिकारं भणिष्यामः ।।१४०।।

टीका – हम जो ग्रंथकर्ता, ते नानाप्रकार का गति, इंद्रियादिक अधिकार संयुक्त जो मार्गणा का महा अधिकार ताहि कहैंगे, अैसी आचार्य प्रतिज्ञा करी । कहा करिके ? जिन जो अर्हन्त भट्टारक, तिसहिं नमस्कार करिकैं । कैसा है जिन भगवान ? रत्नत्रय स्वरूप धर्म, सोही भया धनुष, बहुरि ताका उपकारी जे ज्ञानादिक धर्म, ते ही भए गुण कहिये चिल्ला, बहुरि ताके आश्रयभूत जे चौदह मार्गणा, तेही भए मार्गण कहिए बाण, तिनिकरि हत्या है मोहनीय कर्मरूप अरि कहिये वैरी का बल जानैं, ऐसा जिन-देव है ।

आगै मार्गणा शब्द की निरुक्ति ने लिया लक्षण कहै हैं –

जाहि व जासु व जीवा, मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोदस जाणे, सुयणाणे मग्गणा होंति ।।१४१।।[1]

याभिर्वा यासु वा, जीवा मृग्यंते यथा तथा दृष्टाः ।
ताश्चतुर्दश जानीहि, श्रुतज्ञाने मार्गणा भवति ।।१४१।।

---

1 षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १३३, गाथा ८५.

टीका – जैसैं श्रुतज्ञान विषै उपदेश्या तैसैं ही जीव नाम्ना पदार्थ, जिनकरि वा जिनिविषैं जानिए, ते चौदह मार्गणा है। पूर्वैं तौ सामान्यता करि गुणस्थान जीव-समास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा इनिकरि त्रिलोक के मध्यवर्ती समस्त जीव लक्षण करि वा भेद करि विचारे।

बहुरि अब विशेषरूप गति-इद्रियादि मार्गणानि करि तिन ही कौं विचारै है, अैसे हे शिष्य, तू जानि। गति आदि जे मार्गणा जब एक जीव कैं नारकादि पर्यायनि की विवक्षा लीजिए, तब तौ जिनि मार्गणानि करि जीव जानिए अैसैं तृतीया विभक्ति करि कहिए। बहुरि जब एक द्रव्य प्रति पर्यायनि के अधिकरण की विवक्षा 'इनि विषै जीव पाइए है' अैसी लीजिए, तब जिनि मार्गणानि विषै जीव जानिए अैसैं सप्तमी विभक्ति करि कहिए। जातै विवक्षा के वश तै कर्ता, कर्म इत्यादि कारकनि की प्रवृत्ति है ऐसा न्याय का सद्भाव है।

आगै तिनि चौदह मार्गणानि के नाम कहै है –

गइइंदियेसु काये, जोगे वेदे कसायणाणेय।
संजमदंसणलेस्सा-भविया-सम्मत्तसण्णि-आहारे ॥१४२॥

गतींद्रियेषु काये, योगे वेदे कषायज्ञाने च।
संयमदर्शनलेश्याभव्यतासम्यक्त्वसंज्ञ्याहारे ॥ १४२ ॥

टीका – १. गति, २. इद्रिय, ३. काय, ४. योग, ५. वेद, ६. कषाय, ७ ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लेश्या, ११. भव्य, १२. सम्यक्त्व, १३. सज्ञी, १४ आहार अैसे ए गति आदि पद है। ते तृतीया विभक्ति वा सप्तमी विभक्ति का अंत लीए है। तातै गति करि वा गति विषै इत्यादिक अैसैं व्याख्यान करने। सो इनिकरि वा इनिविषै जीव मार्ग्यन्ते कहिए जानिये, ते चौदह मार्गणा जैसे अनुक्रम करि नाम है, तैसैं कहैगे।

आगै तिनिविषै आठ सांतर मार्गणा है, तिनिका स्वरूप, संख्या, विधान निरूपण के अर्थि गाथा तीन कहै है –

उवसमसुहमाहारे, वेगुव्वियमिस्स णरअपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से, सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥ १४३ ॥

सत्तदिणाछम्मासा, वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं, वरमवरं एगसमयो दु ।।१४४।।

उपशमसूक्ष्माहारे, वैगूर्विकमिश्रनरापर्याप्ते ।
सासनसम्यक्त्वे मिश्रे, सांतरका मार्गणा अष्ट ।।१४३।।

सप्तदिनानि षण्मासा, वर्षपृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्ताः ।
पल्यासंख्यं त्रयाणां, वरमवरमेकसमयस्तु ।। १४४ ।।

टीका – नाना जीवनि की अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान नै छोडि, अन्य कोई गुणस्थान वा मार्गणास्थान में प्राप्त होइ, बहुरि उस ही विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान कौ यावत् काल प्राप्त न होइ, तिसकाल का नाम अंतर है ।

सो उपशम सम्यग्दृष्टी जीवनि का लोक विषै नाना जीव अपेक्षा अंतर सात दिन है । तीन लोक विषै कोऊ जीव उपशम सम्यक्त्वी न होइ तो उत्कृष्टपनैं सात ताई न होइ, पीछै कोऊ होय ही होय । ऐसैं ही सब का अंतर जानना ।

बहुरि सूक्ष्म सांपराय संयमी, तिनिका उत्कृष्ट अंतर छह महीना है । पीछै कोऊ होय ही होय ।

बहुरि आहारक अर आहारकमिश्र काययोगवाले, तिनिका उत्कृष्ट अंतर वर्ष पृथक्त्व का है । तीन तैं ऊपर अर नव तैं नीचै पृथक्त्व संज्ञा है, तातै यहां तीन वर्ष के ऊपर अर नव वर्ष के नीचै अतर जानना । पीछै कोई होय ही होय ।

बहुरि वैक्रियिकमिश्र काययोगवाले का उत्कृष्ट अंतर बारह मुहूर्त का है, पीछै कोऊ होय ही होय ।

बहुरि लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर सासादन गुणस्थानवर्ती जीव अर मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव, इनि तीनों का अतर एक-एक का पल्य के असंख्यातवे भाग मात्र जानना, पीछै कोई होय ही होय । ऐसे ए सांतर मार्गणा आठ है । इनि सवनि का जघन्य अतर एक समय जानना ।

पढमुवसमसहिदाए, विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा ।
विरदीए पण्णरसा, विरहिदकालो दु बोधव्वो ।।१४५।।

प्रथमोपशमसहितायाः, विरताविरतेश्चतुर्दश दिवसाः ।
विरतेः पंचदश, विरहितकालस्तु बोद्धव्यः ।। १४५ ।।

टीका – विरह काल कहिए उत्कृष्ट अंतर, सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व करि संयुक्त जे विरताविरत पंचम गुणस्थानवर्ती जीव, तिनिका चौदह दिन का जानना । बहुरि तिस प्रथमोपशम सम्यक्त्व सयुक्त षष्टमादि गुणस्थानवर्ती, तिनिका पंद्रह दिन जानना । वा दूसरा सिद्धान्त की अपेक्षा करि चौवीस दिन जानना । असै नाना जीव अपेक्षा अंतर कह्या । बहुरि इनि मार्गणानि का एक जीव अपेक्षा अन्तर अन्य ग्रन्थ के अनुसारि जानना ।

यहा प्रसंग पाइ कार्यकारी जानि, तत्त्वार्थसूत्र की टीका के अनुसारि काल अन्तर का कथन करिए है ।

तहां प्रथम काल का वर्णन दोय प्रकार – नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा ।

तहां विवक्षित गुणस्थाननि का वा मार्गणास्थाननि विषै संभवते गुणस्थाननि का सर्व जीवनि विषै कोई जीव कै जेता काल सद्भाव पाइए, सो नाना जीव अपेक्षा काल जानाना । अर तिनही का विवक्षित एक जीव कै जेते काल सद्भाव पाइए, सो एक जीव अपेक्षा काल जानना ।

तिनिविषै प्रथम नाना जीव अपेक्षा काल कहिए है, सो सामान्य-विशेष करि दोय प्रकार । तहां गुणस्थाननि विषै कहिए सो सामान्य अर मार्गणा विषै कहिए सो विशेष जानना ।

तहां सामान्य करि मिथ्यादृष्टि, असयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, सयोग केवलनि का सर्व काल है । इनिका कबहू अभाव होता नाही । बहुरि सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवा भाग । बहुरि मिश्र का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग । बहुरि च्यारो उपशम श्रेणी वालो का जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त । इहां जघन्य एक समय मरण अपेक्षा कह्या है । बहुरि च्यारों क्षपकश्रेणीवाले अर अयोग केवलीनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र काल है ।

अब विशेष करि कहिए है । तहा गति मार्गणा विषै सातो पृथ्वीनि के नारकीनि विषै मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है । तिर्यञ्च गति विषै मिथ्यादृष्ट्यादि पंच गुणस्थाननि विषै सामान्यवत् काल है । मनुष्यगति विषै सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त अर मिश्र का जघन्य वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अर अन्य सर्व गुणस्थाननि विषै सामान्यवत् काल है । देवगति विषै मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा अर काय मार्गणा विषै इंद्रिय-काय अपेक्षा सर्वकाल है । गुणस्थान अपेक्षा एकेंद्री, विकलेंद्री, अर पंच स्थावरनि विषै मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है । अर पंचेंद्रिय वा त्रस विषै सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि योग मार्गणा विषै तीनों योगनि मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगी पर्यन्तनि का अर अयोगी का सामान्यवत् काल है । विशेष इतना – मिश्र का जघन्य काल एक समय ही है । अर क्षपकनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र काल है ।

बहुरि वेद मार्गणा विषै तीन वेदनि विषै अर वेदरहित विषै मिथ्यादृष्ट्यादि अनिवृत्तिकरण पर्यन्तनि का वा (ऊपरि) सामान्यवत् काल है ।

बहुरि कषाय मार्गणा विषै च्यारि कषायनि विषै मिथ्यादृष्ट्यादि अप्रमत्त पर्यंतनि का मनोयोगीवत् अर दोय उपशमक वा क्षपक अर केवल लोभयुत सूक्ष्मसांपराय अर अकषाय, इनिका सामान्यवत् काल है ।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषै तीन कुज्ञान, पांच सुज्ञाननि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि संयम मार्गणा विषै सात भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषै च्यारि भेदनि विषै अपने-अपने स्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि लेश्या रहितनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि भव्य मार्गणा विषै दोऊ भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै छह भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – औपशमिक सम्यक्त्व विषै असंयत, देशसंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग अर प्रमत्त, अप्रमत्त का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषै दोऊ भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि आहार मार्गणा विषै आहारक विषै मिथ्यादृष्टचादि सयोगी पर्यन्तनि का सामान्यवत् काल है। अनाहारक विषै मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल, सासादन असंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग, सयोगी का जघन्य तीन समय, उत्कृष्ट संख्यात समय, अयोगी का सामान्यवत् काल है।

अब एक जीव अपेक्षा काल कहिए है, तहां प्रथम सामान्य करि मिथ्यादृष्टि का काल विषै तीन भंग – अनादि अनंत, अनादि सांत, सादि सांत। तहां सादि सांत काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र है। किंचित हीन का नाम देशोन जानना। बहुरि सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवली; मिश्र का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; बहुरि असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर, संयतासंयत का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व; प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त; च्यारौ उपशम श्रेणीवालों का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; च्यारौ क्षपक श्रेणीवाले वा अयोगिनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, सयोगी का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व काल है।

अब विशेष करि कहिए है – गति मार्गणा विषै सातौ पृथ्वीनि के नारकीनि विषै मिथ्यादृष्टि का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट क्रम तै एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस, तेतीस सागर। सासादन मिश्र का सामान्यवत्, असयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन; मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट कालप्रमाण काल है।

तिर्यचगति विषै – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र अनंत काल है। सासादन, मिश्र, संयतासंयत का सामान्यवत्, तहां असंयत का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्य काल है।

मनुष्यगति विषै – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक तीन पल्य। सासादन का, मिश्र का सामान्यवत्। असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य, अवशेषनि का सामान्यवत् काल है।

देवगति विषै – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एकतीस सागर; सासादन, मिश्र का सामान्यवत्; असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तेतीस सागर काल हैं।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषै एकेंद्रिय का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि विकलत्रय का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष। पचेंद्रिय विषै मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर। अवशेषनि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि काय मार्गणा विषै पृथ्वी, अप, तेज, वायु का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण काल है। वनस्पतिकाय का एकेंद्रियवत् काल है।

त्रसकाय विषै मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर; अवशेषनि का सामान्यवत् काल है। इहां छह के ऊपरि नव के नीचे, ताका नाम पृथक्त्व जानना। अर उस्वास का अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभव जानना।

बहुरि योग मार्गणा विषै वचन, मन योग विषै मिथ्यादृष्टि, असंयत, संयतासंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त च्यारों उपशमक, क्षपक, सयोगिनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, सासादन-मिश्र का सामान्यवत् काल है। काय योग विषै मिथ्यादृष्टि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन, अवशेषनि का मनोयोगवत् काल है। अयोगि विषै सामान्यवत् काल है।

वेद मार्गणा विषै तीनो वेदनि विषै मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण पर्यंत अर अवेदीनि विषै सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – जो स्त्री वेद विषै मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल पृथक्त्व सौ पल्य प्रमाण अर असंयत का उत्कृष्ट काल देशोन पचावन पल्य है। बहुरि पुरुष वेद विषै मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल पृथक्त्व सौ सागर प्रमाण है। अर नपुसक वेद विषैं मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र अर असंयत का उत्कृष्ट काल देशोन तेतीस सागर काल है।

बहुरि कषाय मार्गणा विषै च्यारो कषायनि विषै मिथ्यादृष्टयादि अप्रमत्त पर्यंत का मनोयोगवत् अर दोऊ उपशमक वा क्षपक वा सूक्ष्म लोभ अर अकषाय इनिका सामान्यवत् काल है ।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषै तीन कुज्ञाननि विषै वा पाच सुज्ञाननि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है । विशेष इतना – विभग विषै मिथ्यादृष्टि का काल देशोन तेतीस सागर है ।

बहुरि संयम मार्गणा विषै सात भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है ।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषै च्यारि भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है । विशेष इतना – चक्षुदर्शन विषै मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल दोय हजार सागर है ।

बहुरि लेश्या मार्गणा विषै छह भेदनि विषै वा अलेश्यानि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है । विशेष इतना – कृष्ण, नील, कापोत विषै मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल क्रम तै साधिक तेतीस, सतरह, सात सागर अर असंयत का उत्कृष्ट काल क्रम तै देशोन तेतीस, सतरह, सात सागर है । अर पीत-पद्म विषै मिथ्यादृष्टि वा असंयत का उत्कृष्ट काल क्रम तै दोय, अठारह सागर है । संयतासंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है । बहुरि शुक्ल लेश्या विषै मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर, संयतासंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त काल है ।

बहुरि भव्य मार्गणा विषै भव्य विषै मिथ्यादृष्टि का अनादि सांत वा सादि सात काल है । तहा सादि सांत जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र है । अवशेषनि का सामान्यवत् काल है । अभव्य विषै अनादि अनत काल है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै छहौ भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है । विशेष इतना – उपशम सम्यक्त्व विषै असयत, सयतासयत का जघन्य वा उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त मात्र है ।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषै संज्ञी विषै मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण पर्यंतनि का पुरुष वेदवत्, अवशेषनि का सामान्यवत् काल है । असंज्ञी विषै मिथ्यादृष्टि का

जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असख्यात पुद्गल परिवर्तन काल है । दोऊ व्यपदेशरहितनि विषै सामान्यवत् काल है ।

बहुरि आहार मार्गणा विषै आहारक विषै मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल प्रमाण जो अगुल का असंख्यातवां भाग, तीहि प्रमाण काल है । अवशेषनि का सामान्यवत् काल है । अनाहारक विषै मिथ्यादृष्टि जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय । सासादन, असयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दोय समय; सयोगी का जघन्य वा उत्कृष्ट तीन समय, अयोगी का सामान्यवत् काल है ।

इहा मार्गणास्थाननि विषै काल कह्या, तहां असा जानना – विवक्षित मार्गणा के भेद का काल विषै विवक्षित, गुणस्थान का सद्भाव जेते काल पाइए, ताका वर्णन है । मार्गणा के भेद का वा तिस विषै गुणस्थान का पलटना भए, तिस काल का अभाव हो है ।

अब अंतर निरूपण करिए है – सो दोय प्रकार, नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा । तहा विवक्षित गुणस्थाननि विषै वा गुणस्थान अपेक्षा लीए मार्गणास्थान विषै कोई ही जीव जेते काल न पाइए, सो नाना जीव अपेक्षा अंतर जानना । बहुरि विवक्षित स्थान विषै जो जीव वर्तै था, सोई जीव अन्य स्थान को प्राप्त होई करि बहुरि तिस ही स्थान को प्राप्त होई, तहां बीचि विषै जेता काल का प्रमाण, सो एक जीव अपेक्षा अंतर जानना ।

तहां प्रथम नाना जीव अपेक्षा कहिए है, सो सामान्य विशेष करि दोय प्रकार । तहां सामान्य करि मिथ्यादृष्टि, असयत, देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, सयोगीनि का अंतर नाहीं है । सासादन का वा मिश्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्य का असख्यातवां भाग मात्र अतर है । च्यारि उपशमकनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अंतर है । च्यारि क्षपकनि का वा अयोगी का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास अंतर है ।

बहुरि विशेष करि गति मार्गणा विषै नारकी, तिर्यच, मनुष्य, देवनि विषै क्रम तें मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि, पांच, चौदह, च्यारि गुणस्थाननि विषै सामान्यवत् जानना ।

बहुरि इद्रिय मार्गणा विषै एकेद्रिय विकलेन्द्रिय का अतर नाही है । पन्चेद्रिय विषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि काय मार्गणा विषै पंच स्थावरनि का अंतर नाही है । त्रस त्रिषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अतर है ।

बहुरि योग मार्गणा विषै तीनो योगनि विषै आदि के तेरह गुणस्थाननि का वा अयोगी का सामान्यवत् अतर है ।

बहुरि वेद मार्गणा विषै तीनो वेदनि विषै आदि के नव गुणस्थाननि वा अवेदीनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना दोऊ क्षपकनि का उत्कृष्ट अंतर स्त्री-नपुसक वेद विषै पृथक्त्व वर्ष मात्र अर पुरुष वेद विषै साधिक वर्ष प्रमाण है ।

बहुरि कषाय मार्गणा विष च्यारि कपायनि विषैं वा अकषायनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – दोय क्षपकनि का उत्कृप्ट अंतर साधिक वर्षमात्र है ।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषै तीन कुज्ञान, पांच सुज्ञाननि विषै अपने-अपने गुण-स्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – अवधि, मन.पर्ययज्ञान विषै क्षप-कनि का उत्कृष्ट अतर साधिक वर्षमात्र है ।

बहुरि संयम मार्गणा विषै सात भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अतर है ।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषै च्यारि भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अतर है । विशेप इतना – अवधि दर्शन विषै क्षपकनि का अंतर साधिक वर्षमात्र है ।

वहुरि लेश्या मार्गणा विषै छहो भेदनि विपैं वा अलेश्या विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अतर है ।

बहुरि भव्य मार्गणा विषै दोय भेदनि विपै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै छह भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत अतर है । विशेप इतना – उपशम सम्यक्त्व विपै असयतादिक का जघन्य

अंतर एक समय है । अर उत्कृष्ट अंतर असंयत का सात दिन-राति, देश संयत का चौदह दिन-राति, प्रमत्त-अप्रमत्त का पद्रह दिन-राति अंतर है ।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषै दोय भेदनि विषै वा दोऊ व्यपदेशरहितनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि आहार मार्गणा विषै दोऊ भेदनि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – अनाहारक विषै असंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व मास ।

सयोगी का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्षमात्र अंतर है ।

अब एक जीव अपेक्षा अतर कहिए है,

सो सामान्य-विशेष करि दोय प्रकार । तहाँ सामान्य करि मिथ्यादृष्टि का अतर जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन दूणां छ्यासठि सागर । बहुरि सासादन का जघन्य पल्य का असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन । बहुरि मिश्र, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, च्यारि उपशमक, इनिका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन । बहुरि च्यारि क्षपक, सयोगी, अयोगी इनिका अंतर नाही है ।

बहुरि विशेष करि गति मार्गणा विषै नारक विषै मिथ्यादृष्टि आदि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर सात पृथ्वीनि विषै क्रम तैं एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस, तेतीस देशोन सागर जानना ।

बहुरि तिर्यञ्चनि विषै मिथ्यादृष्ट्यादि देशसंयत पर्यंतनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अंतर देशोन तीन पल्य है ।

बहुरि मनुष्य गति विषै मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि उपशमक पर्यंत जघन्य अतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर मिथ्यादृष्टि का तिर्यंचवत् । सासादन, मिश्र, असंयत का पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक तीन पल्य, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त । च्यारि उपशमक का पृथक्त्व कोडि पूर्व प्रमाण है । अर क्षपक, सयोगी, अयोगीनि का सामान्यवत् है ।

बहुरि देव विषै मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर देशोन इकतीस सागर है ।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषै एकेंद्रिय का जघन्य अंतर क्षुद्रभव, उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर । विकलेंद्रिय का जघन्य अंतर क्षुद्रभव, उत्कृष्ट अंतर असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है । यहु अंतर एकेंद्रियादिक पर्यायनि का कह्या है, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही है, ताका तहां अंतर है नाही । पंचेंद्रिय विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत्, उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर है । अवशेषनि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि काय मार्गणा विषै पृथ्वी, अप, तेज, वायुकाय का जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन अर वनस्पति का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात लोक मात्र अंतर है । यहु अंतर पृथ्वीकायिकादि का कह्या है, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि है । ताका तहां अंतर है नाही ।

त्रसकायिक विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर अंतर है । अवशेषनि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि योग मार्गणा विषै मन,वचन, काय योगनि विषैं संभवते गुणस्थाननि का वा अयोगी का अंतर नाही, जातै एक ही योग विषै गुणस्थानांतर को प्राप्त होइ करि विवक्षित गुणस्थान विषै प्राप्त होता नाही ।

बहुरि वेद मार्गणा विषै स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदनि विषै मिथ्यादृष्टि आदि दोऊ उपशमक पर्यंत जघन्य अंतर सामान्यवत् है । उत्कृष्ट अंतर स्त्रीवेद विषैं मिथ्यादृष्टि का देशोन पंचावन पल्य, औरनि का पृथक्त्व सौ पल्य पुरुषवेद विषै मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, औरनि का पृथक्त्व सौ सागर । नपुंसकवेद विषै मिथ्यादृष्टि का तेतीस सागर देशोन, औरनि का सामान्यवत् अंतर है । दोय क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है । बहुरि वेदरहितनि विषै उपशम अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है, औरनि का अंतर नाही है ।

बहुरि कषाय मार्गणा विषै क्रोध, मान, माया, लोभ विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि उपशम अनिवृत्तिकरण पर्यंत का मनोयोगवत्, दोय क्षपकनि का अर केवल लोभ विषै सूक्ष्मसांपराय के उपशम वा क्षपक का अर अकषाय विषै उपशांतकषायादि का अंतर नाही है ।

वहुरि ज्ञान मार्गणा विषै कुमति, कुश्रुत, विभग विषै मिथ्यादृष्टि सासादन का अतर नाही। मति, श्रुत, अवधि विषै असयत का अतर जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व। देश संयत का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक छ्यासठि सागर। प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर। च्यारि उपशमकनि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक छ्यासठि सागर। च्यारि क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है। वहुरि मन पर्यय विषै प्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यतनि का सामान्यवत् अतर है। विशेष इतना – प्रमत्त-अप्रमत्त का अतर्मुहूर्त, च्यारि उपशमकनि का देशोन कोडि पूर्व प्रमाण उत्कृष्ट अंतर है। वहुरि केवलज्ञान विषै सयोगी, अयोगी का सामान्यवत् अतर है।

वहुरि संयम मार्गणा विषै सामायिक, छेदोपस्थापन विषै प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अतर्मुहूर्त है। दोऊ उपशमक का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व अर दोऊ क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है। परिहारविशुद्धि विषै प्रमत्त-अप्रमत्त विषै जघन्य वा उत्कृष्ट अतर अतर्मुहूर्त है। सूक्ष्मसापराय विषै उपशमक वा क्षपक का अर यथाख्यात विषै उपशांत कषायादिक का अर सयतासंयत विषै देश सयत का अंतर नाही है। असयम विषै मिथ्यादृष्टि का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन तेतीस सागर। सासादन, मिश्र, असयत का सामान्यवत् अतर है।

वहुरि दर्शन मार्गणा विषै चक्षु, अचक्षुदर्शन विषै मिथ्यादृष्टयादि क्षीणकषाय पर्यन्तनि का सामान्यवत् अतर है। विशेष इतना – चक्षुदर्शन विषै सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यतनि का उत्कृष्ट अतर देशोन दोय हजार सागर है। अवधिदर्शन विषै अवधिज्ञानवत् अतर है। केवलदर्शन विषै सयोगी, अयोगी का अतर नाही है।

वहुरि लेश्या मार्गणा विषै कृष्ण, नील, कापोत विषै मिथ्यादृष्टयादि असयत पर्यतनि का जघन्य अतर सामान्यवत् है। उत्कृष्ट अतर क्रम तै देशोन तेतीस, सतरह, अर सात सागर प्रमाण है। पीत, पद्म विषै मिथ्यादृष्टयादि असयत पर्यतनि का जघन्य अतर सामान्यवत्, उत्कृष्ट अतर क्रम तै साधिक दोय अर अठारह सागर है। देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त का अतर नाही है। शुक्ल लेश्या विषै मिथ्यादृष्टयादि असयत पर्यतनि का जघन्य अतर सामान्यवत् है, उत्कृष्ट अतर देशोन इकतीस सागर है। देशसयत, प्रमत्त का अतर नाही है। अप्रमत्त, तीन उपशमक का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। उपशात कषाय, च्यारि क्षपक, सयोगीनि का अंतर नाही है। अलेश्या विषै अयोगीनि का अतर नाही है।

बहुरि भव्य मार्गणा विषै भव्य विषै सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है। अभव्य विषै मिथ्यादृष्टि का अंतर नाही है।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै क्षायिक सम्यक्त्व विषै असंयतादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयत का देशोन कोडि पूर्व, औरनि का साधिक तेतीस सागर अंतर है। च्यारि क्षपक, सयोगी, अयोगी का अंतर नाही है। क्षायोपशमिक विषै असंयतादि अप्रमत पर्यंतनि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयत का देशोन कोडि पूर्व, देशसंयत का देशोन छयासठि सागर, प्रमत्त-अप्रमत्त का साधिक तेतीस सागर अंतर है। औपशमिक विषै असंयतादि तीन उपशमक पर्यंतनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्तमात्र है। उपशांत कषाय का अंतर नाही है। मिश्र, सासादन, मिथ्यादृष्टि विषै अपने-अपने गुणस्थाननि का अंतर नाही है।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषै संज्ञी विषै मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यन्तनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ सागर, च्यारि क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है। असंज्ञी विषै मिथ्यादृष्टि का अंतर नाही है। उभयरहित विषै सयोगी, अयोगी का अंतर नाही है।

बहुरि आहारक मार्गणा विषै आहारक मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल मात्र सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग अंतर है। च्यारि क्षपक सयोगीनि का अंतर नाही है। अनाहारक विषै मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, सयोगी, अयोगी का अंतर नाही है।

इहां मार्गणास्थान विषै अंतर कह्या है, तहां असा जानना – विवक्षित मार्गणा के भेद का काल विषै विवक्षित गुणस्थान का अंतराल जेते काल पाइए, ताका वर्णन है। मार्गणा के भेद का पलटना भए अथवा मार्गणा के भेद का सद्भाव होतै विवक्षित गुणस्थान का अंतराल भया था, ताकी बहुरि प्राप्ति भए, तिस अंतराल का अभाव हो है। ऐसै प्रसंग पाइ काल का अर अंतर का कथन को कीया है, सो जानना।

आगै इनि चौदह मार्गणानि विषै गति मार्गणा का स्वरूप कौं कहै है —

गइउदयजपज्जाया, चउगइगमणस्स हेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुस, देवगइ त्ति य हवे चदुधा ॥१४६॥

गत्युदयजपर्यायः, चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा हि गतिः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेत् चतुर्धा ॥१४६॥

गम्यते कहिये गमन करिए, सो गति है ।

इहां तर्क – जो ऐसै कहैं गमन क्रियारूप परिणया जीव कौं पावने योग्य द्रव्यादिक कौं भी गति कहना संभवै ।

तहां समाधान – जो ऐसे नाही है, जो गतिनामा नामकर्म के उदय तें जो जीव कै पर्याय उत्पन्न होइ, तिसही कौं गति कहिए । सो गति च्यारि प्रकार – १. नारक गति २. तिर्यंच गति ३. मनुष्यगति ४. देव गति ए च्यारि गति हैं ।

आगे नारक गति कौं निर्देश करै हैं –

ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खेत्ते य काल-भावे य ।
अण्णोण्णेहिं य जह्मा, तह्मा ते णारया भणिया॥[1] १४७॥

नरमंते यतो नित्यं द्रव्य क्षेत्रे च कालभावे च ।
अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारता (का) भणिताः ॥१४७॥

टीका – जा कारण तै जे जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषै अथवा परस्पर में रमैं नाही–जहां क्रीडा न करैं, तहा नरक संबंधी अन्न-पानादिक वस्तु, सो द्रव्य कहिए । बहुरि तहांकी पृथ्वी सो क्षेत्र कहिए । बहुरि तिस गति संबंधी प्रथम समय तैं लगाइ अपनी आयु पर्यंत जो काल, सो काल कहिए । तिनि जीवनी के चैतन्यरूप परिणाम, सो भाव कहिए । इनि च्यारोंनि विषै जे कबहूं रति न मानैं । बहुरि अन्य भव संबंधी वैर करि इस भव में उपजे क्रोधादिक, तिनिकरि नवीन-पुराणे नारकी परस्पर रमैं नाहि हैं 'रति कहिए प्रीतिरूप कब ही तातैं 'न रताः' कहिए नरत, तेई 'नारत' जानने । जातैं स्वार्थ विषै अण् प्रत्यय का विधान है, तिनकी जो गति, सो नारतगति जानना । अथवा नरकविषै उपजै ते नारक, तिनिकी जो गति, सो नारक गति जाननी । अथवा हिंसादिक आचरण विषै निरता कहिए प्रवर्तै, ऐसे जो निरत, तिनकी जो गति, सो निरतगति जाननी [illegible] वा नर [illegible] ी, तिनिकौं कायति कहिए पीडै दुःख देइ,

अैसे जे नरक कहिए पापकर्म, ताका अपत्य कहिए तीहि का उदय तै निपजे जे नारक तिनकी जो गति, सो नारक गति जाननी । अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि विषै वा परस्पर रत कहिए प्रीतिरूप नाही तै नरत, तिनकी जो गति सो नरतगति जाननी । **निर्गत** कहिए गया है **अय** कहिए पुण्यकर्म, जिनितै अैसे जे निरय, तिनिकी जो गति सो निरय गति जाननी । अैसे निरुक्ति करि नारकगति का लक्षण कह्या ।

आगै तिर्यंचगति का स्वरूप कहै है –

तिरियंति कुडिलभावं, सुविउलसंण्ण णिगिट्ठिमण्णाणा ।
अच्चंतपावबहुला, तह्मा तेरिच्छया भणिया[1] ॥१४८॥

तिरोंचंति कुटिलभावं, सुविवृतसंज्ञा निकृष्टमज्ञाना. ।
अत्यंतपापबहुलास्तस्मात्तैरश्चिका भणिताः ॥१४८॥

टीका – जातै जो जीव **सुविवृतसंज्ञाः** कहिए प्रकट है आहार नै आदि देकरि सज्ञा जिनके अैसे है । बहुरि प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता इत्यादिक करि हीन है, तातै निकृष्ट है । बहुरि हेयोपादेय का ज्ञान रहित है, तातै अज्ञान है । बहुरि नित्यनिगोद की अपेक्षा अत्यत पाप की है बहुलता जिनिकै अैसे है, तातै तिरोभाव जो कुटिलभाव, मायारूप परिणाम ताहि **अंचंति** कहिए प्राप्त होइ, ते तिर्यंच कहे है । बहुरि तिर्यंच ही **तैरश्च** कहिए । इहा स्वार्थ विषै अण् प्रत्यय का विधान हो है । अैसे जो तिर्यक् पर्याय, सोही तिर्यग्गति है, अैसा कह्या है ।

आगै मनुष्य गति का स्वरूप कहै है –

मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा ।
मण्णुब्भवा य सव्वे, तह्मा ते माणुसा भणिदा[2] ॥१४९॥

मन्यंते यतो नित्यं, मनसा निपुणा मनसोत्कटा यस्मात् ।
मनूद्भवाश्च सर्वे, तस्मात्ते मानुषा भणिताः ॥१४९॥

टीका – जातै जे जीव नित्य ही **मन्यंते** कहिए हेयोपादेय के विशेष कौ जानै है । अथवा **मनसा निपुणाः** कहिए अनेक शिल्पी आदि कलानि विषै प्रवीण है । अथवा

---

१. षटखडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०३, गाथा १२९
२. षटखडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३०

गत्युदयजपर्यायः, चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा हि गतिः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेत् चतुर्धा ।।१४६।।

गम्यते कहिये गमन करिए, सो गति है ।

इहां तर्क – जो ऐसैं कहैं गमन क्रियारूप परिणया जीव कौ पावने योग्य द्रव्यादिक कौं भी गति कहना संभवै ।

तहां समाधान – जो ऐसे नाहीं है, जो गतिनामा नामकर्म के उदय तैं जो जीव के पर्याय उत्पन्न होइ, तिसही कौं गति कहिए । सो गति च्यारि प्रकार – १. नारक गति २ तिर्यंच गति ३. मनुष्यगति ४. देव गति ए च्यारि गति है ।

आगै नारक गति कौं निर्देश करै है –

ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खेत्ते य काल-भावे य ।
अण्णोण्णेहिं य जह्मा, तह्मा ते णारया भणिया।।[1] १४७।।

नरमंते यतो नित्यं, द्रव्य क्षेत्रे च कालभावे च ।
अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारता (का) भणिताः ।।१४७।।

टीका – जा कारण तैं जे जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषै अथवा परस्पर मे रमैं नाहीं–जहां क्रीडा न करैं, तहां नरक संबंधी अन्न-पानादिक वस्तु, सो द्रव्य कहिए । बहुरि तहांकी पृथ्वी सो क्षेत्र कहिए । बहुरि तिस गति संबंधी प्रथम समय तैं लगाइ अपनी आयु पर्यंत जो काल, सो काल कहिए । तिनि जीवनी के चैतन्यरूप परिणाम, सो भाव कहिए । इनि च्यारोनि विषै जे कबहूं रति न मानै । बहुरि अन्य भव संबंधी [illegible] इस भव मे उपजे क्रोधादिक, तिनिकरि नवीन-पुराणे नारकी परस्पर रमै नाहि है 'रति रहित [illegible] कब ही तातै' 'न रताः' कहिए नरत, तेई 'नारत' जानने । जातै [illegible] विषै अण् प्रत्यय का विधान है, तिनकी जो गति, सो नारतगति जानना । [illegible] ते नारक तिनिकी जो गति, सो नारक गति जाननी । अथवा [illegible] विषै निरता कहिए प्रवर्तं, ऐसे जो निरत, तिनकी जो गति, सो [illegible] जाननी । अथवा नर कहिए प्राणी, तिनिकौं कायति कहिए पीडै दुःख देइ,

दीव्यंति यतो नित्यं, गुणैरष्टाभिर्दिव्यभावैः ।
भासमानदिव्यकायाः, तस्मात्ते वर्णिता देवाः ॥१५१॥

टीका – जातै जे जीव नित्य ही दीव्यंति कहिए कुलाचल समुद्रादिकनि विषै क्रीड़ा करै है, हर्ष करै है, मदनरूप हो है–कामरूप हो है। बहुरि अणिमा कौ आदि देकरि मनुष्य अगोचर दिव्यप्रभाव लीए गुण, तिनिकरि प्रकाशमान है। बहुरि-धातु-मल रोगादिक दोष, तिनिकरि रहित है। देदीप्यमान, मनोहर शरीर जिनिका असे है। तातै ते जीव देव है, असै आगम विषै कह्या है। असै निरुक्तिपूर्वक लक्षण करि च्यारि गति कही।

यहा जे जीव सातौ नरकनि विषै महा दुःख पीडित है, ते नारक जानने। बहुरि एकेंद्री, बेद्री, तेद्री, चौइंद्री, असंज्ञी पंचेद्री पर्यंत सर्व ही अर जलचरादि पंचेद्री ते सर्व तिर्यंच जानने। बहुरि आर्य, म्लेच्छ, भोगभूमि, कुभोगभूमि विषै उत्पन्न मनुष्य जानने। भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक भेद लीए देव जानने।

आगै संसार दशा का लक्षण रहित जो सिद्धगति ताहि कहै है –

जाइजरामरणभया, संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ ।
रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्धगई[1] ॥१५२॥

जातिजरामरणभयाः, संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः ।
रोगादिकाश्च यस्या, न संति सा भवति सिद्धगतिः ॥१५२॥

टीका – जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट सयोग, इष्टवियोग, दुख, सज्ञा, रोगादिक नानाप्रकार वेदना जिहिविषै न होइ सो समस्तकर्म का सर्वथा नाश तै प्रकट भया सिद्ध पर्यायरूप लक्षण कौ धरै, सो सिद्धगति जाननी। इस गति विषै संसारीक भाव नाही, तातै संसारीक गति की अपेक्षा गति मार्गणा च्यारि प्रकार ही कही।

मुक्तिगति की अपेक्षा तीहि मुक्तिगति का नाम कर्मोदयरूप लक्षण नाही है। तातै याकी गतिमार्गणा विषै विवक्षा नाही है।

आगै गतिमार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है। तहा प्रथम ही नरक गति विषै गाथा दोयकरि कहै है–

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३२

'मनसोत्कटाः' कहिए अवधारना आदि दृढ उपयोग के धारी हैं। अथवा 'मनोरुद्भवाः' कहिए कुलकरादिक तैं निपजे है, तातैं ते जीव सर्व ही मनुष्य हैं, असें आगम विषें कहे हैं।

आगें तिर्यंच, मनुष्य गति के जीवनि का भेद दिखावें हैं -

सामण्णा पंचिंदी, पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहावि य, पंचिंदियभंगदो हीणा ॥१५०॥

सामान्याः पंचेंद्रियाः, पर्याप्ता योनिमत्यः अपर्याप्ताः।
तिर्यंचो नरास्तथापि च, पंचेंद्रियभंगतो हीनाः ॥१५०॥

टीका - तिर्यंच पांच प्रकार - १. सामान्य तिर्यंच २. पंचेंद्री तिर्यंच ३. पर्याप्त तिर्यंच ४. योनिमती तिर्यंच ५. अपर्याप्त तिर्यंच। तहां सर्व ही तिर्यंच भेदनि का समुदायरूप, सो तौ सामान्य तिर्यंच है। बहुरि जो एकेंद्रियादिक विना केवल पंचेंद्री तिर्यंच, सो पंचेंद्री तिर्यंच है। बहुरि जो अपर्याप्त विना केवल पर्याप्त तिर्यंच, सो पर्याप्त तिर्यंच है। बहुरि जो स्त्रीवेदरूप तिर्यंचणी, सो योनिमती तिर्यंच है। बहुरि जो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच है, सो अपर्याप्त तिर्यंच है। असें तिर्यंच पंच प्रकार हैं।

बहुरि तैसें ही मनुष्य हैं। इतना विशेष - जो पंचेंद्रिय भेद करि हीन है, तातैं सामान्यादिरूप करि च्यारि प्रकार है। जातै मनुष्य सर्व ही पंचेंद्री है, ताते जुदा भेद तिर्यंचवत् न होइ। तातैं १. सामान्य मनुष्य २. पर्याप्त मनुष्य ३. योनिमती मनुष्य ४. अपर्याप्त मनुष्य ए च्यारि भेद मनुष्य के जानने।

तहां सर्व मनुष्य भेदनि का समुदायरूप, सो सामान्य मनुष्य है। केवल पर्याप्त मनुष्य, सो पर्याप्त मनुष्य है। स्त्रीवेदरूप मनुष्यणी, सो योनिमती मनुष्य है। लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य सो अपर्याप्त मनुष्य है।

आगें देवगति कौं कहै हैं -

दिव्वंति जदो णिच्चं, गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंतदिव्वकाया, तह्मा ते वण्णिया देवा[1] ॥१५१॥

दीव्यंति यतो नित्यं, गुणैरष्टाभिर्दिव्यभावैः ।
भासमानदिव्यकायाः, तस्मात्ते वर्णिता देवाः ॥१५१॥

टीका – जाते जे जीव नित्य ही **दीव्यंति** कहिए कुलाचल समुद्रादिकनि विषै क्रीडा करे है, हर्ष करे है, मदनरूप हो है–कामरूप हो है । बहुरि अणिमा कौ आदि देकरि मनुष्य अगोचर दिव्यप्रभाव लीए गुण, तिनिकरि प्रकाशमान है । बहुरि-धातु-मल रोगादिक दोष, तिनिकरि रहित है । देदीप्यमान, मनोहर शरीर जिनिका असे है । ताते ते जीव देव है, असै आगम विषै कह्या है । असै निरुक्तिपूर्वक लक्षण करि च्यारि गति कही ।

यहा जे जीव सातौ नरकनि विषै महा दु ख पीडित है, ते नारक जानने । बहुरि एकेंद्री, बेद्री, तेद्री, चौइंद्री, असज्ञी पचेद्री पर्यत सर्व ही अर जलचरादि पंचेद्री ते सर्व तिर्यच जानने । बहुरि आर्य, म्लेच्छ, भोगभूमि, कुभोगभूमि विषै उत्पन्न मनुष्य जानने । भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक भेद लीएं देव जानने ।

आगे संसार दशा का लक्षण रहित जो सिद्धगति ताहि कहै है –

जाइजरामरणभया, संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ ।
रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्धगई[1] ॥१५२॥

जातिजरामरणभयाः, संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः ।
रोगादिकाश्च यस्या, न संति सा भवति सिद्धगतिः ॥१५२॥

टीका – जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट सयोग, इष्टवियोग, दुख, सज्ञा, रोगादिक नानाप्रकार वेदना जिहिविषै न होइ सो समस्तकर्म का सर्वथा नाश तै प्रकट भया सिद्ध पर्यायरूप लक्षण कौ धरै, सो सिद्धगति जाननी । इस गति विषै संसारीक भाव नाही, ताते ससारीक गति की अपेक्षा गति मार्गणा च्यारि प्रकार ही कही ।

मुक्तिगति की अपेक्षा तीहि मुक्तिगति का नाम कर्मोदयरूप लक्षण नाही है । ताते याकी गतिमार्गणा विषै विवक्षा नाही है ।

आगै गतिमार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है । तहा प्रथम ही नरक गति विषै गाथा दोयकरि कहै है–

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३२

सामण्णा णेरइया, घणअंगुलबिदियमूलगुणसेढी ।
बिदियादि बारदसअड, छत्तिदुणिजपदहिदा सेढी ॥१५३॥

सामान्या नैरयिका, घनांगुलद्वितीयमूलगुण श्रेणी ।
द्वितीयादिः द्वादश दशाष्टषट्त्रिद्विनिजपदहिता श्रेणी ॥१५३॥

टीका – सामान्य सर्व सातौ ही पृथ्वी के मिले हुवे नारकी जगत श्रेणी कौ घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तिहि प्रमित हैं । इहां घनांगुल का वर्गमूल करि उस प्रथम वर्गमूल का दूसरी बार वर्गमूल कीजिए, सो घनागुल का द्वितीय वर्गमूल जानना । जैसैं अंकसंदृष्टि करि घनांगुल का प्रमाण सोलह, ताका वर्गमूल च्यारि, ताका द्वितीय वर्गमूल दोय होय, ताकरि जगत श्रेणी का प्रमाण दोय सैं छप्पन कौं गुणें, पांचसै बारह होय; तैसै इहां यथार्थ परिमाण जानना । वहुरि दूसरी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का वारह्वां वर्गमूल, ताका भाग जगत श्रेणी कौं दीएं जो प्रमाण होइ, तीहि प्रमित हैं । इहां जगत श्रेणी का वर्गमूल करिए सो प्रथम मूल, वहुरि उसका वर्गमूल कीजिए, सो द्वितीय वर्गमूल, वहुरि उस द्वितीय वर्गमूल का वर्गमूल कीजिए सो तृतीय वर्गमूल, इत्यादिक असैं ही इहां अन्य वर्गमूल जानना । वहुरि तीसरी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का दशवां वर्गमूल का भाग जगत श्रेणी कौ दीएं जो प्रमाण आवै तितने जानने । वहुरि चौथी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का आठवां वर्गमूल का भाग जगत श्रेणी कौं दीएं जो परिमाण आवै, तितने जानने । वहुरि असै ही पांचवी पृथ्वी, छठी पृथ्वी, सातवीं पृथ्वी के नारकी अनुक्रम तै जगत श्रेणी का छठा, तीसरा, दूसरा वर्गमूल का भाग जगत श्रेणी कौं दीए, जो जो परिमाण आवै, तितने तितने जानने । जैसैं दोय सै छप्पन का प्रथम वर्गमूल सोलह, द्वितीय वर्गमूल च्यारि, तृतीय वर्गमूल दोय, इनिका भाग क्रम तै दोय सैं छप्पन कौ दीएं सोलह, चौसठि, एक सौ अट्ठाईस होइं । तैसे इहां भी यथासंभव परिमाण जानना ।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं, रासिविहीणो दु सव्वरासी दु ।
पढमावणिह्मि रासी, णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ॥१५४॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां, राशिविहीनस्तु सर्वराशिस्तु ।
प्रथमावनौ राशिः, नैरयिकाणां तु निर्दिष्टः ॥१५४॥

टीका – नीचली जे दूसरी वंशा पृथ्वी सौं लगाइ सातवी पृथ्वी पर्यंत छह पृथ्वी के नारकीनि का जोड दीएं साधिक जगत श्रेणी का बारह्वा मूल करि भाजित जगत श्रेणी प्रमाण होइ सो पूर्वै सामान्य सर्वनारकीनि का परिमाण कह्या, तामैं घटाएं, जितने रहैं, तितने पहिली धम्मा पृथ्वी के नारकी जानने । इहां घटावनेरूप त्रैराशिक अैसें करना । सामान्य नारकीनि का प्रमाण विषैं जगच्छ्रेणी गुण्य है । बहुरि घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल गुणकार है, सो इस प्रमाण विषै जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ, तौ गुणकार का परिमाण में स्यों एक घटाइए तौ जो जगच्छ्रेणी का बारह्वा वर्गमूल करि भाजित साधिक जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ, तौ गुणकार में स्यों कितना घटै, इहां प्रमाणराशि जगत श्रेणी, फलराशि एक, इच्छाराशि जगत श्रेणी का बारह्वां वर्गमूल करि भाजित जगत श्रेणी, सो इहा फल करि इच्छा कौ गुणै प्रमाण का भाग दीएं साधिक एक का बारह्वां भाग जगत श्रेणी के वर्गमूल का भाग आया । सो इतना घनागुल का द्वितीय वर्गमूल में स्यों घटाइ अवशेष करि जगत श्रेणी कौ गुणै, धर्मा पृथ्वी के नारकीनि का प्रमाण हो है ।

आगै तिर्यंच जीवां की संख्या दोय गाथा करि कहै हैं—

संसारी पंचक्खा, तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो ।
सामण्णा पंचिंदी, पंचिंदियपुण्णतेरिक्खा ॥१५५॥

संसारिणः पंचाक्षाः, तत्पूर्णाः त्रिगतिहीनकाः क्रमशः ।
सामान्याः पंचेंद्रियाः, पंचेंद्रियपूर्णतैरश्चाः ॥१५५॥

टीका – ससारी जीवनि का जो परिमाण तीहिविषै नारकी, मनुष्य, देव इनि तीनौ गतिनि के जीवनि का परिमाण घटाएं, जो परिमाण रहै, तितने प्रमाण सर्व सामान्य तिर्यंच राशि जानने । बहुरि आगै इद्रिय मार्गणाविषै जो सामान्य पचेद्रिय जीवनि का परिमाण कहिएगा, तामैसौ नारकी, मनुष्य, देवनि का परिमाण घटाए, पचेद्रिय तिर्यंचनि का प्रमाण हो है ।

बहुरि आगै पर्याप्त पंचेद्रियनि का प्रमाण कहिएगा, तामेंस्यो पर्याप्त नारकी, मनुष्य, देवनि का परिमाण घटाएं, पंचेद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनि का परिमाण हो है ।

छस्सयजोयणकदिहदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं ।
पुण्णूणा पंचक्खा, तिरियअपज्जत्तपरिसंखा ॥१५६॥

षट्शतयोजनकृतिहतजगत्प्रतरं योनिमतीनां परिमाणं ।
पूर्णोनाः पंचाक्षाः, तिर्यगपर्याप्तपरिसंख्या ॥ १५६ ॥

टीका – छस्से योजन के वर्ग का भाग जगत प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण होइ, सो योनिमती द्रव्य तिर्यंचणीनि का परिमाण जानना । छस्सै योजन लंबा, छस्सै योजन चौड़ा, एक प्रदेश ऊंचा अैसा क्षेत्र विषै जितने आकाश प्रदेश होई, ताको भाग जगत प्रतर कौं देना, सो इनि योजननिकी प्रतरांगुल कीजिए, तब चौगुणा पणट्ठी कौं इक्यासी हजार कोडि करि गुणिए, इतने प्रतरांगुल होंइ तिनिका भाग जगत प्रतर कौं दीजिए, तब एक भाग प्रमाण द्रव्य तिर्यंचणी जाननीं । बहुरि पंचेंद्रिय तिर्यंचनि का परिमाण विषै पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनि का प्रमाण घटाएं, अवशेष अपर्याप्त पंचेद्रियनि का परिमाण हो है ।

आगे मनुष्य गति के जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै हैं–

सेढी सूईअंगुलआदिमतदियपदभाजिदेगूणा ।
सामण्णमणुसरासी, पंचमकदिघणसमा पुण्णा ॥१५७॥

श्रेणी सूच्यंगुलादिमतृतीयपदभाजितैकोना ।
सामान्यमनुष्यराशिः, पंचमकृतिघनसमाः पूर्णाः ॥१५७॥

टीका – जगतश्रेणी कौं सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल का भाग दीजिए, जो परिमाण आवै, ताकौं सूच्यंगुल का तृतीय वर्गमूल का भाग दीजिए, जो परिमाण आवै, तामैं एक घटाएं, जितने अवशेष रहैं तितने सामान्य सर्व मनुष्य जानने । बहुरि द्विरूप वर्गधारा संबंधी पंचम वर्गस्थान बादाल है, ताका घन कीजिए: जितने होंइ तितने पर्याप्त मनुष्य जानने । ते कितने हैं ?–

तल्लीनमधुगविमलं, धूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा होंति हु, माणुसपज्जत्तसंखंका ॥१५८॥

तल्लीनमधुगविमलं, धूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा भवंति हि, मानुषपर्याप्तसंख्यांकाः ॥१५८॥

टीका – इहां अक्षर संज्ञा करि वामभाग तैं अनुक्रम करि अक कहै है । सो अक्षर सज्ञा करि अक कहने का सूत्र उक्तं च कहिए है-आर्या–

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ।।

याका अर्थ – ककार को आदि देकरि नव अक्षर, तिनिकरि अनुक्रम तै एक, दोय, तीन इत्यादिक अंक जानने । जैसे ककार लिख्या होइ, तहां एका जानना, खकार होइ तहां दूवा जानना । गकार लिख्या होइ तहां तीया जानना । असैं ही झकार पर्यंत नव ताई अंक जानने । क ख ग घ ङ च छ ज झ । बहुरि असैं ही टकार
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
ने आदि देकरि । नव अक्षरनि तै एक, दोय, तीन आदि नव पर्यंत अंक जानने ट ठ ड ढ ण त थ द ध । बहुरि ऐसे ही पकारने आदि देकरि पच अक्षरनि तै एक, दोय
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
आदि पच अंक जानने । प फ ब भ म । बहुरि ऐसे ही यकार नें आदि देकरि अष्ट
१ २ ३ ४ ५
अक्षरनि तै एक आदि अष्ट पर्यंत अंक जानने । य र ल व श ष स ह । बहुरि जहां
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
अकार आदि स्वर लिखे हो वा ञकार वा नकार लिख्या होइ, तहां बिदी जानना । बहुरि अक्षर के जो मात्रा होइ तथा कोई ऊपरि अक्षर लिख्या होइ, तौ उनका कछू प्रयोजन नाही लेना । सो इस सूत्र अपेक्षा इहां अक्षर संज्ञा करि अंक कहे है । आगै भी श्रुतज्ञानादि का वर्णन विषै ऐसे ही जानना । सो इहां त कहिए छह, ल कहिए तीन, **ली** कहिए तीन, **न** कहिए बिदी, **म** कहिए पांच, **धु** कहिए नव, **ग** कहिए तीन, इत्यादि अनुक्रम तै च्यारि, पांच, तीन, नव, पांच, सात, तीन, तीन, च्यारि, छह, दोय, च्यारि, एक, पांच, दोय, छह, एक, आठ, दोय, दोय, नव, सात ए अंक जानने । **'अंकानां वामतो गतिः'** तातै ए अंक बाई तरफ तै लिखने । '७, ९२२८१६२, ५१४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६' सो ए सात कोडाकोडि कोडाकोडि बाणवै लाख अठाईस हजार एक सौ बासठि कोडा कोडि कोडि इकावन लाख बियालीस हजार छ सौ तियालीस कोडाकोडि सैंतीस लाख गुणसठि हजार तीन सौ चौवन कोडि गुणतालीस लाख पचास हजार तीन सौ छत्तीस पर्याप्त मनुष्य जानने । इनिके अक दाहिणी तरफ सौ अक्षर संज्ञा करि अन्यत्र भी कहे है –

साधूरराजकीर्तेरेणांको भारतीविलोलसमधीः ।
गुणवर्गधर्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमाः ।।

सो इहां सा कहिए सात, धू कहिए नव, र कहिए दोय, रा कहिए दोय, ज कहिए आठ, की कहिए एक, तें कहिए छह, इत्यादि दक्षिण भाग तें अंक जानने ।

पज्जत्तमणुस्साणं, तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं ।
सामण्णा पुण्णूणा, मणुवअपज्जत्तगा होंति ।।१५९।।

पर्याप्तमनुष्याणां, त्रिचतुर्थो मानुषीणां परिमाणं ।
सामान्याः पूर्णोना, मानवा अपर्याप्तका भवंति ।।१५९।।

टीका – पर्याप्त मनुष्यनि का प्रमाण कह्या, ताका च्यारि भाग कीजिए, तामैं तीन भाग प्रमाण मनुषिणी द्रव्य स्त्री जाननी । बहुरि सामान्य मनुष्य राशि में स्यो पर्याप्त मनुष्यनि का परिमाण घटाएं, अवशेष अपर्याप्त मनुष्यनि का परिमाण हो है । इहां 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः' इस सूत्र करि पैंतालीस लाख योजन व्यास धरै मनुष्य लोक है । ताका 'विक्खंभवग्गदहगुण' इत्यादि सूत्र करि एक कोडि बियालीस लाख तीस हजार दोय सै गुणचास योजन, एक कोश, सतरह सै छ्यासठि धनुष, पांच अंगुल प्रमाण परिधि हो है । बहुरि याकौ व्यास की चौथाई ग्यारह लाख पच्चीस हजार योजन करि गुणे, सोलह लाख नव सै तीन कोडि छह लाख चौवन हजार छ सै एक योजन अर एक लाख योजन का दोय सै छप्पन भाग विषै उगणीस भाग इतना क्षेत्रफल हो है । बहुरि याके अंगुल करने सो एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल हैं । सो वर्गराशि का गुणकार वर्गरूप होइ, इस न्याय करि सात लाख अडसठि हजार का वर्ग करि तिस क्षेत्रफल कौ गुणें नव हजार च्यारि सै बियालीस कोडाकोडि कोडि इक्यावन लाख च्यारि हजार नव सै अडसठि कोडाकोडि उगणीस लाख तियालीस हजार च्यारि सैं कोडि प्रतरांगुल हैं । बहुरि ए प्रमाणांगुल हैं, सो इहां उत्सेधांगुल न करने, जातै चौथा काल की आदि विषै वा उत्सर्पिणी काल का तीसरा काल का अन्तविषै वा विदेहादि क्षेत्र विषै आत्मांगुल का भी प्रमाण प्रमाणांगुल के समान ही है । सो इनि प्रतरांगुलनि के प्रमाण तैं भी पर्याप्त मनुष्य संख्यात गुणे हैं । तथापि आकाश की अवगाहन की विचित्रता जानि संदेह न करना ।

आगे देवगति के जीवनि की संख्या च्यारि गाथानि करि कहै है –

तिण्णिसयजोयणाणं, बेसदछप्पण्णअंगुलाणं च ।
कदिहदपदरं वेंतर, जोइसियाणं च परिमाणं ॥१६०॥

त्रिशतयोजनानां, द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां च ।
कृतिहतप्रतरं व्यंतरज्योतिष्काणां च परिमाणम् ॥१६०॥

टीका – तीन सै योजन के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौ दीएं, जो परिमाण होइ, तितना व्यंतरनि का प्रमाण जानना । तीन सै योजन लंबा, तीन सै योजन चौडा, एक प्रदेश ऊंचा ऐसा क्षेत्र का जितने आकाश का प्रदेश होंइ, ताका भाग दीजिए, सो याका प्रतरागुल कीए, पैसठि हजार पांच सै छत्तीस कौ इक्यासी हजार कोडि गुणा करिए इतने प्रतरागुल होंइ, तिनिका भाग जगत्प्रतर कौ दीए व्यतरनि का प्रमाण होइ है ।

बहुरि दोय सै छप्पन अंगुल के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौ भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना ज्योतिषीनि का परिमाण जानना । दोय सै छप्पन अंगुल चौडा इतना ही लम्बा एक प्रदेश ऊंचा, असा क्षेत्र का जितना आकाश का प्रदेश होइ ताका भाग दीजिए, सो याका प्रतरांगुल पैसठि हजार पांच सै छत्तीस है । ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीए ज्योतिषी देवनि का परिमाण हो है ।

घणअंगुलपढमपदं, तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो ।
भवणे सोहम्मदुगे, देवाणं होदि परिमाणं ॥१६१॥

घनांगुलप्रथमपदं, तृतीयपदं श्रेणिसंगुणं क्रमशः ।
भवने सौधर्मद्विके, देवानां भवति परिमाणम् ॥१६१॥

टीका – घनागुल का जो प्रथम वर्गमूल, तिहिनै जगत्श्रेणी करि गुणै, जो परिमाण होइ, तितने भवनवासीनि का परिमाण जानना ।

बहुरि घनागुल का जो तृतीय वर्गमूल तिहिनै जगत्श्रेणी करि गुणै जो परिमाण होइ, तितने सौधर्म अरु ईशान स्वर्ग का वासी देवनि का परिमाण जानना ।

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूलभाजिदा सेढी ।
पल्लासंखेज्जदिमा, पत्तेयं आणदादिसुरा[1] ॥१६२॥

तत एकादशनवसप्तपंचचतुर्निजमूलभाजिता श्रेणी ।
पल्यासंख्यातकाः, प्रत्येकमानतादिसुराः ॥ १६२ ॥

टीका – वहुरि तहां ते ऊपरि सनत्कुमार-माहेंद्र, वहुरि ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, वहुरि लांतव – कापिष्ठ, शुक्र – महाशुक्र, बहुरि शतार – सहस्रार इनि पांच युगलनि विषै अनुक्रमतै जगत्श्रेणी का ग्यारहवां, नवमां, सातवां, पाचवा, चौथा जो वर्गमूल, तिनिका भाग जगत्श्रेणी कौं दीएं, जितना-जितना परिमाण आवै, तितना-तितना तहां के वासी देवनि का प्रमाण जानना ।

वहुरि ता ऊपरि आनत-प्राणत युगल, वहुरि आरण–अच्युत युगल, वहुरि तीन अधोग्रैवेयक, तीन मध्य ग्रैवेयक, तीन उपरिम ग्रैवेयक, वहुरि नव अनुदिश विमान, वहुरि सर्वार्थसिद्धि विमान विना च्यारि अनुत्तर विमान इन एक-एक विषै देव पल्य के असंख्यातवै भाग प्रमाण जानने ।

तिगुणा सत्तगुणा वा, सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो ।
सामण्णदेवरासी, जोइसियादो विसेसहिया ॥१६३॥

त्रिगुणा सप्तगुणा वा, सर्वार्था मानुषीप्रमाणतः ।
सामान्यदेवराशिः, ज्योतिष्कतो विशेषाधिकः ॥१६३॥

टीका – वहुरि सर्वार्थसिद्धि के वासी अहमिंद्र देव, मनुषिणीनि का जो परिमाण, पर्याप्त मनुष्यनि का च्यारि भाग मे तीन भाग प्रमाण कह्या था, तातै तिगुणा जानना । वहुरि कोई आचार्य का अभिप्रायतै सात गुणा है । वहुरि ज्योतिषी देवनि का परिमाण विषै भवनवासी, कल्पवासी, देवनि का प्रमाण करि साधिक ऐसा ज्योतिषी देवनि के संख्यातवें भाग, जो व्यंतर राशि, सो जोड़ै, सर्व सामान्य देवनि का परिमाण हो है ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका के अनुसारि इस सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं गतिप्ररूपणा नामा छठा अधिकार संपूर्ण भया ॥६॥

---

[1] षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ १७, गाथा १३ ।

सातवां अधिकार : इन्द्रिय-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

लोकालोकप्रकाशकर, जगत पूज्य श्रीमान ।
सप्तम तीर्थंकर नमौं, श्रीसुपार्श्व भगवान ॥

अथ इंद्रियमार्गणा का आरंभ करें है। तहां प्रथम इंद्रिय शब्द का निरुक्ति पूर्वक अर्थ कहै है –

अहमिंदा जह देवा, अविसेसं अहमहंति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिये जाण [1] ॥१६४॥

अहमिंद्रा यथा देवा, अविशेषमहमहमिति मन्यमानाः ।
ईशते एकैकमिंद्रा, इव इंद्रियाणि जानीहि ॥१६४॥

टीका – जैसे ग्रैवेयकादिक विषै उपजे, असे अहमिंद्र देव; ते चाकर ठाकुर के (सेवक स्वामी के) भेद रहित 'मैं ही मैं हौं' ऐसे मानते संते, जुदे-जुदे एक-एक होइ, आज्ञादिक करि पराधीनताते रहित होते सते, ईश्वरता कौ धरै है। प्रभाव कौ धरै हैं। स्वामीपना कौ धरै है। तैसे स्पर्शनादिक इंद्रिय भी अपने-अपने स्पर्शादिविषय विषै ज्ञान उपजावने विषै कोई किसी के आधीन नाही, जुदे-जुदे एक-एक इंद्रिय पर की अपेक्षा रहित ईश्वरता कौ धरै है। प्रभाव कौ धरै है। तातै अहमिंद्रवत् इन्द्रिय है। असे समानतारूप निरुक्ति करि सिद्ध भया, असा इन्द्रिय शब्द का अर्थ कौं हे शिष्य ! तू जानि।

आगे इन्द्रियनि के भेद स्वरूप कहै है—

मदिआवरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा ।
भाविंदियं तु दव्वं, देहुदयजदेहचिण्हं तु ॥१६५॥

मत्यावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धिर्हि तज्जबोधो वा ।
भावेंद्रियं तु द्रव्यं, देहोदयजदेहचिह्नं तु ॥१६५॥

---

[1] षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १३८, गाथा ८५ ।

टीका – इंद्रिय दोय प्रकार है – एक भावेंद्रिय, एक द्रव्येंद्रिय ।

तहां लब्धि-उपयोगरूप तौ भावेंद्रिय है । तहां मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तै भई जो विशुद्धता इंद्रियनि के जे विषय, तिनके जानने की शक्ति जीव कै भई, सो ही है लक्षण जाका, सो लब्धि कहिए ।

बहुरि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तै निपज्या ज्ञान, विषय जानने का प्रवर्तनरूप सो, उपयोग कहिए । जैसै किसी जीव कैं सुनने की शक्ति है । परंतु उपयोग कहीं और जायगां लगि रह्या है, सो विना उपयोग किछू सुनै नाही । बहुरि कोऊ जान्या चाहै है अर क्षयोपशम शक्ति नाही, तौ कैसै जानै ? तातै लब्धि अर उपयोग दोऊ मिलै विषय का ज्ञान होंइ । तातै इनिकौं भावेंद्रिय कहिए ।

भाव कहिए चेतना परिणाम, तीहिस्वरूप जो इंद्रिय, सो भावेंद्रिय कहिए ।

जातै इंद्र जो आत्मा, ताका जो लिंग कहिए चिह्न, सो इंद्रिय है । असी निरुक्ति करि भी लब्धि-उपयोगरूप भावेंद्रिय का ही दृढपनां हो है ।

बहुरि निर्वृत्ति अर उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय है । तहां जिनि प्रदेशनि करि विषयनि कौं जानैं, सो निर्वृत्ति कहिए । बहुरि वाके सहकारी निकटवर्ती जे होंइ, तिनिकौं उपकरण कहिए । सो जातिनामा नामकर्म के उदय सहित शरीरनामा नामकर्म के उदयतै निपज्या जो निर्वृत्ति-उपकरणरूप देह का चिह्न, एकेंद्रियादिक का शरीर का यथायोग्य अपने-अपने ठिकाने आकार का प्रकट करनहारा पुद्गल द्रव्यस्वरूप इंद्रिय, सो द्रव्येंद्रिय है । असै इंद्रिय द्रव्य-भाव भेद करि दोय प्रकार है । तहां लब्धि-उपयोग भावेंद्रिय है ।

तहां विषय के ग्रहण करने की शक्ति, सो लब्धि है । अर विषय के ग्रहणरूप व्यापार, सो उपयोग है ।

अब इंद्रिय शब्द ... लक्षण

... प्रति जो प्रवर्तें,

मां प्रत्यक्ष कहिए

कहिए व्यापार

इहां तर्क – जो इस लक्षण विषै विशेष के अभाव तै तिन इंद्रियनि के संकर व्यतिकररूप करि प्रवृत्ति प्राप्त होय; जो परस्पर इंद्रियनि का स्वभाव मिलि जाय, सो संकर कहिए। अपने स्वभावतै जुदापना का होना, सो व्यतिकर कहिए।

तहां समाधान – जो इहां **'प्रत्यक्षे नियमिते रतानि इंद्रियाणि'** अपने-अपने नियमरूप प्रत्यक्ष विषै जे रत, ते इंद्रिय है, असा लक्षण का प्रतिपादन है। तातै नियमरूप कहने करि अपना-अपना विशेष का ग्रहण भया। अथवा सकर व्यतिकर दोष निवारणे के अर्थि **'स्वविषयनिरतानि इंद्रियाणि'** स्वविषय कहिए अपना-अपना विषय, तिहि विषै **'नि'** कहिए निश्चय करि-निर्णय करि रतानि कहिए प्रवर्तै, ते इंद्रिय है, असा कहना।

इहां तर्क – जो संशय, विपर्यय विषै निर्णयरूप रत नाहीं है। तातै इस लक्षण करि सशय, विपर्ययरूप विषय ग्रहण विषै आत्मा कै अतीद्रियपना होइ।

तहां समाधान – जो रूढि के बल तै निर्णय विषै वा संशय विपर्यय विषै दोऊ जायगा तिस लक्षण की प्रवृत्ति का विरोध नाहीं। जैसे **'गच्छतीति गौ'** गमन करै, ताहि गो कहिए; सो समभिरूढ–नय करि गमन करतै वा शयनादि करतै भी गो कहिए। तैसै इहां भी जानना। अथवा **'स्ववृत्तिनिरतानि इंद्रियाणि'** स्ववृत्ति कहिए संशय, विपर्यय रूप वा निर्णयरूप अपना प्रवर्तन, तीहि विषै **निरतानि** कहिये व्यापार रूप प्रवर्तै, ते इंद्रिय है; असा लक्षण कहना।

इहां तर्क – जो असा लक्षण कीएं अपने विषय का ग्रहण रूप व्यापार विषै जब न प्रवर्तै, तीहि अवस्था विषै अतीद्रियपना कहना होइ।

तहां समाधान – असे नाही, जाते पूर्वै ही उत्तर दीया है। रूढि करि विषय-ग्रहण व्यापार होतै वा न होतै पूर्वोक्त लक्षण सभवै है। अथवा **'स्वार्थनिरतानि इंद्रियाणि'** अर्यंते कहिए जानिए, सो अर्थ, सो अपने विषै वा विषयरूप अर्थ विषै जे निरत, ते इद्रिय है। सो इस लक्षण विषै कोऊ दोष नाही; तातै इहा किछू तर्क रूप कहना ही नाही। अथवा **'इंदनात् इंद्रियाणि'** इंदनात् कहिए स्वामीपनां तै इद्रिय है। स्पर्श, रस, गध, वर्ण, शब्द इनिका जाननेरूप ज्ञान का आवरणभूत जे कर्म, तिनिका क्षयोपशमतै अपना-अपना विषय जाननेरूप स्वामित्व कौं धरै द्रव्येंद्रिय है कारण जिनिका, ते इंद्रिय हैं। असा अर्थ जानना। उक्तं च—

टीका – इंद्रिय दोय प्रकार है – एक भावेंद्रिय, एक द्रव्येंद्रिय ।

तहां लब्धि-उपयोगरूप तौ भावेंद्रिय है । तहां मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तै भई जो विशुद्धता इंद्रियनि के जे विषय, तिनके जानने की शक्ति जीव कै भई, सो ही है लक्षण जाका, सो लब्धि कहिए ।

बहुरि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तै निपज्या ज्ञान, विषय जानने का प्रवर्तनरूप सो, उपयोग कहिए । जैसे किसी जीव कैं सुनने की शक्ति है । परंतु उपयोग कही और जायगां लगि रह्या है, सो विना उपयोग किछू सुनै नाही । बहुरि कोऊ जान्या चाहै है अर क्षयोपशम शक्ति नाही, तौ कैसे जानै ? तातै लब्धि अर उपयोग दोऊ मिलै विषय का ज्ञान होंइ । तातै इनिकौं भावेंद्रिय कहिए ।

भाव कहिए चेतना परिणाम, तीहिस्वरूप जो इंद्रिय, सो भावेंद्रिय कहिए ।

जातै इंद्र जो आत्मा, ताका जो लिंग कहिए चिह्न, सो इंद्रिय है । असी निरुक्ति करि भी लब्धि-उपयोगरूप भावेंद्रिय का ही दृढपनां हो है ।

बहुरि निर्वृत्ति अर उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय है । तहां जिनि प्रदेशनि करि विषयनि कौ जानै, सो निर्वृत्ति कहिए । बहुरि वाके सहकारी निकटवर्ती जे होंइ, तिनिकौ उपकरण कहिए । सो जातिनामा नामकर्म के उदय सहित शरीरनामा नामकर्म के उदयतै निपज्या जो निर्वृत्ति-उपकरणरूप देह का चिह्न, एकेंद्रियादिक का शरीर का यथायोग्य अपने-अपने ठिकाने आकार का प्रकट करनहारा पुद्गल द्रव्यस्वरूप इंद्रिय, सो द्रव्येंद्रिय है । असैं इंद्रिय द्रव्य-भाव भेद करि दोय प्रकार है । तहां लब्धि-उपयोग भावेंद्रिय है ।

तहां विषय के ग्रहण करने की शक्ति, सो लब्धि है । अर विषय के ग्रहणरूप व्यापार, सो उपयोग है ।

अब इंद्रिय शब्द की निरुक्ति करि लक्षण कहै हैं—

'प्रत्यक्षनिरतानि इंद्रियाणि' अक्ष कहिए इन्द्रिय, सो अक्ष अक्ष प्रति जो प्रवर्तै, सो प्रत्यक्ष कहिए । असा प्रत्यक्षरूप विषय अथवा इंद्रिय ज्ञान तिहिं विषै निरतानि कहिए व्यापार रूप प्रवर्तै, ते इंद्रिय है ।

इहां **तर्क** – जो इस लक्षण विषैं विशेष के अभाव तै तिन इंद्रियनि के संकर व्यतिकररूप करि प्रवृत्ति प्राप्त होय; जो परस्पर इंद्रियनि का स्वभाव मिलि जाय, सो संकर कहिए । अपने स्वभावतै जुदापना का होना, सो व्यतिकर कहिए ।

तहां समाधान – जो इहा **'प्रत्यक्षे नियमिते रतानि इद्रियाणि'** अपने-अपने नियमरूप प्रत्यक्ष विषै जे रत, ते इंद्रिय है, असा लक्षण का प्रतिपादन है । तातै नियमरूप कहने करि अपना-अपना विशेष का ग्रहण भया । अथवा संकर व्यतिकर दोष निवारणे के अर्थि **'स्वविषयनिरतानि इंद्रियाणि'** स्वविषय कहिए अपना-अपना विषय, तिहि विषै **'नि'** कहिए निश्चय करि-निर्णय करि रतानि कहिए प्रवर्तें, ते इंद्रिय है, असा कहना ।

इहां तर्क – जो संशय, विपर्यय विषै निर्णयरूप रत नाही है । तातै इस लक्षण करि संशय, विपर्ययरूप विषय ग्रहण विषैं आत्मा कै अतींद्रियपना होइ ।

तहां समाधान – जो रूढि के बल तै निर्णय विषै वा संशय विपर्यय विषै दोऊ जायगा तिस लक्षण की प्रवृत्ति का विरोध नाहीं । जैसे **'गच्छतीति गौ'** गमन करै, ताहि गो कहिए; सो समभिरूढ–नय करि गमन करतें वा शयनादि करतै भी गो कहिए । तैसे इहां भी जानना । अथवा **'स्ववृत्तिनिरतानि इंद्रियाणि'** स्ववृत्ति कहिए संशय, विपर्यय रूप वा निर्णयरूप अपना प्रवर्तन, तीहि विषै **निरतानि** कहिये व्यापार रूप प्रवर्तें, ते इंद्रिय है; असा लक्षण कहना ।

इहां तर्क – जो असा लक्षण कीएं अपने विषय का ग्रहण रूप व्यापार विषै जब न प्रवर्तें, तीहि अवस्था विषै अतीद्रियपना कहना होइ ।

तहां समाधान – असे नाही, जातै पूर्वे ही उत्तर दीया है । रूढि करि विषय-ग्रहण व्यापार होतै वा न होतै पूर्वोक्त लक्षण सभवै है । अथवा **'स्वार्थनिरतानि इंद्रियाणि'** अर्यंते कहिए जानिए, सो अर्थ, सो अपने विषै वा विषयरूप अर्थ विषै जे निरत, ते इद्रिय है । सो इस लक्षण विषै कोऊ दोष नाही, तातै इहां किछू तर्क रूप कहना ही नाही । अथवा **'इंदनात् इंद्रियाणि'** इदनात् कहिए स्वामीपना तै इंद्रिय है । स्पर्श, रस, गध, वर्ण, शब्द इनिका जाननेरूप ज्ञान का आवरणभूत जे कर्म, तिनिका क्षयोपशमतै अपना-अपना विषय जाननेरूप स्वामित्व कौ धरै द्रव्यें-द्रिय है कारण जिनिका, ते इंद्रिय हैं । असा अर्थ जानना । उक्तं च—

टीका – एकेंद्रिय जीव कै स्पर्शन इन्द्रिय के विषय का क्षेत्र, वीस की कृति (वर्ग) च्यारि सै धनुष प्रमाण जानना। वहुरि वेइन्द्रियादिक असैंनी पचेंद्रिय पर्यंत कै दूणां-दूणा जानना, सो द्वीद्रिय कै आठ सै धनुष। त्रीद्रिय के सोला सै धनुष। चतुरिंद्रिय कै वत्तीस सै धनुष। असैनी पंचेद्रिय कै चोसठि सै धनुष–स्पर्शन इन्द्रिय का विषय-क्षेत्र जानना। इतना-इतना क्षेत्र पर्यंत तिष्ठता जो स्पर्शनरूप विषय ताकौं जानै।

वहुरि द्वीद्रिय जीव कै रसना इन्द्रिय का विषय-क्षेत्र, आठ की कृति चौसठि धनुष प्रमाण जानना। आगै दूणां-दूणां, सो तेइन्द्रिय कै एक सौ अठाईस धनुष। चतुरिंद्रिय कै दोय सै छप्पन धनुष। असैनी पंचेद्रिय कै पाच सै वारा धनुष–रसना इंद्रिय का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना।

वहुरि ते इन्द्रिय कै घ्राण इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र दश की कृति, सौ धनुष प्रमाण जाना। आगै दूणां-दूणां सो, चौइंद्री कैं दोय सै धनुष। असैनी पचेंद्रिय कै च्यारि सै धनुष। घ्राण इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण जानना।

वहुरि चौ इन्द्रिय कै नेत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र छियालीस घाटि तीन हजार योजन जानना। यातैं दूणां पांच हजार नौ सै आठ योजन असैनी पचेंद्रिय कै नेत्र इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र जानना। वहुरि असैनी पंचेद्रिय कै श्रोत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र का परिमाण आठ हजार धनुष प्रमाण जानना।

सण्णिस्स बार सोदे, तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स।
सत्तेतालसहस्सा बेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥ १६९ ॥

संज्ञिनो द्वादश श्रोत्रे, त्रयाणां नव योजनानि चक्षुषः।
सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशतत्रिषष्ट्यतिरेकाणि ॥१६९॥

टीका – सैनी पंचेद्रिय कै स्पर्शन, रसना, घ्राण इनि तीनौं इन्द्रियनि का नव-नव योजन विषय क्षेत्र है। वहुरि नेत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दोय सै तरेसठि योजन, वहुरि सात योजन का वोसवां भागकरि अधिक है। वहुरि श्रोत्र इन्द्रिय का विषयक्षेत्र वारह योजन है।

तिण्णिसयसट्ठिविरहिद, लक्खं दशमूलताडिदे मूलं ।
णवगुणिदे सट्ठिहिदे, चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ॥१७०॥

त्रिशतषष्टिविरहितलक्षं दशमूलताडिते मूलम् ।
नवगुणिते षष्टिहते, चक्षुःस्पर्शस्य अध्वा ॥१७०॥

टीका – सूर्य का चार (भ्रमण) क्षेत्र पांच सै बारा योजन चौड़ा है, तामैं एक सै अस्सी योजन तौ जबूद्वीप विषै है । अर तीन सै बत्तीस योजन लवण समुद्र विषै है । सो जब सूर्य श्रावण मास कर्कसंक्रांति विषै अभ्यंतर परिधि विषै आवै, तब जंबूद्वीप का अन्त सौ एक सौ अस्सी योजन उरै भ्रमण करै है, सो इस अभ्यंतर परिधि का प्रमाण कहै हैं – लाख योजन जंबूद्वीप का व्यास में सौ दोनों तरफ का चार क्षेत्र का परिमाण तीन सै साठि योजन घटाया, तब निन्याणवै हजार छ सै च्यालीस योजन व्यास रह्या । याका परिधि के निमित्त **'विक्खंभवग्गदहगुण'** इत्यादि सूत्र अनुसारि याका वर्ग करि ताकौं दश गुणा कहिए, पीछै जो परिमाण होइ, ताका वर्गमूल ग्रहण कीजिए, यों करतें तीन लाख पन्द्रह हजार निवासी योजन प्रमाण याका परिधि भया, सो दोय सूर्यनि की अपेक्षा साठि मुहूर्त में इतने क्षेत्र विषैं भ्रमण होइ, तौ अभ्यंतर परिधि विषैं दिन का प्रमाण अठारह मुहूर्त, सो मध्याह्न समय सूर्य मध्य आवै तब अयोध्या की बराबर होइ; तातैं नौ मुहूर्त मै कितने क्षेत्र में भ्रमण होइ, ऐसैं त्रैराशिक करना । इहां प्रमाणराशि साठि (६०), फलराशि (३ १५,०८९), इच्छाराशि ६ स्थापि, उस परिधि के प्रमाण कौ नौ करि गुणे, साठि का भाग दीजिए, तहां लब्ध प्रमाण सैंतालीस हजार दोय सै त्रैसठि योजन अर सात योजन का वीसवां भाग इतना चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र जानना ।

भावार्थ याका यहु है – जो अयोध्या का चक्री अभ्यंतर परिधि विषै तिष्ठता सूर्य कौ इहातैं पूर्वोक्त प्रमाण योजन परै देखै है । तातैं इतना चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कह्या है ।

एकेंद्रियादि पचेंद्रिय जीवनि कै स्पर्शनादि इन्द्रियनि के उत्कृष्ट विषय ज्ञान का यंत्र

इंद्रियनि के नाम	एकेंद्रिय	द्वीद्रिय	त्रीद्रिय	चतुरिंद्रिय		असंज्ञी पचेंद्रिय		संज्ञी पचेंद्रिय
०	धनुष	धनुष	धनुष	धनुष	योजन	धनुष	योजन	योजन
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	९
रसन	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	९
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	९
चक्षु	०	०	०	०	२९५४	०	५९०८	४७२६३। ७/२० प्रमाण योजन
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२

आगे इन्द्रियनि का आकार कहै है—

चक्खू सोदं घाणं, जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अतिमुत्तखुरप्पसमं, फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारं मसूरयवनाल्यः ।
अतिमुक्तक्षुरप्रसमं, स्पर्शनं तु अनेकसंस्थानम् ॥१७१॥

टीका – चक्षु इंद्री तौ मसूर की दालि का आकार है। बहुरि श्रोत्र इन्द्री जव की जो नाली, तीहिके आकार है। बहुरि घ्राण इन्द्रिय अतिमुक्तक जो कदब का फूल, ताके आकार है। बहुरि जिह्वा इन्द्रिय खुरपा के आकार है। बहुरि स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार है जातै पृथ्वी आ[illegible] न्द्री आदि जीवनि का शरीर का आकार अनेक प्र[illegible] तै स्पर्शन [illegible] भी आकार अनेक प्रकार कह्या, जातै स्पर्शन इ[illegible]

आगे निर्वृत्तिरूप द्रव्येंद्रिय स्पर्शनादिकनि का आकार कह्या, सो कितने-कितने क्षेत्र प्रदेश कौ रोकै-ऐसा अवगाहना का प्रमाण कहै है -

अंगुलअसंखभागं, संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं ।
तत्तो असंखगुणिदं, अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ॥१७२॥

अंगुलासंख्यभागं, संख्यातगुणं ततो विशेषाधिकं ।
ततोऽसंख्यगुणितमंगुलसंख्यातं तत्तु ॥ १७२ ॥

टीका - घनांगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण आकाश प्रदेशनि कौ चक्षु इन्द्रिय रोकै है । सो घनागुल कौ पल्य का असख्यातवा भाग करि तौ गुणीए अर एक अधिक पल्य का असख्यातवां भाग का अर दोय वार सख्यात का अर पल्य का असख्यातवा भाग का भाग दीजिये, जो प्रमाण आवै, तितना चक्षु इन्द्रिय की अवगाहना है । बहुरि यातै सख्यातगुणा श्रोत्र इन्द्रिय की अवगाहना है । यहां इस गुणकार करि एक बार संख्यात कै भागहार का अपवर्तन करना । बहुरि याको पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना उस ही श्रोत्रइद्रिय की अवगाहना विषै मिलाए, घ्राण इन्द्रिय की अवगाहना होइ । सो इहा इस अधिक प्रमाण करि एक अधिक पल्य का असख्यातवा भाग का भागहार अर पल्य का असख्यातवा भाग गुणकार का अपवर्तन करना । बहुरि याकौ पल्य का असख्यातवां भाग करि गणीए, तब जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना होइ । इस गुणकार करि पल्य का असख्यातवां भागहार का अपवर्तन करना । ऐसै यहु जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना घनांगुल के सख्यातवे भाग मात्र जानना ।

आगे स्पर्शन इन्द्रिय के प्रदेशनि की अवगाहना का प्रमाण कहै है -

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि ।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥१७३॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अगुलासंख्यभागं, जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥१७३॥

टीका - स्पर्शन इन्द्रिय की जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के उपजनै तै तीसरा समय विषै जो जघन्य शरीर का अवगाहना घनागुल के

एकेंद्रियादि पचेंद्रिय जीवनि कै स्पर्शनादि इन्द्रियनि के उत्कृष्ट विषय ज्ञान का यंत्र

इंद्रियनि के नाम	एकेंद्रिय	द्वीद्रिय	त्रीद्रिय	चतुरिंद्रिय		असज्ञी पचेंद्रिय		सज्ञी पचेंद्रिय
०	धनुष	धनुष	धनुष	धनुष	योजन	धनुष	योजन	योजन
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	६
रसन	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	६
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	६
चक्षु	०	०	०	०	२६५४	०	५६०८	४७२६३। ७ प्रमाण २० योजन
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२

आगे इन्द्रियनि का आकार कहै है—

चक्खू सोदं घाणं, जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अतिमुत्तखुरप्पसमं, फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारं मसूरयवनाल्यः ।
अतिमुक्तक्षुरप्रसमं, स्पर्शनं तु अनेकसंस्थानम् ॥१७१॥

टीका – चक्षु इन्द्री तौ मसूर की दालि का आकार है । बहुरि श्रोत्र इन्द्री जव की जो नाली, तीहिके आकार है । बहुरि घ्राण इन्द्रिय अतिमुक्तक जो कदब का फूल, ताके आकार है । बहुरि जिह्वा इन्द्रिय खुरपा के आकार है । बहुरि स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार है, जातै पृथ्वी आदि वा वेद्री आदि जीवनि का शरीर का आकार अनेक प्रकार है । तातै स्पर्शन इन्द्रिय का भी आकार अनेक प्रकार कह्या, तातै स्पर्शन इन्द्रिय सर्व शरीर विषै व्याप्त है ।

आगै निर्वृत्तिरूप द्रव्येंद्रिय स्पर्शनादिकनि का आकार कह्या, सो कितने-कितने क्षेत्र प्रदेश कौं रोकैं—ऐसा अवगाहना का प्रमाण कहै है –

अंगुलअसंखभागं, संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं।
तत्तो असंखगुणिदं, अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ॥१७२॥

अंगुलासंख्यभागं, संख्यातगुणं ततो विशेषाधिक।
ततोऽसंख्यगुणितमंगुलसंख्यातं तत्तु ॥ १७२ ॥

टीका – घनांगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण आकाश प्रदेशनि कौ चक्षु इन्द्रिय रोकै है। सो घनागुल कौ पल्य का असख्यातवा भाग करि तौ गुणीए अर एक अधिक पल्य का असख्यातवा भाग का अर दोय वार सख्यात का अर पल्य का असख्यातवा भाग का भाग दीजिये, जो प्रमाण आवै, तितना चक्षु इन्द्रिय की अवगाहना है। बहुरि यातै संख्यातगुणा श्रोत्र इन्द्रिय की अवगाहना है। यहां इस गुणकार करि एक बार संख्यात कै भागहार का अपवर्तन करना। बहुरि याको पल्य का असख्यातवा भाग का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना उस ही श्रोत्रइद्रिय की अवगाहना विषै मिलाए, घ्राण इन्द्रिय की अवगाहना होइ। सो इहा इस अधिक प्रमाण करि एक अधिक पल्य का असख्यातवा भाग का भागहार अर पल्य का असख्यातवा भाग गुणकार का अपवर्तन करना। बहुरि याकौ पल्य का असख्यातवा भाग करि गुणीए, तब जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना होइ। इस गुणकार करि पल्य का असंख्यातवा भागहार का अपवर्तन करना। ऐसै यहु जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना घनांगुल के सख्यातवे भाग मात्र जानना।

आगै स्पर्शन इन्द्रिय के प्रदेशनि की अवगाहना का प्रमाण कहै है –

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥१७३॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये।
अगुलासंख्यभागं, जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥१७३॥

टीका – स्पर्शन इन्द्रिय की जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के उपजनै तै तीसरा समय विषै जो जघन्य शरीर का अवगाहना घनागुल के

असख्यातवै भाग मात्र हो है, सोइ है। बहुरि उत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभू रमण समुद्र विषै महामच्छ का उत्कृष्ट शरीर सख्यात घनागुल मात्र हो है, सो है –

आगै इन्द्रियज्ञानवाले जीवनि कौ कहि। अब अतींद्रिय ज्ञानवाले जीवनि का निरूपण करै है –

ण वि इंदियकरणजुदा, अवग्गहादीहिं गाहया अत्थे।
णेव य इंदियसोक्खा, अणिंदियाणंतणाणसुहा[1] ॥१७४॥

नापि इंद्रियकरणयुता, अवग्रहादिभिः ग्राहकाः अर्थे।
नैव च इंद्रियसौख्या, अनिंद्रियानंतज्ञानसुखाः ॥१७४॥

टीका – जे जीव नियम करि इन्द्रियनि के करण भोहै टिमकारना आदि व्यापार, तिनिकरि संयुक्त नाही है, तातै ही अवग्रहादिक क्षयोपशम ज्ञान करि पदार्थ का ग्रहण न करै है। बहुरि इन्द्रियजनित विषय संबंध करि निपज्या सुख, तिहिकरि संयुक्त नाही है, ते अर्हंत वा सिद्ध अतीद्रिय अनंत ज्ञान वा अतीद्रिय अनंत सुखकरि विराजमान जानने; जातै तिनिका ज्ञान अर सुख सो शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि तै उत्पन्न भया है।

आगै एकेंद्रियादि जीवनि की सामान्यपनै संख्या कहै है –

थावरसंखपिपीलिय, भमरमणुस्सादिगा सभेदा जे।
जुगवारमसंखेज्जा, णंताणंता णिगोदभवा ॥१७५॥

स्थावरशंखपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादिकाः सभेदा ये।
युगवारमसख्येया, अनंतानंता निगोदभवाः ॥१७५॥

टीका – स्थावर जो पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पती ए – पंच प्रकार तौ एकेद्री। बहुरि संख, कौडी, लट इत्यादि बेंद्री। बहुरि कीडी, मकोडा इत्यादि तेंद्री। बहुरि भ्रमर, माखी, पतंग इत्यादि चौ इन्द्री। बहुरि मनुष्य, देव, नारकी अर जलचरादि तिर्यंच, ते पंचेंद्री। ए जुदे-जुदे एक-एक असंख्यातासख्यात प्रमाण हैं। बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पती रूप एकेंद्री ते अनंतानत है।

---

1. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २५१, गाथा १४०।

आगै विशेष सख्या कहै है । तहां प्रथम ही एकेंद्रिय जीवनि की संख्या कहै है —

तसहीणो संसारी, एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाणं, संखेज्जदिमं अपुण्णाणं ॥१७६॥

त्रसहीनाः संसारिणः, एकाक्षाः तेषां संख्यका भागाः ।
पूर्णानां परिमाणं, संख्येयकमपूर्णानाम् ॥ १७६ ॥

टीका – सर्व जीव-राशि प्रमाण मै स्यौं सिद्धनि का प्रमाण घटाए, संसारी-राशि होइ । सोइ संसारी जीवनि का परिमाण मै स्यौ त्रस जीवनि का परिमाण घटाएं, एकेंद्रिय जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि तीहि एकेंद्रिय जीवनि का परिमाण कौं संख्यात का भाग दीजिये, तामै एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त एकेंद्रियनि का परिमाण है । बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त एकेंद्रियनि का परिमाण है ।

आगे एकेंद्रियनि के भेदनि की संख्या का विशेष कहै है –

बादरसुहमा तेसिं पुण्णापुण्णे त्ति छव्विहाणं पि ।
तक्कायमग्गणाये, भणिज्जमाणक्कमो णेयो ॥१७७॥

बादरसूक्ष्मास्तेषां, पूर्णापूर्ण इति षड्विधानामपि ।
तत्कायमार्गणायां, भणिष्यमाणक्रमो ज्ञेयः ॥१७७॥

टीका – सामान्य एकेंद्रिय राशि के बादर अर सूक्ष्म ए दोय भेद । बहुरि एक-एक भेद के पर्याप्त – अपर्याप्त ए दोय-दोय भेद – असें च्यारि भए, तिनिका परिमाण आगे कायमार्गणा विषै कहिएगा, सो अनुक्रम जानना सो कहिए है । सामान्य पनै एकेंद्रिय का जो परिमाण, ताकौ असख्यात लोक का भाग दीजिए, तामै एक भाग प्रमाण तौ बादर एकेंद्रिय जानने । अर अवशेष बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म एकेंद्रिय जानने । बहुरि बादर एकेंद्रियनिके परिमाण कौ असंख्यात लोक का भाग दीजिए । तामै एक भाग प्रमाण तौ पर्याप्त है । अर अवशेष बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त है । बहुरि सूक्ष्म एकेंद्रिय का परिमाण कौ सख्यात का भाग दीजिए, तामै एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त है । बहुरि अवशेष भाग प्रमाण पर्याप्त है । बादर विषै तौ पर्याप्त थोरे है; अपर्याप्त घने है । बहुरि सूक्ष्म विषै पर्याप्त घने है, अपर्याप्त थोरे है; असा भेद जानना ।

आगे त्रस जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै है—

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं ।
हीणकमं पडिभागो, आवलियासंखभागो दु ॥१७८॥

द्वित्रिचतुः पंचमानमसंख्येनावहितप्रतरांगुलेनहितप्रतरम् ।
हीनक्रमं प्रतिभाग, आवलिकासंख्यभागस्तु ॥१७८॥

टीका – द्वीद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिद्रिय, पंचेद्रिय – इनि सर्व त्रसनि का मिलाया हुवा प्रमाण, प्रतरांगुल कौ असंख्यात का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीएं यो करतै जितना होइ, तितना जानना । इहां द्वीद्रिय राशि का प्रमाण सर्वतै अधिक है । बहुरि तातै त्रीद्रिय विशेष घाटि है । तातै चौइंद्रिय विशेष घाटि है । तातै पंचेद्रिय विशेष घाटि है, सो घाटि कितने-कितने है – असा विशेष का प्रमाण जानने के निमित्त भागहार अर भागहार का भागहार आवली का असंख्यातवां भाग मात्र जानना ।

सो भागहार का अनुक्रम कैसे है ? सो कहिये है—

बहुभागे समभागो, चउण्णमेदेसिमेक्कभागह्मि ।
उत्तकमो तत्थ वि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥१७९॥

बहुभागे समभागश्चतुर्णामेतेषामेकभागे ।
उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥१७९॥

टीका – त्रस जीवनि का जो परिमाण कह्या, तीहिनं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये । तामै एक भाग तौ जुदा राखिये अर जे अवशेष बहु भाग रहे, तिनिके च्यारि बट (बटवारा) कीजिये, सो एक-एक बट द्वीद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेद्रियनि कौ बराबरि दीजिये । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये । तामै एक भाग तौ जुदा राखिए अर अवशेष बहुभाग द्वीद्रियनि कौ दीजिये । जातै सर्व विषै बहुत प्रमाण द्वीद्रिय का है । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौं बहुरि आवली का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए । तामै एक भाग तौ जुदा राखिये, बहुरि अवशेष भाग त्रीद्रियनि कौं दीजिए । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौं बहुरि आवली

का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिये । तामै बहु भाग तौ चौइन्द्रियनि कौ दीजिए । अर एक भाग पचेंद्रिय कौ दीजिए । असै दीएं हूवे परिमाण कहै ते नीचै स्थापिए । बहुरि पूर्वै जे बराबरि च्यारि बट किए थे, तिनिकौ ऊपरि स्थापिए । बहुरि अपने-अपने नीचै ऊपरि के परिमाण कौ मिलाएं, द्वीद्रियादि जीवनि का परिमाण हो है ।

तिबिपचपुण्णपमाणं, पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा, बितिचपजीवा अपज्जत्ता ॥१८०॥

त्रिद्विपंचचतुः पूर्णप्रमाणं, प्रतरांगुलासंख्यभागहितप्रतरम् ।
हीनक्रमं पूर्णोना, द्वित्रिचतुः पंचजीवा अपर्याप्ताः ॥१८०॥

टीका – बहुरि पर्याप्त त्रसजीव प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग का भाग जगत्प्रतर कौ दीएं, जो परिमाण आवै, तितने है, तिनि विषै घने तौ तेइंद्रिय है । तींहिस्यो घाटि द्वीद्रिय है । तिहिस्यों घाटि पचेद्रिय है । तिहिसौ घाटि चौइद्रिय है, सो इहां भी पूर्वोक्त **'बहुभागे समभागो'** इत्यादि सूत्रोक्त प्रकार करि सामान्य पर्याप्त त्रस-राशि कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभागनि के च्यारि समान भाग करि, एक-एक भाग तेद्री, बेद्री, पंचेद्री, चौद्रीनि कौ दैनां । बहुरि तिस एक भाग कौ भागहार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग तेइद्रियनि कौ देना । बहुरि तिस एक भाग कौ भागहार का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग द्वीद्रियनि कौ दैनां । बहुरि तिस एक भाग कौ भागहार का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग पचेद्रियनि दैना । अर एक भाग चौइद्रियनि कौ देना । असै अपना-अपना समभाग ऊपरि स्थापि, देय भाग नीचै स्थापि, जोडै, तेद्री आदि पर्याप्त जीवनि का प्रमाण हो है । बहुरि पूर्वै जो सामान्यपनै बेइद्रिय आदि जीवनि का प्रमाण कह्या था, तामै सौ इहा कह्या जो अपना-अपना पर्याप्त का परिमाण सो घटाय दीए, अपनां-अपना बेद्री आदि पंचेद्री पर्यंत अपर्याप्त जीवनि का परिमाण हो है । सो अपर्याप्तनि विषै घने तौ बेइद्रिय, तिहिस्यो घाटि तेइंद्रिय, तिहिसौ घाटि चौइंद्रिय, तिहिसौ घाटि पचेद्रिय है–असै इनिका परीमाण कह्या ।

— —

आठवां अधिकार : काय-मार्गणा प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

चंद्रप्रभ जिन कौं भजौं चंद्रकोटि सम जोति ।
जाकै केवल लब्धि नव समवसरण जुत होति ।।

अथ काय-मार्गणा कौं कहै है -

जाई अविणाभावी, तसथावरउदयजो हवे काओ ।
सो जिणमदह्मि भणिओ, पुढवीकायादिछब्भेओ ।।१८१।।

जात्यविनाभावित्रसस्थावरोदयजो भवेत्कायः ।
स जिनमते भणितः, पृथ्वीकायादिषड्भेदः ।।१८१।।

टीका – एकेंद्रियादिक जाति नामा नामकर्म का उदय सहित जो त्र-स्थावर नामा नामकर्म का उदय करि निपज्या त्रस-स्थावर पर्याय जीव कैं होइ, सो काय कहिए। सो काय छह प्रकार जिनमत विषै कह्या है। पृथ्वीकाय १, अपकाय २, तेजकाय ३, वायुकाय ४, वनस्पतीकाय ५, त्रसकाय ६–ए छ भेद जानना ।

कायते कहिए ए त्रस है, ए स्थावरहै, असा कहिए, सो काय जानना। तहा जो भयादिक तै उद्वेगरूप होइ भागना आदि क्रिया संयुक्त हो है, सो त्रस कहिए। वहुरि जो भयादिक आए स्थिति क्रिया युक्त होइ, सो स्थावर कहिए। अथवा चीयते कहिए पुद्गल स्कंधनि करि संचयरूप कीजिये, पुष्टता कौं प्राप्त कीजिए, सो काय औदारिकादि शरीर का नाम काय है। वहुरि काय विषै तिष्ठता जो आत्मा की पर्याय, ताकौ भी उपचार करि काय कहिए। जातै जीव विपाकी जो त्रस-स्थावर प्रकृति, तिनिकै उदय तै जो जीव की पर्याय होइ, सो काय है। ऐसा व्यवहार की सिद्धि है। वहुरि पुद्गलविपाकी शरीर नामा नाम कर्म की प्रकृति के उदय तै भया शरीर, ताका इहां काय शब्द करि ग्रहण नाही है ।

आगे स्थावरकाय के पाच भेद कहै है –

पुढवी आऊतेऊ, वाऊ कम्मोदयेरा तत्थेव ।
रिगयवण्णच्चउक्कजुदो, तारां देहो हवे रिगयमा ॥१८२॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकर्म्मोदयेन तत्रैव ।
निजवर्णचतुष्कयुतस्तेषां देहो भवेन्नियमात् ॥१८२॥

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु विशेष धरै जो नाम कर्म की स्थावर प्रकृति के भेदरूप उत्तरोत्तर प्रकृति, ताके उदय करि जीवनि के तहां ही पृथिवी, अप, तेज, वायु रूप परिरगये जे पुद्गलस्कध, तिनि विषै अपने-अपने पृथिवी आदि रूप वर्णादिक चतुष्क संयुक्त शरीर नियम करि हो है । असै होतै पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेज–कायिक, वातकायिक जीव हो है ।

तहा पृथिवी विशेष लीए स्थावर पर्याय जिनकै होइ, ते पृथिवीकायिक कहिये । अथवा पृथिवी है काय कहिये शरीर जिनका, ते पृथिवीकायिक कहिए । असै ही अपकायिक, तेजकायिक, वातकायिक जानने । तिर्यच गति, एकेद्री जाति औदारिक शरीर, स्थावर काय इत्यादिक नामकर्म की प्रकृतिनि के उदय अपेक्षा असी निरुक्ति सभवै है ।

बहुरि जो जीव पूर्व पर्याय को छोडि, पृथ्वी विषैं उपजने कौं सन्मुख भया होइ, सो विग्रह गति विषै अंतराल में यावत् रहै, तावत् वाकौं पृथ्वी जीव कहिये । जातै इहा केवल पृथिवी का जीव ही है, शरीर नाही ।

वहुरि जो पृथिवीरूप शरीर कौ धरै होइ, सो पृथिवीकायिक कहिए । जातै वहा पृथिवी का शरीर वा जीव दोऊ पाइए है ।

बहुरि जीव तौ निकसि गया होइ, वाका शरीर ही होइ, ताकौ पृथिवीकाय कहिये । जातै वहां केवल पृथिवी का शरीर ही पाइए है । असै तीन भेद जानने ।

बहुरि अन्य ग्रंथिनि विषै च्यारि भेद कहे है । तहां ए तीनो भेद जिस विषै गर्भित होइ, सो सामान्य रूप पृथिवी असा एक भेद जानना । जातै पूर्वोक्त तीनों भेद पृथिवी के ही है । असै ही अप्जीव, अप्कायिक, अप्काय । बहुरि तेज:जीव, तेज:कायिक, तेज.काय । बहुरि वातजीव, वातकायिक, वातकायरूप तीन-तीन भेद जानने ।

बादरसुहुमुदयेण य, बादरसुहुमा हवंति तद्देहा ।
घादसरीरं थूलं, अघाददेहं हवे सुहुमं ।।१८३।।

बादरसूक्ष्मोदयेन च, बादरसूक्ष्मा भवंति तद्देहाः ।
घातशरीरं स्थूलं, अघातदेहं भवेत्सूक्ष्मम् ।।१८३।।

टीका – पूर्वें कहे जे पृथिवीकायिकादिक जीव, ते वादर नामा नाम कर्म की प्रकृति के उदय तैं वादर शरीर धरैं, वादर हो है । वहुरि सूक्ष्म नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय तें सूक्ष्म होइ । जातैं वादर, सूक्ष्म प्रकृति जीवविपाकी हैं । तिनके उदय करि जीव कौं बादर-सूक्ष्म कहिए । वहुरि उनका शरीर भी वादर सूक्ष्म ही हो है । तहां इंद्रिय विपय का संयोग करि निपज्या सुख-दुःख की ज्यों अन्य पदार्थ करि आपका घात होइ, रुकै वा आप करि और पदार्थ का घात होइ, रुकि जाय, असा घात शरीर ताको स्थूल वा वादर-शरीर कहिए । वहुरि जो किसी कौं घातै नाहीं वा आपका घात अन्य करि जाकै न होइ, असा अघात-शरीर, सो सूक्ष्म-शरीर कहिए । वहुरि तिनि शरीरनि के धारक जे जीव, ते घात करि युक्त है शरीर जिनिका ते घातदेह तौ वादर जानने । वहुरि अघातरूप है देह जिनका, ते अघातदेह सूक्ष्म जानने । असें शरीरनि कै रुकना वा न रुकना संभवै है ।

तद्देहमंगुलस्स, असंखभागस्स विंदमाणं तु ।
आधारे थूला ओ, सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ।।१८४।।

तद्देहमंगुलस्यासंख्यभागस्य वृन्दमानं तु ।
आधारे स्थूला ओ, सर्वत्र निरंतराः सूक्ष्माः ।।१८४।।

टीका – तिनि वादर वा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेज कायिक, वातकायिक जीवनि के शरीर घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । जातें पूर्वं जीवसमासाधिकार विपैं अवगाहन का कथन कीया है । तहां सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक की जघन्य शरीर अवगाहना तें लगाइ वादर पर्याप्त पृथिवीकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत वियालीस स्थान कहे, तिनि सवनि विपैं घनांगुल कौं पल्य के असंख्यातवा भाग का भागहार संभवै है । अथवा तहां ही **'बीपुण्णजहण्णोत्तिय असंखसंखं गुणं तत्तो'** इस सूत्र करि वियालीसवां स्थान कौ असंख्यात का गुणकार

कीए अगले स्थान विषै सख्यात घनागुल प्रमाण अवगाहना हो है। तातै तिस बियालीसवा स्थान विषै घनांगुल कौ असख्यात का भागहार प्रकट ही सिद्धि भया। तहां सूक्ष्म अपर्याप्त वातकाय की जघन्य अवगाहना वा पृथ्वीकाय बादर पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण, तहां ही जीवसमासाधिकार विषै कह्या है, सो जानना। बहुरि 'आधारे थूलाओ' आधारे कहिए अन्य पुद्गलनि का आश्रय, तीहि विषै वर्तमान शरीर संयुक्त जे जीव, ते सर्व स्थूलः कहिए बादर जानने। यद्यपि आधार करि तिनके शरीर का बादर स्वभाव रुकना न हो है; तथापि नीचै गिरना रूप जो गमन, ताका रुकना हो है, सो तहां प्रतिघात संभवै है। तातै पूर्वोक्त घातरूप लक्षण ही बादर शरीरनि का दृढ भया।

बहुरि सर्वत्र लोक विषैं, जल विषै वा स्थल विषै वा आकाश विषै निरंतर आधार की अपेक्षा रहित जिनकै शरीर पाइए, ते जीव सूक्ष्म है। जल-स्थल रूप आधार करि तिनिकै शरीर के गमन का नीचै ऊपरि इत्यादि कही भी रुकना न हो है। अत्यत सूक्ष्म परिणमन तै ते जीव सूक्ष्म कहिए है। अंतरयति कहिए अतराल करै है, असा जो अंतर कहिए आधार, तातै रहित ते निरंतर कहिए। इस विशेषण करि भी पूर्वोक्त ही लक्षण दृढ भया। 'ओ' असा सबोधन पद जानना। याका अर्थ यहु– जो हे शिष्य! असै तू जानि। बहुरि यद्यपि बादर अपर्याप्त वायुकायिकादि जीवनि की अवगाहना स्तोक है। बहुरि यातै सूक्ष्म पर्याप्त वायुकायिकादिक पृथ्वी-कायिक पर्यंत जीवनि की जघन्य वा उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यात गुणी है। तथापि सूक्ष्म नामकर्म के उदय की समर्थता तै अन्य पर्वतादिक तै भी तिनिका रुकना न हो है; निकसि जाय है। जैसे जल का बिदु वस्त्रतै निकसि जाय; रुकै नाही, तैसै सूक्ष्म शरीर जानना।

बहुरि बादर नामकर्म के उदय के वश तै अन्यकरि रुकना हो है। जैसै सरिसौ वस्त्र तै निकसै नाही, तैसै बादर शरीर जानना।

बहुरि यद्यपि ऋद्धि कौ प्राप्त भए मुनि, देव इत्यादिक, तिनिका शरीर बादर है; तौ भी ते वज्र पर्वतादिक तै रुकै नाही, निकसि जांय है, सो यहु तपजनित अति-शय की महिमा है, जातै तप, विद्या, मणि, मंत्र, औषधि इनिकी शक्ति के अतिशय का महिमा अचिंत्य है, सो दीखै है। असा ही द्रव्यत्व का स्वभाव है। बहुरि स्वभाव विषै किछू तर्क नाही। यहु समस्त वादी मानै है। सो इहां अतिशयवानों का ग्रहण

नाही। तातैं अतिशय रहित वस्तु का विचार विषै पूर्वोक्त शास्त्र का उपदेश ही वादर सूक्ष्म जीवनि का सिद्ध भया।

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति।
पत्तेयं सामण्णं, पदिट्ठिदिदरे त्ति पत्तेयं ॥१८५॥

उदये तु वनस्पतिकर्मणश्च जीवा वनस्पतयो भवंति।
प्रत्येकं सामान्यं, प्रतिष्ठितेतरे इति प्रत्येकं ॥१८५॥

टीका – वनस्पती रूप विशेष कौं धरैं स्थावर नामा नामकर्म की उत्तरोत्तर प्रकृति के उदय होतैं, जीव वनस्पतीकायिक हो है। ते दोय प्रकार – एक प्रत्येक शरीर, एक सामान्य कहिए साधारण शरीर। तहां एक प्रति नियम रूप होइ, एक जीव प्रति एक शरीर होइ, सो प्रत्येक-शरीर है। प्रत्येक है शरीर जिनिका, ते प्रत्येक-शरीर जीव जानने। वहुरि समान का भाव, सो सामान्य, सामान्य है शरीर जिनिका ते सामान्य-शरीर जीव है।

भावार्थ– वहुत जीवनि का एक ही शरीर साधारण समानरूप होइ, सो साधारण-शरीर कहिए। असा शरीर जिनिकै होइ ते साधारणशरीर जानने। तहां प्रत्येक-शरीर के दोय भेद – एक प्रतिष्ठित, एक अप्रतिष्ठित। इहां गाथा विषै इति शब्द प्रकारवाची जानना। तहां प्रत्येक वनस्पती के शरीर वादर निगोद जीवनि करि आश्रित संयुक्त होंइ, ते प्रतिष्ठित जानने। जे वादर निगोद के आश्रित होंइ, ते अप्रतिष्ठित जानने।

मूलग्गपोरबीजा, कंदा तह खंदबीजबीजरुहा।
समुच्छिमा य भणिया, पत्तेयाणंतकाया य ॥१८६॥

मूलाग्रपर्वबीजाः, कंदास्तथा स्कंधबीजबीजरुहाः।
सम्मूर्छिमाश्च भणिता, प्रत्येकानंतकायाश्च ॥१८६॥

टीका – जिनिका मूल जो जड़, सोइ वीज होइ, ते आदा, हलद आदि मूल-वीज जानने। वहुरि जिनिका अग्र, जो अग्रभाग सो ही वीज होंइ ते आर्यक आदि अग्रवीज जानने। बहुरि जिनिका पर्व जो पेली, सो ही वीज होंइ, ते सांठा आदि पर्ववीज जानने। वहुरि कंद है, वीज जिनिका, ते पिंडालु, सूरण आदि कंदवीज

जानने। बहुरि स्कध, जो पेड, सो ही है बीज जिनिका ते सालरि, पलास आदि स्कंध-बीज जानने। बहुरि जे बीज ही तै लगै ते गेहू, शालि आदि बीजरुह जानने। बहुरि जे मूल आदि निश्चित बीज की अपेक्षा तै रहित, आपै आप उपजै ते सम्मूर्छिम कहिए, समततै भए पुद्गल स्कंध, तिनि विषैं उपजै, असैं दोब आदि सम्मूर्छिम जानने।

असै ए कहे ते सर्व ही प्रत्येक वनस्पती है। ते अनंत जे निगोद जीव, तिनके '**कायः**' कहिए शरीर जिनिविषै पाइए असे '**अनंतकायाः**' कहिए प्रतिष्ठित-प्रत्येक है। बहुरि चकार तै अप्रतिष्ठित-प्रत्येक है। असै प्रतिष्ठित कहिए साधारण शरीरनि करि आश्रित है, प्रत्येक शरीर जिनका ते प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर है। बहुरि तिनकरि आश्रित नाहीं है, प्रत्येक-शरीर जिनिका, ते अप्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर है। असे ए मूलबीज आदि संमूर्छिम पर्यंत सर्व दोय-दोय अवस्था लीएं जानने। बहुरि कोऊ जानैगा कि इनिविषै संमूर्छिम कै तौ संमूर्छिम जन्म होगा, अन्यकै गर्भादिक होगा, सो नाही है। ते सर्व ही प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीरी जीव संमूर्छिम ही है। बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर की सर्वोत्कृष्ट भी अवगाहना घनांगुल के असंख्यात भाग मात्र ही है। तातै पूर्वोक्त आदा आदि देकरि एक-एक स्कंध विषै असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पाइए है। कैसे? घनांगुल कौं दोय बार पल्य का असंख्यातवां भाग, अर नव बार सख्यात का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने क्षेत्र विषै जो एक प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर होइ, तो संख्यात घनांगुल प्रमाण आदा, मूला आदि स्कध विषै केते पाइए? असै त्रैराशिक कीएं, लब्ध राशि दोय बार पल्य का असंख्यातवा भाग, दश बार संख्यात मांडि, परस्पर गुणै, जितना प्रमाण होइ, तितने एक-एक आदा आदि स्कंध विषै प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर पाइए है। बहुरि एक स्कंध विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती जीवनि के शरीर यथासंभव असंख्यात भी होंइ, वा सख्यात भी होंइ। बहुरि जेते प्रत्येक शरीर है, तितने ही तहां वनस्पती जीव जानने; जातै तहा एक-एक शरीर प्रति एक-एक ही जीव होने का नियम है।

बीजे जोणीभूदे, जीवो चंकमदि सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए ॥१८७॥

बीजे योनीभूते, जीवः चंक्रामति स वा अन्यो वा।
येऽपि च मूलादिकास्ते प्रत्येकाः प्रथमतायाम् ॥१८७॥

टीका – बीजे कहिए पूर्व जे कहे, मूल को आदि देकरि, वीज पर्यंत वीजजीव उपजने का आधारभूत पुद्गल स्कंध, सो योनीभूते कहिए; जिस विषै जीव उपजै असी शक्ति संयुक्त होते सतै जल वा कालादिक का निमित्त पाइ, सोई जीव वा और जीव आनि उपजै है ।

भावार्थ – पूर्वै जो बीज विषै जीव तिष्ठै था, सो जीव तौ निकसी गया अर उस वीज विषैं असी शक्ति रही जो इस विषै जीव आनि उपजै, तहां जलादिक का निमित्त होतैं पूर्व जो जीव उस बीज कौ अपना प्रत्येक शरीर करि पीछे अपना आयु के नाश तें मरण पाइ निकसि गया था, सोई जीव बहुरि तिस ही अपने योग्य जो मूलादि वीज, तीहि विषै आनि उपजै है । अथवा जो वह जीव और ठिकानै उपज्या होइ, तौ इस बीज विषै अन्य कोई शरीरांतर विषै तिष्ठता जीव अपना आयु के नाश तैं मरण पाइ, आनि उपजै है । किछु विरोध नाही ।

जैसै गेहूं विषै जीव था, सो निकसि गया । बहुरि याकौ बोया, तब उस ही विषै सोई जीव वा अन्य जीव आनि उपज्या; सो यावत् काल जीव उपजने की शक्ति होइ तावत् काल योनीभूत कहिए । बहुरि जब ऊगने की शक्ति न होइ तब अयोनीभूत कहिए, असा भेद जानना । बहुरि जे मूलनै आदि देकरि वनस्पति काय प्रत्येक रूप प्रतिष्ठित प्रसिद्ध हैं । तेऊ प्रथम अवस्था विषै जन्म के प्रथम समय तैं लगाइ अन्तर्मुहूर्त काल पर्यंत अप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहै है । पीछे निगोदजीव जब आश्रय करै है, तब सप्रतिष्ठित प्रत्येक होय है ।

आगे श्री माधवचंद्र नामा आचार्य त्रैविद्यदेव सो सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित जीवनि का विशेष लक्षण तीन गाथानि करि कहै है—

गूढसिरसंधिपव्वं, समभंगमहीरुहं (यं) च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८८॥

गूढशिरासंधिपर्व, समभंगमहीरुक च छिन्नरुहम् ।।
साधारणं शरीरं, तद्विपरीतं च प्रत्येकम् ।।१८८।।

टीका – जिस प्रत्येक वनस्पती शरीर का सिरा, संधि, पर्व, गूढ होइ; बाह्य दीसै नाही, तहा सिरा तौ लवी लकीरसी जैसै कांकडी विषै होइ । बहुरि संधि बीचि

में छेहा जैसें दाड्यौ वा नारंगी विषै हो है । बहुरि पर्व, गांठि जैसें साठा विषै हो है, सो कच्ची अवस्था विषें जाकै ए बाह्य दीखै नाही, ऐसा वनस्पती बहुरि समभंग कहिए जाका टूक ग्रहण कीजिये, तो कोऊ तातू लगा न रहै, समान बराबरि टूटै असा । बहुरि अहीरुहं कहिए जाके विषै सूत सारिखा तातू न होइ असा । बहुरि छिन्नरुहं कहिए जो काट्या हुवा ऊगै असा वनस्पती सो साधारण है । इहा प्रतिष्ठित प्रत्येक साधारण जीवनि करि आश्रित की उपचार करि साधारण कह्या है । बहुरि तद्विपरीतं कहिये पूर्वोक्त गूढ, सिरा आदि लक्षण रहित नालियर, आम्रादि शरीर अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर जानना । गाथा विषै कह्या है जो चकार सो इस भेद कौं सूचै है ।

मूले कंदे छल्ली, पवाल सालदलकुसुम फलबीजे ।
समभंगे सदि णंता, असमे सदि होंति पत्तेया ॥१८९॥

मूले कंदे त्वक्प्रवालशालादलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सति नांता, असमे सति भवंति प्रत्येकाः ॥१८९॥

टीका – मूल कहिये जड़, कद कहिये पेड़, छल्ली कहिए छालि, प्रवाल कहिए कोपल, अकुरा; शाला कहिए छोटी डाहली, शाखा कहिए बडी डाहली, दल कहिए पान, कुसुम कहिए फूल, फल कहिए फल, बीज कहिये जातै फेरि उपजै, सो बीज; सो ए समभग होंइ, तो अनत कहिए; अनतकायरूप प्रतिष्ठित प्रत्येक है । बहुरि जो मूल आदि वनस्पती समभग न होइ, सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है । जीहि वनस्पति का मूल, कंद, छाल इत्यादिक समभग होइ, सो प्रतिष्ठित प्रत्येक है । अर जाका समभग न होइ सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है । तोडचा थका तांतू कोई लग्या न रहै, बराबरि टूटै, सो समभंग कहिए'।

कंदस्स व मूलस्स व, सालाखंदस्स वावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया, पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥१९०॥

कंदस्य वा मूलस्य वा, शालास्कंधस्य वापि बहुलतरी ।
त्वक् सा अनंतजीवा, प्रत्येकजीवास्तु तनुकतरी ॥१९०॥

टीका – जिस वनस्पती का कद की वा मूल की वा क्षुद्र शाखा की वा स्कंध को छालि मोटो होइ, सो अनतकाय है । निगोद जीव सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक

है। बहुरि जिस वनस्पती का कंदादिक की छालि पतली होइ, सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है।

आगैं श्री नेमिचंद्र सिद्धातचक्रवर्ती साधारण वनस्पती का स्वरूप सात गाथानि करि कहै है—

साहारणोदयेण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा।
ते पुण दुविहा जीवा, बादर सुहमा त्ति विण्णेया ॥१९१॥

साधारणोदयेन निगोदशरीरा भवंति सामान्याः।
ते पुर्नाद्विविधा जीवा, बादर-सूक्ष्मा इति विज्ञेयाः ॥१९१॥

टीका – साधारण नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय तै निगोद शरीर के धारक साधारण जीव हो है। **नि** – कहिये नियतज अनंते जीव, तिनिकौ **गो** कहिये एक ही क्षेत्र कौ, **द** कहिये देइ, सो निगोद शरीर जानना। सो जिनकै पाइए ते निगोदशरीरी है। बहुरि तेई सामान्य कहिये साधारण जीव है। बहुरि ते बादर अर सूक्ष्म असे भेद तै दोय प्रकार पूर्वोक्त बादर सूक्ष्मपना लक्षण के धारक जानने।

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं भणियं[1] ॥१९२॥

साधारणमाहारः, साधारणमानपानग्रहणं च।
साधारणजीवानां, साधारणलक्षणं भणितम् ॥१९२॥

टीका – साधारण नामा नामकर्म के उदय के वशवर्ती, जे साधारण जीव, तिनिकै उपजते पहला समय विषै आहार पर्याप्ति हो है, सो साधारण कहिए अनंत जीवनि के युगपत एक काल हो है। सो आहार पर्याप्ति का कार्य यहु जो आहार वर्गणारूप जे पुद्गल स्कध, तिनिकौ खल-रस भागरूप परिणमावै है। बहुरि तिनही आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि कौं शरीर के आकार परिणमावनेरूप है कार्य जाका, असा शरीर पर्याप्ति, सो भी तिनि जीवनि के साधारण हो है। बहुरि तिनही कौं स्पर्शन इंद्रिय के आकार परिणमावना है कार्य जाका, असा इन्द्रिय पर्याप्ति, सो भी साधारण हो है। बहुरि सासोस्वास ग्रहणरूप है कार्य जाका, असा आनपान

---

1 षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७२, गाथा १४५

पर्याप्ति, सो भी साधारण हो है । बहुरि एक निगोद शरीर है, तीहि विषै पूर्वै अनंत जीव थे । बहुरि दूसरा, तीसरा आदि समय विषै नये अनत जीव उस ही विषै अन्य आनि उपजै, तौ तहां जैसै वे नये उपजे जे जीव आहार आदि पर्याप्ति कौ धरै है, तैसै ही पूर्वै पूर्व समय विषै उपजे थे जे अनंतानत जीव, ते भी उन ही की साथि आहारादिक पर्याप्तिनि कौ धरै है सदृश युगपत् सर्व जीवनि के आहारादिक हो है । तातै इनिकौ साधारण कहिये है । सो यह साधारण का लक्षण पूर्वाचार्यनि करि कह्या हूवा जानना ।

[१] जत्थेक्क मरइ जीवो, तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ एक्को, वक्कमणं तत्थ णंताणं ।।१९३।।

यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र तु मरणं भवेदनंतानाम् ।
प्रक्रामति यत्र एकः, प्रक्रमणं तत्रानंतानाम् ।।१९३।।

टीका – एक निगोद शरीर विषै जिस काल एक जीव अपना आयु के नाश तै मरै, तिसही काल विषै जिनकी आयु समान होइ, अैसै अनतानंत जीव युगपत् मरै है । बहुरि जिस काल विषै एक जीव तहा उपजै है, उस ही काल विषै उस ही जीव की साथि समान स्थिति के धारक अनतानत जीव उपजै है, अैसै उपजना मरना का समकालपना कौ भी साधारण जीवनि का लक्षण कहिए है । बहुरि द्वितीयादि समयनि विषै उपजे अनंतानत जीवनि का भी अपना आयु का नाश होतै साथि ही मरना जानना । अैसै एक निगोद शरीर विषै समय-समय प्रति अनंतानंत जीव साथि ही मरै है, साथि ही उपजै है । निगोद शरीर ज्यो का त्यो रहै है, सो निगोद शरीर की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात कोडाकोडी सागरमात्र है । सो असख्यात लोकमात्र समय प्रमाण जानना । सो स्थिति यावत् पूर्ण न होइ तावत् अैसै ही जीवनि का उपजना, मरना हुवा करै है ।

इतना विशेष – जो कोई एक बादर निगोद शरीर विषै वा एक सूक्ष्म निगोद शरीर विषै अनतानंत जीव केवल पर्याप्त ही उपजै है । तहां अपर्याप्त नाही उपजै है । बहुरि कोई एक शरीर विषै केवल अपर्याप्त ही उपजै है, तहां पर्याप्त नाही उपजै है । एक शरीर विषैं पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ नाही उपजै है । जातै तिन जीवनि के समान कर्म के उदय का नियम है ।

---

१ 'जत्थेवु वक्कमदि', इति षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७२, गाथा १४६।

वहुरि एक साधारण जीव कै कर्म का ग्रहण शक्तिरूप लक्षण धरैं, जो काय योग, ताकरि ग्रह्या हूवा, जो पुद्गल-पिंड, ताका उपकार कार्य, सो तिस शरीर विषै तिष्ठते अनंतानंत अन्य जीवनि का अर तिस जीव का उपकारी हो है । वहुरि अनतानत साधारण जीवनि का जो काय योग रूप शक्ति, ताकरि ग्रहे हूये पुद्गलपिंडनि का कार्यरूप उपकार, सो कोई एक जीव का वा तिन अनतानत साधारण जीवनि का उपकारी समान एकै साथिपनै हो है । वहुरि एक वादर निगोद शरीर विषै वा सूक्ष्म निगोद शरीर विषै क्रम तै पर्याप्त वादर निगोद जीव वा सूक्ष्म निगोद जीव उपजै है । तहा पहले समय अनंतानत उपजै है । वहुरि दूसरे समय तिनतै असंख्यात गुणा घाटि उपजै है । ऐसै ही आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण काल पर्यंत समय-समय प्रति निरंतर असंख्यात गुणा घाटि क्रमकरि जीव उपजै है । तातै परैं जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल का अंतराल हो है । तहा कोऊ जीव न उपजै है । तहां पीछै वहुरि जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवा भाग प्रमाण काल पर्यत निरंतर असख्यात गुणा घाटि क्रम करि तिस निगोद शरीर विषै जीव उपजै है । ऐसै अन्तर सहित वा निरंतर निगोद शरीर विषै जीव उपजै है । सो यावत् प्रथम समय विषै उपज्या साधारण जीव का जघन्य निर्वृति अपर्याप्त अवस्था का काल अवशेष रहै, तावत् ऐसै ही उपजना होइ । वहुरि पीछै तिनि प्रथमादि समयनि विषै उपजे सर्व साधारण जीव, तिनिकै आहार, शरीर, इंद्रिय, सासोस्वास, पर्याप्तिनि की सपूर्णता अपने-अपने योग्य काल विषै होइ है ।

खंधा असंखलोगा, अंडरआवासपुलविदेहा वि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ, असंखलोगेण गुणिदकमा ।१६४॥

स्कंधा असंख्यलोकाः, अंडरावासपुलविदेहा अपि ।
अधस्तनयोनिका, असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥१९४॥

टीका – वादर निगोद जीवनि के शरीर की सख्या जानने निमित्त उदाहरण-[illegible] यह कथन करिए है । इस लोकाकाश विषै स्कंध यथा योग्य असंख्यात लोक [illegible] है । ते [illegible] प्रत्येक जीवनि के शरीर, तिनिकौ स्कंध कहिये है । सो यहु [illegible] करि लोक के प्रदेश गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने प्रतिष्ठित [illegible] लोक [illegible] जानने । वहुरि एक-एक स्कध विषै असंख्यात लोक [illegible] है ।

इहां प्रश्न – जो एक स्कंध विषै असख्यात लोक प्रमाण अडर कैसै सभवै ?

ताका समाधान – यहु अवगाहन की समर्थता है । जैसै जगत श्रेणी का घन प्रमाण लोक के प्रदेशनि विषै अनंतानत पुद्गल परमाणू पाइए । जैसै जहां एक निगोद जीव का कार्माण स्कंध है, तहा ही अनंतानंत जीवनि के कार्माण शरीर पाइये है । तैसै ही एक-एक स्कंध विषै असंख्यात लोक प्रमाण अडर है । जे प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर के अवयवरूप विशेष है । जैसै मनुष्य शरीर विषै हस्तादिक हो है, तैसै स्कंध विषै अन्डर जानने । बहुरि एक-एक अन्डर विषै असख्यात लोक प्रमाण आवास पाइए है । ते आवास भी प्रतिष्ठित प्रत्येक के शरीर के अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसै हस्त विषैं अगुरी आदि हो है । बहुरि एक-एक आवास विषै असख्यात लोक प्रमाण पुलवी है । ते पुणि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर के अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसै एक अंगुली विषै रेखा आदि हो है । बहुरि एक-एक पुलवी विषै असंख्यात लोक प्रमाण बादर निगोद के शरीर जानने । असै ए अंडरादिक अधस्तन योनि कहे । इनि विषै अधस्तन जो पीछै कह्या भेद, ताकी सख्या की उत्पत्ति कौ कारण ऊपरि का भेद जानना । असैं तहा एक स्कंध विषै असख्यात लोक प्रमाण अन्डर है, तौ असंख्यात लोक प्रमाण स्कंधन विषै केते अडर है ? असै त्रैराशिक करि लब्धराशि असख्यात लोक गुणे असख्यात लोक प्रमाण अडर जानने । बहुरि असै ही आवासादि विषै त्रैराशिक कीए तिनतै असख्यात लोक गुणे आवास जानने । बहुरि तिनतै असख्यात लोक गुणे पुलवी जानने । बहुरि तिनतै असख्यात लोक गुणे बादर निगोद शरीर जानने । ते सर्व निगोद शरीर पाच जायगा असंख्यात लोक माडि, परस्पर गुणै, जेता प्रमाण होइ तितने जानने ।

जंबूदीवं भरहो, कोसलसागेदतग्घराइं वा ।
खंधंडरआवासा, पुलविसरीराणि दिट्ठंता ॥१९५॥

जंबूद्वीपो भरतः कोशल साकेततद्गृहाणि वा ।
स्कंधांडरावासाः, पुलविशरीराणि दृष्टांताः ॥१९५॥

टीका – स्कधनि का दृष्टांत जंबूद्वीपादिक जानने । जैसै मध्य लोक विषैं जंबूद्वीपादिक द्वीप है, तैसै लोक विषै स्कध है । बहुरि अंडरनि का दृष्टांत भरतादि क्षेत्र जानने । जैसै एक जबूद्वीप विषै भरतक्षेत्र आदि क्षेत्र पाइए; तैसै स्कंध विषैं

अंडर जानने । वहुरि आवासनि का दृष्टांत कोशल आदि देश जानने । जैसे भरतक्षेत्र विषै कोशल देश आदि अनेक देश पाइए, तैसे अंडर विषै आवास जानने । वहुरि पुलवीनि का दृष्टांत अयोध्यादि नगर जानने । जैसे एक कोशलदेश विषै अयोध्या नगर आदि अनेक नगर पाइए, तैसे आवास विषै पुलवी जानने । वहुरि शरीरनि का दृष्टांत अयोध्या के गृहादिक जानने, जैसे अयोध्या विषै मदरादिक पाइए, तैसे पुलवी विषै वादर निगोद शरीर जानने । वहुरि वा शब्द करि यहु दृष्टात दीया । अैसे ही और कोऊ उचित दृष्टात जानने ।

एगणिगोदसरीरे, जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहिं अणंतगुणा, सव्वेण वितीदकालेण[1] ॥१९६॥

एकनिगोदशरीरे, जीवा द्रव्यप्रमाणतो दृष्टाः ।
सिद्धैरनंतगुणाः सर्वेण व्यतीतकालेन ॥१९६॥

टीका – एक निगोद शरीर विषै वर्तमान निगोद जीव, ते द्रव्यप्रमाण, जो द्रव्य अपेक्षा सख्या, तातै अनंतानंत है; सर्व जीव राशि कौ अनत का भाग दीजिए, तामे एक भाग प्रमाण सिद्ध हैं । सो अनादिकाल तै जेते सिद्ध भए, तिनितै अनंता गुणे है । वहुरि अवशेष वहुभाग प्रमाण संसारी है । तिनके असख्यातवै भाग प्रमाण एक निगोद शरीर विषै जीव विद्यमान है, ते अक्षयानत प्रमाण है । अैसे परमागम विषै कहिए है ।

वहुरि तैसे ही अतीतकाल के समयनि तै अनंत गुणै है । इस करि काल अपेक्षा एक शरीर विषै निगोदजीवनि की संख्या कही ।

वहुरि अैसे ही क्षेत्र, भाव अपेक्षा तिनकी सख्या आगम अनुसारि जोडिए । तहा क्षेत्र प्रमाण तै सर्व आकाश के प्रदेशनि के अनंतवे भाग वा लोकाकाश के प्रदेशनि तै अनंत गुणे जानने ।

भाव प्रमाण तै केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि के अनतवै भाग अर सर्वावधि ज्ञान गोचर जे भाव, तिनिते अनत गुणे जानने । अैसे एक निगोद शरीर विषै जीवनि का प्रमाण कह्या ।

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७३, गाथा १४७ तथा पृष्ठ ३९६ गाथा २१० तथा धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ४७६ गाथा ४३.

इहां प्रश्न – जो छह महीना अर आठ समय के मांही छः सै आठ जीव कर्म नाश करि सिद्ध होइ, सो अैसै सिद्ध बधते जांहि संसारी घटते जांहि, तातै तुम सदा काल सिद्धनि तै अनंत गुणे एक निगोद शरीर विषै जीव कैसे कहो हो ? सर्व जीव राशि तै अनंत गुणा अनागत काल का समय समूह है । सो यथायोग्य अनंतवां भाग प्रमाण काल गए, संसारी-राशि का नाश अर सिद्ध-राशि का बहुत्त्व होइ, तातै सर्वदा काल सिद्धनि तै निगोद शरीर विषै निगोद जीवनि का प्रमाण अनत गुणा संभवै नांही ?

ताका समाधान – कहै है – रे तर्किक भव्य! ससारी जीवनि का परिमाण अक्षयानत है । सो केवली केवल ज्ञान दृष्टि करि अर श्रुतकेवली श्रुतज्ञान दृष्टि करि अैसे ही देखा है । सो यह सूक्ष्मता तर्क गोचर नांही, जातै प्रत्यक्ष प्रमाण अर आगम प्रमाण करि विरुद्ध होइ, सो तर्क अप्रमाण है जैसे किसी ने कह्या अग्नि उष्ण नाही; जाते अग्नि है, सो पदार्थ है; जो जो पदार्थ है, सो सो उष्ण नाही; जैसै जल उष्ण नाही है; अैसी तर्क करी, परि यहु तर्क प्रत्यक्ष प्रमाण करि विरुद्ध है । अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है; तातै यहु तर्क प्रमाण नाही । बहुरि किसीने कह्या धर्म है परलोक विषै दु:खदायक है; जातै धर्म है, सो पुरुषाश्रित है । जो जो पुरुषाश्रित है, सो सो परलोक विषै दु:खदायक है, जैसै अधर्म है; अैसी तर्क करी, परि यहु तर्क आगम प्रमाण करि खडित है । आगम विषै धर्म परलोक विषै सुख दायक कह्या है; तातैं प्रमाण नही । अैसे ही जे केवली प्रत्यक्ष अर आगमोक्त कथन तातै विरुद्ध तेरी तर्क प्रमाण नाही ।

इहां बहुरि तर्क करी–जो तर्क करि विरोधी आगम कैसै प्रमाण होइ ?

ताका समाधान–जो प्रत्यक्ष प्रमाण अर अन्य तर्क प्रमाण करि संभवता जो आगम, ताकै अविरुद्धपणां करि प्रमाणपना हो है । तौ सो अन्य तर्क कहा ? सो कहिए है- सर्व भव्य संसारी राशि अनंतकाल करि भी क्षय कौ प्राप्त न होइ, जातै यहु राशि अक्षयानत है । जो जो अक्षयानत है, सो सो अनंतकाल करि भी क्षयकौ प्राप्त न होइ । जैसै तीन काल के समयनि का परिमाण कह्या कि इतनां है, परि कवहू अत नाही वा सर्वद्रव्यनि का अगुरुलघु के अविभाग प्रतिच्छेद के समूह का परिमाण कह्या, परि अंत नही । तैसै संसारी जीवनी का भी अक्षयानत प्रमाण जानना । अैसा यहु अनुमान तै आया जो तर्क, सो प्रमाण है ।

बहुरि प्रश्न–जो अनतकाल करि भी क्षय न होना साध्य, सो अक्षयानत के हेतु तै दृढ कीया। तातै इहा हेतु कै साध्यसमत्व भया ?

ताका समाधान–भव्यराशि का अक्षयानंतपना आप्त के आगम करि सिद्ध है। तातै साध्यसमत्व का अभाव है। बहुत कहने करि कहा ? सर्व तत्त्वनि का वक्ता पुरुष जो है आप्त, ताकी सिद्धि होतै तिस आप्त के वचनरूप जो आगम, ताकी सूक्ष्म, अतरित, दूरि पदार्थनि विषै प्रमाणता की सिद्धि हो है। तातै तिस आगमोक्त पदार्थनि विषै मेरा चित्त निस्सदेह रूप है। बहुत वादी होने करि कहा साध्य है ?

बहुरि आप्त की सिद्धि कैसै ?

सो कहिए है 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' असा वेद का वचन करि, बहुरि 'प्रणम्य शंभुं' इत्यादि नैयायिक वचन करि, बहुरि 'बुद्धो भवेयं' इत्यादि बौद्ध वचन करि, बहुरि मोक्षमार्गस्य नेतारं, इत्यादि जैन वचन करि, बहुरि अन्य अपना-अपना मत का देवता का स्तवनरूप वचननि करि सामान्यपनै सर्व मतनि विषै आप्त मानै है। बहुरि विशेषपनै सर्वज्ञ, वीतरागदेव स्याद्वादी ही आप्त है। ताका युक्ति करि साधन कीया है। सो विस्तार तै स्याद्वादरूप जैन न्यायशास्त्र विषै आप्त की सिद्धि जाननी। असै ही निश्चयरूप जहाँ खंडने वाला प्रमाण न संभवै है, तातै आप्त अर आप्त करि प्ररूपित आगम की सिद्धि हो है। तातै आप्त आगम करि प्ररूपित ज्यो मोक्षतत्त्व अर बधतत्त्व सो अवश्य प्रमाण करना असे आगम प्रमाण तै एक शरीर विषै निगोद जीवनि कै सिद्ध-राशि तै अनंत गुणापनो सभवै है। बहुरि अक्षयानत-पना भी सर्व मतवाले मानै है। कोऊ ईश्वर विषै मानै है। कोऊ स्वभाव विषै मानै है। तातै कह्या हूवा कथन प्रमाण है ॥

अत्थि अणंता जीवा, जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकसुपउरा, णिगोदवासं ण मुंचंति[1] ॥१९७॥

सन्ति अनंता जीवा, यैर्न प्राप्तस्त्रसानां परिणामः।
भावकलंकसुप्रचुरा, निगोदवासं न मुंचंति ॥ १९७ ॥

---

१ षट्खण्डागम धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७३, गाथा १४८ षट्खण्डागम-धवला पुस्तक ४ पृष्ठ ४७७ गाथा [illegible] किन्तु तत्र भावकलंक-[illegible] इति पाठ।

टीका – इस गाथा विषै नित्यनिगोद का लक्षण कह्या है। अनादि ससार विषें निगोद पर्याय ही कौ भोगवते अनंते जीव नित्यनिगोद नाम धारक सदाकाल हैं। ते कैसे हैं ? जिनि करि त्रस जे बेइंद्रियादिक, तिनिका परिणाम जो पर्याय, सो कबहूं न पाया। बहुरि भाव जो निगोद पर्याय, तिहिनै कारणभूत जो कलंक कहिये कषायनि का उदय करि प्रगट भया अशुभ लेश्यारूप, तीहिं करि प्रचुरा कहिये अत्यंत संबंधरूप है। असे ए नित्यनिगोद जीव कदाचित् निगोदवास कौं न छोडै है। याहीतै निगोद पर्याय कै आदि अंत रहितपनां जानि, अनंतानंत जीवनि कै नित्य निगोदपना कह्या। नित्य विशेषण करि अनित्य निगोदिया चतुर्गति निगोदरूप आदि अंत निगोद पर्यायि संयुक्त केई जीव है, असा सूचै है। जातै **णिच्चचदुग्गदिणिगोद** इत्यादिक परमागम विषै निगोद जीव दोय प्रकार कहै है।

भावार्थ – जे अनादि तै निगोद पर्याय ही कौ धरै हैं, ते नित्यनिगोद जीव है। बहुरि बीचि अन्य पर्याय पाय, बहुरि निगोद पर्याय धरै, ते इतर निगोद जीव जानना। सो वे आदि अत लीये है। बहुरि जिनिके प्रचुर भाव कलंक है, ते निगोद-वास कौं न छांडै, सो इहां प्रचुर शब्द है ,सो एकोदेश का अभावरूप है, सकल अर्थ का वाचक है; तातै याकरि यहु जान्या, जिनकै भाव कलंक थोरा हो है, ते जीव कदा-चित् नित्यनिगोद तै निकसि, चतुर्गति में आवै है। सो छह महीना अर आठ समय मै छः सै आठ जीव नित्यनिगोद मै सौ निकसै है ,सो ही छह महीना आठ समय मै छ. सै आठ जीव संसार सौ निकसि करि मुक्ति पहुंचै है ॥ १९७ ॥

आगें त्रसकाय की प्ररूपणा दोय गाथा करि कहै है—

बिहि तिहि चदुहिं पंचहिं, सहिया जे इंदिएहिं लोयह्मि।
ते तसकाया जीवा, णेया वीरोवदेसेण ॥१९८॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्लोके।
ते त्रसकाया जीवा, ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥ १९८ ॥

टीका – दोय इद्री स्पर्शन–रसन, तिनि करि संयुक्त द्वीद्रिय, बहुरि तीन इंद्रिय स्पर्शन–रसन–घ्राण, तिनि करि सयुक्त त्रीद्रिय, बहुरि च्यारि इद्रिय स्पर्शन–रसन घ्राण–चक्षु, इनि करि सयुक्त चतुरिद्रिय बहुरि पाच इद्रिय स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्र, इनि करि संयुक्त पचेद्रिय, ए कहे जे जीव, ते त्रसकाय जानने। असें श्री वर्धमान

तीर्थंकर परमदेव के उपदेश तै परपराय क्रम करि चल्या आया संप्रदाय करि शास्त्र का अर्थ धरि करि हमहूं कहे है; ते जानने ।।

उववादमारणंतिय, परिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसणालिबाहिरह्मि य, णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठ ।। १९९ ।।

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः ।
त्रसनालीबाह्ये च, न संतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।। १९९ ।।

टीका – विवक्षित पर्याय का पहला समय विषै पर्याय की प्राप्ति, सो उपपाद कहिए । बहुरि मरण जो प्राण त्याग अर अंत जो पर्याय का अंत जाकै होइ, सो मरणांतकाल, वर्तमान पर्याय के आयु का अंत अतर्मुहूर्त मात्र जानना । तीहि मरणांतकाल विषै उपज्या, सो मारणांतिकसमुद्घात कहिए । आगामी पर्याय के उपजने का स्थान पर्यंत आत्मप्रदेशनि का फैलना, सो मारणांतिकसमुद्घात जानना । ऐसा उपपादरूप परिणम्या अर मारणांतिक समुद्घातरूप परिणम्या अर चकार तै केवल समुद्घात रूप परिणम्या जो त्रस, तीहि बिना स्थाननि विषै अवशेष स्वस्थान-स्वस्थान अर विहारवत्स्वस्थान अर अवशेष पांच समुद्घातरूप परिणमे सर्व ही त्रस-जीव, त्रसनाली बारै जो लोक क्षेत्र, तीहि विषै न पाइए है; ऐसा जिन जे अर्हंतादिक, तिनिकरि कह्या है । तातै जैसै नाली होइ, तैसै त्रस रहने का स्थान, सो त्रसनाली जाननी । त्रस नाली इस लोक के मध्यभाग विषै चौदह राजू ऊंची, एक राजू चौडी-लंबी सार्थक नाम धारक जाननी । त्रस जीव त्रसनाली विषै ही है । बहुरि जो जीव त्रसनाली के बाह्य वातवलय विषै तिष्ठता स्थावर था, उसनै त्रस का आयु बाधा । बहुरि सो पूर्व वायुकायिक स्थावर पर्याय कौ छोडि, आगला विग्रहगति का प्रथम समय विषै त्रस नामा नामकर्म का उदय अपेक्षा करि त्रसनाली के बाह्य त्रस हूवा, तातै उपपादवाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य कह्या । बहुरि कोई जीव त्रसनाली के माहि त्रस है, बहुरि त्रसनाली बाहिर तनुवातवलय सबधी वायुकायिक स्थावर का बंध किया था । सो आयु का अतर्मुहूर्त अवशेष रहै, तब आत्मप्रदेशनि का फैलाव जहां का बंध किया था, तिस स्थानक त्रसनाली के बाह्य तनुवातवलय पर्यन्त गमन करै । तातै मारणांतिक समुद्घातवाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य कह्या ।

बहुरि केवली दंड-कपाटादि आकार करि त्रसनाली बाह्य अपने प्रदेशनि का विस्ताररूप समुद्घात करै है । तातै केवलसमुद्घात वाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली

बाह्य कह्या । इनि बिना और त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य नाही है, असा अभिप्राय शास्त्र के कर्ता का जानना ।

आगे वनस्पतीवत् अन्य भी जीवनि के प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठितपना का भेद दिखावै है—

पुढवीआदिचउण्हं, केवलिआहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा णिगोदहिं, पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णा, केवल्याहारदेवनिरयांगानि ।
अप्रतिष्ठितानि निगोदैः, प्रतिष्ठितांगा भवंति शेषाः ॥२००॥

टीका – पृथ्वी आदि चारि प्रकार जीव पृथ्वी – अप – तेज – वायु इनि का शरीर, बहुरि केवली का शरीर, बहुरि आहारक शरीर, बहुरि देवनि का शरीर, बहुरि नारकीनि का शरीर ए सर्व निगोद शरीरनि करि अप्रतिष्ठित है; आश्रित नाहीं । इनि विषै निगोद शरीर न पाइए है । बहुरि अवशेष रहे जे जीव, तिनि के शरीर प्रतिष्ठित जानने । इनि विषै निगोद शरीर पाइए है । तातै अवशेष सर्व निगोद शरीरनि करि प्रतिष्ठित है, आश्रित है । तहा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, द्वींद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय, पचेंद्रिय, तिर्यंच अर पूर्वै कहे तिनि बिना अवशेष मनुष्य इनि सबनि कै शरीर विषै निगोद पाइए है ।

आगै स्थावरकायिक, त्रसकायिक जीवनि के शरीर का आकार कहै है–

मसुरंबुबिंदुसूई–कलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीआदिचउण्हं, तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुबिंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवेद्देहः ।
पृथिव्यादिचतुर्णा, तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥ २०१ ॥

टीका – पृथिवीकायिक जीवनि का शरीर मसूर अन्न समान गोल आकार धरै है । बहुरि अपकायिक जीवनि का शरीर जल की बूंद के समान गोल आकार धरै है । बहुरि अग्निकायिक जीवनि का शरीर सुईनि का समूह के समान लंबा अर ऊर्ध्व विषै चौड़ा बहुमुखरूप आकार धरै है । बहुरि वातकायिक जीवनि का शरीर

ध्वजा समान लवा, चौकौर आकार धरैं है। अैसैं इनिके आकार कहे। तथापि इनिकी अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवैं भागमात्र है; तातैं जुदे-जुदे दीसैं नाहीं। जो पृथ्वी आदि इंद्रियगोचर है, सो घने शरीरनि का समुदाय है, अैसा जानना। बहुरि तरु, जे वनस्पतीकायिक अर द्वीन्द्रियादिक त्रसकायिक, इनि के शरीर अनेक प्रकार आकार धरैं है, नियम नाहीं। ते घनांगुल का असंख्यातवां भाग तैं लगाइ, संख्यात घनांगुल पर्यंत अवगाहना धरैं है; अैसैं जानना।

आगै काय मार्गणा के कथन के अनंतर काय सहित संसारी जीवनि का दृष्टांतपूर्वक व्यवहार कहै है—

जह भारवहो पुरिसो, वहइ भरं गेहिऊण कावलियं।
एमेव वहइ जीवो, कम्मभरं कायकावलियं ॥ २०२ ॥

यथा भारवहः पुरुषो, वहति भारं गृहीत्वा कावटिकम्।
एवमेव वहति जीवः, कर्मभारं कायकावटिकम् ॥ २०२ ॥

टीका – लोक विषै जैसैं बोझ का वहनहारा कोऊ पुरुष, कावडिया सो कावडि में भर्‌या जो बोझ-भार, ताहि लेकरि विवक्षित स्थानक पहुंचावै है। तैसैं ही यहु संसारी जीव, औदारिक आदि नोकर्मशरीर विषै भर्‌या हूवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म का भार, ताहि लेकरि नानाप्रकार योनिस्थानकनि कौं प्राप्त करै है। बहुरि जैसैं सोई पुरुष कावडि का भार कौं गेरि, कोई एक इष्ट स्थानक विषै विश्राम करि तिस भार करि निपज्या दुःख के वियोग करि सुखी होइ तिष्ठै है। तैसैं कोई भव्य, जीव, कालादि लब्धिनि करि अंगीकार कीनी जो सम्यग्दर्शनादि सामिग्री, तीहि करि युक्त होता संता, संसारी कावडि का विषै भर्‌या कर्म भार कौं छाडि, तिस भार करि निपज्या नाना प्रकार दुःख-पीडा का वियोग करि, इस लोक का अग्रभाग विषै सुखी होई तिष्ठै है। अैसा हित उपदेश रूप आचार्य का अभिप्राय है।

आगै दृष्टांतपूर्वक कायमार्गणा रहित जे सिद्ध, तिनिका उपाय सहित स्वरूप कौं कहै हैं —

---

१. — षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १ पृष्ठ सं. १४०, गाथा ८६।

जह कंचणमग्गि-गयं, मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह कायबंध-मुक्का, अकाइया झाण-जोगेण[1] ॥२०३॥

यथा कांचनमग्निगतं, मुच्यते किट्टेन कालिकया च ।
तथा कायबंधमुक्ता, अकायिका ध्यानयोगेन ॥२०३॥

टीका – जैसे लोक विषै मल युक्त सोना, सो अग्नि कौं प्राप्त संता, अंतरंग पारा आदि की भावना करि संवार्‍या हुवा बाह्य मल तौ कीटिका अर अंतरंग मल श्वेतादि रूप अन्य वर्ण, ताकरि रहित हो है। देदीप्यमान सोलहबान निज स्वरूप की लब्धि कौ पाइ, सर्व जननि करि सराहिए है। तैसै ध्यानयोग जो धर्म्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भावना, ताकरि अर बहिरंग तपरूपी अग्नि का सस्कार करि, निकट भव्य जीव है, ते भी औदारिक, तैजस शरीर सहित कार्माण शरीर का सबध रूप करि मुक्त होइ। अकायिकाः कहिए शरीर रहित सिद्ध परमेष्ठी, ते अनंत ज्ञानादि स्वरूप की उपलब्धि कौ पाइ; लोकाग्र विषै सर्व इन्द्रादि लोक करि स्तुति, नमस्कार, पूजनादि करि सराहिए है। काय जिनिकै पाइए ते कायिक, शरीरधारक संसारी जानने। तिनतै विपरीत काय रहित अकायिक मुक्त जीव जानने।

आगै श्री माधवचद्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथा सूत्रनि करि पृथिवीकायिक आदि जीवनि की सख्या कहै है—

आउड्ढरासिवारं, लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ।
भूजलवाऊ अहिया, पडिभागोऽसंखलोगो दु ॥२०४॥

सार्धत्रयराशिवारं, लोके अन्योन्यसंगुणे तेजः ।
भूजलवायवः अधिकाः, प्रतिभागोऽसंख्यलोकस्तु ॥२०४॥

7×7×7

टीका – जगत्श्रेणी घन प्रमाण लोक के प्रदेश, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय–ए तीनि राशि करि तहा विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक जुदा-जुदा बखेरि, तहा एक-एक प्रति देयराशि कौ स्थापि, वर्गितसंवर्ग करना। जाका वर्ग कीया, ताका समतपनै वर्ग करना। सो इहां परस्पर गुणने का नाम वर्गितसवर्ग

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६६, गाथा १४४।

है। ताहि करि शलाकाराशि मैं स्यो एक घटावना। वहुरि असैं करतें जो राशि उपज्या, ताहि विरलन करि एक-एक प्रति सोई राशि देइ, वर्गितसंवर्ग करि शलाका-राशि मैं सौ एक और घटावना। असैं लोक प्रमाण शलाका राशि यावत् पूर्ण होइ तावत् करना। असैं करतें जो राशि उपज्या, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय-राशि, स्थापि, विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक प्रति देयराशि कौं देइ, वर्गितसंवर्ग करि दूसरी वार स्थाप्या हूवा, शलाकाराशि मैं सौ एक घटावना। वहुरि तहा उपज्या हूवा राशि का विरलन करि, एक-एक प्रति सोई राशि स्थापि, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि मैं सौ एक और घटावना। असैं दूसरी वार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि कौ भी समाप्त करि, तहा अंत विषै जो महाराशि भया, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि; विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक प्रति देयराशि कौ देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तीसरी वार स्थाप्या शलाकाराशि तै एक घटावना। वहुरि तहा जो राशि भया, ताका विरलन करि, एक-एक प्रति सोई राशि देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि तै एक और काढ़ना। असैं तीसरी वार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि कौ समाप्त करि, तहां अंत विषै उपज्या महाराशि, तिहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि; विरलनराशि कौ वखेरि, एक-एक प्रति देयराशि कौ देइ वर्गितसंवर्ग करि, चौथी वार स्थाप्या हूवा शलाका-राशि तै एक काढ़ना। वहुरि तहां जो राशि भया, ताकौ विरलन करि, एक-एक प्रति तिस ही कौ देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि मैं सौ एक और काढना। असैं ही क्रम करि पहिली वार, दूसरी वार, तीसरी वार जो स्थापे शलाकाराशि, तिनिकौ जोडें, जो प्रमाण होइ, तितने चौथी वार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि मैं सौ घटाएं, अवशेष जितना प्रमाण रह्या, तिनकौ एक-एक घटावने करि, पूर्ण होतें अंत विषै जो महाराशि उपज्या, तीहि प्रमाण तेजस्कायिक जीवराशि है। इस राशि का परस्पर गुणकार शलाकाराशि, वर्ग शलाकाराशि, अर्द्धच्छेद राशि तिनिका प्रमाण वा अल्पवहुत्व पूर्वें द्विरूप घनाघन धारा का कथन करतें कह्या है, तैसें इहां भी जानना। असैं सामान्यपणै साढा तीन वार वा विशेषपणैं किंचित् घाटि, च्यारि शलाकाराशि, पूर्ण जैसैं होइ, तैसैं लोक का परस्पर गुणन कीए, जो राशि होइ, तितने अग्निकायिक जीवराशि का प्रमाण है। वहुरि इनि तै पृथ्वीकायिक के जीव अधिक हैं। इनि तै अपकाय के जीव अधिक है। इनितै वातकाय के जीव अधिक है। इहां अधिक कितने है? असा जानने के निमित्त भागहार असंख्यात लोक

प्रमाण जानना । सो कहिए है- असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक जीवनि का परिमाण ताकौ यथायोग्य छोटा असंख्यात् लोक का भाग दीएं, जेता परिमाण आवै, तितने अग्निकायिक के जीवनि का परिमाण विषै मिलाये, पृथ्वीकायिक जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि इस पृथ्वीकायिक राशि कौ असख्यात् लोक का भाग दीए, जेता परिमाण आवै, तितने पृथ्वीकायिक राशि विषै मिलाये, तितना अपकायिक जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि अपकायिक राशि कौ असंख्यात लोक का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना अपकायिक राशि विषै मिलाए, वातकायिक जीवनि का परिमाण हो है; असै अधिक-अधिक जानने ।

अपदिट्ठिदपत्तेया, असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण, असंखलोगेण संगुणिदा ॥२०५॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका, असंख्यलोकप्रमाणका भवंति ।
ततः प्रतिष्ठिताः पुनः, असंख्यलोकेन संगुणिताः ॥२०५ ॥

टीका – अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीव यथायोग्य असख्यात लोक प्रमाण है । वहुरि इनि कौ असंख्यात लोक करि गुणै, जो परिमाण होइ, तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीव जानने । दोऊनि कौ मिलाएं सामान्य प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीवनि का प्रमाण हो है ।

तसरासिपुढविआदी, चउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं, परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादि चतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी ।
साधारणजीवानां, परिमाणं भवति जिनदिष्टम् ॥२०६॥

टीका – आगे कहिए है - आवली का असख्यातवा भाग करि भाजित प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो होइ, तितना त्रसराशि का प्रमाण अर पृथ्वी-अप-तेज-वायु इनि च्यारिनि का मिल्या हूवा साधिक चौगुणा तेजकायिक राशि प्रमाण, वहुरि इस प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती का मिल्या हूवा परिमाण, असै इनि तीन राशिनि कौ संसारी जीवनि का परिमाण मे घटाए, जो अवशेप रहै, तितना साधारण वनस्पती, जे निगोद जीव, तिनिका परिमाण अनंतानत जानना; असा जिनदेव ने कह्या ।

सगसगअसंखभागो, बादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं, पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥२०७॥

स्वकस्वकासंख्यभागो, बादरकायानां भवति परिमाणम् ।
शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं, प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥ २०७ ॥

टीका – पृथिवी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पतीकायिकनि का जो पूर्वै परिमाण कह्या, तिस अपने-अपने परिमाण कौं असख्यात का भाग देना । तहां एक भाग प्रमाण तौ अपना-अपना बादर कायकनि का प्रमाण है । अवशेष बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म कायकनि का प्रमाण है । पृथ्वीकायिक के परिमाण कौं असंख्यात का भाग दीजिए । तहा एक भाग प्रमाण बादर पृथ्वीकायकनि का परिमाण है । अवशेष बहुभाग परिमाण सूक्ष्म पृथ्वीकायिकनि का परिमाण है । असैं ही सब का जानना । इहां भी भागहार का परिमाण पूर्व कह्या था, असख्यात लोक प्रमाण सोई है । तातै इहा भी अग्निकायादिक विषै पूर्वोक्त प्रकार अधिक-अधिकपना जानना ।

सुहमेसु संखभागं, संखा भागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो, पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥२०८॥

सूक्ष्मेषु संख्यभागः, संख्या भागा अपूर्णका इतरे ।
यस्मादपूर्णाद्धातः, पूर्णाद्धा सख्यगुणितक्रमाः ॥२०८॥

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पती, इनिका पूर्व जो सूक्ष्म जीवनि का परिमाण कह्या, तीहि विषै अपने-अपने सूक्ष्म जीवनि का परिमाण कौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त है । बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त हैं । सूक्ष्म जीवनि विषै अपर्याप्त राशि तै पर्याप्त राशि का प्रमाण बहुत जानना । सो कारण कहै है; जातै अपर्याप्त अवस्था का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । इस काल तै पर्याप्त अवस्था का काल सख्यातगुणा है, सो दिखाइए है । कोमल पृथ्वीकायिक का उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है । बहुरि कठिन पृथ्वी कायिक का बाईस हजार वर्ष प्रमाण है । जलकायिक का सात हजार वर्ष प्रमाण है । तेजकायिक का तीन दिन प्रमाण है । वातकायिक का तीन हजार वर्ष प्रमाण है । वनस्पती कायिक का दश हजार वर्ष प्रमाण है ।

इहा प्रसंग पाइ विकलत्रय विषै बेद्री का बारा वर्ष, तेद्री का गुणचास दिन, चौद्री का छह महिना प्रमाण है। असै उत्कृष्ट आयु, बल का परिमाण कह्या। तीहि विषै अंतर्मुहूर्त काल विषै तौ अपर्याप्त अवस्था है। अवशेष काल विषै पर्याप्त अवस्था है। तातै अपर्याप्त अवस्था का काल तै पर्याप्त अवस्था का काल सख्यातगुणा जानना। तहां पृथ्वी कायिक का पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ कालनि विषै जो सर्व सूक्ष्म जीव पाइए तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्त काल विषै केते पाइए ? असै प्रमाण राशि पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ कालनि के समयनि का समुदाय, फलराशि सूक्ष्म जीवनि का प्रमाण, इच्छाराशि अपर्याप्त काल का समयनि का प्रमाण, तहा फल करि इच्छा कौ गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, लब्धराशि का परिमाण आवै, तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानने। बहुरि प्रमाण राशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छा-राशि पर्याप्त काल कीएं लब्धराशि का जो परिमाण आवै, तितने सूक्ष्म पृथ्वी-कायिक पर्याप्त जीवनि का परिमाण जानना। ताही तै सख्यात का भाग दीए, एक भाग प्रमाण अपर्याप्त कहे। अवशेष (बहु) भाग प्रमाण पर्याप्त कहे है। असै ही सूक्ष्म अपकायिक, तेजकायिक, वातकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक विषै अपना-अपना सर्व काल कौ प्रमाणराशि करि, अपने-अपने प्रमाण कौ फलराशि करि पर्याप्त वा अपर्याप्त काल कौ इच्छाराशि करि लब्धराशि प्रमाण पर्याप्त वा अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। इहा पर्याप्त वा अपर्याप्त काल की अपेक्षा जीवनि का परिमाण सिद्ध हूवा है।

पल्लासंखेज्जवहिद, पदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे।
जलभूणिपबादरया, पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा ॥२०९॥

पल्यासंख्यावहितप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे।
जलभूनिपबादरकाः, पूर्णा आवल्यसंख्यभाजितक्रमाः ॥२०९॥

टीका – पल्य के असख्यातवां भाग का भाग प्रतरागुल कौ दीये, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो परिमाण आवै, तितना बादर अपकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि इस राशि कौ आवली का असख्यातवा भाग का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि इस राशि कौ भी आवली का असख्यातवां भाग का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त

जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि इस राशि कौ भी आवली का असख्यातवां भाग का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना।

इहां 'णि' इस आदि अक्षर तै निगोद शब्द करि प्रतिष्ठित प्रत्येक जानने; जातै साधारण का कथन आगै प्रगट कहै है —

विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं।
पज्जत्ताण पमाणं, तेहिं विहीणा अपज्जत्ता ॥२१०॥

वृंदावलिलोकानामसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनाम्।
पर्याप्तानां प्रमाणं, तैर्विहीना अपर्याप्ताः ॥२१०॥

टीका – आवली के जेते समय है, तिनिका घन कीएं, जो प्रमाण होइ, ताकौ वृंदावली कहिए। ताकौ असंख्यात का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना वादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि लोक कौ सख्यात का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना वादर वातकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। सूक्ष्म जीवनि का प्रमाण पूर्वै कह्या है, तातै इहा बादर ही ग्रहण करने।

बहुरि पूर्वं जो पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीरूप वादर जीवनि का परिमाण कह्या था, तीहिं विषै अपना-अपना पर्याप्त जीवनि का परिमाण घटाए, अवशेप रहै, तितने-तितने बादर अपर्याप्त जीव जानने।

साहारणबादरेसु, असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं, परिमाण होदि अणुकमसो ॥२११॥

साधारणवादरेषु असंख्य भागं संख्यका भागाः।
पूर्णानामपूर्णानां, परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥२११॥

टीका – वादर साधारण वनस्पती का जो परिमाण कह्या था, ताकौ असंख्यात का भाग दीजिए। तहा एक भाग प्रमाण तौ वादर निगोद पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि अवशेप असंख्यात वहुभाग प्रमाण वादर निगोद अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। ऐसै अनुक्रम तै इहां काल की अपेक्षा अल्प-वहुत

नाही कह्या है। बादरनि विषै पर्याप्तपना दुर्लभ है। तातै पर्याप्त थोरे; अपर्याप्त घने है, असा आचार्यनि का अनुक्रम जानि कथन कीया है। असा आचार्यनि का अभिप्राय जानना।

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
कमसो तसतप्पुण्णा, पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥२१२॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहितप्ररांगुलेन हितप्रतरम्।
क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसा अपूर्णा हि ॥२१२॥

टीका – आवली का असंख्यातवां भाग का भाग प्रतरांगुल कौ दीएं, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीएं, जो परिमाण आवै, तितना सर्व त्रसराशि का प्रमाण जानना। बहुरि संख्यात का भाग प्रतरागुल कौ दीए, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो परिमाण आवै, तितना पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि सामान्य त्रस जीवनि का परिमाण मै स्यौ पर्याप्त त्रसनि का परिमाण घटाए, जो परिमाण अवशेष रहै, तितना अपर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण जानना। इहा भी पर्याप्तपना दुर्लभ है। तातै पर्याप्त त्रस थोरे है, अपर्याप्त त्रस बहुत है, असा जानना।

आगै बादर अग्निकायिक आदि छह प्रकार जीवनि का परिमाण का विशेष निर्णय करने के निमित्त दोय गाथा कहै है –

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणसायरद्धछिदा।
बादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसायरं पुण्णं ॥२१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहितपल्योनसागरार्धच्छेदाः।
बादरतेपनिभूजलवातानां चरमः सागरः पूर्णः ॥२१३॥

टीका – बादर अग्निकायिक, अप्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पृथ्वी, अप, वायु इन छहौ राशि के अर्धच्छेदों का परिमाण प्रथम कहिए है। अर्धच्छेद का स्वरूप पूर्वै धारानि का कथन विषै कह्या ही था, सो इहा एक बार आवली का असख्यातवा भाग का भाग पल्य कौ दीएं, जो एक भाग का परिमाण आवै, तितना सागर मे सो घटाइए, तब बादर अग्निकायिक जीवनि का जो परिमाण, ताके अर्ध-

तितने-तितने प्रमाण करि, पूर्वराशि कौ गुणै, उत्तर राशि का प्रमाण होइ । सो इहां सामान्यपनै गुणकार का प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकमात्र है । इहा पूर्वोक्त प्रमाण दूवानि कौ परस्पर गुणै असंख्यात लोक कैसै होइ ? सो इस कथन कौ प्रकट अंकसदृष्टि करि अर अर्थसंदृष्टि करि दिखाइए है । जैसै सोलह दूवानि कौ परस्पर गुणै, पणट्ठी होइ, तौ चौसठि दूवानि कौ परस्पर गुणै, कितने होइ, ऐसै त्रैराशिक करिएं । तहा प्रमाणराशि विषै देयराशि दोय विरलनराशि सोलह,फलराशि पणट्ठी (६५५३६) इच्छाराशि विषै देयराशि दोय विरलनराशि चौसठि ।

अब इहा लब्धराशि का प्रमाण ल्यावने कौ करण सूत्र कहै है –

दिण्णच्छेदेणवहिद-इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे ।
लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयच्छेदेनावहितेष्टच्छेदैः प्रकृतविरलनं भाजिते ।
लब्धमितेष्टराश्यन्योन्यहत्या भवति प्रकृतधनम् ॥२१५॥

टीका – देयराशि के अर्धच्छेद का प्रमाण करि, जे फलराशि के अर्धच्छेद प्रमाणराशि विषै विरलनराशि रूप कहे, तिनिका भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तीहि करि इच्छाराशि रूप प्रकृतराशि विषै जो विरलनराशि का प्रमाण कह्या, ताकौ भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना जायगा फलराशिरूप जो इष्टराशि, ताकौ माडि परस्पर गुणै, जो प्रमाण आवै, तितना लब्धराशिरूप प्रकृतिधन का प्रमाण हो है । सो इहा देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक, तीहिका जे फलराशि पणट्ठी के अर्धच्छेद प्रमाणराशि विषै विरलनराशिरूप कहे सोलह, तिनिकौ भाग दीए, सोलह ही पाए । इनिका साध्यभूत राशि का इच्छाराशि विषै कह्या, जो विरलनराशि चौसठि, ताकौ भाग दीए, च्यारि पाए । सो च्यारि जायगा फलराशिरूप पणट्ठी माडि ६५५३६ । ६५५३६ । ६५५३६ । ६५५३६ । परस्पर गुणै, लब्धराशि एकट्ठी प्रमाण हो है । ऐसै ही यथार्थ कथन जानना ।

जो पूर्वं गणित कथन विषै लोक के अर्धच्छेदनि का जेता परिमाण कह्या है; तितने दूवे मांडि परस्पर गुणै; लोक होइ, तौ इहां अग्निकायिक राशि के अर्धच्छेद प्रमाण दूवे माडि, परस्पर गुणै कितने लोक होहि ? ऐसै त्रैराशिक करि इहां प्रमाणराशि विषै देयराशि दोय, विरलनराशि लोक का अर्धच्छेदराशि, अर फलराशि

लोक अर इच्छाराशि विषै देयराशि दोय, विरलनराशि अग्निकायिकराशि के अर्धच्छेद प्रमाण जानना । तहां लब्धराशि ल्यावने कौ देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक, ताका भाग फलराशि (जो) लोक, ताका अर्धच्छेदरूप प्रमाणराशि विषै विरलनराशि है, ताकौं भाग दीएं लोक का अर्धच्छेद मात्र पाए । इनका साध्यभूत अग्निकायिक राशि का अर्धच्छेदरूप जो इच्छाराशि, ताविषै विरलनराशि अग्निकायिक राशि के अर्धच्छेद, तिनकौ भाग दीएं, जो प्रमाण आया, सो किछू घाटि संख्यात पल्य कौं लोक का अर्धच्छेदराशि का भाग दीए, जो प्रमाण होइ तितना यहु प्रमाण आया । सो इतने लोक मांडि, परस्पर गुणै, जो असंख्यात लोक मात्र परिमाण भया, सोई लब्धिराशिरूप बादर अग्निकायिकराशि का प्रमाण इहां जानना । इहां किंचिदून संख्यात पल्य प्रमाण लोकनि कौ परस्पर गुणैं, जो महत असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया, सो तौ भाज्यराशि जानना । अर लोक का अर्धच्छेद प्रमाण लोकनि कौ परस्पर गुणै, जो छोटा असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया, सो भागहार जानना । भागहार का भाग भाज्य कौ दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना बादर अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण जानना । बहुरि इहां अग्निकायिकराशि विषै जो भागहार कह्या, सो अगले अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनि विषैं जो भागहार का प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार कीएं आवै, तिनि सबनि तै असंख्यात लोक गुणा जानना । जातै सागर में स्यौ जो-जो राशि घटाया, सो-सो क्रमतै आवली का असंख्यातवां भाग गुणा घाटि । तातै प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्तवत् स्थापि अर इच्छाराशि विषै विरलनराशि अपने-अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापि, पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशि करि अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशि भी सामान्यपनै असख्यात लोकमात्र है । तथापि उत्तर उत्तरराशि असंख्यात लोक गुणा जानना । भागहार जहा घटता होइ, तहा राशि बधता होइ, सो इहां भागहार असंख्यात लोक गुणा घटता क्रमतै भया; तातै राशि असंख्यात लोक गुणा भया । इहां असंख्यात लोक वा आवली का असंख्यातवां भाग की संदृष्टि स्थापि अर्थसंदृष्टि का स्थापन है । सो आगै सदृष्टि अधिकार विषै लिखेगे ।

इति आचार्य श्रीनेमिचद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम सस्कृतटीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नामा इस भाषा टीका विषै जीवकांड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषै कायप्ररूपणा नामा आठवा अधिकार सपूर्ण भया ।।८।।

नववां अधिकार : योग-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

कुंदकुसुमसम दंतजुत, पुष्पदंत जिनराय ।
वंदौ ज्योति अनंतमय, पुष्पदंतवतकाय ॥९॥

आगै शास्त्रकर्ता योगमार्गणा का निरूपण करै है। तहां प्रथम ही योग का सामान्य लक्षण कहै है –

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स ।
जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो ॥२१६॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य ।
जीवस्य या हि शक्तिः, कर्मागमकारणं योगः ॥२१६॥

टीका – संसारी जीव कै कर्म, जो ज्ञानावरणादिक-कर्म अर उपलक्षण तै औदारिकादिक नोकर्म, तिनि का आगम कहिए कर्म–नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनि का कर्म–नोकर्मरूप परिणमना, ताकौ कारणभूत जो शक्ति बहुरि उस शक्ति का धारी जो आत्मा, ताके प्रदेशनि का चचलरूप होना, सो योग कहिए है।

कैसा है जीव ? पुद्गलविपाकी जो यथासंभव अंगोपांग नाम प्रकृति वा देह जो शरीर नाम प्रकृति ताका उदय जो फल देना रूप परिणमना, ताकरि मन वा भाषा वा शरीररूप जे पर्याप्त, तिनिकौ धरै है।

मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, कायवर्गणा का अवलंबन करि संयुक्त है। इहां अंगोपांग वा शरीर नाना नामकर्म के उदय तै शरीर, भाषा, मनःपर्याप्तिरूप परिणम्या काय, भाषा, मन वर्गणा का अवलंबन युक्त आत्मा, ताकौ लोकमात्र सर्व प्रदेशनि विषै प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनि कौं कर्म-नोकर्मरूप परिणमावने कौ कारणभूत शक्ति-समर्थता; सो भाव-योग है।

बहुरि उस शक्ति का धारी आत्मा के प्रदेशनि विषै किछू चलनरूप सकंप होना सो द्रव्य-योग है।

इहां यहु अर्थ जानना जैसै अग्नि के संयोग करि लोहे के जलावने की शक्ति हो है। तैसै अंगोपाग शरीर नामा नामकर्म के उदय करि मनो वर्गणा वा भाषा वर्गणा का आए पुद्गल स्कंध अर आहार वर्गणा का आए नोकर्म पुद्गल स्कंध, तिनि का संबंधकरि जीव के प्रदेशनि के कर्म-नोकर्म ग्रहण की शक्ति-समर्थता हो है।

आगे योगनि का विशेष लक्षण कहै है–

मणवयणाण पउत्ती, सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।
तण्णामं होदि तदा, तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनोवचनयोः प्रवृत्तयः, सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु।
तन्नाम भवति तदा, तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः ॥२१७॥

टीका – सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप जे पदार्थ, तिनि विषें जो मन, वचन की प्रवृत्ति होइ, उनके जानने कौ वा कहने कौ जीव की प्रयत्नरूप प्रवृति होइ, सो सत्यादिक पदार्थ का संबंध तै, तो सत्य, असत्य, उभय, अनुभय है, विशेषण जिनि का, अैसे च्यारि प्रकार मनोयोग अर च्यारि प्रकार वचनयोग जानने। तहां यथार्थ जैसा का तैसा सांचा ज्ञानगोचर जो पदार्थ होइ, ताकौ सत्य कहिए। जैसे जल का जानना के गोचर जल होइ जातै स्नान-पानादिक जल संबधी क्रिया उसतै सिद्ध हो है; तातै सत्य कहिए।

बहुरि अयथार्थ अन्यथारूप पदार्थ जो मिथ्याज्ञान के गोचर होइ, ताकौ असत्य कहिए। जैसे जल का जानना के गोचर भाडली (मृगजल) होइ, जातै स्नान-पानादिक जल संबंधी क्रिया भाडली स्यो सिद्ध न हो है, तातै असत्य कहिए।

बहुरि यथार्थ वा अयथार्थ रूप पदार्थ जो उभय ज्ञान गोचर होइ, ताकौ उभय कहिए। जैसै कमडलु विषै घट का ज्ञान होइ, जातै घट की ज्यौं जलधारणादि क्रिया कमडलु स्यों सिद्ध हो है, तातै सत्य है। बहुरि घटका-सा आकार नाहीं है, तातै असत्य है; अैसे यहु उभय जानना।

बहुरि जो यथार्थ अयथार्थ का निर्णय करि रहित पदार्थ, जो अनुभय ज्ञान गोचर होइ, ताकौ अनुभय कहिए। सत्य-असत्यरूप कहने योग्य नाही, जैसे यह किछू प्रतिभासै है, अैसे सामान्यरूप पदार्थ प्रतिभास्या, तहा उस पदार्थ करि कौन

क्रिया सिद्ध हो है, अैसा विशेष निर्णय न भया, तातै सत्य भी न कह्या जाय, वहुरि सामान्यपनै प्रतिभास्या तातै असत्य भी न कह्या जाय तातै याकौ अनुभय कहिए ।

अैसै च्यारि प्रकार पदार्थनि विषै मन की वा वचन की प्रवृत्ति होंइ सो च्यारि प्रकार मनोयोग वा च्यारि प्रकार वचनयोग जानने ।

इहां घट विषै घट कौ विकल्प, सो सत्य, अर घट विषै पट का विकल्प, सो असत्य, अर कुंडी विषै जलधारण करि घट का विकल्प, सो उभय अर संबोधन आदि विषै हे देवदत्त ! इत्यादि विकल्प सो अनुभय जानना ।

आगै सत्य पदार्थ है गोचर जाकै, अैसा मनोयोग सो सत्य मनोयोग; इत्यादिक विशेष लक्षण च्यारि गाथानि करि कहै है –

सब्भावमणो सच्चो, जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसोस्तेत्त त्ति [१] ॥२१८॥

सद्भावमनः सत्यं, यो योगः स तु सत्यमनोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा, जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥२१८॥

टीका – 'सद्भावः' कहिए सत्पदार्थ हो है गोचर जाका, अैसा जो मन सत्य पदार्थ के ज्ञान उपजावनेकी शक्ति लीएं भाव-मन होंइ, तीहि सत्यमन करि निपज्या जो चेष्टा प्रवर्त्तन रूप योग, सो सत्यमनोयोग कहिये ।

वहुरि अैसै ही विपरीत असत्य पदार्थरूप विषय के ज्ञान उपजावने की शक्ति रूप जो भाव-मन, ताकरि जो चेष्टा प्रवर्तन रूप योग होंइ, सो असत्यमनोयोग कहिए ।

वहुरि युगपत् सत्य-असत्य रूप पदार्थ के ज्ञान उपजावने की शक्तिरूप जो भाव-मन, ताकरि जो प्रवर्तन रूप योग होंइ, सो उभयमनोयोग कहिये–अैसै हे भव्य ! तू जानि ।

ण य सच्चमोसजुत्तो, जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।
जो जोगो तेण हवे, असच्चमोसो दु मणजोगो [२] ॥२१९॥

१–षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, पृ स. २८३, गा स १५२ । कुछ पाठभेद–सब्भावो सच्चमणो, [illegible], सच्चमण त्ति ।

२ – षट्खंडागम – धवला पुस्तक–१ पृष्ठ स. २०४, गा. सं. १५७ ।

न च सत्यमृषायुक्तं, यत्तु मनस्तदसत्यमृषामनः ।
यो योगस्तेन भवेत्, असत्यमृषा तु मनोयोगः ॥२१९॥

टीका – जो मन सत्य अर मृषा कहिए असत्य, तीहि करि युक्त न होइ बहुरि सत्य असत्य का निर्णय करि रहित जो अनुभय पदार्थ, ताके ज्ञान उपजावने की शक्तिरूप जो भाव मन, तीहि करि निपज्या जो प्रवर्तनरूप योग, सो सत्य-असत्य रहित अनुभय मनोयोग कहिए । असैं च्यारि प्रकार मनोयोग कह्या ॥२१९॥

दसविहसच्चे वयणे, जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति[1] ॥२२०॥

दशविधसत्ये वचने, यो योगः स तु सत्यवचोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा, जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥२२०॥

टीका – सत्य अर्थ का कहनहारा सो सत्य वचन है । जनपद नै आदि देकरि दस प्रकार सत्यरूप जो पदार्थ, तीहि विषै वचनप्रवृत्ति करने कौ समर्थ, स्वरनामा नामकर्म के उदय तै भया भाषा पर्याप्ति करि निपज्या, जो भाषा वर्गणा आलंबन लीएं, आत्मा के प्रदेशनि विषै शक्तिरूप भाववचन करि उत्पन्न भया जो प्रवृत्तिरूप विशेष, सो सत्यवचन योग कहिए ।

बहुरि तीहिस्यों विपरीत असत्य पदार्थ विषै वचनप्रवृत्ति कौ कारण जो भाव वचन, तीहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो असत्य वचन कहिए ।

बहुरि कमंडलु विषै यहु घट है इत्यादिक सत्य-असत्य पदार्थ विषै वचन प्रवृत्ति कौ कारण जो भाव वचन, तीहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो उभय वचन योग कहिए, असैं हे भव्य ! तू जानि ।

जो णेव सच्चमोसो, सो जाण असच्चमोसवचिजोगो ।
अमणाणं जा भासा, सण्णीणामंतणी आदी[2] ॥२२१॥

यो नैव सत्यमृषा, स जानीहि असत्यमृषावचोयोगः ।
अमनसां या भाषा, संज्ञिनामामंत्रण्यादिः ॥२२१॥

---
१. – षट्खडागम-धवला पुस्तक १, पृ. २८८, गा स १५८.
२ – षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृ २८८, गा. स. १५९

टीका – जो सत्य असत्यरूप न होइ अैसा पदार्थ विषै वचनप्रवृत्ति कौ कारण जो भाव वचन, तीहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो सत्य असत्य निर्णय रहित अनुभय वचन योग जानना । ताकां उदाहरण – उत्तर आधा सूत्र करि कहै है । जो वेइंद्रियादिक असैनी पचेंद्रिय पर्यंत जीवनि कै केवल अनक्षररूप भाषा है, सो सर्व अनुभय वचन योग जानना । वा सैनी पंचेंद्रिय जीवनि के आगै कहिए है, जो आमंत्रणी आदि अक्षररूप भाषा, सो सर्व अनुभय वचन योग जानना ।

आगै जनपद आदि दस प्रकार सत्य कौ उदाहरण पूर्वक तीनि गाथानि करि कहै है –

जणवदसम्मदिठवणा, णामे रूवे पडुच्चववहारे ।
संभावणे य भावे, उवमाए दसविहं सच्चं ।।२२२।।

जनपदसम्मतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतित्यव्यवहारयोः ।
संभावनायां च भावे, उपमायां दशविधं सत्यम् ।।२२२।।

टीका – जनपद विषै, संवृति वा सम्मति विषै, स्थापना विषै, नाम विषै, रूप विपै, प्रतीत्य विषै, व्यवहार विषै, संभावना विषै, भाव विषै, उपमा विषै अैसे दस स्थाननि विषै दस प्रकार सत्य जानना ।

भत्तं देवी चंदप्पह, पडिमा तह य होदि जिणदत्तो ।
सेदो दिग्घो रज्झदि, कूरो त्ति य जं हवे वयणं ।।२२३।।

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः ।
श्वेतो दीर्घो रध्यते, कूरमिति च यद्भवेद्वचनम् ।।२२३।।

टीका – दस प्रकार सत्य कह्या, ताका उदाहरण अनुक्रम तै कहिए है ।

देशनि विषै, व्यवहारी मनुष्यनि विषै प्रवृत्तिरूप वचन सो जनपद सत्य कहिए । जैसे ओदन कौ महाराष्ट्र देश विषै भातू वा भेटू कहिए । अध्रदेश विषै वटक वा मुकूडु कहिए । कर्णाट देश विषै कूलु कहिए । द्रविड देश विषै चोरु कहिए, इत्यादिक जानना ।

बहुरि जो संवृति कहिए कल्पना वा सम्मति कहिए वहुत जीवनि करि तैसे ही मानना सर्व देशनि विषै समान रूढिरूप नाम, सो संवृति सत्य कहिए वा इस

ही कौ सम्मतिसत्य कहिए। जैसे किसी विषै पटरानीपना न पाइए अर वाका नाम देवी कहिए।

बहुरि जो अन्य विषै अन्य का स्थापन करि, तिस मुख्य वस्तु का नाम कहना; सो स्थापनासत्य कहिए। जैसे रत्नादिक करि निर्मापित चंद्रप्रभ तीर्थंकर की प्रतिमा कौ चंद्रप्रभ कहिए।

बहुरि देशादिक की अपेक्षा भातु इत्यादिक नाम सत्य है। तैसे अन्य अपेक्षा रहित केवल व्यवहार निमित्त जिसका जो नाम होइ, सो कहना, सो नामसत्य कहिए। जैसे किसी का नाम जिनदत्त है; सो जिन भगवान करि दीया होइ, ताकौं जिनदत्त कहिए; सो इहां दानक्रिया की अपेक्षा बिना ही जिनदत्त नाम कहिए।

बहुरि जो पुद्गल के अनेक गुण होत संतै रूप की मुख्यता लीए वचन कहिए सो रूपसत्य कहिए। जैसे यहु पुरुष सफेद है; असा कहिए। तहा वाके केशादिक श्याम वा रसादिक अन्य गुण वाकै पाइए है; परि उनकी मुख्यता न करी।

बहुरि जो विवक्षित वस्तु तै अन्य वस्तु की अपेक्षा करि तिस विवक्षित वस्तु कौ हीनाधिक मान वचन कहिए, सो प्रतीत्यसत्य कहिए। याही का नाम आपेक्षिक सत्य है। जैसे यहु दीर्घ है असा कहिए, सो तहां किसी छोटे की अपेक्षा याकौ दीर्घ कह्या बहुरि यहु ही यातै दीर्घ की अपेक्षा छोटा है; परन्तु वाकी विवक्षा न लीन्ही। असे ही स्थूल सूक्ष्मादिक कहना, सो प्रतीत्यसत्य जानना।

बहुरि जो नैगमादि नय की अपेक्षा प्रधानता लीए वचन कहिए, सो व्यवहार-सत्य जानना। जैसे नैगम नय की प्रधानता करि असा कहिए कि 'भात पचै है' सो भात तौ पचै पीछै होगा, अब तौ चावल ही है। तथापि थोरे ही काल मे भात होना है; तातै नैगम नय की विवक्षा करि भात पर्याय परिणमने योग्य द्रव्य अपेक्षा सत्य कहिए। आदि शब्द करि संग्रहनयादिक का भी व्यवहार विधान जानना।

नयनि का व्यवहार की अपेक्षा जैसे सर्व पदार्थ सत्त्व रूप है वा असत्त्व रूप है इत्यादिक वचन सो व्यवहारसत्य है। नैगमादि नय तै संग्रह नयादिक का व्यवहार हो है, जातै याकौ व्यवहारसत्य कहिए।

सक्को जंबूदीवं, पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च ।
पल्लोवमं च कमसो, जणपदसच्चादिदिट्ठंता ॥२२४॥

शक्रो जंबूद्वीपं, परिवर्तयति पापवर्जवचनं च ।
पल्योपमं च क्रमशो, जनपदसत्यादिदृष्टांताः ॥२२४॥

टीका – असंभवपरिहार पूर्वक वस्तु के स्वभाव का विधानरूप लक्षण धरै; जो सभावना तीहि रूप वचन सो संभावना सत्य कहिए । जैसै इंद्र जंबूद्वीप पलटावने कौ समर्थ है, ऐसा कहिए । तहा जंबूद्वीप कौं पलटाने की शक्ति संभवै नाहीं । ताका परिहार करि केवल वामें ऐसी शक्ति ही पाइए है; ऐसा जंबूद्वीप पलटावने की क्रिया की अपेक्षा रहित वचन सो सत्य है । जैसै बीज विषै अंकूरा उपजावने की शक्ति है, सो यहु क्रिया की अपेक्षा लीएं वचन है । जातै असंभव का परिहार करि वस्तु स्वभाव का विधानरूप जो संभावना, ताके नियम करि क्रिया की सापेक्षता नाही है । जातै क्रिया है, सो अनेक बाह्य कारण मिलै उपजै है ।

वहुरि अतींद्रिय जो पदार्थ, तिनि विषै सिद्धांत के अनुसारि विधि निषेध का संकल्परूप जो परिणाम, सो भाव कहिए । तीहि नै लीएं जो वचन, सो भावसत्य कहिए । जैसै जो सूकि गया होंइ वा अग्नि करि पच्या होइ वा घरटी, कोल्हू इत्यादिक यत्रकरि छिन्न कीया होंइ अथवा खटाई वा लूण करि मिश्रित हूवा होंइ वा भस्मीभूत हूवा होइ वस्तु, ताकौ प्रासुक कहिए । याके सेवन तै पापबंध नाही । इत्यादिक पापवर्जनरूप वचन, सो भावसत्य कहिए । यद्यपि इनि वस्तुनि विषैं इद्रिय अगोचर सूक्ष्म जीव पाइए है; तथापि आगम प्रमाण तै प्रासुक अप्रासुक का सकल्परूप भाव के आश्रित ऐसा वचन सो सत्य है; जातै समस्त अतीद्रिय पदार्थ के ज्ञानीनि करि कह्या हुवा वचन सत्य है । चकार करि ऐसा ही और भावसत्य जानना ।

वहुरि जो किसी प्रसिद्ध पदार्थ की समानता किसी पदार्थ कौ कहिए सो उपमा है । तीहि रूप वचन सो उपमासत्य कहिए । जैसै उपमा प्रमाण विषै पल्योपम कह्या, तहा धान भरणे का जो खास (गोदाम) ताको पल्य कहिए, ताकी उपमा करि होइ ऐसी सख्या कौ पल्योपम कह्या; सो इहा उपमासत्य है । असख्याता-संख्यात रोम खंडनि के आश्रयभूत वा तीहि प्रमाण समयनि के आश्रयभूत जो संख्या

विशेष, ताके कोइ प्रकार खाडा विषै रोम भरने करि, पल्य की समानता का आश्रय करि, पल्योपम कहिए है। चकार करि सागर आदि उपमासत्य के विशेष जानने।

अैसै अनुक्रम तै जनपदादिक सत्य के भोजनादिक उदाहरण क्रम तै कहे।

आगे अनुभय वचन के आमंत्रणी आदि भेदनि के निरूपण के निमित्त दोय गाथा कहै है –

आमंतणि आणवणी, याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥२२५॥

आमंत्रणी आज्ञापनी, याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी।
प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोम्नी च ॥२२५॥

टीका – 'हे देवदत्त ! तू आव' इत्यादि बुलावनेरूप जो भाषा, सो आमंत्रणी कहिए। बहुरि 'तू इस कार्य कौ करि' इत्यादि कार्य करवाने की आज्ञारूप जो भाषा सो आज्ञापनी कहिए। बहुरि 'तू मोकौ यहु वस्तु देहु' इत्यादि मागनेरूप जो भाषा सो याचनी कहिए। बहुरि 'यहु कहा है ?' इत्यादि प्रश्नरूप जो भाषा सो आपृच्छनी कहिए। बहुरि 'हे स्वामी मेरी यहु वीनती है' इत्यादि किंकर की स्वामी सौ वीनतीरूप जो भाषा, सो प्रज्ञापनी कहिए। बहुरि 'मै इस वस्तु का त्याग कीया' इत्यादि त्यागरूप जो भाषा, सो प्रत्याख्यानी कहिए। बहुरि जैसै 'यहु बुगलो की पंकति है कि ध्वजा है' इत्यादि सदेहरूप जो भाषा, सो सशयवचनी कहिए। बहुरि जैसै 'यहु है तैसै मोकौ भी होना' इत्यादि इच्छानुसारि जो भाषा, सो इच्छानुवचनी कहिए।

णवमी अणक्खरगदा, असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जह्मा, वत्तावत्तं ससंजणया ॥२२६॥

नवमी अनक्षरगता, असत्यमृषा भवंति भाषाः।
श्रोतॄणां यस्मात् व्यक्ताव्यक्तांशसंज्ञापिकाः ॥२२६॥

टीका – आठ भाषा तौ आगै कही अर नवमी अनक्षररूप बेइंद्रियादिक असैनी जीवनि के जो भाषा हो है, अपने-अपने समस्यारूप संकेत की प्रकट करणहारी; सो

अनुभय भाषा जाननी । असैं सत्य असत्य लक्षण रहित आमंत्रणी आदि अनुभय भाषा जाननी । इनि विषै सत्य असत्य का निर्णय नाही, सो कारण कहै हैं । जातै असैं वचननि का सुननेवाला के सामान्यपना करि तौ अर्थ का अवयव प्रगट हूवा, तातै असत्य न कही जाइ । वहुरि विशेषपना करि अर्थ का अवयव प्रगट न हूवा तातै सत्य भी न कह्या जाय, तातै अनुभय कहिए । जैसै कही 'तू आव' सो इहां सभी सुननेवाला नै सामान्यपनै जान्या कि वुलाया है, परंतु वह आवैगा कि न आवैगा असा विशेष निर्णय तौ उस वचन मै नाही । तातै इसकौ अनुभय कहिए । असैं सव का जानना । अन्य भी अनुभय वचन के भेद है । तथापि इन भेदनि विषै गर्भित जानने । अथवा असैं ही उपलक्षण तै असी ही व्यक्त अव्यक्त वस्तु का अंश की जनावनहारी और भी अनुभय भाषा जुदी जाननी ।

इहां कोऊ कहैगा कि अनक्षर भाषा का तौ सामान्यपना भी व्यक्त नाही हो है, याकौ अनुभय वचन कैसै कहिए ?

ताकौ उत्तर – कि अनक्षर भाषावाले जीवनि का संकेतरूप वचन हो है । तिस तै उनका वचन करि उनके सुख-दुख आदि का अवलबन करि हर्षादिक रूप अभिप्राय जानिएं है । तातै अनक्षर शब्द विषै भी सामान्यपना की व्यक्तता संभवै है ।

आगै ए मन वचन योग के भेद कहे, तिनिका कारण कहै हैं—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु ।
मृपोभययोर्मूलनिमित्त खलु भवत्यावरणम् ॥२२७॥

टीका – सत्यमनोयोग वा अनुभयमनोयोग वहुरि सत्यवचनयोग वा अनुभयवचनयोग, इनिका मुख्य कारण पर्याप्ति नामा नामकर्म का उदय अर शरीर नामा नामकर्म का उदय जानना । जातैं सामान्य है, सो विशेष विना न हो है । तातै मन वचन का सामान्य ग्रहण हूवा, तहां उस ही का विशेष जो है, सत्य अर अनुभय, ताका ग्रहण सहज ही सिद्ध भया । अथवा असत्य-उभय का आगै

निकट ही कथन है । तातै इहां अवशेष रहे सत्य-अनुभय, तिनि का ही ग्रहण करना । बहुरि आवरण का मंद उदय होतै असत्यपना की उत्पत्ति नाही हो है । तातै असत्य वा उभय मनोयोग अर वचनयोग का मुख्य कारण आवरण का तीव्र अनुभाग का उदय जानना । इसहू विषै इतनां विशेष है, तीव्रतर आवरण के अनुभाग का उदय असत्य मन-वचन कौ कारण है । अर तीव्र आवरण के अनुभाग का उदय उभय मन-वचन कौ कारण है ।

इहां कोऊ कहै कि असत्य वा उभय मन-वचन का कारण दर्शन वा चारित्र मोह का उदय क्यौ न कहौ ?

ताकां समाधान – कि असत्य अर उभय मन, वचन, योग मिथ्यादृष्टीवत् असंयत सम्यग्दृष्टी कै वा सयमी कै भी पाइए । तातै तू कहै सो बनै नाही । तातै सर्वत्र मिथ्यादृष्टी आदि जीवनि के सत्य-असत्य योग का कारण मंद वा तीव्र आवरण के अनुभाग का उदय जानना । केवली कै सत्य-अनुभय योग का सद्भाव सर्व आवरण के अभाव तै जानना । अयोग केवली कै शरीर नामा नामकर्म का उदय नाही । तातै सत्य अर अनुभय योग का भी सद्भाव नाही है ।

इहां प्रश्न उपजै है कि–केवली कै दिव्यध्वनि है, ताकै सत्य-वचनपना वा अनुभय वचनपना कैसै सिद्धि हो है ?

ताकां समाधान–केवली कै दिव्यध्वनि हो है; सो होते ही तौ अनक्षर हो है; सो सुनने वालों के कर्णप्रदेश कौ यावत् प्राप्त न होइ तावत् काल पर्यंत अनक्षर ही है । तातै अनुभय वचन कहिए । बहुरि जब सुनने वालों के कर्ण विषै प्राप्त हो है; तब अक्षर रूप होंइ, यथार्थ वचन का अभिप्राय रूप संशयादिक कौ दूर करै है । तातै सत्य वचन कहिए । केवली का अतिशय करि पुद्गल वर्गणा तैसै ही परिणमि जांय है ।

आगै सयोग केवली कै मनोयोग कैसै संभवै है ? सो दोय गाथानि करि कहै हैं –

मणसहियाणं वयणं, दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि ।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्मि ॥२२८॥

मनःसहितानां वचनं, दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे ।
उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥२२८॥

टीका – इन्द्रिय ज्ञान जो मतिज्ञान, तीहि करि रहित असा जु सयोग केवली, तीहि विषै मुख्यपनै तौ मनो योग है नाही, उपचारतै है । सो उपचार विषै निमित्त का प्रयोजन है; सो निमित्त इहां यहु जानना – जैसे हम आदि छद्मस्थ जीव मन करि संयुक्त, तिनिके मनोयोग पूर्वक अक्षर, पद, वाक्य, स्वरूप वचनव्यापार देखिए है । तातैं केवली कै भी मनोयोग पूर्वक वचन योग कह्या ।

इहां प्रश्न – कि छद्मस्थ हम आदि अतिशय रहित पुरुपनि विषैं जो स्वभाव देखिए, सो सातिशय भगवान केवली विषै कैसे कल्पिए ?

ताका समाधान – सादृश्यपना नाहीं है; इस ही वास्ते छद्मस्थ कै मनोयोग मुख्य कह्या । अर केवली कै कल्पनामात्र उपचाररूप मनोयोग कहा है ।

सो इस कहने का भी प्रयोजन कहै है—

अंगोवंगुदयादो, दव्वमणट्ठं जिणंदचंदह्मि ।
मणवग्गणखंधाणं, आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयात्, द्रव्यमनोऽर्थं जिनेंद्रचंद्रे ।
मनोवर्गणास्कंधानामागमनात् तु मनोयोगः ॥२२९॥

टीका – जिन है इद्र कहिए स्वामी जिनिका, असे जो सम्यग्दृष्टी, तिनिकै चंद्रमा समान ससार-आताप अर अज्ञान अधकार का नाश करनहारा, असा जो सयोगी जिन, तीहि विषै अगोपांग नामा नामकर्म के उदय तै द्रव्यमन फूल्या आठ पांखडी का कमल के आकार हृदय स्थानक के मध्य पाईए है । ताके परिणमने कौं कारणभूत मन वर्गणा का आगमन तैं द्रव्य मन का परिणमन है । तातैं प्राप्तिरूप प्रयोजन तै पूर्वोक्त निमित्त तै मुख्यपनै भावमनोयोग का अभाव है । तथापि मनयोग उपचार मात्र कह्या है । अथवा पूर्व गाथा विषै कह्या था; आत्मप्रदेशनि कै कर्म नोकर्म का ग्रहणरूप शक्ति, सो भावमनोयोग, वहुरि याही तै उत्पन्न भया मनोवर्गणारूप पुद्गलनि का मनरूप परिणमना, सो द्रव्यमनोयोग, सो इस गाथा सूत्र करि संभवै है । तातै केवली के मनोयोग कह्या है । तु शब्द करि केवली कै

पूर्वोक्त उपचार कह्या, तिसके प्रयोजनभूत सर्व जीवनि की दया, तत्त्वार्थ का उपदेश शुक्लध्यानादि सर्व जानने ।

आगे काययोग का निरूपण प्रारंभ है । तहां प्रथम ही काय योग का भेद औदारिक काययोग, ताकौ निरुक्तिपूर्वक कहै है –

पुरुमहदुदारुरालं, एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं ।
ओरालियं तमु (त्तिउ)च्चइ ओरालियकायजोगो सो[1] ॥२३०॥

पुरुमहदुदारमुरालमेकार्थः संविजानीहि तस्मिन्भवम् ।
औरालिकं तदुच्यते औरालिककाययोगः सः ॥२३०॥

टीका – पुरु वा महत् वा उदार वा उराल वा स्थूल ए एकार्थ है । सो स्वार्थ विषै ठण् प्रत्यय तैं जो उदार होइ वा उराल होइ, सो औदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए अथवा भव अर्थ विषै ठण् प्रत्यय तैं जो उदार विषै वा उराल विषै उत्पन्न होंइ, सो ओदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए । बहुरि सचयरूप पुद्गलपिंड, सो औदारिक काय कहिए । औदारिक शरीर नामा नामकर्म के उदय तैं निपज्या औदारिक शरीर के आकार स्थूल पुद्गलनि का परिणमन, सो औदारिक काय जानना । वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणामै है, तिनिकी अपेक्षा यहु स्थूल है; तातै औदारिक कहिए है ।

इहां प्रश्न – उपजै है कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि जीवनि कै स्थूलपना नाही है, तिनिकौ औदारिक शरीर कैसै कहिए है ?

ताका समाधान – इन हूतै वैक्रियिकादिक शरीर सूक्ष्म परिणामैं है, तातै तिनकी अपेक्षा स्थूलपना आया । अथवा परमागम विषै असी रूढि है; तातै समभिरूढि करि सूक्ष्म जीवनि कै औदारिक शरीर कह्या; सो औदारिक शरीर के निमित्त आत्मप्रदेशनि कै कर्म-नोकर्म ग्रहण की शक्ति, सो औदारिक काय योग कहिए है । अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गल स्कधनि कौ औदारिक शरीररूप परिणमावने कौ कारण, जो आत्मप्रदेशनि का चचलपना, सो औदारिक काययोग हे भव्य ! तू जानि । अथवा औदारिक काय सोई औदारिककाय योग है । इहां कारण

१ – षट्खडागम धवला पुस्तक १, पृ. २९३ गाथा स १६० पाठभेद–त विजाण तिगुत्त ।

विषै कार्य का उपचार जानना । इहां उपचार है सो निमित्त अर प्रयोजन धरै है । तहां औदारिक काय तै जो योग भया, सो औदारिक काय योग कहिए; सो यहु तौ निमित्त । बहुरि तिस योग तै ग्रहे पुद्गलनि का कर्म-नोकर्मरूप परिणमन, सो प्रयोजन सभवै है । तातै निमित्त अर प्रयोजन की अपेक्षा उपचार कह्या है ।

आगे औदारिक मिश्रकाययोग कौं कहै है –

ओरालिय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो, ओरालियमिस्सजोगो सो[1] ॥२३१॥

औरालिकमुक्तार्थं, विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगः, औरालिकमिश्रयोगः सः ॥२३१॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण लीएं जो औदारिक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ, अपर्याप्त होइ, तावत् काल औदारिक मिश्र नाम अनेक कै मिलनें का है; सो इहां अपर्याप्त काल संबंधी तीन समयनि विषै संभवता जो कार्माणयोग, ताकी उत्कृष्ट कार्माण वर्गणा करि संयुक्त है; तातै मिश्र नाम है । अथवा परमागम विषै अैसे ही रूढि है । जो अपर्याप्त शरीर कौ मिश्र कहिए, सो तीहि औदारिक मिश्र करि सहित संप्रयोग कहिए, ताके अर्थि प्रवर्त्या जो आत्मा कै कर्म–नोकर्म ग्रहणे की शक्ति धरै प्रदेशनि का चचलपना; सो योग है । सो शरीर पर्याप्ति की पूर्णता के अभाव तै औदारिक वर्गणा स्कंधनि कौ संपूर्ण शरीररूप परिणमावने कौ असमर्थ है । अैसा औदारिक मिश्र काययोग तू जानि ।

आगै विक्रियिक काय योग कौ कहै है—

विविहगुणइड्ढिजुत्तं, विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं ।
तिस्से भवं च णेयं, वेगुव्वियकायजोगो सो[2] ॥२३२॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं, विक्रियं वा हि भवति विगूर्वम् ।
तस्मिन् भवं च ज्ञेयं, वैर्गूविककाययोगः सः ॥२३२॥

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १ पृष्ठ २६३, गा स. १६१
२ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६३, गाथा १६२ ।

टीका – विविध नानाप्रकार शुभ अशुभरूप अणिमा, महिमा आदि गुण तिनकी ऋद्धि जो महतता, तीहि करि संयुक्त देव–नारकीनि का शरीर, सो वैगूर्व कहिए वा वैगूर्विक कहिए वा वैक्रियिक कहिए । तहा विगूर्व कहिए नानाप्रकार गुण, तिस विषै भया सो वैगूर्व है । अथवा विगूर्व है प्रयोजन जाका, सो वैगूर्विक है । इहां ठण् प्रत्यय आया है । अथवा विविध नानाप्रकार जो क्रिया, अनेक अणिमा आदि विकार सो विक्रिया । तहां भया होइ, वा सो विक्रिया जाका प्रयोजन होइ, सो वैक्रियिक है । अैसी निरुक्ति जानना । जो वैगूर्विक शरीर के अर्थि तिस शरीररूप परिणमने योग्य जो आहार वर्गणारूप स्कंधनि के ग्रहण करने की शक्ति धरै, आत्म-प्रदेशनि का चंचलपना, सो वैगूर्विक काय योग जानना ।

अथवा वैक्रियिक काय, सोई वैक्रियिक काय योग है । इहां कारण विषै कार्य का उपचार जानना । सो यहु उपचार निमित्त अर प्रयोजन पूर्ववत् धरै है । तहां वैक्रियिक काय तै जो योग भया, सो वैक्रियिक काय योग है । यहु निमित्त अर तिहि योग तै कर्म–नोकर्म का परिणमन होना, सो प्रयोजन सभवै ।

आगै देव–नारकी कै तौ कह्या और भी किसी-किसी कै वैक्रियिक काय योग संभवै है, सो कहै है —

बादरतेऊवाऊ, पंचिदियपुण्णगा विगुव्वंति ।
ओरालियं सरीरं, विगुव्वणप्पं हवे जेंसि ॥२३३॥

बादरतेजोवायुपंचेंद्रियपूर्णका विगूर्वंति ।
औरालिकं शरीरं, विगूर्वणात्मकं भवेद्येषाम् ॥२३३॥

टीका – बादर तेजकायिक वा वातकायिक जीव, बहुरि कर्मभूमि विषै जे उत्पन्न भए चक्रवर्ति कौ आदि देकरि सैनी पचेंद्री पर्याप्त तिर्यच वा मनुष्य, बहुरि भोगभूमिया तिर्यच वा मनुष्य ते औदारिक शरीर कौ विक्रियारूप परिणमावै है । जिनिका औदारिक शरीर ही विक्रिया लीए पाइए है । ते जीव अपृथक् विक्रिया रूप परिणमै है । अर भोगभूमियां, चक्रवर्ति पृथक् विक्रिया भी करै है ।

जो अपने शरीर तै भिन्न अनेक शरीरादिक विकाररूप करै, सो पृथक् विक्रिया कहिए ।

बहुरि जो अपने शरीर ही कौं अनेक विकाररूप करै, सो अपृथक् विक्रिया कहिए ।

आगै वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहैं हैं—

वेगुव्वियउत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो, वेगुव्वियमिस्सजोगो सो [1] ॥२३४॥

वैर्गूविकमुक्तार्थं, विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो, वैर्गूविकमिश्रयोगः सः ॥२३४॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण ने लीएं जो वैर्गूविक वा वैक्रियिक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ–शरीर पर्याप्ति की संपूर्णता का अभाव करि वैक्रियिक काययोग उपजावने कौं असमर्थ होइ, तावत् काल वैक्रियिक मिश्र कहिए । मिश्रपना इहां भी औदारिक मिश्रवत् जानना । तीहि वैक्रियिक मिश्र करि सहित संप्रयोग कहिए कर्म–नोकर्म ग्रहण की शक्ति कौं प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्मा के प्रदेशनि का चंचल होना: सो वैक्रियिक मिश्र काययोग कहिए । अपर्याप्त योग का नाम मिश्र योग जानना ।

आगै आहारक काययोग कौं पांच गाथानि करि कहै हैं—

आहारस्सुदएण य, पमत्तविरदस्स होदि आहारं ।
असंजमपरिहरणट्ठं, संदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥

आहारस्योदयेन च, प्रमत्तविरतस्य भवति आहारकम् ।
असंयमपरिहरणार्थं, संदेहविनाशनार्थं च ॥२३५॥

टीका – प्रमत्त विरति षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनि, ताके आहारक शरीर नामा नामकर्म के उदय तै आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि का आहारक शरीर-रूप परिणमने करि आहारक शरीर हो है । सो किसै अर्थि हो है ? अढाई द्वीप विषै तीर्थयात्रादिक निमित्त वा असंयम दूरि करने के निमित्त वा ऋद्धियुक्त होतै

1. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६४, गाथा १६३ ।

भी श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतराय का क्षयोपशम की मंदता होतें कोऊ धर्म्यध्यान का विरोधी शास्त्र का अर्थ विषै संदेह उपजै ताके दूरि करने के निमित्त आहारक शरीर उपजै है ।

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कम्मणपहुदिकल्लाणे ।
परखेत्ते संवित्ते, जिणजिणघरवंदणट्ठं च ॥२३६॥

निजक्षेत्रे केवलिद्विकविरहे निष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे ।
परक्षेत्रे संवृत्ते, जिनजिनगृहवंदनार्थं च ॥२३६॥

टीका – निज क्षेत्र जहा अपनी गमनशक्ति होंइ, तहा केवली श्रुतकेवली न पाइए । बहुरि परक्षेत्र, जहां अपने औदारिक शरीर की गमन शक्ति न होंइ, तहां केवली श्रुतकेवली होंइ अथवा तहा तपज्ञान निर्वाण कल्याणक होइ, तौ तहा असंयम दूर करने के निमित्त वा संदेह दूर करने के निमित्त वा जिन अर जिन-मंदिर तिन की वंदना करने के निमित्त, गमन करने कौ उद्यमी भया, जो प्रमत्त संयमी, ताकै आहारक शरीर हो है ।

उत्तमअंगम्हि हवे, धादुविहीणं सुहं असंहणणं ।
सुहसंठाणं धवलं, हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥२३७॥

उत्तमांगे भवेत्, धातुविहीनं शुभमसंहननम् ।
शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदय ॥२३७॥

टीका – सो आहारक शरीर कैसा हो है ? रसादिक सप्त धातु करि रहित हो है । बहुरि शुभ नामकर्म के उदय तै प्रशस्त अवयव का धारी शुभ हो है । बहुरि संहनन जो हाडों का बंधान तीहि करि रहित हो है । बहुरि शुभ जो सम चतुरस्रसंस्थान वा अंगोपांग का आकार, ताका धारक हो है । बहुरि चंद्रकांतमणि समान श्वेत वर्ण हो है । बहुरि एक हस्त प्रमाण हो है । इहां चौवीस व्यवहारा-गुल प्रमाण एक हस्त जानना । बहुरि प्रशस्त जो आहारक शरीर बंधनादिक पुण्य-रूप प्रकृति, तिनि का है उदय जाकै, असा हो है । असा आहारक शरीर उत्तमांग जो है मुनि का मस्तक, तहां उत्पन्न हो है ।

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे ।
पज्जत्तीसंपुण्णे, मरणं पि कदाचि संभवई ॥२३८॥

अव्याघाति अंतर्मुहूर्तकालस्थिती जघन्येतरे ।
पर्याप्तिसंपूर्णायां, मरणमपि कदाचित् संभवति ॥२३८॥

टीका – सो आहारक शरीर अव्याबाध है; वैक्रियिक शरीर की ज्यों कोई वज्र पर्वतादिक करि रुकि सकै नाही । आप किसी कौ रोकै नाही । बहुरि जाकी जघन्य वा उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त काल प्रमाण स्थिति है; अैसा है । बहुरि जब आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण होइ, तब कदाचित् कोई आहारक काययोग का धारी प्रमत्त मुनि का आहारक काययोग का काल विषै अपने आयु के क्षय तै मरण भी संभवै है ।

आहरदि अणेण मुणी, सुहमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं, तह्मा आहारगो जोगो [1] ॥२३९॥

आहारत्यनेन मुनिः, सूक्ष्मानर्थान् स्वस्य संदेहे ।
गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥२३९॥

टीका – आहारक ऋद्धि करि संयुक्त प्रमत्त मुनि, सो पदार्थनि विषै आप के सदेह होतै, ताके दूरि करने के अर्थि केवली के चरण के निकट जाइ, आप तै अन्य जो केवली, तीहिकरि जो सूक्ष्म यथार्थ अर्थ कौ आहरति कहिए ग्रहण करै, सो आहारक कहिए । आहारस्वरूप होइ, ताकौ आहारक कहिए । सो ताकै तो शरीर पर्याप्ति पूर्ण होतै, आहार वर्गणानि करि आहारक शरीर योग्य पुद्गल स्कंधनि के ग्रहण करने की शक्ति धरै, आत्मप्रदेशनि का चचलपना; सो आहारक काययोग जानना ।

आगै आहारक मिश्र काययोग कौ कहै है—

आहारयमुत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो, आहारयमिस्सजोगो सो [2] ॥२४०॥

---

१. षट्खण्डागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९६ गाथा १६४ ।
२ षट्खण्डागम-धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९६, गाथा १६५ ।

आहारकमुक्तार्थ विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोगः सः ॥२४०॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण लीएं आहारक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ, आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि का आहारक शरीररूप परिणमावने कौ असमर्थ होइ, तावत् काल आहारक मिश्र कहिए। इहां पूर्वै जो औदारिक शरीररूप वर्गणा है, ताके मिलाप तै मिश्रपना जानना। तींहि आहारक मिश्र करि सहित जो संप्रयोग कहिए अपूर्ण शक्तियुक्त आत्मा के प्रदेशनि का चचलपना, सो आहारक मिश्रकाययोग हे भव्य ! तू जानि।

आगै कार्माण काय योग कौ कहै है—

कम्मेव य कम्मभवं, कम्मइयं जो दु तेण संजोगो ।
कम्मइयकायजोगो, इगिविगतिगसमयकालेसु[1] ॥२४१॥

कर्मैव च कर्मभवं, कार्मणं यस्तु तेन संयोगः ।
कार्मणकाययोगः, एकद्विकत्रिकसमयकालेषु ॥२४१॥

टीका – कर्म कहिए ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल स्कंध, सोइ कार्माण शरीर जानना। अथवा कर्म जो कार्माण शरीर नामा नामकर्म, ताके उदय करि भया, सो कार्माण शरीर कहिए। तीहि कार्माण स्कंध सहित वर्तमान जो **संप्रयोगः** कहिए आत्मा के कर्मग्रहणशक्ति धरै प्रदेशनि का चंचलपना, सो कार्माणकाय योग है। सो विग्रह गति विषै एक समय वा दोय समय वा तीन समय काल प्रमाण हो है। अर केवल समुद्घात विषै प्रतरद्विक अर लोक पूर्ण इनि तीन समयनि विषै हो है। और काल विषै कार्माण योग न हो है। याही तै यहु जान्या, जो कार्माण विना और जे योग कहे, ते रुकै नाही, तौ अतर्मुहूर्त पर्यंत एक योग का परिणमन उत्कृष्ट रहै; पीछै और योग होइ। बहुरि जो अन्य करि रुकै, तौ एक समयकौ आदि देकरि अंतर्मुहूर्त पर्यंत एक योग का परिणमन यथासंभव जानना। सो एक जीव की अपेक्षा तौ ऐसै है। अर नाना जीव की अपेक्षा 'उपसम सुहुम' इत्यादि गाथानि करि आठ सांतर मार्गणा विना अन्य मार्गणानि का सर्व काल सद्भाव कह्या ही है।

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९७, गाथा १६६।

आगै योगनि की प्रवृत्ति का विधान दिखावै है—

वेगुव्विय-आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदह्मि ।
जोगोवि एक्ककाले, एक्केव य होदि णियमेण ॥२४२॥

वैर्गूविकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते ।
योगोऽपि एककाले, एक एव च भवति नियमेन ॥२४२॥

टीका – प्रमत्त विरत षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनि कै समकाल विषै युगपत् वैक्रियिक काययोग की क्रिया अर आहारक योग की क्रिया नाही। असा नाही कि एक ही काल विषै आहारक शरीर कौ धारि, गमनागमनादि कार्य कौ करै अर विक्रिया ऋद्धि कौ धारि, विक्रिया संबंधी कार्य कौ भी करै, दोऊ मे स्यौ एक ही होइ। यातै यहु जान्या कि गणधरादिकनि कै और ऋद्धि युगपत् प्रवर्तै तौ विरुद्ध नाही। बहुरि तैसै ही अपने योग्य अतर्मुहूर्त मात्र एक काल विषै एक जीव कै युगपत् एक ही योग होइ, दोय वा तीन योग युगपत् न होइ, यहु नियम है। जो एक योग का काल विषै अन्य योग सबंधी गमनादि क्रिया की प्रवृत्ति देखिए है, सो पूर्वै जो योग भया था, ताके संस्कार तै हो है। जैसै कुभार पहिले चाक दंड करि फेर्या था, पीछे कुंभार उस चाक कौ छोडि अन्य कार्य कौ लाग्या, वह चाक सस्कार के बल तै केतेक काल आप ही फिर्या करै; सस्कार मिटि जाय, तब फिरै नाही। तैसै आत्मा पहिले जिस योगरूप परिणया था, सो उसको छोडि अन्य योगरूप परिणया, वह योग संस्कार के बल तै आप ही प्रवर्तै है। सस्कार मिटै जैसै छोडया हूवा बाण गिरै, तैसै प्रवर्तना मिटै है। तातै सस्कार तै एक काल विषै अनेक योगनि की प्रवृत्ति जानना। बहुरि प्रमत्तविरति कै सस्कार की अपेक्षा भी एक काल वैक्रियिक वा आहारक योग की प्रवृत्ति न हो है। ऐसै आचार्य करि वर्णन किया है; सो जानना।

आगै योग रहित आत्मा के स्वरूप कौ कहै है—

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा, अणोवमाणंतबलकलिया[१] ॥२४३॥

येषां न संति योगाः, शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः ।
ते भवंति अयोगिजिनाः, अनुपमानंतबलकलिताः ॥२४३॥

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २८२, गाथा १५५।

टीका – जिन आत्मनि के पुण्य पापरूप कर्म प्रकृति के बंध कौं उपजावन हारे शुभरूप वा अशुभरूप मन, वचन, काय के योग न होहि ते अयोगी जिन, चौदह्वा अंत गुणस्थानवर्ती वा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ।

कोऊ जानेगा कि योगनि के अभाव तैं उनके बल का अभाव है । जैसे हम सारिखे जीवनि कै योगनि के आश्रयभूत बल देखिए है ।

तहा कहिए है । कैसे है–सिद्ध ? **'अनुपमानंतबलकलिताः'** कहिए जिनके बल कौं हम सारिखे जीवनि का बल की उपमा न बनै है । बहुरि केवलज्ञानवत् अक्षयानंत अविभाग प्रतिच्छेद लीए है, ऐसा बल–वीर्य, जो सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय का युगपत् ग्रहणै की समर्थता, तीहि करि व्याप्त है । तीहि स्वभाव परिणए है । योगनि का बल कर्माधीन है । तातै प्रमाण लीए है, अनत नाही । परमात्मा का बल केवलज्ञानादिवत् आत्मस्वभावरूप है । तातै प्रमाण रहित अनत है; असा जानना ।

आगै शरीर का कर्म अर नोकर्म भेद दिखावै हैं –

ओरालियवेगुव्विय, आहारयतेजणामकम्मुदये ।
चउणोकम्मसरीरा, कम्मेव य होदि कम्मइयं ।।२४४।।

औरालिकवैगूर्विकाहारकतेजोनामकर्मोदये ।
चतुर्नोकर्मशरीराणि, कर्मैव च भवति कार्मणम् ।।२४४।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजसरूप जो नामकर्म की प्रकृति तिनके उदय तै जे ए औदारिक आदि च्यारि शरीर होइ, ते नोकर्म शरीर जानने । **नो** शब्द का दोय अर्थ है, एक तौ निषेधरूप अर एक ईषत् स्तोकरूप । सो इहा कार्माण की ज्यो ए च्यारि शरीर आत्मा के गुण कौ घातै नाही वा गत्यादिकरूप पराधीन न करि सकै । तातै कर्म तै विपरीत लक्षण धरने करि इनिकौ अकर्म शरीर कहिए । वा कर्म शरीर के ए सहकारी है । तातै ईषत् कर्म शरीर कहिए । असे इनिकौ नोकर्म शरीर कहै । जैसे मन को नो-इद्रिय कहिए है; तैसे नोकर्म जानने । बहुरि कार्माण शरीर नामा नामकर्म के उदय तै ज्ञानावरणादिक कर्म स्कधरूप कर्म, सोई कर्म शरीर जानना ।

आगै जे ए औदारिकादिक शरीर कहै, तिनिका समयप्रबद्धादिक की सख्या दोय गाथानि करि कहिए है –

परमाणूहिं अणंतहिं, वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहिं अणंतहिं णियमा, समयपबद्धो हवे एक्को ॥२४५॥

परमाणुभिरनंतैः वर्गणासंज्ञा हि भवत्येका हि ।
ताभिरनंतैर्नियमात्, समयप्रबद्धो भवेदेकः ॥२४५॥

टीका – सिद्धराशि के अनंतवे भाग अर अभव्यराशि स्यौ अनंतगुणा असा जो मध्य अनंतानंत का भेद, तीहि प्रमाण पुद्गल परमाणूनि करि जो एक स्कंध होइ, सो वर्गणा, असा नाम जानना । संख्यात वा असख्यात परमाणूनि करि वर्गणा न हो है। जातै यद्यपि आगै पुद्गल वर्गणा के तेईस भेद कहैगे । तहा अणुवर्गणा, सख्याताणुवर्गणा, असख्याताणुवर्गणा आदि भेद है । तथापि इहा औदारिक आदि शरीरनि का प्रकरण विषै आहारवर्गणा वा तैजसवर्गणा वा कार्माणवर्गणा का ही ग्रहण जानना । बहुरि सिद्धनि के अनंतवे भाग वा अभव्यनि तै अनंतगुणी असी मध्य अनतानत प्रमाण वर्गणा, तिनि करि एक समयप्रबद्ध हो है । समय विषै वा समय करि यहु जीव कर्म-नोकर्मरूप पूर्वोक्त प्रमाण वर्गणानि का समूहरूप स्कध करि सबध करै है । तातै याकौ समयप्रबद्ध कहिए है । असा वर्गणा का वा समय-प्रवद्ध का भेद स्याद्वादमत विषै है, अन्यमत विषै नाही । यहु विशेष नियम शब्द करि जानना ।

इहा कोऊ प्रश्न करै कि एक ही प्रमाण कौ सिद्धराशि का अनतवा भाग वा अभव्यराशि तै अनतगुणा असै दोय प्रकार कह्या, सो कौन कारण ?

ताका समाधान – कि सिद्धराशि का अनतवा भाग के अनत भेद है । तहां अभव्यराशि तै अनतगुणा जो सिद्धराशि का अनंतवा भाग होइ, सो इहा प्रमाण जानना । असै अल्प-वहुत्व करि तिस प्रमाण का विशेष जानने के अर्थि दोय प्रकार कह्या है । अन्य किछू प्रयोजन नाही ।

ताणं समयपबद्धा, सेडिअसंखेज्जभागगुणिदकमा ।
णंतेण य तेजदुगा, परं परं होदि सुहमं खु ॥२४६॥

तेषां समयप्रबद्धाः, श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः ।
अनंतेन च तेजोद्विकाः, परं परं भवति सूक्ष्मं खलु ।।२४६।।

टीका – तिन पंच शरीरनि के समयप्रबद्ध सर्व ही परस्पर समान नाही है । उत्तरोत्तर अधिक परमाणूनि का समूह लीए है; सो कहिए है । परमाणूनि का प्रमाण करि औदारिक शरीर का समयप्रबद्ध सर्व तै स्तोक है । यातै श्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण वैक्रियिक का समयप्रबद्ध है । बहुरि यातैं भी श्रेणिका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण आहारक का समयप्रबद्ध है । असैं आहारक पर्यंत जगतश्रेणी का असंख्यातवां भाग कौ गुणकार की विवक्षा जाननी । तातैं परै आहारक के समयप्रबद्ध तै अनंतगुणा परमाणू प्रमाण तैजस का समयप्रबद्ध है । बहुरि यातै भी अनंतगुणा परमाणू प्रमाण कार्माण का समय प्रबद्ध है । इहा 'अनंतेन तेजोद्विकं' इस करि तैजसकार्माण विषै अनतानंत गुणा प्रमाण जानना ।

बहुरि इहा कोऊ आशंका करै कि जो उत्तरोत्तर अधिके-अधिके परमाणू कहे, तो उत्तरोत्तर स्थूलता भी होयगी ?

तहां कहिए है–**परं परं सूक्ष्मं भवति** कहिए उत्तरोत्तर सूक्ष्म है । औदारिक तै वैक्रियिक सूक्ष्म है । वैक्रियिक तै आहारक सूक्ष्म है । आहारक तै तैजस सूक्ष्म है । तैजस तैं कार्माण सूक्ष्म है । यद्यपि परमाणू तौ अधिक अधिक हैं, तथापि स्कंध का बंधन में विशेष है । तातै उत्तरोत्तर सूक्ष्म है । जैसै कपास के पिड तै लोह के पिड मे अधिकपना होतै भी कपास के पिड तै लोह का पिड क्षेत्र थोरा रोकै; तैसे जानना ।

आगै औदारिकादिक शरीरनि का समयप्रबद्ध अर वर्गणा, ते कितने-कितने क्षेत्र विषै रहै ? असा अवगाहना भेदनि कौ कहै है –

ओगाहणाणि ताणं, समयपबद्धाण वग्गणाणं च ।
अंगुलअसंखभागा, उवरुवरिमसंखगुणहीणा ।।२४७।।

अवगाहनानि तेषां, समयप्रबद्धानां वर्गणानां च ।
अंगुलासंख्यभागा, उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि ।।२४७।।

टीका – तिनि औदारिकादिक शरीर सबधी समयप्रबद्ध वा वर्गणा, तिनिका अवगाहनाक्षेत्र घनागुल के असख्यातवे भागमात्र है । तथापि ऊपरि-ऊपरि असख्यात-गुणा घाटि क्रम तै जानना । सोई कहिए है – औदारिक शरीर के समयप्रबद्धनि-का अवगाहनाक्षेत्र सूच्यगुल का असख्यातवा भाग का भाग घनांगुल कौ दीएं, जो परिमाण आवै, तितना जानना । बहुरि याकौ सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये तब औदारिक शरीर की वर्गणा के अवगाहना क्षेत्र का प्रमाण होइ । बहुरि यातै सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण, जो असंख्यात, तिहि असंख्यात-गुणा घटता क्रम तै वैक्रियिकादि शरीर के समयप्रबद्ध का वा वर्गणा की अवगाहना का परिमाण हो है । वैक्रियिक शरीर का समयप्रबद्ध की अवगाहना कौ सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग करि गुणि, औदारिक समयप्रबद्ध की अवगाहना हो है । वैक्रि-यिक शरीर की वर्गणा की अवगाहना कौ सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणै, औदारिक की वर्गणा की अवगाहना हो है । असे ही वैक्रियिक तै आहारक की, आहारक तै तैजस की, तैजस तै कार्माण की समयप्रबद्ध वा वर्गणा की अवगाहना असंख्यातगुणी क्रम तै घाटि जाननी ।

इस ही अर्थ कौ श्री माधवचंद्र त्रैविद्य देव कहै है –

तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख–
भागहिदबिंदअंगुलमुवरुवरिं तेन भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्य–
भागहितवृंदांगुलमुपर्युपरि तेन भजितक्रमाः ॥२४८॥

टीका – तिनि सयमप्रबद्ध वा वर्गणा की अवगाहना का परिमाण सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग का भाग घनागुल कौ दीए जो परिमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ऊपरि-ऊपरि पूर्व-पूर्व तै सूच्यगुल के असख्यातवे भाग मात्र जानने । गुणहानि का अर भाग देने का एक अर्थ है । सो वैक्रियिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना को सूच्यगुल का असख्यातवा भाग करि गुणै, औदारिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना होइ । अथवा औदारिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना कौ सूच्य-गुल का असख्यातवां भाग का भाग दीये वैक्रियिक शरीर का समयप्रबद्ध वर्गणा का परिमाण होइ । दोऊ एकार्थ है; असै ही सब का जानना ।

आगै विस्रसोपचय का स्वरूप कहै हैं –

जीवादो णंतगुणा, पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया ।
जीवेण य समवेदा, एक्केक्कं पडिसमाणा हु ॥२४९॥

जीवतोऽनंतगुणाः प्रतिपरमाणौ विस्रसोपचयाः ।
जीवेन च समवेता एकैकं प्रति समानाः हि ॥२४९॥

टीका – कर्म वा नोकर्म के जितने परमाणु है, तिनि एक-एक परमाणूनि प्रति जीवराशि तै अनंतानत गुणा विस्रसोपचयरूप परमाणू जीव के प्रदेशनि स्यों एक क्षेत्रावगाही है । विस्रसा कहिए अपने ही स्वभाव करि आत्मा के परिणाम विना ही **उपचीयते** कहिए कर्म–नोकर्म रूप विना परिणए असे कर्म–नोकर्म रूप स्कध, तीहि विषै स्निग्ध-रूक्ष गुण का विशेष करि मिलि, एक स्कधरूप होंहि; ते विस्र-सोपचय कहिए; असा निरुक्ति करि ही याका लक्षण आया; तातैं जुदा लक्षण न कह्या । विस्रसोपचयरूप परमाणू कर्म–नोकर्मरूप होने को योग्य है । उन ही कर्म नोकर्म के स्कंध विषै एकक्षेत्रावगाही होइ संबंधरूप परिणमि करि एक स्कधरूप हो है । वर्तमान कर्म नोकर्मरूप परिणए है नाही; असै विस्रसोपचयरूप परमाणू जानने । ते कितने है ? सो कहिए है—

जो एक कर्म वा नोकर्म सबधो परमाणू के जीवराशि तै अनत गुणे विस्र-सोपचयरूप परमाणू होंइ, तौ किछू घाटि ड्योढ गुणहानि का प्रमाण करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सर्वसत्त्वरूप कर्म वा नोकर्म के परमाणूनि के केते विस्रसोपचय परमाणू होहि; असै त्रैराशिक करना । इहा प्रमाणराशि एक, फलराशि अनतगुणा जीवराशि, इच्छाराशि किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध । तहा इच्छा कौं फलराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए, लब्धराशिमात्र आत्मा के प्रदेशनि विषै तिष्ठते सर्व विस्रसोपचय परमाणूनि का प्रमाण जानना । बहुरि इस विस्रसोपचय परमाणूनि का परिमाण विषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र कर्म–नोकर्मरूप परमाणूनि का परिमाण कौं मिलाए, विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म का सत्त्व हो है ।

आगै कर्म–नोकर्मनि का उत्कृष्ट सचय का स्वरूप वा स्थान वा लक्षण प्ररूपै है—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे, सगसगउक्कस्ससंचओ होदि ।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं ॥२५०॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे, स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति ।
पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानाम् ॥२५०॥

टीका – उत्कृष्ट योग आदि अपने-अपने उत्कृष्ट बध होने की सामग्री करि सहित जे जीव, तिनिकै औदारिकादिक पच शरीरनि का उत्कृष्ट सचय जो उत्कृष्टपनै परमाणूनि का संबंध, सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति का अंत समय विषै हो है । तहा स्थिति के पहले समय तै लगाइ एक-एक समय विषै एक-एक समयप्रबद्ध बधै । बहुरि आगै कहिए है, तिसप्रकार एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक की निर्जरा होइ, अवशेष संचयरूप होते सतै अत समय विषै किछू घाटि, ड्योढगुणहानि करि समयप्रबद्ध कौ गुणें, जो परिमाण होइ, तितना उत्कृष्ट पनै सत्त्व हो है ।

आगै श्री माधवचद्र त्रैविद्य देव उत्कृष्ट संचय होने की सामग्री कहै है—

आवासया हु भवअद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणया, छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥२५१॥

आवश्यकानि हि भवाद्धा आयुष्यं योगसंक्लेशौ च ।
अपकर्षणोत्कर्षणके, षट् चैते गुणितकर्मांशे ॥२५१॥

टीका – गुणितकर्माश कहिए उत्कृष्ट सचय जाकै होइ, असा जो जीव, तीहि विषै उत्कृष्ट सचय कौ कारण ए छह अवश्य होइ । तातै उत्कृष्ट सचय करने वाले जीव कै ए छह आवश्यक कहिए । १ भवाद्धा, २ आयुर्बल, ३. योग, ४. सक्लेश, ५. अपकर्षण, ६ उत्कर्षण ए छह जानने । इनिका स्वरूप विस्तार लीए आगै कहिएगा ।

अब पच शरीरनि का बध, उदय, सत्त्वादिक विषै परमाणूनि का प्रमाण का विशेष जानने कौ स्थिति आदि कहिए है । तहा औदारिकादिक पच शरीरनि की उत्कृष्ट स्थिति का परिमाण कहै है—

पल्लतियं उवहीणं, तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं ।
छावट्ठी कम्मट्ठिदि, बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥२५२॥

पल्यत्रयमुदधीनां, त्रयस्त्रिशदंतर्मुहूर्त उदधीनाम् ।
षट्षष्टिः कर्मस्थिति, बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषाम् ॥२५२॥

टीका – तिनि औदारिक आदि पच शरीरनि की बंधरूप उत्कृष्ट स्थिति विषै औदारिक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है । वैक्रियिक शरीर की तेतीस सागर है । आहारक शरीर की अतर्मुहूर्त है । तैजस शरीर की छयासठि सागर है । कार्माण की स्थितिबंध विषै जो उत्कृष्ट कर्म की स्थिति सो जाननी । सो सामान्यपनै सत्तर कोडाकोडी सागर है । विशेषपनै ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अतराय की तीस कोडाकोडी, मोहनीय की सत्तार कोडाकोडी; नाम–गोत्र की बीस कोडाकोडी; आयु की तेतीस सागर प्रमाण जाननी । असै पच शरीरनि की उत्कृष्ट स्थिति कही ।

अब इहा यथार्थ ज्ञान के निमित्त अकसंदृष्टि करि दृष्टांत कहिए है –

जैसे समयप्रबद्ध का परिमाण तरेसठि सै (६३००) परमाणू स्थिति अडतालीस समय होइ, तैसे इहा पंच शरीरनि की समयप्रबद्ध के परमाणूनि का परिमाण अर स्थिति के जेते समय होहि, तिनि का परमाणू का परिमाण पूर्वोक्त जानना ।

आगै इनि पचशरीरनि की उत्कृष्ट स्थितिनि विषै गुणहानि आयाम का परिमाण कहै है –

अंतोमुहुत्तमेत्तं, गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं ।
पल्लासंखेज्जदिमं, गुणहाणी तेजकम्माणं ॥२५३॥

अंतर्मुहूर्तमात्रा, गुणहानिर्भवति आदिमत्रिकानां ।
पल्यासंख्यात भागा गुणहानिस्तेजः कर्मणोः ॥२५३॥

टीका – पूर्व-पूर्व गुणहानि तै उत्तर-उत्तर गुणहानि विषै गुणहानि का वा निषेकनि का द्रव्य दूणा-दूणा घटता होइ है । तातै गुणहानि नाम जानना । सो जैसे अडतालीस समय की स्थिति विषै आठ-आठ समय प्रमाण एक-एक गुणहानि का आयाम हो है । तैसे आदि के तीन शरीर औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तिनकी तौ उत्कृष्ट स्थिति संबधी गुणहानि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । अपने-अपने योग्य अतर्मुहूर्त के जेते

समय होइ, तितना गुणहानि का आयाम जानना । आयाम नाम लबाई का है । सो इहा समय-समय सबधी निषेक क्रम तै होइ । तातै आयाम असी संज्ञा कहीं । बहुरि तैजसकार्माण की उत्कृष्ट स्थिति सबधी गुणहानि अपने-अपने योग्य पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है । तहां पल्य की जो वर्गशलाका, ताके जेते अर्धच्छेद होइ, तितने पल्य के अर्धच्छेदनि मे घटाएं, जो अवशेष रहै, ताकौ असख्यात करि गुणै, जो परिणाम होइ, तितनी तैजस की सर्व नानागुणहानि है । इस परिमाण का भाग तैजस शरीर को उत्कृष्ट स्थिति सख्यात पल्य प्रमाण है । ताकौं दीए जो परिमाण आवै, तीहि प्रमाण पल्य के असंख्यात वे भागमात्र तैजस शरीर की गुणहानि का आयाम है । बहुरि पल्य को वर्गशलाका के जेते अर्धच्छेद होइ, तिनिकौ पल्य के अर्धच्छेदनि मे घटाए जो अवशेष रहै, तितनी कार्माण की सर्वनानागुणहानि है । इस परिमाण का भाग कार्माण की उत्कृष्ट स्थिति सख्यातपल्यप्रमाण है । ताकौ दीए जो परिमाण आवै, तीहि प्रमाण पल्य के असख्यातवे भागमात्र कार्माण शरीर की गुणहानि का आयाम है । असै गुणहानि आयाम कह्या ।

वहुरि जैसे आठ समय की एक गुणहानि होइ, तौ अडतालीस समय की केती गुणहानि होइ ? असै त्रैराशिक कीए सर्वस्थिति विषै नानागुणहानि का प्रमाण छह आवै । तैसै जो औदारिक शरीर की एक अतर्मुहूर्तमात्र एकगुणहानि शलाका है। तौ तीन पल्य की नानागुणहानि कितनी है ? असै त्रैराशिक करिए । तहा प्रमाणराशि अतर्मुहूर्त के समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्य के समय तहा फलराशि करि इच्छा राशि कौ गुणि, प्रमाण राशि का भाग दीए, लब्ध प्रमाण तीन पल्य कौ अतर्मुहूर्त का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना आया, सो उत्कृष्ट औदारिक शरीर की स्थिति विषै नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

असे ही वैक्रियिक शरीर विषै प्रमाणराशि अतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि तेतीस सागर कीयें तेतीस सागर कौ अतर्मुहूर्त का भाग दीये, जो प्रमाण आवै, तितना नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

बहुरि आहारक शरीर विषै प्रमाणराशि छोटा अतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि बडा अतर्मुहूर्त कीए, अतर्मुहूर्त कौ स्वयोग्य छोटा अंतर्मुहूर्त का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना नानागुणहानि शलाका का प्रमाण जानना ।

बहुरि तैजस शरीर विषै प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फलराशि एक, इच्छाराशि छयासठ सागर कीए पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद करि हीन पल्य का अर्धच्छेदनि तै असख्यात गुणा नानागुणहानि का प्रमाण हो है ।

बहुरि कार्माण शरीर विषै प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फलराशि एक, इच्छाराशि मोह की अपेक्षा सत्तरि कोडाकोडि सागर कीए पल्य की वर्ग शलाका का अर्धच्छेद करि हीन पल्य का अर्धच्छेदमात्र नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

अब औदारिक आदि शरीरनि का गुणहानि आयाम साधिए है- जैसे जो छह नानागुणहानि का अडतालीस समय प्रमाणस्थिति आयाम होइ, तौ एकगुणहानि का कितना आयाम होइ ? ऐसे त्रैराशिक करिये । इहा प्रमाणराशि छह, फलराशि अडतालीस, इच्छाराशि एक भया । तहा लब्ध राशिमात्र एकगुणहानि आयाम का प्रमाण आठ आया, तैसे अपना-अपना नानागुणहानि प्रमाण का अपना-अपना स्थिति प्रमाण आयाम होइ, तौ एकगुणहानि का केता आयाम होइ ? ऐसे त्रैराशिक करिए । तहा लब्धराशि मात्र गणहानि का आयाम हो है ।

तहां औदारिक विषै प्रमाणराशि अतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य, फलराशि तीन पल्य इच्छाराशि एक कीए लब्धराशि अतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि वैक्रियिक विषै प्रमाणराशि अतर्मुहूर्त करि भाजित तेतीस सागर, फलराशि तेतीस सागर इच्छाराशि एक कीए लब्धराशि अतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि आहारक विषै प्रमाणराशि सख्यात, फलराशि अतर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक कीए लब्धराशि छोटा अतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि तैजस विषै प्रमाणराशि पल्य की वर्ग शलाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदनि तै असख्यातगुणा, फल छयासठि सागर, इच्छा एक कीए लब्ध राशि सख्यात पल्य कौ पल्य की वर्गशालाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदनि तै असख्यात गुणे प्रमाण का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना जानना ।

बहुरि कार्माण विषै प्रमाणराशि पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर इच्छाराशि एक

कीए लब्धराशि संख्यात पल्य कौ पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदराशि का भाग दीए, जितना आवे तितना जानना। अैसै लब्धराशि मात्र एकगुणहानि का आयाम जानना। इतने-इतने समयनि के समूह का नाम एकगुणहानि है। सर्व स्थिति विषै जेती गुणहानि पाइए, तिस प्रमाण का नाम नानागुणहानि है; अैसा इहा भावार्थ जानना।

वहुरि नानागुणहानि का जेता प्रमाण तितने दूवे माडि, परस्पर गुणै, जितना प्रमाण होइ, सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। जैसै नानागुणहानि का प्रमाण छह सो छह का विरलन करि एक-एक जायगा दोय के अक मांडि, परस्पर गुणै चौसठि होंइ; सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना। तैसै ही औदारिक आदि शरीरनि की स्थिति विषै जो-जो नानागुणहानि का प्रमाण कह्या, ताका विरलन करि एक-एक बखेरि अर एक-एक जायगा दोय-दोय देइ, परस्पर गुणै, अपना-अपना अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण हो है। तहां लोक के जेते अर्धच्छेद है; तितने दूवेनि कौ परस्पर गुणै, लोक होइ। तौ इहां नानागुणहानि प्रमाण दूवे माडि, परस्पर गुणै, केते लोक होइ ? अैसे त्रैराशिक करना। तहां लब्धराशि ल्यावने के अर्थि सूत्र कहिए है—

दिण्णच्छेदेणवहिद, इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे।
लद्धमिदइट्ठरासी, णण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१४॥

अैसा कायमार्गणा विषै सूत्र कह्या था, ताकरि इहां देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग इष्टच्छेद लोक के अर्धच्छेद कौ दीए, इतने ही रहे, इनि लोक के अर्धच्छेदनि के प्रमाण का भाग औदारिक शरीर की स्थिति सबधी नानागुणहानि के प्रमाण कौ दीए, जो प्रमाण आवै, तितने इष्टराशिरूप लोक माडि, परस्पर गुणै, जो लब्धि प्रमाण होइ, तितना औदारिक शरीर की स्थिति विषै अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण असख्यातलोकमात्र हो है। वहुरि तैसे ही वैक्रियिक शरीर विषै नानागुणहानि का प्रमाण कौ लोक का अर्धच्छेद राशि का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने लोक माडि परस्पर गुणै, वैक्रियिक शरीर की स्थिति विषै अन्योन्याभ्यस्त विषै राशि हो है। सो यहु औदारिक शरीर की स्थिति सवधी अन्योन्याभ्यस्तराशि तै असंख्यात लोक गुणा जानना। काहे ते ? जातै अतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य तै अंतर्मुहूर्त करि भाजित तेतीस सागर कौ एक सौ दश कोडाकोडी का गुणकार संभवै

है । सो यहां एक घाटि एक सौ दश कोडाकोडी गुणा जो औदारिक शरीर की नाना-गुणहानि का प्रमाण, तितना औदारिक शरीर की नानागुणहानि का प्रमाण तै वैक्रियिक शरीर की नानागुणहानि का प्रमाण अधिक भया सो –

विरलनरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, गुणयारो लद्धरासिस्स ।।

इस सूत्र करि इस अधिक प्रमाणमात्र दूवे मांडि, परस्पर गुणै, जो असख्यात-लोकमात्र परिमाण आया, सोई औदारिक का अन्योन्याभ्यस्तराशि तै वैक्रियिक का अन्योन्याभ्यस्तराशि विषै गुणाकार जानना । अथवा जो अतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य प्रमाण औदारिक शरीर सबंधी नानागुणहानि का अन्योन्याभ्यस्तराशि असख्यात लोकमात्र होइ, तौ एक सौ दश कोडाकोडि गुणा अतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य प्रमाण वैक्रियिक शरीर की नानागुणहानि का अन्योन्याभ्यस्तराशि कितनी होई ? अैसा त्रैराशिक कीए **'दिण्णच्छेदेणवहिद'** इत्यादि सूत्र करि एक सौ दश कोडाकोडि बार औदारिक शरीर संबधी अन्योन्याभ्यस्तराशि मांडि, परस्पर गुणै, वैक्रियिक शरीर संबधी अन्योन्याभ्यस्तराशि हो है । तातै भी औदारिक सबधी अन्योन्याभ्यस्तराशि तै वैक्रियिक संबधी अन्योन्याभ्यस्तराशि विषै असख्यातलोक का गुणाकार सिद्ध भया ।

बहुरि आहारक शरीर की नानागुणहानि सख्यात है, सो सख्यात का विरलन करि एक-एक प्रति दोय देइ, परस्पर गुणै, यथायोग्य सख्यात होइ, सो आहारक शरीर का अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ।

बहुरि तैजस शरीर की स्थिति सबधी नानागुणहानि शलाका कार्माण शरीर की स्थिति सबधी नानागुणहानि शलाका तै असंख्यात गुणी है, सो पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद पल्य अर्धच्छेदनि मे घटाए, जो प्रमाण होइ, तातै असख्यात-गुणी जाननी । सो इहां सुगमता के अर्थि, याकौ पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग देना तहा पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेदराशि कौ असंख्यात करि गुणिए, अर पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग दीजिएं, इतना घटावने योग्य जो ऋणराशि, ताकौ जुदा राखिए, अवशेष ऋण रहित राशि पल्य का अर्धच्छेदराशि कौ असंख्यातगुणा दीजिए पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग दीजिए, इतना रह्या, सो इहां भाज्यराशि विषै अर भागहारराशि विषै पल्य का अर्धच्छेदराशि कौ समान जानि, अपवर्तन

करना । अवशेष गुणकाररूप असख्यात रहि गया, सो इस असंख्यात का जेता प्रमाण होइ तितना ही पल्य माडि, परस्पर गुणन करना, जातै असख्यातगुणा पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि, परस्पर गुणै, जेता प्रमाण होइ, तितना ही पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग दीए, अवशेष गुणकार मात्र असख्यात रह्या, तितना पल्य माडि, परस्पर गुणै प्रमाण हो है । जैसे पल्य का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, असख्यात का प्रमाण तीन, सो तीनि करि च्यारि कौ गुणै, बारह होइ । सो बारह जायगा दूवा मांडि, परस्पर गुणै, च्यारि हजार छिनवै होइ । सोई बारह कौ च्यारि का भाग दीएं, गुणकार मात्र तीन रह्या, सो तीन जायगा सोलह मांडि, परस्पर-गुणै, च्यारि हजार छिनवै होइ । तातै सुगमता के अर्थि पूर्वोक्त राशि कौ पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग देइ, लब्धिराशि असख्यात प्रमाण पल्य माडि, परस्पर गुणन कीया । सो इहां यह गुणकाररूप असंख्यात है । सो पल्य का अर्धच्छेदनि के असख्यातवे भाग मात्र जानना । पल्य का अर्धच्छेदराशि समान जानना । जो पल्य का अर्धच्छेद समान यहु असख्यात होइ, तौ इतने पल्य मांडि, परस्पर गुणै, तैजस शरीर की स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि सूच्यंगुल प्रमाण होइ; सो है नाही; तातैं शास्त्र विषै क्षेत्र प्रमाण करि सूच्यगुल के असंख्यातवे भाग मात्र काल प्रमाण करि असख्यात कल्पकाल मात्र तैजस शरीर की स्थिति सबधी अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण कह्या है । तातै पल्य का अर्धच्छेद का असख्यातवा भाग मात्र असंख्यात का विरलन करि एक-एक प्रति पल्य कौ देइ, परस्पर गुणै, सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग मात्र प्रमाण हो है । सो द्विरूप वर्गधारा विषै पल्यराशिरूप स्थान तै ऊपरि इहां विरलन-राशिरूप असख्यात कै जेते अर्धच्छेद होहि, तितने वर्गस्थान गए यहु राशि हो है । बहुरि —

विरलनरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इस सूत्र के अभिप्राय तै जो ऋणरूप राशि जुदा स्थाप्या था, ताका अपवर्तन कीए, एक का असख्यातवा भाग भया । याकौ पल्य करि गुणै, पल्य का असंख्यातवां भाग भया, जातै असंख्यात गुणा पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणै, भी इतना ही प्रमाण है । तातै सुगमता के अर्थि इहां पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग देइ, एक का असख्यातवा भाग पाया, ताकरि पल्य का

गुणन कीयां है। सो अैसै करतै जो पल्य का असंख्यातवां भाग भया, ताका भाग पूर्वोक्त सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौ देना। सो भाग दीए भी आलाप करि सूच्यगुल का असख्यातवां भाग ही रह्या। सोई तैजस शरीर की स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। बहुरि कार्माण शरीर की स्थिति सम्बन्धी नानागुणहानि शलाका पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद करि हीनपल्य का अर्धच्छेद प्रमाण है। इसका विरलन करि, एक-एक प्रति दोय देइ परस्पर गुणै, ताका अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य की वर्गशलाका का भाग पल्य कौ दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना जानना। जातैं इहां पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणै, पल्य होइ, सो तौ भाज्य भया। अर **'विरलनरासीदो पुणजेत्तिय मेत्ताणि हीणरूवाणि'** इत्यादि सूत्र करि हीनराशिरूप पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि, परस्पर गुणै पल्य की वर्गशलाका होइ, सो भागहार जानना। बहुरि जैसैं गुणहानि आयाम आठ, ताकौ दूणा कीएं दोगुणहानि का प्रमाण सोलह हो है। तैसै औदारिक आदि शरीरनि का जो-जो गुणहानि आयाम का प्रमाण है, ताकौ दूणा कीएं, अपनी-अपनी दोगुणहानि हो है। याही का दूसरा नाम निषेकहार जानना।

अैसैं द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दोगुणहानि का कथन करि, अवस्थिति के समय सम्बन्धी परमाणूनि का प्रमाणरूप निषेकनि का कथन करिए है।

तहा प्रथम अंक संदृष्टि करि दृष्टात कहिए है। द्रव्य तरेसठि सै (६३००) स्थिति अडतालीस (४८), गुणहानि आयाम आठ (८), नानागुणहानि छह (६), दोगुणहानि सोलह (१६), अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि (६४)।

तहा औदारिक आदि शरीरनि के समय प्रबद्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप च्यारि प्रकार बध धरै है।

तहा प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध योग तें हो है, स्थितिबध, अनुभागबध कषाय तै हो है। तहा विवक्षित कोई एक समय विषै बध्या कार्माण का समय प्रबद्ध की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरि कोडाकोडि सागर की बधी, तिस स्थिति कै पहले समय तै लगाय सात हजार वर्ष पर्यंत तौ आबाधाकाल है। तहां कोई निर्जरा न होइ। तातै इहाँ कोई निषेक रचना नाही। अवशेष स्थिति का प्रथम समय तें लगाइ अंत समय पर्यंत अपना-अपना काल प्रमाण स्थिति धरै, जे परमाणूनि के पुंज, ते निषेक कहिए। तिनकी रचना अंकसंदृष्टि करि प्रथम दिखाइए है।

विवक्षित एक समय विषै बध्या कार्माण का समयप्रवद्ध, ताका परमाणूनि का प्रमाण रूप द्रव्य तरेसठि सै है । तहा –

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिम गुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुण कमा आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ।।

इस सूत्र अनुसारि एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्वद्रव्य कौ दीएं अंत की गुणहानि का द्रव्य होइ । तातै दूणा-दूणा प्रथमगुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना । सो इहां अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि मे स्यो एक घटाइ, अवशेष ६३ का भाग सर्वद्रव्य ६३०० कौ दीए, सौ (१००) पाए, सोई नानागुणहानि छह, तिनि-विषै अंत की छठी गुणहानि का द्रव्य जानना । तातै दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना । असै होतै एक घाटि नानागुणहानि शलाका प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणै, जो अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण होइ, ताकरि अंत की गुण-हानि के द्रव्य कौ गुणै, प्रथमगुणहानि का द्रव्य हो है । सो एक घाटि नानागुण-हानि पाच, तीह प्रमाण दूवा माडि, परस्पर गुणै बत्तीस होइ, सोई अन्योन्याभ्यस्त-राशि चौसठि का आधाप्रमाण, ताकरी अंतगुणहानि का द्रव्य सौ कौ गुणै प्रथम-गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सै हो है । सर्व गुणहानि का द्रव्य अत तै लगाइ आदि पर्यंत एक सै, दोय सै, च्यारि सै, आठ सै, सोलह सै, बत्तीस सै प्रमाण जानना । वहुरि तहा प्रथम गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सै । तहा '**अद्धाणेण सव्वधणे, खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि**' इस सूत्र करि 'अध्वान' जो गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छ, ताका स्वकीय गुणहानि सबधी द्रव्य कौ भाग दीए, मध्य समय सबधी मध्यधन आवै है । सो इहां बत्तीस सै कौ गच्छ आठ का भाग दीए (मध्यधन) च्यारि सै हो है । वहुरि "**रूऊण अद्धाण अद्धेणूणेणिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदेपच्चयं**" इस सूत्र के अनुसारि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि हीन जो निषेकहार कहिए दो गुणहानि, ताकरि मध्यधन कौ भाजित कीए, चय का प्रमाण आवै है । स्थान-स्थान प्रति जितना-जितना बधै वा घटै ताका नाम चय जानना । सो इहा एक घाटि गच्छ सात, ताका आधा साढा तीन, सो निषेकहार सोलह मे घटाए, साढा वारह ताका भाग मध्यधन च्यारि सै कौ दीए, बत्तीस पाए । सोई प्रथम गुणहानि विषै चय का प्रमाण जानना । वहुरि इस चय कौ निषेकहार, जो दोगुणहानि, ताकरि गुणै प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक होइ, सो इहा बत्तीस कौ सोलह करि गुणै, प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक पाच सै वारह प्रमाणरूप हो है ।

भावार्थ – जो तरेसठि सै परमाणू का समय प्रबद्ध बंध्या था, ताकी स्थिति विषैं आबाधाकाल भएं पीछैं, पहले समय तिन परमाणूनि विषै पांच सै बारह परमाणू निर्जरे है । असै अन्य समय संबंधी निषेकनि विषै उक्त प्रमाण परमाणूनि की निर्जरा होने का क्रम जानना । बहुरि **'तत्तोविसेसहीणकमं'** तातैं ऊपरि-ऊपरि तिस गुणहानि के अंत निषेक पर्यंत एक-एक चय घटता अनुक्रम जानना । तहां प्रथम निषेक तै एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटै, एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित चय प्रमाण अंत निषेक हो है । सो इहां द्वितीयादि निषेकनि के विषै बत्तीस-बत्तीस घटावना । तहां एक घाटि गच्छ सात, तीहि प्रमाण चय के भये दोय सै चौबीस, सो इतने प्रथम निषेकनि तै घटै, अत निषेक विषै दोय सै अठ्यासी प्रमाण हो है । सो एक अधिक गुणहानि नव, ताकरि चय बत्तीस कौ गुणै भी दोय सै अठ्यासी हो है । असै प्रथम गुणहानि विषै निषेक रचना जाननी । ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८ ।

बहुरि असै ही द्वितीय गुणहानि का द्रव्य सोलह सै, ताकौ गुणहानि आयाम-रूप गच्छ का भाग दीए, मध्यधन दोय सै होइ; याकों एक घाटि गुणहानि आयाम का आधा प्रमाण करि हीन निषेकहार साढा बारह, ताका भाग दीएं, द्वितीय गुणहानि विषै चय का प्रमाण सोलह होइ । बहुरि याकों दो गुणहानि सोलह करि गुणै, द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक दोय सै छप्पन प्रमाण हो है । ऊपरि-ऊपरि द्वितीयादि निषेक, अपना एक-एक चय करि घटता जानना । तहा एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटै, एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित, अपना चय प्रमाण अत का निषेक एक सौ चवालीस प्रमाण हो है । बहुरि तृतीय गुणहानि विषै द्रव्य आठ सै कौ गुणहानि का भाग दीए, मध्यमधन सौ (१००), याकौ एक घाटि गुणहानि का आधा करि हीन दोगुणहानि का भाग दीएं, चय का प्रमाण आठ, याकौ दोगुणहानि करि गुणि प्रथम निषेक एक सौ अट्ठाईस, यातै ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ, एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटैं, एक अधिक गुणहानि आयाम करि, गुणित स्वकीय चयमात्र अंतनिषेक बहत्तरि हो है ।

असै ही इस क्रम करि चतुर्थ आदि गुणहानि विषै प्राप्त होइ, अंत गुणहानि विषै द्रव्य सौ (१००), ताकौ पूर्वोक्त प्रकार गुणहानि का भाग दीए मध्यधन साढा बारह, याकौ एक घाटि गुणहानि का आधा प्रमाण करि हीन दोगुणहानि का भाग

दीएं, चय का प्रमाण एक, याकौ दोगुणहानि करि गुणें, प्रथम निषेक का प्रमाण सोलह, तातैं ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ। एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटै, एक अधिक गुणहानि करि गुणित स्वकीय चय मात्र स्थिति के अंतनिषेक का प्रमाण नव हो है। ऐसैं द्वितीयादिक अतगुणहानि पर्यंत विषै द्रव्यादिक है। ते गुणकाररूप हानि का अनुक्रम लीए है। तातैं गुणहानि ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहां तर्क – जो प्रथम गुणहानि विषै तौ पूर्व गुणहानि के अभाव तैं गुणहानिपना नाही ?

ताका समाधान – कि मुख्यपनै ताका गुणहानि नाम नाही है। तथापि ऊपरि की गुणहानि कौ गुणहानिपना कौ कारणभूत जो चय, ताका हीन होने का सद्भाव पाईए है। तातैं उपचार करि प्रथम कौ भी गुणहानि कहिए। गुणकार रूप घटता, जहा परिमाण होइ, ताका नाम गुणहानि जानना। ऐसैं एक-एक समय प्रबद्ध की सर्वगुणहानिनि विषै प्राप्त सर्वनिषेकनि की रचना जाननी। बहुरि ऐसैं प्रथमादि गुणहानिनि के द्रव्य वा चय वा निषेक ऊपरि-ऊपरि गुणहानि विषै आधे-आधे जानने। इतना विशेष यहु जानना–जो अपना-अपना गुणहानि का अंत निषेक विषै अपना-अपना एक चय घटाएं, ऊपरि-ऊपरि का गुणहानि का प्रथम निषेक होइ, जैसैं प्रथम गुणहानि का अत निषेक दोय सैं अठ्यासी विषै अपना चय बत्तीस घटाएं, द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक दोय सौ छप्पन हो है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

❀ अंक संदृष्टि करि निषेक की रचना ❀

	प्रथम गुणहान	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुथ गुणहानि	पचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

अैसें उत्कृष्ट स्थिति अपेक्षा कार्माण का अक सदृष्टि करि वर्णन किया। अब यथार्थ वर्णन करिए है –

कार्माण का समयप्रबद्ध विषै जो पूर्वोक्त परमाणूनि का प्रमाण, सो द्रव्य जानना। ताकौ पूर्वोक्त प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि विषै एक घटाइ, अवशेष का भाग दीएं, अंत गुणहानि का द्रव्य हो है। यातैं प्रथम गुणहानि पर्यंत दूना-दूना द्रव्य जानना। तहां अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण करि, अंतगुणहानि के द्रव्य कौं गुणे, प्रथम गुणहानि का द्रव्य हो है। याकौ पूर्वोक्त गुणहानि आयामप्रमाण का भाग दीएं, मध्यमधन होइ है। याकौ एक घाटि गुणहानि आयाम का आधा प्रमाण करि हीन दूना गुणहानि के प्रमाण का भाग दीए, प्रथम गुणहानि सबधी चय हो है। याकौ दो गुणहानि करि गुणे, प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक हो है। बहुरि तातै अपना-अपना अंत निषेक पर्यंत एक-एक चय घटता होइ। एक घाटि गुणहानि आयाम मात्र चय घटै, एक अधिक गुणहानि करि गुणित अपना चय प्रमाण अंत निषेक हो है। याहीं प्रकार द्वितीयादि गुणहानि विषै अपना-अपना द्रव्य की निषेक रचना जाननी। तहां अंत गुणहानि विषै द्रव्य का गुणहानि आयाम का भाग दीए, मध्य धन होइ। याकौ एक घाटि गुणहानि का आधा करि हीन दो गुणहानि का भाग दीएं, चय होइ। याकौ दो गुणहानि करि गुणे, प्रथम निषेक होइ। ताते ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ। एक घाटि गुणहानि आयाम मात्र चय घटै, एक अधिक गुणहानि करि अपना चय कौं गुणै, जो प्रमाण होइ, तिह प्रमित अत निषेक हो है। अैसे कार्माण शरीर की सर्वोत्कृष्ट स्थिति विषै प्राप्त एक समयप्रबद्ध संबधी समस्त गुणहानि की रचना जाननी। अैसे प्रथमादि गुणहानि तै द्वितीयादि गुणहानि के द्रव्य वा चय वा निषेक क्रम तै आधे-आधे जानने। आबाधा रहित स्थिति विषै गुणहानि आयाम का जेता प्रमाण तितना समय पर्यंत तो प्रथम गुणहानि जाननी। तहां विवक्षित समयप्रबद्ध के प्रथम समय विषै जेते परमाणू निर्जरै, तिनिके समूह का नाम प्रथम निषेक जानना। दूसरे समय जेते परमाणू निर्जरै, तिनके समूह का नाम द्वितीय निषेक जानना। अैसे प्रथम गुणहानि का अत पर्यंत जानना। पीछै ताके अनंतर समय तै लगाइ गुणहानि आयाम मात्र समय पर्यंत द्वितीय गुणहानि जाननी। तहा भी प्रथमादि समयनि विषै जेते परमाणू निर्जरै, तिनिके समूह का नाम प्रथमादि निषेक जानने। अैसें क्रम तै स्थिति के अंत समय विषै जेते परमाणू निर्जरै, तिनिके समूह का नाम अंत गुणहानि का अंत निषेक जानना।

बहुरि जैसें कार्माणशरीर का वर्णन कीया; तैसें ही औदारिक आदि तैजस पर्यंत नोकर्मशरीर के समयप्रबद्धनि की पूर्वोक्त अपना-अपना स्थिति, गुणहानि, नाना गुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण आदि करि, इहां आबाधाकाल है नाही; तातैं अपनी-अपनी स्थिति का प्रथम समय ही तैं लगाय निषेक रचना करनी। जातैं औदारिक आदि शरीरनि का तैसें ही आगैं वर्णन कीजिये है।

आगै औदारिक आदि के समयप्रबद्धनि का बंध, उदय, सत्त्व, अवस्था विषै द्रव्य का प्रमाण निरूपे है -

एक्कं समयपबद्धं, बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ॥२५४॥

एकं समयप्रबद्धं, बध्नाति एकमुदेति चरमे।
गुणहानीनां द्व्यर्धं, समयप्रबद्धं भवेत् सत्त्वम् ॥२५४॥

टीका - औदारिक आदि शरीरनि विषै तैजस अर कार्माण इनि दोऊनि का जीव कै अनादि तैं निरंतर सबंध है। तातैं इनिका सदाकाल उदय अर सत्व संभवै है। तातैं जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणाम के निमित्त तैं समय-समय प्रति तैजस संबंधी अर कार्माण सबंधी एक-एक समयप्रबद्ध कौ बाधै है। पुद्गलवर्गणानि कौ तैजस शरीर रूप अर ज्ञानावरणादिरूप आठ प्रकार कर्मरूप परिणमावै है। बहुरि इनि दोऊ शरीरनि का समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप हो है। अपना फल देनेरूप परिणतिरूप परिमाण करि फल देइ, तैजस शरीरपना कौ वा कार्माण शरीरपना कौ छोडि गलै है, निर्जरै है। बहुरि विवक्षित समयप्रबद्ध की स्थिति का अंत निषेक सबधी समय विषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। इतने परमाणू सत्तारूप एकठे हो है। सर्वदा संबध तैं परमार्थ करि इनि दोऊनि का सत्वद्रव्य, समय-समय प्रति सदा ही इतना संभवै है।

बहुरि औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि के समय प्रबद्धनि विषै विशेष है, सो कहिए है। तिनि औदारिक वा वैक्रियिक शरीरनि के ग्रहण का प्रथम समय तैं लगाइ अपने आयु का अंत समय पर्यंत शरीर नामा नामकर्म के उदय संयुक्त जीव, सो समय-समय प्रति एक-एक तिस शरीर के समय प्रबद्ध कौ बाधै है। पुद्गलवर्गणानि

कौ तिस शरीररूप परिणमावै है। उदय कितना है ? सो कहै है – शरीर ग्रहण का प्रथम समय विषै बंध्या जो समयप्रबद्ध, ताका पहला निषेक उदय हो है।

इहां प्रश्न – जो गाथा विषैं समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय कह्या है। इहां एक निषेक का उदय कैसे कहो हो ?

ताकां समाधान – कि निषेक है सो समयप्रबद्ध का एकदेश है। ताकौ उपचार करि समयप्रबद्ध कहिए है। बहुरि दूसरा समय विषै पहिले समय बध्या था जो समयप्रबद्ध, ताका तो दूसरा निषेक अर दूसरे समय बध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहिला निषेक, असे दोय निषेक उदय हो है। बहुरि असें ही तीसरा आदि समय विषै एक-एक बधता निषेक उदय हो है। असे क्रम करि अंत समय विषै उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् द्व्यर्धगुण हानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हो है। बहुरि आहारक शरीर का तिस शरीर ग्रहण का समय प्रथम तै लगाय अपना अतर्मूहूर्त मात्र स्थिति का अत समय विषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण द्रव्य का उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् हो है इतना विशेष जानना। इहा समय-समय प्रति बंधै सो समयप्रबद्ध कहिए। तातै समय-समय प्रति समयप्रबद्ध का बंधना तौ सभवै अर समयप्रबद्ध का उदय अर किंचिदून द्व्यर्धगुण-हानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व कैसें हो है, सो वर्णन इहां ही आगै करेंगे।

आगै औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि विषै विशेष कहै है—

णवरि य दुसरीराणं, गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं, संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

नवरि च द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिबधः।
गुणहानीनां द्व्यर्धं, संचयमुदयं च चरमे ॥२५५॥

टीका – औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि का शरीर ग्रहण का प्रथम समय तैं लगाइ अपनी स्थिति का अत समय पर्यंत बधै है, जे समयप्रबद्ध तिनि का स्थिति-बंध गलितावशेष आयुमात्र जानना। जितना अपना आयु प्रमाण होइ, तीहि विषैं जो व्यतीत भया, सो गलित कहिए। अवशेष रह्या सो गलितावशेष आयु कहिए है; तीहि प्रमाण जानना। सोई कहिए हैं–शरीर ग्रहण का प्रथम समय विषै जो समय

प्रबद्ध बंध्या, ताका स्थितिबध संपूर्ण अपना आयुमात्र हो है। बहुरि दूसरे समय जो समयप्रबद्ध बंध्या, ताका स्थितिबंध एक समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है। बहुरि तीसरे समय बंध्या जो समयप्रबद्ध, ताका स्थितिबंध दोय समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है। असे ही चौथा आदि उत्तरोत्तर समयनि विषैं बंधे जे समयप्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध एक-एक समय घटता होता अंत समय विषै बंध्या हुवा समय-प्रबद्ध का स्थितिबंध, एक समयमात्र हो है। जातैं प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यंत बधे जे समयप्रबद्ध, तिनकी अपने आयु का अंत कौ उलघि स्थिति न संभवै है। असै जिस-जिस समयप्रबद्ध की जितनी-जितनी स्थिति होइ, तिस-तिस समयप्रबद्ध को तितनी-तितनी स्थितिमात्र निषेक रचना जाननी। अंत विषै एक समय की स्थिति समयप्रबद्ध की कही। तहां एक निषेक संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र जानना। बहुरि अत समय विषै गलितावशेष समयप्रबद्ध किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्र सत्वरूप एकठे हो है। जे समयप्रबद्ध बधे, तिनि के निषेक पूर्वै गले, निर्जरारूप भए, तिनितै अवशेष निषेकरूप जे समयप्रबद्ध रहे, तिनिकौ गलितावशेष कहिए। ते सर्व एकठे होइ किछू घाटि ड्योढ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध सत्तारूप एकठे अत समय विषै होहि है। बहुरि तीहि अत समय विषै ही तिनि सबनि का उदय हो है। आयु के अंत भए पीछै तें रहै नाही। तातै तीहि समय सर्व निर्जरै है; असै देव-नारकीनि कै तौ वैक्रियिक शरीर का अर मनुष्य-तिर्यंचनि कै औदारिक शरीर का अत समय विषै किंचिदून द्वयर्धगुणहानिमात्र समयप्रबद्धनि का सत्त्व और उदय युगपत् जानना।

आगै किस स्थान विषैं सामग्रीरूप कैसी आवश्यक सयुक्त जीव विषै उत्कृष्ट सचय हो है, सो कहै है—

ओरालियवरसंचं, देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स ।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औरालिकवरसंचयं, देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य ।
तिर्यग्मनुष्यस्य भवेत्, चरमद्विचरमे त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥२५६॥

टीका — औदारिक आदि शरीरनि की जहां जीव कै उत्कृष्टपनै बहुत परमाणू एकठे होंइ; तहां उत्कृष्ट संचय कहिए। तहां जो जीव तीन पल्य आयु धरै, देवकुरु वा उत्तरकुरु भोगभूमि का तिर्यंच वा मनुष्य होइ उपज्या, तहां उपजने

के पहिले समय तिस जीव कौ तहां योग्य जो उत्कृष्ट योग, ताकरि आहार ग्रहण कीया; बहुरि ताकौ योग्य जो उत्कृष्ट योग की वृद्धि, ताकरि वर्धमान भया, बहुरि सो जीव उत्कृष्ट योग स्थाननि कौ बहुत बार ग्रहण करै है; अर जघन्य योगस्थाननि कौ बहुत बार ग्रहण न करै है, तिस जीव कौ योग्य उत्कृष्ट[1] योगस्थान, तिनिकौ बहुत बार प्राप्त होइ है; अर तिस जीव कौ योग्य जघन्य योगस्थान, तिनिकौ बहुत बार प्राप्त न हो है। बहुरि अधस्तन स्थितिनि के निषेक का जघन्य पद करै है। याका अर्थ यहु–जो ऊपरि के निषेक सबधी जे परमाणू, तिन थोरे परमाणूनि कौ अपकर्षण करि, स्थिति घटाइ, नीचले निषेकनि विषै निक्षेपण करै है; मिलावै है। बहुरि उपरितन स्थिति के निषेकनि का उत्कृष्टपद करै है। याका अर्थ यहु–जो नीचले निषेकनि विषैं तिष्ठते परमाणू, तिनि बहुत परमाणूनि का उत्कर्षण करि, स्थिति कौ बधाइ, ऊपरि के निषेकनि विषै निक्षेपण करै है; मिलावै है। बहुरि अंतर विषै गमनविकुवणा कौ न करै है; अतर विषै नखच्छेद न करै है। याका अर्थ मेरे जानने में नीकै न आया है। तातै स्पष्ट नाही लिख्या है; बुद्धिमान जानियो। बहुरि तिस जीव के आयु विषै वचनयोग का काल स्तोक होइ, मनोयोग का काल स्तोक होइ। बहुरि वचनयोग स्तोक बार होइ। मनोयोग स्तोक बार होइ।

भावार्थ – काययोग का प्रवर्तन बहुत बार होइ, बहुत काल होइ। असै आयु का अंतर्मुहूर्त अवशेष रहै; आगै कर्मकाण्ड विषै योगयवमध्य रचना कहैगे। ताका ऊपरला भाग विषैं जो योगस्थान पाइए है। तहां अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत तिष्ठ्या पीछे आगै जो जीव यवमध्य रचना कहैगे; तहां अंत की गुणहानि सबधी जो योगस्थान, तहां आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल पर्यंत तिष्ठ्या। बहुरि आयु का द्विचरम समय विषै अर अंत समय विषै उत्कृष्ट योगस्थान कौ प्राप्त भया। तहां तिस जीव कै तिन अत के दोऊ समयनि विषै औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय हो है। बहुरि वैक्रियिक शरीर का भी वैसै ही कहना। विशेष इतना जो अंतर विषै नखच्छेद न करै है, यहु विशेषण न संभवै है।

वेगुव्वियवरसंचं, बावीससमुद्द आरणदुगम्हि।
जह्मा वरजोगस्स य, वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा ॥२५७॥

---

१ – अ, ख, ग इन तीन प्रति मे यहाँ अनुत्कृष्ट शब्द मिलता है।

वैगूर्विकवरसंचयं, द्वाविंशतिसमुद्र आरणद्विके ।
यस्माद्वरयोगस्य च, वारा अन्यत्र नहि बहुकाः ।।२५७।।

टीका – वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, सो आरण-अच्युत दोय स्वर्गनि के ऊपरला पटल सबंधी बाईस सागर आयु संयुक्त देव, तिन विषै संभवै है । अन्यत्र नीचले, ऊपरले पटलनि विषै वा सर्व नारकीनि विषै न संभवैं है; जातै आरण-अच्युत बिना अन्यत्र वैक्रियिक शरीररूप योग का बहुत बार प्रवर्तन न हो है । चकार तै तिस योग्य अन्य सामग्री, सो भी अन्यत्र बहुत बार न सभवै है ।

आगै तैजस शरीर अर कार्मण शरीरनि का उत्कृष्ट सचयस्थान का विशेष कहै है –

तेजासरीरजेट्ठं, सत्तमचरिमम्हि बिदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य, णिरये बहुबारभमिदस्स ।।२५८।।

तैजसशरीरज्येष्ठं, सप्तमचरमे द्वितीयवारस्य ।
कार्मणस्यापि तत्रैव च, निरये बहुवारभ्रमितस्य ।।२५८।।

टीका – तैजसशरीर का भी उत्कृष्ट सचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो सातवी नरक पृथ्वी विषै दूसरी बार जो जीव उपज्या होइ । सातवी पृथ्वी विषै उपजि, मरि, तिर्यंच होइ, फेरि सातवी पृथ्वी विषै उपज्या होइ; तिस ही जीवकै हो है ।

वहुरि आहारक शरीर का भी उत्कृष्ट सचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो आहारक शरीर कौ उपजावनहारा प्रमत्तसयमी ही कै हो है ।

वहुरि कार्माणशरीर का उत्कृष्ट सचय सो सातवी नरक पृथ्वी विषै नारकिन विषै जो जीव वहु बार भ्रम्या होइ, तिस ही कै होइ है । किस प्रकार हो है ? सो कहै है–कोई जीव वादर पृथ्वी कायनि विषै अंतर्मुहूर्त घाटि, पृथक्त्व कोडिपूर्व करि अधिक दोय हजार सागर हीन कर्म की स्थिति कौ प्राप्त भया । तहा तिस बादर पृथ्वीकाय सवंधी अपर्याप्त पर्याय थोरे धरै, पर्याप्त पर्याय बहुत धरै, तिनिका एकठ्ठा किया हुवा पर्याप्त काल बहुत भया । अपर्याप्त काल थोरा भया । ऐसै इनिकौ पालता सता जव-जव आयु वाधै, तव-तव जघन्य योग करि वाधै, यहु यथायोग्य उत्कृष्ट योग

करि आहार ग्रहण करै । अर उत्कृष्ट योगनि की वृद्धि करि बधै । बहुरि यथायोग्य उत्कृष्ट योगनि कौ बहुत वार प्राप्त होइ, जघन्य योगस्थाननि कौ बहुत बार प्राप्त न होइ । बहुरि संक्लेश परिणामरूप परिणया यथायोग्य मदकषायरूप विशुद्धता करि विशुद्ध होइ, पूर्वोक्त प्रकार अधस्तन स्थितिनि के निषेक का जघन्यपद करै । उपरितन स्थितिनि के निषेक का उत्कृष्ट पद करै है । असैं भ्रमण करि, बादर त्रसपर्याय विषै उपज्या, तहा भ्रमता तिस जीव कै पर्याप्त पर्याय थोरे, अपर्याप्त पर्याय बहुत भएं, तिनिका एकठा कीया पर्याप्तकाल बहुत भया । अपर्याप्तकाल थोरा भया । असैं भ्रमण करि पीछला पर्याय का ग्रहण विषै सातवी नरक पृथ्वी के नारक जे विले, तिनि विषै उपज्या । तहां तिस पर्याय के ग्रहण का प्रथम समय विषै यथा-योग्य उत्कृष्ट योग करि आहार ग्रहण कीया । बहुरि उत्कृष्ट योगवृद्धि करि बध्या । बहुरि थोरा अतर्मुहूर्त काल करि सर्व पर्याप्ति पूर्ण कीए । बहुरि तिस नरक विषै तेतीस सागर काल पर्यंत योग आवश्यक अर संक्लेश आवश्यक कौ प्राप्त भया । असैं भ्रमण करि आयु का स्तोक काल अवशेष रहै, योगयवमध्य रचना का ऊपरला भागरूप योगस्थान विषैं अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत तिष्ठि, अर पीछै जीव यवमध्य रचना की अंत गुणहानिरूप योगस्थान विषैं आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल पर्यंत तिष्ठि आयु का अंत तै तीसरा, दूसरा समयनि विषै उत्कृष्ट सक्लेश कौ पाइ; अत समय विषै उत्कृष्ट योगस्थान कौं पाइ, तिस पर्याय का अत समय विषै जीव तिष्ठ्या ताकै कार्माण शरीर का उत्कृष्ट सचय होइ है । असैं औदारिक आदि शरीरनि का का उत्कृष्ट संचय होने की सामग्री का विशेष कह्या ।

भावार्थ – पूर्वै उत्कृष्ट संचय होने विषै छह आवश्यक कहे थे; ते इहां यथासभव जानि लेना । पर्याय सबंधी काल तौ **भवाद्ध** है । अर आयु का प्रमाण सो **आयुष्य** है । यथासंभव योगस्थान होना, सो **योग** है । तीव्र कषाय होना सो **संक्लेश** है । ऊपरले निषेकनि के परमाणू नीचले निषेकनि विषै मिलावना, सो **अपकर्षण** है । नीचले निषेकनि का परमाणू ऊपरि के निषेकनि विषै मिलावना; सो **उत्कर्षण** है । असैं ए छह आवश्यक यथासभव जानने ।

बहुरि **एक प्रश्न उपजै** है कि एक समय विषै जीव करि बाध्या जो एक समयप्रबद्ध, ताके आबाधा रहित अपनी स्थिति का प्रथम समय तै लगाइ, अत समय पर्यंत समय-समय प्रति एक-एक निषेक उदय आवै है । पूर्व गाथा विषै समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय का आवना कैसै कह्या है ?

ताकां समाधान – जो समय-समय प्रति बंधे समय प्रवद्धनि का एक-एक निषेक एकठे होइ, विवक्षित एक समय विषै समय प्रवद्धमात्र हो है ।

कैसे ? सो कहिए है – अनादिबंध का निमित्त करि बध्या विवक्षित समयप्रबद्ध, ताका जिस काल विषै अंत निषेक उदय हो है, तिस काल विषै, ताके अनतरि बध्या समयप्रबद्ध का अत तै दूसरा निषेक उदय हो है । ताके अनतरि बंध्या समयप्रबद्ध का अत तै तीसरा निषेक उदय हो है । ऐसे चौथा आदि समयनि विषै बध, समय-प्रबद्धनि का अत तै चौथा आदि निषेकनि का उदय क्रम करि आबाधाकाल रहित विवक्षित स्थिति के जेते समय तितने स्थान जाय, अंत विषै जो समयप्रवद्ध बंध्या, ताका आदि निषेक उदय हो है । ऐसे सबनि कौ जोडै, विवक्षित एक समय विषैं एक समयप्रबद्ध उदय आवै है ।

अंकसदृष्टि करि जैसै जिन समयप्रबद्धनि के सर्व निषेक गलि गए, तिनिका तौ उदय है ही नाही । बहुरि जिस समयप्रबद्ध के सैंतालीस निषेक पूर्वै गले, ताका अत नव का निषेक वर्तमान समय विषै उदय आवै है । बहुरि जाके छियालीस निषेक पूर्वै गले, ताका दश का निषेक उदय हो है । ऐसै ही क्रम तै जाका एकहू निषेक पूर्वै न गल्या, ताका प्रथम पांच सै बारा का निषेक उदय हो है । ऐसे वर्तमान कोई एक समय विषै सर्व उदय रूप निषेक । ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ । १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ । ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४ । ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८ । १४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६ । २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२ । ऐसे इनिकौ जोडै सपूर्ण समय प्रबद्धमात्र प्रमाण हो है ।

आगामी काल विषै जैसे नवीन समयप्रबद्ध के निषेकनि का उदय का सद्भाव होता जाइगा, तैसै पुराणे समयप्रबद्ध के निषेकनि के उदय का अभाव होता जायगा । जैसे आगामी समय विषै नवीन समयप्रबद्ध का पाच सै बारा का निषेक उदय आवैगा, तहा वर्तमान समय विषै जिस समयप्रबद्ध का पाच सै बारा का निषेक उदय था, ताका पाच सै बारा का निषेक का अभाव होइ, दूसरा च्यारि सै असी का निषेक उदय होगा । बहुरि जिस समयप्रबद्ध का वर्तमान समय विषै च्यारि सै असी का निषेक उदय था, ताका तिस निषेक का अभाव होइ, च्यारि सै अड़तालीस के निषेक का उदय होगा । ऐसे क्रम तै जिस समयप्रबद्ध का वर्तमान समय विषै नव

का निषेक उदय था, ताका आगामी समय विषै सर्व अभाव होगा । अैसै ही क्रम समय प्रति जानना । तातै समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक मिलि, एक-एक समयप्रबद्ध का उदय हो है । बहुरि गलै पीछे अवशेष रहै, सर्व निषेक, तिनिकौ जोडे, किंचित् ऊन व्द्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है । कैसे ? सो कहिए है – जिस समयप्रबद्ध का एकहू निषेक गल्या नाही, ताके सर्व निषेक नीचै पंक्ति विषै लिखिए । बहुरि ताके ऊपरि जिस समयप्रबद्ध का एक निषेक गल्या होइ, ताके आदि निषेक बिना अवशेष निषेक पक्ति विषै लिखिए । बहुरि ताके ऊपर जिस समय प्रबद्ध के दोय निषेक गले होंइ, ताके आदि के दोय निषेक बिना अवशेष निषेक पंक्ति विषै लिखिए । अैसै ही ऊपरि-ऊपरि एक-एक निषेक घटता लिखि, सर्व के ऊपरि जिस समय प्रबद्ध के अन्य निषेक गलि, एक अवशेष रह्या होइ, ताका अंत निषेक लिखना । अैसै करते त्रिकोण रचना हो है ।

षष्ठम गुणहानि	पचम गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	प्रथम गुणहानि
९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८
१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८
३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०
४२	१८४	४६८	१०३६	२१७२	४४४४
५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०
६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८
८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८
१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००
जोड ४०८	१६१६	४०३२	८८६४	१८५२८	३७८५६

अकसंदृष्टि करि जैसे नीचै ही नीचै अडतालीस निषेक लिखे, ताके ऊपर पांच सै बारा का बिना सैतालीस निषेक लिखे । ताके ऊपरि पांच सै बारा अर च्यारि सै असी का बिना छियालीस निषेक लिखे । अैसै ही क्रम तै ऊपरि ही ऊपरि नव का निषेक लिख्या; अैसै लिखते त्रिकूटी रचना हो है । तातै इस त्रिकोण यंत्र का जोडा हूवा सर्व द्रव्य, प्रमाण सत्त्व द्रव्य जानना । सो कितना हो है ? सो कहिए है – किंचिदून व्द्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हो है । पूर्वे जो गुणहानि

आयाम का प्रमाण कह्या, तामै आधा गुणहानि आयाम का प्रमाण मिलाए, व्द्यर्ध-गुणहानि हो है । तामै किछू घाटि सख्यात गुणी पल्य की वर्गशलाका करि अधिक जो गुणहानि का अठारहवा भाग का प्रमाण सो घटावना, घटाएं जो प्रमाण होइ, ताका नाम इहा किंचिदून व्द्यर्धगुणहानि जानना । ताकरि समयप्रबद्ध के विषै जो परमाणूनि का प्रमाण कह्या, ताकौ गुणें, जो प्रमाण होइ, सोइ त्रिकोण यंत्र विषै प्राप्त सर्व निषेकनि के परमाणू जोडै, प्रमाण हो है । जैसै अक संदृष्टि करि कीया हूवा त्रिकोणयत्र, ताकी सर्वपंक्ति के अकनि कौ जोडै, इकहत्तरी हजार तीन सै च्यारि हो है । अर गुणहानि आयाम आठ, तामैं आधा गुणहानि आयाम च्यारि मिलाए, व्द्यर्धगुणहानि का प्रमाण बारह होइ, ताकरि समयप्रबद्ध तरेसठि सौ कौ गुणें, पिचहत्तरि हजार छ सै होइ । इहां त्रिकोण यंत्र का जोड़ घटता भया । तातै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व कह्या । तहा व्द्यर्धगुणहानि विषै ऊनका प्रमाण दार्ष्टांत विषै महत्प्रमाण है । तातै पूर्वोक्त जानना ।

इहा अकसंदृष्टि दृष्टांत विषै गुणहानि का अठारहवां भाग करि गुणित समयप्रबद्ध का प्रमाण अठाईस सै, तामै गुणहानि आठ, नानागुणहानि छै करि गुणित समयप्रबद्ध का तरेसठिवा भाग, अडतालीस सै, तामै किंचित् अधिक आधा समय-प्रबद्ध का प्रमाण तेतीस सै च्यारि घटाइ, अवशेष चौदह सै छिनवे जोडै, वियालीस सै छिनवे भए, सो व्द्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध विषै घटाए, त्रिकोण यंत्र का जोड हो है ।

बहुरि इस त्रिकोण यत्र का जोड इतना कैसै भया ? सो जोड देने का विधान हीन-हीन सकलन करि वा अधिक-अधिक संकलन करि वा अनुलोम-विलोम सकलन करि तीन प्रकार कह्या है । तहां घटता-घटता प्रमाण लीए निषेकनि का क्रम तै जोडना, सो हीन-हीन सकलन कहिए । बधता-बधता प्रमाण लीए निषेकनि का क्रम तै जोडना, सो अधिक-अधिक संकलन कहिए । हीन प्रमाण लीएं वा अधिक प्रमाण लीए निषेकनि का जैसै होइ तैसै जोड़ना, सो अनुलोम-विलोम सकलन कहिए सो ऐसै जोड़ देने का विधान आगै सदृष्टि अधिकार विषै लिखैगे; तहा जानना । इहा जोड विषै संदृष्टि समझने में न आवती, तातै नाही लिख्या है । ऐसै आयु विना कर्मप्रकृतिनि का समय-समय प्रति बंध, उदय, सत्त्व का लक्षण कह्या ।

बहुरि आयु का अन्यथा लक्षण है, जातै आयु का अपकर्षण कालनि विषै वा असंक्षेप अत काल विषै ही बंध हो है। बहुरि आबाधा काल पूर्व भव विषै व्यतीत हो है। तातै आयु की जितनी स्थिति, तितनी ही निषेकनि की रचना जाननी। आबाधाकाल घटावना नाही। बहुरि आयुकर्म का उत्कृष्ट संचय कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी जलचर जीव कै हो है। तहा कर्मभूमियां मनुष्य कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी यथायोग्य संक्लेश वा उत्कृष्ट योग करि पर भव संबंधी कोटिपूर्व वर्ष का आयु जलचर विषै उपजने का बाध्या, सो आगै कहिएगी योग यवमध्य रचना, ताका ऊपरि स्थान विषै अतर्मुहूर्त तिष्ठ्या, बहुरि अंत जीव गुणहानि का स्थान विषै आवली का असख्यातवा भागमात्र काल तिष्ठ्या, क्रम तै काल गमाइ, कोडिपूर्व आयु का धारी जलचर विषै उपज्या। अतर्मुहूर्त करि सर्व पर्याप्तनि करि पर्याप्त भया। अंतर्मुहूर्त करि बहुरि परभव सबंधी जलचर विषै उपजने का कोडिपूर्व आयु कौ बांधै है। तहां दीर्घ आयु का बंध काल करि यथायोग्य संक्लेश करि उत्कृष्ट योग करि उत्कृष्ट योग करि बाधै है। सो योग यवरचना का अंत स्थानवर्ती जीव बहुत बार साता कौ काल करि युक्त होता अपने काल विषै पर भव सबंधी आयु कौ घटावै, ताकै आयु-वेदना द्रव्य का प्रमाण उत्कृष्ट हो है; सो द्रव्य रचना सस्कृत टीका तै जाननी। या प्रकार औदारिक आदि शरीरनि का बध, उदय, सत्त्व विशेष जानने के अर्थि वर्णन कीया।

आगै श्री माधवचद्र त्रैविद्यदेव बारह गाथानि करि योग मार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है -

बादरपुण्णा तेऊ, सगरासीए असंखभागमिदा।
विक्किरियसत्तिजुत्ता, पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥२५९॥

बादरपूर्णाः, तैजसाः, स्वकराशेरसंख्यभागमिताः।
विक्रियाशक्तियुक्ताः, पल्यासख्याता वायवः ॥२५९॥

टीका - बादर पर्याप्त तेजकायिक जीव, तिनि विषै उन ही जीवनि का जो पूर्वै परिमाण आवली के घन का असंख्यातवां भागमात्र कह्या था, तिस राशि कौ असख्यात का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितने जीव विक्रिया शक्ति करि सयुक्त जानने।

बहुरि बादर पर्याप्त वातकायिक जीव लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण कहे थे। तिनि विषै पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण जीव, विक्रिया शक्ति युक्त जानने। जातै 'बादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इस गाथा करि बादर पर्याप्त अग्निकायिक अर पवनकायिक जीवनि कै वैक्रियिक योग का सद्भाव कह्या है।

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।
वेगुव्वियपंचक्खा, भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥२६०॥

पल्यासंख्याताहतवृंदांगुलगुणित श्रेणिमात्रा हि ।
वैर्गूविकपंचाक्षा, भोगभुमाः पृथक् विगूर्वंति ॥२६०॥

टीका – पल्य का असंख्यातवा भाग करि घनांगुल कौ गुणै, जो परिमाण होइ, ताकरि जगच्छ्रेणी गुणै, जो परिमाण आवै, तितने वैक्रियिक योग के धारक पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य जानने। तहां भोगभूमि विषै उपजे तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमि विषै चक्रवर्ती ए पृथक् विक्रिया कौ भी करै है। इनि विना सर्व कर्मभूमियानि कै अपृथक् विक्रिया ही है।

जो मूलशरीर तै जुदा शरीरादि करना, सो पृथक् विक्रिया जाननी।

अपने शरीर ही कौ अनेकरूप करना, सो अपृथक् विक्रिया जाननी।

देवेहिं सादिरेया, तिजोगिणो तेहिं हीण तसपुण्णा ।
बियजोगिणो तदूणा, संसारी एक्कजोगा हु ॥२६१॥

देवैः सातिरेकाः, त्रियोगिनस्तैर्हीनाः त्रसपूर्णाः ।
द्वियोगिनस्तदूना, संसारिणः एकयोगा हि ॥२६१॥

टीका – देवनि का जो परिमाण साधिक ज्योतिष्कराशि मात्र कह्या था; तीहि विषै घनांगुल का द्वितीय मूल करि गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण नारकी अर संख्यात पणट्ठी प्रतरांगुल करि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच अर वादाल का घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इनिकौ मिलाएं, जो परिमाण होइ, तितनै त्रियोगी जानने। इनिकै मन, वचन, काय तीनों योग पाइए है।

बहुरि जो पूर्वं पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण कह्या था, तामैं त्रियोगी जीवनि का परिमाण घटाएं, जो अवशेष परिमाण रहै; तितने द्वियोगी जीव जानने। इनिकै वचन, काय दोय ही योग पाइए है।

बहुरि संसारी जीवनि का जो परिमाण, तामैं द्वियोगी अर त्रियोगी जीवनि का परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै, तितने जीव एक योगी जानने। इनि कैं एक काययोग ही पाइए है; अैसै प्रगट जानना।

अंतोमुहुत्तमेत्ता, चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं, चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्मुहूर्तमात्राः, चतुर्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः।
तद्योगः सामान्यं, चतुर्वचोयोगाः ततस्तु संख्यगुणाः ॥२६२॥

टीका – च्यारि प्रकार मनोयोग प्रत्येक अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति लीएं है। तथापि अनुक्रम तें संख्यात गुणे जानने। सोई कहिए है – सत्य मनोयोग का काल सबतै थोरा है; सो भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण है; ताकी संदृष्टि–एक अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातें संख्यातगुणा काल असत्य मनोयोग का है, ताकी संदृष्टि–च्यारि अंतर्मुहूर्त। इहां संख्यात की सहनानी च्यारि जाननी। बहुरि यातै सख्यात गुणा उभय मनोयोग का काल है; ताकी सदृष्टि – सोलह अतर्मुहूर्त। बहुरि यातै संख्यातगुणा अनुभय मनोयोग का काल है; ताकी संदृष्टि–चौसठि अतर्मुहूर्त। अैसै च्यारि मनोयोग का काल का जोड दीएं जो परिमाण हूवा, सो सामान्य मनोयोग का काल है, तिहि की संदृष्टि – पिच्यासी अतर्मुहूर्त। बहुरि सामान्य मनोयोग का काल तै संख्यातगुणा च्यारि वचनयोग काल है। तथापि क्रम तै संख्यातगुणा है, तौ भी प्रत्येक अतर्मुहूर्त मात्र ही है। तहां सामान्य मनोयोग का कालतै संख्यातगुणा सत्य वचनयोग का काल है; ताकी संदृष्टि–चौगुणा पिच्यासी (४×८५) अतर्मुहूर्त। वहुरि यातै संख्यात गुणा असत्य वचनयोग का काल है – ताकी सदृष्टि सोलहगुणा पिच्यासी (१६×८५) अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातै सख्यातगुणा उभय वचनयोग का काल है – ताकी संदृष्टि–चौसठिगुणा पिच्यासी (६४×८५) अतर्मुहूर्त। वहुरि यातै संख्यात गुणा अनुभय वचनयोग का काल है; ताकी दृष्टि–दोय सै छप्पन गुणा पिच्यासी (२५६×८५) अंतर्मुहूर्त।

तज्जोगो सामण्णं, काओ संखाहदो तिजोगमिदं ।
सव्वसमासविभजिदं, सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ।।२६३।।

तद्योगः सामान्यं, कायः संख्याहतः त्रियोगिमितम् ।
सर्वसमासविभक्तं, स्वकस्वकगुणसंगुणे तु स्वकराशिः ।।२६३।।

टीका – बहुरि जो चार्‍यों वचन योगनि का काल कह्या, ताका जोड दीएं, जो परिमाण होइ, सो सामान्य वचन योग का काल है; ताकी संदृष्टि तीन सै चालीस गुणा पिच्यासी (३४०×८५) अंतर्मुहूर्त । यातै संख्यात गुणा काल काययोग का जानना । ताकी संदृष्टि तेरह सै साठि गुणा पिच्यासी (१३६०×८५) अंतर्मुहूर्त । असैं इनि तीनों योगनि के काल का जोड दीएं, सतरह सै एक गुणा पिच्यासी (१७०१×८५) अंतर्मुहूर्त प्रमाण भया । ताके जेते समय होहि, तिस प्रमाण करि त्रियोग कहिए । पूर्वै जो त्रियोगी जीवनि का परिमाण कह्या था, ताकौ भाग दीजिए जो एक भाग का परिमाण आवै, ताकौ सत्यमनोयोग के काल के जेते समय, तिन-करि गुणै, जो परिमाण आवै, तितने सत्य मनोयोगी जीव जानने । बहुरि ताही कौ असत्य मनोयोग काल के जेते समय, तिन करि गुणे, जो परिमाण आवै, तितने असत्य मनोयोगी जीव जानने । असैं ही काययोग पर्यंत सर्व का परिमाण जानना । इहां सर्वत्र त्रैराशिक करना । तहां जो सर्व योगनि का काल विषै पूर्वोक्त त्रियोगी सर्व जीव पाइए, तौ त्रिवक्षित योग के काल विषै केते जीव पाइए ? असैं तीनो योगनि का जोड दिए जो काल भया, सो प्रमाण राशि, त्रियोगी जीवनि का परिमाण फल राशि, अर जिस योग की विवक्षा होइ तिसका काल इच्छा राशि, असैं करि कै फल-राशि कौ इच्छाराशि करि गुणि प्रमाणराशि का भाग दीएं, जो-जो परिमाण आवै, तितने-तितने जीव विवक्षित योग के धारक जानने ।

बहुरि द्वियोगी जीवनि विषै वचनयोग का काल अंतर्मुहूर्त मात्र, ताकी संदृष्टि । एक अंतर्मुहूर्त, यातै सख्यातगुणा काययोग का काल, ताकी सदृष्टि च्यारि अत-र्मुहूर्त, इनि दोऊनि के काल कौ जोड, जो प्रमाण होइ, ताका भाग द्वियोगी जीव राशि कौ दीएं, जो एक भाग का परिमाण होइ, ताकौ अपना-अपना काल करि गुणै, अपना-अपना राशि हो है । तहा किछू घाटि त्रसराशि के प्रमाण कौ सदृष्टि अपेक्षा पांच करि भाग देइ, एक करि गुणै, द्वियोगीनि विषै वचन योगीनि का

प्रमाण हो है । पांच का भाग देइ, च्यारि करि गुणें द्वियोगीनि विषै काययोगीनि का प्रमाण हो है ।

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता ।
कम्मोरालियमिस्सय, ओरालियजोगिणो जीवा ॥२६४॥

कार्मणौदारिकमिश्रकौरालाद्धासु संचितानंताः ।
कार्मणौरालिकमिश्रकौरालिकयोगिनो जीवाः ॥२६४॥

टीका – कार्माण काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, औदारिक काययोग इनि के कालनि विषै संचित कहिए एकठे भएं, जे कार्माण काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, औदारिक काययोगी जीव, ते प्रत्येक जुदे-जुदे अनंतानंत जानने, सोई कहिए है ।

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगगुणगुणिदे थोवो, असंखसंखाहदो कमसो ॥२६५॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहितराशिम् ।
स्वकगुणगुणिते स्तोकः, असंख्यसंख्याहतः क्रमशः ॥२६५॥

टीक – कार्मण काययोग का काल तीन समय है, जातै विग्रह गति विषै अनाहारक तीनि समयनि विषै कार्माण काय योग ही संभवै है । बहुरि औदारिक मिश्र काययोग का काल संख्यात आवली प्रमाण है, जातै अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्त अवस्था विषै औदारिकमिश्र का काल है । बहुरि तातै सख्यातगुणा औदारिक काययोग का काल है; जातै तिनि दोऊ कालनि बिना अवशेष सर्व औदारिक योग का ही काल है; सो इनि सर्व कालनि का जोड दीएं जो समयनि का परिमाण भया, ताकौ द्विसंयोगी त्रिसयोगी राशि करि हीन ससारी जीव राशिमात्र एक योगी जीव राशि के परिमाण कौ भाग दीए जो एक भाग विषै परिमाण आवै, तीहि कौ कार्माण काल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तितने कार्माण काययोगी है । अर तिस ही एक भाग कौं औदारिक मिश्र काल करि गुणे, जो परिमाण होइ, तितने औदारिक मिश्र योगी जानने । बहुरि तिस ही एक भाग कौ औदारिक के काल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तितने औदारिक काययोगी जानने ।

इहां कार्माण काययोगी तौ सब तै स्तोक है । इनि तै असंख्यात गुणे औदारिकमिश्र काययोगी है । इन तै संख्यातगुणे औदारिक काययोगी है । इहां भी जो तीनू काययोग के काल विषै सर्व एक योगी जीव पाइए, तौ कार्माण शरीर आदि विवक्षित के काल विषै केते पाइए ? ऐसै त्रैराशिक हो है । तहां तीनों काययोगनि का काल सो प्रमाणराशि, एक योगी जीवनि का परिमाण सो फलराशि, कार्मणादिक विवक्षित का काल सो इच्छाराशि, फलराशि कौ इच्छाराशि करि गुणें, प्रमाण राशि का भाग दीएं, जो-जो प्रमाण पावै, तितने-तितने विवक्षित योग के धारक जीव जानने । **क्रमश** इस शब्द करि आचार्य ने कह्या है कि धवल नामा प्रथम सिद्धांत के अनुसारि यह कथन कीया है । या करि अपना उद्धतता का परिहार प्रगट कीया है ।

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलिअसंखभागो, संखेज्जावलिपमा कमसो ॥२६६॥

सोपक्रमानुपक्रमकालः संख्यातवर्षस्थितिवाने ।
आवल्यसंख्यभागः, संख्यातावलिप्रमः क्रमशः ॥२६६॥

टीका – वैक्रियिक मिश्र अर वैक्रियिक काययोग के धारक जे जीव, तिनकी संख्या च्यारि गाथानि करि कहै है । संख्यात वर्ष की है स्थिति जिनकी ऐसे जे मुख्यता करि दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति के धारकवान कहिए व्यंतर देव, तिनि विषै उनकी स्थिति के दोय भाग है, एक सोपक्रम काल, एक अनुपक्रम काल ।

तहा उपक्रम कहिए उत्पत्ति, तीहि सहित जो काल, सो सोपक्रम काल कहिए । सो आवली के असख्यातवे भागमात्र है, जो व्यतर देव उपजिवो ही करै, वीचि कोई समय अतर नही पडै, तौ आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण काल पर्यंत उपजिवो करै ।

बहुरि जो उत्पत्ति रहित काल होइ; सो अनुपक्रम काल कहिए । सो संख्यात आवली प्रमाण है । बारह मुहूर्तमात्र जानना । जो कोई ही व्यंतर देव न उपजै, तौ बारह मुहूर्त पर्यंत न उपजै, पीछे कोई उपजै ही उपजै; ऐसै अनुक्रम तै काल जानने ।

तहिं सव्वे सुद्धसला, सोवक्कमकालदो दु संखगुणा ।
तत्तो संखगुणूणा, अपुण्णकालम्हि सुद्धसला ॥२६७॥

तस्मिन् सर्वाः शुद्धशलाकाः, सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः ।
ततः संख्यगुणोना, अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः ॥२६७॥

टीका – तीहि दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति विषैं सर्व पर्याप्त वा अपर्याप्त काल सबंधी अनुपक्रम काल रहित कौ केवल शुद्ध उपक्रम काल की शलाका कहिए । जेती बार सभवै तेता प्रमाण, सो उपक्रम काल तै संख्यात गुणी है । बहुरि अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका तातै संख्यात गुणी घाटि है, जो जघन्य स्थिति विषै शुद्ध उपक्रम शलाका का परिमाण कह्या था, ताके संख्यातवे भाग अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका जानना । सोई दिखाइए है—

सोपक्रम—अनुपक्रम काल दोऊ कालनि की मिलाई हुई एक शलाका होइ, तौ दश हजार वर्ष प्रमाण स्थिति की केती शलाका होइ ? असें त्रैराशिक करिए । तहां सोपक्रम अर अनुपक्रम काल कौ मिलाए, आवली का असंख्यातवां भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तौ प्रमाणराशि भया, अर फलराशि एक शलाका, अर इच्छाराशि दश हजार वर्ष, तहां फल करि इच्छाराशि कौ गुणि, प्रमाण का भाग दीए, किंचिदून सख्यातगुणा संख्यात प्रमाण मिश्र शलाका हो है । जघन्य स्थिति विषै एती बार उपक्रम वा अनुपक्रम का काल वर्तें है । बहुरि प्रमाणराशि शलाका एक, फलराशि उपक्रम काल आवली का असख्यातवा भाग, इच्छाराशि मिश्रशलाका किंचिदून संख्यात गुणा सख्यात कीए, तीहि जघन्य स्थिति प्रमाण काल विषै शुद्ध उपक्रम शलाका का काल का परिमाण किंचिदून सख्यात गुणा संख्यात गुणित आवली का असख्यातवा भागमात्र हो है । बहुरि प्रमाण जघन्य स्थिति, फल शुद्ध उपक्रम शलाका का काल, इच्छा अपर्याप्त कीए, अपर्याप्त काल सवधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल संख्यात गुणा आवली का असंख्यातवां भागमात्र होइ । अथवा अन्य प्रकार कहै है – प्रमाण एक शुद्ध उपक्रम शलाका का काल, फल एक शलाका, इच्छा सर्व शुद्ध उपक्रम काल करिएं पर्याप्त—अपर्याप्त सर्व काल सबधी शुद्ध उपक्रम शलाका किंचिदून संख्यात गुणी संख्यात जाननी । बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल शुद्ध उपक्रम शलाका का काल आवली का असंख्यातवा भागमात्र, इच्छा सर्व शुद्ध शलाका किंचिदून सख्यात गुणित सख्यात करिए, लब्धराशि विषै सर्व जघन्य स्थिति संबंधी

शुद्ध उपक्रम काल आवली का असंख्यातवा भाग कौ किंचिदून सख्यात गुणा संख्यात करि गुणें, जेता प्रमाण आवै, तितना हो है। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक शलाका काल आवली का असंख्यातवा भागमात्र काल, इच्छा अपर्याप्त काल सबंधी शलाका संख्यात करिए, तहां लब्धिराशि विषै अपर्याप्तकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल संख्यात गुणा आवली का असंख्यातवां भागमात्र हो है। इहां दोय प्रकार वर्णन किया, तहां दोऊ जायगा जघन्य उपजने का अंतर एक समय है; ताकौं विचारि शुद्ध उपक्रम शलाका साधी है; ऐसा जानना। अनुपक्रम काल करि रहित जो उपक्रम काल, सो शुद्ध उपक्रम काल जानना।

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं।
सुद्धसलागाहिं गुणे, वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥२६८॥

तं शुद्धशलाकाहितनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः।
शुद्धशलाकाभिर्गुणे, व्यंतरवैगूर्वमिश्रा हि ॥२६८॥

टीका – तीहि जघन्य स्थिति प्रमाण सर्व काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का परिमाण, किंचिदून सख्यातगुणा सख्यात करि गुणित आवली का असंख्यातवां भागमात्र कह्या, ताका भाग व्यंतर देवनि का जो पूर्वे परिमाण कह्या था, ताकौ दीजिएं. जो परिमाण आवै, ताकौ अपर्याप्त काल संवधी शुद्ध उपक्रम शलाका का प्रमाण सख्यात गुणा आवली का असख्यातवा भागमात्र, ताकरि गुणें, जो परिमाण आवै, तितने वैक्रियिक मिश्र योग के धारक व्यंतर देव जानने। सो ए व्यतर देवनि का जो पूर्वे परिमाण कह्या था, ताके सख्यातवे भाग वैक्रियिक मिश्र योग के धारक व्यंतर देव है। सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के धारक व्यतर घने उपजै है; तातैं उन ही की मुख्यताकरि इहां परिमाण कह्या है।

तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा, वेगुव्वियकायजोगा हु ॥२६९॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगूर्वम्।
सुरनिरयकाययोगा, वैगूर्विककाययोगा हि ॥२६९॥

टीका – तीहि वैक्रियिक मिश्र काययोग के धारक व्यंतर देवनि का परिमाण विषै अवशेष जे भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक देव अर सर्व नारकी वैक्रियिक मिश्र

योग के धारक, तिनिका परिणाम मिलाए, सर्व वैक्रियिकमिश्र काययोग के धारक जीवनि का परिमाण हो है । व्यंतर देवां बिना अन्य देव वा नारकी, तिनकै अनुपक्रम काल जो न उपजने का काल, सो बहुत है । तातै सबनि तै वैक्रियिकमिश्र योग के धारक व्यतर देव बहुत है । इस वास्तै औरनि कौं उन विषै मिलाय करि परिमाण कह्या । बहुरि काययोग के धारक देव अर नारकी, तिनिका परिमाण मिलाए वैक्रियिक काययोग के धारक जीवनि का परिमाण हो है । पूर्वै जो त्रियोगी जीवनि का परिमाण विषै काययोगी जीवनि का परिमाण कह्या था, तामैं स्यों तिर्यंच, मनुष्य संबंधी औदारिक, आहारक काययोग के धारक जीवनि का परिमाण घटाए, जो परिमाण रहै; तितने वैक्रियिक काययोग के धारक जीव जानने । मिश्र योग के धारक जीव एक काययोगी ही है; सो उनका परिमाण एक योगीनि का प्रमाण विषैं गर्भित जानना ।

आहारकायजोगा, चउवण्णं होंति एकसमयम्हि ।
आहारमिस्सजोगा, सत्तावीसा दु उक्कस्सं ।।२७०।।

आहारकाययोगाः, चतुष्पंचाशत् भवंति एकसमये ।
आहारमिश्रयोगाः, सप्तविंशतिस्तूकृष्टम् ।।२७०।।

टीका – उत्कृष्टपनै एक समय विषै युगपत् आहारक काययोग के धारक चौवन (५४) हो है । बहुरि आहारक मिश्र काययोग के धारक सत्ताईस (२७) हो है । उत्कृष्टपनै अर एक समय विषैं अैसै ए दोय विशेषण मध्य दीपक समान है । जैसैं बीचि धर्या हुआ दीपक दोऊ तरफ प्रकाश करै है; तैसे इनि दोऊ विशेषणनि तै जो पूर्वै गति आदि विषै जीवनि की संख्या कहि आए, अर आगै वेदादिक विषै जीवनि की संख्या कहिएगी; सो सब उत्कृष्टपनै युगपत् अपेक्षा जाननी । जो उत्कृष्टपनै समय विषै युगपत् होइ, तो उक्त संख्या प्रमाण जीव होहि । उक्त सख्या तै हीन होंइ तौ होइ, परन्तु अधिक कदाचित् न होंइ । ऐसी विवक्षातै इहा कथन जानना । बहुरि जघन्यपने तै वा नाना काल की अपेक्षा सख्या का विशेप अन्य जैनागम तै जानना अैसै योगमार्गणा विषै जीवनि की सख्या कही है ।

इति श्री आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषा टीका विषे जीवकाण्ड विषे प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा, तिनि विषै योग प्ररूपणा है नाम जाका अैसा नवमा अधिकार सम्पूर्ण भया ।।९।।

दसवां अधिकार : वेद-मार्गणा-प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

दूरि करत भव ताप सब, शीतल जाके बैन ।
तीन भवननायक नमौं, शीतल जिन सुखदैन ।।

आगे शास्त्र का कर्ता आचार्य छह गाथानि करि वेदमार्गणा कौ प्ररूपै हैं –

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे ।
णामोदयेण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा ।। २७१ ।।

पुरुषस्त्री षंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंढाः भावे ।
नामोदयेन द्रव्ये, प्रायेण समाः क्वचिद् विषमाः ।।२७१।।

टीका – चारित्र मोहनीय का भेद नोकषाय, तीहरूप पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नामा प्रकृति, तिनिके उदय तैं भाव जो चैतन्य उपयोग, तीहि विषै पुरुष, स्त्री, नपुसकरूप जीव हो है । बहुरि निर्माण नामा नामकर्म के उदय करि संयुक्त अंगोपांग का विशेषरूप नामकर्म की प्रकृति के उदय तैं, द्रव्य जो पुद्गलीक पर्याय, तीहिविषै पुरुष, स्त्री, नपुसक रूप शरीर हो है । सो ही कहिए है–पुरुषवेद के उदयतै स्त्री का अभिलाषरूप मैथुन सज्ञा का धारी जीव, सो भाव पुरुष हो है । बहुरि स्त्री वेद के उदय तै पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन सज्ञा का धारक जीव, सो भाव स्त्री हो है । बहुरि नपुसकवेद के उदय तै पुरुष अर स्त्री दोऊनि का युगपत् अभिलाषरूप मैथुन सज्ञा का धारक जीव, सो भाव नपुसक हो है ।

बहुरि निर्माण नामकर्म का उदय सयुक्त पुरुष वेदरूप आकार का विशेष लीएं, अगोपाग नामा नामकर्म का उदय तै मूछ, डाढी, लिगादिक चिह्न संयुक्त शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तै लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ।

बहुरि निर्माण नाम का उदय संयुक्त स्त्री वेदरूप आकार का विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामकर्म के उदयतै रोम रहित मुख, स्तन, योनि इत्यादि चिह्न संयुक्त

शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तै लगाइ अंत समय पर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है ।

बहुरि निर्माण नामा नामकर्म का उदय तै संयुक्त नपुसक वेदरूप आकार का विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामप्रकृति के उदय तै मूछ, डाढी इत्यादि वा स्तन, योनि इत्यादिक दोऊ चिह्न रहित शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तै लगाइ अंत समय पर्यंत द्रव्य नपुसक हो है ।

सो प्रायेण कहिए बहुलता करि तौ समान वेद हो है । जैसा द्रव्यवेद होइ तैसा ही भाव वेद होइ बहुरि कही समान वेद न हो है, द्रव्यवेद अन्य होइ, भाव वेद अन्य होइ । तहां देव अर नारकी अर भोग भूमिया तिर्यंच, मनुष्य इनिकै तौ जैसा द्रव्य वेद है, तैसा ही भाव वेद है । बहुरि कर्मभूमियां तिर्यच अर मनुष्य विषै कोई जीवनि कै तौ जैसा द्रव्य वेद हो है, तैसा ही भाव वेद है, बहुरि केई जीवनि कै द्रव्य वेद अन्य हो है अर भाव वेद अन्य हो है । द्रव्य तैं पुरुष है अर भाव तै पुरुष का अभिलाषरूप स्त्री वेदी है । वा स्त्री अर पुरुष दोऊनि का अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है । ऐसै ही द्रव्य तैं स्त्रीवेदी है अर भाव तैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है । वा दोऊनि का अभिलाषरूप नपुसक वेदी है । बहुरि द्रव्य तै नपुसक वेदी है । भाव तै स्त्री का अभिलाषरूप पुरुष वेदी है । वा पुरुष का अभिलाषरूप स्त्री वेदी है । ऐसा विशेष जानना, जातै आगम विषै नवमा गुणस्थान का सवेद भाग पर्यंत भाव तै तीन वेद है । अर द्रव्य तै एक पुरुष वेद ही है, ऐसा कथन कह्या है ।

वेदस्सुदीरणाए, परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो ।
संमोहेण ण जाणदि, जीवो हि गुणं व दोषं वा ।।२७२।।

वेदस्योदीरणायां, परिणामस्य च भवेत्संमोहः ।
संमोहेन न जानाति, जीवो हि गुणं वा दोषं वा ।।२७२।।

टीका – मोहनीय कर्म की नोकषायरूप वेद नामा प्रकृति, ताका उदीरणा वा उदय, तीहि करि आत्मा के परिणामनि कौ रागादिरूप मैथुन है नाम जाका ऐसा सम्मोह कहिए चित्त विक्षेप, सो उपजै है । तहा बिना ही काल आए कर्म का फल निपजै, सो उदीरणा कहिए । काल आएं फल निपजै, सो उदय कहिए । बहुरि उस सम्मोह के उपजने तैं जीव गुण कौ वा दोष कौ न जानै, ऐसा अविवेक रूप

अनर्थ वेद के उदय तैं भया सम्मोह तै हो है । तातै ज्ञानी जीव कौं परमागम भावना का बल करि यथार्थ स्वरूपानुभवन आदि भाव तै ब्रह्मचर्य अंगीकार करना योग्य है; असा आचार्य का अभिप्राय है ।

पुरुगुणभोगे सेदे, करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमे य जह्मा, तह्मा सो वण्णिओ पुरिसो[1] ॥२७३॥

पुरुगुणभोगे शेते, करोति लोके पुरुगुणं कर्म ।
पुरूत्तमे च यस्मात्, तस्मात् स वर्णितः पुरुषः ॥२७३॥

टीका – जातै जो जीव पुरुगुण जो उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानादिक, तीहि विषै शेते कहिए स्वामी होइ प्रवर्तै ।

बहुरि पुरुभोग जो उत्कृष्ट इंद्रादिक का भोग, तीहि विषै शेते कहिए भोक्ता होय प्रवर्तै ।

बहुरि पुरुगुण कर्म जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ, तीहिनै शेते कहिए करै ।

बहुरि पुरु जो उत्तम परमेष्ठी का पद तीहिं विषै शेते कहिए तिष्ठै । तातै सो द्रव्य भाव लक्षण सयुक्त द्रव्य – भाव तै पुरुष कह्या है । पुरुष शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया है ।

धातुनि के अनेक अर्थ है । तातै शीङ् स्वप्ने इस धातु का स्वामी होना, भोगवना, करना, तिष्ठना असै अर्थ कहे, विरोध न उपजावै है । बहुरि इहा पृषोदर शब्द की ज्यो अक्षर विपर्यास जानने । तालवी, शकार का, मूर्धनी षकार करना । अथवा 'षोऽन्तकर्मणि' इस धातु तै निपज्या पुरुष शब्द जानना ।

छादयदि सयं दोसे, णयदो छादंदि परं वि दोसेण ।
छादणसीला जह्मा, तह्मा सा वण्णिया इत्थी[2] ॥२७४॥

छादयति स्वकं दोषैः नयतः छादयति परमपि दोषेण ।
छादनशीला यस्मात् तस्मात् सा वर्णिता स्त्री ॥२७४॥

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४३, गाथा १७१ ।
२. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४३, गाथा १७० ।

टीका – जातै जो स्वयं कहिए आपकौ **दोषैः** कहिए मिथ्यात्व अज्ञान, असंयम, क्रोधादिक, तिनि करि **स्तृणाति** कहिए आच्छादित करै है। बहुरि नाही केवल आप ही कौ आच्छादित करै है; जातै पर जु है पुरुषवेदी जीव, ताहि कोमल वचन कटाक्ष सहित विलोकन, सानुकूल प्रवर्तन इत्यादि प्रवीणतारूप व्यापारनि ते अपने वश करि दोष जे है हिंसादिक पाप, तिनि करि **स्तृणाति** कहिए आच्छादै है; असा आच्छादन रूप ही है स्वभाव जाका तातै, सो द्रव्य भाव करि स्त्री असा नाम कह्या है। असी स्त्री शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया।

यद्यपि तीर्थकर की माता आदि सम्यग्दृष्टिणी स्त्रीनि विषै दोष नाही, तथापि वे स्त्री थोरी अर पूर्वोक्त दोष करि संयुक्त स्त्री घनी। तातै प्रचुर व्यवहार अपेक्षा असा लक्षण आचार्य ने स्त्री का कह्या।

णेवित्थी णेव पुमं, णउंसओ उहय-लिंग-विदिरित्तो।
इट्ठावग्गिसमाणग-वेदणगरुओ कलुस-चित्तो[1] ॥२७५॥

नैव स्त्री नैव पुमान्, नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः।
इष्टापाकाग्निसमानकवेदनागुरुकः कलुषचित्तः ॥२७५॥

टीका – जो जीव पूर्वोक्त पुरुष वा स्त्रीनि के लक्षण के अभाव तै पुरुष नाही वा स्त्री नाहीं; तातैं दौऊ ही वेदनि के डाढी, मूछ वा स्तन, योनि इत्यादि चिह्न, तिनिकरि रहित है। बहुरि इष्ट का पाक जो ईंट पचावने का पंजावा, ताकी अग्नि समान तीव्र काम पीडा करि गरवा भर्या है। बहुरि स्त्री वा पुरुष दोऊनि का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा करि मैला है चित्त जाका, असा जीव नपुसक है ऐसा आगम विषै कह्या है। यहु नपुसक शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया। स्त्री पुरुष का अभिलाषरूप तीव्र कामवेदना लक्षण धरै, भावनपुंसक है; असा तात्पर्य जानना ॥२७५॥

तिणकारिसिट्ठपागग्गि-सरिस-परिणाम-वेयणुम्मुक्का।
अवगय-वेदा जीवा, सग-संभवणंत-वरसोक्खा[2] ॥२७६॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४४ गाथा सं १७२
पाठभेद – उहय – उभय, इट्ठावग्गि – इट्ठावाग, वेदण – वेयण।

२. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४४, गाथा १७३।
पाठभेद--कारिस तणिट्ट—वागग्गि।

तृणकारीषेष्टपाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः ।
अपगतवेदा जीवाः, स्वकसंभवानंतवरसौख्याः ।।२७६।।

टीका – पुरुष वेदी का परिणाम, तिणाकी अग्नि समान है । स्त्री वेदी का परिणाम कारीष का अग्नि समान है । नपुसक वेद का परिणाम पजावाकी अग्नि समान है । ऐसे तीनों ही जाति के परिणामनि की जो पीडा, तीहि करि जे रहित भए हैं; ऐसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरण का अपगत वेदभाग तै लगाय, अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाव वेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ।

कोऊ जानैगा जहा काम सेवन नाही; तहां सुख भी नाही ?

ताकौ कहैं है–कैसे है ते अवेदी ? अपने ज्ञान दर्शन लक्षण विराजमान आत्मतत्त्व तै उत्पन्न भया जो अनाकुल अतीद्रिय अनंत सर्वोत्कृष्ट सुख, ताके भोक्ता है । यद्यपि नवमा गुणस्थान के अवेद भाग ही तै वेद उदय तै उत्पन्न कामवेदनारूप सक्लेश का अभाव है । तथापि मुख्यपनै सिद्धनि ही कै आत्मीक सुख का सद्भाव दिखाइ वर्णन कीया । परमार्थ तै वेदनि का अभाव भए पीछै ज्ञानोपयोग की स्वस्थतारूप आत्म जनित आनन्द यथायोग्य सबनि कै पाइये है ।

आगै श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव वेद मार्गणा विषै जीवनि की सख्या पांच गाथानि करि कहै है –

जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरुसा य सण्णिणो जीवा ।
तत्तेउपम्मलेस्सा, संखगुणूणा कमेणेदे ।।२७७।।

ज्योतिष्कवानयोनितिर्यक्पुरुषाश्च संज्ञिनो जीवाः ।
तत्तेजः पद्मलेश्याः, संख्यगुणोनाः क्रमेणैते ।।२७७।।

टीका – पैसठि हजार पांच सै छत्तीस प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो परिमाण आवै, तितने ज्योतिषी है । तातै संख्यात गुणे घाटि व्यतर है । संख्यात गुणे घाटि कहो वा संख्यातवा भाग कहो दोऊ एकार्थ है । बहुरि तातै सख्यात गुणे घाटि योनिमती तिर्यच है । तिर्यच गति विषै द्रव्य स्त्री इतनी है । बहुरि तातै संख्यात गुणे घाटि द्रव्य पुरुष वेदी तिर्यंच है । बहुरि तातै संख्यात गुणे घाटि सैनी पचेद्री तिर्यंच है । बहुरि तातै सख्यात गुणा घाटि पीत लेश्या का धारक सैनी पंचेद्री तिर्यच है ।

बहुरि तीह स्यों संख्यात गुणा घाटि पद्म-लेश्या का धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। ऐसे ए सब संख्यात गुणा घाटि कह्या।

इगिपुरिसे बत्तीसं, देवी तज्जोगभजिददेवोघे।
सगगुणगारेण गुणे, पुरुसा महिला य देवेसु ॥२७८॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यः तद्योगभक्तदेवौघे।
स्वकगुणकारेण गुणे, पुरुषा महिलाश्च देवेषु ॥२७८॥

टीका – देवगति विषै एक पुरुष के बत्तीस देवागना होइ। कोई ही देव कै बत्तीस सौं घाटि देवांगना नाही। अर इंद्रादिकनि के देवागना तिनतै सख्यात गुणी बहुत है। तथापि जिनके बहुत देवागना है, ऐसे देव तौ थोरे है। अर बत्तीस देवांगना जिनके है; ऐसे प्रकीर्णकादिक देव घने तिनतै असंख्यात गुणे है। तातै एक एक देव कै बत्तीस-बत्तीस देवांगना की विवक्षा करि अधिक की न करि कही। सो बत्तीस देवांगना अर एक देव मिलाएं तैतीस भए, सो पूर्वं जो देवनि का परिमाण कह्या था, ताकौ तैंतीस का भाग दीए जो एक भाग का परिमाण आवै, ताकौ एक करि गुणै तितना ही रह्या, सो इतने तौ देवगति विषैं पुरुष जानने। अर याकौ बत्तीस गुणा कीएं जो परिमाण होइ, तितनी देवांगना जाननी।

भावार्थ – देवराशि का तेतीस भाग मे एक भाग प्रमाण देव है, बत्तीस भाग प्रमाण देवागना है।

देवेहिं सादिरेया, पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी।
तेहिं विहीण सवेदो, रासी संढाण परिमाणं ॥२७९॥

देवैः सातिरेकाः, पुरुषाः देवीभि. साधिकाः स्त्रियः।
तैर्विहीनः सवेदो, राशिः षंढानां परिमाणम् ॥२७९॥

टीका – पुरुष वेदी देवनि का जो परिमाण कह्या, तीहि विषै पुरुष वेदी तिर्यंच, मनुष्यनि का परिमाण मिलाएं, सर्व पुरुष वेदी जीवनि का परिमाण हो है। बहुरि देवागना का जो परिमाण कह्या तीहि विषै तिर्यंचणी वा मनुष्यणी का परिमाण मिलाएं सर्व स्त्रीवेदी जीवनि का परिमाण हो है। बहुरि नवमा गुणस्थान का वेद रहित भाग तै लगाइ अयोग केवली पर्यंत जीवनि का संख्या रहित सर्व

संसारी जीवनि का परिमाण में स्यों पुरुष वेदी अर स्त्री वेदी जीवनि का परिमाण घटाएं जो अवशेष प्रमाण रहै; तितने नपुंसकवेदी जीव जानने ।

गब्भण पुइत्थिसण्णी, सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा ।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया ॥२८०॥

थोवा तिसु संखगुणा, तत्तो आवलिअसंखभागगुणा ।
पल्लासंखेज्जगुणा, तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥२८१॥

गर्भनपुंस्त्रीसंज्ञिनः, सम्मूर्छनसंज्ञिपूर्णका इतरे ।
कुरुजा असंज्ञिगर्भजनपुंस्त्रीवानज्योतिष्काः ॥२८०॥

स्तोकाः त्रिषु संख्यगुणाः, तत आवल्यसंख्यभागगुणाः ।
पल्यासंख्येयगुणाः, ततः सर्वत्र संख्यगुणाः ॥२८१॥

टीका – सैनी पंचेद्री गर्भज नपुंसक वेदी, बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदी, बहुरि सैनी पंचेद्री गर्भज स्त्री वेदी, बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेद्रिय पर्याप्त नपुंसक वेदी, बहुरि सम्मूर्छन सैनी पचेद्री अपर्याप्त नपुंसक वेदी, बहुरि भोग-भूमिया गर्भज सैनी पंचेंद्री पर्याप्त पुरुष वेदी वा स्त्री वेदी, बहुरि असैनी पंचेद्री गर्भज नपुंसक वेदी, बहुरि असैनी पचेद्री गर्भज पुरुष वेदी, बहुरि असैनी पंचेद्री गर्भज स्त्री वेदी, बहुरि व्यंतरदेव, अर ज्योतिषदेव-ए ग्यारा जीवराशि अनुक्रम तै ऊपरि-ऊपरि लिखनी ।

पूर्वे जो ग्यारा राशि कहे, तिनि विषै नीचली राशि सैनी पंचेद्री गर्भज नपुँसक वेदी सो सर्व तै स्तोक है । आठ बार संख्यात अर आवली का असंख्यातवां भाग अर पल्य का असंख्यातवा भाग अर पैसठि हजार पांच सै छत्तीस प्रतरागुल, इनिका भाग जगत्प्रतर कौ दीएं, जो परिमाण आवै, तितने जानने ।

बहुरि याके ऊपरि सैनी पचेंद्री गर्भज पुरुष वेदी स्यों लगाइ, तीन राशि अनुक्रम तै संख्यात गुणा जानना ।

बहुरि चौथी राशि तै पंचम राशि संमूर्छन सैनी पंचेद्री अपर्याप्त नपुँसक वेदी आवली का असंख्यातवा भाग गुणा जानना ।

बहुरि इस पंचम राशि तै षष्ठराशि पल्य का असख्यातवां भाग गुणा जानना ।

बहुरि यातै असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदी स्यों लगाइ, ज्योतिषी पर्यंत सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादशम राशि अनुक्रम तै संख्यात गुणा जानना । असैं वेद मार्गणा विषै जीवनि की संख्या कही ।

इति आचार्य श्रीनेमिचद्र सिद्धातचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नामा भाषा टीका के विषै जीवकांड विषै प्ररूपित जे वीसप्ररूपणा तिनि विषै वेदमार्गणा प्ररूपणा नामा दशमा अधिकार समाप्त भया ।

ग्यारहवां अधिकार : कषाय-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

पावन जाकौ श्रेयमग, मत जाकौ श्रियकार ।
आश्रय श्री श्रेयांस कौ, करहु श्रेय मम सार ॥

आगे शास्त्रकर्ता आचार्य चौदह गाथानि करि कषाय मार्गणा का निरूपण करें है -

सुहदुक्खसुबहुसस्सं, कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं, तेण कसाओ त्ति णं बेंति[1] ॥२८२॥

सुखदुःखसुबहुसस्यं, कर्मक्षेत्रं कृषति जीवस्य ।
संसारदूरमर्यादं, तेन कषाय इतीमं ब्रुवंति ॥२८२॥

टीका - जा कारण करि संसारी जीव कै कर्म जो है ज्ञानावरणादिक मूल, उत्तर-उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप शुभ-अशुभ कर्म, सोई भया क्षेत्र कहिए, अन्न उपजने का आधार भूत स्थान, ताहि कृषति कहिए हलादिक ते जैसे खेत कौं सवारिए, तैसे जो सवारे है, फल निपजावने योग्य करै है, तीहि कारण करि क्रोधादि जीव के परिणाम कषाय हैं, असा श्रीवर्धमान भट्टारक के गौतम गणधरादिक कहे है । तातै महाधवल* द्वितीय नाम कषायप्राभृत आदि विषै गणधर सूत्र के अनुसारि जैसैं कषायनि का स्वरूप, संख्या, शक्ति, अवस्था, फल आदि कहे है । तैसे ही मैं कहोंगा । अपनी रुचिपूर्वक रचना न करौगा । असा आचार्य का अभिप्राय जानना ।

कैसा है कर्मक्षेत्र ? इंद्रियनि का विषय संबंध ते उत्पन्न भया हर्ष परिणाम-रूप नानाप्रकार सुख अर शारीरिक, मानसिक पीडा रूप नाना प्रकार दुख सोई वहुसस्य कहिए वहुत प्रकार अन्न, सो जीहिं विषै उपज्या है असा है ।

वहुरि कैसा है कर्मक्षेत्र ? अनादि अनंत पंच परावर्तन रूप संसार है, मर्यादा सीमा जाकी असा है ।

---

1 पट्खंडागम - धवला पुस्तक १, पृ १४३, गा स. ९०.

* यह जयधवल द्वितीय नाम कषायप्राभृत है ।

भावार्थ – जैसैं किसी का किंकर पालती सो खेत विषै बोया हूवा बीज, जैसे बहुत फल कौं प्राप्त होइ वा बहुत सीव पर्यंत होइ, तैसें हलादिक तै धरती का फाडना इत्यादिक कृषिकर्म कौ करै है ।

तैसें संसारी जीव का किंकर क्रोधादि कषाय नामा पालती, सो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग रूप कर्म का बंध, सो ही भया खेत, तीहि विषै मिथ्यात्वादिक परिणाम रूप बीज, जैसें कालादिक की सामग्री पाइ, अनेक प्रकार सुख-दुःख रूप बहुत फल कौ प्राप्त होइ वा अनंत संसार पर्यंत फल कौ प्राप्त होइ । तैसे कार्य कौ करै, तातै इन क्रोधादिकनि का कषाय अैसा नाम कह्या, **'कृषि विलेखने'** इस धातु का अर्थ करि कषाय शब्द का निरुक्तिपूर्वक निरूपण आचार्य करि कीया है ।

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खाद–चरणपरिणामे ।
घादंति वा कषाया, चउसोलअसंखलोगमिदा ॥२८३॥

सम्यक्त्वदेशसकलचरित्रयथाख्यातचरणपरिणामान् ।
घातयंति वा कषायाः, चतुः षोडशासंख्यलोकमिताः ॥२८३॥

टीका – अथवा **'कषंतीति कषायाः'** जे हतै, घात करै, तिनिकौ कषाय कहिए। सो ए क्रोधादिक है, ते सम्यक्त्व वा देश चारित्र वा यथाख्यात चारित्र रूप आत्मा के विशुद्ध परिणामनि कौं घातै है । तातै इनिका कषाय अैसा नाम है । यहु कषाय शब्द का दूसरा अर्थ अपेक्षा लक्षण कह्या ।

तहां अनंतानुबधी क्रोधादिक है, तो तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्व कौ घातैं है, जातै अनंत ससार का कारण मिथ्यात्व वा अनत संसार अवस्थारूप काल, ताहि **अनुबंध्नंति** कहिए सबधरूप करै; तिनकौ अनतानुबंधी कहिए ।

बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक कहे, ते अणुव्रतरूप देश चारित्र कौ घातै है, जातै अप्रत्याख्यान कहिए ईषत् प्रत्याख्यान किंचित् त्यागरूप अणुव्रत, ताकौ **आवृण्वंति** कहिए आवरै, नष्ट करै; ताकौ अप्रत्याख्यानावरण कहिए ।

बहुरि प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक है, ते महाव्रतरूप सकल चारित्र कौं घातै है; जातै प्रत्याख्यान कहिए सकल त्यागरूप महाव्रत, ताकौ **आवृण्वंति** कहिए आवरै, नष्ट करै, ताकौ प्रत्याख्यानावरण कहिए ।

बहुरि सज्वलन क्रोधादिक है, ते सकल कषाय का अभावरूप यथाख्यात चारित्र कौ घातै है; जातै 'सं' कहिए समीचीन, निर्मल यथाख्यात चारित्र, ताकौ 'ज्वलंति' कहिए दहन करै, तिनकौ संज्वलन कहिए। इस निरुक्ति तै संज्वलन का उदय होते सतै भी सामायिकादि अन्य चारित्र होने का अविरोध सिद्ध हो है।

ऐसा यह कषाय सामान्यपनै एक प्रकार है। विशेषपनै अनतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन भेद तै च्यारि प्रकार हैं। बहुरि इनके एक-एक के क्रोध, मान, माया, लोभ करि च्यारि-च्यारि भेद कीजिए तब सोलह प्रकार हो है। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे सोलह भेद भएं।

बहुरि उदय स्थानको के विशेष की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण है, जातै कपायनि का कारणभूत जो चारित्रमोह, ताकि प्रकृति के भेद असंख्यात लोक प्रमाण है।

सिल-पुढवि-भेद-धूली-जल-राइ-समाणओ हवे कोहो।
णारय-तिरिय-णरामर-गईसु उप्पायओ कमसो [१] ॥२८४॥

शिलापृथ्वीभेदधूलिजलराशिसमानको भवेत् क्रोधः।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥२८४॥

टीका—शिला भेद, पृथ्वी भेद, धूलि रेखा, जल रेखा समान क्रोध कषाय सो अनुक्रम तै नारक, तिर्यच, मनुष्य, देव गति विषै जीव कौ उपजावन हारा है। सोई कहिए है—

जैसें शिला, जो पाषाण का भेद खंड होना, सो बहुत घने-काल गए बिना मिलै नाही; तैसै वहुत घने काल गए बिना क्षमारूप मिलन कौ न प्राप्त होइ, ऐसा जो उत्कृष्ट शक्ति लीए क्रोध, सो जीव कौ नरक गति विषै उपजावै है।

वहुरि जैसे पृथ्वी का भेद-खंड होना, सो घने काल गएं बिना मिलै नाही, तैसें घने काल गए विना, जो क्षमारूप मिलने कौ न प्राप्त होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध, सो जीव कौ तिर्यंच गति विषै उपजावै है।

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ. ३५२, गा. स. १७४.

बहुरि जैसे धूलि विषै करी हुइ लीक, सो थोरा काल गएं बिना मिलै नाहीं, तैसें थोरा काल गए बिना जो क्षमारूप मिलन कौ प्राप्त न होइ, असा अजघन्य शक्ति लिएं क्रोध, सो जीव कौं मनुष्य गति विषैं उपजावै है ।

बहुरि जैसे जल विषै करी हुई लीक, बहुत थोरा काल गए बिना मिलै नाही, तैसे बहुत थोरा काल गएं बिना जो क्षमारूप मिलन को प्राप्त न होइ; असा जो जघन्य शक्ति लीए क्रोध, सो जीव कौ देव गति विषै उपजावै है । तिस-तिस उत्कृष्टादि शक्ति युक्त क्रोधरूप परिणम्या जीव, सो तिस-तिस नरक आदि गति विषैं उपजने कौं कारण आयु-गति आनुपूर्वी आदि प्रकृतिनि कौ बांधै है; असा अर्थ जानना ।

इहां राजि शब्द रेखा वाचक जानना; पंक्ति वाचक न जानना । बहुरि इहां शिला भेद आदि उपमान अर उत्कृष्ट शक्ति आदि क्रोधादिक उपमेय, ताका समानपना अतिघना कालादि गएं बिना मिलना न होने की अपेक्षा जानना ।

सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्ते, णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारय-तिरिय-णरामर-गईसु उप्पायओ कमसो[1] ॥२८५॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः ।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥२८५॥

टीका – शैल, अस्थि, काष्ठ, बेंत समान जो अपने भेदनि करि उपमीयमान च्यारि प्रकार मान कषाय, सो क्रम तै नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषै जीव कौ उपजावै है । सो कहिए है –

जैसै शैल जो पाषाण सो बहुत घने काल बिना नमावने योग्य न होइ; तैसें बहुत घने काल बिना जो विनयरूप नमन कौ प्राप्त न होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति लीएं मान, सो जीवनि कौ नरक गति विषै उपजावै है ।

बहुरि जैसें अस्थि जो हाड, सो घने काल बिना नमावने योग्य न होइ; तैसें घने काल बिना जो विनयरूप नमन कौ प्राप्त न होइ । असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं मान, सो जीव कौ तिर्यंच गति विषै उपजावै है ।

---

१ षट्खडागम धवला पुस्तक १, पृ० ३५२, गा० स० १७५

बहुरि जैसें काठ थोरा काल बिना नमावने योग्य न होइ, तैसें थोरा काल बिना जो विनयरूप नमन कौ प्राप्त न होइ। असा जो अजघन्य शक्ति लीएं मान, सो जीव कौ मनुष्य गति विषै उप जावै है।

बहुरि जैसैं बेत की लकडी बहुत थोरे काल बिना नमावने योग्य न होइ, तैसें बहुत थोरा काल बिना जो विनयरूप नमन कौ प्राप्त न होइ। असा जो जघन्य शक्ति लीएं मान, सो जीव कौ देव गति विषै उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृति बंध होना वा उपमा, उपमेय का समानपना जानना।

वेणूवमूलोरब्भ-सिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे।
सरिसी माया णारय-तिरिय-णरामर-गईसु खिवदि जियं[1] ॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकश्रृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण।
सदृशी माया नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवम् ॥२८६॥

टीका – वेणूयमूल, उरभ्रकश्रृंग, गोमूत्र, क्षुर समान माया ठिगनेरूप परिणति, सो क्रम तें नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषै जीव कौ उपजावै है। सोई कहिए हैं –

जैसें वेणूयमूल, जो बांस की जड की गांठ सो बहुत घने काल बिना सरल न होइ, तैसें बहुत घने काल बिना जो सरल न होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति कौ लीएं माया, सो जीव कौ नरक गति विषै उपजावैं है।

बहुरि जैसें उरभ्रकश्रृंग, जो मीढे का सीग, सो घने काल बिना सरल न होइ, तैसें घने काल बिना जो सरल न होइ, असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं माया, सो जीव कौ तिर्यंच गति विषै उपजावै है।

बहुरि जैसें गोमूत्र, जो गायमूत्र की धारा, सो थोरा काल बिना सरल न होइ, तैसें थोरा काल बिना सरल न होइ, असी अजघन्य शक्ति लीएं माया, सो जीव कौ मनुष्य गति विषै उपजावै है।

बहुरि जैसें खुर, जो पृथ्वी ऊपरि वृषभादिक का खोज, सो बहुत थोरा काल बिना सरल न होइ, तैसें बहुत थोरा काला बिना जो सरल न होइ, असी जो जघन्य शक्ति लीए माया, सो जीव कौ देव गति विषै उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृति बन्ध होना वा उपमा उपमेय का समानपना जानना।

---

१ – षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृ ३५२ गाथा स १७६।

किमिराय-चक्क-तणु-मल-हरिद्द-राएण सरिसओ लोहो ।
णारय-तिरिक्ख-माणुस-देवेसुप्पायश्रो कमसो[1] ॥२८७॥

क्रिमिरागचक्रतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवेषु उत्पादकः क्रमशः ॥२८७॥

टीका – क्रिमिराग, चक्रमल, तनुमल, हरिद्राराग समान जो लोभ विषयाभिलाषरूप परिणाम, सो क्रम तै नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव गति विषै उपजावै है । सोई कहिए है –

जैसै क्रिमिराग कहिए किरमिची रंग, सो बहुत घने काल गये बिना नष्ट न होइ, तैसै जो बहुत घने काल बिना नष्ट न होइ, अैसा जो उत्कृष्ट शक्ति लीए लोभ, सो जीव कौं नरक गति विषैं उपजावै है ।

बहुरि जैसै चक्रमल जो पहिये का मैल, सो घने काल बिना नष्ट न होइ, तैसै घने काल बिना नष्ट न होइ, अैसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं लोभ, सो जीवकौ तिर्यच गति विषै उपजावै है ।

बहुरि जैसैं तनुमल, जो शरीर का मैल, सो थोरा काल बिना नष्ट न होइ, तैसै थोरा काल बिना नष्ट न होइ अैसा जो अजघन्य शक्ति लीएं लोभ, सो जीव कौं मनु य गति विषैं उपजावै है ।

बहुरि जैसै हरिद्राराग कहिए हलद का रंग सो बहुत थोरा काल बिना नष्ट न होइ, तैसै बहुत थोरे काल बिना नष्ट न होइ, अैसा जो जघन्य शक्ति लीए लोभ, सो जीव कौ देव गति विषै उपजावै है । अैसै जिन-जिन कषायनि तै जो-जो गति का उपजना कह्या, तिन-तिन कषायनि तै तिस ही तिस गति सबंधी आयु वा आनुपूर्वी इत्यादिक का बंध जानना ।

णारय-तिरिक्ख-णर-सुर-गईसु उप्पण्णपढमकालम्हि ।
कोहो माया माणो, लोहुदश्रो अणियमो वाऽपि ॥२८८॥

नारकतिर्यग्नरसुरगतिषूत्पन्नप्रथमकाले ।
क्रोधो माया मानो, लोभोदयः अनियमो वाऽपि ॥२८८॥

---

1 – षट्खडागम-धवला, पुस्तक १, पृ. ३५२, गा स १७७.

टीका – नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव विषै उत्पन्न भया, जीव कै पहिला समय विषै क्रम तै क्रोध, मान, माया लोभ का उदय हो है । नारकी उपजै तहा उपजते ही पहले समय क्रोध कषाय का उदय होइ । अैसै तिर्यंच कै माया का, मनुष्य कै मान का, देव कै लोभ का उदय जानना । सो असा नियम कषायप्राभृत दूसरा सिद्धांत का कर्त्ता यतिवृषभ नामा आचार्य, ताके अभिप्राय करि जानना ।

बहुरि महाकर्म प्रकृति प्राभृत प्रथम सिद्धांत का कर्त्ता भूतबलि नामा आचार्य, ताके अभिप्राय करि पूर्वोक्त नियम नाही । जिस तिस कोई एक कषाय का उदय हो है । अैसै दोऊ आचार्यनि का अभिप्राय विषै हमारै सदेह है; सो इस भरत क्षेत्र विषै केवली श्रुतकेवली नाही; वा समीपवर्ती आचार्यनि कै उन आचार्यनि तै अधिक ज्ञान का धारक नाही; तातै जो विदेह विषै गये तीर्थंकरादिक के निकटि शास्त्रार्थ विषै सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का दूर होने करि निर्णय होइ, तब एक अर्थ का निश्चय होइ तातै हमौने दोऊ कथन कीए है ।

अप्पपरोभय-बाधण बंधासंजम-णिमित्त-कोहादी ।
जेसिं णत्थि कसाया, अमला अकसाइणो जीवा[1] ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः ।
येषां न संति कषाया, अमला अकषायिणो जीवाः ॥२८९॥

टीका – आपकौ व परकौ वा दोऊ कौ बधन के वा बाधा के वा असंयम के कारणभूत अैसे जु क्रोधादिक कषाय वा पुरुष वेदादिरूप नोकषाय, ते जिनके न पाइये, ते द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म मल करि रहित सिद्ध भगवान अकषायी जानने । उपशात कषाय से लेकर च्यारि गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय निर्मल है । तिनकै गुणस्थान प्ररूपणा ही करि अकषायपना की सिद्धि जाननी । तहा कोऊ जीव कै तौ क्रोधादि कषाय अैसे हो है, जिनतै आप तै आप को बाधै, आप ही आप के मस्तकादिक का घात करै । आप ही आप के हिसादि रूप असयम परिणाम करै । बहुरि कोई जीव कै क्रोधादि कषाय अैसे हो है, जिनतै और जीवनि कौ बाधै, मारै, उनके असयम परिणाम करावै । बहुरि कोई जीव कै क्रोधादि कषाय अैसे हो है, जिनतै आप का वा और जीवनि का बांधना, घात करना, असंयम होना होइ, सो अैसे ए कषाय अनर्थ के मूल है ।

---

1 षट्खण्डागम–धवला पुस्तक १, पृ० ३५३, गाथा स० १७८.

कोहादिकसायाणं, चउचउदसवीस होंति पदसंखा ।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहिं ॥२९०॥

क्रोधादिकषायाणां, चत्वारः चतुर्दश विंशतिः भवंति पदसंख्याः ।
शक्तिलेश्यायुष्कबंधाबंधगतभेदैः ॥२९०॥

टीका – क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय, तिनकी शक्ति स्थान के भेद करि च्यारि संख्या है । लेश्या स्थान के भेद करि चौदह संख्या है । आयुर्बल के बंधने के अबंधने के स्थान भेद करि बीस संख्या है ।

तै स्थान आगै कहिए है –

सिल-सेल-वेणुमूल-क्किमिरायादी कमेण चत्तारि ।
कोहादिकसायाणं, सत्ति पडि होंति णियमेण ॥२९१॥

शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि ।
क्रोधादिकषायाणां, शक्ति प्रति भवंति नियमेन ॥२९१॥

टीका – क्रोधादिक जे कषाय, तिनिकै शक्ति कहिए अपना फल देने की सामर्थ्य, ताकी अपेक्षा तै निश्चय करि च्यारि स्थान है । ते अनुक्रम तै तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप वा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य अनुभाग रूप जानने । तहां शिलाभेद, शैल, वेणुमूल, क्रिमिराग ए तौ उत्कृष्ट शक्ति के उदाहरण जानने । आदि शब्द तै पूर्वोक्त अनुत्कृष्टादि शक्ति के उदाहरण दृष्टातमात्र कहे है, ते सर्व जानने । ए दृष्टात प्रगट व्यवहार का अवधारण करि है । अर परमागम का व्यवहारी आचार्यनि करि मंदबुद्धी शिष्य समझावने के अर्थि व्यवहार रूप कीए है । जातै दृष्टात के बल करि ही मंदबुद्धी समझै है । तातै दृष्टांत की मुख्यता करि जे दृष्टांत के नाम, तेई शक्तिनि के नाम प्रसिद्ध कीएं है ।

किण्हं सिलासमाणे, किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि ।
छक्कादी सुक्को त्ति य, धूलिम्मि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने, कृष्णादयः षट् क्रमेण भूमौ ।
षट्कादिः शुक्लेति च धूलौ जले शुक्लैका ॥२९२॥

टीका – शिला भेद समान जो क्रोध का उत्कृष्ट शक्ति स्थान, तीहि विषै एक कृष्ण लेश्या ही है । यद्यपि इस उत्कृष्ट शक्ति स्थान विषै षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीए असंख्यातलोक प्रमाण कषायनि के उदय स्थान है । बहुरि तथापि ते सर्व-स्थान कृष्णलेश्या ही के है, कृष्णलेश्या ही के उत्कृष्ट, मध्यम, भेदरूप जानने ।

षट्स्थान पतित सक्लेश–हानि का स्वरूप असा जानना – जेते कषायनि के अविभाग प्रतिच्छेद पहिलै थे, तिनसौ घाटि होने लगे ते अनंत भागहानि, असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि, असंख्यात गुणहानि, अनंत गुणहानि रूप घटे । असै तीव्र कषाय घटने का नाम षट्स्थान पतित संक्लेश हानि कहिए । कषायनि के अविभाग प्रतिच्छेद अनंत है । तिनकी अपेक्षा षट्स्थान पतित हानि संभवै है । अर स्थान भेद असंख्यात लोक प्रमाण ही है । नियम शब्द करि, ताका अंत स्थान विषै उत्कृष्ट शक्ति की व्युच्छित्ति हो है । बहुरि भूमि भेद समान क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्ति स्थान, तीहि विषै अनुक्रम तै छहों लेश्या पाइए है । सो कहिए है – भूमि भेद समान क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्तिस्थान का पहिला उदय स्थान तै लगाइ, पट्स्थान पतित संक्लेशहानि लीएं, असंख्यात लोक प्रमाण उदय स्थानकनि विषै तौ केवल कृष्णलेश्या ही है । कृष्ण लेश्या ही का मध्य भेद पाइए है; जातै अन्य लेश्या का लक्षण तहा नाही ।

बहुरि इहां तै आगै षट्स्थान पतित सक्लेश-हानि को लीए असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै मध्यम कृष्णलेश्या, उत्कृष्ट नील लेश्या पाइए है । जातै इहां तिनि दोऊ लेश्यानि का लक्षण संभवै है । बहुरि इनि तै आगै षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीए असख्यात लोक प्रमाण उदय स्थानकनि विषै मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, उत्कृष्ट कपोत लेश्या पाइए है, जातै इहा तिनि तीनो लेश्यानि के लक्षण सभवै है । बहुरि इनितै आगै षट्स्थान पतित सक्लेश-हानि लीए असख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनि विषै मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, मध्यम कपोत [लेश्या, मध्यम पीत लेश्या अर जघन्य पद्म लेश्या, जघन्य पीत लेश्या पाइए है;]* जातै इहां तिनि च्यार्यो [पांचौ] लेश्यानि के लक्षण संभवै है । बहुरि इनतै षट्-स्थान पतित सक्लेश-हानि लीए असख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनि विषै मध्यम कृष्ण, नील, कपोत, पीत लेश्या अर जघन्य पद्म लेश्या पाइए है, जातै इहां तिनि पच लेश्यानि का लक्षण संभवै है । बहुरि इनितै षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं

---

* 'ग' प्रति मे इतना और दिया गया है ।

असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं मध्यम कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्या अर जघन्य शुक्ल लेश्या पाइए है । जातैं इहां तिनि छहौ लेश्यानि का लक्षण संभवै है । असैं क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्तिस्थान का जे स्थान भेद, तिनि विषै क्रम तैं छहौ लेश्या के स्थानक जानने । इहा अतस्थान विषै उत्कृष्टशक्ति की व्युच्छित्ति हुई । बहुरि धूली रेखा समान क्रोध का अजघन्य शक्तिस्थान, ताके स्थानकनि विषै छह लेश्या तैं एक एक घाटि शुक्ल लेश्या पर्यंत लेश्या पाइए है । सोई कहिए है – धूली रेखा समान क्रोध का प्रथम स्थान तैं लगाइ, षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि को लीए असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै जघन्य कृष्ण लेश्या, मध्यम नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए है; जातैं इहां छहों लेश्यानि के लक्षण संभवै है । इहा अतस्थान विषै कृष्णलेश्या का विच्छेद हुवा । बहुरि इहा तैं आगैं इस ही शक्ति का षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै जघन्य नील लेश्या, मध्यम कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए है । जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानि का लक्षण संभवै है । इहां अतस्थानकनि विषै नील लेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहां तैं आगे षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै जघन्य कपोत लेश्या मध्यम पीत, पद्म, शुक्ल, लेश्या पाइए है; जातैं इहा तिनि च्यारि लेश्यानि के लक्षण संभवै है । इहा अंतस्थान विषै कपोत लेश्या का विच्छेद हुवा । असैं संक्लेश परिणामनि की हानि होते सते जो मदकषायरूप परिणाम भया, ताकौं विशुद्ध परिणाम कहिए । ताके अनते अविभाग प्रतिच्छेद है, सो तिनकी अनंत भागवृद्धि, असख्यात भागवृद्धि, सख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असख्यात गुणवृद्धि, अनंतगुण वृद्धिरूप जो वृद्धि, सो षट्स्थान पतित विशुद्धवृद्धि कहिए, सो उस च्यारि लेश्या का स्थान तैं आगे षट्स्थान पतित विशुद्धवृद्धि लीए असख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं उत्कृष्ट पीत लेश्या, मध्यम पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए है; जातैं इहां तीन तिनि लेश्यानि ही का लक्षण संभवै है । इहां अंतस्थानकनि विषै पीतलेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहा तैं षट्स्थान पतित विशुद्ध वृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै उत्कृष्ट पद्मलेश्या, मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है । जातैं इहा तिनि दोय ही लेश्यानि के लक्षण संभवै है। इहा अंतस्थान विषै पद्मलेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहा तै षट्स्थान पतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है; जातै इहा तिस ही लेश्या के लक्षण पाइए है। असै धूली रेखा समान क्रोध का अजघन्य शक्तिस्थान के जे उदयरूप स्थानक, तिनि विषै लेश्या कही। इहां अंतस्थान विषै अजघन्य शक्ति की व्युच्छित्ति भई। बहुरि इहां तै आगै जल रेखा समान क्रोध का जघन्य शक्तिस्थान, ताके षट्-स्थान पतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषै मध्यम शुक्ल-लेश्या पाइए है। बहुरि याही के अंतस्थान विषैं उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या पाइए है; असैं च्यारि प्रकार शक्तियुक्त क्रोध विषै लेश्या अपेक्षा चौदह स्थानक कहे। उत्कृष्ट शक्ति स्थान विषै एक, अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानकनि विषैं छह, अजघन्य शक्तिस्थानक विषैं छह, जघन्य शक्तिस्थानक विषै एक असै चौदह कहे।

इहा किसी कै भ्रम होइगा कि ए च्यारि शक्तिस्थानक कहे, इन ही का अनंतानुबंधी आदि नाम है ?

सो नाही, जो तैसें कहिए तौ षष्ठगुणस्थान विषै संज्वलन ही है; तहां एक शुक्ललेश्या ही संभवै; जातैं इहां जघन्य शक्तिस्थान विषै एक शुक्ल लेश्यां ही कही है; सो षष्ठ गुणस्थान विषैं तौ लेश्या तीन है। तातै अनंतानुबंधी इत्यादि भेद सम्य-क्त्वादि घातने की अपेक्षा है, ते अन्य जानने। बहुरि ये शक्तिस्थान के भेद तीव्र, मद अपेक्षा है, ते अन्य जानने। सो जैसै ए क्रोध के चौदह स्थान लेश्या अपेक्षा कहे, तैसे ही उत्कृष्टादिक शक्तिस्थानकनि विषै मान के वा माया के वा लोभ के भी जानने।

सेलगकिण्हे सुण्णं, णिरयं च य भूगएगबिट्ठाणे।
णिरयं इगिबितिआऊ, तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥२९३॥

शैलगकृष्णे शून्यं, निरयं च च भूगैकद्विस्थाने।
निरयमेकद्वित्र्यायुस्त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥२९३॥

टीका – शिला भेद समान उत्कृष्ट क्रोध का शक्तिस्थान विषै असंख्यात-लोक प्रमाण उदयस्थान कहे; तिनि विपैं केई स्थान असै है जिनिविषै कोऊ आयु बंधै नाही। सो यंत्र विषै तहा शून्य लिखना। जातैं जहां अति तीव्र कषाय होइ, तहा आयु का बंध होइ नाही। बहुरि तहां ही ऊपरि के कई स्थान थोरे कषाय

लीएं है । तिनिविषै एक नरकायु ही बधै है, सो इहां एक का अंक लिखना । बहुरि तातैं अनंतगुण घटता सल्केश लीए पृथ्वी भेद समान कषाय विषै के जे कृष्णलेश्या के स्थान है वा कृष्ण वा नील दोय लेश्या के जे स्थान हैं, तिनिविषै एक नरक आयु ही बधै है । सो तिनि दोय स्थाननि विषै एक-एक का अक लिखना । बहुरि तिस ही विषै केइ अगले स्थान कृष्ण, नील, कपोत तीन लेश्या के है, सो तिनिविषै केई स्थाननि विषै तौ एक नरकायु ही का बंध हो है । बहुरि केई अगले स्थाननि विषै नरक वा तिर्यच दोय आयु बधै है । बहुरि केई अगले स्थाननि विषै नरक, तिर्यच मनुष्य तीन आयु बंधै है । सो तीन लेश्या के स्थान विषै एक, दोय, तीन का अंक लिखना । बहुरि तिस ही पृथ्वी के भेद समान शक्तिस्थान विषै केई कृष्ण नील, कपोत, पीत इनि च्यारि लेश्या के स्थान है । केइक कृष्णादि पद्म लेश्या पर्यत पच के स्थान है । केइक कृष्णादिक शुक्ल लेश्या पर्यत षट्लेश्या के स्थान है । सो इन तीनू ही जायगा नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव सबंधी च्यार्यो ही आयु बधै है, सो तीनों जायगा च्यारि-च्यारि का अंक लिखना ।

धूलिगछक्कट्ठाणे, चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं ।
पणचदुठाणे देवं, देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥२६४॥

धूलिगषट्कस्थाने, चतुरायूंषि त्रिकद्विकं चोपरितनम् ।
पंचचतुर्थस्थाने देवं देवं शून्यं च तृतीयस्थाने ॥२९४॥

टीका - बहुरि पूर्वोक्त स्थान तै अनंतानंतगुणा घाटि संक्लेश लीए धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषै केई कृष्णादि शुक्ललेश्या पर्यंत षटलेश्या के स्थान हैं । तिनि विषै केई स्थाननि विषै तौ नरकादिक च्यार्यो आयु बंधे है । केई अगले स्थाननि विषै नरकायु बिना तीन आयु ही बंधै है । केई अगले स्थाननि विषै मनुष्य, देव दोय ही आयु बंधै है । सो तहां च्यारि, तीन, दोय के अंक लिखने । बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषै केई कृष्ण लेश्या बिना पच लेश्या के स्थान है । केई कृष्ण नील बिना च्यारि लेश्या के स्थान है । इनि दोऊ जायगा एक देवायु ही बंधै है । सो दोऊ जायगा एक-एक का अंक लिखना । बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषै केई पीतादि तीन शुभलेश्या संबंधी स्थान है । तिनिविषै केई स्थाननि विषै तौ एक देवायु ही बधै है, तहा एक का अक लिखना । बहुरि केई

अगले स्थान तीव्र विशुद्धता को लीए है, तहा किसी ही आयु का बंध न हो है, सो तहां शून्य लिखना ।

सुण्णं दुगइगिठाणे, जलम्हि सुण्णं असंखभजिदकमा ।
चउ-चोदस-वीसपदा, असंखलोगा हु पत्तेयं ॥२९५॥

शून्यं द्विकैकस्थाने, जले शून्यमसंख्यभजितक्रमाः ।
चतुश्चतुर्दशविंशतिपदा असंख्यलोका हि प्रत्येकम् ॥२९५॥

टीका – बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषै केई स्थान पद्म, शुक्ल दोय लेश्या सबधी है । केई स्थान एक शुक्ल लेश्या संबंधी है । सो इनि दोऊ ही जायगा किसी ही आयु का बंध नाही; सो दोऊ जायगा शून्य लिखना । बहुरि तातै अनंतगुणी बधती विशुद्धता लीएं जल रेखा समान शक्तिस्थान के सर्व स्थान केवल शुक्ल लेश्या संबंधी है । तिनि विषैं किसी ही आयु का बंध नाही हो है । सो तहां शून्य लिखना । जातै अति तीव्र विशुद्धता आयु के बंध का कारण नाही हैं; असैं कषायनि के शक्तिस्थान च्यारि कहे । अर लेश्या स्थान चौदह कहे । अर आयु के बधने के वा न बंधने के स्थान बीस कहे । ते सर्व ही स्थान असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण, असख्यात लोक प्रमाण जानने । परन्तु उत्कृष्ट स्थान तै लगाइ जघन्य स्थान पर्यंत असंख्यात गुणे घाटि जानने । असख्यात के भेद घने है । तातै सामान्यपनै सर्व ही असख्यात लोक प्रमाण कहे । सोई कहिए है – सर्व कषायनि के उदयस्थान असंख्यातलोक प्रमाण है । तिनिकौ यथा योग्य असख्यात लोक का भाग दीजिए, तिनिविषै एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्ति संबंधी उदय स्थान है । ते भी असख्यात लोक प्रमाण बहुरि जो वह एक भाग अवशेष रह्या, ताकौ असंख्यात लोक का भाग दीए एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्ति संबंधी उदयस्थान है । ते भी असख्यात लोक प्रमाण है । बहुरि जो एक भाग अवशेष रह्या, ताकौ असख्यात लोक का भाग दीए, एक का भाग बिना अवशेष भाग प्रमाण धूलि रेखा समान अजघन्य शक्तिस्थान सबधी उदयस्थान है । ते भी असख्यात लोक प्रमाण है । बहुरि अवशेष एक भाग रह्या, तीहि प्रमाण जल रेखा समान जघन्य शक्ति संबधी उदय स्थान है, ते भी असंख्यात लोक प्रमाण है ।

असें च्यारि शक्तिस्थान विषै उदयस्थान का प्रमाण कह्या। अब चौदह लेश्या स्थाननि विषै उदयस्थाननि का प्रमाण कहिए है – पहिलै कृष्ण लेश्या स्थाननि विषै जेते शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्तिस्थान विषै उदयस्थान है। ते-ते सर्व तिस उत्कृष्ट शक्ति कौ प्राप्त कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान तै लगाइ यथा-योग्य कृष्ण लेश्या के मध्य स्थान पर्यंत षट्स्थानपतित सक्लेश-हानि लीए, असख्यात-लोकमात्रस्थान है; ते उत्कृष्ट शक्ति के स्थान समान जानने।

बहुरि इनि तै असख्यात गुणे घाटि पृथ्वी भेद समान शक्तिस्थान विषै प्राप्त कृष्ण लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है, जातै ते स्थान पृथ्वी भेद समान शक्ति स्थान विषै जेते उदय स्थान है, तिनिकौ यथा योग्य असख्यात लोक का भाग दीएं एक भाग बिना बहुभाग मात्र है।

बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्ण, नील दोय लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण ते तिस अवशेष एक भाग कौ यथा योग्य असख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र है। एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र प्रमाण की बहुभाग संज्ञा जाननी।

बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहा ही कृष्ण, नील, कपोत तीन लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है; ते तिस अवशेष एक भाग कौ योग्य असंख्यात लोक का भाग का दीए, बहुभाग मात्र है।

बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि तहा ही कृष्णादि च्यारि लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण है। ते अवशेष एक भाग कौ योग्य असख्यात लोक का भाग दीयै बहुभाग मात्र है।

बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्णादि पच लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते अवशेष एक भाग कौ योग्य असख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितै असंख्यात लोक गुणे घाटि तहा ही कृष्णादि छह लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते तिस अवशेष एक भाग मात्र है। इहा पूर्व स्थान तै बहुभागरूप असख्यात लोकमात्र गुणकार कह्या, तातै असख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषै प्राप्त कृष्णादि छह लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण

है। ते धूलि रेखा समान शक्तिस्थान सबंधी सर्व स्थाननि के प्रमाण कौं योग्य असं-ख्यात लोक का भाग दीएं, एकभाग बिना बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितें असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्ण रहित पंच लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते तिस अवशेष एक भाग कौ योग्य असंख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितें असंख्यात गुणे घाटि तहा ही कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते तिस अवशेष एकभाग कौं योग्य असख्यातलोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितें असख्यात गुणे घाटि, तहा ही तीन शुभ लेश्या के स्थान असख्यात लोक मात्र है। ते अवशेष एक भाग कौ योग्य असख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितें असंख्यात गुणे घाटि, पीत रहित दोय शुभ लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते तिस एक भाग को योग्य असख्यात लोक का भाग दीए, बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनतें असख्यात गुणे घाटि तहा ही केवल शुक्ल लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते तिस अवशेष एकभाग मात्र जानने। इहा बहुभाग रूप असंख्यात लोक मात्र गुणकार घट्या; तातें असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितें असख्यात गुणे घाटि जल रेखा समान शक्ति विषै प्राप्त सर्व शुक्ल लेश्या के स्थान असख्यात लोक प्रमाण है। ते जल रेखा शक्ति विषै प्राप्त स्थाननि का प्रमाणमात्र है। इहा धूलि रेखा समान शक्ति के सर्व स्थाननि विषै जे केवल शुक्ल लेश्या के स्थान कहे, तहा भागहार अधिक है। परन्तु गुणकारभूत असख्यात लोक का तहां बहुभाग है। इहा एक भाग है। तातें असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। अब आयु के बध-अबन्ध के बीस स्थान, तिनि विषै उदय स्थाननि का प्रमाण कहिए है -

प्रथम शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्ति विषै प्राप्त कृष्ण लेश्या के स्थान, तिनि विषै कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान तें लगाइ, असख्यात लोक प्रमाण आयु के अबन्ध स्थान है। ते उत्कृष्ट शक्ति विषै प्राप्त सर्व स्थाननि का प्रमाण कौ असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र है। बहुरि तिनितें असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही नरकायु बन्धने कौ कारण असंख्यात लोक प्रमाण स्थान है। ते तिस अवशेष एक भाग मात्र है। पूर्वै बहुभाग इहा एक भाग तातें असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितें असंख्यात गुणे घाटि पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्ति विषै प्राप्त कृष्ण लेश्या के पूर्वोक्त सर्व स्थान, ते नरकायु बन्ध कौ कारण असख्यात लोक

प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, तहा ही कृष्णनील लेश्या के पूर्वोक्त सर्व स्थान ते नरकायु बन्ध कौ कारण असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि तहा ही कृष्णादि तीनि लेश्या के स्थाननि विषै नरकायु बन्ध कौ कारण स्थान, ते तिन कृष्णादि तीन लेश्या स्थाननि के प्रमाण कौ योग्य असंख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग मात्र असख्यात लोकप्रमाण है। बहुरि तिनतैं असख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि तीन लेश्या के स्थाननि विषै नरक, तिर्यंच आयु के बन्ध कौ कारण स्थान, ते तिस अवशेष एक भाग कौ योग्य असख्यात लोक का भाग दीए, बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहा कृष्णादि तीन लेश्या के स्थाननि विषै नरक, तिर्यच, मनुष्य आयुबन्ध के कारण स्थान, ते अवशेष एक भाग मात्र असख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यातगुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि च्यारि लेश्या के स्थान, सर्व ही च्यार्यों आयुबन्ध के कारण, ते असख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यातगुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि पच लेश्या के स्थान, सर्व ही च्यार्यों आयुबन्ध के कारण, ते असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, तहा ही पूर्वोक्त कृष्णादि छहौ लेश्या के स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबन्ध के कारण, ते असंख्यात लोक प्रमाण है। पूर्व स्थान विषै गुणकार बहुभाग था, इहा एक भाग रह्या, तातै असख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनतै असख्यात गुणे घाटि, धूलि रेखा समान शक्ति विषै प्राप्त षट्लेश्या स्थाननि विषै च्यार्यो आयुबन्ध के कारण स्थान, ते तिन अजघन्य शक्ति विषै प्राप्त षट्लेश्या स्थाननि के प्रमाण कौ असंख्यात लोक का भाग दीए, बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहा ही षट्लेश्या के स्थाननि विषै नरक बिना तीन आयुबन्ध के कारण स्थान, ते तिस अवशेष एकभाग कौ असख्यात का भाग दीए, बहुभागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, तहा ही षट्लेश्या के स्थान विषै मनुष्य देवायु बन्ध के कारण स्थान, ते तिस अवशेष एकभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण है। इहा पूर्वै बहुभाग थे, इहा एक भाग है। तातै असख्यात गुणा घाटि कह्या। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहा ही पूर्वोक्त कृष्ण विना पच लेश्या के स्थान सर्व ही देवायु के बन्ध के कारण है। ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहा ही पूर्वोक्त कृष्ण, नील रहित च्यारि लेश्या के

स्थान सर्व ही देवायु बन्ध कौ कारण है। ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितै असख्यात गुणे घाटि, तहां ही शुभ तीन लेश्या के स्थाननि विषै देवायु बन्ध कौ कारण स्थान, ते तिस अजघन्य शक्ति विषै प्राप्त त्रिलेश्या स्थाननि का प्रमाण कौ योग्य असख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र असख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितै असख्यात गुणै घाटि, तहां ही शुभ तीन लेश्या के स्थाननि विषै किसी ही आयु बन्ध कौ कारण नाहीं; अैसे स्थान तिस अवशेष एक भागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, तहा ही पूर्वोक्त पद्म शुक्ल दोय लेश्या के स्थान सर्व ही आयु बन्ध कौ कारण नाही। ते असंख्यात लोक प्रमाण है। यातै पूर्व स्थान विषै भागहार असख्यात गुणा घटता है। तातै असख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणै घाटि, तहां ही पूर्वोक्त शुक्ल लेश्या के स्थान सर्व ही आयुबन्ध कौ कारण नाही। ते असंख्यात लोक प्रमाण है। पूर्वै बहुभाग का गुणकार था, इहां एक भाग का गुणकार भया। तातै असंख्यात गुणा घटता कह्या है। बहुरि तिनितै असंख्यात गुणे घाटि, पूर्वोक्त जल रेखा समान शक्ति विषै प्राप्त शुक्ल लेश्या के स्थान, सर्व ही किसी ही आयु बन्ध कौं कारण नाही। ते असंख्यात लोक प्रमाण है। पूर्व स्थान विषै जे भागहार कहें, तिनतै तिस ही भागहार का गुणकार असंख्यात गुणा है, तातै असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। अैसै च्यारि पद चौदह पद बीस पद क्रम तै असख्यात गुणा घाटि कहे, तथापि असख्यात के बहुभेद है। तातै सामान्यपनै सबनि कौ असंख्यात लोक प्रमाण कहे। विशेषपनै यथासभव असख्यात का प्रमाण जानना। अैसै ही भागहार विषै भी यथासभव असख्यात का प्रमाण जानना।

आगै श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव, तीन गाथानि करि कषाय-मार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है –

पुह पुह कसायकालो, णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो।
लोहादी संखगुणो, देवेसु य कोहपहुदीदो ॥२९६॥

पृथक् पृथक् कषायकालः, निरये अंतर्मुहूर्तपरिमाणः।
लोभादिः संख्यगुणः देवेषु च क्रोधप्रभृतितः ॥२९६॥

काषायनि के शक्तिस्थान च्यारि, लेश्यास्थान चौदह, आयुबंधाबंधस्थान बीस, तिनिका यंत्र ।

शक्तिस्थान ४	शिलाभेद समान १		पृथ्वी भेद समान १								धूलिरेखासमान १									जलरेखा समान १
लेश्यास्थान १४	१ कृष्ण		१ कृष्ण	२ कृष्णादि	३ कृष्णादि			४ कृष्णादि	५ कृष्णादि	६ कृष्णादि	६ कृष्णादि			५ कृष्ण विना	४ कृष्ण नील विना	३ पीतादि		२ पद्म शुक्ल	१ शुक्ल	१ शुक्ल
आयुबंधाबंध स्थान २०	० अबंध	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	२ नरकतिर्यंचायु	३ नरकतिर्यंचमनुष्यायु	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व सर्व	३ मनुष्यदेवायुतिर्यंचायु	२ मनुष्यदेवायु	१ देवायु	१ देवायु	१ देवायु	० अबंध	० अबंध	० अबंध	० अबंध

टीका – नरक गति विषै नारकीनि कै लोभादि कषायनि का उदय काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । तथापि पूर्व-पूर्व कषाय तै पिछले-पिछले कषाय का काल संख्यात गुणा है । अंतर्मुहूर्त के भेद घने, तातै हीनाधिक होतै भी अंतर्मुहूर्त ही कहिए । सोई कहिए है – सर्व तै स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण लोभ कषाय का काल है । यातै संख्यात गुणा माया कषाय का काल है । यातै संख्यात गुणा मान कषाय का काल है । यातै संख्यात गुणा क्रोध कषाय का काल है ।

बहुरि देव गति विषैं क्रोधादि कषायनि का काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र है । तथापि उत्तरोत्तर संख्यात गुणा है । सोई कहिए है – स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण तौ क्रोध कषाय का काल है । तातै संख्यात गुणा मान कषाय का काल है । तातै संख्यात गुणा माया कषाय का काल है । तातै संख्यात गुणा लोभ कषाय का काल है ।

भावार्थ – नरक गति विषै क्रोध कषायरूप परिणति बहुतर हो है । और कषायनिरूप क्रम तै स्तोक रहै है ।

देव गति विषै लोभ कषायरूप परिणति बहुतर रहै हैं । और कषायनिरूप क्रम तै स्तोक-स्तोक रहै है ।

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणो वि संगुणिदे ।
सगसगगुणगारेहिं य, सगसगरासीण परिमाणं ॥२९७॥

सर्वसमासेनावहितस्वकस्वकराशौ पुनरपि संगुणिते ।
स्वकस्वकगुणकारैश्च, स्वकस्वकराशीनां परिमाणम् ॥२९७॥

टीका – सर्व च्यार्यो कषायनि का जो काल कह्या, ताके जेते समय होंहि, तिनिका समास कहिए, जोड दीएं, जो परिमाण आवै, ताका भाग अपनी-अपनी गति संबंधी जीवनि के प्रमाण कौं दीएं, जो एक भाग विषै प्रमाण होइ, ताहि अपना-अपना कषाय के काल का समयनि के प्रमाणरूप गुणकार करि गुणै, जो-जो परिमाण होइ, सोई अपना-अपना क्रोधादिक कषाय संयुक्त जीवनि का परिमाण जानना । अपि शब्द समुच्चय वाचक है; तातै नरक गति वा देव गति विषै ऐसै ही करना । सोई दिखाइए है –च्यार्यो कषायनि का काल के समयनि का जोड दीएं,

जो परिमाण होइ, तितने काल विषै जो नरक गति विषै जीवनि का जो परिमाण कह्या, तितने सर्व जीव पाइए, तौ लोभ कषाय के काल का समयनि का जो परिमाण होइ है. तितने काल विषैं केते जीव पाइए ? अैसैं त्रैराशिक कीएं, प्रमाणराशि सर्वकषायनि का काल, फलराशि सर्व नारकराशि, इच्छाराशि लोभकषाय का काल तहां प्रमाणराशि का भाग फलराशि कौं देइ, इच्छाराशि करि गुणैं जो लब्धराशि का परिमाण आवै, तितने जीव लोभकषाय वाले नरक गति विषै जानने । बहुरि अैसैं ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छाराशि मायादि कषायनि का काल कीए, लब्धराशि मात्र अनुक्रमतैं मायावाले, मानवाले, क्रोधवालें जीवनि का परिमाण नरक गति विषै जानना ।

इहां दृष्टांत – जैसैं लोभ का काल का प्रमाण एक (१), माया का च्यारि (४), मान का सोलह (१६), क्रोध का चौसठि (६४) सब का जोड दीए पिच्यासी भए । नारकी जीवनि का परिमाण सतरा सै (१७००), ताहि पिच्यासी का भाग दीएं, पाए बीस(२०), ताकौ एक करि गुणें बीस(२०)हुवा, सो लोभ कषायवालों का परिमाण है । च्यारि करि गुणें असी (८०) भए सो मायावालों का परिमाण है । सोला करि गुणें तीन सौ बीस (३२०) हुवा सो, मानवालों का परिमाण है चौसठि करि गुणें बार सै असी (१२८०) भए सो, क्रोधवालों का परिमाण है; अैसें दृष्टांत करि यथोक्त नरक गति विषै जीव कहे । अैसैं ही देव गति विषै जेता जीवनि का परिमाण है, ताहि सर्व कषायनि के काल का जोड्या हूवा समयनि का परिमाण का भाग दीए, जो परिमाण आवै, ताहि अनुक्रमतै क्रोध, मान, माया, लोभ का काल का परिमाण करि गुणें, अनुक्रमतै क्रोधवाले, मानवाले, मायावाले, लोभवाले जीवनि का परिमाण देव गति विषै जानना ।

णरतिरिय लोह-माया-कोहो माणो बिइंदियादिव्व ।
आवलिअसंखभज्जा, सगकालं वा समासेज्ज ॥२९८॥

नरतिरश्चोः लोभमायाक्रोधो मानो द्वींद्रियादिवत् ।
आवल्यसंख्यभाज्याः, स्वककालं वा समासाद्य ॥२९८॥

टीका – मनुष्य-तिर्यंच गति विषैं लोभ, माया, क्रोध, मानवाले जीवनि की संख्या पूर्वै इंद्रिय-मार्गणा का अधिकार विषै जैसैं बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री विषैं

जीवनि की संख्या '**बहु भागे समभागो**' इत्यादि गाथा करि कही थी । तैसे इहां भी संख्या का साधन करना । सोई कहिये है – मनुष्यगति विषै जो जीवनि का परिमाण है, तामें कषाय रहित मनुष्यनि का प्रमाण घटाए, जो अवशेष रहै, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, तहा एक भाग जुदा राखि, अवशेष बहुभाग का प्रमाण रह्या, ताके च्यारि भाग करि च्यार्यों कषायनि के स्थाननि विषैं समान देने । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौ लोभ कषाय के स्थान समान भाग विषैं जो प्रमाण था, तामैं जोडैं, जो परिमाण होइ, तितने लोभकषाय वाले मनुष्य जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौ माया कषाय के स्थान समान भाग विषै जो परिमाण था, तामैं मिलाएं, जो परिमाण होइ, तितने मायाकषाय वाले मनुष्य जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहै, तिनिकौ क्रोधकषाय के स्थान समान भाग विषै जो परिमाण था, तिस विषै मिलाएं, क्रोधकषाय वाले मनुष्यनि का परिमाण होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग का जेता परिमाण होइ, ताकौ मानकषाय के स्थान समान भाग विषै जो परिमाण था, तामै मिलाएं, मानकषाय वाले मनुष्यनि का परिमाण होइ, असै ही तिर्यंच गति विषै जानना । विशेष इतना जो वहां मनुष्य गति के जीवनि का परिमाण विषै भाग दीया था । इहां तिर्यंच गति के जीवनि का जो देव, नारक, मनुष्यराशि करि हीन सर्व संसारी जीवराशि मात्र परिमाण, ताकौं भाग देना; अन्य सर्व विधान तैसै ही जानना । असै कषायनि विषै तिर्यंच जीवनि का परिमाण जानिए । अथवा अपना-अपना कषायनि का काल की अपेक्षा जीवनि की संख्या जानिए, सो दिखाइए है । च्यार्यौ कषायनि का काल के समयनि का जो अंतर्मुहूर्त मात्र परिमाण है, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तहा एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष के च्यारि भाग करि, च्यारौ जायगा समान दीजिए । बहुरि अवशेष एक भाग कौ आवली का असंख्यातवा भाग का भाग देइ, एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौ समान भाग विषै जो परिमाण था, तामें मिलाए, लोभकषाय के काल का परिमाण होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग को तैसे भाग देइ, एक भाग बिना अवशेष बहुभाग समान भाग का प्रमाण विषै मिलाएं, माया का काल होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौ तैसै भाग

देइ, एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग समान भाग संबंधी परिमाण विषैं मिलाएं क्रोध का काल होइ। बहुरि जो अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ समान भाग संबंधी परिमाण विषैं मिलाएं, मानकषाय का काल होइ।

अब इहां त्रैराशिक करना – जो च्यारि कषायनि के काल का परिमाण विषैं सर्व मनुष्य पाइए, तौ लोभ कषाय का काल विषै केते मनुष्य पाइए ?

इहां प्रमाणराशि च्यारों कषायनि का समुच्चयरूप काल का परिमाण अर फलराशि मनुष्य गति के जीवनि का परिमाण अर इच्छाराशि लोभ कषाय के काल का परिमाण। तहां फलराशि कौं इच्छाराशि करि गुणि, प्रमाण राशि का भाग दीएं, जो लब्धराशि का प्रमाण आवै, तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। ऐसै ही प्रमाण फलराशि पूर्वोक्त कीएं, माया क्रोध मान काल कौ इच्छाराशि कीए, लब्धराशि मात्र मायावाले वा क्रोधवाले वा मानवाले मनुष्यनि की संख्या जाननी। बहुरि याही प्रकार तिर्यंच गति विषैं भी लोभवाले, मायावाले, क्रोधवाले, मानवाले जीवनि की संख्या का साधन करना। विशेष इतना जो उहां फलराशि मनुष्यनि का परिमाण था, इहां फलराशि तिर्यंच जीवनि का परिमाण जानना। अन्य विधान तैसें ही करना। ऐसै कषायमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या है।

इति आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नाम भाषाटीका विषै जीवकाड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनि विषैं कषायमार्गणा प्ररूपणा नाम ग्यारमा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥११॥

बारहवां अधिकार : ज्ञानमार्गणाधिकार

मंगलाचरण

वंदौ वासव पूज्यपद, वास पूज्य जिन सोय ।
गर्भादिक में पूज्य जो, रत्न द्रव्य तैं होय ।।

आगै श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञान मार्गणा का प्रारंभ करैं है । तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं, ज्ञान का सामान्य लक्षण कहै है –

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे[1] ।
पच्चक्खं च परोक्खं, अणेण णाणे त्ति णं बेंति ।।२९९।।

जानाति त्रिकालविषयान्, द्रव्यगुणान् पर्यायांश्च बहुभेदान् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ।।२९९।।

टीका – त्रिकाल संबंधी हुए, हों है, होहिगे असे जीवादि द्रव्य वा ज्ञानादि गुण वा स्थावरादि पर्याय नाना प्रकार है । तहां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ए द्रव्य है । बहुरि ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, सुख, वीर्य आदि वा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि वा गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व आदि गुण हैं । बहुरि स्थावर, त्रस आदि वा अणु, स्कंधपना आदि वा अन्य अर्थ, व्यंजन आदि भेद लीए अनेक पर्याय है । तिनकौं प्रत्यक्ष वा परोक्ष जीव नामा पदार्थ, इस करि जानै है, तातै याकौ ज्ञान कहिए । **'ज्ञायते अनेनेति ज्ञानं'** असी ज्ञान शब्द की निरुक्ति जाननी । इहा जाननरूप क्रिया का आत्मा कर्ता, तहा करणस्वरूप ज्ञान, अपने विषयभूत अर्थनि का जाननहारा जीव का गुण है – असै अरहंतादिक कहै है । असाधारण कारण का नाम करण है । बहुरि यहु सम्यग्ज्ञान है; सोई प्रत्यक्ष वा परोक्षरूप प्रमाण है । जो ज्ञान अपने विषय कौ स्पष्ट विशद जानै, ताकौ प्रत्यक्ष कहिए । जो अपने विषय कौ अस्पष्ट - अविशद जानै, ताकौ परोक्ष कहिए । सो इस प्रमाण का स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल वा लक्षण बहुरि ताके अन्यथा वाद

---

१ षट्खंडागम धवला पुस्तक १, गाथा स. ९१, पृष्ठ १४५ ।
पाठभेद–तिकात्तविसए–तिकात्तसहित–णाणे णाण ।

का निराकरण वा स्याद्वाद मत के प्रमाण का स्थापन विशेषपनै जैन के तर्कशास्त्र है, तिनि विषै विचारना ।

इहां अहेतुवादरूप आगम विषैं हेतुवाद का अधिकार नाही । तातै सविशेष न कह्या । हेतु करि जहां अर्थ कौ दृढ कीजिए ताका नाम हेतुवाद है, सो न्यायशास्त्रनि विषै हेतुवाद है । इहां तो जिनागम अनुसारि वस्तु का स्वरूप कहने का अधिकार जानना ।

आगें ज्ञान के भेद कहैं हैं —

पंचेव होंति णाणा, मदि-सुद-ओही-मणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणं हवे खइयं ।।३००।।

पंचैव भवंति ज्ञानानि, मतिश्रुतावधिमनश्च केवलम् ।
क्षायोपशमिकानि चत्वारि, केवलज्ञानं भवेत् क्षायिकम् ।।३००।।

टीका — मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए सम्यग्ज्ञान पंच ही है; हीन अधिक नाहीं । यद्यपि संग्रहनयरूप द्रव्यार्थिक नय करि सामान्यपनै ज्ञान एक ही है । तथापि पर्यायार्थिक नय करि विशेष कीएं पंच भेद ही हैं । तिनि विषैं मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय ए च्यारि ज्ञान क्षायोपशमिक हैं ।

जातै मतिज्ञानावरणादिक कर्म वा वीर्यान्तराय कर्म, ताके अनुभाग के जे सर्वघातिया स्पर्धक हैं; तिनिका उदय नाही, सोई क्षय जानना । बहुरि जे उदय अवस्था कौ न प्राप्त भए, ते सत्तारूप तिष्ठै है, सोई उपशम जानना । उपशम वा क्षय करि उपजै, ताकौ क्षयोपशम कहिए अथवा क्षयोपशम है प्रयोजन जिनिका, ते क्षायोपशमिक कहिए । यद्यपि क्षायोपशमिक विषै तिस आवरण के देशघातिया स्पर्धकनि का उदय पाइए है । तथापि वह तिस ज्ञान का घात करने कौ समर्थ नाही है; तातै ताकी मुख्यता न करी ।

याका उदाहरण कहिए है — अवधिज्ञानावरण कर्म सामान्यपनै देशघाती है । तथापि अनुभाग का विशेष कीएं, याके केई स्पर्धक सर्वघाती है; केई स्पर्धक देशघाती है । तहां जिनिकै अवधिज्ञान किछू भी नाहीं, तिनिकैं सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय जानना । बहुरि जिनिके अवधिज्ञान पाइए है अर आवरण उदय पाइए है; तहां

देशघाती स्पर्धकनि का उदय जानना। बहुरि केवलज्ञान क्षायिक ही है, जातें केवलज्ञानावरण, वीर्यातराय का सर्वथा नाश करि केवलज्ञान प्रकट हो है। क्षय होतें उपज्या वा क्षय है प्रयोजन जाका, ताकौं क्षायिक कहिए। यद्यपि सावरण अवस्था विषै आत्मा कै शक्तिरूप केवलज्ञान है, तथापि व्यक्तरूप आवरण के नाश करि ही है, तातै व्यक्तता की अपेक्षा केवलज्ञान क्षायिक कह्या; जातै व्यक्त भएं ही कार्य सिद्धि संभवै है।

आगे मिथ्याज्ञान उपजने का कारण वा स्वरूप वा स्वामित्व वा भेद कहै है-

अण्णाणतियं होदि हु, सण्णाणतियं खु मिच्छ अणउदये।
णवरि विभागं णाणं, पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥३०१॥

अज्ञानत्रिकं भवति खलु, सज्ज्ञानत्रिकं खलु मिथ्यात्वानोदये।
नवरि विभंगं ज्ञानं, पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्ण एव ॥३०१॥

टीका – जे सम्यग्दृष्टी कैं मति, श्रुति, अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान है; संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त वा निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव कै विशेष ग्रहणरूप ज्ञेयाकार सहित उपयोग रूप है लक्षण जिनिका असें है; तेई तीनों मिथ्यात्व वा अनंतानुबंधी कोई कषाय के उदय होतें तत्त्वार्थ का अश्रद्धान रूप परिणया जीव कै तीनों मिथ्याज्ञान हो है। कुमति, कुश्रुति, विभंग ए नाम हो है। **णवरि** असा प्राकृत भाषा विषै विशेष अर्थ कौ लीए अव्यय जानना। सो विशेष यहु – जो अवधि ज्ञान का विपर्ययरूप होना सोई विभंग कहिए। सो विभंग अज्ञान सैनी पंचेंद्री पर्याप्त ही कै हो है। याही तै कुमति, कुश्रुति, एकेंद्रिय आदि पर्याप्त अपर्याप्त सर्व मिथ्यादृष्टी जीवनि कै अर सासादन गुणस्थानवर्ती सर्व जीवनि कै संभवै है।

आगे सम्यग्दृष्टि नामा तीसरा गुणस्थान विषै ज्ञान का स्वरूप कहै है –

मिस्सुदये सम्मिस्सं, अण्णाणतियेण णाणतियमेव।
संजमविसेससहिए, मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥३०२॥

मिश्रोदये संमिश्रं, अज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव।
संयमविशेषसहिते, मनःपर्ययज्ञानमुद्दिष्टम् ॥३०२॥

टीका – मिश्र कहिए सम्यग्मिथ्यात्व नामा मोहनीय कर्म की प्रकृति, ताके उदय होतै, तीनों अज्ञान करि मिल्या तीनों सम्यग्ज्ञान इहा हो है, जातै जुदा कीया जाता नाही, तातै सम्यग्मिथ्यामति, सम्यग्मिथ्याश्रुत, सम्यग्मिथ्या अवधि ऐसे इहां नाम हो है। जैसें इहां एक काल विषै सम्यग्रूप वा मिथ्यारूप मिल्या हुवा श्रद्धान पाइए है। तैसे ही ज्ञानरूप वा अज्ञानरूप मिल्या हुवा ज्ञान पाइए है। इहा न तौ केवल सम्यग्ज्ञान ही है, न केवल मिथ्याज्ञान है, मिथ्याज्ञान करि मिल्या सम्यग्ज्ञान-रूप मिश्र जानने।

बहुरि मन पर्यय ज्ञान विशेष सयम का धारक छठा गुणस्थान तै बारहवा गुणस्थान पर्यंत सात गुणस्थानवर्ती तप विशेष करि वृद्धिरूप विशुद्धताके धारी महा-मुनि, तिन ही कै पाइए है; जातै अन्य देशसयतादि विषैं तैसा तप का विशेष न संभवै है।

आगे मिथ्याज्ञान का विशेष लक्षण तीन गाथानि करि कहै है –

विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादिसु विणुवएस-करणेण।
जा खलु पवद्दए मइ, मइ-अण्णाणं त्ति णं बेंति ॥३०३॥[1]

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन।
या खलु प्रवर्तते मतिः, मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥३०३॥

टीका – परस्पर वस्तु का संयोग करि मारने की शक्ति जिस विषै होइ ऐसा तैल, कर्पूरादिक वस्तु, सो विष कहिए।

बहुरि सिंह, व्याघ्रादि क्रूर जीवनि के धारन के अर्थि जाके अभ्यतर छैला आदि रखिए। अर तिस विषै तिस क्रूर जीव कौ पाव धरते ही किवाड जुडि जाय, ऐसा सूत्र की कल करि संयुक्त होइ, काष्ठादिक करि रच्या हुवा हो है, सो यन्त्र कहिए।

बहुरि माछला, काछिवा, मूसा, कोल इत्यादिक जीवनि कै पकडने के निमित्त काष्ठादिकमय बने, सो कूट कहिए।

बहुरि तीतर, लवा, हिरण इत्यादि जीवनि के पकड़ने के निमित्त फद की लीए जो डोरि का जाल बनै, सो पीजर कहिए।

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १७९, पृष्ठ ३६०।

बहुरि हाथी, ऊंट आदि के पकड़ने निमित्त खाडा के ऊपरि गाठि का विशेष लीएं जेवरा की रचनारूप विशेष, सो बंध कहिए ।

आदि शब्द करि पंखीनि का पांख लगने निमित्त ऊंचे दण्ड के ऊपरि चिगटास लगावना, सो बंध वा हरिणादिक का सींग कै अग्रभाग सूत्र की गांठि देना इत्यादि विशेष जानने । असैं जीवनि के मारणे, बांधने के कारणरूप कार्यनि विषैं अन्य के उपदेश विना ही स्वयमेव बुद्धि प्रवर्तै; सो कुमति ज्ञान कहिए ।

उपदेश तै प्रवर्तै तो कुश्रुत ज्ञान हो जाइ । तातै विना ही उपदेश असा विचाररूप विकल्प लीएं हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह का कारण आर्तरौद्र ध्यान कौ कारण शल्य, दंड, गारव आदि अशुभोपयोगों का कारण जो मन, इंद्रिय करि विशेष ग्रहणरूप मिथ्याज्ञान प्रवर्तै; सो मति अज्ञान सर्वज्ञदेव कहै है ।

आभीयमासुरक्खं, भारह-रामायणादि-उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया, सुय-अण्णाणं त्ति णं बेंति ॥३०४॥[1]

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः ।
तुच्छा असाधनीयाः श्रुताज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥३०४॥

टीका – **आभीताः** कहिए (समतपनै) भयवान, जे चौरादिक, तिनिका शास्त्र सो आभीत है । बहुरि असु जे प्राण, तिनिंकी चौरादिक तै रक्षा जिनि तै होइ, असे कोटपाल, राजादिक, तिनिका जो शास्त्र सो असुरक्ष हैं । बहुरि कौरव पांडवो का युद्धादिक वा एक भार्या के पंच भर्ता इत्यादिक विपरीत कथन जिस विषैं पाइए, असा शास्त्र सो भारत है । बहुरि रामचंद्र कै बानरो की सेना, रावण राक्षस है, तिनिका परस्पर युद्ध होना इत्यादिक अपनी इच्छा करि रच्या हुवा शास्त्र, सो रामायण है । आदि शब्द तै जो एकातवाद करि दूषित अपनी इच्छा के अनुसारि रच्या हुवा शास्त्र, जिनिविषै हिंसारूप यज्ञादिक गृहस्थ का कर्म है; जटा धारण, त्रिदड धारणादिरूप तपस्वी का कर्म है, सोलह पदार्थ है; वा छह पदार्थ है; वा भावन, विधि, नियोग, भूत ए च्यारि है; वा पचीस तत्त्व है; वा अद्वैत ब्रह्म का स्वरूप है वा सर्व शून्य है इत्यादि वर्णन पाइए है; ते शास्त्र 'तुच्छाः' कहिए परमार्थ

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८०, पृष्ठ ३६० ।

तें रहित है । बहुरि 'असाधनीया' कहिए प्रमाण करने योग्य नाही । याही तै संत पुरुषनि कौ आदरने योग्य नाही । असै शास्त्राभ्यासनि तै भया जो श्रुतज्ञान की सी आभासा लीएं कुज्ञान, सो श्रुत अज्ञान कहिए । जातै प्रमाणीक इष्ट अर्थ तै विपरीत अर्थ याका विषय हो है । इहां मति, श्रुत अज्ञान का वर्णन उपदेश लीए किया है ।

अर सामान्यपनै तौ स्व-पर भेदविज्ञान रहित इंद्रिय, मन जनित जानना, सो सर्व कुमति, कुश्रुत है ।

विवरीयमोहिणाणं, खओवसमियं च कम्मबीजं च ।
वेभंगो त्ति पउच्चइ, समत्तणाणीण समयम्हि ॥३०५॥[१]

विपरीतमवधिज्ञानं, क्षायोपशमिकं च कर्मबीजं च ।
विभंग इति प्रोच्यते, समाप्तज्ञानिनां समये ॥३०५॥

टीका – मिथ्यादृष्टी जीवनि कैं अवधिज्ञानावरण, वीर्यातराय के क्षयोपशम तै उत्पन्न भया; असा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लीएं रूपी पदार्थ है विषय जाका, असा आप्त, आगम, पदार्थनि विषै विपरीत का ग्राहक, सो विभंग नाम पावै है । **वि** कहिए विशिष्ट जो अवधिज्ञान, ताका **भंग** कहिए विपरीत भाव, सो विभंग कहिए; सो तिर्यंच-मनुष्य गति विषै तौ तीव्र कायक्लेशरूप द्रव्य सयमादिक करि उपजै है; सो गुणप्रत्यय हो है ।

बहुरि देवनरक गति विषैं भवप्रत्यय हो है । सो सब ही विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबध का बीज कहिए कारण हैं । **चकार** तै कदाचित् नारकादिक गति विषै पूर्वभव सम्बन्धी दुराचार के दुःख फल कौं जानि, कही सम्यग्दर्शनज्ञानरूप धर्म का भी बीज हो है; असा विभंगज्ञान, समाप्तज्ञानी - जो सपूर्ण ज्ञानी केवली, तिनिके मत विषै कह्या है ।

आगै स्वरूप वा उपजने का कारण वा भेद वा विषय, इनिका आश्रय करि मतिज्ञान का निरूपण नव गाथानि करि कहै है –

अहिमुह-णियमिय-बोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियजं ।
[३] अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं ॥३०६॥[२]

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८१, पृष्ठ ३६१ ।

२ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८२, पृष्ठ ३६१ ।

३. पाठभेद – वहु ओग्गहाईणा खलुकय-छत्तीस-त्ति-सय-भेय ।

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं ।
अवग्रहेहावायधारणका भवंति प्रत्येकं ॥३०६॥

टीका – स्थूल, वर्तमान जिस क्षेत्र विषे इंद्रिय-मन की प्रवृत्ति होइ, तहां तिष्ठता असा जो इद्रिय - मन के ग्रहण योग्य पदार्थ, सो अभिमुख कहिए । बहुरि इस इंद्रिय का यहु ही विषय है, असा नियमरूप जो पदार्थ, सो नियमित कहिए, असे पदार्थ का जो जानना, सो अभिनिबोध कहिए । अभि कहिए अभिमुख अर 'नि' कहिए नियमित जो अर्थ, ताका निबोध कहिए जानना, असा अभिनिबोध, सोई आभिनिबोधिक है । इहा स्वार्थ विषैं ठण् प्रत्यय आया है । सो यह आभिनिबोधिक मतिज्ञान का नाम जानना । इद्रियनि कैं स्थूल रूप स्पर्शादिक अपने विषय के ज्ञान उपजावने की शक्ति है । बहुरि सूक्ष्म, अंतरित, दूर पदार्थ के ज्ञान उपजावने की शक्ति नाही है । तहां सूक्ष्म पदार्थ तौ परमाणु आदिक, अंतरित पदार्थ अतीत अनागत काल संबंधी, दूर पदार्थ मेरु गिरि, स्वर्ग, नरक, पटल आदि दूर क्षेत्रवर्ती जानने । असे मतिज्ञान का स्वरूप कह्या है ।

सो मतिज्ञान कैसा है ?

अनिंद्रिय जो मन, अर इंद्रिय स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इनि करि उपजै है । मतिज्ञान उपजने के कारण इंद्रिय अरु मन हैं । कारण के भेद तै कार्य विषै भी भेद कहिए, तातै मतिज्ञान छह प्रकार है । तहा एक-एक के च्यारि-च्यारि भेद है – अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा । सो मन तै वा स्पर्शन तै वा रसना तै वा घ्राण तै वा चक्षु तै वा श्रोत्र तै ए अवग्रहादि च्यारि-च्यारि उत्पन्न होइ, तातै चौबीस भेद भए ।

अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा का लक्षण शास्त्रकर्ता आगे स्वयमेव कहैगे ।

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे ।
कमसो ते वावरिदा, पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्थावग्रहभेदौ, हि भवतः प्राप्ताप्राप्तार्थे ।
क्रमशस्तौ व्यापृतौ, प्रथमो नहि चक्षुर्मनसोः ॥३०७॥

टीका – मतिज्ञान का विषय दोय प्रकार एक व्यजन, एक अर्थ । तहां जो विषय इंद्रियनि करि प्राप्त होइ, स्पर्शित होइ, सो व्यंजन कहिए । जो प्राप्त न होइ, सो अर्थ कहिए । तिनिका विशेष ग्रहणरूप व्यंजनावग्रह अरु अर्थावग्रह भेद प्रवर्तें है ।

इहां प्रश्न – जो तत्त्वार्थ सूत्र की टीका विषैं तौ अर्थ असा कीया है – जो व्यंजन नाम अव्यक्त शब्दादिक का है, इहां प्राप्त अर्थ कौं व्यंजन कह्या सो कैसें है ?

ताका समाधान – व्यंजन शब्द के दोऊ अर्थ हो है । **विगतं अंजनं व्यंजनं'** दूरि भया है अंजन कहिए व्यक्त भाव जाकै, सो व्यंजन कहिए । सो तत्त्वार्थ सूत्र की टीका विषै तौ इस अर्थ का मुख्य ग्रहण कीया है । अर **'व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं'** जो प्राप्त होइ ताकौ व्यजन कहिए । सो इहा यहु अर्थ मुख्य ग्रहण कीया है । जातै अंजु धातु गति, व्यक्ति, म्रक्षण अर्थ विषै प्रवर्तै है । तातै व्यक्ति अर्थ का अर म्रक्षण अर्थ का ग्रहण करने तै कर्णादिक इंद्रियनि करि शब्दादिक अर्थ प्राप्त हूवे भी यावत् व्यक्त न होंइ, तावत् व्यंजनावग्रह है, व्यक्त भएं अर्थावग्रह हो है । जैसै नवा माटी का शरावा, जल की बूंदनि करि सीचिए, तहां एक दोय बार आदि जल की बूद परें व्यक्त न होइ; शोषित होइ जाय; बहुत बार जल की बूद परै, व्यक्त होइ, तैसे कर्णादिक करि प्राप्त हुवा जो शब्दादिक, तिनिका यावत् व्यक्तरूप ज्ञान न होइ, जो मैंने शब्द सुन्या, असा व्यक्त ज्ञान न होइ, तावत् व्यजनावग्रह कहिए । बहुरि बहुत समय पर्यत इद्रिय अर विषय का सयोग रहै; व्यक्तरूप ज्ञान भए अर्थावग्रह कहिए । बहुरि नेत्र इंद्रिय अर मन, ए दूरही तै पदार्थ कौ जानै है; तातै इनि दोऊनि कै व्यजनावग्रह नाहीं, अर्थावग्रह ही है ।

इहां प्रश्न – जैसे कर्णादिक करि दूरि तै शब्दादिक जानिए है, तैसे ही नेत्र करि वर्ण जानिए है, वाकौं प्राप्त कह्या, अर याकौ अप्राप्त कह्या सो कैसे है ?

ताकां समाधान – दूरि जो शब्द हो है, ताकौ यहु नाही जानै है । जो दूरि भया शब्द, ताके निमित्त तै आकाश विषै जे अनेक स्कंध तिष्ठै है । ते शब्दरूप परिणए है । तहा कर्ण इंद्रिय के समीपवर्ती भी स्कंध शब्दरूप परिणए है, सो तिनिका कर्ण इंद्रिय करि स्पर्श भया है; तब शब्द का ज्ञान हो है । असे ही दूरि तिष्ठता सुगंध, दुर्गंध वस्तु के निमित्त तैं पुद्गल स्कंध तत्काल तद्रूप परिणवै है । तहां जो नासिका इद्रिय के समीपवर्ती स्कंध परिणए है; तिनिके स्पर्श तें गध का ज्ञान हो है । असे ही अग्न्यादिक के निमित्त तै पुद्गल स्कंध उष्णादिरूप परिणवै है; तहां जो

स्पर्शन इंद्रिय के समीपवर्ती स्कंध परिणए है; तिनिके स्पर्श तै स्पर्श ज्ञान हो है । ऐसै ही आम्लादि वस्तु के निमित्त तै स्कंध तद्रूप परिणवै है, तहां रसना इंद्रिय के समीपवर्ती जो स्कंध परिणए, तिनिके संयोग तैं रस का ज्ञान हो है । बहुरि यहु श्रुत ज्ञान के बल करि, जाके निमित्त तै शब्द आदि भए ताकौ जानि, ऐसा मानै है कि मै दूरवर्ती वस्तु को जान्या, ऐसै दूरवर्ती वस्तु के जानने विषै भी प्राप्त होना सिद्ध भया । अर समीपवर्ती कौ तो प्राप्त होकर जानै ही है । इहां शब्दादिक परमाणु अर कर्णादिक इंद्रिय परस्पर प्राप्त होइ, अर यावत् जीव कै व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है, व्यक्तज्ञान भए अर्थावग्रह हो है । बहुरि मन अर नेत्र दूर ही तै जानै है, ऐसा नाही; जो शब्दादिक की ज्यो जानै है, तातै पदार्थ तौ दूरि तिष्ठै है ही, जब उन नै ग्रहै, तब व्यक्त ही ग्रहै; तातै व्यंजनावग्रह इनि दोऊनि कै नाही; अर्थावग्रह ही है । उक्तं च–

पुट्ठ सुणेदि सद्दं, अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं ।
गंधं रसं च फासं, बद्धं पुट्ठं वियाणादि ॥१॥

बहुरि नैयायिकमतवाले ऐसा कहै है – मन अर नेत्र भी प्राप्त होइ करि ही वस्तु कौ जानै है । ताका निराकरण जैनन्याय के शास्त्रनि विषै अनेक प्रकार कीया है । बहुरि व्यंजन जो अव्यक्त शब्दादिक, तिनि विषै स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र इंद्रियनि करि केवल अवग्रह ही हो है; ईहादिक न हो है । जातै ईहादिक तौ एकदेश या सर्वदेश व्यक्त भए ही हो है । व्यंजन नाम अव्यक्त का है, तातै च्यारि इंद्रियनि करि व्यंजनावग्रह के च्यारि भेद है ।

विसयाणं विसईणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा ।
अवगहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा ॥३०८॥

विषयाणां विषयिणां, संयोगानंतरं भवेन्नियमात् ।
अवग्रहज्ञानं गृहीते, विशेषाकांक्षा भवेदीहा ॥३०८॥

टीका – विषय जो शब्दादिक पदार्थ अर विषयी जे कर्णादिक इंद्रिया, इनिका जो संयोग कहिए योग्य क्षेत्र विषै तिष्ठनेरूप संबंध, ताकौं होतें संतै ताके अनंतर ही वस्तु का सत्तामात्र निर्विकल्प ग्रहण सो यहु है, इतना प्रकाशरूप, सो दर्शन नियम-

करि हो है। ताके अनन्तर पीछै ही देख्या जो पदार्थ ताके वर्ण संस्थानादि विशेष ग्रहणरूप अवग्रह नामा ज्ञान हो है।

इहां प्रश्न – जो गाथा विषैं तौ पहिलैं दर्शन न कह्या, तुम कैसें कहो हो ?

ताका समाधान – जो अन्य ग्रंथनि में कह्या है–'**अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधीरवग्रहः**' इंद्रिय अर विषय के संयोग होतैं प्रथम सत्तावलोकन मात्र दर्शन हो है, पीछैं पदार्थ का आकार विशेष जाननेरूप अवग्रह हो है – असा अकलंकाचार्य करि कह्या है। बहुरि '**दंसणपुव्वं णाणं छद्मत्थाणं हवेदि णियमेण**' छद्मस्थ जीवन के नियम तै दर्शन पूर्वक ही ज्ञान हो है असा नेमिचंद्राचार्यने द्रव्य - संग्रह नामा ग्रंथ में कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थ सूत्र की टीकावाले नै असा ही कह्या है; तातै इहा ज्ञानाधिकार विषैं दर्शन का कथन न कीया तौ भी अन्य ग्रंथनि तै असैं ही जानवा। सो अवग्रह करि तौ इतना ग्रहण भया।

जो यहु श्वेत वस्तु है, बहुरि श्वेत तौ बुगलनि की पंक्ति भी हो है, ध्वजा रूप भी हो है; परि बुगलेनि की पकतिरूप विषय कौं अवलबि यहु बुगलेनि की पंकति ही होसी वा ध्वजारूप विषय कौं अवलंबि यहु ध्वजा होसी असा विशेष वाछारूप जो ज्ञान, ताकौ ईहा कहिए। बहुरि बुगलनि की यहु पकति ही होसी कि ध्वजा होसी असा सशयरूप ज्ञान का नाम ईहा नाही है। वा बुगलनि पंकति विषै यहु ध्वजा होसी असा विपर्यय ज्ञान का नाम ईहा नाही है, जातै इहां सम्यग्ज्ञान का अधिकार है। सम्यग्ज्ञान प्रमाण है। अर सशय, विपर्यय है, सो मिथ्याज्ञान है। तातै सशय विपर्यय का नाम ईहा नाही। जो वस्तु है, ताका यथार्थरूप असा ज्ञान करना कि यहु अमुक ही वस्तु होसी; असै होसीरूप जो प्रतीति, ताका नाम ईहा है। अवग्रह तै ईहा विषै विशेष ग्रहण भया; तातै याके वाके विषै मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम का तारतम्य करि भेद जानना।

ईहणकरणेण जदा, सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालांतरे वि णिण्णिद-वत्थु-समरणस्स कारणं तुरियं ॥३०९॥

ईहनकरणेन यदा, सुनिर्णयो भवति स अवायस्तु।
कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्यम् ॥३०९॥

टीका – ईहा के करने करि ताके पीछे जिस वस्तु की ईहा भई थी, ताका भले प्रकार निर्णय रूप जो ज्ञान, ताकौं अवाय कहिए ।

जैसें पांखनि का हलावना आदि चिह्न करि यहु निश्चय कीया जो बुगलनि की पंकति ही है, निश्चयकरि और किछू नाही; असा निर्णय का नाम अवाय है । तु शब्द करि पूर्वं जो ईहा विषै वांछित वस्तु था, ताही का भले प्रकार निर्णय, सो अवाय है । बहुरि जो वस्तु किछू और है; अर और ही वस्तु का निश्चय करि लीया है, तो वाका नाम अवाय नाही, वह मिथ्याज्ञान है ।

बहुरि तहां पीछे बार-बार निश्चयरूप अभ्यास तै उपज्या जो सस्कार, तीहि स्वरूप होइ, केते इक काल कौं व्यतीत भए भी यादि आवने कौ कारणभूत जो ज्ञान सो धारणा नाम चौथा ज्ञान का भेद हो है । असें ही सर्व इंद्रिय वा मन संबंधी अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा भेद जानने ।

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।
तत्थेक्केक्के जादे, छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥३१०॥

बहु बहुविधं च क्षिप्रानिःसृदनुक्तं ध्रुवं च इतरच्च ।
तत्रैकैकस्मिन् जाते, षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥३१०॥

टीका – अर्थरूप वा व्यंजनरूप जो मतिज्ञान का विषय, ताके बारह भेद है – बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव, ए छह । बहुरि इतर जे छहौ इनके प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त, अध्रुव ए छह; असें बारह भेद जानने । सो व्यजनावग्रह के च्यारि इंद्रियनि करि च्यारि भेद भए, अर अर्थ के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा तै पंच इंद्रिय छठा मन करि चौबीस भेद भए । मिलाएं ते अठाईस भेद भए । सो व्यंजन रूप बहु विषय का च्यारि इंद्रियनि करि अवग्रह हो है । सो च्यारि भेद तौ ए भए । अर अर्थ रूप बहु विषय का पंच इंद्रिय, छठा मन करि गुणे अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा हो है । तातै चौबीस भएं । असे एक, बहु विषय संबंधी अठाईस भेद भए । असे ही बहुविध आदि भेदनि विषै अठाईस-अठाईस भेद हो हैं । सब कौं मिलाएं बारह विषयनि विषैं मतिज्ञान के तीन सै छत्तीस (३३६) भेद हो है । जो एक विपय विषै अठाईस मतिज्ञान के भेद होइ तौ बारह विषयनि

विषैं केते होंहि; अैसे त्रैराशिक कीएं, लब्धराशि मात्र तीन से छत्तीस मतिज्ञान के भेद हो है ।

बहुवत्तिजादिगहणे, बहुबहुविहमियरमियरगहणम्हि ।
सगणामादो सिद्धा, खिप्पादी सेदरा य तहा ॥३११॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे, बहुबहुविधमितरदितरग्रहणे ।
स्वकनामतः सिद्धाः, क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥३११॥

टीका – जहां बहुत व्यक्ति का ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौं बहु कहिए । बहुरि जहां बहुजाति का ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौ वहुविध कहिए । बहुरि अैसें ही इतर का ग्रहण विषैं जहां एक व्यक्ति का ग्रहण रूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौ एक कहिए । बहुरि जहां एक जाति का ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौं एकविध कहिए ।

इहां उदाहरण दिखाइए है – जैसें खांड़ी गऊ, सांवली गऊ, मूंडी गऊ इत्यादिक अनेक गऊनि की व्यक्ति कौं बहु कहिए । बहुरि गऊ, भैंस, घोडे इत्यादि अनेक जाति कौ बहुविध कहिए । बहुरि एक खांडी गऊ अैसी गऊ की एक व्यक्ति कौं एक कहिए । बहुरि खांडी, मूडी, सांवली गऊ है; अैसी एक जाति कौ एकविध कहिए । एक जाति विषै अनेक व्यक्ति पाइए है । अैसें वारह भेदनि विषै च्यारि तौ कहे ।

बहुरि अवशेष क्षिप्रादिक च्यारि अर इनिके प्रतिपक्षी च्यारि, ते अपने नाम ही तैं प्रसिद्ध है । सोही कहिए है – क्षिप्र शीघ्र कौ कहिए । जैसे शीघ्र पडती जलधारा वा जलप्रवाह । बहुरि अनिसृत, गूढ कौ कहिए; जैसे जल विषै मगन हूवा हाथी । बहुरि अनुक्त, विना कहे कौ कहिए, जैसें विना ही कहे किछू अभिप्राय हीं तैं जानने में आवै । बहुरि ध्रुव अचल कौ वा वहुत काल स्थायी कौं कहिए; जैसे पर्वतादिक । बहुरि अक्षिप्र, ढीले कौ कहिए । जैसे मंद चालता घोटकादिक । बहुरि निसृत, प्रगट कौ कहिए; जैसे जल तैं निकस्या हूवा हाथी । बहुरि उक्त, कहे कौ कहिए, जैसे काहूनैं कह्या यहु घट है । बहुरि अध्रुव, चंचल वा विनाशीक कौ कहिए; जैसे क्षणस्थायी बिजुरी आदि । अैसे वारह प्रकार मतिज्ञान के विषय है ।

भावार्थ – जाकौ जानिए यहु शीघ्र प्रवर्ते है; सो क्षिप्र कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यह गूढ है, सो अनिसृत कहिए । बहुरि जाकौ बिना कहै जानिए; सो अनुक्त कहिए । बहुरि जाकौ जानिए यहु ध्रुव है, सो ध्रुव कहिए इत्यादिक मतिज्ञान के विषय है । इनिकौ मतिज्ञान करि जानिए है ।

वत्थुस्स पदेसादो, वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय, अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥३१२॥

वस्तुनः प्रदेशात्, वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा ।
सकलं वा अवलंब्य, अनिसृतमन्यवस्तुगतिः ॥३१२॥

टीका – किसी वस्तु का प्रदेश कहिए, एकोदेश अंश प्रगट है । तातै जो वह एकोदेश अंश जिस वस्तु बिना न होइ, असैं अप्रगट वस्तु का ग्रहण कीजिए; सो अनिसृतज्ञान है । अथवा एक किसी वस्तु का एकोदेश अंश कौं वा सर्वांग वस्तु ही कौ अवलंबि करि, ग्रहण करि अन्य कोई अप्रकट वस्तु का ग्रहण करना; सो भी अनिसृत ज्ञान है । इनिके उदाहरण आगै कहैं है —

पुक्खरगहणे काले, हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थुंतरचंदस्स य, धेणुस्स य बोहणं च हवे ॥३१३॥

पुष्करग्रहणे काले, हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा ।
वस्त्वंतरचंद्रस्य च, धेनोश्च बोधनं च भवेत् ॥३१३॥

टीका – पुष्कर कहिए जल तै बाहिर प्रगट दीसती असी जल विषै डूब्या हूवा हस्ती की सूडि, ताकौ जानने तै असी प्रतीति हो है कि इस जल विषै हस्ती मगन है, जातै हस्ती बिना सूडि न हो है । जिस बिना जो न होइ, ताकौ तिसका साधन कहिए; जैसै अग्नि बिना धूम नाही, तातै अग्नि साध्य है, धूम साधन है । सो साधन तै साध्य का जानना, सो अनुमान प्रमाण है । इहा सूडि साधन, हस्ती साध्य है । सूडि तै हस्ती का ज्ञान भया, तातै इहां अनुमान प्रमाण आया । बहुरि किसी स्त्री का मुख देखा, सो मुख का ग्रहण समय विषै चन्द्रमा का स्मरण भया; आगै चन्द्रमा देख्या था, स्त्री के मुख की अर चन्द्रमा की सदृशता है, सो स्त्री का मुख देखितै ही चन्द्रमा यादि आया, -सो चन्द्रमा, तिस काल विषै प्रकट न था, ताकां

ज्ञान भया, सो यहु स्मृति प्रमाण है । अथवा चन्द्रमा समान स्त्री का मुख है; सो स्त्री का मुख देखतैं चन्द्रमा का ज्ञान भया । तातैं याकौ प्रत्यभिज्ञान प्रमाण भी कहिये । ऐसै ही वन विषै गवय नामा तिर्यचकौ देख्या; तहां ऐसा यादि आया कि गऊ के सदृश गवय हो है; तातैं यहु स्मृति प्रमाण है । अथवा गऊ समान गवय हो है । सो गऊ का ज्ञान गवय कौं देखते ही भया; तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान भी कहिए । वा कहिए जैसें ए उदाहरण कहे तैसैं और भी जानने । जैसे रसोई विषै अग्नि होते संतै धूवां हो है, अर द्रह विषै अग्नि नाही; तातै धूवां भी नाही । तातैं सर्व देश काल विषै अग्नि अर धूवां के अन्यथा-अनुपपत्ति-भाव है । अन्यथा कहिए अग्नि न होइ तौ अनुपपत्ति कहिए-धूवां भी न होइ; सो ऐसा अन्यथा अनुपपत्ति का ज्ञान, सो तर्क नामा प्रमाण भी मतिज्ञान है ।

या प्रकार अनुमान स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क ए च्यारों परोक्ष प्रमाण अनिसृत है विषय जाका, ऐसा मतिज्ञान के भेद जानने ।

पांचवां आगम नामा परोक्ष प्रमाण श्रुतज्ञान का भेद जानना । एकोदेशपनैं भी विशदता, स्पष्टता इनिके जानने विषै नाही । तातैं इनिकौं परोक्ष प्रमाण कहे; और इनके बिना जो पांच इन्द्रियनि करि बहु, बहुविध आदि जानिए है, ते सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानने; जातैं इनिके जानने में एकोदेश विशदता, निर्मलता, स्पष्टता, पाइए है । व्यवहार विषै भी ऐसैं कहिए है जो मै नेत्रनि स्यौ प्रत्यक्ष देख्या ।

बहुरि इस मतिज्ञान विषै पारमार्थिक प्रत्यक्षपना है नाही, जातैं अपने विषय कौ तारतम्य रूप संपूर्ण स्पष्ट न जानै । पूर्वै आचार्यनि करि प्रत्यक्ष का लक्षण विशद वा स्पष्ट ही कह्या है । ऐसै ए सर्व मतिज्ञान के भेद जानने, ते भेद प्रमाण हैं; जातै ए सर्व सम्यग्ज्ञान है । बहुरि "सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं" ऐसा सिद्धांत विषै कह्या है ।

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा ।
इगिछव्वारसगुणिदे, मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥३१४॥

एकचतुष्कं चतुर्विंशत्यष्टाविंशतिश्च त्रिःप्रति कृत्वा ।
एकषट्द्वादशगुणिते, मतिज्ञाने भवंति स्थानानि ॥३१४॥

टीका – मतिज्ञान सामान्य अपेक्षा करि तौ एक है, अर अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा की अपेक्षा च्यारि है । बहुरि पांच इंद्रिय, छठा मन करि अर अवग्रह, **ईहा,**

अवाय, धारणा की अपेक्षा चौबीस है। बहुरि व्यंजन अर अर्थ का भेद कीएं अठाईस है; सो एक, च्यारि, चौबीस, अठाईस (१।४।२४।२८)। इन च्यार्‍यो को जुदे-जुदे तीन जायगा मांडिए। तहां एक जायगा तौ सामान्यपनें अपने-अपने विषय कौं जानें हैं, असा विषय संबंधी एक भेद करि गुणिए, तब तौ एक, च्यारि, चौवीस, अठाईस ही भेद भएं। बहुरि दूसरी जायगा बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव ए छह प्रकार विषय के भेद करि गुणिए, तब छह (६), चौवीस (२४), के एक सौ चवालीस (१४४), एक सौ अडसठि (१६८) असें मतिज्ञान के आधे विषय भेदनि की अपेक्षा भेद भएं। बहुरि तीसरी जायगा उनके प्रतिपक्षी सहित बारह विषय भेदनि करि गुणिए, तहां बारह (१२), अडतालीस (४८), दोय सै अठ्यासी (२८८), तीन सै छत्तीस (३३६) सर्व विषय भेदनि की अपेक्षा मतिज्ञान के भेद भएं। असें विवक्षाभेद करि मतिज्ञान के स्थान दिखाएं।

आगै श्रुतज्ञान की प्ररूपणा का आरंभ करता सता प्रथम ही श्रुतज्ञान का सामान्य-लक्षण कहैं हैं –

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं, णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥३१५॥[1]

अर्थादर्थांतरमुपलभमानं भणंति श्रुतज्ञानम् ।
आभिनिबोधिकपूर्वं, नियमेनेह शब्दजं प्रमुखम् ॥३१५॥

टीका – मतिज्ञान करि निश्चय कीया जो पदार्थ, तिसकौ अवलंबि करि, तिसही पदार्थ के सम्बन्ध कौ लीएं, अन्य कोई पदार्थ, ताकौ जो जानै, सो श्रुतज्ञान है। सो श्रुतज्ञानावरण, वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम तें उपजै है; असें मुनीश्वर कहै है।

कैसा है श्रुतज्ञान ?

आभिनिबोधिक जो मतिज्ञान, सो है पहिलै जाके, पहिलै मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तें मतिज्ञान होइ, पीछै मतिज्ञान करि जो पदार्थ जान्या, ताकां अवलंबन करि अन्य कोई पदार्थ का जानना होइ; सोई श्रुतज्ञान है। असा नियम जानना।

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८३, पृष्ठ ३६१।

पहिलै मतिज्ञान भए बिना, सर्वथा श्रुतज्ञान न होइ। तीहि श्रुतज्ञान के दोय भेद है। एक अक्षरात्मक, एक अनक्षरात्मक। इनि विषै शब्दजं कहिए अक्षर, पद, छंदादि-रूप शब्द तै उत्पन्न भया, जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, सो प्रमुख कहिए मुख्य-प्रधान है; जातै देना, लेना, शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनि का मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि लिंग जो चिह्न, तातै उत्पन्न भया, असा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेंद्रिय तै लगाइ पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व जीवनि कै है। तथापि यातै किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाही; तातै प्रधान नाही।

बहुरि **"श्रूयते इति श्रुतः शब्दः तदुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतं"** सुणिए ताकौ शब्द कहिए। शब्द तै भया जो अर्थज्ञान, ताकौ श्रुतज्ञान कहिए। इस मे भी अर्थ विषै अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही प्रधान आया। अथवा श्रुत असा रूढि शब्द है, सो मतिज्ञान पूर्वक अर्थांतर का जानने रूप ज्ञान का विशेष, तीहि अर्थ विषै प्रवर्तै है। जैसै कुशल शब्द का अर्थ तौ यहु जो **कुश** कहिए डाभ ताकौ लाति कहिये दे, सो कुशल। परंतु रूढ़ि तै प्रवीण पुरुष का नाम कुशल है। तैसै यहु श्रुत शब्द जानना।

तहां **'जीवः अस्ति'** असा शब्द कह्या। तहां कर्ण इन्द्रिय रूप मतिज्ञान करि **जीवः अस्ति** असे शब्द कौ ग्रह्या। बहुरि तीहि ज्ञान करि 'जीव नामा पदार्थ है' असा जो ज्ञान भया, सो श्रुतज्ञान है। शब्द अर अर्थ के वाच्य-वाचक संबंध है। अर्थ वाच्य है, शब्द वाचक है। अर्थ है सो उस शब्द करि कहने योग्य है। शब्द उस अर्थ का कहन हारा है। सो इहां **'जीवः अस्ति'** असै शब्द का जानना तौ मति-ज्ञान है। अर उसके निमित्त तै जीव नामा पदार्थ का अस्तित्व जानना, सो श्रुतज्ञान है। असै ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना। अक्षरात्मक जो शब्द, तातै उत्पन्न भया जो ज्ञान, ताकौ भी अक्षरात्मक कह्या।

इहां कार्य विषै कारण का उपचार किया है। परमार्थ तै ज्ञान कोई अक्षर-रूप है नाही। बहुरि जैसै शीतल पवन का स्पर्श भया, तहा शीतल पवन का जानना, तौ मतिज्ञान है। बहुरि तिस ज्ञान करि वायु की प्रकृति वाले को यहु शीतल पवन अनिष्ट है; असा जानना, सो श्रुतिज्ञान है। सो यहु अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अक्षर के निमित्त तै भया नाही। असै ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना।

आगे श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भेदनि कौ दिखावै है—

लोगाणमसंखमिदा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥३१६॥

लोकानामसंख्यमितानि, अनक्षरात्मके भवति षट्स्थानानि ।
द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं ॥३१६॥

टीका – अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के भेद पर्याय अर पर्यायसमास, तीहिं विषै जघन्य सौ लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण ज्ञान के भेद हो है । ते भेद असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि कौ लीए है । बहुरि अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है, सो द्विरूप वर्गधारा विषै जो एकट्ठी नामा छठा स्थानक कह्या, तामै एक घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितने अपुनरुक्त अक्षर है । तिनकी अपेक्षा संख्यात भेद लीएं है । विवक्षित अर्थ कौ प्रकट करने निमित्त बार बार जिन अक्षरनि कौ कहिए; असैं पुनरुक्त अक्षरनि का प्रमाण अधिक संभवै है । सो कथन आगे होइगा ।

आगे श्रुतज्ञान का अन्य प्रकार करि भेद कहने के निमित्त दोय गाथा कहै है —

पज्जायक्खरपदसंघादं[1] पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य, पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥३१७॥

तेसिं च समासेहि य, वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं ।
आवरणस्स वि भेदा, तत्तियमेत्ता हवंति त्ति ॥३१८॥[2]

पर्यायाक्षरपदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च, च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥३१७॥

तेषां च समासैश्च, विंशविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानम् ।
आवरणस्यापि भेदाः, तावन्मात्रा भवंति इति ॥३१८॥

टीका – १. पर्याय, २. अक्षर, ३. पद, ४ संघात, ५ प्रतिपत्तिक, ६. अनुयोग, ७ प्राभृत-प्राभृत, ८ प्राभृत, ९ वस्तु, १० पूर्व दश तौ ए कहे ।

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका ।
२ षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका ।

ते पर्याय आदिक दश भेद कहे, तिनके समासनि करि दश भेद भए, मिलि-करि श्रुतज्ञान के बोस भेद भएं। ते कहिए है – १. पर्याय, २. पर्यायसमास, ३. अक्षर, ४. अक्षरसमास, ५. पद, ६. पदसमास, ७. सघात, ८ संघातसमास, ९. प्रतिपत्तिक, १०. प्रतिपत्तिकसमास, ११. अनुयोग, १२. अनुयोगसमास, १३. प्राभृतक–प्राभृतक, १४. प्राभृतक–प्राभृतकसमास, १५ प्राभृत, १६. प्राभृत-समास, १७. वस्तु, १८. वस्तुसमास, १९. पूर्व २०. पूर्वसमास असै बीस भेद है।

इहां अक्षरादि गोचर जो अर्थ, ताके जाननेरूप जो भाव श्रुतज्ञान, ताकी मुख्यता जाननी। बहुरि जातै श्रुतज्ञानावरण के भी तितने ही बीस भेद है; तातैं श्रुतज्ञान के भी बीस भेद ही कहे हैं।

आगे पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञान का भेद, ताका निरुपण के अर्थि च्यारि गाथा कहै है—

णवरि विसेसं जाणे, सुहमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण, तदणंतरणाणभेदम्हि ॥३१९॥

नवरि विशेषं जानीहि, सूक्ष्मजघन्यं तु पर्यायं ज्ञानम्।
पर्यायावरणं पुनः, तदनंतरज्ञानभेदे ॥३१९॥

टीका – यहु नवीन विशेष जानहु, जो पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञान का भेद, सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त संबंधी सर्व तै जघन्य श्रुतज्ञान जानना। बहुरि पर्याय श्रुतज्ञान का आवरण, सो पर्याय श्रुतज्ञान कौ नाही आवरै है। वाके अनतरि जो पर्याय ज्ञान तै अनंत भाग वृद्धि लीएं पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद, तीहि विषै पर्याय ज्ञान का आवरण है; जातै उदय आया जो पर्याय ज्ञान, आवरणके समय प्रबद्ध का उदयरूप निषेक, ताकै सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय नाही, सो क्षय है. अर तेई सर्वघाती स्पर्धक, जे अगिले निषेक सबधी सत्ता मे तिष्ठै हैं, तिनिका उपशम है। अर देशघाती स्पर्धकनि का उदय है; सो असा पर्याय ज्ञानावरण का क्षयोपशम सदा पाइए तातै; पर्याय ज्ञान का आवरण करि पर्याय ज्ञान आवरै नाही। पर्याय-समासज्ञान का प्रथमभेद ही आवरै है। जो पर्याय ज्ञान भी आवरै तौ ज्ञान का अभाव होइ, ज्ञान गुणका अभाव भए, गुणी (असैं) जीव द्रव्य का भी अभाव होइ, सो असै होइ नाही; तातै पर्यायज्ञान निरावरण ही है।

अनुभाग रचना विषै भी स्थापित कीया जो सिद्धराशि का अनंतवा भाग-मात्र श्रुतज्ञानावरण का द्रव्य, जो परमाणूनि का समूह, सो द्रव्य के अनुभाग की क्रम तै हानि-वृद्धि करि संयुक्त है। बहुरि नानागुणहानि स्पर्धक वर्गणारूप भेद लीएं है, तिस द्रव्य विषै सर्व तै थोरा उदयरूप अनुभाग जाका क्षीण भया, असा जो सर्वघाती स्पर्धक, तिसही कौ पर्याय ज्ञान का आवरण कह्या है; तितने आवरण का सदा काल उदय न होइ, तातै भी पर्याय ज्ञान निरावरण ही है।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि।
हवदि हु सव्वजहण्णं, णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥३२०॥[1]

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये।
भवति हि सर्वजघन्यं, नित्योद्घाटं निरावरणम् ॥३२०॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव का जन्म होतै पहिला समय विषै सर्व तै जघन्य शक्ति कौ लीएं पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है, सो निरावरण है। इतने ज्ञान का कबहू आच्छादन न होइ। याहीतै नित्योद्घाटं कहिए सदाकाल प्रकट प्रकाशमान है। सो यहु गाथा पूर्वाचार्यनि करि प्रसिद्ध है। इहा अपना कह्या व्याख्यान की दृढता के निमित्त उदाहरणरूप लिखी है।

सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥३२१॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकेषु स्वकसंभवेषु भ्रमित्वा।
चरमापूर्णत्रिवक्राणां आदिमवक्रस्थिते एव भवेत् ॥३२१॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव, सो अपने विषै सभवते जे छह हजार बारह बार क्षुद्रभव, तिनि विषै भ्रमण करि अत का लब्धि अपर्याप्तकरूप क्षुद्र-भव विषै तीन वक्रता लीए, जो विग्रह गति, ताकरि जन्म धर्‍या होइ, ताके विग्रह गति में पहिली वक्रता सबधी समय विषै तिष्ठता जीव ही कै सर्व तै जघन्य पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है। बहुरि तिसही कै स्पर्शन इद्रिय सबधी जघन्य मतिज्ञान हो है।

---

1. षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका।

बहुरि तिसही कै अचक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम तै उपज्या जघन्य अचक्षुदर्शन भी हो है। सो इहां बहुत क्षुद्रभवरूप पर्याय के धरने तै उत्पन्न भया बहुत सक्लेश, ताके बधने करि आवरण का अति तीव्र अनुभाग का उदय हो है। तातै क्षुद्रभवनि का अंत क्षुद्रभवनि विषै पर्यायज्ञान कह्या है। बहुरि द्वितीयादि समयनि विषै ज्ञान बधता संभवै है; तातै तीनि वक्र विषै प्रथम वक्र का समय ही विषै पर्यायज्ञान कह्या है।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
फासिंदियमदिपुव्वं, सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥३२२॥[1]

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥३२२॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव कै उपजने का पहिला समय विषै सर्व ते जघन्य स्पर्शन इंद्रिय संबधी मतिज्ञानपूर्वक लब्धि अक्षर है, दूसरा नाम जाका, असा पर्याय ज्ञान हो है। लब्धि कहिए श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम, वा जानन शक्ति, ताकरि अक्षरं कहिए अविनाशी, सो असा पर्यायज्ञान ही है, जातै इतना क्षयोपशम सदाकाल विद्यमान रहै है।

आगै दश गाथानि करि पर्यायसमास ज्ञान कौ प्ररूपै है।

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए ।
संखमसंखमणंतं, गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥३२३॥[2]

अवरोपरि अनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः ।
सख्यमसंख्यमनंतं, गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥३२३॥

टीका – सर्व ते जघन्य पर्याय नामा ज्ञान, ताके ऊपरि आगै अनुक्रम तै आगै कहिए है। तिस परिपाटी करि १. अनंत भागवृद्धि, २. असख्यात भागवृद्धि, ३. संख्यात भागवृद्धि, ४ संख्यात गुणवृद्धि, ५ असख्यात गुणवृद्धि, ६ अनतगुण वृद्धि, ७. ए षट्स्थान पतित वृद्धि हो है।

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।
२ षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

इहां कोऊ कहै कि सर्व जघन्य ज्ञान कौ अनत का भाग कैसे संभवै ?

ताका समाधान–जो द्विरुपवर्गधारा विषै अनतानंत वर्गस्थान भए पीछे, क्रम तै जीवराशि, पुद्गल राशि, काल समयराशि, श्रेणी आकाशराशि हो हैं । तिनिके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान भए सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक सवधी जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है । जाका भाग न होइ असे ज्ञान शक्ति के अश, तिनिका असा परिमाण है । ताते तिनिकी अपेक्षा अनंत का भागहार संभवै है ।

जीवाणं च य रासी, असंखलोगा वरं खु संखेज्जं ।
भागगुणम्हि य कमसो, अवट्ठिदा होंति छट्ठाणे ॥३२४॥

जीवानां च च राशिः असंख्यलोका वरं खलु संख्यातम् ।
भागगुणयोश्च क्रमशः अवस्थिता भवंति षट्स्थाने ॥३२४॥

टीका – इहां अनतभाग आदिक छह स्थानकनि विषै ए छह संदृष्टि अवस्थित कहिए, नियमरूप जाननी । अनत विषै तौ जीवराशि के सर्व जीवनि का परिमाण सो जानना । असख्यात विषै असंख्यात लोक जो असंख्यात गुणा लोकाकाश के प्रदेशनि का परिणाम सो जानना । सख्यात विषै उत्कृष्ट संख्यात जो उत्कृष्ट सख्यात का परिणाम सो जानना । सोई तीनो प्रमाण भाग वृद्धि विषै जानना । ये ही गुणवृद्धि विषै जानना । भागवृद्धि विषै इनि प्रमाणनि का भाग पूर्वस्थान कौ दीएं, जो परिणाम आवै, तितने पूर्वस्थान विषै मिलाए, उत्तरस्थान होइ । गुणवृद्धि विषै इनि प्रमाणनि करि पूर्वस्थान कौ गुणे, उत्तरस्थान हो है ।

उव्वंकं चउरंकं, पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च ।
छव्वड्ढीणं सण्णा, कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं ॥३२५॥

उर्वकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकः अष्टांकश्च ।
षड्वृद्धीनां संज्ञा, क्रमशः संदृष्टिकरणार्थम् ॥३२५॥

टीका – बहुरि लघुसदृष्टि करने के निमित्त अनंत भाग वृद्धि आदि छह वृद्धिनि की अन्यसजा सदृष्टि सो कहै है – तहा अनंत भागवृद्धि की उर्वक कहिए उकार उ, असख्यात भागवृद्धि की च्यारि का अक (४), सख्यात भागवृद्धि की पाचका अक (५), सख्यात गुणवृद्धि की छह का अक (६), असंख्यात गुणवृद्धि की

सात का अक (७), अनत गुणवृद्धि की आठ का अक (८), असें ए सहनानी जाननी ।

अंगुलअसंखभागे, पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी ।
एक्कं वारं होदि हु, पुणो पुणो चरिम उड्ढि त्ती ।।३२६।।

अंगुलासख्यातभागे, पूर्वगवृद्धिगतेतु परवृद्धिः ।
एकं वारं भवति हि, पुनः पुनः चरमवृद्धिरिति ।।३२६।।

टीका – पूर्ववृद्धि जो पहिली पहिली वृद्धि, सो सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण होइ; तब एक एक बार परवृद्धि कहिए पिछली पिछली वृद्धि होइ, असें बार बार अंत की वृद्धि, जो अनतगुण वृद्धि तीहि पर्यत हो है; असा जानना ।

अब याका अर्थ यत्र द्वार करि दिखाइए है । तहां यत्र विषै अनतभागादिक की उकार आदि सदृष्टि कही थी, सो लिखिए है ।

पर्याय समास ज्ञान विषै वृद्धि का यंत्र

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

बहुरि सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण बार की जायगा दोय बार लिखिए है । सो इहा पर्याय नाम श्रुतज्ञान का भेद, तातै अनत भाग वृद्धि लिए पर्याय समास नामा श्रुतज्ञान का प्रथम भेद हो है । बहुरि इस प्रथम भेद तै अनत भागवृद्धि लीए पर्याय समास का दूसरा भेद हो है । असैं सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ, तब एक बार असख्यात भागवृद्धि होइ । इहा अनत भाग-वृद्धि पहिलै कही थी, तातै पूर्व कहिए । अर असख्यात भागवृद्धि वाके पीछै कही थी, तातै याकौ पर कहिए । सो इहा यत्र विषै प्रथम पक्ति का प्रथम कोष्ठ विषै दोय बार उकार लिख्या, सो तो सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण अनत भाग-

वृद्धि की सहनानी जाननी । अर ताके आगै च्यारि का अंक लिख्या, सो एक बार असंख्यात भागवृद्धि की सहनानी जाननी । बहुरि इहा तै सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि भए पीछे दूसरा एक बार असंख्यात भागवृद्धि होइ । असे ही अनुक्रम तै सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असख्यात भागवृद्धि हो है । ताते यंत्र विषै प्रथम पक्ति का दूसरा कोठा विषै प्रथम कोठावत् दोय उकार, एक च्यारि का अक लिख्या । दूसरी बार लिखने तै सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग बार जानि लेना ।

बहुरि इहा तै आगै सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि होइ, तब एक बार संख्यात भागवृद्धि होइ । यातै प्रथम पंक्ति का तीसरा कोठा विषै दोय उकार अर एक पाच का अक लिख्या । अब इहा तै जैसे पूर्वं अनंत भागवृद्धि लीए, सूच्यगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण असख्यात भागवृद्धि होइ; पीछे सूच्यंगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि होइ, तब एक बार संख्यात भागवृद्धि भई, तैसे ही याही अनुक्रम तै दूसरा सख्यात भागवृद्धि भई । बहुरि याही अनुक्रम तै तीसरा भई, असे सख्यात भागवृद्धि भी सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण बार हो है । तातै इहां यत्र विषै प्रथम पक्ति विषै जैसे तीन कोठे किये थे, तैसे अगुल का असख्यातवा भाग की संहनानी के अर्थि दूसरा तीन कोठे उस ही पंक्ति विषै कीए । इहा असख्यात भागवृद्धि कौ पूर्व कहिए, सख्यात भागवृद्धि कौ पर कहिए । बहुरि इहा तै सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि होइ, एक बार असख्यात भागवृद्धि होइ' असै सूच्यगुल का असख्यातवा भागप्रमाण असख्यात भागवृद्धि होइ, सो याकी सहनानी के अर्थि यत्र विषै दोय उकार अर च्यारि का अक करि सयुक्त दोय कोठे कीए । बहुरि यातै आगै सूच्यगुल का असंख्यातवा भागप्रमाण अनत भाग-वृद्धि होइ करि एक बार संख्यात गुणवृद्धि होइ; सो याकी सहनानी के अर्थि प्रथम पक्ति का नवमा कोठा विषै दोय उकार अर छह का अक लिख्या । बहुरि जैसे प्रथम पक्ति विषै अनुक्रम कह्या, तैसे ही आदि तै लेकरि सर्व अनुक्रम दूसरा भया । तब एक बार दूसरा संख्यात गुणवृद्धि भई । असे ही अनुक्रम तै सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण सख्यात गुणवृद्धि हो है; सो सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण तैसे होने की सहनानी के अर्थि यत्र विषै जैसी प्रथम पक्ति थी, तैसै ही वाके नीचै दूसरी पक्ति लिखी । बहुरि इहां तै जैसे प्रथम पक्ति विषै अनुक्रम कह्या था, तैसे अनुक्रम तै बहुरि वृद्धि भई । विशेष इतना जो उहा पीछे ही पीछे एक बार सख्यात

गुणवृद्धि भई थी, इहा पीछै ही पीछै एक बार असख्यात गुणवृद्धि भई। याही तै यत्र विषै तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्ति सारिखी लिखी। नवमा कोठा मै उहा तौ दोय उकार अर छह का अक लिख्या था, इहा तीसरी पक्ति विषै नवमा कोठा विषै दोय उकार अर सप्त का अंक लिख्या। इहा और सर्व कहिए अर असंख्यात गुणवृद्धि पर कहिए। बहुरि इहातै जैसे तीनो ही पक्ति विषै आदि तै लेकरि अनुक्रम तै वृद्धि भई, तैसे ही अनुक्रम तै सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण होइ। तब असख्यात गुण-वृद्धि भी सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण होइ निवरै, सो इहां यंत्र विषै सूच्यं-गुल का असख्यातवा भाग प्रमाण तैसे ही होने की सहनानी के अर्थि जैसे तीन पक्ति करी थी, तैसै ही दूसरी पक्ति लिखी, ऐसै छह पक्ति भई।

अब इहां तै आगे जैसे आदि तै लेकरि अनुक्रम तै तीनों पक्ति विषै वृद्धि कही थी, तैसे ही तैसे अनुक्रम तै फेरि सर्ववृद्धि भई। विशेष इतना जो तीसरी पंक्ति का अत विषै जहा असख्यात गुणवृद्धि कही थी, सो इहा तीसरी पंक्ति का अत विषै एक बार अनत गुणवृद्धि हो है। याही तै यत्र विषै भी पहिली, दूसरी, तीसरी सारिखी तीन पक्ति और लिखी। उहा तीसरी पंक्ति का नवमां कोठा विषै दोय उकार सप्त का अक लिख्या था। इहा तीसरी पक्ति का नवमा कोठा विषै दोय उकार अर आठ का अक लिख्या, सो इहा अनत गुणवृद्धि कौ पर कहिए; अन्य सर्व पूर्व कहिए। याके आगे कोई वृद्धि रही नाही, तातै याकौ पूर्व सज्ञा न होइ, याही तै यहु अनत गुणवृद्धि एक बार ही हो है। सो इस अनत गुणवृद्धि कौ होत सतै जो प्रमाण भया, सोई नवीन षट्स्थानपतित वृद्धि का पहिला स्थानक जानना। ऐसे पर्यायसमास ज्ञान विषै असख्यात लोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धि हो है।

अब याका कथन प्रकट कर दिखाइए है–द्विरूप वर्गधारा विषै जीवराशि तै अनतानत गुणां जघन्य पर्याय नामा ज्ञान की अपेक्षा अपने विषय कौं प्रकाशनेरूप शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद कहे है, सो इस प्रमाण कौ जीवराशि प्रमाण अनत का भाग दीए जो परिमाण आवै, ताकौ उस जघन्य ज्ञान विषै मिलाए, पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद हो है। इहा एक बार अनत भागवृद्धि भई। बहुरि इस पर्याय-समास ज्ञान का प्रथम भेद कौ जीवराशि प्रमाण अनत का भाग दिए, जो परिमाण आवै, तितना उस पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषै मिलाए, पर्यायसमास ज्ञान का दूसरा भेद हो है। इहा दूसरा अनत भागवृद्धि भई। बहुरि उस दूसरे भेद कौ

अनत का भाग दीए, जो परिमाण आवै, तितना उस दूसरा भेद विषै मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का तीसरा भेद हो है । इहा तीसरा अनंत भागवृद्धि भई । वहुरि उस तीसरे भेद को अनत का भाग दीए जो परिमाण आया, तितना उस तीसरा भेद विषै मिलाए, पर्यायसमास ज्ञान का चौथा भेद हो है । इहा चौथा अनंत भागवृद्धि भई । इसही अनुक्रम तै सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि हूवा थका पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौ एक बार असख्यात लोक प्रमाण जो असंख्यात, ताका भाग दिएं जो परिमाण आवै, तितना उस ही भेद विषै मिलाएं, एक बार असख्यात भागवृद्धि लीए पयायसमास ज्ञान का भेद हो है । बहुरि याकौ अनंत का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना इस ही विषै मिलाए, पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया । इहा तै बहुरि अनत भागवृद्धि का प्रारम्भ हुवा, सो अैसै ही सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि भए जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौ फेरि असंख्यात का भाग दीए जो परिमाण आया, ताकौ उस ही भेद विषै मिलाएं, दूसरा असंख्यात भागवृद्धि लीए पर्यायसमास ज्ञान का भेद हो है ।

अैसै अनुक्रम तै सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि भी पूर्ण होइ । तहा जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया । ताकौ बहुरि अनत का भाग दीए, जो परिमाण भया, ताकौ तिस ही मे मिलाए, पर्यायसमास ज्ञान का भेद होइ । तब इहा अनत भागवृद्धि का प्रारम्भ हुवा, सो सूच्यगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण अनत भागवृद्धि पूर्ण होइ, तब जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौ उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीए, जो परिमाण होइ, ताकौ उस ही विषै मिलाएं, पहिले सख्यात भागवृद्धि लीए, पर्यायसमास का भेद हो है । यातै आगै फेरि अनत भाग-वृद्धि का प्रारम्भ हुवा सो अैसै ही पूर्वै यत्रद्वार करि जो अनुक्रम कह्या है, तिस अनुक्रम के अनुसारि वृद्धि जानि लेनी । इतना जानि लेना; जिस भेद तै आगै अनत भागवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौ जीवराशि प्रमाण अनत का भाग दीए, जो परिणाम आवै तितना तिस ही भेद विषै मिलाएं उस तै अनतरवर्ती भेद होइ । बहुरि जिस भेद तै आगै असंख्यात भागवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौ असंख्यात लोक प्रमाण असख्यात का भाग दीए, जो परिमाण आवै, ताकौ तिस ही भेद विषै मिलाए, उस भेद तै अनंतरवर्ती भेद हो है । बहुरि जिस भेद तै आगै असख्यात[१] भागवृद्धि होइ, तहा तिस ही भेद कौ उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण संख्यात का भाग दीएं जो परिमाण आवै, तितना तिस ही भेद विषै मिलाएं, उस भेद तै आगिला भेद होइ । बहुरि जिस भेद तै आगै

संख्यात गुणवृद्धि होइ, तहां तिस भेद कौ उत्कृष्ट संख्यात करि गुणिए, तब उस भेद तैं अनंतरवर्ती भेद होइ । बहुरि जिस भेद तैं आगै असख्यात गुणवृद्धि होइ, तहा तिस ही भेद को असंख्यातलोक करि गुणिए, तब उस भेद तैं आगिला भेद होइ । बहुरि जिस भेद तैं आगै अनंत गुणवृद्धि होइ, तहा तिस ही भेद कौ जीवराशि का प्रमाण अनंत करि गुणिए, तब तिस भेद तैं आगिला भेद होइ । अैसैं षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम जानना ।

इहा जो संख्या कही है, सो सर्व संख्या ज्ञान का अविभाग प्रतिच्छेदनि की जाननी । अरु जो इहां भेद कहे है, तिनका भावार्थ यहु है – जो जीव कैं कैं तौ पर्यय ज्ञान ही होइ और उसतै बधती ज्ञान होइ तौ पर्यायसमास का प्रथम भेद ही होय; अैसा नाही कि पर्यायज्ञान तैं एक, दोय आदि अविभाग प्रतिच्छेद बधता भी किसी जीव के ज्ञान होइ अर उस पर्यायसमास के प्रथम भेद तैं बधता ज्ञान होइ तौ पर्याय-समास ज्ञान का दूसरा भेद ही होइ । अैसैं अन्यत्र भी जानना ।

अब इहां अनंत भागवृद्धिरूप सूच्यंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण स्थान कहे, तिनिका जघन्य स्थान तैं लगाइ, उत्कृष्ट स्थान पर्यंत स्थापन का विधान कहिए है ।

तहा प्रथम सज्ञा कहिए है – विवक्षित मूलस्थान कौ विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौ प्रक्षेपक कहिए । तिस प्रमाण कौं तिस ही भाग-हार का भाग दीए जो प्रमाण आवै, ताकौ प्रक्षेपकप्रक्षेपक कहिए । ताकौ भी विवक्षित भागहार का भाग दीए, जो प्रमाण आवैं, ताकौ पिशुलि कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दीए, जो प्रमाण आवैं ताकौ पिशुलिपिशुलि कहिए । ताकौ भी विवक्षित भागहार का भाग दिये, जो प्रमाण आवै, ताकौ चूर्णि कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौ चूर्णिचूर्णि कहिए । अैसैं ही पूर्व प्रमाण कौ विवक्षित भागहार का भाग दीएं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि कहिए ।

अब इहां दृष्टातरूप अंक संदृष्टि करि प्रथम कथन दिखाइए है – विवक्षित जघन्य पर्यायज्ञान का प्रमाण, पैसठि हजार पांच सै छत्तीस (६५५३६) । विवक्षित भागहार अनत का प्रमाण च्यारि (४), तहा पूर्वोक्त क्रम तैं भागहार का भाग दीए, प्रक्षेपक का प्रमाण सोलह हजार तीन सौ चौरासी (१६३८४) । प्रक्षेपकप्रक्षेपक का प्रमाण च्यारि हजार छिनवै (४०९६) । पिशुलिका प्रमाण एक हजार चौईस

(१०२४)। पिशुलिपिशुलि का प्रमाण दोय सै छप्पन (२५६)। चूर्णि का प्रमाण चौसठि (६४)। चूर्णिचूर्णि का प्रमाण सोलह (१६) असे द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णि का प्रमाण च्यारि आदि जानने।

अब इहा ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि, नीचै एक बार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापि, जोडें, पर्यायसमास के प्रथम भेद का इक्यासी हजार नवसै बीस (८१६२०) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य (६५५३६) स्थापि, नीचै दोय प्रक्षेपक (१६३८४। १६३८४) एक प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापि, जोड़ें पर्यायसमास के द्वितीय भेद का एक लाख दोय हजार च्यारि सै (१०२४००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि, नीचै तीन प्रक्षेपक (१६३८४।१६३८४ १६३८४) तीन प्रक्षेपकप्रक्षेपक एक पिशुलि स्थापि, जोडें, तीसरे भेद का एक लाख अठाईस हजार (१२८०००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै नीचै च्यारि प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, च्यारि पिशुलि, एक पिशुलिपिशुलि स्थापि, जोडें, चौथे भेद का एक लाख साठि हजार (१६००००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै नीचै पाच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपकप्रक्षेपक, दश पिशुलि पाच पिशुलिपिशुलि, एक चूर्णि स्थापि, जोडें, पाचवे भेद का दोय लाख (२,०००००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै नीचै छह प्रक्षेपक, पंचदश प्रक्षेपक प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पद्रह पिशुलिपिशुलि, छह चूर्णि, एक चूर्णिचूर्णि स्थापि, जोडें, छठे स्थान का दोय लाख पचास हजार (२५००००) प्रमाण हो है। असें ही क्रम तै सर्व स्थाननि विषै ऊपरि तौ जघन्य स्थापन करना। ताके नीचै नीचै जितना गच्छ का प्रमाण तितने प्रक्षेपक स्थापन करने। इहां जेथवा स्थान होइ, तिस स्थान विषै तितना गच्छ जानना। जैसें छठा स्थान विषै गच्छ का प्रमाण छह होइ। बहुरि तिनके नीचे एक घाटि गच्छ का एक बार सकलन धन का जेता प्रमाण, तितने प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तिनके नीचै दोय घाटि गच्छ का दोय बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचै तीन घाटि

गच्छ का तीन बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने पिशुलिपिशुलि स्थापन करने । बहुरि तिनके नीचै च्यारि घाटि गच्छ का च्यारि बार सकलन धन का जेता प्रमाण, तितने चूर्णि स्थापन करने । बहुरि तिनके नीचैं पाच घाटि गच्छ का पांच बार सकलन धन का जेता प्रमाण, तितने चूर्णिचूर्णि स्थापन करने । असैं ही नीचै नीचै छह आदि घाटि गच्छ का छह आदि बार संकलन धन का जेता जेता प्रमाण, तितने तितने द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि स्थापन करने । असैं स्थापन करि, जोडै, पर्याय-समास ज्ञान के भेद विषै प्रमाण आवै है ।

अब इहां एक बार दोय बार आदि संकलन धन कहे, तिनिका स्वरूप इहां ही आगै वर्णन करैगे । असैं अकसदृष्टि करि वर्णन कीया । अब यथार्थ वर्णन करिए है--

पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषै पर्यायज्ञान तै जितने बधै तितने जुदे कीएं, पर्यायज्ञान के जेते अविभाग प्रतिच्छेद है, तीहि प्रमाण मूल विवक्षित जानना । यहु जघन्य ज्ञान है । तातै इस प्रमाण का नाम जघन्य स्थाप्या । बहुरि इस जघन्य कौ जीवराशि मात्र अनत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, ताका नाम प्रक्षेपक जानना । इस प्रक्षेपक कौ जीवराशि मात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, सो प्रक्षेपकप्रक्षेपक जानना । असैं ही क्रम तै जीवराशि मात्र अनंत का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, सो सो क्रम तैं पिशुलि अर पिशुलिपिशुलि अर चूर्णि अर चूर्णिचूर्णि अर द्वितीय चूर्णिचूर्णि आदि जानने । सो पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषै ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै ताकी वृद्धि का एक प्रक्षेपक स्थापना । बहुरि दूसरा भेद विषै ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै नीचै ताकी वृद्धि के दोय प्रक्षेपक, एक प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने । बहुरि तीसरा भेद विषै ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचै नीचै ताकी वृद्धि के तीन प्रक्षेपक, तीन प्रक्षेपकप्रक्षेपक, एक पिशुलि स्थापने । बहुरि चौथा भेद विषै जघन्य ऊपरि स्थापि, ताके नीचै नीचै ताके वृद्धि के च्यारि प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, च्यारि पिशुलि, एक पिशुलिपिशुलि स्थापने । बहुरि पाचवा भेद विषै जघन्य ऊपरि स्थापि, ताके नीचै नीचै पाच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दश पिशुलि, पांच पिशुलिपिशुलि, एक चूर्णि स्थापने । बहुरि छठा भेद विषै ऊपरि जघन्य स्थापि, ताके नीचै नीचै ताकी वृद्धि के छह प्रक्षेपक, पद्रह प्रक्षेपक प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पद्रह पिशुलिपिशुलि, छह चूर्णि, एक चूर्णिचूर्णि स्थापने । असैं ही सूच्यंगुल का असख्यातवां भागमात्र जे अनत भागवृद्धि सयुक्त पर्यायसमास ज्ञान के स्थान, तिनि विषैं अपने - अपने जघन्य के नीचै नीचै प्रक्षेपक गच्छमात्र

स्थापने। प्रक्षेपकप्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलि नोय घाटि गच्छ का, दोय बार सकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलिपिशुलि तीन घाटि गच्छ का, तीन बार सकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णि च्यारि घाटि गच्छ का च्यारि बार सकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णिचूर्णि पांच घाटि गच्छ का, पाच बार संकलन धनमात्र स्थापने। अैसें ही क्रम तें एक एक घाटि गच्छ का एक एक अधिक बार सकलन मात्र चूर्णिचूर्णि ही अंत पर्यंत जानने। तहां अनंत भाग-वृद्धि युक्त स्थाननि विषै अंत का जो स्थान, तीहिं विषै जघन्य तौ ऊपरि स्थापना। ताके नीचै नीचै सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रक्षेपक स्थापने। एक घाटि सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग का एक बार सकलन धनमात्र प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने। दोय घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग का दोय बार सकलन धनमात्र पिशुलि स्थापने। तीन घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का तीन बार संकलन धनमात्र पिशुलिपिशुलि स्थापने। च्यारि घाटि सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग का, च्यारि बार सकलन धनमात्र चूर्णि स्थापने। पांच घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का पाच बार संकलन धनमात्र चूर्णिचूर्णि स्थापने। याही प्रकार नीचै नीचै चूर्णिचूर्णि छह आदि घाटि, सूच्यंगुल का असख्यातवां भाग का छह आदि बार सकलन धनमात्र स्थापने। तहां द्विचरम चूर्णिचूर्णि दोय का दोय घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग बार सकलन धनमात्र स्थापन करने। बहुरि अत का चूर्णिचूर्णि एक का एक घाटि सूच्यगुल का असख्यातवां भाग बार संकलन धन-मात्र स्थापन करना। परमार्थ तें, अत चूर्णिचूर्णि का सकलन धन नाही है; जातें द्वितीयादि स्थान का अभाव है। याही जायगा (एक ही जायगा) अत चूर्णिचूर्णि का स्थापन करना। अैसें वृद्धि का अनुक्रम जानना। बहुरि इहा षट्स्थान प्रकरण विषै अनत भागवृद्धि युक्त स्थाननि के कहे जे भेद, तिनि विषै सर्वत्र प्रक्षेपक तो गच्छ-मात्र है, जेथवा भेद होइ तितने तहा प्रक्षेपक स्थापने; तातें सुगम है।

वहुरि प्रक्षेपकप्रक्षेपक आदिकनि का प्रमाण एक बार, दोय बार आदि संकलन धन का विधान जाने बिना जान्या न जाय, तातें सो सकलन धन का विधान कहिए है –

जितने का सकलन धन कह्या होय, तितनी जायगा अैसें अक स्थापि, जोडने। जैसें छठा स्थान विषै दोय घाटि गच्छ का संकलन धन कह्या, तहां च्यारि जायगा या प्रकार अक स्थापि, जोडने। कैसै अक स्थापि जोडिये ? सो कहिये है – जितने का

करना होय, तितनी जायगा एक आदि एक एक बधता अंक माडि, जोडै, एक बार संकलन धन हो है। बहुरि एक बार संकलन धन विधान विषै जो पहिलै अंक लिख्या था, सोई इहां दोय बार संकलन विषै पहिले लिखिए। अर उहा एक बार सकलन का दूसरा स्थान विषै जो अक था, ताकौ याका पहिला स्थान विषै जोडै, जो प्रमाण होइ, सो दूसरा स्थान विषै लिखिये। अर उहां तीसरा स्थान विषै जो अंक था, ताकौं याका दूसरा स्थान विषै जोडै; जो होइ, सो तीसरा स्थान विषै लिखिये। असें क्रमतै लिखि, जोडै, दोय बार सकलन धन हो है। बहुरि इस दोय बार सकलन धन विषै जो पहिले अक लिख्या, सोई इहां लिखिये। अर इस प्रथम स्थान में दोय बार सकलन का दूसरा स्थान का अक जोडै, दूसरा स्थान होइ। यामै वाका तीसरे स्थान का अक जोडै, याका तीसरा स्थान होइ। असै क्रम तै जितने का करना होइ, तितना जायगा लिखि जोडै। तीन बार सकलन धन होइ। याही प्रकार च्यारि बार आदि संकलन धनका विधान जानना।

इहां उदाहरण कहिये है। जैसै पर्यायसमास का छठा भेद विषै पांच का एक बार संकलन (धन) करना। तहा पाच जायगा क्रम तै एक, दोय, तीन, च्यारि, पांच का अक मांडि, जोडै, पद्रह होइ। सो इतने प्रक्षेपकप्रक्षेपक जानना। बहुरि च्यारि का दोय बार सकलन (धन) करना। तहां च्यारि जायगा क्रम तै एक, तीन, छह, दश माडि जो वीस होइ, सो इतने इतने पिशुलि जानने। बहुरि तीन का तीन बार संकलन (धन) करना तहां तीन जायगा क्रम तै एक, च्यारि, दश माडि जोडै, पंद्रह होइ; सो इतने पिशुलिपिशुलि जानने। बहुरि दोय का च्यारि वार सकलन करना। तहां दोय जायगा एक, पांच, माडि जोडै, छह होइ। सो इतने चूर्णि जानने। बहुरि एक का पाच जायगा सकलन (धन) करना तहा एक जायगा एक ही है, तातै ये चूर्णिचूर्णि एक ही जानना। असै ही अन्यत्र भी जानना। अब असै ये अंक माडि जोडै, एक बार सकलनादि विपै जो प्रमाण होइ, ताके ल्यावने कौ करणसूत्र कहिये है।

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः।
रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥१॥

जितने का संकलन धन करना होइ, तिस प्रमाण इहा गच्छ जानना। तामै एक घटाइ, अवशेष कौ उत्तर जो क्रम तै जितनी जितनी वार वधता संकलन कह्या

होइ,ताकरि गुणिए, जो प्रमाण होइ, ताकौ जितनी बार संकलन कह्या, तामैं एक जोडि, जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीजिए, जो लब्ध होइ, तामैं मुख जो पहिला स्थान का प्रमाण सो जोड़िए; जो प्रमाण होइ, ताकौ जितनी बार सकलन कह्या होइ, तितनी जायगा गच्छ तै लगाइ, एक एक बधता अक माडि, परस्पर गुणै, जो प्रमाण होइ, सो तौ भाज्य। अर एक तैं लगाइ एक एक बधता अंक मांडि, परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, सो भागहार। तहां भाज्य कौ भागहार का भाग दीएं, जो लब्धराशि होइ, ताकरि गुणिए, असैं करतै समस्त विवक्षित बार सकलन धन आवै है।

इहां उदाहरण कहिए है – जैसे छठा पर्यायसमास का भेद विषै च्यारि घाटि गच्छ का जो दोय, ताका च्यारि बार सकलन धनमात्र चूर्णि कहिए। सो इहां गच्छ दोय, तामैं एक घटाएं, एक याकौ एक बारादि सकलन धन रचना अपेक्षा दोय वार आदि संकलन की रचना उपजै है। सो एक एक बार बधता संकलन भया, तातै उत्तर का प्रमाण एक, ताकरि गुणैं भी एक ही भया। याकौ इहां च्यारि बार संकलन कह्या, सो च्यारि में एक मिलाए, पाच भया, तिनिका भाग दीए एक का पांचवां भाग भया। यामैं मुख जो आदिका प्रमाण एक सो समच्छेद करि मिलाएं, छह का पांचवां भाग भया। बहुरि इहां च्यारि बार कह्या है। सो तामै एक आदि एक एक बधता, च्यारि पर्यंत अंक मांडि (१।२।३।४) परस्पर गुणैं, चौबीस (२४) भये; सो भागहार, अर गच्छ दोय का प्रमाण तै लगाइ एक एक बधता अक मांडि, (२।३।४।५) परस्पर गुणें एक सौ बीस (१२०) भाज्य, सो भाज्य कौ भागहार का भाग दीये, लब्धिराशि पांच, ताकरि पूर्वोक्त छह का पांचवां भाग कौ गुणें छह भये। सोई दोय का च्यारि बार सकलन धन जानना। असैं ही तीन का तीन बार संकलन धन पीछै गच्छ तीन, एक घटाये दोय उत्तर, एक करि गुणै भी दोय, इहा तीन वार सकलन है। तातै एक अधिक बार प्रमाण च्यारि, ताका भाग दीये आधा, यामैं मुख एक जोडें ड्योढ भया। बहुरि एक आदि बार प्रमाण पर्यंत एक एक अधिक अक (१।२।३) परस्पर गुणै, भागहार छह अर गच्छ आदि एक एक अधिक अक (३।४।५) परस्पर गुणें, भाज्य साठि भाज्य कौ भागहार का भाग दीए, पाये दश, इनिकरि पूर्वोक्त ड्योढ कौ गुणै, छठा भेद विषै तीन घाटि गच्छ का तीन बार संकलन धनमात्र पिशुलिपिशुलि पद्रह हो है। असे सर्वत्र विवक्षित सकलन धन ल्यावने।

बहुरि संस्कृत टीकाकार केशववर्णी अपने अभिप्राय करि तिनि प्रक्षेपक प्रक्षेपकादिक का प्रमाण ल्यावने निमित्त दोय गाथारूप करण सूत्र कहै है –

तिरियपदे रूऊणे, तदिट्ठहेट्ठिल्लसंकलणवारा ।
कोट्ठधणस्साणयणे, पभवं इट्ठूणउड्ढपदसंखा ।।१।।

अनंत भागवृद्धि युक्त स्थाननि विषै जेथवां स्थान विवक्षित होइ, तीहि प्रमाण तिर्यग् गच्छ कहिये । तामें एक घटाए, ताके नीचें सकलन बार का प्रमाण हो है ।

इहां उदाहरण – जैसें छठा स्थान विषै गच्छ का प्रमाण छह में एक घटाएं, ताके नीचें पांच संकलन बार हो है । प्रक्षेपक सम्बन्धी कोठा के नीचें एक बार, दोय बार, तीन, च्यारि बार, पांच बार, संकलन, प्रक्षेपकप्रक्षेपक आदि के एक एक कोठानि विषैं संभवै है; असें ही अन्यत्र जानना । बहुरि विवक्षित कोठानि का सकलन घन ल्यावने के अर्थि जेथवां भेद होइ, तीहि प्रमाण जो ऊर्ध्व गच्छ, तीहि विषै जेती वार विवक्षित संकलन होइ, तितना घटायें, अवशेष मात्र प्रभव कहिये आदि जानना ।

तत्तोरूवहियकमे, गुणगारा होंति उड्ढगच्छो त्ति ।
इगिरूवमादिरूवोत्तरहारा होंत्ति पभवो त्ति ।।२।।

अर्थ – तिस आदि तें लगाइ, एक-एक बधता ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण पर्यंत, अनुक्रम करि विवक्षित के गुणकार होंहि । बहुरि तिनिके नीचौ एक तैं लगाइ, एक एक बधता, उलटा क्रम करि प्रभव जो आदि, ताका भी नीचा पर्यंत तिनिके भागहार होंहि । गुणकारनि कौ परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, ताकौ भागहारनि कौ परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीए, जेता प्रमाण आवै, तितने तहा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक आदि संबंधी कोठा विषै वृद्धि का प्रमाण आवै है ।

इहां उदाहरण कहिए है – अनंत भागवृद्धि युक्त स्थान विषै विवक्षित छठा स्थान विषै एक घाटि तिर्यग्गच्छ प्रमाण एक बार आदि पाच संकलन स्थान है । तिनि विषै च्यारि बार संकलन[1] सबंधी कोठानि विषै प्रमाण ल्याइए है । विवक्षित संकलन बार च्यारि, तिनिका इहां छठा भेद विवक्षित है । तातै ऊर्ध्वगच्छ छह, तामें घटाएं, अवशेष दोय रहे; सो आदि जानना । इस आदि दोय तैं लगाइ, एक एक अधिक ऊर्ध्वगच्छ छह पर्यंत तौ क्रम करि गुणकार होइ । अर तिनके नीचौ उलटे क्रम करि आदि पर्यंत एक आदि एक एक अधिक भागहार होइ; सो इहा च्यारि वार

[1] घ प्रति मे सकलन सकलन शब्द है ।

सकलन का कोठा विषै चूर्णि है । चूर्णि का प्रमाण जघन्य का पांच वार अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सो तितना है । तिस प्रमाण के दोय, तीन, च्यारि, पांच, छह तौ क्रम तै गुणकार होइ; अर पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक भागहार होंइ । तहा गुणकारनि करि चूर्णि कौ गुणै भागहारनि का भाग दीए, यथायोग्य अपवर्तन कीए, छह गुणां, चूर्णिमात्र तिस कोठा विषै प्रमाण आवै है ।

भावार्थ – अैसा जो दोय, तीन, च्यारि, पांच का गुणकार अर भागहार का तौ अपवर्तन भया । छह कौ एक का भागहार रह्या, तातै छह गुणां चूर्णिमात्र तहा प्रमाण है । बहुरि अैसै ही अनंत भागवृद्धि युक्त अत भेद विषै यहु स्थान सूच्यगुल का असख्यातवां भाग का जो प्रमाण तेथवां है । तातै तिर्यग्गच्छ सूच्यगुल का असंख्यातवा भागमात्र है । तामै एक घटाए, अवशेष एक वार आदि संकलन के वार है । तिनिविषै विवक्षित च्यारि बार सकलन का कोठा विषै प्रमाण ल्याइए है । विवक्षित संकलन बार च्यारि, ऊर्ध्वगच्छ सूच्यगुल का असख्यातवां भाग मात्र मै स्यो घटाए, अवशेष मात्र आदि है । यातै एक एक बधता क्रम करि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग पर्यंत तौ गुणकार होइ । अर उलटे क्रम करि एक आदि एक एक बधता पाच पर्यंत भागहार होइ, सो च्यारि बार संकलन का कोठा विषै चूर्णि है । तातै चूर्णि कौ तिनि गुणकारनि करि गुणे भागहारनि का भाग दीए, लब्धमात्र तिस कोठा विषै वृद्धि का प्रमाण है । इहां गुणकार भागहार समान नाही; तातै अपवर्तन होइ सकता नाही । इहा लब्धराशि का प्रमाण अवधिज्ञान गोचर जानना । वहुरि तिसही अनत भागवृद्धि युक्त अंत का भेद विषै विवक्षित द्विचरम चूर्णिचूर्णि का दोय घाटि, सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग मात्र बार सकलन घन का प्रमाण ल्याइए है । इहा भी तिर्यग्गच्छ सूच्यगुल का असख्यातवा भाग मात्र है । तामै एक घटाएं, एक बार आदि सकलन के बार हो है । तहां विवक्षित सकलन बार दोय घाटि, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र, सो ऊर्ध्वगच्छ सूच्यगुल का असख्यातवा भागमात्र मै घटाए, अवशेष दोय रहे, सो आदि जानना । इसतै लगाइ एक एक वधता ऊर्ध्वगच्छ पर्यंत गुणकार अनुक्रम करि हो है । अर एक आदि एक एक वधता अपने इष्ट बार का प्रमाण तै एक अधिक पर्यत उलटे क्रम करि भागहार हो है । इहां दोय आदि एक घाटि सूच्यगुल का असख्यातवा भाग पर्यंत अक गुणकार वा भागहार विषै समान है । तातै तिनिका अपवर्तन कीया । अवशेष सूच्यगुल का असख्यातवां भाग का गुणकार रह्या । एक का भागहार रह्या । इहां इस कोठा

विषै द्विचरम चूर्णिचूर्णि है; ताका प्रमाण जघन्य कौ सूच्यगुल का असंख्यातवा भागमात्र बार भाग दीएं; जो प्रमाण आवै, तितना जानना। याकौ पूर्वोक्त गुण-कार करि गुणै एक का भाग दीएं, तिस कोठा संबधी प्रमाण आवै है। बहुरि अैसें ही अंत का चूर्णिचूर्णि विषै सकलन है ही नाही; जातै अंत का चूर्णिचूर्णि एक ही है। सो जघन्य कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र बार अनत का भाग दीएं अंत चूर्णिचूर्णि का प्रमाण हो है। ताकौ एक करि गुणै भी तितना ही तिस कोठा विषै वृद्धि का प्रमाण जानना। असें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र अनतभाग वृद्धि युक्त स्थान होइ; तब एक असंख्यात भागवृद्धि युक्त स्थान हो है। इहां ऊर्वक जो अनंत भागवृद्धि युक्त अत स्थान, ताकौं चतुरंक जो असख्यात का भाग दीये, जो एक भाग का प्रमाण आवै, तितना तिस ही पूर्वस्थान विषैं जोड्या, सो इहा जघन्य ज्ञान साधिक कहिये; किछू अधिक भया। अकसंदृष्टि का दृष्टात विषै स्तोक प्रमाण है। तातें जघन्य तौ गुणकार भया। यथार्थ विषै महत् प्रमाण है, ताते असें वृद्धि होतैं भी साधिकपना ही भया है। अब जैसें जघन्य ज्ञान कौ मूल स्थापि, जैसें अनत-भागवृद्धिस्थान प्रक्षेपकादि विशेष लीये कहे थे; तैसें इहातै आगें इस साधिक जघन्य कौ मूल स्थापि, अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग मात्र जानने। असें ही पूर्वोक्त यन्त्र द्वार करि जैसें अनुक्रम दिखाया, तैसें अनंत गुणवृद्धि पर्यंत क्रम जानना। तहां भाग वृद्धि विषै प्रक्षेपकादिक वृद्धि का विशेष जानना; सो जिस स्थान तैं आगें भागवृद्धि होइ; ताकौ मूल स्थापन करना। ताकौ एक वार जिस प्रमाण की भागवृद्धि होइ, ताका एक वार भाग दीए, प्रक्षेपक हो है। दोय वार भाग दिये प्रक्षेपकप्रक्षेपक हो है। तीन वार आदि भाग दीये, पिशुलि आदिक हो है, असा विधान जानना। असें सर्वत्र षट्स्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम जानना।

आदिमछट्ठाणह्मि य, पंच य बड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वढ्डीओ होंति हु, सरिसा सव्वत्थ पदसंखा ॥३२७॥

आदिमषट्स्थाने च, पंच च वृद्धयो भवंति शेषेषु।
षड्वृद्धयो भवंति हि, सदृशा सर्वत्र पदसंख्या ॥३२७॥

टीका – इस पर्यायसमास ज्ञान विषै असंख्यात लोक मात्र वार षट्स्थान संभवै है। तिनिविषै पहिली वार तो पांच स्थान पतितवृद्धि हो है। जातै जो पीछै ही पीछै अनंतगुण वृद्धिरूप भेद भया, ताकौ दूसरी वार षट्स्थानपतित वृद्धि का

आदि स्थान कह्या है । बहुरि जैसे पहिले षट्स्थानपतित वृद्धि का क्रम कह्या, ताकौ पूर्ण करि दूसरा तैसे ही फेरि षट्स्थानपतित वृद्धि होइ असे ही तीसरा होइ । इत्यादि असख्यात लोक वार षट्स्थान हो है । तिनिविषै छहौ वृद्धि पाइये है । अनंत गुण-वृद्धि रूप तौ पहिला ही स्थान होइ । पीछै क्रमतै पाच वृद्धि, अंत की अनंत भाग-वृद्धि पर्यंत होइ । बहुरि जो अनंत भागादिक सर्व वृद्धि कही, तिन सबनि का स्थान प्रमाण सदृश सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग मात्र जानना । तातै जो वृद्धि हो है; सो अगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण वार हो है ।

छट्ठाणाणं आदी, अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं ।
जम्हा जहण्णणाणं, अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ।।३२८।।

षट्स्थानानामादिरष्टांकं भवति चरममुर्वंकम् ।
यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांकं भवति जिनदृ(दि)ष्टं ।।३२८।।

टीका – षट्स्थानपतित वृद्धिरूप स्थाननि विषै **अष्टांकं** कहिये; अनंतगुण-वृद्धि सो आदि है । बहुरि **उर्वकं** कहिये अनंत भागवृद्धि; सो अतस्थान है ।

भावार्थ – पूर्वं जो यंत्रद्वार करि वृद्धि का विधान कह्या, सो सर्व विधान होइ निवरै, तब एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि भई कहिए । विशेष इतना जो नवमी पकतिका का नवमा कोठा विषै दोय उकार अर एक आठ का अंक लिख्या है; सो ताका अर्थ यहु जो सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण अनत भाग वृद्धि होइ करि एक वार अनतगुण वृद्धि हो है । सो यहु अनतगुण वृद्धि रूप जो भेद सो नवीन पट्स्थानपतित वृद्धि का आरम्भ कीया । ताका आदि का स्थान जानना । इसतै लगाइ प्रथम कोठादिक सबधी जो रचना कही थी, तीहि अनुक्रमतै षट्स्थान-पतित वृद्धि हो है । तहां उस ही नवमी पकति का नवमां कोठा विषै आठ का अंक के पहिली जो उकार लिखा था, ताका अर्थ यहु जो सूच्यगुल का असख्यातवां भाग मात्र वार अनंत भागवृद्धि भई, तिनिविषै अंत की अनत भागवृद्धि लीए, जो स्थान सोई, इस षट्स्थानपतित वृद्धि का अंत स्थान जानना । याहीतै षट्स्थान पतित वृद्धि का आदि स्थान अष्टांक कह्या अर अतस्थानक उर्वक कह्या है । बहुरि पहिली वार अनतगुण वृद्धि बिना पच वृद्धि कही, अर पीछै छहौ वृद्धि कही है ।

यहां प्रश्न – जो पहिली वार आदि स्थान जघन्य ज्ञान है । ताकौ अष्टांक रूप अनंत गुणवृद्धि संभवै भी है कि नाही ?

ताका समाधान – जो द्विरूप वर्ग धारा विषै इस जघन्य ज्ञान तै पहिला स्थान एक जीव के अगुरुलघुगुणनि के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण है, तातै जघन्यज्ञान अनंतगुणा है । तातै पहिलीबार भी आदि स्थान जो जघन्यज्ञान, तीहि विषै अनंत गुणवृद्धि अन्य अपेक्षा सभवै है । बहुरि ज्ञान ही की अपेक्षा सभवै नाहीं; तातैं पहिली बार पंच वृद्धि ही कही संभवै है । असै जिनदेवने कह्या है, वा देख्या है । बहुरि अंत का षट्स्थान विषै भी आदि अष्टाक, अत ऊर्वक है । तातै आगै अष्टांक जो अनंत गुणवृद्धिरूप स्थान, सो अर्थ अक्षर ज्ञान है; सो आगै कहेगे, सो जानना ।

एक्कं खलु अट्ठंकं, सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य, गुणिदकमा जाव उव्वंकं ॥३२६॥

एकं खलु अष्टांकं सप्तांकं कांडकं ततोऽधः ।
रूपाधिककांडकेन च, गुणितक्रमा यावदुर्वकम् ॥३२९॥

टीका – एक बार जो षट्स्थान होइ, तीहि विषै अष्टांक कहिए अनत गुणवृद्धि सो तो एकबार ही हो है । जातै 'अंगुल असख भाग' इत्यादि सूत्र अनुसार अष्टाक के परै कोई वृद्धि नाही । तातै याके पूर्वपना का अभावतै बार बार पलटने का अभाव है । बहुरि सप्ताक कहिए असख्यात गुणवृद्धि, सो कांडकं कहिए सूच्यंगुल का असख्यातवां भागमात्र हो है । बहुरि ताके नीचै षडंक कहिए संख्यात गुणवृद्धि, पंचंकं कहिए संख्यात भाग वृद्धि, चतुरंकं कहिए असंख्यात भागवृद्धि, ऊर्वकं कहिए अनत-भागवृद्धि, ए च्यार्यो एक अधिक सूच्यगुल का असख्यातवा भाग करि गुणित अनुक्रम तै जाननी । इहां यावत् ऊर्वकं इस वचन करि उर्वक पर्यत अनुक्रम की मर्यादा कही है । सोई कहिए है – असंख्यात गुणवृद्धि का प्रमाण सूच्यगुल का असख्यातवा भाग-प्रमाण कह्या है । ताकौ एक अधिक सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग करि गुणे, जो परिमाण होइ, तितनी बार सख्यात गुणवृद्धि हो है । बहुरि याकौ भी एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग करि गुणे जो परिमाण होइ तितनी बार सख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौ भी एक अधिक सूच्यगुल का असख्यातवा भाग करि गुणे जो परिमाण होइ तितनी वार असख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौ भी एक अधिक सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग करि गुणे जो परिणाम होइ तितनी बार अनत

भागवृद्धि हो है । अैसै एक बार षट्स्थान पतित वृद्धि होने विषै पूर्वोक्त प्रमाण लीएं एक एक वृद्धि हो है । दूसरी बार आदि विषै पहिलै अष्टाक हो है । ताकै आगै ऊर्वक हो है । तातै एक ही अष्टाक है, अैसा कह्या है ।

सव्वसमासो णियमा, रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स ।
विंदस्स य संवग्गो, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३३०॥

सर्वसमासो नियमात्, रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य ।
वृंदस्य च संवर्गो, भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३३०॥

टीका – पूर्वै जो छहौ वृद्धिनि का परिमाण कह्या, तीहि सर्व का जोड दीएं, रूपाधिक कांडक कहिये । एक अधिक सूच्यगुल का असख्यातवा भाग ताका वर्ग अर घन, ताका संवर्ग कीएं सतै, जो प्रमाण होइ, तितना हो है । अैसा जिनदेवनि कह्या है ।

भावार्थ – एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग कौ दोय जायगा माडि, परस्पर गुणन कीये, जो परिमाण होय, सो तौ रूपाधिक काडक का वर्ग कहिए । बहुरि एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौ तीन जायगा माडि, परस्पर गुणन कीएं, जो परिमाण होइ, ताकौ रूपाधिक काडक का घन कहिए । बहुरि इस वर्ग कौ अर घन कौ परस्पर गुणन कीएं, जो परिमाण होइ, अथवा एक अधिक सूच्यगुल का असख्यातवां भाग कौ पाच जायगा माडि, परस्पर गुणन कीए, जो परिमाण होइ, तितनी बार एक षट्स्थान [पतित][1] वृद्धि विषै अनत भागादिक वृद्धि हो है । जैसै अक सदृष्टि करि पूर्वै यत्र विषै आठ का अंक एक बार लिख्या, अर सात का अक दोय बार लिख्या; मिलि तीन भए । बहुरि छह का अक छह बार लिख्या, मिलि तीन का वर्ग नव भया । बहुरि पच का अक अठारह बार लिख्या, मिलि तीन का घन सत्ताईस भया । बहुरि च्यारि का अक चौवन बार लिख्या, मिलि तीन करि गुणित तीन का घन इक्यासी भया । बहुरि ऊर्वक एक सौ बासठि बार लिख्या, मिलि-करि तीन का वर्ग करि गुणित, तीन का घन दोय सै तियालीस हूवा । तैसै ही अनत-गुणवृद्धि एक वार विषै काडकमात्र असंख्यात गुणवृद्धि जोडै, एक अधिक ही कांडक हो है । वहुरि तीहि अपने प्रमाण एक रूप के अर संख्यात गुणवृद्धि का काडक प्रमाण के समान गुण्यपणौ देखि, जोडै, रूपाधिक काडक का वर्ग हो है । बहुरि तिहि

१. 'पतित' शब्द किसी प्रति मे नही मिलता ।

अपने प्रमाण एक कै अर सख्यात भागवृद्धि का काडक प्रमाण कै समान गुण्यपणों देखि, जोडै, रूपाधिक काडक का घन हो है । बहुरि तिहि अपने प्रमाण एक कै अर असंख्यात भागवृद्धि का काडक प्रमाण कै समान गुण्यपनौ देखि,जोडै, रूपाधिक काडक का (वर्गकरि)[१] गुणित रूपाधिक काडक का घन हो है । बहुरि तीहि अपने प्रमाण एक कै अर अनंत भागवृद्धि का प्रमाण के समान गुण्य पनौ देखि जोडै, रूपाधिक काडक का वर्ग करि गुणित रूपाधिक कांडक का घन प्रमाण हो है । इहा अकसदृष्टि विषै कांडक का प्रमाण दोय जानना । यथार्थ विषै सूच्यगुल का असंख्यातवा भागमात्र जानना । बहुरि अंकसंदृष्टि विषै जैसै अष्टांक, सप्ताक मिलि, तीन भए । बहुरि इस प्रमाण लीए एक तौ यहु अर कांडकमात्र दोय षडक मिलि, तीन भए । ए तीन तौ गुणकार अर पूर्वोक्त तीन गुण्य सो गुणकार करि गुण्य कौ गुणै, तीन का वर्ग भया । तैसै ही अनंत गुणवृद्धि, असख्यात गुणवृद्धि कौ मिल्या हूवा अपना प्रमाण रूपाधिक कांडक, तिहि मात्र एक तौ यहु अर कांडकमात्र संख्यात गुणवृद्धि, सो मिलि रूपाधिक काडकमात्र गुणकार हूवा । याकरि पूर्वोक्त रूपाधिक कांडकमात्र गुण्य कौ गुणै, रूपाधिक कांडक का वर्ग हो है; अैसै ही अन्य विषै भी जानि लेना । अैसै जो यहु सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग का वर्ग करि ताहीका घन कौ गुणै, जो प्रमाण हो है, सो असंख्यात घनागुलमात्र हो है । वा सख्यात घनांगुलमात्र हो है । वा घनागुलमात्र हो है । वा घनागुल के सख्यातवे भाग मात्र हो है । वा घनागुल के असख्यातवे भागमात्र हो है । सो हम जान्या नाही; सर्वज्ञदेव यथार्थ जान्या है; सो प्रमाण है ।

उक्कस्ससंखमेत्तं, तत्ति चउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं च भागं, गंतूण य लद्धिअक्खरं दुगुणं ॥३३१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्र, तत्त्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत्षट्पंचाशम् ।
सप्तदशमं च भागं, गत्वा च लब्ध्यक्षरं द्विगुणम् ॥३३१॥

टीका – एक अधिक सूच्यंगुल का असख्यात भाग करि गुण्या हूवा अगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण तौ अनत भागवृद्धि स्थान होइ । अर अगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण असख्यात भागवृद्धि स्थान होइ तव एक वार सख्यात भागवृद्धि हो है । तहा पूर्ववृद्धि होतै जो साधिक जघन्यज्ञान भया, ताकौ एक अधिक

---

१. 'वर्गकरि' शब्द किसी प्रति मे नही मिलता ।

उत्कृष्ट सख्यात करि गुणिये अर उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीजिये, तितने मात्र भया। बहुरि आगै पूर्वोक्त अनुक्रम लीये अनत असख्यात भागवृद्धि सहित सख्यात भागवृद्धि के स्थान उत्कृष्ट सख्यात मात्र होइ। तहा प्रक्षेपक सबधी वृद्धि का प्रमाण जोडें, लब्ध्यक्षर जो सर्व तै जघन्य पर्याय नामा ज्ञान, सो साधिक द्विगुणा हो है। कैसे ? सो कहिये है —

पूर्ववृद्धि भये जो साधिक जघन्यज्ञान भया, सो मूल स्थाप्या। बहुरि इहां संख्यात भागवृद्धि की विवक्षा है। तातै याकौ उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीयें, प्रक्षेपक हो है। बहुरि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होइ, सो इहा उत्कृष्ट संख्यात मात्र संख्यातवृद्धि के स्थान भये है। तातै उत्कृष्ट सख्यातमात्र प्रक्षेपक वधावने। तहां मूल साधिक जघन्य ज्ञान तो जुदा राखना। अर तिस साधिक जघन्य ज्ञान कौ उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीये, प्रक्षेपक हो है। अर इहा उत्कृष्ट संख्यातमात्र प्रक्षेपक है। तातै उत्कृष्ट सख्यात ही का गुणकार भया, सो गुणकार भागहार का अपवर्तन कीये, साधिक जघन्य रह्या। याकौ जुदा राख्या हूवा साधिक जघन्य विषै जोडें, जघन्यज्ञान साधिक दूणा हो है। बहुरि **'तत्ति चउत्थं'** कहिये पूर्वोक्त संख्यात भागवृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान, तिनिकौ च्यारि का भाग देइ, तिन विषै तीन भाग प्रमाण स्थान भये। तहा प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक, इनि दोऊ वृद्धिनि कौ साधिक जघन्य विषै जोडें, लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूणा हो है। कैसे सो कहिये है – इहां पूर्ववृद्धि भये जो साधिक जघन्य ज्ञान भया, ताकौ दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दिये, प्रक्षेपक - प्रक्षेपक हो है। सो एक घाटि गच्छ का एक बार सकलन घनमात्र प्रक्षेपक - प्रक्षेपकनि की वृद्धि इहा करनी। तहा पूर्वोक्त केशववर्णी करि कह्या करण सूत्र के अनुसार तिस प्रक्षेपक - प्रक्षेपक कौ एक घाटि उत्कृष्ट सख्यात का तीन चौथा भाग करि अर उत्कृष्ट सख्यात का तीन चौथा भाग करि गुणन करना। अर दोय का एक का भाग देना। साधिक जघन्य ज्ञान की सहनानी असी है। ज असे कीए साधिक जघन्य कौ एक घाटि, तीन गुणा उत्कृष्ट सख्यात का अर तीन गुणा उत्कृष्ट सख्यात का गुणकार भया। अर दोय बार उत्कृष्ट संख्यातका अर च्यारि, दोय, च्यारि, एक का भागहार भया। तहा एक घाटि सबधी ऋणराशि साधिक जघन्य कौ तीन का गुणकार अर उत्कृष्ट सख्यात का अर बत्तीस का भागहार कीएं हो है। ताकौ जुदा राखि, अवशेष का अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य कौ नव का गुणकार, बत्तीस का भागहार मात्र प्रमाण भया। इहा दोय वार उत्कृष्ट सख्यात का गुणकार

अर भागहार का अपवर्तन कीया। गुणकार तीन तीन परस्पर गुणै, नव का गुणकार भया। च्यारि, दोय, च्यारि, एक भागहारनि कौं परस्पर गुणें, बत्तीस का भागहार भया। जातै दोय, तीन, आदि राशि गुणकार भागहार विषै होय। तहा परस्पर गुणै, जेता प्रमाण होइ, तितना गुणकार वा भागहार तहा जानना। अैसें ही अन्यत्र भी समझना। बहुरि यामैं एक गुणकार साधिक जघन्य का बत्तीसवा भागमात्र है। ताकौ जुदा स्थापि, अवशेष साधिक जघन्य कौ आठ का गुणकार, बत्तीस का भागहार रह्या, ताका अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य का चौथा भाग भया। बहुरि प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण है; सो साधिक जघन्य कौ एक बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं प्रक्षेपक होइ। ताकौं उत्कृष्ट संख्यात का तीन चौथा भाग करि गुणना, तहा उत्कृष्ट संख्यात गुणकार भागहार का अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य का तीन चौथा भागमात्र प्रमाण भया। यामै पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोडै, साधिक जघन्य मात्र वृद्धि का प्रमाण भया। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडै, लब्ध्यक्षर दूणा हो है। इहा प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी ऋणराशि घनराशि तै संख्यात गुणा घाटि है। तातै साधिक जघन्य का बत्तीसवा भागमात्र घनराशिविषै ऋणराशि घटावने कौ किंचित् ऊन करि अवशेष पूर्वोक्त विषै जोडै, साधिक दूणा हो है। बहुरि 'एक्कदालछप्पण्ण' कहिये, पूर्वोक्त संख्यात भागवृद्धि सयुक्त उत्कृष्ट सख्यात मात्र स्थाननि कौ छप्पन का भाग देइ, तिनि विषै इकतालीस भागमात्र स्थान भये। तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबधी वृद्धि जोडै, लब्ध्यक्षर दूणा हो है। कैसे ?

सो कहिये है – साधिक जघन्य कौ उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीएं, प्रक्षेपक होइ, सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है। तातै याकौ उत्कृष्ट सख्यात इकतालीस छप्पनवां भाग करि गुणें, उत्कृष्ट सख्यात का अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य कौं इकतालीस का गुणकार छप्पन भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार सकलन घनमात्र है। सो पूर्वोक्त सूत्र के अनुसारि साधिक जघन्य कौ दोय बार उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीएं प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ। ताकौ एक घाटि इकतालीस गुणां उत्कृष्ट संख्यात अर इकतालीस गुणा उत्कृष्ट सख्यात का गुणकार अर छप्पन, दोय छप्पन, एक का भागहार भया। इहां एक घाटि संबन्धी ऋण साधिक जघन्य कौ इकतालीस का गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यात एक सौ बारा छप्पन का भागहार मात्र जुदा स्थापि, अवशेष विषै दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं सोला सै इक्यासी का गुणकार अर

एक सौ बारा गुणा छप्पन का भागहार हो है। इहां गुणकार विषै इकतालीस इकतालीस परस्पर गुणै, सोलह सै इक्यासी भये है। बहुरि भागहार विषै छप्पन कौ दोय करि गुणै, एक सौ बारह भये। अगले छप्पन कौ एक करि गुणै, छप्पन भये जानने। बहुरि इहां गुणाकार मे एक जुदा स्थापिये, ताका साधिक जघन्य कौ एक सौ बारह गुणा छप्पन का भागहार मात्र घन जानना। अवशेष साधिक जघन्य कौ सोलह सै अस्सी का गुणकार एक सौ बारा गुणा छप्पन का भागहार रह्या। तहां एक सौ बारह करि अपवर्तन कीये साधिक जघन्य कौ पंद्रह का गुणकार छप्पन का भागहार भया। यामै प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण जघन्य कौ इकतालीस का गुणकार अर छप्पन का भागहार मात्र मिलाएं अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य मात्र वृद्धि का प्रमाण भया। यामै मूल साधिक जघन्य जोडै, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। इहां प्रक्षेपक - प्रक्षेपक सबंधी पूर्वोक्त घन तै ऋण संख्यात गुणा घाटि है। तातै किंचित् ऊन कीया, जो घन राशि, ताकौ अधिक कीए साधिक दूणा हो है। बहुरि **'सत्त दशमं च भाग'** वा कहिए अथवा सख्यात (भाग) वृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट सख्यात मात्र स्थानकनि कौ दश का भाग दीजिये। तहां सात भाग मात्र स्थान भए। तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक अर पिशुलि नामा तीन वृद्धि जोडै, साधिक जघन्य ज्ञान दूणा हो है। कैसे ?

सो कहिए है – साधिक जघन्य कौ एक बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीये प्रक्षेपक हो है। सो गच्छ मात्र है। तातै याकौ उत्कृष्ट संख्यात का सात दशवां भाग करि गुणै, उत्कृष्ट सख्यात का भाग दीएं, साधिक जघन्य कौ सात का गुणकार अर दश का भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार सकलन घनमात्र हो है। सो साधिक जघन्य कौ दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं, प्रक्षेपक - प्रक्षेपक होइ, ताकौ पूर्व सूत्र के अनुसारि एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट सख्यात का अर सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का तौ गुणकार अर दश दोय अर दश एक का भागहार भया। बहुरि पिशुलि दोय घाटि गच्छ का अर दोय बार संकलन घनमात्र हो है। सो साधिक जघन्य कौ तीन बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीए पिशुलि हो है। ताकौ पूर्व सूत्र के अनुसारि दोय घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात अर एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात सातगुणा उत्कृष्ट सख्यात का तौ गुणकार अर दश तीन, दश दोय, दश एक का भागहार भया। इनि विषै पिशुलि का गुणकार विषै दोय घटाया था, तीहि सबधी प्रथम ऋण का प्रमाण साधिक

जघन्य कौ दोय का अर एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट सख्यात का अर सात गुणा उत्कृष्ट सख्यात का गुणाकार बहुरि दोय बार[1] उत्कृष्ट सख्यात का अर छह का अर तीन बार दश का भागहार कीएं हो है । ताकौ जुदा स्थापि, अवशेष का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौ एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट सख्यात का अर गुणचास का तौ गुणाकार भया । बहुरि उत्कृष्ट संख्यात छह हजार का भागहार हो है । इहां गुणाकार विषै एक घाटि है; तीहि संबधी द्वितीय ऋण का प्रमाण साधिक जघन्य कौ गुणचास का गुणाकार बहुरि उत्कृष्ट सख्यात अर छह हजार का भागहार कीएं हो है । ताकौ जुदा स्थापि, अवशेष का अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य कौ तीन सैं तियालीस का गुणाकार अर छह हजार का भागहार हो है । इहा गुणाकार मैं तेरह घटाइ, जुदा स्थापिए । तहां साधिक जघन्य कौ तेरह का गुणाकार अर छह हजार का भागहार जानना । अवशेष साधिक जघन्य कौ तीन सै तीस का गुणाकार अर छह हजार का भागहार रह्या । तहां तीस करि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्य कौ ग्यारह का गुणाकार, दश गुणा बीस का भागहार भया; सो एक जायगा स्थापिए । बहुरि इहां तेरह गुणाकार मैं स्यो काढि जुदे स्थापि थे, तीहिं संबधी प्रमाण तै प्रथम, द्वितीय ऋण संबधी प्रमाण संख्यातगुणा घाटि है । तातै किंचित् ऊन करि साधिक जघन्य किंचिदून तेरह गुणा कौ छह हजार का भाग दीए, इतना धन अवशेष रह्या, सो जुदा स्थापिए । बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबधी गुणाकार विषै एक घटाया था, तिहि सबधी ऋण का प्रमाण साधिक जघन्य कौं सात का गुणाकार, बहुरि उत्कृष्ट सख्यात अर दोय सै का भागहार कीए हो है । ताकौ जुदा स्थापि, अवशेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्य कौ उत्कृष्ट संख्यात का गुणाकार अर दोय बार सात का गुणकार, अर उत्कृष्ट सख्यात दश दोय दश एक का भागहार, ताका अपवर्तन वा परस्पर गुणन कीए, साधिक जघन्य कौ गुणचास का गुणकार दोय सै का भागहार भया । यामै पूर्वोक्त पिशुलि संबंधी ग्यारह गुणाकार मिलाए, साधिक जघन्य कौ साठि का गुणाकार दोय सै का भागहार भया । इहां बीस करि अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य कौ तीन का गुणकार, दश का भागहार भया । यामै प्रक्षेपक सबंधी प्रमाण साधिक जघन्य कौ सात का गुणाकार, दश का भागहार जोडै, दश करि अपवर्तन कीए, वृद्धि का प्रमाण साधिक जघन्य हो है । यामै मूल साधिक जघन्य जोडै, लब्ध्यक्षर दूणा हो है । बहुरि पूर्वै पिशुलि संबंधी ऋण रहित घन विषै किंचिदून तेरह

१. ब, ग प्रति मे 'तीनवार' मिलता है ।

का गुणकार था, तिस विषै प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी ऋण संख्यात गुणा घाटि है। ताकौ घटावने के अर्थि बहुरि किंचित् ऊन कीएं, जो साधिक जघन्य कौं दोय बार किंचिदून तेरह का गुणकार अर छह हजार का भागहार भया। सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूणां लब्ध्यक्षर विषै जोडै, साधिक दूणा हो है। असैं प्रथम तौ संख्यात भागवृद्धि युक्त जे स्थान, तिनि विषै उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननि का सात दशवां भाग प्रमाण स्थान पिशुलि वृद्धि पर्यंत भए लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि तिसही का इकतालीस छप्पनवां भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक- प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि आगे भी संख्यात (भाग) वृद्धि का पहिला स्थान तैं लगाइ उत्कृष्ट सख्यात मात्र स्थाननि का तीन चौथा भाग मात्र स्थान प्रक्षेपक - प्रक्षेपक वृद्धि पर्यत भएं, लब्ध्याक्षर ज्ञान दूणां हो है। बहुरि तैसैं ही संख्यात वृद्धि का पहिला स्थान तै लगाइ, उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान प्रक्षेपक वृद्धिपर्यंत भएं, लब्ध्यक्षरज्ञान दूणा हो है।

इहां प्रश्न – जो साधिक जघन्य ज्ञान दूणा भया सो साधिक जघन्य ज्ञान तौ पर्यायसमास ज्ञान का मध्य भेद है, इहां लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा कैसै कह्या है ?

ताकां समाधान – जो उपचार करि पर्यायसमास ज्ञान के भेद कौं भी लब्ध्यक्षर कहिए। जातै मुख्यपनै लब्ध्यक्षर है नाम जाका, असा जो पर्याय ज्ञान, ताका समीपवर्ती है।

भावार्थ – इहां असा जो लब्ध्यक्षर नाम तै इहां पर्यायसमास का यथासभव मध्यभेद का ग्रहण करना। बहुरि चकार करि गत्वा कहिए असै स्थान प्रति प्राप्त होइ, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है, असा अर्थ जानना।

एवं असंखलोगा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा, अक्खरगं उवरि बोच्छामि ॥३३२॥[1]

एवमसंख्यलोकाः, अनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि।
ते पर्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥३३२॥

---

१ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

टीका – याप्रकार अनक्षरात्मक जो पर्यायसमास ज्ञान के भेद, तिनि विषै षट्स्थान (पतित) वृद्धि असंख्यातलोकमात्र बिरियां हो है। सो ही कहिए है - जो एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग का वर्ग करि तिस ही के घन कौ गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने भेदनि विषै एक बार षट्स्थान होइ, तौ असख्यात लोक प्रमाण पर्यायसमास ज्ञान के भेदनि विषै केती बार षट्स्थान होइ; असैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाणराशि एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग का वर्ग करि गुणित, ताहीका घनप्रमाण अर फलराशि एक, इच्छाराशि असख्यात लोक पर्यायसमास के स्थानमात्र, तहां फल करि इच्छा कौ गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, जेता लब्धराशि का प्रमाण आवै, तितनी बार सर्व भेदनि विषै षट्स्थान पतित वृद्धि हो है। सो भी असंख्यात लोक मात्र हो है। जातै असंख्यात के भेद घने है। तातै हीनाधिक होतै भी असंख्यात लोक ही कहिए। याप्रकार असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान वृद्धि करि वर्धमान जघन्य ज्ञान तै अनंत भागवृद्धि लीएं प्रथम स्थान तै लगाइ, अंत का षट्स्थान विषै अंत का अनंत भागवृद्धि लीएं, स्थान पर्यंत जेते ज्ञान के भेद, ते ते सर्व पर्यायसमास ज्ञान के भेद जानने।

अब इहांतै आगै अक्षरात्मक श्रुतज्ञान को कहै है –

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं।
अत्थक्खरं तु णाणं, होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३३३॥[1]

चरमोर्वकेणावहितार्थाक्षरगुणितचरमोर्वकम्।
अर्थाक्षरं तु ज्ञानं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३३३॥

टीका – पर्याय समास ज्ञान विषै असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान कहे। तिनिविषै वृद्धि कौ कारण सख्यात, असख्यात, अनत ते अवस्थित है, नियमरूप प्रमाण धरें है। संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट सख्यात मात्र, असंख्यात का असंख्यात लोक मात्र, अनंत का प्रमाण जीवराशि मात्र जानना। बहुरि अंत का षट्स्थान विषै अंत का उर्वक जो अनंतभागवृद्धि, ताकौ लीएं पर्याय समास ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट भेद, तातै आगै अष्टांक कहिए, अनत गुणवृद्धि संयुक्त जो ज्ञान का स्थान, सो अर्थाक्षर श्रुतज्ञान है। पूर्वै अष्टांक का प्रमाण नियमरूप जीवराशि मात्र गुणा था, इहां अष्टांक का

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

प्रमाण, सो न जानना, अन्य जानना । सोई कहिए है - असख्यात लोक मात्र षट्स्थान नि विषै जो अंत का षट्स्थान, ताका अंत का ऊर्वक वृद्धि लीएं जो सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान ताकौ एक बार अष्टांक करि गुणै, अर्थाक्षर ज्ञान हो है । तातै याकौं अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहिए ।

सो अष्टांक कितने प्रमाण लीएं हो है; सो कहिए है - श्रुत केवलज्ञान एक घाटि, एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षरनि का समूह रूप है । ताकौ एक घाटि, एकट्ठी का भाग दीएं, एक अक्षर का प्रमाण आवै है । तहां जेता ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण है, ताकौ सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान का भेदरूप ऊर्वक के अविभाग प्रतिच्छेदनि के प्रमाण का भाग दीएं जेता प्रमाण आवै, सोई इहां अष्टांक का प्रमाण जानना । तातै अब तिस अर्थाक्षर ज्ञान की उत्पत्ति कौ कारण, जो अंत का ऊर्वक, ताकरि भाजित जो अर्थाक्षर, तीहि प्रमाण अष्टांक करि गुण्य, जो अंत का ऊर्वक, ताकौ गुणें; अर्थाक्षर ज्ञान हो है । यह कथन युक्त है । असा जिनदेव कह्या है । बहुरि यह कथन अंत विषै धर्या हूवा दीपक समान जानना । तातै असे ही पूर्वं भी चतुरंक आदि अष्टांक पर्यंत षट् स्थाननि के भागवृद्धि युक्त वा गुणवृद्धि युक्त जे स्थान है, ते सर्व अपना अपना पूर्व ऊर्वक युक्त स्थान का भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितने प्रमाण करि तिस पूर्वस्थान तै गुणित जानने । असे श्रुत केवलज्ञान का सख्यातवां भाग मात्र अर्थाक्षर श्रुतज्ञान जानना । अर्थ का ग्राहक अक्षर तै उत्पन्न भया जो ज्ञान, सो अर्थाक्षर ज्ञान कहिए । अथवा **अर्यते** कहिए जानिए, सो अर्थ, अर द्रव्य करि न विनशै सो अक्षर । जो अर्थ सोई अक्षर, ताका जो ज्ञान, सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये । अथवा **अर्यते** कहिये श्रुतकेवलज्ञान का सख्यातवा भाग करि जाका निश्चय कीजिये; असा एक अक्षर, ताका ज्ञान, सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये ।

अथवा अक्षर तीन प्रकार है — लब्धि अक्षर, निर्वृत्ति अक्षर, स्थापना अक्षर । तहा पर्यायज्ञानावरण आदि श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यंत के क्षयोपशम तै उत्पन्न भई जो पदार्थ जानने की शक्ति, सो लब्धिरूप भाव इंद्रिय, तीहि स्वरूप जो अक्षर कहिये अविनाश, सो लब्धि - अक्षर कहिये । जातै अक्षर ज्ञान उपजने कौ कारण है । बहुरि कंठ, होठ, तालवा आदि अक्षर बुलावने के स्थान अर होठनि का परस्पर मिलना, सो स्पृष्टता ताकौ आदि देकरि प्रयत्न, तीहि करि उत्पन्न भया शब्द-

रूप अकारादि स्वर अर ककारादिक व्यंजन अर संयोगी अक्षर, सो निर्वृत्ति अक्षर कहिये। बहुरि पुस्तकादि विषैं निज देश की प्रवृत्ति के अनुसारि अकारादिकनि का आकार करि लिखिए सो स्थापना अक्षर कहिये। इस प्रकार जो एक अक्षर, ताकौं सुनने तैं भया जो अर्थ का ज्ञान, हो अक्षर श्रुतज्ञान है; असा जिनदेवने कह्या है। उन ही के अनुसारि मैं भी कुछ कह्या है।

आगें श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव शास्त्र के विषय का प्रमाण कहैं हैं —

पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥३३४॥

प्रज्ञापनीया भावा, अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानाम्।
प्रज्ञापनीयानां पुनः, अनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥३३४॥

टीका – **अनभिलाप्यानां** कहिए वचन गोचर नाही, केवलज्ञान ही के गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ, तिनके अनंतवें भागमात्र जीवादिक अर्थ, ते **प्रज्ञापनीयाः** कहिए तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि करि कहने में आवैं असैं है। बहुरि तीर्थंकर की दिव्यध्वनि करि पदार्थ कहने में आवैं है तिनके अनंतवे भागमात्र द्वादशांग श्रुतविषैं व्याख्यान कीजिए है। जो श्रुतकेवली कौं भी गोचर नाही; असा पदार्थ कहने की शक्ति दिव्यध्वनि विषैं पाइए है। बहुरि जो दिव्यध्वनि करि न कह्या जाय, तिस अर्थ कौ जानने की शक्ति केवलज्ञान विषैं पाइए है। असा जानना।

आगें दोय गाथानि करि अक्षर समास कौ प्ररूपैं है —

एयक्खरादु उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
संखेज्जे खलु उड्ढे, पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥ [1]

एकाक्षरात्तुपरि, एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः।
संख्येये खलु वृद्धे, पदनाम भवति श्रुतज्ञानम् ॥३३५॥

टीका – एक अक्षर तैं उपज्या जो ज्ञान, ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम विना एक एक अक्षर बधता सो दोय अक्षर, तीन अक्षर, च्यारि अक्षर इत्यादिक एक घाटि पद का अक्षर पर्यंत अक्षर समुदाय का सुनने करि उपजैं असैं अक्षर समास के भेद संख्यात जानने। ते दोय घाटि पद के अक्षर जेते होंइ

---

१. – षट्खंडागम-धवला, पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

तितने है । बहुरि इसके अनंतरि उत्कृष्ट अक्षर समास के विषै एक अक्षर बधतै पद-नामा श्रुतज्ञान हो है ।

सोलस-सय-चउतीसा, कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।
सत्तसहस्साट्ठसया, अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥३३६॥[1]

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटयः त्र्यशीतिलक्षकं चैव ।
सप्तसहस्राण्यष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥३३६॥

टीका – पद तीन प्रकार है – अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद ।

तहां जिहिं अक्षर समूह करि विवक्षित अर्थ जानिये, सो तौ अर्थपद कहिये । जैसे कह्या कि **'गामभ्याज शुक्लां दंडेन'** इहां इस शब्द के च्यारि पद हैं – १. गां, २. अभ्याज, ३. शुक्लां, ४. दंडेन । ये च्यारि पद भए । अर्थ याका यहु - जो गाय कौ घेरि, सुफेद कौ दंड करि । असै कह्या कि **'अग्निमानय'** इहां दोय पद भए । अग्निं, आनय । अर्थ यहु जो – अग्नि को ल्याव । असै विवक्षित अर्थ के अर्थी एक, दोय आदि अक्षरनि का समूह, ताकौ अर्थपद कहिये ।

बहुरि प्रमाण जो संख्या, तिहिनै लीएं, जो पद कहिये अक्षर समूह, ताकौ प्रमाण पद कहिये । जैसे अनुष्टुप छद के च्यारि पद, तहां एक पद के आठ अक्षर होइ । **'नमः श्रीवर्द्धमानाय'** यहु एक पद भया । याका अर्थ यहु जो श्रीवर्धमान स्वामी के अर्थि नमस्कार होहु; असै प्रमाणपद जानना ।

बहुरि सोलासै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषै कहे अपुनरुक्त अक्षर, तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये । इनिविषै अर्थ पद अर प्रमाण पद तौ हीन - अधिक अक्षरनि का प्रमाण कौं लीएं, लोकव्यवहार करि ग्रहण कीएं है । तातै लोकोत्तर परमागम विषै गाथा विषै कही जो सख्या, तींहि विषै वर्तमान जो मध्यमपद, ताहीका ग्रहण जानना ।

आगै सघात नामा श्रुतज्ञान कौ प्ररूपै है –

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २३ की टीका ।

एयपदादो उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जसहस्सपदे, उड्ढे संघादणाम सुदं ।।३३७।।[1]

एकपदादुपरि, एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्यातसहस्रपदे, वृद्धे सघातनाम श्रुतम् ।।३३७।।

टीका – एक पद के ऊपरि एक एक अक्षर बधतै - बधतै एक पद का अक्षर प्रमाण पदसमास के भेद भएं, पदज्ञान दूणा भया । बहुरि इसतै एक- एक अक्षर बधतै बधतै पदका अक्षर प्रमाण पदसमास के भेद भएं, पदज्ञान तिगुणा भया । अैसें ही एक एक अक्षर की बधवारी लीएं पद का अक्षर प्रमाण पदसमास ज्ञान के भेद होत सतै चौगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजार करि गुण्या हूवा पद का प्रमाण में एक अक्षर घटाइये, तहा पर्यंत पदसमास के भेद जानने । पदसमास ज्ञान का उत्कृष्ट भेद विषै सोई एक अक्षर मिलाये, सघात नामा श्रुतज्ञान हो है । सो च्यारि गति विषै एक गति के स्वरूप का निरूपणहारे जो मध्यमपद, तिनिका समूहरूप सघात नामा श्रुतज्ञान के सुनने तै जो अर्थज्ञान भया, ताकौं सघात श्रुतज्ञान कहिये ।

आगें प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान के स्वरूप कौं कहै है –

एक्कदर-गदि-णिरूवय-संघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे, संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती ।।३३८।।

एकतरगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्येये, सघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ।।३३८।।

टीका – एक गति का निरूपण करणहारा जो सघात नामा श्रुतज्ञान, ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार करि एक एक अक्षर की बधवारी लीयें, एक एक पद की वृद्धि करि संख्यात हजार पद का समूहरूप सघात श्रुत होइ । बहुरि इस ही अनुक्रम तै संख्यात हजार सघात श्रुत होइ । तिहि मै स्यो एक अक्षर घटाइये तहा पर्यंत सघात समास के भेद जानना । बहुरि अत का सघात समास श्रुतज्ञान का उत्कृष्ट भेद विषै वह[2] अक्षर मिलाइये, तब प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान हो है । सो नरकादि च्यारि गति

---

१ षट्खडागम–धवला पुस्तक ६, पृष्ट २३ की टीका ।
२ ब, घ, प्रति मे 'छह' शब्द मिलता है ।

का स्वरूप विस्तार पनै निरुपण करनहारा जो प्रतिपत्तिपक ग्रंथ, ताके सुनने तै जो अर्थज्ञान भया, ताकौ प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिए।

आगै अनुयोग श्रुतज्ञान कौं प्ररूपै हैं –

चउगइ-सरूवपरूवय-पडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे, पडिवत्तीउड्ढम्हि अणियोगं ॥३३९॥[1]

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तितस्तु उपरि पूर्वं वा।
वर्णे संख्याते, प्रतिपत्तिवृद्धे अनुयोगं ॥३३९॥

टीका – च्यारि गति के स्वरूप का निरूपण करणहारा प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान के ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षर की वृद्धि लीये संख्यात हजार पदनि का समुदायरूप सख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनि का समूह प्रतिपत्तिक, सो अैसे प्रतिपत्तिक सख्यात हजार होइ; तिनिविषै एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञान के भेद भए। बहुरि तिसका अंत भेद विषै वह एक अक्षर मिलाये, अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया, सो चौदै मार्गणा के स्वरूप का प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत, ताके सुनने तै जो अर्थज्ञान भया, ताकौ अनुयोग नामा श्रुतज्ञान कहिए।

आगै प्राभृतप्राभृतक श्रुतज्ञान कौ दोय गाथानि करि कहै है –

चोद्दस-मग्गण-संजुद-अणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादी-अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥३४०॥[2]

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्धिते वर्णे।
चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ॥३४०॥

टीका – चौदह मार्गणा करि सयुक्त जो अनुयोग, ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षर की वृद्धि करि संयुक्त पद-संघात प्रतिपत्तिक, इनिकौ पूर्वोक्त अनुक्रम तै वृद्धि होतै च्यारि आदि अनुयोगनि की वृद्धि विषै एक अक्षर घटाइये। तहा पर्यंत अनुयोग समास के भेद भए। बहुरि तिसका अत भेद विषै वह एक अक्षर मिलाये, प्राभृत प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है।

---

१ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका।
२ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका।

अहियारो पाहुडयं, एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।
पाहुडपाहुडणामं, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३४१॥

अधिकारः प्राभृतमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः ।
प्राभृतप्राभृतनामा, भवति इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३४१॥

टीका – आगे कहियेगा, जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान, ताका जो एक अधिकार, ताहीका नाम प्राभृत कहिये । बहुरि जो उस प्राभृतक का एक अधिकार, ताका नाम प्राभृतक प्राभृतक कहिये; असैं जिनदेवने कह्या है ।

आगे प्राभृतक का स्वरूप कहै है –

दुगवारपाहुडादो, उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥३४२॥[1]

द्विकवारप्राभृतादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्विंशतौ ।
द्विकवारप्राभृते सवृद्धे खलु भवति प्राभृतकम् ॥३४२॥

टीका – द्विकवार प्राभृतक जो प्राभृतक - प्राभृतक, ताके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रम तै एक एक अक्षर की वृद्धि लीयें चौवीस प्राभृतक - प्राभृतकनि की वृद्धि विषै एक अक्षर घटाइये, तहां पर्यंत प्राभृतक - प्राभृतक समास के भेद जानने । बहुरि ताका अंत भेद विषै एक अक्षर मिलायें; प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है ।

भावार्थ – एक एक प्राभृतक नामा अधिकार विषै चौवीस-चौवीस प्राभृतक-प्राभृत्तक नामा अधिकार हो है ।

आगे वस्तु नामा श्रुतज्ञान कौ प्ररूपै है –

वीसं वीसं पाहुड-अहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी, कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥३४३॥[2]

विंशतौ विंशतौ प्राभृताधिकारे एको वस्त्वधिकारः ।
एकैकवर्णवृद्धिः, क्रमेण सर्वत्र ज्ञातव्या ३४३॥

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका ।
२. षट्खडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २५ की टीका ।

टीका – तिहि प्राभृतक के ऊपर पूर्वोक्त अनुक्रम तैं एक एक अक्षर की वृद्धि नैं लीए, पदादिक की वृद्धि करि संयुक्त बीस प्राभृतक की वृद्धि होतैं सतैं, वामैं एक अक्षर घटाइये, तहा पर्यंत प्राभृतक समास के भेद जानने। वहुरि ताका अंत भेद विषै वह एक अक्षर मिलायें, वस्तु नामा अधिकार हो है।

भावार्थ – पूर्व संबंधी एक एक वस्तु नामा अधिकार विषै बीस बीस प्राभृतक पाइये है। बहुरि सर्वत्र अक्षर समास का प्रथम भेद तै लगाइ पूर्वसमास का उत्कृष्ट भेद पर्यंत अनुक्रम तै एक एक अक्षर बढावना। बहुरि पद का बढावना, बहुरि समास का बढावना इत्यादिक परिपाटी करि यथासभव वृद्धि सबनि विषै जानना, सो सूत्र के अनुसारि व्याख्यान टीका विषै करते ही आये है।

आगै तीन गाथानि करि पूर्व नामा श्रुतज्ञान कौ कहै है –

दसचोदसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च।
वीसं तीसं पण्णारसं च, दस चदुसु वत्थूणं ॥३४४॥

दश चतुर्दशाष्ट अष्टादशकं द्वादश च द्वादश षोडश च।
विंशतिः त्रिंशत् पंचदश च, दश चतुर्षु वस्तूनाम् ॥३४४॥

टीका – तिहि वस्तु श्रुत के ऊपरि एक एक अक्षर की वृद्धि लीए, अनुक्रम तै पदादिक की वृद्धि करि सयुक्त क्रम तै दश आदि वस्तुनि की वृद्धि होत सतैं, उनमैं सौ एक एक अक्षर घटावनै पर्यंत वस्तु समास के भेद जानने। बहुरि तिनके अत भेदनि विषै अनुक्रम तैं एक एक अक्षर मिलाएं, चौदह पूर्व नामा श्रुतज्ञान होइ। तहा आगे कहिए है।

उत्पाद नामा पूर्व आदि चौदह पूर्व, तिनिविषै अनुक्रम तै दश (१०), चौदह (१४), आठ (८), अठारह (१८), बारह (१२), बारह (१२), सोलह (१६), वीस (२०), तीस (३०), पद्रह (१५), दश (१०), दश (१०), दश (१०), दश (१०) वस्तु नामा अधिकार पाइए है।

---

१ – पट्खडागम–धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २५ की टीका।

उप्पाय-पुव्वगाणिय-विरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे, आदाकम्मप्पवादे य ॥३४५॥

पच्चाक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे, कमसोथ तिलोयबिंदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्वाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिकप्रवादानि ।
ज्ञानसत्यप्रवादे, आत्मकर्मप्रवादे च ॥३४५॥

प्रत्याख्यानं वीर्यानुवादकल्याणप्राणवादानि च ।
क्रियाविशालपूर्वं, क्रमशः अथ त्रिलोकबिंदुसारं च ॥३४६॥

टीका – चौदह पूर्वनि के नाम अनुक्रम तै असैं जानने । १. उत्पाद, २. आग्रायणीय, ३. वीर्यप्रवाद, ४. अस्ति नास्ति प्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यानप्रवाद, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणवाद, १३. क्रियाविशाल, १४. त्रिलोकबिंदुसार ये चौदह पूर्वनि के नाम जानने ।

इनिकै लक्षण आगै कहेगे – इहां असैं जानना पूर्वोक्त वस्तुश्रुतज्ञान के ऊपरि क्रम तै एक एक अक्षर की वृद्धि लीएं, पदादिक की वृद्धि होतैं, दश वस्तु प्रमाण मे स्यों एक अक्षर घटाइए, तहा पर्यंत वस्तु समास ज्ञान के भेद है । ताके अंत भेद विषै वह एक अक्षर मिलाएं, उत्पाद पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है ।

बहुरि उत्पाद पूर्व श्रुतज्ञान के ऊपरि एक-एक अक्षर-अक्षर की वृद्धि लीयें, पदादि की वृद्धि संयुक्त चौदह वस्तु होहि ।

तामैं एक अक्षर घटाइये, तहां पर्यंत उत्पादपूर्व समास के भेद जानने । ताके अंत भेद विषै वह एक अक्षर बधै, अग्रायणीय पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है । असैं ही क्रम तै आगै आगै आठ आदि वस्तु की वृद्धि होतैं, तहा एक अक्षर घटावने पर्यंत तिस तिस पूर्व समास के भेद जानने । तिस तिस का अंत भेद विषै सो सो एक अक्षर मिलाएं, वीर्य प्रवाद आदि पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है । अंत का त्रिलोकबिदुसार नामा पूर्व आगै ताका समास के भेद नाही है । जातै याके आगै श्रुतज्ञान के भेद का अभाव है ।

आगे चौदह पूर्वनि विषै वस्तुनामा अधिकारनि की वा प्राभृतनामा अधिकारनि की संख्या कहै हैं —

पणणउदिसया वत्थू, पाहुड्या तियसहस्सणवयसया ।
एदेसु चोद्दसेसु वि, पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि, प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि ।
एतेषु चतुर्दशस्वपि, पूर्वेषु भवंति मिलितानि ॥३४७॥

टीका – जो उत्पाद आदि त्रिलोकबिंदुसार पर्यंत चौदह पूर्व, तिनिविषै मिलाए हुवे, दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एक सौ पिच्याणवै (१९५) हो है। बहुरि एक एक वस्तु विषैं बीस बीस प्राभृतक कहे, ते सर्व प्राभृतक नामा अधिकार तीन हजार नव सै (३९००) जानने ।

आगे पूर्व कहे जे श्रुतज्ञान के बीस भेद, तिनिका उपसंहार दोय गाथानि करि कहै है —

अत्थक्खरं च पदसंघातं, पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य, पाहुड्यं वत्थु पुव्वं च ॥३४८॥

कमवण्णुत्तरवड्ढिय, ताण समासा य अक्खरगदाणि ।
णाणवियप्पे वीसं, गंथे बारस य चोद्दसयं ॥३४९॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं, प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च, प्राभृतकं वस्तु पूर्व च ॥३४८॥

क्रमवर्णोत्तरवर्धिते, तेषां समासाश्च अक्षरगताः ।
ज्ञानविकल्पे विंशतिः, ग्रंथे द्वादश च चतुर्दशकम् ॥३४९॥

टीका – अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ए नव भेद बहुरि एक एक अक्षर की वृद्धि आदि यथा संभव वृद्धि लीए इन ही अक्षरादिकनि के समास तिनि करि नव भेद, असै सर्व मिलि करि अठारह भेद, अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के है। अर ज्ञान की अपेक्षा इन ही द्रव्यश्रुतनि के सुनने तै जो ज्ञान भया, सो उस ज्ञान के भी अठारह भेद

कहिए । बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के पर्याय अर पर्यायसमास ए दोय भेद मिलाएं, सर्व श्रुतज्ञान के बीस भेद भए । बहुरि ग्रंथ जो शास्त्र, ताकी विवक्षा करिए तौ आचारांग आदि द्वादश अग अर उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व अर चकारतै सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक, तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत जानना । ताके सुनने तै जो ज्ञान भया, सो भाव श्रुतज्ञान जानना । पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिकमय तौ द्रव्यश्रुत है । ताके सुनने तै जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान भया, सो भावश्रुत है ।

अब जो पर्याय आदि भेद कहे, तिनि शब्दनि की निरुक्ति व्याकरण अनुसारि कहिए है । **परीयंते** कहिए सर्व जीव जाकरि व्याप्त है सो पर्याय कहिए । पर्याय-ज्ञान बिना कोऊ जीव नाही । केवल ज्ञानीनि के भी पर्यायज्ञान संभवै है । जैसे किसी कैं कोटि धन पाइए है, तो वाकै एक धन तौ सहज ही वामै आया तैसे महाज्ञान विषै स्तोकज्ञान गर्भित भया जानना ।

बहुरि **अक्ष** कहिए कर्णइंद्रिय, ताकौ अपना स्वरूप कौ **राति** कहिए ज्ञान द्वार करि दे है, तातै अक्षर कहिए ।

बहुरि **पद्यते** कहिए जाकरि आत्मा अर्थ कौं प्राप्त होइ, ताकौं पद कहिए ।

बहुरि **सं** कहिए संक्षेप तैं, **हन्यते, गम्यते** कहिए जानिए एक गति का स्व-रूप जिहि करि, सो सघात कहिए ।

बहुरि **प्रतिपद्यंते** कहिए विस्तार तै जानिए है, च्यारि गति जाकरि, सो प्रति-पत्ति कहिए । नामसंज्ञा विषै **क** प्रत्यय तै प्रतिपत्तिक कहिए ।

बहुरि **अनु** कहिए गुणस्थाननि के अनुसारि, **युज्यंते** कहिए सबंधरूप जीव जा विषै कहिए है, सो अनुयोग कहिए ।

बहुरि **प्रकर्षेण** कहिए नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव । अथवा निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, अथवा सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि **आभृतं** कहिए परिपूर्ण होइ, अैसा जो वस्तु का अधिकार, सो प्राभृत कहिए । अर जाकी प्राभृत संज्ञा होइ, सो प्राभृतक कहिए । बहुरि प्राभृतक का जो अधिकार, सो प्राभृतकप्राभृतक कहिए ।

बहुरि **वसंति** कहिए पूर्वरूपी समुद्रका अर्थ, जिस विपै एकोदेशपनै पाइए, सो पूर्व का अधिकार वस्तु कहिए ।

बहुरि **पूरयति** कहिए शास्त्र के अर्थ कौं पोषै, सो पूर्व कहिए । ऐसे दश भेदनि की निरुक्ति कही ।

बहुरि **सं** कहिए सग्रह करि पर्याय आदि पूर्व पर्यंत भेदनि कौं अंगीकार करि **अस्यंते** कहिए प्राप्त करिए, भेद करिए, ते समास कहिए ।

पर्याय ज्ञान तै जे पीछै भेद, तिनकौ पर्याय समास कहिए ।

अक्षर ज्ञान तै जे पीछै भेद, तिनकौ अक्षर समास कहिए । ऐसे ही दश भेद जानने ।

ऐसे पूर्व चौदह अर वस्तु एक सौ पिच्याणवै अर प्राभृतक तीन हजार नव सै अर प्राभृतक - प्राभृतक तिराणवै हजार छह सै अर अनुयोग तीन लाख चौहत्तरि हजार च्यारि सै अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद क्रम तै संख्यात हजार गुणे अर एक पद के अक्षर सोलह सौ चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठ सै अठ्यासी अर समस्त श्रुत के अक्षर एक घाटि एकट्ठी प्रमाण, इनिकौ पद के अक्षरनि का भाग दीए, जो लब्धराशि होइ सो द्वादशाग के पदो का प्रमाण जानना ।

अब शेष अक्षर है, ते अगबाह्य श्रुत के जानने ।

तहा प्रथम द्वादशाग के पदनि की सख्या कहै है –

बारुत्तरसयकोडी, तेसीदी तहय होंति लक्खाणं ।
अट्ठावण्णसहस्सा, पंचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥

द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिस्तथा च भवति लक्षाणाम् ।
अष्टापंचाशत्सहस्राणि, पंचैव पदानि अंगानाम् ॥३५०॥

टीका – एक सौ बारह कोडि तियासी लाख अठावन हजार पाच पद (११२,८३,५८,००५) सर्व द्वादशाग के जानने । **अंग्यते** कहिए मध्यम पदनि करि जो लखिये, सो अग कहिए । अथवा सर्व श्रुत का जो एक एक आचारांगादिक रूप अवयव, सो अग कहिए । ऐसे अग शब्द की निरुक्ति है ।

आगे जो अंगबाह्य प्रकीर्णक, तिनिके अक्षरनि की सख्या कहै है –

अडकोडिएयलक्खा, अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरि वण्णाओ, पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५१॥

अष्टकोट्येकलक्षाणि, अष्टसहस्राणि च एकशतकं च ।
पंचसप्ततिः वर्णाः, प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥३५१॥

टीका – बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णकनि के अक्षर आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तरि (८०१०८१७५) जानने ।

आगे इस अर्थ के निर्णय करने के अर्थि च्यारि गाथानि करि अक्षरनि की प्रक्रिया कहै है –

तेत्तीस वेंजिणाइं, सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥

त्रयस्त्रिंशत् व्यंजनानि, सप्तविंशतिः स्वरास्तथा भणिताः ।
चत्वारश्च योगवहाः, चतुःषष्टिः मूलवर्णाः ॥३५२॥

टीका – श्री कहिये, हो भव्य ! तेतीस (३३) तौ व्यजन अक्षर हैं । आधी मात्रा जाके बोलने के काल विषै होइ, ताकौ व्यंजन कहिये – क्, ख्, ग्, घ्, ङ् । च्, छ्, ज्, झ्, ञ् । ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् । त्, थ्, द्, ध्, न् । प्, फ्, ब्, भ्, म् । य्, र्, ल्, व् । श्, ष्, स्, ह् ए तेतीस व्यजन अक्षर है ।

बहुरि सत्ताईस स्वर अक्षर है । अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ ए नव अक्षर, इनिके एक - एक के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीन भेदनि करि गुणे सत्ताईस भेद हो है । जैसे – अ, आ, आ३ । इ, ई, ई ३ । उ, ऊ, ऊ ३ । ऋ, ॠ, ॠ ३ । लृ, ॡ, ॡ ३ । ए, ए, ए ३ । ऐ, ऐ, ऐ ३ । ओ, ओ, ओ ३ । औ, औ, औ ३ । ए सत्ताईस स्वर है । जाकी एक मात्रा होय ताकौ ह्रस्व कहिये । जाकी दोय मात्रा होइ, ताकौ दीर्घ कहिए । जाकी तीन मात्रा होइ ताकौ प्लुत कहिए ।

बहुरि च्यारि योगवाह अक्षर है । अनुस्वर, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तहां अं ऐसा अक्षर अनुस्वार है । अः ऐसा अक्षर विसर्ग है । कः ⁀ ऐसा अक्षर जिह्वामूलीय है । पः ऐसा अक्षर उपध्मानीय है । ए चौसठि मूल अक्षर अनादिनि-

धन परमागम विषै प्रसिद्ध है । **सिद्धो वर्णः समाम्नायः'** इति वचनात् । **व्यज्यते** कहिए अर्थ, जिनिकरि प्रकट करिए ते व्यंजन कहिए । **स्वरंति** कहिए अर्थ कौ कहैं ते स्वर कहिए । **योगं** कहिए अक्षर के सयोग को **वहंति** कहिए प्राप्त होंइ ते, योगवाह कहिए । **मूल** कहिए (और) अक्षर के सयोग रहित सयोगी अक्षर उपजने कौं कारण ये चौसठि मूलवर्ण है । इस अर्थ करि द्वितीयादि अक्षर के संयोग रहित चौसठि अक्षर है । इनिविषै दोय आदि अक्षर मिलै संयोगी हो है । जैसै क्कार व्यंजन, अकार स्वर मिलिकरि **क** अैसा अक्षर हो है । आकार के मिलने तै का अैसा अक्षर हो है । इत्यादि संयोगी अक्षर उपजने कौ कारण चौसठि मूल अक्षर जानने ।

इहां प्रश्न – जो व्याकरण विषैं ए, ऐ, ओ, औ इनिकौ ह्रस्व न कहै है । इहां ए भी ह्रस्व कैसै कहे ?

ताकां समाधान – जो संस्कृत भाषा विषै ह्रस्वरूप ए, ऐ, ओ, औ नाही हो है तातै न कहे । प्राकृत भाषा विषै वा देशांतर की भाषा विषै ए, ऐ, ओ, औ, ये अक्षर भी ह्रस्व हो है, तातै इहा कहे है ।

बहुरि एक दीर्घ लॄकार संस्कृत भाषा विषै नाही है; तथापि अनुकरण विषै देशातर की भाषा विषै हो है; तातै इहा कह्या है ।

चउसट्ठिपदं विरलिय, दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कुए पुण, सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५३॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा, द्विकं च दत्त्वा संगुणं कृत्वा ।
रूपोने च कृते पुनः, श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥३५३॥

टीका – मूल अक्षर प्रमाण चौसठि स्थान, तिनिका विरलन करिये, बरोबरि पंक्तिरूप एक -एक जुदा चौसठि जायगा मांडिए । तहां एक २ के स्थान दोय दोय का अंक २ मांडिये, पीछै उनकौ परस्पर गुणन करिये, दोय दून्यों च्यारि (४) च्यारि दून्यो आठ (८) आठ दून्यो सोलह (१६) अैसै चौसठि पर्यंत गुणन कीये, जो एकट्ठी प्रमाण आवै, तामै एक घटाइये, इतने अक्षर सर्व द्रव्य श्रुत के जानने ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने जातै जो वाक्य का अर्थ की प्रतीति के निमित्त उन ही कहै अक्षरनि कौ बारबार कहे, तौ उनका किछू सख्या का नियम है नाही ।

बहुरि ज वर्ण सहित विषै प्रत्येक द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट संयोगी भंग क्रम तै एक, सात, इकईस, पैंतीस, पैंतीस, इकईस, सात, एक असै एक सै अट्ठाईस भंग है।

बहुरि झ वर्ण सहित विषै प्रत्येक, द्वि, त्रि, चतु', पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, संयोगी भंग क्रम तै एक, आठ, अट्ठाईस, छप्पन, सत्तरि, छप्पन, अठाईस, आठ, एक असै दोय सै छप्पन भंग है।

बहुरि ञ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश सयोगी भंग क्रम तै एक, नव, छत्तीस, चौरासी, एक सै छव्वीस, एक सै छव्वीस, चौरासी, छत्तीस, नव, एक असै पाच सै बारह भंग है।

इस ही अनुक्रमकरि चौसठि स्थाननि विषै प्रत्येक आदि भंग पूर्व पूर्व स्थान तै उत्तर उत्तर स्थान विषै दूणै दूणै हो हैं।

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	००० चौसठि ६४ पर्यंत
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी
जोड	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसयोगी
	जोड	४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोगी
		जोड	८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोगी
			जोड	१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोगी
				जोड	३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोगी
					जोड	६४	१	८	३६	अष्टसंयोगी
						जोड	१२८	१	९	नवसंयोगी
							जोड	२५६	१	दशसंयोगी
								जोड	५१२	००

इहा प्रत्येक भगनि का स्वरूप कहा ? सो कहिये है–जुदे जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग है, ते एक ही प्रकार है। जैसै दशवा ञ वर्ण की विवक्षा विषै ञ वर्ण कौ जुदा ग्रहण करिये यहु एक ही प्रत्येक भंग का विधान जानना। बहुरि दोय, तीन आदि अक्षरनि के संयोग तैं जे भग होंइ, तिनकौ द्विसंयोगी, त्रिसयोगी आदि कहिये। ते अनेक प्रकार हो है। जैसे दशवा ञ वर्ण की विवक्षा विषै दोय अक्षरनि का सयोग– क् ञ्। ख ञ्। ग् ञ्। घ् ञ्। ङ् ञ्। च् ञ्। छ् ञ्। ज् ञ्। झ् ञ्। अैसे नव प्रकार हो हैं।

बहुरि तीनि अक्षरनि का सयोग क् ख् ञ्। क् ग् ञ्। क् घ् ञ्। क् ङ् ञ्। क् च् ञ्। क् छ् ञ्। क् ज् ञ्। क् झ् ञ्। ख् ग् ञ्। ख् घ् ञ्। ख् ङ् ञ्। ख् च् ञ्। ख् छ् ञ्। ख् ज् ञ्। ख् झ् ञ्। ग् घ् ञ्। ग् ङ् ञ्। ग् च् ञ्। ग् छ् ञ्। ग् ज् ञ्। ग् झ् ञ्। घ् ङ् ञ्। घ् च् ञ्। घ् छ् ञ्। घ् ज् ञ्। घ् झ् ञ्। ङ् च् ञ्। ङ् छ् ञ्। ङ् ज् ञ्। ङ् झ् ञ्। च् छ् ञ्। च् ज् ञ्। च् झ् ञ्। छ् ज् ञ्। छ् झ् ञ्। ज् झ् ञ्। अैसैं छत्तीस प्रकार भंग हो है। अैसै ही अन्य जानने।

बहुरि जितने की विवक्षा होइ, तितना संयोगी भंग एक ही प्रकार हो है। जैसे दश अक्षरनि की विवक्षा विषै दश अक्षरनि का संयोग रूप दश संयोगी भग एक ही हो है। अैसे भंगनि का स्वरूप जानना।

इहां श्री अभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती के चरणनि का प्रसाद करि केशव-वर्णी संस्कृत टीकाकार सो तिन एक दोय संयोगी आदि भगनि की सख्या का साधन विषै करण सूत्र कहै है—

पत्तेयभंगमेगं, बे संजोगं विरूवपदमेत्तं।
तियसंजोगादिपमा, रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं॥

विवक्षित स्थान विषै सर्वत्र प्रत्येक भग एक एक ही है। बहुरि द्विसयोगी भंग एक घाटि गच्छ प्रमाण है। इहा जेथवा स्थान विवक्षित होंइ, तीहि प्रमाण गच्छ जानना। बहुरि त्रिसयोगी आदि भंगनि का क्रम तै एक अधिक वार हीन गच्छ का संकलन धनमात्र प्रमाण है।

भावार्थ – यहु-जो त्रिसयोगी, चतुःसंयोगी आदि विषै एक वार, दोय वार आदि संकलन करना। बहुरि जेती बार संकलन होइ, तातै एक अधिक प्रमाण कौ

विवक्षित गच्छ में घटाएं, अवशेष जेता प्रमाण रहै, तितने का तहां संकलन करना । जैसे दशवां स्थान की विवक्षा विषै त्रिसंयोगी भंग ल्यावने कौं एक बार संकलन अर एक बार का प्रमाण एक, तातैं एक अधिक दोय, सो गच्छ दश में घटाएं आठ होंइ । ऐसे आठ का एक बार संकलन धनमात्र तहां त्रिसंयोगी भंग जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि संकलन धन ल्यावने कौं पूर्वै केशववर्णी करि उक्त करण सूत्र कहे थे–

तत्तो रूवहियकमे, गुणगारा होंति उड्ढगच्छो त्ति ।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवो त्ति ।।

इन सूत्रनि के अनुसारि विवक्षित संकलन धन ल्यावना । अब ऐसे करण सूत्र के अनुसार उदाहरण दिखाइए है । विवक्षित दशमां ञ वर्ण, तहां प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी एक घाटि गच्छमात्र नव, त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छमात्र आठ, ताका एक बार सकलन धनमात्र सो सकलन धन के साधन करण सूत्र के अनुसारि आठ, नव कौ दोय, एक का भाग दीए छत्तीस हो है । जातै आठ, नव कौं परस्पर गुणें, बहत्तरि भाज्य, दोय, एक कौ परस्पर गुणें भागहार दोय, भागहार का भाग भाज्य कौं दीएं छत्तीस भए । ऐसे ही चतु.संयोगी भंग तीन घाटि गच्छ का दोय बार संकलन धनमात्र है । तहा सात, आठ, नव कौं तीन, दोय, एक का भाग दीएं, चौरासी हो है ।

बहुरि पंच संयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीन बार संकलन धनमात्र है । तहां छह, सात, आठ, नव कौ च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं एक सै छब्बीस हो हैं ।

बहुरि छह संयोगी पांच घाटि गच्छ का च्यारि बार सकलन धनमात्र है । तहां पांच, छह, सात, आठ, नव कौ पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं एक सै छव्वीस हो है ।

वहुरि सप्त संयोगी छह घाटि गच्छ का पाच वार सकलन धनमात्र है । तहां च्यारि, पांच, छह, सात, आठ, नव कौ छह, पाच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीए चौरासी हो है ।

वहुरि आठ संयोगी सात घाटि गच्छ का छह बार सकलन धनमात्र है । तहां तीन, च्यारि, पांच, छह, सात, आठ, नव कौ सात, छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं छत्तीस हो है ।

बहुरि नव संयोगी आठ घाटि गच्छ का सात बार संकलन धनमात्र है। तहां दोय, तीन, च्यारि, पाच, छह, सात, आठ, नव कौ आठ, सात, छह, पाच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं नव हो है। बहुरि दश संयोगी नव घाटि गच्छ का आठ बार संकलन धनमात्र है। इहां परमार्थ तै संकलन नाही। जातैं एक का सर्व बार संकलन एक ही हो है; तातै एक है; असैं सबनि का जोड दीएं दशवां स्थान विषै पांच सै बारह भंग भएं। असैं ही सर्व स्थाननि विषै ल्यावना। तहा अंत का चौसठिवां स्थान विषैं प्रत्येक भंग एक, बहुरि द्विसंयोगी भग एक घाटि गच्छमात्र तरेसठि, बहुरि त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र तहाँ बासठि, तरेसठि कौ दोय, एक का भाग दीएं, उगणीस सै तरेपन हो है।

बहुरि चतु संयोगी तीन घाटि गच्छ का दोय बार सकलन धनमात्र, तहा इकसठि, बासठि, तरेसठि कौ तीन, दोय, एक का भाग दीए, गुणतालीस हजार सात सै ग्यारह भंग हो है।

बहुरि पंच संयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीन वार सकलन धनमात्र, तहां साठि, इकसठि, बासठि, तरेसठि कौ च्यारि; तीन, दोय, एक का भाग दीए, पांच लाख पिच्याणवै हजार छ सै पैसठि हो है। असैं ही षट् संयोगी आदि भग पाच आदि एक एक बधता घाटि गच्छ का तीन आदि एक एक बधता बार सकलन धन-मात्र जानने। तहां पूर्वोक्त तै गुणसठि, अठावन आदि भाज्य विषै अर पाच, छह आदि भागहारनि विषै अधिक अधिक मांडि, भाज्य कौ भागहार का भाग दीए, जेता जेता प्रमाण आवै, तितना तितना तहा तहा षट्सयोगी आदि भग जानने। तहां तरेसठि सयोगी भग बासठि घाटि गच्छ दोय, ताका एकसठि बार सकलन धनमात्र तहा दोय, तीन आदि एक एक बधता तरेसठि पर्यंत कौ बासठि, इकसठि आदि एक एक घटता एक पर्यंत का भाग दीए, यथा संभव अपवर्तन कीएं तरेसठि भंग हो हैं। बहुरि चौसठि सयोगी भग एक ही है। असैं चौसठिवां स्थान विषै प्रत्येक आदि चौसठि सयोगी पर्यंत भगनि कौ जोडे, एकट्ठी का आधा प्रमाणमात्र भग होइ। असैं एक आदि एक एक अधिक चौसठि पर्यन्त अक्षरनि के स्थाननि विषै **'पत्तेयभंगमेगं'** इत्यादि करण सूत्रनि करि भग हो है।

अथवा गुणस्थानाधिकार विषै प्रमादनि का व्याख्यान करते अक्ष संचार विधान कह्या था, तिस विधान करि भी असैं ही भग हो है। ते भग क्रम तै एक,

दोय, चारि, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठि, एक सै अठाईस, दोय सै छप्पन, पाच सै बारह एक हजार चौबीस, दोय हजार अडतालिस, च्यारि हजार छिनवै, आठ हजार एक सै बानवै, सोलह हजार तीन सै चौरासी, बत्तीस हजार सात सै अडसठि, पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस, एक लाख इकतीस हजार बहत्तरि, दोय लाख वासठि हजार एक सै चवालीस, पांच लाख चौबीस हजार दोय सै अठासी, दश लाख अडतालीस हजार पांच सै छिहत्तरि, बीस लाख सित्ताणवै हजार एक सै बावन, इकतालीस लाख चौराणवै हजार तीन सै दोय, तियासी लाख अठासी हजार छ सै चारि, एक कोडि सडसठिलाख तेहत्तरि हजार दोय सै आठ इत्यादि दूणे दूणे हो है । अत स्थान तै चौथा, तीसरा, दूसरा अन्तस्थान विषै एकट्टी का सोलहवां, आठवां, चौथा, दूसरा, भागमात्र भए, तिन सबनि कौ जोडे, **'चउसट्ठिपदं विरलिय'** इत्यादि सूत्रोक्त एक घाटि एकट्ठी मात्र भंग हो है । अथवा **'अन्तधणं गुणगुणियं' 'आदि विहीणं रूउणुत्तर-भजियं'** इस करण सूत्र करि अन्त धन एकट्ठी का आधा ताकौ गुणकार दोय करि गुणै, एकट्ठी, तामै एक घटाएं, एक घाटि एकट्ठी एक घाटी गुणकार एक, ताका भाग दीएं भी इतने ही सर्व भंग हो है । असै सर्वश्रुत संबंधी समस्त अक्षरनि की संख्या एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जानना ।

इहां जैसे अ, आ, आ, इ, ई, ई इनि छह अक्षरनि विषै प्रत्येक भग छह, द्वि संयोगी पद्रह, त्रि सयोगी वीस, चतु· संयोगी पंद्रह, पंच संयोगी छह, छह सयोगी एक मिलि तरेसठि भग होंइ । छह जायगा दूवा माडि, परस्पर गुणे एक घटाय तरेसठि हो है । तैसे चौसठि मूल अक्षरनि विषै पूर्वै एक एक स्थान विषै एक एक प्रत्येक भंग मिलि, चौसठि भए । असै ही सर्व स्थानकनि के द्वि सयोगी, त्रि सयोगी आदि भंग माडि, जितने जितने होंइ, तितने तितने द्वि सयोगी, त्रि संयोगी आदि भग जानने । सबनि कौ जोडै, एक घाटि एकट्ठी प्रमाण हो है । सोई चौसठि जायगा दोय का अंक माडि, परस्पर गुणे, तहा एक घटाएं, एक घाटि एकट्ठी प्रमाण श्रुतज्ञान के अक्षर जानने ।

मज्झिम-पदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसंखा ओ, पइण्णयाणं पमाणं तु ।।३५५।।

मध्यमपदाक्षरावहितवर्णास्ते अंगपूर्वगपदानि ।
शेषाक्षरसंख्या अहो, प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ।।३५५।।

टीका – एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्त श्रुत के अक्षर कहे तिनिकौं परमागम विषै प्रसिद्ध जो मध्यम पद, ताके अक्षरनि का प्रमाण सोला सै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठ सै अठ्यासी, ताका भाग दीए, जो पदनि का प्रमाण आवै तितने तौ अंगपूर्व संबंधी मध्यम पद जानने। बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे, ते प्रकीर्णकौं के जानने। सो एक सौ बारह कोडि तियासी लाख अठावन हजार पाच इतने तौ अंग प्रविष्ट श्रुत का पदनि का प्रमाण आया। अवशेष आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सै पिचहत्तरि अक्षर रहे, ते अंगबाह्य प्रकीर्णक के जानने। असैं अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य दोय प्रकार श्रुत के पदनि का वा अक्षरनि का प्रमाण हे भव्य ! तू जानि।

आगै श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव तेरह गाथानि करि अंगपूर्वनि के पदनि की संख्या प्ररूपै हैं –

आयारे सुद्दयडे, ठाणे समवायणामगे अंगे।
तत्तो विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ।।३५६।।

आचारे सूत्रकृते, स्थाने समवायनामके अंगे।
ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धर्मकथायाम् ।।३५६।।

टीका – द्रव्य श्रुत की अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीएं, अंगपूर्व के पदनि की संख्या कहिए है। जातै भावश्रुत विषै निरुक्त्यादिक संभवै नाही। तहां द्वादश अगनि विषै प्रथम ही आचारांग है। **जातै परमागम जो है, सो मोक्ष के निमित्त है। याही तैं मोक्षाभिलाषी याकौं आदरे है।** तहा मोक्ष का कारण संवर, निर्जरा, तिनिका कारण पंचाचारादि सकल चारित्र है। तातै तिस चारित्र का प्रतिपादक शास्त्र पहिले कहना सिद्ध भया। तीहि कारण तै च्यारि ज्ञान सप्त ऋद्धि के धारक गणधर देवनि करि तीर्थंकर के मुखकमल तै उत्पन्न जो सर्व भाषामय दिव्यध्वनि, ताके सुनने नै जो अर्थ अवधारण किया, तिनिकरि शिष्य प्रति शिष्यनि के अनुग्रह निमित्त द्वादशांगरूप श्रुत रचना करी।

तीहिं विषै पहिलै आचाराग कह्या। सो आचरन्ति कहिए समस्तपनै मोक्ष मार्ग कौ आराधै हैं, याकरि सो आचार, तिहिं आचाराग विषै असा कथन है – जो कैसै चलिए ? कैसैं खडे रहिये ? कैसें बैठिये ? कैसें सोइए ? कैसे बोलिए ? कैसे

खाइए ? कैसे पाप कर्म न बंधै ? इत्यादि गणधर प्रश्न के अनुसार यतन तै चलिये, यतन तै खडे रहिये, यतन तैं बैठिए, यतन तै सोइए, यतन ते बोलिए, यतन तै खाइयें अैसे पापकर्म न बधै इत्यादि उत्तर वचन लीये मुनीश्वरनि का समस्त आचरण इस आचारांग विषै वर्णन कीजिये है ।

बहुरि **सूत्रयति** कहिए संक्षेप तै अर्थ कौ सूचै, कहै, अैसा जो परमागम, सो सूत्र ताके **अर्थकृतं** कहिये कारणभूत ज्ञान का विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया विशेष, सो जिसविषै वर्णन कीजिए है । अथवा सूत्र करि कीया धर्मक्रियारूप वा स्वमत - परमत का स्वरूप क्रिया रूप विशेष, सो जिस विषै वर्णन कीजिये, सो सूत्रकृत नामा दूसरा अग है ।

बहुरि **तिष्ठन्ति** कहिए एक आदि एक एक बधता स्थान जिस विषै पाइये, सो स्थान नामा तीसरा अंग है । तहां अैसा वर्णन है । संग्रह नय करि आत्मा एक है; व्यवहार नय करि संसारी अर मुक्त दोय भेद संयुक्त है । बहुरि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनि करि संयुक्त है । बहुरि कर्म के वश तै च्यारि गति विषै भ्रमै है । तातैं चतु संक्रमण युक्त है । बहुरि औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक भेद करि पंचस्वभाव करि प्रधान है । बहुरि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधः भेद करि छह गमन करि संयुक्त है । ससारी जीव विग्रह गति विषै विदिशा में गमन न करै, श्रेणीबद्ध छहौ दिशा विषै गमन करै है । बहुरि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति - नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य इत्यादि सप्त भगी विषै उपयुक्त है । बहुरि आठ प्रकार कर्म का आश्रय करि सयुक्त है । बहुरि जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप ये नव पदार्थ है विषय जाके ऐसा नवार्थ है । बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, द्वीद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय भेद तै दश स्थान है । इत्यादि जीव कौ प्ररूपै है । बहुरि पुद्गल सामान्य अपेक्षा एक है; विशेष करि अणु स्कन्ध के भेद तै दोय प्रकार है, इत्यादि पुद्गल कौ प्ररूपै है । अैसै एकने आदि देकरि एक एक बधता स्थान इस अग विषै वर्णिये है ।

बहुरि **'सं'** कहिए समानता करि **अवेयंते** कहिये जीवादि पदार्थ जिसविषै जानिये, सो समवायांग चौथा जानना । इस विषै द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा समानता प्ररूपै है ।

तहां द्रव्य करि धर्मास्तिकाय अर अधर्मास्तिकाय समान है। संसारी जीवनि करि संसारी जीव समान है। मुक्त जीव करि मुक्त जीव समान है; इत्यादिक द्रव्य समवाय है।

बहुरि क्षेत्र करि प्रथम नरक का प्रथम पाथडें का सीमंत नामा इंद्रकविला अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र, प्रथम स्वर्ग का प्रथम पटल का ऋजु नामा इंद्रक विमान अर सिद्धशिला, सिद्धक्षेत्र ये समान हैं। बहुरि सातवां नरक का अवधि स्थान नामा इंद्रक विला अर जंबूद्वीप अर सर्वार्थसिद्धि विमान ये समान है इत्यादि क्षेत्र समवाय है।

बहुरि काल करि एक समय, एक समय समान है। आवली आवली समान है। प्रथम पृथ्वी के नारकी, भवनवासी, व्यंतर इनिकी जघन्य आयु समान है। बहुरि सातवी पृथ्वी के नारकी, सर्वार्थसिद्धि के देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादिक कालसमवाय है।

बहुरि भाव करि केवलज्ञान, केवलदर्शन समान है। इत्यादि भावसमवाय है असैं इत्यादि समानता इस अंग विषै वर्णिये है।

बहुरि 'वि' कहिये विशेष करि बहुत प्रकार, **आख्या** कहिये गणधर के कीये प्रश्न, **प्रज्ञाप्यंते** कहिये जानिये, जिसविषैं असा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा पाचवा अंग जानना। इस विषै असा कथन है कि – जीव अस्ति है कि जीव नास्ति है, कि जीव एक है कि जीव अनेक है; कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है; कि जीव वक्तव्य है कि अवक्तव्य है इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधर देव तीर्थंकर के निकट कीये। ताका वर्णन इस अंगविषै है।

बहुरि **नाथ** कहिये तीन लोक का स्वामी, तीर्थंकर, परम भट्टारक, तिनके धर्म की कथा जिस विषै होइ असा नाथधर्मकथा नाम छठा अंग है। इसविषै जीवादि पदार्थनि का स्वभाव वर्णन करिए है। बहुरि घातियाकर्म के नाश तै उत्पन्न भया केवलज्ञान, उस ही के साथि तीर्थंकर नामा पुण्य प्रकृति के उदय तै जाकै महिमा प्रगट भयी, असा तीर्थंकर कै पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनि विषै छह छह घडी पर्यन्त बारह सभा के मध्य सहज ही दिव्यध्वनि होय है। बहुरि गणधर, इंद्र, चक्रवर्ति इनके प्रश्न करने तै और काल विषै भी दिव्यध्वनि हो है। असा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृजननि कौं उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार वा रत्नत्रय स्वरूप

धर्म कहै है। इत्यादि इस अंग विषैं कथन है। अथवा इस ही छठा अंग का दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा है। सो याका अर्थ यहु है - ज्ञाता जो गणधर देव, जानने की है इच्छा जाकै, ताका प्रश्न के अनुसारि उत्तर रूप जो धर्मकथा, ताकौं ज्ञातृधर्मकथा कहिए। जे अस्ति, नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधरदेव कीये, तिनिका उत्तर इस अंग विषै वर्णन करिये है। अथवा ज्ञाता जे तीर्थंकर, गणधर, इंद्र, चक्रवर्त्यादिक, तिनिकी धर्म संबंधी कथा इसविषैं पाइये है। तातैं भी ज्ञातृधर्मकथा अैसा नाम का धारी छठा अंग जानना।

तो वासयअज्झयणे, अंतयडे णुत्तरोववाददसे।
पण्हाणं वायरणे, विवायसुत्ते य पदसंखा ॥३५७॥

तत उपासकाध्ययने, अंतकृते अनुत्तरौपपाददशे।
प्रश्नानां व्याकरणे, विपाकसूत्रे च पदसंख्या ॥३५७॥

टीका – बहुरि तहां पीछें **उपासंते** कहिये आहारादि दान करि वा पूजनादि करि संघ कौं सेवै; अैसे जे श्रावक, तिनिकौं उपासक कहिये। ते 'अधीयंते' कहिये पढै, सो उपासकाध्ययन नामा सातवां अंग है। इस विषैं दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरति, रात्रिभक्तविरति, ब्रह्मचर्य, आरंभनिवृत्त, परिग्रहनिवृत्त, अनुमतिविरत, उद्दिष्टविरत ये गृहस्थ की ग्यारह प्रतिमा वा व्रत, शील, आचार क्रिया, मंत्रादिक इनिका विस्तार करि प्ररूपण है।

बहुरि एक एक तीर्थंकर का तीर्थकाल विषै दश दश मुनीश्वर तीव्र चारि प्रकार का उपसर्ग सहि, इंद्रादिक करी करि हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ, पापकर्म का नाश करि संसार का जो अंत, ताहि करते भये, तिनिकौ अंतकृत् कहिये तिनिका कथन जिस अंग में होइ ताकौ अंतकृद्दशांग आठवां अंग कहिये। तहां श्री वर्धमान स्वामी के बारैं नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलिक, विक्रविल, किष्कंविल, पालंवष्ट, पुत्र ये दश भये। अैसैं ही वृषभादिक एक एक तीर्थंकर के बारै दश दश अंतकृत् केवली हौं हैं। तिनिका कथन इस अग विषै है।

बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनिका अैसे औपपादिक कहिये।

बहुरि अनुत्तर कहिये विजय, वैजयंत, जयत, अपराजित, सर्वार्थ सिद्धि इनि विमाननि विषै जे औपपादिक होंहि उपजैं, तिनिकौं अनुत्तरौपपादिक कहिये। सो

एक एक तीर्थंकर के बारै दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहि करि, बड़ी पूजा पाइ, समाधि करि प्राण छोडि, विजयादिक अनुत्तर विमाननि विषै उपजै । तिनिकी कथा जिस अंग विषै होइ, सो अनुत्तरौपपादिक दशांग नामा नवमा अंग जानना । तहां श्रीवर्धमान स्वामी के बारै – ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नंद, नंदन, सालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातीपुत्र ये दश भये । असें ही दश दश अन्य तीर्थंकर के समय भी भये है । तिनि सबनि का कथन इस अंग विषैं है ।

बहुरि प्रश्न कहिये बूझनहारा पुरुष, जो बूझै सो **व्याक्रियंते** कहिये, जिस-विषै वर्णन करिये, सो प्रश्न व्याकरण नामा दशवां अंग जानना । इसविषैं जो कोई बूझनेवाला गई वस्तु कौ, वा मूठी की वस्तु कौं, वा चिंता वा धनधान्य लाभ, अलाभ सुख, दुःख, जीवना, मरणा, जीति, हारि इत्यादिक प्रश्न बूझै; अतीत, अनागत, वर्तमानकाल संबंधी, ताकौ यथार्थ कहने का उपायरूप व्याख्यान इस अंग विषै है । अथवा शिष्य कौ प्रश्न के अनुसार आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेजिनी, निर्वेजिनी ये च्यारि कथा भी प्रश्नव्याकरण अंग विषैं प्रकट कीजिये है ।

तहां तीर्थंकरादिक का चरित्ररूप प्रथमानुयोग, लोक का वर्णन रूप करणा-नुयोग, श्रावक मुनिधर्म का कथनरूप चरणानुयोग, पंचास्तिकायादिक का कथनरूप द्रव्यानुयोग, इनिका कथन अर परमत की शंका दूरि करिए, सो आक्षेपिणी कथा ।

बहुरि प्रमाण - नय रूप युक्ति, तीहिं करि न्याय के बल तैं सर्वथा एकांतवादी आदि परमतनि करि कह्या अर्थ, ताका खंडन करना, सो विक्षेपिणी कथा ।

बहुरि रत्नत्रयरूपधर्म अर तीर्थंकरादि पद की ईश्वरता वा ज्ञान, सुख, वीर्यादिकरूप धर्म का फल, ताके अनुराग कौ कारण सो संवेजिनी कथा ।

बहुरि संसार, देह, भोग के राग तैं जीव नारकादि विषै दरिद्र, अपमान, पीडा, दुःख भोगवै है । इत्यादिक विराग होने कौ कारणरूप जो कथा, सो निर्वेजिनी कथा कहिये । सो असी भी कथा प्रश्नव्याकरण अंग विषै पाइए है ।

बहुरि विपाक जो कर्म का उदय, ताकौ **सूत्रयति** कहिये कहै, सो विपाक सूत्र-नामा ग्यारमां अंग जानना । इसविषै कर्मनि का फल देने रूप जो परिणमन, सोई उदय कहिये । ताका तीव्र, मंद, मध्यम, अनुभाग करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा वर्णन पाइए है ।

ऐसै आचार नै आदि देकरि विपाक सूत्र पर्यंत ग्यारह अंग, तिनिके पदनि की संख्या कहिए है ।

अट्ठारस छत्तीसं, बादालं अडकडी अड वि छप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं, चोद्दालं सोलससहस्सा ।।३५८।।

इगि-दुग-पंचेयारं, तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिलक्खमेया, कोडी य विवागसूत्तम्हि ।।३५९।।

अष्टादश षट्त्रिंशत्, द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिः अष्टद्विषट्पंचाशत् ।
सप्ततिः अष्टाविंशतिः, चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ।।३५८।।

एकद्विपंचैकादशत्रयोविंशतिद्वित्रिनवतिलक्षं चतुर्थादिषु ।
चतुरशीतिलक्षमेका, कोटिश्च विपाकसूत्रे ।।३५९।।

टीका – प्रथम गाथा विषै अठारह आदि हजार कहे । बहुरि दूसरी गाथा विषै चौथा अग आदि अंगनिविषै एकादिक लाख सहित हजार कहे । अर विपाकसूत्र का जुदा वर्णन कीया । अब इनि गाथानि के अनुसारि एकादश अंगनि की पदनि की सख्या कहिये है । आचाराग विषै पद अठारह हजार(१८०००), सूत्रकृताग विषै पद छत्तीस हजार (३६०००), स्थानाग विषै बियालीस, हजार (४२०००), समवायांग विषै एक लाख अर आठ की कृति चौसठि हजार (१६४०००), व्याख्याप्रज्ञप्ति विषै दोय लाख अट्ठाईस हजार(२२८०००), ज्ञातृकथा अग विषै पांच लाख छप्पन हजार, (५५६०००), उपासकाध्ययन अग विषै ग्यारह लाख सत्तरि हजार (११७००००), अतकृतदशाग विषै तेईस लाख अट्ठाईस हजार (२३२८०००), अनुत्तरौपपादक दशांग विषै बाणवै लाख चवालीस हजार (९२४४०००), प्रश्न व्याकरण अंग विषै तिराणवै लाख सोलह हजार (९३१६०००), विपाकसूत्र अग विषै एक कोडि चौरासी लाख (१८४०००००) ऐसैं एकादश अगनि विषै पदनि की सख्या जाननी ।

वापणनरनोनानं, एयारंगे जुदी हु वादम्हि ।
कनजतजमताननमं, जनकनजयसीम बाहिरे वण्णा ।।३६०।।

वापणनरनोनानं, एकदशांगे युतिर्हि वादे ।
कनजतजमताननमं जनकनजयसीम बाह्ये वर्णाः ।।३६०।।

टीका — इहां वा आगै अक्षर संज्ञा करि अंकनि कौ कहै है । सो याका सूत्र पूर्वं गतिमार्गणा का वर्णन विषै पर्याप्त मनुष्यनि की संख्या कही है । तहा कह्या है **'कटपयपुरस्थवर्णैः'** इत्यादि सूत्र कह्या है । तिस ही तै अक्षर संज्ञा करि अंक जानना । **क** कारादिक नव अक्षरनि करि एक, दोय आदि क्रम तै नव अंक जानने । **ट** कारादि नव अक्षरनि करि नव अक जानने । **प** कारादि पच अक्षरनि करि पंच अंक जानने । **य** कारादि आठ अक्षरनि करि आठ अक जानने । **ञ** कार **ङ** कार **न** कार इनिकरि बिंदी जानिये, अैसा कहि आए है । सो इहां **वापणनरनोनानं** इनि अक्षरनि करि चारि, एक, पाच, बिंदी, दोय, बिंदी, बिंदी, बिंदी ए अक जानना । ताके चारि कोडि पद्रह लाख दोय हजार (४१५०२०००) पद सर्व एकादश अंगनि का जोड दीयें भये ।

बहुरि दृष्टिवाद नाम बारहवां अंग, ता विषै **'कनजतजमताननमं'** कहिये एक, बिंदी, आठ, छह, आठ, पाच, छह, बिदी, बिदी, पाच इनि अकनि करि एक सै आठ कोडि अडसठि लाख छप्पन हजार पाच (१०८६८५६००५) पद है सो कहिये । मिथ्यादर्शन, तिनिका है अनुवाद कहिये निराकरण जिस विषै अैसा दृष्टिवाद नामा अंग बारहवां जानना ।

तहा मिथ्यादर्शन सबधी कुवादी तीन सै तरेसठि है । तिनि विषै कौत्कल, कांठेबिद्धि, कौशिक हरि, श्मश्रु माधपिक रोमश, हारीत, मुड, आश्वलायन इत्यादि क्रियावादी है, सो इनिके एकसौ अस्सी (१८०) कुवाद है ।

बहुरि मारीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाड्वलि, माठर, मौद्‌गलायन इत्यादि अक्रियावादी है, तिनिके चौरासी (८४) कुवाद है ।

बहुरि साकल्य, वाल्कलि, कुसुत्ति, सात्यमुग्रीनारायण, कठ, माध्यदिन, मौद, पैप्पलाद, वादरायण, स्विष्ठिक्य, दैत्यकायन, वसु, जैमिन्य, इत्यादि ए अज्ञानवादी है । इनिके सडसठि (६७) कुवाद है ।

बहुरि वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वालिमकि, रोमहर्षिणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, उपमन्यु, ऐंद्रदत्त, अगस्ति इत्यादिक ए विनयवादी है । इनिके कुवाद वत्तीस (३२) है ।

सब मिलाए तीन सै तरेसठि कुवाद भये, इनिका वर्णन भावाधिकार विषै कहैगे । इहा प्रवृत्ति विषै इनि कुवादनि के जे जे अधिकारी, तिनिके नाम कहे ह ।

बहुरि अंग बाह्य जो सामायिकादिक, तिनि विषै 'जनकनजयसीम' कहिए आठ, बिदी, एक, बिदी, आठ, एक, सात, पाच अक तिनिके आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सै पिचत्तरि (८०१०८१७५) अक्षर जानने ।

चंद-रवि-जंबुदीवय-दीवसमुद्दय-वियाहपण्णत्ती ।
परियम्मं पंचविहं, सुत्तं पढमाणि जोगमदो ॥३६१॥

पुव्वं जल-थल-माया-आगासय-रूवगयमिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए, तेसु पमाणं इणं कमसो ॥३६२॥

चंद्ररविजंबूद्वीपकद्वीपसमुद्रकव्याख्याप्रज्ञप्तयः ।
परिकर्म पंचविधं, सूत्रं प्रथमानुयोगमतः ॥३६१॥

पूर्वं जलस्थलमायाकाशकरूपगता इमे पंच ।
भेदा हि चूलिकायाः, तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः ॥३६२॥

टीका — दृष्टिवाद नामा बारहवां अग के पंच अधिकार है – परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका ए पच अधिकार है, तिनि विषै **परितः** कहिए सर्वाग तै कर्माणि कहिये जिन तै गुणकार भागहारादि रूप गणित होइ, असै करणसूत्र, वे जिस विषै पाइए, सो परिकर्म कहिये, सो परिकर्म पाच प्रकार है – चद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति ।

तहा चंद्रप्रज्ञप्ति – चद्रमा का विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमनविशेष, वृद्धि, हानि, सारा, आधा, चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति – सूर्य का आयु मडल, परिवार, ऋद्धि, गमन का प्रमाण ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति – जंबूद्वीपसबधी मेरुगिरि, कुलाचल, द्रह, क्षेत्र, वेदी, वनखंड, व्यंतरनि के मदिर, नदी इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति – असंख्यात द्वीप समुद्र सबंधी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी, व्यतर, भवनवासीनि के आवास तहा अकृत्रिम जिन मदिर, तिनकौ प्ररूपै है । बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति – रूपी, अरूपी, जीव, अजीव आदि पदार्थनि का वा भव्य अभव्य आदि प्रमाण करि निरूपण करै है । असै परिकर्म के पंच भेद है ।

बहुरि **सूत्रयति** कहिये मिथ्यादर्शन के भेदनि कौ सूचै, बतावै, ताकौं सूत्र कहिये। तिस विषै जीव अबंधक ही है; अकर्ता है, निर्गुण है, अभोक्ता है; स्वप्रकाशक ही है, परप्रकाशक ही है; अस्तिरूप ही है; नास्तिरूप ही है इत्यादि क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, विनयवाद, तिनके तीन सै तरेसठि भेद, तिनिका पूर्व पक्षपने करि वर्णन करिये है।

बहुरि प्रथम कहिए मिथ्यादृष्टी अव्रती, विशेष ज्ञानरहित, ताकौ उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अधिकार – अनुयोग; कहिए सो प्रथमानुयोग कहिए। तिहि विषै चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ति, नव बलभद्र, नव नारायण, नव प्रतिनारायण इनि तरेसठि शलाका पुरुषनि का पुराण वर्णन कीया है।

बहुरि पूर्वगत चौदह प्रकार, सो आगै विस्तार नै लीएं कहैगे।

बहुरि चूलिका के पंच भेद जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, आकाशगता ए पंच भेद है।

तिनि विषै **जलगता चूलिका** तौ जल का स्तंभन करना, जल विषै गमन करना, अग्नि का स्तभन करना, अग्नि का भक्षण करना, अग्नि विषै प्रवेश करना इत्यादि क्रिया के कारण भूत मत्र, तत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि **स्थलगता चूलिका** मेरुपर्वत, भूमि इत्यादि विषै प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मत्र तत्र तपश्चरणादिक प्ररूपै है। बहुरि **मायागता चूलिका** मायामई इन्द्रजाल विक्रिया के कारण भूत मत्र, तंत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि **रूपगता चूलिका** सिह, हाथी, घोड़ा, वृषभ, हरिण इत्यादि नाना प्रकार रूप पलटि करि धरना; ताके कारण मत्र, तत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है। वा चित्राम, काठ, लेपादिक का लक्षण प्ररूपै है। वा धातु रसायन कौ प्ररूपै है। बहुरि **आकाशगता चूलिका** – आकाश विषै गमन आदि कौं कारण भूत मत्र, तंत्रादि प्ररूपै है। ऐसें चूलिका के पाच भेद जानने।

ए चंद्रप्रज्ञप्ति आदि देकर भेद कहे। तिनिके पदनि का प्रमाण आगै कहिए है, सो हे भव्य तू जानि।

गतनम मनगं गोरम, मरगत जवगात नोननं जजलक्खा।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादी ॥३६३॥

याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे ।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो ।।३६४।।

गतनम मनगं गोरम, मरगत जवगातनोननं जजलक्षाणि ।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादिषु ।।३६३।।

याजकनामेनाननमेतानि पदानि भवंति परिकर्माणि ।
कानवधिवाचनाननमेषः पुनः चूलिकायोगः ।।३६४।।

टीका — इहां **'कटपयपुरस्थवर्णैः'** इत्यादि सूत्रोक्त विधान तै अक्षर संज्ञा करि अंक कहैं है; सो अंकनि करि जो प्रमाण भया, सोई इहां कहिए हैं। एक एक अक्षर तै एक एक अक जानि लेना; सो **'गतनमनोननं'** कहिये छत्तीस लाख पांच हजार (३६०५०००) पद चंद्रप्रज्ञप्ति विषै है ।

बहुरि **'मनगनोननं'** कहिए पांच लाख तीन हजार (५०३०००) पद सूर्य-प्रज्ञप्ति विषै है ।

बहुरि **'गोरमनोननं'** कहिये तीन लाख पचीस हजार (३२५०००) पद जंबू-द्वीप प्रज्ञप्ति विषै है ।

बहुरि **'मरगतनोननं'** कहिये बावन लाख छत्तीस हजार (५२३६०००) पद द्वीपसागर प्रज्ञप्ति विषै है ।

बहुरि **'जवगातनोननं'** कहिये चौरासी लाख छत्तीस हजार (८४३६०००) पद व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग के है ।

बहुरि **'जजलरका'** कहिए अठ्यासी लाख (८८०००००) पद सूत्र नामा भेद विपै हैं ।

बहुरि **मननन** कहिए पांच हजार (५०००) पद प्रथमानुयोग विषै है ।

बहुरि **धममननोननामं** कहिए पिच्याणवै कोडि पचास लाख पांच (९५५०००००५) पद पूर्वगत विषै है । चौदह पूर्वनि के इतने पद है ।

बहुरि **रनधजधरानन** कहिए दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोय सै (२०९८९२००) पद जलगता आदि चूलिका तिन विषैं एक एक के इतने इतवें पद

जानने । जलगता पद (२०९८९२००), स्थलगता २०९८९२००, मायागता २०९८९२००, आकाशगता २०९८९२००, रूपगता २०९८९२०० असें पद जानने ।

बहुरि 'याजकनामेनाननं' कहिए एक कोडि इक्यासी लाख पाच हजार (१८१०५०००) पद चद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्म का जोड दीये हो ह ।

बहुरि 'कानवधिवाचनाननं' कहिए दश कोडि गुणचास लाख छियालीस हजार (१०४९४६०००) पद पांच प्रकार चूलिका का जोड़ दीये हो हे ।

इहां ग कार तै तीन का अंक, त कार तै छह का अंक, म कार तै पाच का अंक, र कार तै दोय का अंक, न कार तै बिंदी, इत्यादि अक्षर सज्ञा करि अक संज्ञा कहे है । क कार तै लेय ग कार तीसरा अक्षर है; तातैं तीन का अंक कह्या । बहुरि ट कार तै त कार छठा अक्षर है; तातै छह का अंक कह्या । प कार ते म कार पांचवां अक्षर है; तातैं पांच का अंक कह्या । य कार तै र कार दूसरा अक्षर हे; तातैं दोय का अंक कह्या है । न कार तै विदी कही है । इत्यादि यहा अक्षर संज्ञा ते अंक जानने ।

पण्णट्ठदाल पणतीस, तीस पण्णास पण्ण तेरसदं ।
णउदी दुदाल पुव्वे, पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥

छस्सय पण्णासाइं, चउसयपण्णास छसयपणुवीसा ।
बिहि लक्खेहि दु गुणिया, पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत् पंचत्रिंशत् त्रिंशत् पंचाशत् पंचाशत्त्रयोदशशतं ।
नवतिः द्वाचत्वारिंशत् पूर्वे पंचपंचाशत् त्रयोदशशतानि ॥३६५॥

षट्छतपंचाशानि, चतुः शतपंचाशत् षट्छतपंचविंशतिः ।
द्वाभ्यां लक्षाभ्यां तु गुणितानि पंचमं रूपोनं षट्युतानि षष्ठे ॥३६६॥

टीका – उत्पाद आदि चौदह पूर्वनि विषै पदनि की संख्या [illegible] वस्तु का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, आदि अनेक धर्म, [illegible] प्रथम पूर्व है । इस विषै जीवादि वस्तुनि का नाना प्रकार [illegible] युगपत् अनेक धर्म करि भये, जे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, [illegible]

धर्म भये। सो उन धर्मरूप परिणाया वस्तु, सो भी नव प्रकार हो है। उपज्या, उपजै है, उपजैगा। नष्ट भया, नष्ट हो है, नष्ट होयगा। स्थिर भया, स्थिर है, स्थिर होगया। असैं नव प्रकार द्रव्य भया। इन एक एक का नव नव उत्पन्नपना आदि धर्म जानने। असैं इक्यासी भेद लीये द्रव्य का वर्णन है। याके दोय लाख तैं पचासकौ गुणिये, असा एक कोडि (१०००००००) पद जानने।

बहुरि **अग्र** कहिये, द्वादशांग विषै प्रधानभूत जो वस्तु, ताका **अयन** कहिये ज्ञान, सो ही है प्रयोजन जाका, असा **अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व** है। इस विषैं सात सै सुनय अर दुर्नय, तिनिका अर सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य इत्यादि का वर्णन है। याके दोय लाख तै अड़तालीस कौं गुणिये, असैं छिनवै लाख (९६०००००) पद है।

बहुरि **वीर्य** कहिये जीवादिक वस्तु की शक्ति – समर्थता, ताका है **अनुप्रवाद** कहिये वर्णन, जिस विषै असा **वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व** है। इस विषैं आत्मा का वीर्य, पर का वीर्य, दोऊ का वीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य इत्यादिक द्रव्य गुण पर्यायनि का शक्तिरूप वीर्य तिसका व्याख्यान है। याकौं दोय लाख तैं पैंतीस कौं गुणिये असैं सत्तरि लाख (७००००००) पद है।

बहुरि **अस्ति, नास्ति** आदि जे धर्म तिनिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इस विषैं असा **अस्ति नास्ति प्रवाद नामा चौथा पूर्व** है। इस विषै जीवादि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि सयुक्त हैं। तातै स्यात् अस्ति है। बहुरि पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषै यह नाही है; तातै स्यान्नास्ति है। बहुरि अनुक्रम तैं स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा स्यात् अस्ति - नास्ति है। बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा द्रव्य कहने में न आवे, तातैं स्यात् अवक्तव्य है। बहुरि स्व द्रव्य, क्षेत्र काल भाव करि द्रव्य अस्ति रूप है। बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि कहने मे आवै; तातै स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। बहुरि पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि द्रव्य नास्तिरूप है। बहुरि युगपत् स्व – पर द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव करि द्रव्य कहने में न आवै; तातैं स्यात्नास्तिअवक्तव्य है। बहुरि अनुक्रम तैं स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा द्रव्य अस्ति नास्ति रूप है। अर युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अवक्तव्य है; तातैं स्यात् अस्ति – नास्ति अवक्तव्य है। असैं जिस प्रकार अस्ति नास्ति अपेक्षा सप्त भेद कहे है। तैसें एक-अनेक

धर्म अपेक्षा सप्त भग हो है । अभेद अपेक्षा स्यात् एक है । भेद अपेक्षा स्यात् अनेक है । क्रम तैं अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक - अनेक है । युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् अवक्तव्य है । अभेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद-भेद अपेक्षा स्यात एक अवक्तव्य है। भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् अनेक अवक्तव्य है । क्रम तैं अभेद – भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद – भेद अपेक्षा स्यात् एक – अनेक अवक्तव्य है। अैसें ही नित्य अनित्य नै आदि दे अनंत धर्मनि के सप्त भंग है । तहा प्रत्येक भंग तीन अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य, अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अर त्रिसंयोगी एक अस्ति – नास्ति – अवक्तव्य । इनि सप्त भंगनि का समुदाय सो सप्तभंगी सो प्रश्न के वश तैं एक ही वस्तु विषैं अविरोधपनै सभ-वती नाना प्रकार नयनि की मुख्यता, गौणता करि प्ररूपण कीजिए है । इहां सर्वथा नियमरूप एकांत का अभाव लीए कथंचित् अैसा है अर्थ जाका सो स्यात् शब्द जानना । इस अंग के दोय लाख तैं तीस कौं गुणिए सो साठि लाख (६००००००) पद हैं ।

बहुरि ज्ञाननि का है प्रवाद कहिए प्ररूपण, जिस विषै अैसा **ज्ञानप्रवाद नामा पांचमां पूर्व** है । इस विषै मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय, केवल ए पांच सम्य-ग्ज्ञान अर कुमति, कुश्रुति, विभंग ए तीन कुज्ञान इनिका स्वरूप, संख्या वा विषय वा फल इत्यादि अपेक्षा प्रमाण अप्रमाणता रूप भेद वर्णन कीजिए है । याके दोय लाख तैं पचास कौं गुणैं, एक कोटि होइ तिन में स्यों एक घटाइए अैसें एक घाटि कोडि (९९९९९९९) पद है। गाथा विषै **पंचम रूऊण** अैसा कहा है । तातै पाचमां अग में एक घटाया अन्य संख्या गाथा अनुसारि कहिए ही है ।

बहुरि सत्य का है प्रवाद कहिए प्ररूपण इस विषै अैसा **सत्यप्रवाद नामा छठा पूर्व** है । इस विषै वचन गुप्ति – बहुरि वचन संस्कार के कारण, बहुरि वचन के प्रयोग, बहुरि बारह प्रकार भाषा, बहुरि बोलनेवाले जीवो के भेद, बहुरि बहुत प्रकार मृषा वचन, बहुरि दशप्रकर सत्य वचन इत्यादि वर्णन है । तहा असत्य न बोलना वा मौन धरना सो सत्य वचन गुप्ति कहिए ।

बहुरि वचन संस्कार के कारण दोय एक तौ स्थान, एक प्रयत्न । तहां जिनि स्थानकनि तैं अक्षर बोलैं, जांहि ते स्थान आठ है – हृदय, कंठ, मस्तक, जिह्वा का मूल, दंत, नासिका, होठ, तालवा । जैसे अ कार, क वर्ग, ह कार, विसर्ग इनिका कठ स्थान है अैसे अक्षरनि के स्थान जानने ।

बहुरि जिस प्रकार अक्षर कहे जांहि, ते प्रयत्न पाच है – स्पृष्टता, ईपत् स्पृष्टता, विवृतता, ईषद्विवृतता, संवृतता । तहा अंग का अंग तै स्पर्श भए, अक्षर बोलिए सो स्पृष्टता । किछू थोरा स्पर्श भए बोलिए, सो ईपत्स्पृष्टता अंग कौं उघाडि बोलिए, सो विवृतता किछू थोरा उघाडि बोलिए, सो ईपद्विवृतता अग तै अग कौ ढांकि बोलिए; सो संवृतता । जैसै प कारादिक होठ से होठ का स्पर्श भएं ही उच्चारण होइ; असै प्रयत्न जानने ।

बहुरि वचन प्रयोग दोय प्रकार शिष्टरूप भला वचन, दुष्टरूप बुरा वचन ।

बहुरि भाषा बारह प्रकार, तहां इसने असा कीया है; असा अनिष्ट वचन कहना; सो अभ्याख्यान कहिए । बहुरि जातै परस्पर विरोध होइ; सो कलह वचन । बहुरि पर का दोष प्रकट करना; सो पैशून्य वचन । बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्ष का संबंध रहित वचन, सो असंबंद्ध प्रलाप वचन । बहुरि इन्द्रिय विपयनि विषै रति का उपजावन हारा वचन; सो रति वचन । बहुरि विपयनि विषै अरति का उपजावन हारा वचन, सो अरति वचन । बहुरि परिग्रह का उपजावने, राखने की आसक्तता का कारण वचन; सो उपधि वचन । बहुरि व्यवहार विषै ठिगनेरूप वचन, सो निकृति वचन । बहुरि तप ज्ञानादिक विषैं अविनय का कारण वचन; सो अप्रणति वचन । बहुरि चोरी का कारणरूप वचन, सो मोष वचन । बहुरि भले मार्ग का उपदेशरूप वचन, सो सम्यग्दर्शन वचन । बहुरि मिथ्या मार्ग का उपदेशरूप वचन, सो मिथ्यादर्शन वचन । असै बारह भाषा है ।

बहुरि बेइंद्रिय आदि सैनी पंचेन्द्रिय पर्यंत वचन बोलने वाले वक्तानि के भेद है । बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिक करि मृषा जो असत्य वचन, सो बहुत प्रकार है । बहुरि जनपदादि दश प्रकार सत्य वचन पूर्वे योग मार्गणा विषै कहि आए है; असा असा कथन इस पूर्व विषै है । याके दोय लाख तै पचास कौ गुणिए अर छज्जुदा छट्ठे इस वचन करि छह मिलाइए असे एक कोटि छह (१००००००६) पद है ।

बहुरि आत्मा का प्रवाद कहिए प्ररूपण है, इस विषै असा आत्मप्रवाद नामा सातमां पूर्व है । इस विषै गाथा –

जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो ।
वेदी विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो ।।

सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो ।
असंकुडो य खेत्तण्हू, अंतरप्पा तहेव य ।।

इत्यादि आत्मस्वरूप का कथन है; इनका अर्थ लिखिए है ।

जीवति कहिये जीवै है, व्यवहार करि दश प्राणनि कौ, निश्चय करि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्वरूप चैतन्य प्राणनि कौं धारै है । अर पूर्वै जीया, आगे जीवेगा; तातै आत्मा को जीव कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि शुभाशुभ कर्म कौ अर निश्चय करि चैतन्य प्राणनि कौ करै है, तातै कर्ता कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि सत्य असत्य वचन बोलै है; तातै वक्ता है । निश्चय करि वक्ता नाही है ।

बहुरि दोऊ नयनि करि जे प्राण कहे, ते याकै पाइए है । तातै प्राणी कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि शुभ अशुभ कर्म के फल कौ अर निश्चय करि निज स्वरूप कौ भोगवै है; तातै भोक्ता कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलनि कौं पूरै है अर गालै है; तातै पुद्गल कहिए । निश्चय करि आत्मा पुद्गल है नाही ।

बहुरि दोऊ नयनि करि लोकालोक सबंधी त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयनि कौ 'वेत्ति' कहिए जानै है, तातै वेदक कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि अपने देह कौं वा केवल समुद्घात करि सर्व लोक कौ अर निश्चय करि ज्ञान तै सर्व लोकालोक कौ वेवेष्टि कहिए व्यापै है, तातै विष्णु कहिए ।

बहुरि यद्यपि व्यवहार करि कर्म के वशतै ससार विषै परिणवै है; तथापि निश्चय करि स्वयं आप ही आप विषै ज्ञान - दर्शन स्वरूप ही करि भवति कहिए परिणवै है, तातै स्वयंभू कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि औदारिक आदिक शरीर, याकै है; तातै शरीरी कहिये, निश्चय करि शरीरी नाही है ।

बहुरि व्यवहार करि मनुष्यादि पर्यायरूप परिणवै है, तातै मानव कहिए। उपलक्षण तै नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिए। निश्चय करि मनु कहिए ज्ञान, तीहि विषै **भवः** कहिए सत्तारूप है; तातै मानव कहिए।

बहुरि व्यवहार करि कुटुंब, मित्रादि परिग्रह विषै **सजति** कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है; तातै सक्ता कहिए। निश्चयकरि सक्ता नाही है।

बहुरि व्यवहार करि संसार विषै नाना योनि विषै **जायते** कहिए उपजै है, जातै जंतु कहिये। निश्चय करि जंतु नाही है।

बहुरि व्यवहार करि मान कहिए अहंकार, सो याके है; तातै मानी कहिए। निश्चयकरि मानी नाही है।

बहुरि व्यवहार करि माया जो कपटाई; सो याकै है; तातै मायावी कहिए। निश्चय करि मायावी नाहीं है।

बहुरि व्यवहारकरि मन, वचन, काय क्रियारूप योग याकै है; तातै योगी कहिए। निश्चय करि योगी नाही है।

बहुरि व्यवहार करि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना करि प्रदेशनि को संकोचै है; तातै संकुट है। बहुरि केवलिसमुद्घात करि सर्व लोक विषै व्यापै है, तातै असंकुट है। निश्चय करि प्रदेशनि का सकोच विस्तार रहित किंचित् ऊन चरम शरीर प्रमाण है, तातै संकुट, असंकुट नाही है।

बहुरि दोऊ नय करि क्षेत्र, जो लोकालोक, ताहि **जानाति** (ज्ञ) कहिए जानै है; तातै क्षेत्रज्ञ कहिए।

बहुरि व्यवहार करि अष्ट कर्मनि के अभ्यतर प्रवर्तै है। अर निश्चय करि चैतन्य स्वभाव के अभ्यंतर प्रवर्तै है; तातै अंतरात्मा कहिए।

चकार तै व्यवहार करि कर्म - नोकर्म रूप मूर्तीक द्रव्य के सबध तै मूर्तीक है; निश्चय करि अमूर्तीक है। इत्यादिक आत्मा के स्वभाव जानने। इनिका व्याख्यान इस पूर्व विषै है। याके दोय लाख तै तेरह सै कौ गुणिए असे छब्बीस कोडि (२६००००००) पद है।

बहुरि कर्म का है प्रवाद कहिए प्ररूपण, इसविषै ऐसा **कर्मप्रवाद नामा आठमां पूर्व** है। इसविषै मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति, उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप भेद लीए बध, उदय, उदीरणा, सत्ता रूप अवस्था कौ धरै ज्ञानावरणादिक कर्म, तिनिके स्वरूप कौ वा समवधान, ईर्यापथ, तपस्या, अधःकर्म इत्यादिक क्रियारूप कर्मनि कौ प्ररूपिए है । याके दोय लाख तै निवै कौ गुणिए, ऐसे एक कोडि अस्सी लाख (१८००००००) पद हैं।

बहुरि **प्रत्याख्यायते** कहिए निषेधिए है पाप जाकरि, ऐसा **प्रत्याख्यान नामा नवमां पूर्व** है। इसविषै नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा जीवनि का संहनन वा बल इत्यादिक के अनुसार करि काल मर्यादा लीए वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिए सकल पाप सहित वस्तु का त्याग; उपवास की विधि, ताकी भावना, पाच समिति, तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिए है। याके दोय लाख तै बियालीस कौ गुणिए, ऐसे चौरासी लाख (८४०००००) पद है।

बहुरि विद्यानि का है अनुवाद कहिए अनुक्रमतै वर्णन इस विषै ऐसा **विद्यानुवाद नामा दशमां पूर्व** है। इसविषै सात सै अगुष्ठ, प्रेतसेन आदि अल्पविद्या अर पाच सै रोहिणी आदि महाविद्या, तिनका स्वरूप, समर्थता, साधनभूत मत्र, यत्र, पूजा, विधान, सिद्ध भये पीछे उन विद्यानि का फल बहुरि अतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यजन, छिन्न ए आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररुपिए। सो याके दोय लाख तै पचावन कौ गुणिए ऐसे एक कोड दश लाख (११००००००) पद है।

बहुरि कल्याणनि का है वाद कहिए प्ररूपण जाविषै ऐसा **कल्याणवाद नामा ग्यारह्वां पूर्व** है। इस विषै तीर्थंकर, चक्रवर्ति, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण इनके गर्भ आदिक कल्याण कहिए महा उच्छव बहुरि तिनके कारणभूत षोडश भावना, तपश्चरण आदिक क्रिया। बहुरि चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इनिका गमनविशेष, ग्रहण, शकुन, फल इत्यादि विशेष वर्णन कीजिए है। याके दोय लाख तै तेरह सै कौ गुणिए ऐसे छब्बीस कोडि (२६०००००००) पद हैं।

बहुरि प्राणनि का है आवाद कहिए प्ररूपण इसविषै ऐसा **प्राणावाद नामा बारह्वां पूर्व** है। इसविषै चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक, अर भूतादि व्याधि दूर करने कौ कारण मत्रादिक वा विष दूरि करणहारा जो जागुलिक, ताका कर्म वा

इला, पिंगला, सुष्मणा, इत्यादि स्वरोदय रूप बहुत प्रकार कारणरूप सासोस्वास का भेद; बहुरि दश प्राणनि कौं उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिक के अनुसारि वर्णन कीजिए है; सो जाके दोय लाख तै छह सै पचास कौं गुणिए, ऐसे तेरह कोडि (१३००००००००) पद हैं।

बहुरि क्रिया करि विशाल कहिए विस्तीर्ण, शोभायमान असा **क्रियाविशाल नामा तेरह्वां पूर्व** है। इसविषै संगीत, शास्त्र, छंद, अलंकारादि शास्त्र, बहत्तरि कला, चौसठि स्त्री का गुण शिल्प आदि चातुर्यता, गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शनादि एक सै आठ क्रिया, देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपिए है। याके दोय लाख तें च्यारि सै पचास कौं गुणिए असे नव कोडि (९००००००००)पद है।

बहुरि त्रिलोकनि का बिंदु कहिए अवयव अर सार सो प्ररूपिए है, याविषैं असा **त्रिलोकबिंदुसार नामा चौदह्वां पूर्व** है। इसविषै तीन लोक का स्वरूप अर छब्बीस परिकर्म, आठ व्यवहार, च्यारि बीज इत्यादि गणित अर मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष का कारणभूत क्रिया, मोक्ष का सुख इत्यादि वर्णन कीजिए है। याके दोय लाख तै छह सै पचीस कौं गुणिए, असे बारह कोडि पचास लाख(१२५००००००)पद हैं।

असै चौदह पूर्वनि के पदनि की संख्या हो है। इहां दोय लाख का गुणकार का विधान करि गाथा विषैं संख्या कही थी; तातै टीका विषै भी तैसै ही कही है।

सामाइय चउवीसत्थयं, तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणइयं किदियम्मं, दसवेयालं च उत्तरज्झयणं ॥३६७॥

कप्पववहार-कप्पाकप्पिय-महकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥३६८॥

सामायिकं चतुर्विंशस्तवं, ततो वंदना प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म, दशवैकालिकं च उत्तराध्ययनं ॥३६७॥

कल्प्यव्यवहार – कल्प्याकल्प्य – महाकल्प्यं च पुडरीकं।
महापुंडरीकं निषिद्धिका इति चतुर्दशांगबाह्य ॥३६८॥

टीका – बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत, सो चौदह प्रकार है। सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुडरीक, महापुडरीक, निषिद्धिका।

तहां सं कहिए एकत्वपनै करि आयः कहिए आगमन पर द्रव्यनि तैं निवृत्ति होइ, उपयोग की आत्मा विषैं प्रवृत्ति 'यहु मै ज्ञाता द्रष्टा हौ' असैं आत्मा विषैं उपयोग सो सामायिक कहिए। जातैं एक ही आत्मा सो जानने योग्य है; तातैं ज्ञेय है। अर जाननें हारा है, तातैं ज्ञायक है। तातैं आप कौ ज्ञाता द्रष्टा अनुभवै है।

अथवा **सम** कहिए राग-द्वेष रहित मध्यस्थ आत्मा, तिस विषै आयः कहिए उपयोग की प्रवृत्ति; सो सामायिक कहिए, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिए। नित्य नैमित्तिक रूप क्रिया विशेष, तिस सामायिक का प्रतिपादक शास्त्र सो भी सामायिक कहिए।

सो नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेद करि सामायिक छह प्रकार है।

तहां इष्ट - अनिष्ट नाम विषैं राग द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तु का सामायिक असा नाम धरना, सो नाम सामायिक है।

बहुरि मनोहर वा अमनोहर जो स्त्री - पुरुषादिक का आकार लीए काठ, लेप, चित्रामादि रूप स्थापना तिन विषै राग - द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तु विषै यहु सामायिक है, असा स्थापना करि स्थाप्यो हूवा वस्तु, सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट - अनिष्ट, चेतन - अचेतन द्रव्य विषैं राग - द्वेष न करना। अथवा जो सामायिक शास्त्र कौ जानैं है अर वाका उपयोग सामायिक विषै नाहीं है, सो जीव वा उस सामायिक शास्त्र के जाननेवाले का शरीरादिक, सो द्रव्य सामायिक है।

बहुरि ग्राम, नगर, वनादिक इष्ट अनिष्ट क्षेत्र, तिन विषै राग द्वेष न करना, सो क्षेत्र सामायिक है।

बहुरि बसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, दिन, वार, नक्षत्र इत्यादि इष्ट - अनिष्ट काल के विशेष, तिनिविषैं राग - द्वेष न करना, सो काल सामायिक है।

बहुरि भाव, जो जीवादिक तत्त्व विषै उपयोगरूप पर्याय, ताके मिथ्यात्वकषायरूप संक्लेशपना की निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्र कौ जानै है अर उस ही विषै उपयोग जाका है, सो जीव अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणमन, सो भावसामायिक है ।

असैं **सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है ।**

बहुरि जिस काल विषै जिनका प्रवर्तन होइ, तिस काल विषैं तिन ही चौबीस तीर्थंकरनि का नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव का आश्रय करि पंच कल्याणक, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्य शरीर, समवसरणसभा, धर्मोपदेश देना इत्यादि तीर्थंकरपने की महिमा का स्तवन, सो **चतुर्विंशतिस्तव** कहिए । ताका प्रतिपादक शास्त्र, सो **चतुर्विंशतिस्तव नामा प्रकीर्णक** है ।

बहुरि एक तीर्थंकर का अवलंबन करि प्रतिमा, चैत्यालय इत्यादिक की स्तुति, सो वंदना कहिए । याका प्रतिपादक शास्त्र, सो **वंदना प्रकीर्णक कहिए ।**

बहुरि **प्रतिक्रम्यते** कहिए प्रमाद करि कीया है दैवसिक आदि दोष, तिनिका निराकरण जाकरि कीजिए, सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक कहिए। सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक सात प्रकार है – दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक उत्तमार्थ ।

तहां संध्यासमय दिन विषैं कीया दोष, जाकरि निवारिए, सो दैवसिक है । बहुरि प्रभातसमय रात्रि विषैं कीया दोष जाकरि निवारिए, सो रात्रिक है । बहुरि पंद्रह्वे दिन, पक्ष विषै कीया दोष जाकरि निवारिए, सो पाक्षिक कहिए । बहुरि चौथे महीने च्यारिमास विषै कीए दोष जाकरि निवारिए, सो चातुर्मासिक कहिए । बहुरि वर्षवें दिन एकवर्ष विषैं कीए दोष जाकरि निवारिए, सो सांवत्सरिक कहिए । बहुरि गमन कर तैं निपज्या दोष जाकरि निवारिए; सो ऐर्यापथिक कहिए । बहुरि सर्व पर्याय सबंधी दोष जाकरि निवारिए; सो उत्तमार्थ है । असैं सात प्रकार प्रतिक्रमण जानना ।

सो भरतादि क्षेत्र अर दुःषमादिकाल, छह संहनन करि संयुक्त स्थिर वा अस्थिर पुरुषनि के भेद, तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमण का प्रतिपादक शास्त्र, सो **प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिए ।**

बहुरि विनय है प्रयोजन जाका, सो **वैनयिक नामा प्रकीर्णक** कहिए । इसविषै ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, उपचार संबंधी पंच प्रकार विनय के विधान का प्ररूपण है ।

बहुरि कृति कहिये क्रिया, ताका कर्म कहिए विधान, इसविषै प्ररूपिए है; **सो कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक कहिए** । इसविषै अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि नव देवतानि की वंदना के निमित्त आप आधीन होना; सो आत्माधीनता अर गिरद भ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वी तैं अंग लगाइ दोय नमस्कार अर शिर नवाइ च्यारि नमस्कार अर हाथ जोड़ि फेरनरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्य - नैमित्तिक क्रिया का विधान निरूपिए है ।

बहुरि विशेष रूप जे काल, ते विकाल कहिए । तिनिकौ होतें जो होय सो वैकालिक, सो दश वैकालिक इस विषै प्ररूपिए है, असा **दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक** है । इस विषै मुनिका आचार अर आहार की शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिए है ।

बहुरि उत्तर जिस विषै **अधीयंते** कहिए पढिए; **सो उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक** है । इस विषै च्यारि प्रकार उपसर्ग, बाईस परिषह, इनिके सहने का विधान वा तिनिका फल अर इस प्रश्न का यहु उत्तर असें उत्तर विधान प्ररूपिए है ।

बहुरि कल्प्य कहिए योग्य आचरण, सो **व्यवह्रियते अस्मिन्** कहिए प्रवृत्तिरूप कीजिए जाविषै असा **कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक** है । इस विषै मुनीश्वरनि के योग्य आचरणनि का विधान अर अयोग्य का सेवन होतें प्रायश्चित्त प्ररूपिए है ।

बहुरि **कल्प्य** कहिए योग्य अर **अकल्प्य** कहिए अयोग्य प्ररूपिए है जाविषै, असा **कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक** है । इसविषै द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा साधुनि कौ यहु योग्य है, यहु अयोग्य है; असा भेद प्ररूपिए है ।

बहुरि **महतां** कहिए महान् पुरुषनि के कल्प्य कहिए योग्य, असा आचरण जाविषै प्ररूपिए है, सो **महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक** है । इसविषै जिनकल्पी महामुनिनि के उत्कृष्ट संहनन योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषै प्रवर्तें तिनकै प्रतिमायोग वा आतापनयोग, अभ्रावकाश, वृक्षतल रूप त्रिकाल योग इत्यादि आचरण प्ररूपिए है । अर स्थविरकल्पीनि की दीक्षा, शिक्षा, संघ का पोषण, यथायोग्य शरीर का समा-

धान; सो आतमसस्कार सल्लेखना उत्तम अर्थ स्थान कौ प्राप्त उत्तम आराधना, इनिका विशेष प्ररूपिए है ।

बहुरि **पुडरीक नामा प्रकीर्णक** भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी, कल्पवासी इनि विषै उपजने कौ कारण असा दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यक्त्व, संयम इत्यादि विधान प्ररूपिये है । वा तहा उपजने तै जो विभवादि पाइए, सो प्ररूपिये है ।

बहुरि **महान् जो पुडरीक, सो महापुडरीक नामा प्रकीर्णक** है । सो महर्धिक जे इद्र, प्रतीद्र, अहमिद्रादिक, तिनविषै उपजने कौ कारण असे विशेष तश्चरणादि, तिनिकौ प्ररूपै है ।

बहुरि **निषेधनं** कहिए प्रमाद करि कीया दोष का निराकरण; सो **निषिद्धि** कहिए सज्ञा विषै क प्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया, सो असा **निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्रायश्चित शास्त्र** है । इस विषै प्रमादतै कीया दोष का विशुद्धता के निमित्त अनेक प्रकार प्रायश्चित्त प्ररूपिए है । याका निसतिका असा भी नाम है ।

असै अगबाह्य श्रुतज्ञान चौदह प्रकार कह्या । याके अक्षरनि का प्रमाण पूर्वै कह्या ही है ।

आगै श्रुतज्ञान की महिमा कहै है –

सुदकेवलं च णाणं, दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो ।
सुदणाणं तु परोक्खं, पच्चक्खं केवलं णाणं ।।३६९।।

श्रुतकेवलं च ज्ञानं, द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् ।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं, प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं ।।३६९।।

टीका – श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ समस्त वस्तुनि के द्रव्य, गुण, पर्याय जानने की अपेक्षा समान है । इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है; केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ।

भावार्थ — जैसै केवलज्ञान का अपरिमित विषय है; तैसै श्रुतज्ञान का अप रिमित विषय है । शास्त्र तै सर्वनि का जानने की शक्ति है; परि श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट

भी होइ; तौ भी सर्व पदार्थनि विषै परोक्ष कहिए अविशद, अस्पष्ट ही है। जातै अमूर्तिक पदार्थनि विषै वा सूक्ष्म अर्थ-पर्यायनि विषैं वा अन्य सूक्ष्म अंशनि विषै विशदता करि प्रवृत्ति श्रुतज्ञान की न हो है । बहुरि जे मूर्तिक व्यंजनपर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस ज्ञान के विषय हैं । तिनि विषै भी अवधिज्ञानादि की नाईं प्रत्यक्ष रूप न प्रवर्तै है । तातै श्रुतज्ञान परोक्ष है ।

बहुरि केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहिए विशद अर स्पष्टरूप मूर्तिक – अमूर्तिक पदार्थ, स्थूल – सूक्ष्म पर्याय, तिनि विषैं प्रवर्तै है, जातैं समस्त आवरण अर वीर्यांतराय के क्षय तें प्रकट हो है; तातै प्रत्यक्ष है । अक्ष कहिए आत्मा, तिहिं प्रति निश्चित होइ, कोई पर द्रव्य की अपेक्षा न चाहे, सो प्रत्यक्ष कहिए । प्रत्यक्ष का लक्षण विशद वा स्पष्ट है । जहां अपने विषय के जानने मै कसर न होइ, ताकौं विशद वा स्पष्ट कहिए ।

बहुरि उपात्त वा अनुपात्तरूप पर द्रव्य की सापेक्षा कौ लीए जो होइ, सो परोक्ष कहिये । याका लक्षण अविशद – अस्पष्ट जानना । मन, नेत्र अनुपात्त है; अन्य चारि इंद्री उपात्त है ।

असैं श्रुतज्ञान केवलज्ञान विषैं प्रत्यक्ष, परोक्ष लक्षण भेद तै भेद है । बहुरि विषय अपेक्षा समानता है । सोई समंतभद्राचार्य देवागम स्तोत्र विषै कह्या है–

स्याद्वादकेवलज्ञाने, सर्वतत्त्वप्रकाशने ।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ।।

याका अर्थ — स्याद्वाद तौ श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान ए दोऊ सर्व तत्त्व के प्रकाशी है, परन्तु प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तै भेद पाइए है । इनि दोऊ प्रमाणनि विषै अन्य तम जो एक, सो अवस्तु है। एक का अभाव मानै दोऊनि का अभाव - विनाश जानना ।

आगै शास्त्रकर्ता पैसठि गाथानि करि अवधिज्ञान कौं प्ररूपै हैं–

अवहीयदि त्ति ओही, सीमाणाणे त्ति वण्णियं समये ।
भवगुणपच्चयविहियं, जमोहिणाणो त्ति णं बेंति[1] ।।३७०।।[2]

---

१. पाठभेद— जमोहि तमोहिं ।
२. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, गाथा स. १८४, पृष्ठ ३६१ ।

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये ।
भवगुणप्रत्ययविधिकं, यदवधिज्ञानमिति ब्रुवंति ।।३७०।।

टीका — **अवधीयते** कहिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि परिमाण जाका कीजिए, सो अवधिज्ञान जानना । जैसे मति, श्रुत, केवलज्ञान का विषय द्रव्य, क्षेत्रादि करि अपरिमित है; तैसे अवधिज्ञान का विषय अपरिमित नाही । श्रुतज्ञान करि भी शास्त्र के बल तै अलोक वा अनन्तकाल आदि जानै । अवधिज्ञान करि जेता द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रमाण आगै कहैगे; तितना ही प्रत्यक्ष जानै । तातै सीमा जो द्रव्य क्षेत्रादि की मर्यादा, ताकौ लीए है विषय जाका, असा जो ज्ञान, सो अवधिज्ञान है; असै सर्वज्ञदेव सिद्धांत विषै कहे है ।

सो अवधिज्ञान दोय प्रकार कह्या है । एक भवप्रत्यय, एक गुणप्रत्यय । तहा भव जो नारकादिक पर्याय, ताके निमित्त तै होइ; सो भवप्रत्यय कहिए, जो नारकादि पर्याय धारै ताके अवधिज्ञान होइ ही होइ, तातै इस अवधिज्ञान कौ भवप्रत्यय कहिए । वहुरि गुणप्रत्यय कहिए सम्यग्दर्शनादि रूप, सो है निमित्त जाका; सो गुण-प्रत्यय कहिए । मनुष्य, तिर्यंच सर्व ही कै अवधिज्ञान नाही; जाकै सम्यग्दर्शनादिक की विशुद्धता होइ, ताकै अवधिज्ञान होइ, तातै इस अवधिज्ञान कौ गुणप्रत्यय कहिए ।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थे वि सव्वअंगुत्थो ।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिह्णभवो ।।३७१।।

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्थेऽपि सर्वांगोत्थम् ।
गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादिचिह्न भवम् ।।३७१।।

टीका — तहा भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवनि कै, नारकीनि कै अर चरम शरीरी तीर्थंकर देवनि कै पाइए है । सो यहु भवप्रत्यय अवधिज्ञान **'सर्वांगोत्थं'** कहिए सर्व आत्मा के प्रदेशनि विषै तिष्ठता अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्म, ताके क्षयोपशम तै उत्पन्न हो है ।

वहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है, सो पर्याप्त मनुष्य अर सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच, इनिके सभवै है । सो यहु गुणप्रत्यय अवधिज्ञान **'शंखादिचिन्हभवम्'** कहिए

नाभि के ऊपरि शंख, कमल, वज्र, साथिया, माछला, कलस इत्यादिक का आकार रूप जहा शरीर विषै भले लक्षण होंइ, तहां संबंधी जे आत्मा के प्रदेश, तिनि विषै तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण कर्म अर वीर्यांतराय कर्म, तिनिके क्षयोपशम तै उत्पन्न हो है ।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान विषै भी सम्यग्दर्शनादि गुण का सद्भाव है, तथापि उन गुणों की अपेक्षा नाही करने तै भवप्रत्यय कह्या अर गुणप्रत्यय विषै मनुष्य तिर्यंच भव का सद्भाव है; तथापि उन पर्यायनि की अपेक्षा नाही करने तै गुणप्रत्यय कह्या है ।

गुणपच्चइगो छद्धा, अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही, सव्वोहि त्ति य तिधा ओही ॥३७२॥

गुणप्रत्ययकः षोढा, अनुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे ।
देशावधिः परमावधिः, सर्वावधिरिति च त्रिधा अवधिः ॥३७२॥

टीका – जो गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है, सो छह प्रकार है – अनुगामी, अवस्थित, वर्धमान, अर इतर कहिए अननुगामी, अनवस्थित, हीयमान ऐसें छह प्रकार है।

तहां जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीव के साथि ही गमन करै, ताकौ अनुगामी कहिए । ताके तीन भेद – क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी, उभयानुगामी । तहा जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र विषै उपज्या था, तिस क्षेत्र कौ छोड़ि, जीव और क्षेत्र विषै बिहार कीया, तहा भी वह अवधिज्ञान साथि ही रह्या, विनष्ट न हुवा और पर्याय धरि विनष्ट होइ, सो क्षेत्रानुगामी कहिए । बहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषै उपज्या था, तिस पर्याय कौ छोडि, जीव और पर्याय कौ धर्‌या तहा भी वह अवधिज्ञान साथि ही रह्या, सो भवानुगामी कहिए । बहुरि जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र वा पर्याय विषै उपज्या था, तातै जीव अन्य भरतादि क्षेत्र विषै गमन कीया वा अन्य देवादि पर्याय धर्‌या, तहा साथि ही रहै, सो उभयानुगामी कहिए ।

बहुरि जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीव की साथि गमन न करै, सो अननुगामी कहिए । याके तीन भेद क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी । तहा जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र विषै उपज्या होइ, तिस क्षेत्र विषै तो जीव और पर्याय धरौ वा

मति धरौ वह अवधिज्ञान साथि ही रहै है । अर उस क्षेत्र तैं जीव और कोई भरत, ऐरावत, विदेहादि क्षेत्रनि विषै गमन करै, तो वह ज्ञान अपने उपजनें का क्षेत्र ही विषै विनष्ट होइ, सो क्षेत्राननुगामी कहिए । बहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषैं उपज्या होइ, तिस पर्याय विषै तौ जीव और क्षेत्र विषै तौ गमन करौ वा मति करौ वह अवधिज्ञान साथि रहे अर उस पर्याय तै अन्य कोई देव मनुष्य आदि पर्याय धरैं तौ अपने उपजने का पर्याय विषै विनष्ट होइ, सो भवाननुगामी कहिये । बहुरि जो अवधिज्ञान और क्षेत्र विषै वा और पर्याय विषै जीव कौं प्राप्त होते साथि न रहै; अपने उपजने का क्षेत्र वा पर्याय विषै ही विनष्ट होइ; सो उभयाननुगामी कहिए ।

बहुरि जो अवधिज्ञान सूर्यमंडल की ज्यों घटै बधै नाही, एक प्रकार ही रहे; सो अवस्थित कहिए ।

बहुरि जो अवधिज्ञान कदाचित् बधै, कदाचित् घटै, कदाचित् अवस्थित रहै; सो अनवस्थित कहिये ।

बहुरि जो अवधिज्ञान शुक्ल पक्ष के चंद्रमंडल की ज्यौं बधता बधता अपनें उत्कृष्ट पर्यंत बधै; सो वर्धमान कहिए ।

बहुरि जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्ष के चंद्रमंडल की ज्यों घटता घटता अपने नाश पर्यंत घटै; सो हीयमान कहिए । ऐसैं गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद कहे ।

बहुरि तैसैं ही सामान्यपनै अवधिज्ञान तीन प्रकार है – देशावधि, परमावधि, सर्वावधि ए तीन भेद है । तहां गुणप्रत्यय देशावधि ही छह प्रकार जानना ।

भवपच्चइगो ओही, देसोही होदि परमसव्वोही ।
गुणपच्चइगो णियमा, देसोही वि य गुणे होदि ॥३७३॥

भवप्रत्ययकोवधिः, देशावधिः भवति परमसर्वावधिः ।
गुणप्रत्ययको नियमात्, देशावधिरपि च गुणे भवति ॥३७३॥

टीका — भवप्रत्यय अवधि तौ देशावधि ही है, जातै देव, नारकी, गृहस्थ, तीर्थंकर इनकै परमावधि सर्वावधि होइ नाही ।

बहुरि परमावधि अर सर्वावधि निश्चय सौं गुणप्रत्यय ही है; जातै संयमरूप विशेष गुण विना न होइ ।

बहुरि देशावधि भी सम्यग्दर्शनादि गुण होत सतै हो है, तातै गुणप्रत्यय अवधि तौ तीन प्रकार ही है। अर भवप्रत्यय अवधि एक देशावधि ही है।

देसावहिस्स य अवरं, णरतिरिये होदि संजदह्मि वरं।
परमोही सव्वोही, चरमसरीरस्स विरदस्स ॥३७४॥

देशावधेश्च अवरं, नरतिरश्चोः भवति संयते वरम्।
परमावधिः सर्वावधिः, चरमशरीरस्य विरतस्य ॥३७४॥

टीका — देशावधि का जघन्य भेद सयमी वा असयमी मनुष्य, तिर्यंच विषै ही हो है; देव, नारकी विषै न हो है। बहुरि देशावधि का उत्कृष्ट भेद सयमी, महाव्रती, मनुष्य विषै ही हो है; जातै और तीन गति विषै महाव्रत संभवै नाहीं।

बहुरि परमावधि अर सर्वावधि जघन्य वा उत्कृष्ट (वा) चरम शरीरी महाव्रती मनुष्य विषै संभवै है।

चरम कहिए संसार का अत विषै भया, तिस ही भवतै मोक्ष होने का कारण, असा वज्रवृषभनाराच शरीर जिसका होइ, सो चरमशरीरी कहिए।

पडिवादी देसोही, अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।
मिच्छत्तं अविरमणं, ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिः, अप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो।
मिथ्यात्वमविरमण, न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके ॥३७५॥

टीका — देशावधि ही प्रतिपाती है; शेष परमावधि, सर्वावधि प्रतिपाती नाही।

प्रतिपात कहिए सम्यक् चारित्र सौ भ्रष्ट होइ, मिथ्यात्व असयम कौं प्राप्त होना, तीहि सयुक्त जो होइ; सो प्रतिपाती कहिए।

जो प्रतिपाती न होइ, सो अप्रतिपाती कहिए। देशावधिवाला तौ कदाचित् सम्यक्त्व चारित्र सौ भ्रष्ट होइ, मिथ्यात्व असयम कौ प्राप्त हो है। अर चरमद्विक कहिए अंत का परमावधि – सर्वावधि दोय ज्ञान विषै वर्तमान जीव, सो निश्चय तैं

मिथ्यात्व अर अविरति कौ प्राप्त न हो है। जातै देशावधि तौ प्रतिपाती भी है; अप्रतिपाती भी है। परमावधि, सर्वावधि अप्रतिपाती ही हैं।

दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि रूवि जाणदे ओही।
अवरादुक्कस्सो त्ति य, वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं, भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः।
अवरादुत्कृष्ट इति च, विकल्परहितस्तु सर्वावधिः ॥३७६॥

टीका — अवधिज्ञान जघन्य भेद तै लगाइ उत्कृष्ट भेद पर्यंत असख्यात लोक प्रमाण भेद धरै है; सो सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रति मर्यादा लीए रूपी जो पुद्गल अर पुद्गल सबंध कौ धरै संसारी जीव, तिनिकौ प्रत्यक्ष जानै है। बहुरि सर्वावधिज्ञान है, सो जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद रहित, हानि – वृद्धि रहित, अवस्थित सर्वोत्कृष्टता कौ प्राप्त है, जातै अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है। तातै देशावधि, परमावधि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद संभवै हैं।

णोकम्मुरालसंचं, मज्झिमजोगोज्जियं सविस्सचयं।
लोयविभत्तं जाणदि, अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्मौदारिकसंचयं, मध्यमयोगार्जितं सविस्रसोपचयम्।
लोकविभक्तं जानाति, अवरावधिः द्रव्यतो नियमात् ॥३७७॥

टीका — मध्यम योग का परिणमन तै निपज्या असा नोकर्मरूप औदारिक शरीर का सचय कहिए द्व्यर्ध गुणहानि करि औदारिक का समयप्रबद्ध कौ गुणिए, तिहि प्रमाण औदारिक का सत्तारूप द्रव्य, बहुरि सो अपने योग्य विस्रसोपचय के परमाणूनि करि सयुक्त, ताकौ लोकप्रमाण असंख्यात का भाग दीएं, जो एक भाग मात्र द्रव्य होइ, तावन्मात्र ही द्रव्य कौ जघन्य अवधिज्ञान जानै है। यातै अल्प स्कंध कौ न जानै है; जघन्य योगनि तै जो निपजै है सचय, सो यातै सूक्ष्म हो है; तातै तिस कौ जानने की शक्ति नाही। बहुरि उत्कृष्ट योगनि तै जो निपजै है संचय, सो यातै स्थूल है, ताकौ जानै ही है जातै जो सूक्ष्म कौ जानै, ताकै उसतै स्थूल कौ जानने में किछू विरुद्ध (विरोध) नाही। तातै यहां मध्यम योगनि करि निपज्या असा औदारिक शरीर का संचय कह्या। बहुरि विस्रसोपचय रहित सूक्ष्म हो है, तातै वाकै जानने की शक्ति

नाही; ताते विस्रसोपचय सहित कह्या । असै स्कंध कौ लोक के जितने प्रदेश है, उतने खंड करिये । तहां एक खड प्रमाण पुद्गल परमाणूनि का स्कध नेत्रादिक इद्रियनि के गोचर नाहीं । ताकौं जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जाने है। असा जघन्य देशावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य का नियम कह्या ।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स, जादस्स तदियसमयम्हि ।
अवरोगाहणमाणं, जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ।।३७८।।

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य, जातस्य तृतीयसमये ।
अवरावगाहनमानं, जघन्यकमवधिक्षेत्रं तु ।।३७८।।

टीका — बहुरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के जन्म तै तीसरा समय के विषैं जघन्य अवगाहना का प्रमाण पूर्वे जीव समासाधिकार विषै कह्या था, तीहिं प्रमाण जघन्य अवगाहना का क्षेत्र जानना । इतने क्षेत्र विषै पूर्वोक्त प्रमाण लीए वा तिसतैं स्थूल जेते पुद्गल स्कध होंइ, तिनिकौ जघन्य देशावधिज्ञान जानै है । इस क्षेत्र के बारै तिष्ठते जे होइ, तिनकौ न जानै है, असैं क्षेत्र की मर्यादा कही ।

अवरोहिखेत्तदीहं, वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे, अवरोगाहणपमाणं तु ।।३७९।।

अवरावधिक्षेत्रदीर्घं, विस्तारोत्सेधकं न जानीमः ।
अन्यत् पुनः समीकरणे, अवरावगाहनप्रमाणं तु ।।३७९।।

टीका — बहुरि जघन्य देशावधिज्ञान का विषय भूत क्षेत्र की लवाई, चौडाई, ऊंचाई का प्रमाण हम न जानै है कितना कितना है, जातै इहा असा उपदेश नाहीं, परंतु परम गुरुनि का उपदेश की परम्परा तै इतना जाने है, जो भुज, कोटि, वेधनि का समीकरण तै जो क्षेत्रफल होइ, सो जघन्य अवगाहना के समान घनांगुल के असंख्यातवे भागमात्र हो है ।

आम्ही साम्ही दोय दिसानि विषै जो कोई एक दिशा सवंधी प्रमाण, सो भुज कहिये ।

अवशेष दोय दिसानि विषैं कोई एक दिशा संवधी प्रमाण, सो कोटि कहिए ।

ऊंचाई का प्रमाण कौं, वेध कहिए ।

प्रवृत्ति विषै लबाई, ऊंचाई, चौडाई तीन नाम है । सो इनिका क्षेत्र, खंड विधान तैं समान प्रमाण करि क्षेत्रफल कीए, जो प्रमाण आवै, तितना क्षेत्रफल जानना । जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का अर जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्र का क्षेत्रफल समान है, इतना तो हम जानै है । अर भुज, कोटि, वेध का प्रमाण कैसे है ? सो हम जानते नाही, अधिक ज्ञानी जानै ही हैं ।

अवरोगाहणमाणं, उस्सेहंगुलअसंखभागस्स ।
सूइस्स य घणपदरं, होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ।।३८०।।

अवरावगाहनमानमुत्सेधांगुलासंख्यभागस्य ।
सूचेश्च घनप्रतरं, भवति हि तत्क्षेत्रसमीकरणे ।।३८०।।

टीका — इहां कोऊ प्रश्न करै कि जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्र का प्रमाण कहा, सो कैसाक है ?

ताका समाधान – जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्र का आकार कोऊ एक नियम रूप नाहीं तथापि क्षेत्र, खंड विधान करि सदृश कीजिए, तब भुज का वा कोटि का वा वेध का प्रमाण उत्सेधांगुल कौ योग्य असंख्यात का भाग दीएं, जो एक भाग का प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि भुज कौ वा कोटि कौ वा वेध कौ परस्पर गुणै, घनागुल के असख्यातवे भागमात्र प्रकट क्षेत्रफल भया, सो जघन्य अवगाहना का प्रमाण है । याही के समान जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है । इहा क्षेत्र, खड विधान करि समीकरण का उदाहरण और भी दिखाइए है ।

जैसे लोकाकाश ऊचाई, चौडाई, लबाई विषै हीनाधिक प्रमाण लीए है । ताका क्षेत्रफल फैलाइए, तब तीन सै तेतालीस राजू प्रमाण घनफल होइ, अर जो हीनाधिक कौ बधाइ, घटाइ, समान प्रमाण करि सात – सात राजू की ऊचाई, लंबाई, चौड़ाई कल्पि परस्पर गुणन करि क्षेत्रफल कीजिए । तब भी तीन सै तेतालीस ही राजू होइ । असै ही इहा जघन्य क्षेत्र की लबाई, चौड़ाई, ऊचाई हीनाधिक प्रमाण लीएं है । परि क्षेत्र खंड विधान करि समीकरण कीजिए, तब ऊंचाई का वा चौड़ाई का वा लबाई का प्रमाण उत्सेधागुल के असंख्यातवे भागमात्र होइ ।

इनिकौ परस्पर गुणन कीए, घनांगुल का असख्यातवा भाग प्रमाणघन क्षेत्रफल हो है, सो इतना ही प्रमाण जघन्य अवगाहना का है। अर इतना ही प्रमाण जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का है, तातै समान कहै है ।

अवरं तु ओहिखेत्तं, उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा ।
सुहुमोगाहणमाणं, उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥३८१॥

अवरं तु अवधिक्षेत्रं, उत्सेधमंगुलं भवेद्यस्मात् ।
सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं तु अंगुलकम् ॥३८१॥

टीका — बहुरि जो यहु जघन्य अवगाहना समान जघन्य देशावधि का क्षेत्र, घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र कह्या, सो उत्सेधागुल का घन प्रमाण जो घनांगुल, ताके असंख्यातवें भागमात्र जानना । जातै इहां सूक्ष्म निगोद, लब्धि अपार्याप्तक की जघन्य अवगाहना के समान जघन्य देशावधि का क्षेत्र कह्या, सो शरीरनि का प्रमाण है, सो उत्सेधांगुल ही तै है, जातै परमागम विषै असा कह्या है कि देह, गेह, ग्राम, नगर इत्यादिक का प्रमाण उत्सेधांगुल तैं है। तातै इहां जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण भी उत्सेधांगुल की ही अपेक्षा जानना । इस उत्सेधांगुल का ही नाम व्यवहारांगुल है ।

बहुरि आगै जो **'अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज'** इत्यादि सूत्र उक्त काडकनि विषैं अंगुल कह्या है । सो वह अंगुल प्रमाणांगुल जानना । जातै वाके आगै हस्त, क्रोश, योजन, भरत, क्षेत्रादि उत्तरोत्तर कहैं हैं । बहुरि आगम विषै द्वीप, क्षेत्रादि का प्रमाण प्रमाणागुल तै कह्या है । तातै तहा प्रमाणांगुल ही का ग्रहण करना ।

अवरोहिखेत्तमज्झे, अवरोही अवरदव्वमवगमदि ।
तद्दव्वस्सवगाहो, उस्सेहासंखघणपदरो ॥३८२॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिः अवरद्रव्यमवगच्छति ।
तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतरः ॥३८२॥

टीका – तीहि जघन्य अवधिज्ञान सबधी क्षेत्र विषै जे पूर्वोक्त जघन्य अवधि ज्ञान के विषय भूत द्रव्य तिष्ठै हैं; तिनकौ जघन्य देशावधिज्ञानी जीव जानै है। तीहि क्षेत्र विषै तैसै औदारिक शरीर के संचय कौ लोक का भाग दीए एक भाग मात्र खंड

असंख्यात पाइए है; तिनि सबनि कौं जानै है । बहुरि इस प्रमाण तै एक, दोय आदि जिस स्कंधनि के बधते प्रदेश होंहि तिनिकौ तो जाने ही जानै, जातै सूक्ष्म कौ जानै स्थूल का जानना सुगम है । बहुरि जो पूर्वै जघन्य अवधिज्ञान संबधी द्रव्य कह्या था, तिसकी अवगाहना का प्रमाण, तिस जघन्य अवधि का क्षेत्र का प्रमाण के असंख्यातवे भागमात्र है, तथापि घनांगुल के असंख्यातवे भागमात्र ही है । अर वाकै भुज, कोटि, वेध का भी प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवे भागमात्र है । असंख्यात के भेद घने हैं, तातै यथासभव जानि लेना ।

आवलिअसंखभागं, तीदभविस्सं च कालदो अवरं ।
ओही जाणदि भावे, कालअसंखेज्जभागं तु ।।३८३।।

आवल्यसंख्यभागमतीतभविष्यच्च कालतः अवरम् ।
अवधिः जानाति भावे, कालसंख्यातभागं तु ।।३८३।।

टीका – जघन्य अवधिज्ञान है, सो काल तै आवली के असख्यातवे भागमात्र अतीत, अनागत काल कौ जानै है । बहुरि भाव तै आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल प्रमाण का असंख्यातवां भाग प्रमाण भाव, तिनकौ जाने है ।

भावार्थ – जघन्य अवधिज्ञान पूर्वोक्त क्षेत्र विषै, पूर्वोक्त एक द्रव्य के आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अतीत काल विषै वा तितना ही अनागत काल विषै जे आकाररूप व्यजन पर्याय भए, अर होहिगे तिनकौ जानै है, जातै व्यवहार काल कैं अर द्रव्य कै पर्याय ही की पलटन हो है । बहुरि पूर्वोक्त क्षेत्र विषै पूर्वोक्त द्रव्य के वर्तमान परिणमन रूप अर्थ पर्याय है । तिनि विषै आवली का असंख्यातवा भाग का असख्यातवा भाग प्रमाण, जे पर्याय, तिनि कौ जानै है । अैसै जघन्य देशावधि ज्ञान के विषय भूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि की सीमा – मर्यादा का भेद कहि ।

आगै तिस अवधिज्ञान के जे द्वितीयादि भेद, तिनिकौ च्यारि प्रकार विषय भेद कहै है —

अवरद्दव्वादुपरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।
सिद्धाणंतिमभागो, अभव्वसिद्धादणंतगुणो ।।३८४।।

अवरद्रव्यादुपरिमद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः ।
सिद्धानंतिमभागः, अभव्यसिद्धादनंतगुणः ।।३८४।।

टीका – जघन्य देशावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य तै ऊपरि द्वितीयादि अवधि ज्ञान के भेद का विषयभूत द्रव्य का प्रमाण ल्यावने के अर्थि ध्रुवहार जानना । सर्व भेदनि विषै जिस भागहार का भाग दीएं प्रमाण आवै, सो ध्रुव भागहार कहिए । जैसें इस जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य कौ ध्रुवभागहार के प्रमाण का भाग दीएं, जो एक भाग का प्रमाण आवै, सो देशावधि का द्रव्य सबधी दूसरा भेद का विषयभूत द्रव्य का प्रमाण जानना । याकौ ध्रुवहार का भाग दीए, जो एक भाग का प्रमाण आवै; सो देशावधि के तीसरे भेद का विषयभूत द्रव्य जानना । अैसै सर्वावधि पर्यंत जानना । पहले पहले घने परमाणूनि का स्कंधरूप द्रव्य कौ ध्रुवभाग-हार का भाग दीएं, पीछे पीछे एक भागमात्र थोरे परमाणूनि का स्कंध आवै, सो पूर्वस्कंध तै सूक्ष्म स्कंध होइ, सो ज्यों ज्यों सूक्ष्म कौ जाने, त्यौ त्यौ ज्ञान की अधि-कता कहिए है; जातै सूक्ष्म कौ जानै स्थूल का तो जानना सहज ही हो है । बहुरि जो वह ध्रुवभागहार कह्या था, ताका प्रमाण सिद्धराशि कौ अनंत का भाग दीजिए, ताके एक भाग प्रमाण है । अथवा अभव्य सिद्धराशि कौ अनंत तै गुणिए, तीहि प्रमाण है ।

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे ।
समयपबद्धपमाणं, जाणिज्जो ओहिविसयह्मि ।।३८५।।

ध्रुवहारकार्मणवर्गणागुणकारं कार्मणवर्गणां गुणिते ।
समयप्रबद्धप्रमाणं, ज्ञातव्यमवधिविषये ।।३८५।।

टीका – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद होइ, तितने में सौ घटाइए, जो प्रमाण होइ, तितना ध्रुवहार माडि, परस्पर गुणि, जो प्रमाण होइ, सो कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । तीहि कार्माण वर्गणा का गुणकार करि कार्माण वर्गणा कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, सो अवधिज्ञान का विषय विषै समयप्रबद्ध का प्रमाण जानना । जो जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य कह्या था, तिसहीका नाम इहा समयप्रबद्ध जानना । इसका विशेष आगै कहैगे ।

ध्रुवहार का प्रमाण सामान्यपनै सिद्धराशि के अनतवे भागमात्र कह्या, अब विशेषपनै ध्रुवहार का प्रमाण कहै है —

मणदव्ववग्गणाण, वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो ।
अवरुक्कस्सविसेसा, रूवहिया तव्वियप्पा हु ।।३८६।।

मनोद्रव्यवर्गणानां, विकल्पानंतिमसम खलु ध्रुवहारः ।
अवरोत्कृष्टविशेषाः, रूपाधिकास्तद्विकल्पा हि ।।३८६।।

टीका – मनोवर्गणा के जितने भेद है, तिनिकौ अनंत का भाग दीजिए, एक भाग का जितना प्रमाण होइ, सो ध्रुवहार का प्रमाण जानना । ते मनोवर्गणा के भेद केते हैं, सो कहिए है - मनोवर्गणा का जघन्य प्रमाण कौ मनोवर्गणा का उत्कृष्ट प्रमाण में सौ घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहै, तीहिविषै एक अधिक कीएं, मनोवर्गणा के भेदनि का प्रमाण हो है । आगै सम्यक्त्व मार्गणा का कथन विषै तेईस जाति की पुद्गल वर्गणा कहैगे । तहां तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्माणवर्गणा इत्यादिक का वर्णन करैंगे; सो जानना ।

इस मनोवर्गणा का जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेद का प्रमाण दिखाइए है –

अवरं होदि अणंतं, अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं ।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ।।३८७।।

अवरं भवति अनंतमनंतभागेनाधिकमुत्कृष्टं ।
इति मनोभेदानंतिमभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ।।३८७।।

टीका – मनोवर्गणा का जघन्य भेद अनंत प्रमाण है । अनत परमाणूनि का स्कधरूप जघन्य मनोवर्गणा है । इस प्रमाण कौ अनत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना उस जघन्य भेद का प्रमाण विषै जोडे, जो प्रमाण होइ, सोई मनोवर्गणा का उत्कृष्ट भेद का प्रमाण जानना । इतने परमाणूनि का स्कधरूप उत्कृष्ट मनोर्वगणा हो है; सो जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यत पूर्वोक्त प्रकार जेते मनोवर्गणा के भेद भए, तिनके अनंतवे भागमात्र इहां ध्रुवहार का प्रमाण है ।

अथवा अन्यप्रकार कहै है —

धुवहारस्स पमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं, कम्मणवग्गणगुणा दो दु ।।३८८।।

होदि अणंतिमभागो, तग्गुणगारो वि देसओहिस्स ।
दोऊण दव्वभेदपमाणद्धुवहारसंवग्गो ।।३८६।।

ध्रुवहारस्य प्रमाणं, सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
समयप्रबद्धनिमित्तं, कार्मणवर्गणागुणतस्तु ।।३८८।।

भवत्यनंतिमभागस्तद्गुणकारोऽपि देशावधेः ।
द्व्यूनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्गः ।।३८९।।

टीका – ध्रुवहार का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवे भागमात्र है । तथापि अवधि का विषयभूत समयप्रबद्ध का प्रमाण ल्यावने के निमित्त जो कार्माण वर्गणा का गुणकार कह्या, ताके अनंतवे भागमात्र जानना ।

सो तिस कार्माण वर्गणा के गुणकार का प्रमाण कितना है ?

सो कहिए है – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद है, तिनमें दोय घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणन कीएं, जो प्रमाण आवै, तितना कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । असा प्रमाण कैसे कह्या? सो कहिए है – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की रचना विषै उत्कृष्ट अंत का जो भेद, ताका विषय कार्माण वर्गणा कौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ताके नीचें द्विचरम भेद, ताका विषय, कार्माण वर्गणा प्रमाण जानना । बहुरि ताके नीचै त्रिचरम भेद, ताका विषय कार्माण वर्गणा कौ एक बार ध्रुवभागहार तै गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ताके नीचै दोय बार ध्रुवभागहार करि कार्माण वर्गणा कौ गुणिए, तब चतुर्थ चरम भेद होइ । असै ही एक एक बार अधिक ध्रुवहार करि कार्माण वर्गणा कौ गुणे तै, दोय घाटि देशावधि के द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारनि के परस्पर गुणन तै जो गुणकार का प्रमाण भया, ताकरि कार्माणवर्गणा कौ गुणें, जो प्रमाण भया, सोई जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत लोक करि भाजित नोकर्म औदारिक का सचयमात्र द्रव्य का परिमाण जानना । इहा उत्कृष्ट भेद तै लगाइ जघन्य भेद पर्यंत रचना कही, तातै असै गुणकार का प्रमाण कह्या है । बहुरि जो जघन्य तै लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत रचना कीजिए, तो क्रम तै ध्रुवहार के भाग देते जाइए, अंत का भेद विषै कार्माण वर्गणा कौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना द्रव्य प्रमाण होइ इस

कथन उस कथन विषै कुछ अन्यथापना नाही है । ऊपर तै कथन कीया तब ध्रुवहार का गुणकार कहते आए, नीचै तै कथन कीया तब ध्रुवहार का भागहार कहते आए, प्रमाण दोऊ कथन विषै एकसा है ।

देशावधि के द्रव्य की अपेक्षा केते भेद हैं ? ते कहिए है —

अंगुलअसंखगुणिदा, खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु ।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ ॥३९०॥

अंगुलासंख्यगुणिताः, क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदा हि ।
क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र ॥३९०॥

टीका – देशावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र की अपेक्षा जितने भेद है, तिनकौं अंगुल का असंख्यातवा भाग करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा भेद हो है ।

ते क्षेत्र की अपेक्षा केते भेद हैं ?

ते कहिए है – देशावधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र का जो प्रदेशनि का प्रमाण है, तितना भेद देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण विषै घटाए, जो अवशेष प्रमाण रहै, तितना भेद देशावधि की क्षेत्र की अपेक्षा है । इनिकौ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणिए, तामै एक मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितना देशावधि का द्रव्य की अपेक्षा भेद है । काहेतै ? सो कहिए है – देशावधि का जघन्य भेद विषै पूर्वं जो द्रव्य का परिमाण कह्या था, ताकौ ध्रुवहार का भाग दीए, जो प्रमाण होइ सो देशावधिका द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद है । बहुरि इस दूसरा भेद विषै क्षेत्र का परिमाण तितना ही है ।

भावार्थ – देशावधि का जघन्य तै बधता देशावधिज्ञान होइ, तौ देशावधि का दूसरा भेद होइ; सो जघन्य करि जो द्रव्य जानिए था, ताकौ ध्रुव भागहार का भाग दीएं, जो सूक्ष्म स्कंधरूप द्रव्य होइ, ताकौं जानै अर क्षेत्र की अपेक्षा जितना क्षेत्र कौ जघन्यवाला जानै था, तितना ही क्षेत्र कौं दूसरा भेदवाला जानै है । तातै द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद भया । क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम भेद ही है । बहुरि जो द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेदवाला जानै था, ताकौ ध्रुवहार का भाग दीए, जो सूक्ष्म-

स्कंध भया, ताकौ द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेदवाला जानै । अर यहु क्षेत्र की अपेक्षा तितना ही क्षेत्र कौ जानै; तातै द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेद भया । क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम भेद ही है । असै द्रव्य की अपेक्षा सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद होइ, तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र मात्र क्षेत्र कौ जानै । तातै द्रव्य की अपेक्षा तौ सूच्यगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण भेद भए, अर क्षेत्र की अपेक्षा एक ही भेद भया । बहुरि इहांसे आगै असै ही ध्रुवहार का भाग देतै देतै सूच्यंगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होइ, तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र तै एक प्रदेश बधता क्षेत्र कौ जानै, तहां क्षेत्र की अपेक्षा दूसरा ही भेद रहै ।

बहुरि तहा पीछै सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग मात्र, द्रव्य अपेक्षा भेदनि विषै एक प्रदेश और बधता क्षेत्र कौ जानै; तहां क्षेत्र की अपेक्षा तीसरा भेद होइ । असै ही सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होतै होतै क्षेत्र की अपेक्षा एक एक बधता भेद होइ, सो असै लोकप्रमाण उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्र पर्यंत जानना । तातै क्षेत्र की अपेक्षा भेदनि तै द्रव्य की अपेक्षा भेद सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण गुणा कह्या । बहुरि अवशेष पहला द्रव्य का भेद था; सो पीछै मिलाया, तातै एक का मिलावना कह्या है ।

तिन देशावधि के जघन्य क्षेत्र अर उत्कृष्ट क्षेत्रनि का प्रमाण कहै है —

अंगुलअसंखभागं, अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो ।
इदि वग्गणगुणगारो, असंखधुवहारसंवग्गो ॥३९१॥

अंगुलासंख्यभागमवरमुत्कृष्टक भवेल्लोकः ।
इति वर्गणागुणकारोऽसंख्यध्रुवहारसंवर्गः ॥३९१॥

टीका – जघन्य देशावधि का विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तिक की जघन्य अवगाहना के समान घनांगुल के असंख्यातवे भागमात्र जानना । बहुरि देशावधि का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाण जानना । उत्कृष्ट देशावधिवाला सर्वलोक विषै तिष्ठता अपना विषय कौं जानै, असै दोय घाटि, देशावधि का द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद होइ, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणन करना, सोई संवर्ग भया । यों करतै जो प्रमाण भया होइ, सोई कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । सो कह्या ही था ।

आगे वर्गणा का परिमाण कहै है —

वग्गणरासिपमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो ॥३९२॥

वर्गणाराशिप्रमाणं, सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः ॥३९२॥

टीका – कार्माणवर्गणा राशि का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवे भागमात्र है । तथापि परमावधिज्ञान के जेते भेद है, तिनमे दोय मिलाए, जो प्रमाण होइ, तितना ध्रुवहार माडि, परस्पर गुणन कीयें, जो प्रमाण होइ, तितना परमाणूनि का स्कधरूप कार्माणवर्गणा जाननी । जातै कार्माणवर्गणा कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, उत्कृष्ट देशावधि का विषय भूत द्रव्य होइ, पीछै परमावधि के जितने भेद है, तेती बार क्रम तै ध्रुवहार का भाग दीएं, उत्कृष्ट परमावधि का विषयभूत द्रव्य होइ, ताकौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीए, एक परमाणू मात्र सर्वावधि का विषय हो है ।

ते परमावधि के भेद कितने है ? सो कहिए है —

परमावहिस्स भेदा, सग-ओगाहण-वियप्प-हद-तेऊ ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥३९३॥

परमावधेर्भेदाः, स्वकावगाहनविकल्पहततेजसः ।
इति ध्रुवहारं वर्गणागुणकार वर्गणां जानीहि ॥३९३॥

टीका — अग्निकाय के अवगाहना के जेते भेद है; तिनि करि अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौ गुणं, जो परिमाण होइ, तितना परमावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा भेद हैं । सो अग्निकाय की जघन्य अवगाहना का प्रदेशनि का परिमाण कौ अग्निकाय की उत्कृष्ट अवगाहना का परिमाण विषै घटाए, जो प्रमाण होइ, तिनमे एक मिलाए, अग्निकाय की अवगाहना के भेदनि का प्रमाण हो है । सो जीवसमास का अधिकार विषै मत्स्यरचना करी है, तहा कहै ही है । बहुरि अग्निकाय का जीवनि का परिमाण कायमार्गणा का अधिकार विषै कह्या है; सो जानना । इनि दोऊनि कौ परस्पर गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना परमावधिज्ञान का विषयभूत

द्रव्य की अपेक्षा भेद है। अैसै ध्रुवहार का प्रमाण, वर्गणा गुणकार का प्रमाण, वर्गणा का प्रमाण हे शिष्य ! तू जानि ।

देसोहिअवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं ।
तदियादिबियप्पेसु वि, असंखबारो त्ति एस कमो ॥३९४॥

देशावध्यवरद्रव्यं, ध्रुवहारेणावहिते भवेद्द्वितीयं ।
तृतीयादिविकल्पेष्वपि, असंख्यवार इत्येष क्रमः ॥३९४॥

टीका — देशावधिज्ञान का विषयभूत जघन्य द्रव्य पूर्वै कह्या था, ताकौ ध्रुवहार का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सो दूसरा देशावधि के भेद का विषयभूत द्रव्य होइ । अैसै ही ध्रुवहार का भाग देतै देतै तीसरा, चौथा इत्यादि भेदनि का विषयभूत द्रव्य होहि । अैसै असंख्यात बार अनुक्रम करना ।

अैसै अनुक्रम होतै कहा होइ ? सो कहिए है —

देसोहिमज्झभेदे, सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं, वग्गणयं केवलं जत्थ ॥३९५॥

पस्सदि ओही तत्थ, असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असंखेज्जा, होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥३९६॥जुम्मं॥

देशावधिमध्यभेदे, सविस्रसोपचयतेजः कर्मांगम् ।
तेजोभाषामनसां, वर्गणां केवलां यत्र ॥३९५॥

पश्यत्यवधिस्तत्र, असंख्येया भवंति द्वीपोदधयः ।
वर्षाणि असंख्यातानि भवंति असंख्यातगुणितक्रमाणि ॥३९६॥

टीका — देशावधि के मध्य भेदनि विषै देशावधिज्ञान जिस भेद विषै विस्रसोपचय सहित तैजस शरीररूप स्कंध कौ जानै है । बहुरि तिस ही क्रम तै जिस भेद विषै विस्रसोपचय सहित कार्माण शरीर स्कंध कौ जानै है । बहुरि इहा तै आगै जिस भेद विषै विस्रसोपचय रहित केवल तैजस वर्गणा कौ जानै है । बहुरि इहा तै आगै जिस भेद विषै विस्रसोपचय रहित केवल भाषावर्गणा कौ जानै है । इहा तै

आगे जिस भेद विषै विस्रसोपचय रहित केवल मनोवर्गणा को जानै है । तहां इनि पाच स्थानानि विषै क्षेत्र का प्रमाण असंख्यात द्वीप – समुद्र जानना । अर काल असख्यात वर्षमात्र जानना । पूर्वोक्त पंच भेद लीएं अवधिज्ञान असंख्यात द्वीप-समुद्र विषै पूर्वोक्त स्कध असंख्यात वर्ष पर्यंत अतीत, अनागत, यथायोग्य पर्याय के धारी, तिनिकौ जानै है । परि इतना विशेष है – जो इनि पंच भेदनि विषै पहिला भेद सबंधी क्षेत्रकाल का परिमाण है । तातै दूसरा भेद संबंधी क्षेत्रकाल का परिणाम असंख्यातगुणा है । दूसरे तै तीसरे का असंख्यात गुणा है । ऐसै ही पांचवां भेद पर्यंत जानना । सामान्यपनै सब का क्षेत्र असंख्यात द्वीप – समुद्र अर काल असंख्यात वर्ष कहे हैं, जातें असंख्यात के भेद घने है ।

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं, सव्वोही जाव ताव हवे ॥३९७॥

ततः कार्मणस्य, एकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयम् ।
ध्रुवहारस्य विभाज्यं, सर्वावधिः यावत्तावद्भवेत् ॥३९७॥

टीका — तहा पीछे तिस मनोवर्गणा कौ ध्रुवाहार का भाग दीजिए, ऐसै ही भाग देते देते विस्रसोपचय रहित कार्माण का समय प्रबद्धरूप द्रव्य होइ । याकौं भी ध्रुवहार का भाग दीजिए । ऐसें ही ध्रुवहार का भाग यावत् सर्वावधिज्ञान होइ, तहा पर्यंत जानना । विस्रसोपचय का स्वरूप योगमार्गणा विषै कह्या है, सो जानना ।

एदम्हि विभज्जंते, दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ॥३९८॥

एतस्मिन् विभज्यमाने, द्विचरमदेशावधौ वर्गणा ।
चरमे कार्मणस्यैकवर्गणा एकबारभक्ता तु ॥३९८॥

टीका — इस कार्माण समय प्रबद्ध कौ ध्रुवहार का भाग दीएं सतै देशावधि का द्वि चरम भेद विषै कार्माणवर्गणा रूप विषयभूत द्रव्य हो है; जातै ध्रुवहार मात्र वर्गणानि का समूह रूप समयप्रबद्ध है । बहुरि याकौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, चरम जो देशावधि का अंत का भेद, तिस विषै विषयभूत द्रव्य हो है ।

अंगुलअसंखभागे, दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि ।
एगागासपदेसो, वड्ढदि संपुण्णलोगो त्ति ॥३९९॥

अंगुलासंख्यभागे, द्रव्यविकल्पे गते तु क्षेत्रे ।
एकाकाशप्रदेशो, वर्धते संपूर्णलोक इति ।।३९९।।

टीका –सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होतैं सतैं, क्षेत्र विषै एक आकाश का प्रदेश बधै असा अनुक्रम जघन्य देशावधि के क्षेत्र तैं, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान का विषयभूत सर्व सपूर्ण लोक, तीहि पर्यंत जानना । सो यहु कथन टीका विषै पूर्वै विशदरूप कह्या ही था ।

आवलिअसंखभागो, जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढदि देसोहिवरं, पल्लं समऊणयं जाव ।।४००।।

आवल्यसंख्यभागो, जघन्यकालः क्रमेण समयेन ।
वर्धते देशावधिवरं, पल्यं समयोनकं यावत् ।।४००।।

टीका — देशावधि का विषयभूत जघन्य काल आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण है । सो यहु अनुक्रम तैं ध्रुववृद्धि करि अथवा अध्रुववृद्धि करि एक एक करि समय करि तहां पर्यंत बधै, जहा एक समय घाटि पल्य प्रमाण उत्कृष्ट देशावधि का विषयभूत काल होइ, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान एक समय घाटि पलप्रमाण अतीत, अनागत काल विषै भए वा होहिगे जे स्वयोग्य विपय तिनै जानै है ।

आगै क्षेत्र काल का परिमाण उगणीस कांडकनि विपै कह्या चाहै है । कांडक नाम पर्व का है । जैसै साठे की पैली हो है, सो गाठि तै अगिली गाठि पर्यंत जो होइ, ताकौ एक पर्व कहिए । तैसै किसी विवक्षित भेद तै लगाइ, किसी विवक्षित भेद पर्यत जेते भेद होहि, तिनिका समूह, सो एक काडक कहिए । असै देशावधिज्ञान विषै उगणीस काडक है ।

तहां प्रथम कांडक विषै क्षेत्र काल का परिणाम अढाई गाथानि करि कहै है —

अंगुलअसंखभागं, धुवरूवेण य असंखवारं तु ।
असंखसंखं भागं, असंखवारं तु अद्धुवगे ।।४०१।।

अंगुलासंख्यवारं, ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु ।
असंख्यसंख्यं भागं, असंख्यवारं तु अध्रुवगे ।।४०१।।

टीका — घनांगुल कौं आवली का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, असा अंगुल का असंख्यातवां भागमात्र ध्रुवरूप करि वृद्धि का प्रमाण हो है। सो ध्रुववृद्धि प्रथम कांडक विषै अत का भेद पर्यंत असंख्यात बार हो है। बहुरि तिस ही प्रथम कांडक विषै अंत का भेद पर्यत अध्रुववृद्धि भी असंख्यात बार हो है। सो अध्रुववृद्धि का परिमाण घनागुल का असख्यातवां भाग प्रमाण वा घनांगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण है।

धुवअद्धुवरूवेण य, अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते।
अवरे कालम्हि पुणो, एक्केक्कं वड्ढदे समयं ॥४०२॥

ध्रुवाध्रुवरूपेण च, अवरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे।
अवरे काले पुनः, एकैको वर्धते समयः ॥४०२॥

टीका — तीहि पूर्वोक्त ध्रुववृद्धि प्रमाण करि वा अध्रुववृद्धि प्रमाण करि जघन्य देशावधि का विषयभूत क्षेत्र कौ बधतै संतै जघन्य काल के ऊपरि एक एक समय बधै है।

भावार्थ — पूर्वै यहु क्रम कह्या था, जो द्रव्य की अपेक्षा सूच्यंगुल का असंख्यातवा भागप्रमाण भेद व्यतीत होइ, तब क्षेत्र विषै एक प्रदेश बधै। अब इहा कहिए है-जघन्य ज्ञान का विषयभूत जेता क्षेत्र प्रमाण कह्या, ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार करि एक एक प्रदेश बधतै बधतै आवली का भाग घनागुल कौ दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना प्रदेश बधै, तब जघन्य देशावधि का विषयभूत काल का प्रमाण कह्या था, तातै एक समय और बधता, काल का प्रमाण होइ। बहुरि तितना ही प्रदेश क्षेत्र विषै पूर्वोक्त प्रकार करि बधै तब तिस काल तै एक समय और बधता काल का प्रमाण होइ। असै तितने तितने प्रदेश बधै, जो काल प्रमाण विषै एक एक समय बधै, सो तौ ध्रुववृद्धि कहिये। बहुरि पूर्वोक्त प्रकार करि ही विवक्षित क्षेत्र तै कहीं घनांगुल का असख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनि की वृद्धि भए पूर्व काल तै एक समय बधता काल होइ, कही घनांगुल का असख्यातवा (संख्यातवां)[१] भाग प्रमाण प्रदेशनि की वृद्धि भएं, पहले काल तै एक समय बधता काल होइ, तहां अध्रुववृद्धि कहिये। असैं प्रथम काडक विषै अत भेद पर्यंत ध्रुववृद्धि होइ, तौ असंख्यात बार हो है। बहुरि अध्रुववृद्धि होइ तौ असख्यात बार हो है।

---

१ सभी छहो हस्तलिखित प्रतियो मे असख्यात मिला। छपि हुई प्रति मे सख्यात है।

संखातीदा समया, पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय, पढमादी कंडये वोच्छं ॥४०३॥

संख्यातीताः समयाः, प्रथमे पर्वे उभयतो वृद्धिः ।
क्षेत्रं कालमाश्रित्य, प्रथमादीनि कांडकानि वक्ष्ये ॥४०३॥

टीका — अैसें होतैं प्रथम पूर्व कहिए पहला कांडक, तीहि विषै **उभयतः** कहिये ध्रुवरूप - अध्रुवरूप दोऊ वृद्धि कौ लीएं असंख्याते समय हो है ।

भावार्थ — प्रथम काडक विषै जघन्य काल का परिमाण तैं पूर्वोक्त प्रकार ध्रुववृद्धि करि वा अध्रुववृद्धि करि एक एक समयप्रबद्ध तैं असख्यात समय बधैं हैं। ते कितने है ? प्रथम काडक का उत्कृष्ट काल के समयनि का प्रमाण मे स्यों जघन्य काल के समयनि का प्रमाण घटाए, जो प्रमाण अवशेष रहै, तितने असंख्याते समय प्रथम काडक विषै बधैं है । अैसें ही प्रथम कांडक का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण मे स्यो जघन्य क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहै, तितने प्रदेश प्रथम काडकनि विषै पूर्वोक्त प्रकार करि बधैं है । अब जो वृद्धिरूप समयनि का प्रमाण कह्या, सो जघन्य काल आवली का असख्यातवा भागमात्र तीहि विषै जोडिए, तब प्रथम कांडक का अत भेद विषै आवली का असख्यातवां भाग प्रमाण काल हो है । बहुरि वृद्धिरूप प्रदेशनि का परिमाण कौ जघन्य क्षेत्र घनागुल का असख्यातवां भागमात्र तीहि विषै मिलाएं, प्रथम काडक का अत भेद विपै घना-गुल का असख्यातवा[१] भाग प्रमाण क्षेत्र हो है ।

इहा तैं आगे विषयभूत क्षेत्र - काल अपेक्षा देशावधि के उगणीस काडक कहूगा, अैसा आचार्य प्रतिज्ञा करी है-

अंगुलमावलियाए, भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जो ।
अंगुलमावलियंतो, आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥४०४॥

अंगुलावल्योः, भागोऽसंख्येयोऽपि संख्येयः ।
अंगुलमावल्यंत, आवलिकाश्चांगुलपृथक्त्वम् ॥४०४॥

---

१. ग प्रति मे सख्यात हे ।

टीका – प्रथम काडक विषै जघन्य क्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। अर जघन्य काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तिस ही प्रथम कांडक विषै उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुल के सख्यातवे[1] भाग प्रमाण है। अर काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि आगैं उत्कृष्ट भेद अपेक्षा दूसरा काडक विषै क्षेत्र घनांगुल प्रमाण है। अर काल 'आवलियंत' कहिये किछू घाटि आवली प्रमाण है। बहुरि तीसरा कांडक विषै क्षेत्र पृथक्त्व घनांगुल प्रमाण है। अर काल पृथक्त्व आवली प्रमाण है।

तीन के तौ ऊपरि अर नवमे के नीचै पृथक्त्व संज्ञा जाननी।

आवलियपुधत्तं पुण, हत्थं तह गाउयं मुहुत्तं तु।
जोयण भिण्णमुहुत्तं, दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥४०५॥

आवलिपृथक्त्वं पुनः हस्तस्तथा गव्यूतिः मुहूर्तस्तु।
योजनं भिन्नमुहूर्तः, दिवसांतः पंचविंशतिस्तु ॥४०५॥

टीका – चौथा कांडक विषै काल पृथक्त्व आवली प्रमाण अर क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है। बहुरि पांचवा काडक विषै क्षेत्र एक कोश अर काल अंतर्मुहूर्त है। बहुरि छठा काडक विषै क्षेत्र एक योजन अर काल भिन्न मुहूर्त कहिये, किछू घाटि मुहूर्त है। बहुरि सातवा कांडक विषै काल किछू घाटि एक दिन अर क्षेत्र पचीस योजन है।

भरहम्मि अद्धमासं, साहियमासं च जंबुदीवम्मि।
वासं च मणुवलोए, वासपुधत्तं च रुचगम्मि ॥४०६॥

भरते अर्धमासः, साधिकमासश्च जंबूद्वीपे।
वर्षश्च मनुजलोके, वर्षपृथक्त्वं च रुचके ॥४०६॥

टीका — आठवा काडक विषै क्षेत्र भरतक्षेत्र अर काल आधा मास है। बहुरि नवमा कांडक विषै क्षेत्र जंबूद्वीप प्रमाण अर काल किछू अधिक एक मास है। बहुरि दशवा काडक विषै क्षेत्र मनुष्य लोक – अढाई द्वीप प्रमाण अर काल एक वर्ष है। बहुरि ग्यारहवां कांडक विषै क्षेत्र रुचकद्वीप अर काल पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है।

---

१. सभी हस्तलिखित प्रतियो मे सख्यात मिलता है। पूर्व मे छपी प्रति मे असख्यात मिलता है।

संखेज्जपमे वासे, दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे, दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

संख्यातप्रमे वर्षे, द्वीपसमुद्रा भवंति संख्याताः ।
वर्षे असंख्येये,द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥४०७॥

टीका — बारहवां कांडक विषै क्षेत्र संख्यात द्वीप - समुद्र प्रमाण अर काल संख्यात वर्ष प्रमाण है । बहुरि तेरहवा कांडक, जे तैजस शरीरादिक द्रव्य की अपेक्षा पूर्वें स्थानक कहे, तिनि विषै क्षेत्र असंख्यात द्वीप – समुद्र प्रमाण है । अर काल असंख्यात वर्ष प्रमाण है । परि इन विषै इतना विशेष है – तेरहवां तै चौदहवा विषै असंख्यातगुणा क्षेत्रकाल है । अैसै ही उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा क्षेत्र – काल जानना बहुरि उगणीसवां अत का काडक विषै द्रव्य तौ कार्माण वर्गणा कौ ध्रुवहार का भाग दीजिए, तीहि प्रमाण अर क्षेत्र संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण अर काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है ।

कालविसेसेणवहिद-खेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी ।
अद्धुववड्ढी वि पुणो, अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥४०८॥

कालविशेषेणावहितक्षेत्रविशेषो ध्रुवा भवेद्वृद्धिः ।
अध्रुववृद्धिरपि पुनः अविरुद्धा इष्टकांडे ॥४०८

टीका – विवक्षित कांडक का जघन्य क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण, तिस ही काडक का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण मे घटाए, जो प्रमाण रहै, ताकौ क्षेत्र विशेष कहिये । बहुरि विवक्षित काडक का जघन्य काल के समयनि का परिमाण तिस ही कांडक का उत्कृष्ट काल के समयनि का परिमाण विषै घटाए, अवशेष जो परिमाण रहै, ताकौ काल विशेष कहिए । तहां क्षेत्र विशेप कौ काल विशेप का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, सोई तिस काडक विषै ध्रुववृद्धि का परिमाण जानना । सो प्रथम कांडक विषै अैसैं करतै घनागुल कौ आवली का भाग दीए, जो प्रमाण होइ सो ध्रुववृद्धि का प्रमाण जानना । सूच्यगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद भए, तो क्षेत्र विषै एक प्रदेश वधै अर आवली करि भाजित घनागुल प्रमाण प्रदेश बधै, तब काल विषै एक समय की वधवारी होइ । अैसै प्रथम काडक का अंत पर्यंत ध्रुववृद्धि करि जेते समय वधै, तिनकौ जघन्य काल विपै मिलाए,

आवली का संख्यातवां[1] भाग प्रमाण प्रथम काडक का उत्कृष्ट काल हो है। बहुरि जेते जघन्य क्षेत्र तै प्रदेश बधै, तितने जघन्य क्षेत्र विषै मिलाए घनागुल का संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथम काडक का उत्कृष्ट क्षेत्र हो है। ऐसै ही सर्व कांडक विषै ध्रुववृद्धि का प्रमाण साधन करना। विवक्षित कांडक विषै समान प्रमाण लीएं, प्रदेशनि की वृद्धि होतै, जहां समय की वृद्धि होइ, तहां ध्रुववृद्धि जाननी। बहुरि अध्रुववृद्धि भी यथायोग्य क्षेत्र – काल का अविरोध करि साधनी।

सो कहिए है–

अंगुलअसंखभागं, संखं वा अंगुलं च तस्सेव।
संखमसंखं एवं, सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥४०६॥

अंगुलासंख्यभागः, संख्यं वा अंगुलं तस्यैव।
संख्यमसंख्यमेवं, श्रेणीप्रतरयोरध्रुवगायाम् ॥४०६॥

टीका — अध्रुववृद्धि विषै पूर्वोक्त क्रम तैं घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषै बधै, तब काल विषै एक समय बधै। अथवा घनांगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषै बधैं, तब काल विषै एक समय बधै। अथवा घनागुल प्रमाण अथवा सख्यात घनागुल प्रमाण अथवा असंख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा श्रेणी का असंख्यातवा भाग प्रमाण अथवा श्रेणी का सख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणी प्रमाण अथवा सख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा असंख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा प्रतर का असख्यातवा भाग प्रमाण अथवा प्रतर का सख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर प्रमाण अथवा संख्यात प्रतर प्रमाण अथवा असंख्यात प्रतर प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषै बधै, तब काल विषै एक समय बधै, ऐसा अध्रुववृद्धि का अनुक्रम है। इहां किछू नियम नाही, जो इतने प्रदेश बधै ही समय बधै, तातै याका नाम अध्रुववृद्धि है। इहा इतना विशेष - जिस काडक विषै जिस - जिस प्रकार वृद्धि सभवै, तिस तिस प्रकार ही अध्रुववृद्धि जाननी। जैसै प्रथम काडक विषै घनागुल का असंख्यातवां भाग वा घनागुल का संख्यातवा भाग करि ही अध्रुववृद्धि संभवै है। जातै तहा उत्कृष्ट भेद विषै भी घनांगुल का संख्यातवा भाग मात्र ही क्षेत्र है, तौ तहां घनांगुलादि करि

---

१. अ तथा घ प्रति मे असख्यातवा शब्द है।

वृद्धि कैसै संभवै ? बहुरि अत के कांडक विषै घनांगुल का संख्यातवां[1] भाग आदि सख्यात प्रतर पर्यंत सर्व प्रकार करि अध्रुववृद्धि संभवै है। असै ही अन्य काडकनि विषै यथासंभव करि अध्रुववृद्धि जाननी।

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं।
उक्कस्सं खेत्तं पुण, लोगो संपुण्णओ होदि ॥४१०॥

कार्मणवर्गणां ध्रुवहारेणैक वार भाजिते द्रव्यं।
उत्कृष्टं क्षेत्रम् पुनः, लोकः संपूर्णो भवति ॥४१०॥

टीका – कार्माण वर्गणा कौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने परमाणूनि का स्कंध कौ उत्कृष्ट देशावधि जानै है। बहुरि क्षेत्र करि संपूर्ण लोकाकाश को जानै है। लोकाकाश विषै जितने पूर्वोक्त स्कंध होइ, वा तिनतें स्थूल होंइ, तिन सबनि कौ जानै है।

पल्ल समऊण काले, भावेण असंखलोगमेत्ता हु।
दव्वस य पज्जाया, वरदेसोहिस्स विसया हु ॥४११॥

पल्यं समयोनं काले, भावेन असंख्यलोकमात्रा हि।
द्रव्यस्य च पर्याया, वरदेशावधेर्विषया हि ॥४११॥

टीका — देशावधि का विषय भूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है। बहुरि भाव असंख्यात लोक प्रमाण है। सो इहां काल अर भाव शब्द करि द्रव्य के पर्याय उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान का विषयभूत जानना।

भावार्थ – एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण अतीत काल विषै जे अपने जानने योग्य द्रव्य के पर्याय भए, अर तितने ही प्रमाण अनागत काल विषै अपने जानने योग्य द्रव्य के पर्याय होहिगे, तिनकौ उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान जानै। बहुरि भाव करि तिनि पर्यायनि विषै असंख्यात लोक प्रमाण जे पर्याय, तिनिकौं जानै। असै काल अर भाव शब्द करि द्रव्य के पर्याय ग्रहे। असै ही अन्य भेदनि विषै भी

---

१. हस्तलिखित अ, ग, घ प्रति मे असख्यातवा शब्द है।

जहा काल का वा भाग का परिमाण कह्या है, तहां द्रव्य के पर्यायनि का ग्रहण करना ।

बहुरि इहां देशावधि का मध्य भेदनि विषै भाव का प्रमाण आगें सूत्र कहैंगें, तिस अनुक्रम तै जानना ।

काले चउण्ह उड्ढी, कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य ।
उड्ढीए दव्वपज्जय, भजिदव्वा खेत्त-काला हु ॥४१२॥

काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजितव्यः क्षेत्रवृद्धिश्च ।
वृद्धया द्रव्यपर्याययोः, भजितव्यौ क्षेत्रकालौ हि ॥४१२॥

टीका – इस अवधिज्ञान का विशेष विषै जब काल की वृद्धि होइ तब तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव च्यार्यो ही की वृद्धि होइ । बहुरि जब क्षेत्र की वृद्धि होइ तब काल का वृद्धि भजनीय है, होइ भी अर नहिं भी होइ । बहुरि जब द्रव्य की अर भाव की वृद्धि होंइ तब क्षेत्र की अर काल की वृद्धि भजनीय है, होइ भी अर न भी होइ । बहुरि द्रव्य की अर भाव की वृद्धि युगपत् हो है । यह सर्व कथन विचार तै युक्त ही है । या प्रकार देशावधि ज्ञान का विषय भूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रमाण कह्या ।

आगें परमावधि ज्ञान की प्ररूपणा कहै हैं —

देसावहिवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं, दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥४१३॥

देशावधिवरद्रव्यं, ध्रुवहारेणावहिते भवेन्नियमात् ।
परमावधेरवरं, द्रव्य प्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥४१३॥

टीका – उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान का विषयभूत जो द्रव्य कह्या, ताकौ एक वार ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनि का स्कध रूप जघन्य परमावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य नियम करि जिनदेवने कह्या है ।

अब परमावधि का उत्कृष्ट द्रव्य प्रमाण कहै है–

परमावहिस्स भेदा, सग-उग्गाहणवियप्प-हद-तेऊ ।
चरिमे हारपमाणं, जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥४१४॥

परमावधेर्भेदाः, स्वकावगाहनविकल्पाहततेजसः ।
चरमे हारप्रमाणं, ज्येष्ठस्य च भवति द्रव्यं तु ।।४१४।।

टीका – अग्निकाय की अवगाहना का जघन्य तें उत्कृष्ट पर्यंत जो भेदनि का प्रमाण, ताकरि अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने परमावधि ज्ञान के भेद है । तहां प्रथम भेद के द्रव्य कौ ध्रुवहार का भाग दीए, दूसरा भेद का द्रव्य होइ । दूसरा भेद का द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग दीए, तीसरा भेद का द्रव्य होइ । अैसे अंत का भेद पर्यंत जानने । अंत भेद विषै ध्रुवहार प्रमाण द्रव्य है । ध्रुवहार का जो परिमाण तितने परमाणूनि का सूक्ष्म स्कध कौ उत्कृष्ट परमावधिज्ञान जानै है ।

सव्वावहिस्स एक्को, परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो ।
गंगामहाणइस्स, पवाहोव्व धुवो हवे हारो ।।४१५।।

सर्वावधेरेकः, परमाणुर्भवति निर्विकल्पः सः ।
गंगामहानद्याः, प्रवाह इव ध्रुवो भवेत् हारः ।।४१५।।

टीका – उत्कृष्ट परमावधि ज्ञान का विषय ध्रुवहार प्रमाण ताकौ ध्रुवहार ही का भाग दीजिए, तब एक परमाणू मात्र सर्वावधि ज्ञान का विषय है । सर्वावधि ज्ञान पुद्गल परमाणू कौ जानै हैं । सो यह ज्ञान निर्विकल्प है । यामे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद नाही । बहुरि जो वह ध्रुवहार कह्या था, सो गंगा महानदी का प्रवाह समान ही है । जैसै गंगा नदी का प्रवाह हिमाचल स्यों निकसि विच्छेद रहित वहि-करि पूर्व समुद्र कौ प्राप्त होइ तिष्ठया, तैसै ध्रुवहार जघन्य देशावधि का विपयभूत द्रव्य तै परमावधि का उत्कृष्ट भेद पर्यंत अवधिज्ञान के सर्व भेदनि विपै प्राप्त होइ सर्वावधि का विषयभूत परमाणू तहा तिष्ठया, जातैं सर्वावधि ज्ञान भी निर्विकल्प है अर याका विषय परमाणू है, सो भी निर्विकल्प है ।

परमोहिदव्वभेदा, जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्त-काल, वियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ।।४१६।।

परमावधिद्रव्यभेदा, यावन्मात्रा हि तावन्मात्रा भवंति ।
तस्यैव क्षेत्र काल, विकल्पा विषया असंख्यगुणितक्रमा. ।।४१६।।

टीका – परमावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद कहे, अग्निकाय की अवगाहना के भेदनि का प्रमाण तै अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौ गुणिए, तावन्मात्र द्रव्य की अपेक्षा भेद कहे, सो एतावन्मात्र ही परमावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र की अपेक्षा वा काल की अपेक्षा भेद है। जहां द्रव्य की अपेक्षा प्रथम भेद है, तहां ही क्षेत्र – काल की अपेक्षा भी प्रथम भेद है। जहा दूसरा भेद द्रव्य की अपेक्षा है, तहां क्षेत्र – काल अपेक्षा भी दूसरा ही भेद है। अैसै अंत का भेद पर्यंत जानना। बहुरि जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत एक एक भेद विषै असंख्यात गुणा असख्यात गुणा क्षेत्र व काल जानना।

कैसा असंख्यात गुणा जानना ? सो कहैं हैं–

आवलिअसंखभागा, इच्छिदगच्छदधणमाणमेत्ताओ।
देसावहिस्स खेत्ते, काले वि य होंति संवग्गे ॥४१७॥

आवल्यसंख्यभागा, इच्छितगच्छधनमानमात्राः।
देशावधेः क्षेत्रे, कालेऽपि च भवंति संवर्गे ॥४१७॥

टीका – परमावधिज्ञान का विवक्षित क्षेत्र का भेद विषै वा विवक्षित काल का भेद विषै जो तिस भेद का संकलित धन होइ, तितना आवली का असंख्यातवां भाग मांडि, परस्पर गुणन कीया, जो प्रमाण होइ, सो विवक्षित भेद विषै गुणकार जानना। इस गुणकार करि देशावधि ज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र कौ गुणै, परमावधि विषै विवक्षित भेद विषैं क्षेत्र का परिमाण होइ, अर देशावधिज्ञान का उत्कृष्ट काल कौ गुणै, विवक्षित भेद विषै काल का परिमाण होइ।

संकलित धन कहा कहिए –

जेथवां भेद विवक्षित होइ, तहां पर्यंत एक तै लगाइ एक एक अधिक अंक मांडि, तिन सब अंकनि कौं जोडैं, जो प्रमाण होइ, सो संकलित धन जानना। जैसै प्रथम भेद विषैं एक ही अंक है। याके पहिले कोई अंक नाही। तातै प्रथम भेद विषैं संकलित धन एक जानना। बहुरि दूसरा भेद विषै एक अर दूवा जोडिए, तब सकलित धन तीन भया। बहुरि तीसरा भेद विषै एक, दोय, तीन अंक जोडै, सकलित धन छह भया। बहुरि चौथा भेद विषैं च्यारि और जोडैं, सकलित धन दश भया।

बहुरि पाचवा भेद विषै पाच को अंक और जोडैं, सकलित धन पंद्रह् होइ । असैं सब भेदनि विषै संकलित धन जानना । सो इस एक बार सकलित धन ल्यावने कौ करण सूत्र पर्याय समास श्रुतज्ञान का कथन करते कह्या है; तिसतैं सकलित धन प्रमाण ल्यावना । इस संकलित धन का नाम गच्छ, धन वा पद – धन भी कहिए । अब विवक्षित परमावधिज्ञान का पांचवां भेद ताका सकलित धन पद्रह, सो पद्रह जायगा आवली का असख्यातवां भाग मांडि, परस्पर गुणन कीए, जो परिमाण होइ, सोई पांचवां भेद विषैं गुणकार जानना । इस गुणकार करि उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्र, लोकाकाश प्रमाण, ताकौ गुणिए, जो प्रमाण होइ, तितना परमावधि का पाचवा भेद का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना । अर इस ही गुणकार करि देशावधि का विषयभूत उत्कृष्ट काल, एक समय घाटि, एक पल्य प्रमाण , ताकौ गुणें, इस पांचवां भेद विषैं काल का परिमाण होइ । असैं सब भेदनि विषैं क्षेत्र का वा काल का परिमाण जानना ।

आगे संकलित धन का जो प्रमाण कह्या था, ताकौ और प्रकार करि कहै है–

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता ।
उभये वि य गच्छस्स य, धणमेत्ता होंति गुणगारा ।।४१८।।

गच्छसमाः तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः ।
उभयेऽपि च गच्छस्य च, धनमात्रा भवंति गुणकाराः ।।४१८।।

टीका – जेथवां भेद विवक्षित होइ, तीहि प्रमाण कौ गच्छ कहिए । जैसैं चौथा भेद विवक्षित होइ, तौ गच्छ का प्रमाण च्यारि कहिए । सो गच्छ के समान धन अर गच्छ तैं तत्काल अतीत भया, असा विवक्षित भेद तैं पहिला भेद, तहा विवक्षित गच्छ तैं एक घाटि का गच्छ धन जो सकलित धन, इनि दोऊनि कौं मिलाइए, तब गच्छ का संकलित धन प्रमाण गुणकार होइ ।

इहा उदाहरण कहिए - जैसैं विवक्षित भेद चौथा, सो गच्छ का प्रमाण भी च्यारि, सो च्यारि तौ ए अर तत्काल अतीत भया तीसरा भेद, ताका गच्छ धन छह्, इनि दोऊनि कौ मिलाए, दश हूवा । सोई दश विवक्षित गच्छ च्यारि, ताका सकलित धन हो है । सोई चौथा भेद विषैं गुणकार पूर्वोक्त प्रकार जानना, असैं ही सर्व भेदनि विषै जानना —

परमावहि-वरखेत्तेणवहिद-उक्कस्स-ओहिखेत्तं तु ।
सव्वावहि-गुणगारो, काले वि असंखलोगो दु ॥४१६॥

परमावधिवरक्षेत्रेणावहितोत्कृष्टावधिक्षेत्रं तु ।
सर्वावधिगुणकारः, कालेऽपि असंख्यलोकस्तु ॥४१९॥

टीका – उत्कृष्ट अवधिज्ञान के क्षेत्र का परिमाण कहिए । द्विरूप घनाघन-धारा विषै लोक अर गुणकार शलाका अर वर्गशलाका अर अर्धच्छेद शलाका अर अग्निकाय की स्थिति का परिमाण अर अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण ए स्थानक क्रम तै असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान गएं उपजै है । तातै पांच वार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाण करि लोक कौ गुणै, जो प्रमाण होई, तितना सर्वावधिज्ञान का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण है । याकौ उत्कृष्ट परमावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का भाग दीएं, जो परिमाण होइ, सोई सर्वावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण ल्यावने के निमित्त गुणकार हो है । इस गुणकार करि परमावधि का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र कौ गुणिए, तब सर्वावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण हो है । बहुरि काल परिमाण ल्यावने के निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार है । इस असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार करि उत्कृष्ट परमावधिज्ञान का विषयभूत काल कौ गुणिये, तब सर्वावधि ज्ञान का विषयभूत काल का परिमाण हो है ।

इहां कोऊ कहै कि रूपी पदार्थ तौ लोकाकाश विषै ही पाइए है । इहां परमावधि-सर्वावधि विषैं क्षेत्र का परिमाण लोक तै असंख्यातगुणा कैसे कहिए है ?

सो इसका समाधान आगै द्विरूप घनाघनधारा का कथन विषै करि आए है; सो जानना । शक्ति अपेक्षा कथन जानना ।

अब परमावधि ज्ञान का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का वा उत्कृष्ट काल का परिमाण ल्यावने के निमित्त करणसूत्र दोय कहिए है —

इच्छिदरासिच्छेदं, दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥४२०॥

इच्छितराशिच्छेदं, देयच्छेदैर्भाजिते तत्र ।
लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे इच्छितो राशिः ।।४२०।।

टीका – यह करणसूत्र है, सो सर्वत्र संभवै है । याका अर्थ दिखाइए है – इच्छित राशि कहिए विवक्षित राशि का प्रमाण, ताके जेते अर्धच्छेद होइ, तिनिकौ देयराशि के जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिका भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तिसका विरलन कीजिए, एक एक जुद जुदा स्थापिए । बहुरि तिस एक एक के स्थान के जिस देय राशि के अर्धच्छेदनि का भाग दीया था, तिसही देयराशि कौ माड़ि, परस्पर गुणन कीजिए, तो विवक्षित राशि का प्रमाण होइ ।

सो प्रथम याका उदाहरण लौकिक गणित करि दिखाइए है - इच्छित राशि दोय सै छप्पन (२५६), याके अर्धच्छेद आठ, बहुरि देयराशि चौसाठि (६४) का चौथा भाग सोलह, याके अर्धच्छेद च्यारि, कैसें ? भाज्यराशि चौसठि, ताके अर्धच्छेद छह, तिनिमे स्यो भागहार च्यारि, ताके अर्धच्छेद दोय घटाइए; तब अवशेष च्यारि अर्धच्छेद रहे । अब इनि च्यारि अर्धच्छेदनि का भाग उन आठ अर्धच्छेदनि कौ दीजिए; तब दोय पाया (२), सो दोय का विरलन करि (१,१), एक एक के स्थान की एक चौसठि का चौथा भाग, सोला सोला दीया, याहीतै याकौ देय राशि कहिए, सो इनिका परस्पर गुणन कीया, तब विवक्षित राशि का परिमाण दोय सै छप्पन हुवा ।

असें ही अलौकिक गणित विषै विवक्षित राशि पल्य प्रमाण अथवा सूच्यंगुल प्रमाण वा जगच्छ्रेणी प्रमाण वा लोक प्रमाण जो होइ, ताके जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिकौ देयराशि जो आवली का असंख्यातवां भाग, ताके जेते अर्धच्छेद होइ, तिनिका भाग दीए, जो प्रमाण आवै तिनिका विरलन करि – एक एक करि बखेरि, बहुरि एक एक के स्थान की एक एक आवली का असंख्यातवा भाग मांडि, परस्पर गुणन कीजिए, तो विवक्षित राशि पल्य वा सूच्यंगुल वा जगच्छ्रेणी वा लोकप्रमाण हो है ।

दिण्णच्छेदेणवहिद-लोगच्छेदेण पदधणे भजिदे ।
लद्धमिदलोगगुणणं, परमावहि-चरिम-गुणगारो ।।४२१।।

देयच्छेदेनावहितलोकच्छेदेन पदधने भजिते ।
लब्धमितलोकगुणनं, परमावधिचरमगुणकारः ।।४२१।।

टीका – देयराशि के अर्धच्छेदनि का भाग लोक के अर्धच्छेदनि कौ दीए, जो प्रमाण होइ, ताका विवक्षित पद का संकलित धन कौ भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना लोकमात्र परिमाण मांड़ि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण आवै, सो विवक्षित पद विषै क्षेत्र वा काल का गुणकार जानना। असें ही परमावधि का अंत भेद विषै गुणकार जानना। सो यहु कथन प्रथम अंकसंदृष्टि करि दिखाइए है। देयराशि चौसठि का चौथा भाग, ताके अर्धच्छेद च्यारि, तिनका भाग दोय सै छप्पन का अर्धच्छेद आठ, तिनिकौ दीजिए; तब दोय पाया। तिनिका भाग विवक्षित स्थान तीसरा ताका पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावने का सूत्र करि तीन, च्यारि कौ दोय, एक का भाग दीए, सकलित धन छह तिनिकौ दीजिए, तब तीन पाया; सो तीन जायगा दोय सै छप्पन माडि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण होइ, सोई तीसरा स्थान विषै गुणकार जानना। अब इहां कथन है सो कहिए है —

देयराशि आवली का असंख्यातवां भाग, ताके अर्धच्छेद राशि, जो आवली के अर्धच्छेदनि में स्यौ भागहारभूत असंख्यात के अर्धच्छेद घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितना जानना। सो असें इस देयराशि के अर्धच्छेद सख्यात घाटि परीतासंख्यात का मध्य भेद प्रमाण हो है। तिनिका भाग लोकप्रमाण के जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनकौ दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताका भाग विवक्षित जो कोई परमावधि ज्ञान का भेद, ताका जो संकलित धन होइ, ताकौ दीजिए, जो प्रमाण आवै, तितना लोक माडि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण आवै, सो तिस भेद विषै गुणकार जानना। इस गुणकार करि देशावधि का उत्कृष्ट लोकप्रमाण क्षेत्र कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, सो तिस भेद विषै क्षेत्र का परिमाण जानना।

बहुरि इस गुणकार करि देशावधि का उत्कृष्ट एक समय घाटि पल्य प्रमाण काल कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, सो तिस भेद विषै काल का परिमाण जानना। असें ही परमावधि का अत का भेद विषै आवली का असख्यातवा भाग का अर्धच्छेदनि का भाग लोक का अर्धच्छेद कौ दीए, जो प्रमाण होइ, ताकौ अत का भेद विषै जो सकलित धन होइ, ताकौ भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितना लोक माडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण होइ, सोई अंत का भेद विषै गुणकार जानना। इहां अत का भेद विषै पूर्वोक्त सकलित धन ल्यावने कौ करणसूत्र के अनुसारि संकलित धन ल्याइए, तब अग्निकायिक के अवगाह भेदनि करि गुणित अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण मात्र गच्छ, सो एक अधिक गच्छ अर सपूर्ण गच्छ कौ दोय एक का भाग दीए, जो प्रमाण

होइ, तितना परमावधि का अन्त भेद विषै संकलन धनं जाननां । बहुरि जैसे दोय जायगा सोलह सोलह माडि, परस्पर गुणन कीए, दोय सै छप्पन होइ, तौ छह जायगा सोलह सोलह मांडि, परस्पर गुणन कीए, केते दोय सै छप्पन होंइ ? अैसैं त्रैराशिक कीए, पैराठि हजार पाच से छत्तीस प्रमाण दोय सै छप्पन होइ । अैसें ही 'इच्छिदरासिच्छेदं' इत्यादि करणसूत्र के अनुसारि आवली का असंख्यातवे भाग का अर्धच्छेदनि का लोक के अर्धच्छेदनि कौं भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितने आवली का असंख्यातवा भाग माडि, परस्पर गुणन कीए, एक लोक होइ तौ इहा अत भेद विषैं संकलित धन प्रमाण आवली का असख्यातवा भाग माडि, परस्पर गुणन कीजिए, तौ कितने लोक होंइ, अैसैं त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि विषै देय राशि आवली का असंख्यातवा भाग, विरलन राशि आवली का असंख्यातवा भाग का अर्धच्छेदनि करि भाजित लोक का अर्धच्छेदमात्र, बहुरि फलराशि लोक, बहुरि इच्छाराशि विषै देयराशि आवली का असख्यातवा भाग, विरलन राशि अन्तभेद का सकलन धनमात्र, इहां लब्ध राशि का जेता प्रमाण आवै, तितना लोकप्रमाण प्रमाण होइ; सोई अन्त भेद विषैं गुणकार जानना । इसकरि लोक कौ वा एक समय घाटि पल्य कों गुणिए, तब परमावधि का सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र का वा काल का परिमाण हो है ।

पूर्वै 'आवलि असंखभागा' इत्यादि सूत्रकरि गुणकार का विधान कह्या । बहुरि इस सूत्र विषै गुणकार का विधान कह्या, सो इनि दोऊनि का अभिप्राय एक ही है । जैसें अंक सदृष्टि करि पूर्व गाथानि के अनुसारि तीसरा भेद विषै सकलित धन प्रमाण छह जायगा सोला सोला माडि परस्पर गुणन करिए, तौ भी वो ही प्रमाण होइ । अर इस गाथा के अनुसारि तीन जायगा दोय सै छप्पन, दोय सै छप्पन माडि, परस्पर गुणन कीजिए, तौ भी सोई प्रमाण होइ, अैसैं सर्वत्र जानना ।

आवलिअसंखभागा, जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया ।
कालस्स जहण्णादो, असंखगुणहीणमेत्ता हु ।।४२२।।

आवल्यसंख्यभागा, जघन्यद्रव्यस्य भवंति पर्यायाः ।
कालस्य जघन्यतः, असंख्यगुणहीनमात्रा हि ।।४२२।।

टीका – जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य का पर्याय, ते आवली का असंख्यातवा भाग प्रमाण है । परन्तु जो जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत काल

का प्रमाण कह्या है, तातै जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत भाव का प्रमाण असंख्यात गुणा घाटि जानना ।

सव्वोहि त्ति य कमसो, आवलिअसंखभागगुणिदकमा ।
दव्वाणं भावाणं, पदसंखा सरिसगा होंति ।।४२३।।

सर्वावधिरिति च क्रमशः, आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः ।
द्रव्याणां भावानां, पदसंख्याः सदृशका भवंति ।।४२३।।

टीका – देशावधि का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जहा जघन्य भेद है, तहां ही द्रव्य का पर्याय रूप भाव की अपेक्षा आवली का असंख्यातवा भाग प्रमाण भाव का जानने रूप जघन्य भेद हो है । बहुरि तहां द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद हो है । तहा ही भाव की अपेक्षा तिस प्रथम भेद का आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण करि गुणै, जो प्रमाण होइ, तीहि प्रमाण भाव कौ जानने रूप दूसरा भेद हो है । बहुरि जहा द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेद हो है; तहा ही भाव की अपेक्षा तिस दूसरा भेद तै आवली का असख्यातवां भाग गुणा तीसरा भेद हो है । अैसै ही क्रम तै सर्वावधि पर्यंत जानना । अवधिज्ञान के जेते भेद द्रव्य की अपेक्षा है, तेते ही भेद भाव की अपेक्षा है । जैसे द्रव्य की अपेक्षा पूर्व भेद संबंधी द्रव्य कौ ध्रुवहार का भाग दीए, उत्तर भेद सबधी द्रव्य भया, तैसै भाव की अपेक्षा पूर्व भेद सबधी भाव कौ आवली का असख्यातवा भाग करि गुणै, उत्तर भेद सबधी भाव भया । तातै द्रव्य की अपेक्षा अर भाव की अपेक्षा स्थानकनि की सख्या समान है ।

आगै नारक गति विषै अवधिज्ञान का विषभूत क्षेत्र का परिमाण कहै है —

सत्तमखिदिम्मि कोसं, कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव ।
जाव य पढमे णिरये, जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ।।४२४।।

सप्तमक्षितौ क्रोशं, क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते तावत् ।
यावच्च प्रथमे निरये, योजनमेकं भवेत् पूर्णम् ।।४२४।।

टीका – सातवी नरक पृथ्वी विषै अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र एक कोश है । बहुरि आधा आधा कोश तहां ताई बधै, जहां पहले नरक संपूर्ण एक योजन

होइ । असैं सातवें नरक अवधि क्षेत्र एक कोश, छठै ड्योढ़ कोश, पांचवे दोय कोश, चौथे अढ़ाई कोश, तीसरे तीन कोश, दूसरे साढे तीन कोश, पहले च्यारि कोश प्रमाण एक योजना जानना ।

आगें तिर्यंचगति मनुष्यगति विषै कहै हैं —

तिरिये अवरं ओघो, तेजोयंते य होदि उक्कस्सं ।
मणुए ओघं देवे, जहाकमं सुणह वोच्छामि ॥४२५॥

तिरश्चि अवरमोघ:, तेजोऽन्ते च भवति उत्कृष्टं ।
मनुजे ओघं-देवे, यथाक्रमं श्रृणुत वक्ष्यामि ॥४२५॥

टीका — तिर्यंच जीव विषैं जघन्य देशावधिज्ञान हो है । बहुरि यातै लगाइ उत्कृष्टपनैं तैजसशरीर जिस देशावधि के भेद का विषय है, तिस भेद पर्यंत सर्व सामान्य अवधिज्ञान के वर्णन विषैं जे भेद कहे, ते सर्व हो है । बहुरि मनुष्य गति विषैं जघन्य देशावधि तैं सर्वावधि पर्यंत सामान्य अवधिज्ञान विषैं जेते भेद कहे,तिनि सर्व भेदनि कौ लीए, अवधिज्ञान हो है ।

बहुरि देवगति विषै जैसा अनुक्रम है, सो मैं कहो हो, तुम सुनहु —

पणुवीसजोयणाइं, दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं, बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पंचविंशतियोजनानि, दिवसांतं च च कुमारभौमयो ।
संख्यातगुण क्षेत्रं, बहुकः कालस्तु ज्योतिष्के ॥४२६॥

टीका — भवनवासी अर व्यन्तर, इनिकै अवधिज्ञान का विषयभूत जघन्यपनै क्षेत्र तौ पचीस योजन है । अर काल किछू एक घाटि एक दिन प्रमाण है । बहुरि ज्योतिषी देवनि कै क्षेत्र तौ इस क्षेत्र तैं असंख्यात गुणा है, अर काल इस काल तैं बहुत है ।

असुराणमसंखेज्जा, कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा, उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येयाः, कोटयः शेषज्योतिष्कांतानाम् ।
संख्यातीतसहस्रा, उत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥४२७॥

टीका – असुरकुमार जाति के भवनवासी देवनि कै उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र असंख्यात कोडि योजन प्रमाण है। बहुरि अवशेष रहे नव प्रकार भवनवासी अर व्यंतर देव अर ज्योतिषी देव, तिनिकै उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असंख्यात सहस्र योजन प्रमाण है।

असुराणमसंखेज्जा, वस्सा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं, कालेण य होदि णियमेण ॥४२८॥

असुराणामसंख्येयानि, वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानाम् ।
तत्संख्यातभागं, कालेन च भवति नियमेन ॥४२८॥

टीका – असुरकुमार जाति के भवनवासीनि कै अवधि का उत्कृष्ट विषय काल की अपेक्षा असंख्यात वर्ष प्रमाण है। बहुरि इस काल के संख्यातवें भागमात्र अवशेष नव प्रकार भवनवासी वा व्यंतर ज्योतिषी, तिनके अवधि का विषयभूत काल का उत्कृष्ट प्रमाण नियमकरि है।

भवणतियाणमधोधो, थोवं तिरियेण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी, सुरगिरिसिहरो त्ति पस्संति ॥४२९॥

भवनत्रिकाणामधोऽधः, स्तोकं तिरश्चां भवति बहुकं तु ।
ऊर्ध्वेन भवनवासिनः, सुरगिरिशिखरांतं पश्यंति ॥४२९॥

टीका – भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी ए जो भवनत्रिक देव, तिनिकै अधोऽधो कहिए नीचली दिशा प्रति अवधि का विषयभूत क्षेत्र स्तोक है। बहुरि तिर्यंच कहिए आपका स्थान की बरोबरि दिशानि प्रति क्षेत्र बहुत है। बहुरि भवनवासी अपनै स्थानक तैं ऊपरि मेरुगिरि का शिखरि पर्यंत अवधिदर्शन करि देखै है।

सक्कीसाणा पढमं, बिदियं तु सणक्कुमार-माहिंदा ।
तदियं तु बम्ह-लांतव, सुक्क-सहस्सारया तुरियं ॥४३०॥

शक्रैशानाः प्रथमं, द्वितीयं तु सनत्कुमार-माहेंद्राः ।
तृतीयं तु ब्रह्म-लांतवाः शुक्र-सहस्रारकाः तुरियम् ॥४३०॥

टीका – सौधर्म - ईशानवाले देव अवधि करि प्रथम नरक पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं । बहुरि सनत्कुमार माहेंद्रवाले देव दूसरी पृथ्वी पर्यंत देखैं है । बहुरि ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर लातव कापिष्ठवाले देव तीसरी पृथ्वी पर्यंत देखैं है । बहुरि शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रारवाले देव चौथी पृथ्वी पर्यंत देखैं है —

आणद-पाणदवासी, आरण तह अच्चुदा य पस्संति ।
पंचमखिदिपेरंतं, छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥४३१॥

आनतप्राणतवासिनः, आरणास्तथा अच्युताश्च पश्यंति ।
पंचमक्षितिपर्यंतं, षष्ठीं ग्रैवेयका देवाः ॥४३१॥

टीका – आनत प्राणत के वासी तथा आरण अच्युत के वासी देव पांचवी पर्यंत देखैं है । बहुरि नवग्रैवेयकवाले देव छठी पृथ्वी पर्यंत देखैं है ।

सव्वं च लोयणालिं, पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
सक्खेत्ते य सकम्मे, रूवगदमणंतभागं च ॥४३२॥

सर्वां च लोकनालीं, पश्यंति अनुत्तरेषु ये देवाः ।
स्वक्षेत्रे च स्वकर्मणि, रूपगतमनंतभागं च ॥४३२॥

टीका – नव अनुदिश विमान अर पाच अनुत्तर विमान के वासी सर्व लोकनाली, जो त्रसनाली ताकौ देखे है ।

यहु भावार्थ जानना–सौधर्मादिवासी देव ऊपरि अपने २ स्वर्ग का विमान का ध्वजादंड का शिखर पर्यंत देखै है । बहुरि नव अनुदिश, पच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यंत अर नीचै कौ बाह्य तनुवात पर्यंत सर्व त्रसनाली कौं देखै है; सो अनुदिश विमानवाले तौ किछू एक अधिक तेरह राजू प्रमाण लंबा अर अनुत्तर विमानवाले के च्यारि सै पचीस धनुष घाटि, इकवीस योजन करि हीन, चौदह राजू प्रमाण लबा अर एक राजू चौडा अवधि का विषयभूत क्षेत्र कौं देखैं है । ऐसा इहां क्षेत्र का परिमाण कीया है, सो स्थानक का नियमरूप जानना । क्षेत्र का परिमाण लीए, नियमरूप न जानना । जातै अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि

अन्य क्षेत्र कौ जाइ, अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यंत ही होइ, अैसा नाही, जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ, अर तहां सेती डेढ राजू नीचैं और जानैं। सौधर्मद्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है; सो तहां भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्र ही कौं जानै; अैसे सर्वत्र जानना। बहुरि अपना क्षेत्र विषैं एक प्रदेश घटावना, अर अपने अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं एक बार ध्रुवहार का भाग देना, जहां सर्व प्रदेश पूर्ण होंइ, सो तिस अवधि का विषयभूत द्रव्य जानना।

इस ही अर्थ कौ नीचैं दिखाइए है —

कप्पसुराणं सग-सग-ओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं, संठाविय धुवहरेण हरे ॥४३३॥

सग-सग-खेत्तपदेस-सलाय-पमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंडं, तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥४३४॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचयम्।
अवधिद्रव्यप्रमाणं, संस्थाप्य ध्रुवहरेण हरेत् ॥४३३॥

स्वकस्वकक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाणं समाप्यते यावत्।
तत्रतनचरमखंडं, तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु ॥४३४॥

टीका – कल्पवासी देवनि कै अपना अपना अवधि क्षेत्र अर विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरण का द्रव्य स्थापि करि अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं एक बार ध्रुवहारका भाग देइ, क्षेत्र विषै एक प्रदेश घटावना, अैसे सर्व क्षेत्र के प्रदेश पूर्ण होंइ, तहां जो अंत विषै सूक्ष्म पुद्गलस्कंधरूप खंड होइ, सोई तिस अवधिज्ञान का विषय-भूत द्रव्य जानना।

इहां उदाहरण कहिए है–सौधर्म ऐशानवालों का क्षेत्र प्रथम नरक पर्यंत कह्या है; सो प्रथम नरक तै पहला दूसरा स्वर्ग का उपरिम स्थान ड्योढ राजू ऊंचा है। तातै अवधि का क्षेत्र एक राजू लंबा - चौड़ा, ड्योढ राजू ऊंचा भया। सो इस घन रूप ड्योढ राजू क्षेत्र के जितने प्रदेश होइ, ते एकत्र स्थापने। बहुरि किंचिदून द्व्य-र्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्वरूप सर्व कर्मनि की परमाणूनि का परिमाण है। तिस विषै अवधिज्ञानावरण नामा कर्म के जेते परमाणू होंई, तिन विषैं

विस्रसोपचय कें परमांणू नें मिलाइए, असे ते अवधिज्ञानावरण के परमाणू एकत्र स्थापनें । बहुरि इस अवधिज्ञानावरण के परमाणूनि का प्रमाण कौ एक बार ध्रुवहार का भाग दीजिये; तब उस क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण मे स्यो एक घटाइए, बहुरि एक बार ध्रुवहार का भाग देतैं, एक भाग विषै जो प्रमाण आया, ताकौ दूसरा ध्रुवहार का भाग दीजिए; तब तिस प्रदेशनि का परिमाण में स्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसरा ध्रुवहार का भाग देते एक भाग विषै जो प्रमाण रह्या ताकौ तीसरा ध्रुवहार का भाग दीजिए, तब तिस प्रदेशनि का परिमाण में स्यों एक और घटाइए। ऐसें जहां ताईं सर्व क्षेत्र के प्रदेश पूर्ण होंइ; तहां ताईं ध्रुवहार का भाग देते जाईये देतैं-देतैं अंत के विषै जो परिमाण रहै, तितने परमाणू का सूक्ष्म पुद्गल स्कंध जो होइ, ताकौं सौधर्म-ऐशान स्वर्गवाले देव अवधिज्ञान करि जानै है। इसतैं स्थूल स्कंध को तो जानैं ही जानैं। असें ही सानत्कुमार - माहेंद्रवालों के घनरूप चारि राजू प्रमाण क्षेत्र के प्रदेशनि का जो प्रमाण तितनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग देतै देतैं जो प्रमाण रहै, तितनें परमाणूनि का स्कंध कों अवधिज्ञान करि जानै है। असें सबनि के अवधि का विषयभूत क्षेत्र के प्रदेशनि का जो प्रमाण होइ, तितनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौ ध्रुवहार का देतैं देतैं जो प्रमाण रहै, तितने परमाणुनि का स्कंध कौं ते देव अवधिज्ञान करि जानै है। तहां ब्रह्म - ब्रह्मोत्तरवालो के साढा पांच राजू, लांतव - कापिष्ठवालो के छह राजू, शुक्र - महाशुक्रवालो के साढा सात राजू, शतार - सहस्रारवालो के आठ राजू, आनत - प्राणतवालों के साढा नव राजू, आरण - अच्युतवालों के दश राजू, ग्रैवेयकवालों के ग्यारह राजू, अनुदिश विमानवालो के किछू अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालो के किछू घाटि चौदह राजू क्षेत्र का परिमाण जानि, पूर्वोक्त विधान कीएं, तिनि देवनि कै अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य का परिमाण आवै है।

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ।
उवरिमकप्पचउक्के, पल्लासंखेज्जभागो दु ॥४३५॥

तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंतं।
किंचूणपल्लमेत्तं, कालपमाणं जहाजोग्गं ॥४३६॥ जुम्मं।

सौधर्मैशानानामसंख्येया हि वर्षकोटयः।
उपरिमकल्पचतुष्के, पल्यासंख्यातभागस्तु ॥४३५॥

ततो लांतवकल्पप्रभृतिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतम् ।
किंचिदूनपल्यमात्रं, कालप्रमाणं यथायोग्यम् ।।४३६।।

टीका – सौधर्म ईशानवालों के अवधि का विषयभूत काल असंख्यात कोडि वर्ष प्रमाण है। बहुरि तातै ऊपरि सनत्कुमारादि चारि स्वर्गवालो के यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तातै ऊपरि लांवत आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत-वालों के यथायोग्य किछू घाटि पल्य प्रमाण है।

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।
कप्पसुराणं च पुणो, विसरित्थं आयदं होदि ।।४३७।।

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राणि उक्तानि न भवंति घनप्रतराणि ।
कल्पसुराणां च पुनः, विसदृशमायतं भवति ।।४३७।।

टीका – ज्योतिषी पर्यंत जे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी अैसे तीन प्रकार देव, तिनकैं जो अवधि का विषयभूत क्षेत्र कह्या है; सो समचतुरस्र कहिए बरोबरि चौकोर घनरूप नाही है। जातै सूत्र विषै लंबाई, चौड़ाई, उंचाई समान नाही कही है, याही तैं अवशेष रहे मनुष्य, नारकी, तिर्यंच तिनि कै जो अवधि का विषयभूत क्षेत्र है; सो बरोबरि चौकोर घनरूप है। अवधिज्ञानी मनुष्यादिक जहां तिष्ठता होइ, तहांतै अपने विषयभूत क्षेत्र का प्रमाणपर्यंत चौकोररूप घन क्षेत्र कौ जानैं है। बहुरि कल्पवासी देवनि कै जो अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र है, सो विसदृश आयत कहिए लंबा बहुत, चौडा थोडा अैसा आयतचतुरस्र जानना।

चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
मणपज्जवं ति उच्चइ, जं जाणइ तं खु णरलोए ।।४३८।।

चिंतितमचिंतितं वा, अर्धं चिंतितमनेकभेदगतम् ।
मनः पर्यय इत्युच्यते, यज्जानाति तत्खलु नरलोके ।।४३८।।

टीका – **चिंतितं** कहिए अतीत काल मे जिसका चितवन कीया अर **अचिंतितं** कहिए जाकौ अनागत काल विषै चिंतवेगा अर **अर्धचिंतितं** कहिए जो संम्पूर्ण चितया नाही। अैसा जो अनेक भेद लीए, अन्य जीव का मन विषै प्राप्त हुवा अर्थ ताकौं जो जानै, सो मनः पर्यय कहिए। **मनः** कहिए अन्य जीव का मन विषै चितवनरूप

प्राप्त भया अर्थ, ताकौ पर्येति कहिए जानै, सो मन.पर्यय है, असा कहिए है । सो इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य क्षेत्र ही विषै है, वाह्य नाही है ।

पराया मन विषै तिष्ठता जो अर्थ, सो मन कहिए । ताकौ पर्येति, कहिए जानै, सो मनःपर्यय जानना ।

मणपज्जवं च दुविहं, उजुविउलमदि त्ति उजुमदी तिविहा ।
उजुमणवयणे काए, गदत्थविसया त्ति णियमेण ॥४३९॥

मनःपर्ययश्च द्विविधः, ऋजुविपुलमतीति ऋजुमतिस्त्रिविधा ।
ऋजुमनोवचने काये, गतार्थविषया इति नियमेन ॥४३९॥

टीका – सो यहु मन·पर्यय – ज्ञान सामान्यपनै एक प्रकार है, तथापि भेद तै दोय प्रकार है–ऋजुमति मनःपर्यय, विपुलमति मन.पर्यय ।

तहां सरलपनैं मन, वचन, काय करि कीया जो अर्थ अन्य जीव का मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जानने तैं निष्पन्न भई, अैसी ऋज्वी कहिए सरल है मति जाकी, सो ऋजुमति कहिए ।

बहुरि सरल वा वक्र मन, वचन, काय करि कीया जो अर्थ अन्य जीव का मन विषैं चिंतवनरूप प्राप्त भया, ताके जानने तै निष्पन्न भई वा नाही नाई निष्पन्न भई अैसी **विपुला** कहिए कुटिल है मति जाकी, सो विपुलमति कहिए । असैं ऋजुमति अर विपुलमति के भेद तैं मन·पर्ययज्ञान दोय प्रकार है ।

तहां ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञान नियम करि तीन प्रकार है । ऋजु मन विषैं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा बहुरि ऋजु वचन विषै प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, बहुरि ऋजुकाय विषै प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा असै ए तीन भेद है ।

विउलमदी वि य छद्धा, उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं ।
अत्थं जाणदि जम्हा, सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षोढा, ऋजुगानृजुवचनकायचित्तगतम् ।
अर्थं जानाति यस्मात्, शब्दार्थगता हि तेषामर्थाः ॥४४०॥

टीका – विपुलमति ज्ञान भी छह प्रकार है – १. ऋजुमन कौ प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, २ ऋजु वचन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ३. ऋजु काय कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ४. बहुरि वक्र मन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ५. बहुरि वक्र वचन कौ प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ६. बहुरि वक्र काय कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा । ए छह भेद है, जातै सरल वा वक्र मन, वचन, काय कौ प्राप्त भया पदार्थ कौं जानै है ।

बहुरि तिन ऋजुमति विपुलमति ज्ञान के अर्थाः कहिए विषय ते शब्द कौं वा अर्थ कौं प्राप्त भए प्रगट हो हैं । कैसै ? सो कहिए है – कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनि कौ चिंतवन भया, वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता, तिनकौं कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनकौं करत भया, पीछै भूलि करि कालांतर विषै यादि करने कौं समर्थ न हूवा अर आय करि ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञानी कौ पूछत भया वा यादि करने का अभिप्राय कौं धारि मौन ही तै खडा रह्या, तौ तहां ऋजुमति मन.पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्व कौं जानै है ।

तैसैं ही सरल वा वक्र मन, वचन, काय करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनि कौ चिंतवन भया वा कहत भया वा करत भया । बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछै यादि करने कौं समर्थ न हूवा, आय करि विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी के निकटि पूछत भया वा मौन तै खडा रह्या, तहा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान सर्व कौं जानै, अैसै इनिका स्वरूप जानना ।

तियकालविसयरूविं, चिंतितं वट्टमाणजीवेण ।
उजुमदिणाणं जाणदि, भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१॥

त्रिकालविषयरूपि, चिंतितं वर्तमानजीवेन ।
ऋजुमतिज्ञानं जानाति, भूतभविष्यच्च विपुलमतिः ॥४४१॥

टीका – त्रिकाल सबंधी पुद्गल द्रव्य कौ वर्तमान काल विषै कोई जीव चिंतवन करै है, तिस पुद्गल द्रव्य कौ ऋजुमति मन पर्ययज्ञान जानै है । बहुरि त्रिकाल सबंधी पुद्गल द्रव्य कौ कोई जीव अतीत काल विषै चिंतया था वा वर्तमान काल विषै चिंतवै है वा अनागत काल विषै चिंतवेगा, अैसे पुद्गल द्रव्य कौं विपुलमति मन.पर्ययज्ञान जानैं है ।

सव्वंग-अंग-संभव-चिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥४४२॥

सर्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः ।
मनःपर्ययं च द्रव्यमनस्त उत्पद्यते नियमात् ॥४४२॥

टीका – जैसै पूर्वे कह्या था, भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अग तै उपजै है । अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिह्ननि तै उपजै है । तैसैं मन.पर्ययज्ञान द्रव्य मन तै उपजै है । नियम तै और अगनि के प्रदेशनि विषै नाही उपजै है ।

हिदि होदि हु दव्वमणं, वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा ।
अंगोवंगुदयादो, मणवग्गणखंधदो णियमा ॥४४३॥

हृदि भवति हि द्रव्यमनः, विकसिताष्टच्छदारविंदवत् ।
अंगोपांगोदयात्, मनोवर्गणास्कंधतो नियमात् ॥४४३॥

टीका – सो द्रव्य मन हृदय स्थान विषै प्रफुल्लित आठ पांखुडी का कमल के आकार अंगोपांग नाम कर्म के उदय तै तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषै मनोवर्गणा है । तिनि स्कंधनि करि निपजै है, असा नियम है ।

णोइंदिय त्ति सण्णा, तस्स हवे सेसइंदियाणं वा ।
वत्तत्ताभावादो, मण मणपज्जं च तत्थ हवे ॥४४४॥

नोइंद्रियमिति संज्ञा, तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणां वा ।
व्यक्तत्वाभावात्, मनो मनःपर्ययश्च तत्र भवेत् ॥४४४॥

टीका – तिस मन का नोइद्रिय असा नाम है । नो कहिए ईपत्, किंचिन्मात्र इद्रिय है । जैसे स्पर्शनादिक इद्रिय प्रकट है, तैसै मन के प्रकटपना नाही । तातै मन का नोइद्रिय असा नाम है, सो तिस द्रव्य मन विषै मतिज्ञानरूप भाव मन भी उपजै है, अर मन पर्ययज्ञान भी उपजै है ।

मणपज्जवं च णाणं, सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीणं ।
एगादिजुदेसु हवे, वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥४४५॥

मनःपर्ययश्च ज्ञानं, सप्तसु विरतेषु सप्तर्धीनाम् ।
एकादियुतेषु भवेद्वर्धमानविशिष्टाचरणेषु ।।४४५।।

टीका – प्रमत्त आदि सात गुणस्थान विषै १. बुद्धि, २. तप, ३. वैक्रियिक, ४. औषध, ५. रस, ६. बल, ७. अक्षीरण इनि सात रिद्धिनि विषैं एक, दोय आदि रिद्धिनि करि संयुक्त, बहुरि वर्धमान विशेष रूप चारित्र के धारी जे महामुनि, तिनिकैं मनःपर्यय ज्ञान हो है; अन्यत्र नाहीं ।

इंदियणोइंदियजोगादिं, पेक्खित्तु उजुमदी होदि ।
णिरवेक्खिय विउलमदी, ओहिं वा होदि णियमेण ।।४४६।।

इंद्रियनोइंद्रिययोगादिमपेक्ष्य ऋजुमतिर्भवति ।
निरपेक्ष्य विपुलमतिः, अवधिर्वा भवति नियमेन ।।४४६।।

टीका – ऋजुमति मन पर्ययज्ञान है; सो अपनें वा अन्य जीव के स्पर्शनादिक इंद्री अर नोइंद्रिय मन अर मन, वचन, काय योग तिनिकी सापेक्ष तें उपजै है । बहुरि विपुलमति मन पर्यय है; सो अवधिज्ञान की सी नाई, तिनकी अपेक्षा बिना ही नियम करि उपजै है ।

पडिवादी पुण पढमा, अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हू ।
सुद्धो पढमो बोहो, सुद्धतरो विदियबोहो दु ।।४४७।।

प्रतिपाती पुनः प्रथमः, अप्रतिपाती हि भवति द्वितीयो हि ।
शुद्धः प्रथमो बोधः, शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु ।।४४७।।

टीका – पहिला ऋजुमति मनःपर्यय है, सो प्रतिपाती है । बहुरि दूसरा विपुलमति मन पर्यय है, सो अप्रतिपाती है । जाकै विशुद्ध परिणामनि की घटवारी होइ, सो प्रतिपाती कहिये । जाकै विशुद्ध परिणामनि की घटवारी न होइ, सो अप्रतिपाती कहिये । बहुरि ऋजुमति मन पर्यय तौ विशुद्ध है; जातै प्रतिपक्षी कर्म के क्षयोपशम तें निर्मल भया है । बहुरि विपुलमति मन पर्यय विशुद्धतर है, जातै अतिशय करि निर्मल भया है ।

परमणसि टिठ्यमट्ठं, ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय ।
पच्छा पच्चक्खेण य, उजुमदिणा जाणदे णियमा ।।४४८।।

परमनसि स्थितमर्थमीहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा ।
पश्चात् प्रत्यक्षेण च, ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥४४८॥

टीका – पर जीव के मन विषै सरलपनै चितवन रूप तिष्ठता जो पदार्थ, ताकौ पहलै तौ ईहा नामा मतिज्ञान करि प्राप्त होइ, असा विचारै कि याका मन विषै कह्या है । पीछै ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञान करि तिस अर्थ कौ प्रत्यक्षपनै करि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानै है, यह नियम है ।

चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
ओहिं वा विउलमदी, लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिंतितमचिंतितं वा, अर्धं चिंतितमनेकभेदगतम् ।
अवधिर्वा विपुलमतिः, लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥४४९॥

टीका – अतीत काल विषैं चिंतया वा अनागत काल विषै जाका चितवन होगा, असा बिना चितया वा वर्तमान काल विषै किछू एक आधासा चितया असा अन्य जीव का मन विषै तिष्ठता अनेक भेद लीए अर्थ, वाकौ पहिलै प्राप्त होइ; वाका मन विषै यहु है, असा जानि । पीछै अवधिज्ञान की नाई विपुलमति मन पर्यय-ज्ञान तिस अर्थ कौ प्रत्यक्ष जानै है ।

दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि जीवलक्खियं रूवि ।
उजविउलमदी जाणदि, अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं, भावं प्रति जीवलक्षितं रूपि ।
ऋजुविपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥४५०॥

टीका – द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति जीव करि लक्षित कहिये चितवन कीया हूवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गल के संबंध कौं धरै संसारी जीव द्रव्य, ताकौ जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि ऋजुमति वा विपुल-मति मन.पर्यय ज्ञान जानै है ।

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।
चक्खिदियणिज्जरण्णं, उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१॥

अवरं द्रव्यमौरालिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं तु ।
चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमुत्कृष्टमृजुमतेर्भवेत् ॥४५१॥

टीका — ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञान जघन्यपने करि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समय प्रबद्ध कौ जानै है । औदारिक शरीर विषै समय समय निर्जरा हो है, सो एक समय विषै औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरैं, तितने परमाणूनि का स्कंध कौ जघन्य ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान जानै है । बहुरि उत्कृष्टपनै नेत्र इंद्रिय की निर्जरा मात्र द्रव्य कौ जानै है । सो कितना है ? औदारिक शरीर की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है । तिस विषै विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीर का समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भये, तौ नेत्र इंद्रिय की अभ्यंतर निर्वृति अगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तिस विषैं कितने परमाणू निर्जरारूप भए, असा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं उत्कृष्ट ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञान जानै है ।

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं ।
खंडिदमेत्तं होदि हु, विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥४५२॥

मनोद्रव्यवर्गणामनंतिमभागेन ऋजुगोत्कृष्टम् ।
खंडितमात्रं भवति हि, विपुलमतेरवरं द्रव्यम् ॥४५२॥

टीका – बहुरि तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषै मनोवर्गणा का जघन्य तै लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत जितने भेद है, तिनिकौ अनंत का भाग दीजिए, तहां जो एक भाग विषै प्रमाण होइ, सो मन पर्यय ज्ञान का कथन विषै ध्रुवहार का परिमाण जानना । सो ऋजुमति का उत्कृष्ट विषयभूत द्रव्य विषैं जो परिमाण कह्या था, ताकौ इस ध्रुवहार का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितने परमाणूनि का स्कंध कौ जघन्य विपुलमति मन.पर्ययज्ञान जानै है ।

अट्ठण्हं कम्माणं, समयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारेणिगिवारं, भजिदे बिदियं हवे दव्वं ॥४५३॥

अष्टानां कर्मणां, समयप्रबद्धं विविस्रसोपचयम् ।
ध्रुवहारेणैकवारं, भजिते द्वितीयं भवेत् द्रव्यम् ॥४५३॥

टीका – आठ कर्मनि का समुदायरूप जो समय प्रबद्ध का प्रमाण तीहि विषै विस्रसोपचय के परमाणू न मिलाइए, तिन ही कौ एक बार मन.पर्ययज्ञान सबधी ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने परमाणूनि का स्कंध कौ विपुलमति मनःपर्यय का दूसरा भेदरूप ज्ञान जानै है ।

तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे, होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥४५४॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्येयानां च समयसंख्यासमम् ।
ध्रुवहारेणावहृते, भवति हि उत्कृष्टकं द्रव्यम् ॥४५४॥

टीका – तिस विपुलमति के दूसरे भेद संबधी द्रव्य कौ तिस ही ध्रुवहार का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताकौ फेरि ध्रुवहार का भाग दीजिए । ऐसै असख्यात कल्पकाल के जेते समय है, तितनी बार ध्रुवहार का भाग दीजिए, देतै देतै अत विषै जो परिमाण रहै, तितने परिमाणूनि का स्कंध कौ उत्कृष्ट विपुलमतिज्ञान जानै है; ऐसैं द्रव्य प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे है ।

गाउयपुधत्तमवरं, उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं, तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजन पृथक्त्वम् ।
विपुलमतेश्च अवरं, तस्य पृथक्त्वं वरं खलु नरलोकः ॥४५५॥

टीका – ऋजुमति का विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व कोश प्रमाण है, सो दोय, तीन, कोश प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है, सो सात वा आठ योजन प्रमाण जानना । बहुरि विपुलमति का विपयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है, सो आठ वा नव योजन प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृप्ट क्षेत्र मनुष्य लोक प्रमाण है ।

णरलोए त्ति य वयणं, विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जह्मा तग्घणपदरं, मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥४५६॥

नरलोक इति च वचनं, विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य ।
यस्मात्तद्घनप्रतरं, मनःपर्ययक्षेत्रमुद्दिष्टम् ॥४५६॥

टीका – नरलोक यहा असा वचन कह्या है, सो यहां मनुष्य लोक का विष्कंभ का जेता परिमाण है, सो लेना । अर मनुष्य लोक तौ गोल है । अर यहु विपुलमति का विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए, समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है; सो पैंतालीस लाख योजन लंबा, तितना ही चौड़ा असा परिमाण जानना । इहा ऊचाई थोडी है, तातै घन प्रतर कह्या है । जातै मानुषोत्तर पर्वत के वाह्य च्यारों कोणानि विषै तिष्ठते देव, तिर्यंच चितए हूवे तिनिकौ भी उत्कृष्ट विपुलमति मन:पर्ययज्ञान जानै है, अैसे क्षेत्र प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे ।

दुग-तिग-भवा हु अवरं, सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं ।
अड-णवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥४५७॥

द्विक-त्रिक-भवा हि अवरं, सप्ताष्टभवा भवंति उत्कृष्टम् ।
अष्ट-नव-भवा हि अवरमसंख्येयं विपुलोत्कृष्टम् ॥४५७॥

टीका – काल करि ऋजुमति का विषय, जघन्यपनै अतीत - अनागत रूप दोय, तीन भव है; उत्कृष्टतै सात, आठ भव है । बहुरि विपुलमति का विषय जघन्य आठ नव भव है; उत्कृष्ट पल्य का असख्यातवां भाग मात्र है । असै अतीत, अनागत अपेक्षा काल प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ।

आवलिअसंखभागं, अवरं च वरं च वरमसंखगुणं ।
तत्तो असंखगुणिदं, असंखलोगं तु विउलमदी ॥४५८॥

आवल्यसंख्यभागमवरं च वरं च वरमसंख्यगुणम् ।
ततोऽसंख्यातगुणितमसंख्यलोकं च विपुलमतिः ॥४५८॥

टीका – ऋजुमति का विषयभूत भाव जघन्यपनै आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । उत्कृष्टपनै भी आवली के असंख्यातवां भाग प्रमाण ही कहिए; तथापि जघन्य तै असख्यात गुणा है । बहुरि विपुलमति का विषयभूत भाव जघन्य पनै ऋजुमति का उत्कृष्ट तै असंख्यात गुणा है । बहुरि उत्कृष्ट पनै असंख्यात लोक प्रमाण है । अैसे भाव प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे ।

मज्झिम दव्वं खेत्तं, कालं भावं च मज्झिमं णाणं ।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण ॥४५९॥

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं, कालं भावं च मध्यमं ज्ञानम् ।
जानातीति मनःपर्ययज्ञानं कथितं समासेन ।।४५९।।

टीका — ऋजुमति अर विपुलमति का जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेद तो जघन्य वा उत्कृष्ट द्रव्य के क्षेत्र, काल, भावनि कौ जानै है । अर जे जघन्य अर उत्कृष्ट के मध्यवर्ती जे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तिनकौ ऋजुमति अर विपुलमति के जे मध्य भेद है, तै जानै है । असै मनःपर्ययज्ञान संक्षेप करि कह्या है ।

संपुण्णं तु समग्गं, केवलमसवत्तसव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदव्वं ।।४६०।।

संपूर्ण तु समग्रं, केवलमसंपन्नं सर्वभावगतम् ।
लोकालोकवितिमिरं, केवलज्ञानं मंतव्यम् ।।४६०।।

टीका – जीव द्रव्य के शक्तिरूप जे सर्व ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद थे, ते सर्व व्यक्त रूप भए, तातै संपूर्ण है । बहुरि ज्ञानावरणीय अर वीर्यातिराय नामा कर्म के सर्वथा नाशतैं जिसकी शक्ति रुकै नाही है वा निश्चल है, तातै समग्र है । बहुरि इन्द्रियनि का सहाय करि रहित है, तातै केवल है । बहुरि प्रतिपक्षी च्यारि घाति कर्म के नाश तै अनुक्रम रहित सकल पदार्थनि विषै प्राप्त भया है, तातै असपत्न है । बहुरि लोकालोक विषै अज्ञान अधकार रहित प्रकाशमान है । असा अभेदरूप केवलज्ञान जानना ।

आगै ज्ञानमार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है–

चदुगदिमदिसुदबोहा, पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा ।
संखेज्जा केवलिणो, सिद्धादो होंति अदिरित्ता ।।४६१।।

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः, पल्यासंख्येया हि मनः पर्यायाः ।
संख्येयाः केवलिनः, सिद्धात् भवंति अतिरिक्ताः ।।४६१।।

टीका – च्यार्यो गति विषै मतिज्ञानी पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है । बहुरि श्रुतज्ञानी भी पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । वहुरि मन· पर्यय ज्ञानी मनुष्य संख्याते है । वहुरि केवल ज्ञानी सिद्धराशि विपै तेरह्वां चौदह्वा गुणस्थानवर्ती जीवनिका का परिमाण मिलाएं, जो होइ तीहिं प्रमाण है ।

ओहिरहिदा तिरिक्खा, मदिणाणिअसंखभागगा मणुगा ।
संखेज्जा हु तदूणा, मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहिताः तिर्यंचः, मतिज्ञान्यसंख्यभागका मनुजाः ।
संख्येया हि तदूनाः, मतिज्ञानिनः अवधिपरमाणम् ॥४६२॥

टीका – अवधिज्ञान रहित तिर्यच, मतिज्ञानी जीवनि की सख्या कही । तीहि के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । बहुरि अवधिज्ञान रहित मनुष्य संख्यात हैं, ए दोऊ राशि मतिज्ञानी जीवनि की जो सख्या कही थी; तिसमें स्यों घटाइ दीएं जो अवशेष प्रमाण रहै, तितने च्यार्‌यो गति संबंधी अवधिज्ञानी जीव जानने ।

पल्लासंखघणंगुल-हद-सेढि-तिरिक्ख-गदि-विभंगजुदा ।
णर-सहिदा किंचूणा, चदुगदि-वेभंगपरिमाणं ॥४६३॥

पल्यासंख्यघनांगुलहतश्रेणितिर्यग्गतिविभंगयुताः ।
नरसहिताः किंचिदूनाः, चतुर्गतिवैभंगपरिमाणम् ॥४६३॥

टीका – पल्य का असंख्यातवा भाग गुणित घनांगुल करि जगच्छ्रेणी कौ गुणिए, जो प्रमाण होइ, तितने तौ तिर्यंच । बहुरि संख्याते मनुष्य । बहुरि घनांगुल का द्वितीय मूल करि जगच्छ्रेणी कौ गुणिए, तितना नारकीनि का प्रमाण है । तामैं सम्यग्दृष्टी नारकी जीवनि का परिमाण घटाए, जो अवशेष रहै, तितना नारकी । बहुरि ज्योतिषी देवनि का परिमाण विषै भवनवासी, व्यंतर, वैमानिक देवनि का परिमाण मिलाए, सामान्य देवराशि होइ । तामैं सम्यग्दृष्टी देवनि का परिमाण घटाएं, जो अवशेष रहै, तितने देव, इनि सबनि का जोड दीए, जो प्रमाण होइ, तितने च्यार्‌यो गति सबधी विभगज्ञानी जानने ।

सण्णाण-रासि-पंचय-परिहीणो सव्वजीवरासी हु ।
मदिसुद-अण्णाणीणं, पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४॥

सज्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्वजीवराशिर्हि ।
मतिश्रुताज्ञानिनां, प्रत्येकं भवति परिमाणम् ॥४६४॥

टीका – सम्यग्ज्ञान पांच, तिनिकरि संयुक्त जीवनि का परिमाण किछू अधिक केवलज्ञानी जीवनि का परिमाण मात्र, सो सर्व जीवराशि का परिमाण विषै घटाएं, जो अवशेष परिमाण रहै, तितने कुमतिज्ञानी जीव जानने । बहुरि तितने ही कुश्रुत-ज्ञानी जीव जानने ।

इति आचार्य श्रीनेमिचद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृतटीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा इस भाषा टीका विषै जीवकाड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा, तिनिविषै ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामा बारह्वा अधिकार संपूर्ण भया ।।१२।।

——:०.——

तेरहवां अधिकार : संयममार्गणा

विमल करत निज गुणनि तै, सब कौं विमल जिनेश ।
विमल हौंन कौ मैं नमौ, अतिशय जुत तीर्थेश ।।

अथ ज्ञानमार्गणा का प्ररूपण करि, अब संयममार्गणा कहै हैं —

वद-समिदि-कसायाणं, दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालण- णिग्गह-चाग-जओ संजमो भणियो ।।४६५।।[1]

व्रतसमितिकषायाणां, दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानाम् ।
धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ।।४६५।।

टीका – अहिंसा आदि व्रतनि का धारना, ईर्या आदि समितिनि का पालना, क्रोध आदि कषायनि का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दंड का त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इंद्रियनि का जीतना असैं व्रतादिक पंचनि का जो धारणादिक, सोई पंच प्रकार संयम जाना । सं – कहिए सम्यक् प्रकार, जो यम कहिए नियम, सो संयम है ।

बादरसंजलणुदये, सुहुमुदये समखये य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६६।।

बादरसंज्वलनोदये, सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।
संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६६।।

टीका – बादर संज्वलन का उदय होत संतै, बहुरि सूक्ष्म लोभ का उदय होत संतै, बहुरि मोहनीय का उपशम होत संतै वा मोहनीय का क्षय होत संतैं निश्चय करि संयम भाव हो है । असैं जिनदेवनि कह्या है ।

तहां प्रमत्त - अप्रमत्त गुणस्थाननि विषै संज्वलन कषायनि के जे सर्वघाती स्पर्धक हैं; तिनिका उदय नाही; सो तो क्षय है । बहुरि उदय निषेकनि तै ऊपरवर्ती

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १४६, गाथा सं. ९२ ।

जे निषेक, तिनिका उदय नाही, सोई उपशम । बहुरि बादर संज्वलन के जे देश घातिया स्पर्धक संयम के अविरोधी तिनिका उदय, असै क्षयोपशम होतै सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन सयम हो है ।

बहुरि सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्तिकरण, तीहि पर्यंत बादर सज्वलन के उदय करि अपूर्वकरण अर अनिवृत्तिकरण गुणस्थाननि विषै सामायिक अर छेदोपस्थापना दोय ही संयम हो है । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त हूवा, असा जो सज्व-लन लोभ, ताके उदय करि दशवे गुणस्थान सूक्ष्मसापराय सयम हो है ।

बहुरि सर्व चारित्र मोहनीय कर्म के उपशमतै वा क्षय तै यथाख्यात संयम हो है । तहा ग्यारहवे गुणस्थान उपशम यथाख्यात हो है । बारहवे, तेरहवै, चौदहवै क्षायिक यथाख्यात हो है ।

इस ही अर्थ कौं दोय गाथानि करि कहैं है —

बादरसंजलणुदये, बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदये, सुहुमो संजमगुणो होदि ।।४६७।।

बादरसज्वलनोदये, बादरसयमत्रिकं खलु परिहारः ।
प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ।।४६७।।

टीका – बादर संज्वलन का देशघाती स्पर्धक ते संयम के विरोधी नाही, तिनके उदय करि सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन सयम हो है । तहा परिहारविशुद्धि तौ प्रमत्त - अप्रमत्त दोय गुणस्थाननि विषै ही हो है । अर सामायिक छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषै हो है । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त हूवा सज्वलन लोभ, ताके उदय करि सूक्ष्मसापराय नामा सयम गुण हो है ।

जहखादसंजमो पुण, उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६८।।

यथाख्यातसंयमः पुनः, उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।
क्षयतोऽपि च स नियमात्, भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६८।।

टीका – बहुरि यथाख्यात संयम है; सो निश्चय करि मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम तैं वा क्षय तैं हो है; ऐसैं जिनदेवनि करि कह्या है ।

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य, असंजमो होदि णियमेण ॥४६९॥

तृतीयकषायोदयेन च, विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।
द्वितीयकषायोदयेन च, असंयमो भवति नियमेन ॥४६९॥

टीका – तीसरा प्रत्याख्यान कषाय का उदय करि युगपत् विरत - अविरतरूप संयमासंयम हो है । जैसैं तीसरे गुणस्थान सम्यक्त्व - मिथ्यात्व मिले ही हो है । तैसैं पंचमगुणस्थान विषैं संयम - असंयम दोऊ मिश्ररूप हो हैं । तातैं यहु मिश्र संयमी है । बहुरि दूसरा अप्रत्याख्यान कषाय के उदय करि असंयम हो हैं । ऐसैं संयम मार्गणा के सात भेद कहे ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो, सामाइयसंजमो होदि ॥४७०॥[१]

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यम् ।
जीवः समुद्वहन्, सामायिकसंयमो भवति ॥४७०॥

टीका – समस्त ही व्रतधारणादिक पंच प्रकार संयम कौं संग्रह करि **एकयमं** कहिए मै सर्व सावद्य का त्यागी हौं; ऐसा **एकयमं** कहिए सकल सावद्य का त्यागरूप अभेद संयम; सोई सामायिक जानना ।

कैसा है सामायिक ? **अनुत्तरं** कहिए जाके समान और नाहीं, संपूर्ण है । बहुरि **दुरवगम्यं** कहिए दुर्लभपनैं पाइए है, सो ऐसैं सामायिक कौ पालता जीव सामयिक संयमी हो है ।

छेत्तूण य परियायं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो, छेदोवट्ठावगो जीवो ॥४७१॥[२]

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा स. १८७ ।
२. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा स. १८८ ।

छित्वा च पर्यायं, पुराणं यः स्थापयति आत्मानम् ।
पंचयमे धर्मे स, छेदोपस्थापको जीवः ॥४७१॥

टीका – सामायिक चारित्र कौ धारि, बहुरि प्रमाद तैं स्खलित होइ, सावद्य क्रिया कौं प्राप्त हूवा असा जो जीव, पहिले भया जो सावद्यरूप पर्याय ताका प्रायश्चित्त विधि तैं छेदन करि अपने आत्मा कौं व्रतधारणादि पंच प्रकार संयमरूप धर्म विषै स्थापन करै; सोई छेदोपस्थापन संयमी जानना ।

छेद कहिए प्रायश्चित्त तीहिकरि उपस्थापन कहिए धर्म विषै आत्मा कौ स्थापना; सो जाकै होइ, अथवा छेद कहिए अपने दोष दूर करने के निमित्त पूर्वें कीया था तप, तिसका उस दोष के अनुसारि विच्छेद करना, तिसकरि उपस्थापन कहिए निर्दोष सयम विषै आत्मा कौ स्थापना; सो जाकै होइ, सो छेदोपस्थापन सयमी है ।

अपना तप का छेद हो है, उपस्थापन जाकै, सो छेदोपस्थापन है, असी निरुक्ति जानना ।

पंच-समिदो ति-गुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं ।
पंचेक्कजमो पुरिसो, परिहारयसंजदो सो हु[2] ॥४७२॥[1]

पंचसमितः त्रिगुप्तः, परिहरति सदापि यो हि सावद्यम् ।
पंचैकयमः पुरुषः, परिहारकसंयतः स हि ॥४७२॥

टीका – पंच समिति, तीन गुप्ति करि संयुक्त जो जीव, सदा काल हिंसारूप सावद्य का परिहार करै, सो पुरुष सामायिकादि पंच सयमनि विषै परिहारविशुद्धि नामा संयम का धारी प्रकट जानना ।

तीसं वासो जम्मे, वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पंचक्खाणं पढिदो, संझूणदुगाउयविहारो ॥४७३॥

त्रिंशद्वार्षो जन्मनि, वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थंकरमूले ।
प्रत्याख्यानं पठितः, संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ॥४७३॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा स. १८६
२ पाठभेद — पच–जमेय–जमो वा ।

टीका – जो जन्म तै तीस वर्ष का भया होइ । बहुरि सर्वदा खानपानादि से सुखी होइ; असा पुरुष दीक्षा कौं अगीकार करि पृथक्त्व वर्ग पर्यंत तीर्थंकर के पाद मूल प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्व का पाठी होइ, सो परिहारविशुद्धि सयम कौं अगी-कार करि, तीनूं सध्या काल विना सर्व काल विषै दोय कोस विहार करै । अर रात्रि विषै विहार न करै । वर्षा काल विषै किछू नियम नाही, गमन करै वा न करै; असा परिहारविशुद्धि संयमी हो है ।

परिहार कहिए प्राणीनि की हिंसा का त्याग, ताकरि विशेपरूप जो शुद्धिः कहिए शुद्धता, जाविषै होइ, सो परिहारविशुद्धि सयम जानना ।

इस संयम का जघन्य काल तौ अतर्मुहूर्त है, जातै कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र तिस संयम कौ धारि, अन्य गुणस्थान को प्राप्त होइ, तहां सो संयम रहै नाही; तातै जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कह्या ।

बहुरि उत्कृष्ट काल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व है । जातै कोई जीव कोडि पूर्व का धारी तीस वर्ष का दीक्षा ग्रहि, आठ वर्ष पर्यंत तीर्थंकर के निकटि पढै, तहां पीछै परिहारविशुद्धि संयम कौ अंगीकार करै; तातै उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व कह्या ।

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन् ।
पयसेव पद्मपत्रं, न लिप्यते पापनिवहेन ॥

याका अर्थ – परिहार विशुद्धि ऋद्धि करि सयुक्त जीव, छह कायरूप जीवनि का समूह विषै विहार करता जल करि कमल पत्र की नाई पाप करि लिप्त न होइ ।

अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसंपराओ, जहखादेणूणओ किंचि[1] ॥४७४॥

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा ।
स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥४७४॥

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५ गाथा स. १९० ।

टीका — सूक्ष्मकृष्टि कौ प्राप्त भया लोभ कषाय का अनुभाग, ताके उदय कौं भोगवता उपशमी वा क्षायिकी जीव, सो सूक्ष्म है सापराय कहिए कषाय जाकै, असा सूक्ष्मसांपराय सयमी जानना। सो यहु यथाख्यात संयमी जे महामुनि, तिनितै किछू एक घाटि जानना, स्तोकसा ही अंतर है।

उवसंते खीणे वा, असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि।
छदुमट्ठो वा जिणो वा, जहखादो संजदो सो दु[1] ॥४७५॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये।
छद्मस्थो वा जितो वा, यथाख्यातः संयतः स तु ॥४७५॥

टीका – अशुभरूप मोहनीय नामा कर्म, सो उपशम होतै वा क्षयरूप होतै उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती वा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होइ अथवा सयोगी अयोगी जिन होइ; सोई यथाख्यात संयमी जानना। मोहनीय कर्म के सर्वथा उपशम तै वा नाशतै जो यथावस्थित आत्मस्वभाव की अवस्था; सोई है लक्षण जाका, असा यथाख्यात चारित्र कहिए है।

पंच-तिहि-चउ-विहेहिं य, अणु-गुण-सिक्खा-वर्एहि संजुत्ता।
उच्चंति देस-विरया सम्माइट्ठी झलिय-कम्मा[2] ॥४७६॥

पंचत्रिचतुर्विधैश्च, अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः।
उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ॥४७६॥

टीका – पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत असे बारह व्रतनि करि संयुक्त जे सम्यग्दृष्टी, कर्म निर्जरा के धारक, ते देशविरती सयमासयम के धारक परमागम विषै कहिए है।

दंसण-वय-सामाइय, पोसह-सचित्त-रायभत्ते य।
बह्मारंभ-परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदेदे[3] ॥४७७॥

दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रिभक्ताश्च।
ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ॥४७७॥

---

१. षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा स. १६१।
२ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा स १६२।
३. षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा स. १६३।

टीका – नाम के एक देश तै सर्व नाम का ग्रहण करना, इस न्याय करि इस गाथा का अर्थ कीजिए है । १ दर्शनिक, २ व्रतिक, ३ सामायिक, ४ प्रोपधोपवास, ५ सचित्तविरत, ६ रात्रिभोजनविरत, ७ ब्रह्मचारी, ८ आरंभविरत, ६ परिग्रह विरत, १० अनुमति विरत, ११ उद्दिष्ट विरत ऐसे ग्यारह प्रतिमा की अपेक्षा देशविरत के ग्यारह भेद जानने । तहां पांच उदुबरादिक अर सप्त व्यसननि कौ त्यागै अर शुद्ध सम्यक्त्वी होइ; सो दर्शनिक कहिए । पंच अणुव्रतादिक कौ धारै, सो व्रतिक कहिए । नित्य सामायिक क्रिया जाकै होइ; सो सामायिक कहिए । अवश्य पर्वनि विपै उपवास जाकै होइ; सो प्रोषधोपवास कहिए । जीव सहित वस्तु सेवन का त्यागी होइ; सो सचित्त विरत कहिए । रात्रि विषै भोजन न करै सो रात्रिभक्त विरत कहिए । सदा काल शील पालै; सो ब्रह्मचारी कहिए । पाप आरभ कौं त्यागै; सो आरंभ विरत कहिए । परिग्रह के कार्य को त्यागै; सो परिग्रह विरत कहिए । पाप की अनुमोदना कौं त्यागै; सो अनुमति विरत कहिए । अपने निमित्त भया आहारादिक कौ त्यागै; सो उद्दिष्ट विरत कहिए । इनिका विशेष वर्णन ग्रंथांतर से जानना ।

जीवा चोद्दस-भेया, इंदिय-विसया तहट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया, असंजदा ते मुणेदव्वा[1] ।।४७८।।

जीवाश्चतुर्दशभेदा, इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु ।
ये तेषु नैव विरता, असंयताः ते मंतव्याः ।।४७८।।

टीका – चौदह जीवसमास रूप भेद, बहुरि तैसे ही अट्ठाईस इद्रियनि के विषय, तिनिविषै जे विरत न होई, जीवनि की दया न करै, विषयनि विषै रागी होंइ, ते असंयमी जानने ।

पंच-रस-पंच-वण्णा, दो गंधा अट्ठ-फास-सत्त-सरा ।
मणसहिदट्ठावीसा, इंदीयविसया मुणेदव्वा ।।४७६।।

पंचरसपंचवर्णाः, द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः ।
मनःसहिताः अष्टविंशतिः इंद्रियविषयाः मंतव्याः ।।४७६।।

---

१ षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा स. १६४ ।

टीका – तीखा, कडवा, कसायला, खाटा, मीठा ए पांच रस । बहुरि सुफेद, पीला, हरचा, लाल, काला ए पांच वर्ण । बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ए दोय गंध । बहुरि कोमल, कठोर, भारचा, हलका, सीला (ठंडा), ताता, रूखा, चिकना ए आठ स्पर्श । बहुरि षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ए सात स्वर अैसें इंद्रियनि के सत्ताईस विषय अर अनेक विकलपरूप एक मन का विषय, अैसें विषय के भेद अट्ठाईस जाननें ।

आगै संयम मार्गणा विषै जीवनि की संख्या कहै है–

पमदादि-चउण्हं जुदी, सामयिय-दुगं कमेण सेस-तियं ।
सत्त-सहस्सा णव-सय, णव-लक्खा तीहिं परिहीणा ।।४८०।।

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः, सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकम् ।
सप्तसहस्राणि नवशतानि, नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ।।४८०।।

टीका – प्रमत्तादि च्यारि गुणस्थानवर्ती जीवनि का जोड दीए, जो प्रमाण होइ; तितना जीव सामायिक अर छेदोपस्थापना संयम के धारक जानने । तहां प्रमत्तवाले पांच कोडि, तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोय सै छह (५९३९८२०६), अप्रमत्तवाले दोय कोडि छिनवै लाख निन्याणवै हजार एक सै तीन (२९६९९१०३) अपूर्व करण वाले उपशमी दोय सै निन्याणवै (२९९), पांच सौ अठ्याणवै क्षायिकी, अनिवृत्ति करणवाले उपशमी २९९, क्षायिकी पांच सो अठयाणवै (५९८) इनि सबनिका जोड दीएं, आठ कोडि निव्वे लाख निन्याणवै हजार एक सै तीन भया (८९०९९१०३) सो इतने जीव सामायिक सयमी जानने । अर इतने ही जीव छेदोपस्थापना सयमी जानने । बहुरि अवशेष तीन सयमी रहे, तहा परिहारविशुद्धि सयमी तीन घाटि सात हजार (६९९७) जानने । सूक्ष्म सापराय सयमी तीन घाटि नवसै (८९७) जानने । यथाख्यात सयमी तीन घाटि नव लाख (८९९९९७) जाननें ।

पल्लासंखेज्जदिमं, विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं ।
पुव्वुत्तरासिहीणा, संसारी अविरदाण पमा ।।४८१।।

पल्यासंख्येयं, विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणम् ।
पूर्वोक्तराशिहीनाः, संसारिणः अविरतानां प्रमा ।।४८१।।

टीका -- पल्य के असंख्यात भाग करिए, तामै एक भाग प्रमाण संयमासंयम का धारक जीव द्रव्यनि का प्रमाण है। बहुरि ए कहे जे छहौ संयम के धारक जीव, तिनका संसारी जीवनि का प्रमाण में स्यो घटाए, जो अवशेष प्रमाण रहै; सोई असंयमी जीवनि का प्रमाण जानना।

इति श्री आचार्य नेमिचद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषै सयममार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका असा तेरह्वां अधिकार सपूर्ण भया ।।१३।।

चौदहवां अधिकार : दर्शनमार्गणा

इस अनन्त भव उदधितै, पार करनकौं सेतु ।
श्री अनंत जिनपति नमौं, सुख अनन्त के हेतु ।।

आगै दर्शनमार्गणा कौं कहै हैं–

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णदे समये ।।४८२।।[1]

यत्सामान्यं ग्रहणं, भावानां नैव कृत्वाकारम् ।
अविशेष्यार्थान्, दर्शनमिति भण्यते समये ।।४८२।।

टीका – भाव जे सामान्य विशेषात्मक पदार्थ, तिनिका आकार कहिए भेद ग्रहण, ताहि नैव कृत्वा कहिए न करिकै यत् सामान्यं ग्रहणं कहिए जो सत्तामात्र स्वरूप का प्रतिभासना तत् दर्शनं कहिए सोई दर्शन[2] परमागम विषै कह्या है। कैसे ग्रहण करै है ? अर्थान् अविशेष्य अर्थ जे बाह्य पदार्थ, तिनिकौं अविशेष्य कहिए जाति, क्रिया, गुण, प्रकार इत्यादि विशेष न करिकै अपना वा अन्य का केवल सामान्य रूप सत्तामात्र ग्रहण करै है ।

इस ही अर्थ कौं स्पष्ट करै है—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं, जीवेण य दंसणं होदि ।।४८३।।

भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।
वर्णनहीनग्रहणं, जीवेन च दर्शनं भवति ।।४८३।।

टीका – सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ, तिनि[illegible]
जैसे है तैसे जीव करि सहित स्वपर सत्ता का प्रकाशना, सो दर्शन [illegible]
जा करि देखिए वा देखने मात्र, सो दर्शन जानना ।

---

१. षट्खण्डागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ १५०, गाथा सं [illegible]
२. दर्शन संबंधी विशेष स्पष्टीकरण के लिए [illegible]

आगै चक्षु - अचक्षु दर्शन के लक्षण कहै है—

चक्खूण जं पयासइ, दिस्सइ तं चक्खु-दंसणं बेंति ।
सेसिंदिय-प्पयासो, णायव्वो सो अचक्खू त्ति[1] ॥४८४॥

चक्षुषोः यत्प्रकाशते, पश्यति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।
शेषेंद्रियप्रकाशो, ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ॥४८४॥

टीका - नेत्रनि का संबंधी जो सामान्य ग्रहण, सो जो प्रकाशिए, देखिए या-करि वा तिस नेत्र के विषय का प्रकाशन, सो चक्षुदर्शन गणधरादिक कहै हैं । बहुरि नेत्र विना च्यारि इंद्रिय अर मन का जो विषय का प्रकाशन, सो अचक्षुदर्शन है, ऐसा जानना ।

परमाणु-आदियाइं, अंतिम-खंधं त्ति मुत्ति-दव्वाइं ।
तं ओहि-दंसणं पुण, जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं[2] ॥४८५॥

परमाण्वादीनि, अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।
तदवधिदर्शनं पुनः, यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षम् ॥४८५॥

टीका - परमाणु आदि महास्कंध पर्यंत जे मूर्तीक द्रव्य, तिनिकौ जो प्रत्यक्ष देखै, सो अवधिदर्शन है ।

बहुविह बहुप्पयारा, उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोग वितिमिरो, जो केवलदंसणुज्जोओ[3] ॥४८६॥

बहुविधबहुप्रकारो, उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।
लोकालोकवितिमिरो, यः केवलदर्शनोद्योतः ॥४८६॥

टीका - बहुत भेद कौं लीए बहुत प्रकार के चंद्रमा, सूर्य, रत्नादिक संबंधी उद्योत जगत विषै हैं । ते परिमित जो मर्यादा लीए क्षेत्र, तिस विषै ही अपने प्रकाश

१. षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, पृ ३८४, गा. स १९५, १९६ तथा देखो पृ. ३०० से ३८२ तक ।
२. षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, गाथा स १९६, पृष्ठ ३८४ ।
३. षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, गा. न. १९७, पृ ३८४ ।

करनें कौं समर्थ है । तातै तिनि प्रकाशनि की उपमा देने योग्य नाही, ऐसा समस्त लोक अर अलोक विषै अंधकार रहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामा उद्योत जानना ।

आगै दर्शनमार्गणा विषै जीवनि की संख्या दोय गाथानि करि कहैं है–

जोगे चउरक्खाणं, पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥४८७ ॥

योगे चतुरक्षाणां, पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणाम् ।
चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ॥४८७॥

टीका – मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत चक्षुदर्शन ही है तिनके दोय भेद है–एक शक्तिरूप चक्षु दर्शनी, एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी । तहा लब्धि अपर्याप्तक चौंइद्री अर पंचेद्री तौ, शक्तिरूप चक्षुदर्शनी है, जातै नेत्र इद्रिय पर्याप्ति की पूर्णता अपर्याप्त अवस्था विषै नाही है । तातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन न प्रवर्तें है बहुरि पर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेद्री व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है; जातै तहा प्रकटरूप चक्षु दर्शन है । तहा बेद्री, तेद्री, चौइंद्री, पचेद्री आवली का असख्यातवा भाग प्रतरागुल कौ दीएं, जो प्रमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो प्रमाण होइ, तितने है, तो चौइंद्री, पचेद्री कितने है ? ऐसे प्रमाण राशि च्यारि, फलराशि त्रसनि का प्रमाण, इच्छाराशि दोय, तहा इच्छा कौ फलराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना चौइंद्री, पचेद्री राशि है । तहां बेद्री आदि क्रम तै घटते हैं । तातै किंचिदून करि बहुरि तिस विषै पर्याप्त जीवनि का प्रमाण घटावना । तातै तिस प्रमाण में स्यों भी किछू घटाये जो प्रमाण होइ, तितना शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने । बहुरि ऐसे ही त्रस पर्याप्त जीवनि का प्रमाण कौ च्यारि का भाग देइ, दो गुणा करि, तामै किंचिदून कीए जो प्रमाण होइ, तितना व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी है । इद्रियमार्गणा विषै जो चौइंद्री, पचेद्रिय जीवनि का प्रमाण कह्या है, तिनकौ मिलाए चक्षुदर्शनी जीवनि का प्रमाण हो है ।

बहुरि अवधिदर्शनी जीवनि का प्रमाण अवधिज्ञानी जीवनि का परिमाण के समान जानना ।

वहुरि केवलदर्शनी जीवनि का परिमाण केवलज्ञानी जीवनि का परिमाण के समान जानना । सो इनिका प्रमाण ज्ञानमार्गणा विषै कह्या है ।

एइंदियपहुदीणं, खीणकसायंतणंतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ।।४८८।।

एकेंद्रियप्रभृतीनां, क्षीणकषायांतानंतराशीनाम् ।
योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणम् ।।४८८।।

टीका – एकेंद्रिय आदि क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती पर्यंत अनंत जीवनि का जोड दीए, जो परिमाण होइ तितना चक्षुदर्शनी जीवनि का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनि विषै दर्शनमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका असा चौदहवा अधिकार सपूर्ण भया ।।१४।।

पंद्रहवां अधिकार : लेश्या - मार्गणा

सुधाधार सम धर्म तैं, पोषे भव्य सुधान्य ।
प्राप्त कीए निज इष्ट कौं, भजौ धर्म धन मान्य ।।

आगै लेश्या मार्गणा कह्या चाहै है । तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं लेश्या का लक्षण कहैं है—

लिंपइ अप्पीकीरइ,एदीए णियअपुण्णपुण्णं[1] च ।
जीवो त्ति होदि लेस्सा, लेस्सागुणजाणयक्खादा[2] ।।४८९।।

लिंपत्यात्मीकरोति, एतया निजापुण्यपुण्यं च ।
जीव इति भवति लेश्या, लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ।।४८९।।

टीका – लेश्या दोय प्रकार – एक द्रव्य लेश्या, एक भाव लेश्या । तहां इस सूत्र विषै भाव लेश्या का लक्षण कह्या है । **लिंपति एतया इति लेश्या,** पाप अर पुण्य कौ जीव नामा पदार्थ, इस करि लिप्त करै है, अपने करै है, निज संबंधी करै है; सो सो लेश्या, लेश्या लक्षण के जाननहारे गणधरादिकनि करि कहा है । इस करि आत्मा कर्म करि आत्मा कौ लिप्त करै है, सो लेश्या अथवा कषायनि का उदय करि अनुरंजित जो योगनि की प्रवृति, सो लेश्या कहिए ।

इस ही अर्थ कौ स्पष्ट करै है-

जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होई ।
तत्तो दोण्णं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ।।४९०।।

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।
ततो द्वयोः कार्यं, बंधचतुष्कं समुद्दिष्टम् ।।४९०।।

टीका – मन, वचन, कायरूप योगनि की प्रवृत्ति सो लेश्या है । सो योगनि की प्रवृत्ति कषायनि का उदय करि अनुरंजित हो है । तिसतै योग अर कषाय इनि

---

१ षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९१, गाथा सं. ९४ ।

२ पाठभेद 'णियय पुण्णव च' ।

दोऊनि का कार्य च्यारि प्रकार बन्ध कह्या है। योगनि तै प्रकृति बन्ध अर प्रदेश बन्ध कह्या है। कषायनि तै स्थिति बन्ध अर अनुभाग बंध कह्या है। तिसही कारण कषायनि का उदय करि अनुरंजित योगनि की प्रवृत्ति, सोई है लक्षण जाका असें लेश्या करि च्यारि प्रकार बंध युक्त ही है।

आगै दोय गाथानि करि लेश्या का प्ररूपण विषै सोलह अधिकार कहै है–

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य।
सामी साहणसंखा, खेत्तं फासं तदो कालो ॥४९१॥

अंतरभावप्पबहु, अहियारा सोलसा हवंति त्ति।
लेस्साण साहणट्ठं, जहाकमं तेहिं वोच्छामि ॥४९२॥ जुम्मम्।

निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्म लक्षणगतयश्च।
स्वामी साधनसंख्ये, क्षेत्रं स्पर्शस्ततः कालः ॥४९१॥

अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति।
लेश्यानां साधनार्थं, यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥४९२॥युग्मम्॥

टीका – १ निर्देश, २ वर्ण, ३ परिणाम, ४ संक्रम, ५ कर्म, ६ लक्षण, ७ गति, ८ स्वामी, ९ साधन, १० संख्या, ११ क्षेत्र, १२ स्पर्शन, १३ काल, १४ अंतर, १५ भाव, १६ अल्प बहुत्व ए सोलह अधिकार लेश्या के भेदसाधन के निमित्त है। तिन करि अनुक्रम तै लेश्यामार्गणा कौ कहै है।

किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥४९३॥

कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च।
लेश्यानां निर्देशाः, षट् चैव भवंति नियमेन ॥४९३॥

टीका – नाम मात्र कथन का नाम निर्देश है। सो लेश्या के ए छह नाम है – कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म शुक्ल असै छह ही है। इहां **एव** शब्द करि तो नियम आया ही, वहुरि **नियमेन** असा कह्या, सो नैगमनय करि छह प्रकार लेश्या है। पर्यायार्थिक नय करि असंख्यात लोकमात्र भेद है, असा अभिप्राय नियम शब्द करि जानना। इति निर्देशाधिकारः।

वण्णोदयेण जणिदो, सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी, अणेयभेया सभेयेण ॥४९४॥

वर्णोदयेन जनितः, शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
सा षोढा कृष्णादिः, अनेकभेदा स्वभेदेन ॥४९४॥

टीका – बहुरि वर्ण नामा नामकर्म के उदय तै भया जो शरीर का वर्ण, सो द्रव्य लेश्या कहिए । सो कृष्णादिक छह प्रकार है । तहा एक-एक भेद अपने-अपने भेदनि करि अनेकरूप जानने ।

सोई कहिए है–

छप्पय-णील-कवोद-सुहेमंबुज-संखसण्णिहा वण्णे ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥४९५॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशखसन्निभा वर्णे ।
संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ॥४९५॥

टीका – कृष्ण लेश्या षट्पद जो भ्रमर, ताके समान है । जिसके शरीर का भ्रमर समान काला वर्ण होइ, ताके द्रव्य लेश्या कृष्ण जानना । अैसे ही नील लेश्या, नीलमणि समान है । कपोत लेश्या, कपोत समान है । तेजो लेश्या, सुवर्ण समान है । पद्म लेश्या, कमल समान है । शुक्ल लेश्या शख समान है । बहुरि इन ही एक-एक लेश्यानि के नेत्र इद्रिय के गोचर अपेक्षा सख्याते भेद है । जैसे कृष्णवर्ण हीन-अधिक रूप संख्याते भेद कौ लीए नेत्र इंद्रिय करि देखिये है । बहुरि स्कध भेद करि एक-एक के असंख्यात असख्याते भेद है । जैसे द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर सबधी स्कंध असख्याते है । बहुरि परमाणू भेद करि एक - एक के अनन्त भेद है । जैसे द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर सम्बन्धी स्कधनि विषै अनते परमाणू पाईए है । अैसे सर्व लेश्यानि के भेद जानना ।

णिरया किण्हा कप्पा, भावाणुगया हु ति-सुर-णर-तिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं, भोगे रवि-चंद-हरिदंगा ॥४९६॥

निरयाः कृष्णा कल्पा, भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि ।
उत्तरदेहे षट्कं, भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ॥४९६॥

टीका – नारकी सर्व कृष्ण वर्ण ही है । बहुरि कल्पवासी देव जैसी उनके भावलेश्या है, तैसा ही वर्ण के धारक है । बहुरि भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी देव अर मनुष्य अर तिर्यंच अर देवनि का विक्रिया तै भया शरीर, ते छहौ वर्ण के धारक है । बहुरि उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि सबंधी मनुष्य, तिर्यंच, अनुक्रम तै सूर्य सारिखे अर चद्रमा सारिखे अर हरित वर्ण के धारक है ।

बादरआऊतेऊ, सुक्का-तेऊ य वाऊकायाणं ।
गोमुत्तमुग्गवण्णा, कमसो अव्वत्तवण्णो य ॥४९७॥

बादराप्तैजसौ, शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।
गोमूत्रमुद्‌गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ॥४९७॥

टीका – बादर अप्कायिक शुक्ल वर्ण है । बादर तेज कायिक पीतवर्ण है । बादर वात कायिकनि विषै घनोदधि वात तो गऊ का मूत्र के समान वर्ण को धरै है । घनवात मूंगा सारिखा वर्ण धरै है । तनुवात का वर्ण प्रकट नाही, अव्यक्त वर्ण है ।

सव्वेसिं सुहुमाणं, कावोदा सव्व विग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो, कवोदवण्णो हवे णियमा ॥४९८॥

सर्वेषां सूक्ष्मानां, कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।
सर्वो मिश्रो देहः, कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥४९८॥

टीका – सर्व ही सूक्ष्म जीवनि का शरीर कपोत वर्ण है । बहुरि सर्व जीव विग्रहगति विषै शुक्ल वर्ण ही है। बहुरि सर्व जीव अपने पर्याप्ति के प्रारम्भ का प्रथम समय तै लगाय शरीर पर्याप्ति की पूर्णता पर्यंत जो अपर्याप्त अवस्था है, तहां कपोत वर्ण ही है, अैसा नियम है । अैसै शरीरनि का वर्ण कह्या, सो जिसका जो शरीर का वर्ण होइ, तिसके सोई द्रव्य लेश्या जाननी । इति वर्णाधिकार : ।

आगै परिणामाधिकार पंच गाथानि करि कहै है–

लोगाणमसंखेज्जा, उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा, सुहाविसुद्धा तदालावा ॥४९९॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।
तत्र क्लिष्टानि अशुभानि, शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ।।४६६।।

टीका – कषाय संबंधी अनुभागरूप उदयस्थान असख्यात लोक प्रमाण है । तिनिकौं यथायोग्य असंख्यात लोक का भाग दीजिए । तहा एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र तौ सक्लेश स्थान है। ते पणि असख्यात लोक प्रमाण है । बहुरि एक भाग मात्र विशुद्धि स्थान है । ते पणि असंख्यात लोक प्रमाण है, जातै असख्यात के भेद बहुत है । तहां संक्लेश स्थान तौ अशुभलेश्या संबधी जानने, अर विशुद्धिस्थान शुभलेश्या सबंधी जानने ।

तिव्वतमा तिव्वतरा, तिव्वा असुहा सुहा तदा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा, छट्ठाणगया हु पत्तेयं ।।५००।।

तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।
मंदतरा मंदतमाः, षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ।।५००।।

टीका – पूर्वै जे असंख्यात लोक के बहुभागमात्र अशुभ लेश्या सबधी संक्लेश स्थान कहे, ते कृष्ण, नील, कपोत भेद करि तीन प्रकार है । तहा पूर्वै सक्लेशस्थाननि का जो प्रमाण कह्या, ताकौ यथायोग्य असख्यात लोक का भाग दीए, तहा एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्या सबधी तीव्रतम कषायरूप सक्लेशस्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौ असख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र नील लेश्या सबंधी तीव्रतर कषायरूप सक्लेश स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग मात्र कपोत लेश्या सबधी तीव्र कषायरूप सक्लेशस्थान जानने । बहुरि असंख्यात लोक का एक भाग मात्र शुभ लेश्या सबंधी विशुद्धि स्थान कहे; ते तेज, पद्म, शुक्ल भेद करि तीन प्रकार है । तहां पूर्वै जो विशुद्धिस्थाननि का प्रमाण कह्या, ताकौ यथायोग्य असख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र तेजो लेश्या सम्बन्धी मदकषाय रूप विशुद्धि स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौ असख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र पद्मलेश्या सबधी मदतर कषायरूप विशुद्धि-स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग मात्र शुक्ललेश्या सबधी मंदतम कषाय-रूप विशुद्धि स्थान जानने । तहा इनि कृष्णलेश्या आदि छह स्थाननि विषै एक –

एक में अनन्तभागादिक षट्स्थान संभवै हैं। तहां अशुभ रूप तीन भेदनि विषै तौ उत्कृष्ट तै लगाइ जघन्य पर्यंत असंख्यात लोक मात्र बार षट् स्थानपतित संक्लेश हानि संभवै है। बहुरि शुभरूप तीन भेदनि विषै जघन्य तै लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थान पतित विशुद्ध परिणामनि की वृद्धि संभवै है। परिणामनि की अपेक्षा संक्लेश विशुद्धि के अनंतानन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं; तिनकी अपेक्षा षट्स्थानपतित वृद्धि – हानि जानना।

असुहाणं वर-मज्झिम-अवरंसे किण्ह-णील-काउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा, परिहाणीदो किलेसस्स ॥५०१॥

अशुभानां वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकापोतत्रिकानाम्।
परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः क्लेशस्य ॥५०१॥

टीका — जो संक्लेश परिणामनि की हानिरूप परिणमै, तौ अनुक्रम तैं कृष्ण के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; नील के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; कपोत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश रूप परिणवै है।

काऊ णीलं किण्हं, परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।
एवं किलेसहाणी-वड्ढीदो होदि असुहतियं ॥५०२॥

कापोतं नीलं कृष्णं, परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा।
एव क्लेशहानि-वृद्धितो भवति अशुभत्रिकम् ॥५०२॥

टीका — बहुरि जो संक्लेश परिणामनि की वृद्धिरूप परिणमै तौ अनुक्रम तै कपोतरूप, नीलरूप, कृष्णरूप परिणवै है। असै संक्लेश की हानि - वृद्धि करि तीन अशुभ स्थान हो है।

तेऊ पडमे सुक्के, सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो, हाणीदो अण्णहा होदि ॥५०३॥

तेजसि पद्मे शुक्ले, शुभानामवराद्यंशगे आत्मा।
शुद्धेश्च वृद्धितो, हानितः अन्यथा भवति ॥५०३॥

टीका – बहुरि जो विशुद्धपरिणामनि की वृद्धि होइ, तौ अनुक्रम तै पीत, पद्म, शुल्क के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशरूप परिणवै है । बहुरि जो विशुद्ध परिणामनि की हानि होइ, तो अन्यथा कहिए शुक्ल, पद्म, पीत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश रूप अनुक्रम तै परिणवै है । इति परिणामाधिकारः ।

आगै संक्रमणाधिकार तीन गाथानि करि कहै है —

संकमणं सट्ठाण-परट्ठाणं होदि किण्ह-सुक्काणं ।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं, उभयं हाणिम्मि सेसउभये वि ।।५०४।।

संक्रमणं स्वस्थान-परस्थानं भवतीति कृष्णशुक्लयोः ।
वृद्धिषु हि स्वस्थानमुभयं हानौ शेषस्योभयेऽपि ।।५०४।।

टीका – संक्रमण नाम परिणामनि की पलटनि का है; सो संक्रमण दोय प्रकार है – स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण ।

तहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था, सो परिणाम पलटि करि तिसही लेश्यारूप रहै, सो तो स्वस्थान संक्रमण है ।

बहुरि जो परिणाम पलटि करि अन्य लेश्या कौ प्राप्त होइ, सो परस्थान संक्रमण है ।

तहां कृष्ण लेश्या अर शुक्ललेश्या की वृद्धि विषै तौ स्वस्थानसंक्रमण ही है; जातै सक्लेश की वृद्धि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अश पर्यत ही है । अर विशुद्धता की वृद्धि शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश पर्यंत ही है । बहुरि कृष्णलेश्या अर शुक्ल लेश्या के हानि विषै स्वस्थानसंक्रमण परस्थानसंक्रमण दोऊ पाइए है । जो उत्कृष्ट कृष्ण-लेश्या तै सक्लेश की हानि होइ, तौ कृष्ण लेश्या के मध्यम, जघन्य अशरूप प्रवर्तै, तहा स्वस्थान सक्रमण भया, अर जो नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै, तहा परस्थान सक्र-मण भया । अैसै कृष्ण लेश्या के हानि विषै दोऊ संक्रमण है । बहुरि उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या तै जो विशुद्धता की हानि होइ, तौ शुक्ल लेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तै । तहा स्वस्थान संक्रमण भया । बहुरि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै, तहां परस्थान संक्रमण भया । अैसै शुल्क लेश्या के हानि विषै दोऊ संक्रमण है ।

बहुरि अवशेष नील, कपोत, तेज, पद्म, लेश्यानि विषै दोऊ जाति के संक्रमण हानि विषै भी अर वृद्धि विषै भी पाइए। वृद्धि-हानि होतें जो जिस लेश्यारूप था, उस ही लेश्यारूप रहै, तहा स्वस्थान संक्रमण होइ। बहुरि वृद्धि - हानि होतें, जिस लेश्यारूप था, तिसतै अन्य लेश्यारूप प्रवर्त, तहां परस्थान संक्रमण होइ। ऐसे च्यारयौं लेश्यानि के हानि विषै वा वृद्धि विषै उभय संक्रमण है।

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरड्ढी।
सट्ठाणे अवरादो, हाणी णियमा परट्ठाणे ॥५०५॥

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः।
स्वस्थाने अवरात्; हानिर्नियमात् परस्थाने ॥५०५॥

टीका – कृष्णादि सर्व लेश्यानि का उत्कृष्ट स्थान विषै जेते परिणाम हैं, तिनतै उत्कृष्ट स्थानक का समीपवर्ती जो तिस ही लेश्या का स्थान, तिस विषै अवर हानि कहिए उत्कृष्ट स्थान तै अनंतभाग हानि लीएं परिणाम हैं। जातें उत्कृष्ट के अनंतर जो परिणाम, ताकौं ऊर्वंक कह्या है, सो अनंतभाग की सदृष्टि ऊर्वंक है। बहुरि स्वस्थान विषै कृष्णादि सर्व लेश्यानि का जघन्य स्थान के समीपवर्ती जो स्थान है, तिस विषै जघन्य स्थान के परिणामनि तै अवर वृद्धि कहिए। अनंतभागवृद्धि लीएं परिणाम पाइए है; जातै जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कह्या है; सो अनंतगुण वृद्धिकी सहनानी आठ का अंक है; ताके अनन्तर ऊर्वंक ही है। बहुरि सर्व लेश्यानि के जघन्यस्थान तै जो परस्थान संक्रमण होइ तौ उस जघन्य स्थानक के परिणामनि तैं अनन्त गुणहानि कौ लीए, अनन्तर स्थान विषै परिणाम हो है, सो शुक्ल लेश्या का जघन्य स्थानक के अनन्तर तौ पद्म लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। अर कृष्ण लेश्या के जघन्य स्थान के अनन्तर नील लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। तहां अनत गुणहानि पाइए है। ऐसै ही सर्व लेश्यानि-विषै जानना। कृष्ण, नील, कपोत विषै तौ हानि - वृद्धि संक्लेश परिणामनि की जाननी। पीत, पद्म, शुक्ल विषै हानि वृद्धि विशुद्ध परिणामनि की जाननी।

इस गाथा विषै कह्या अर्थ का कारण आगै प्रकट करि कहिए है–

संकमणे छट्ठाणा, हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा।
परिमाणं च य पुव्वं, उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥५०६॥

संक्रमणे षट्स्थानानि, हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।
परिमाणं च च पूर्वमुक्तक्रमं भवति श्रुतज्ञाने ॥५०६॥

टीका – इस संक्रमण विषै हानि विषै अनन्त भागादिक छह स्थान है। बहुरि वृद्धि विषै अनन्त गुणादिक भागादिक छह स्थान है । तिनके नाम वा प्रमाण जो पूर्वै श्रुतज्ञान मार्गणा विषैं पर्याय समास श्रुतज्ञान का वर्णन करते अनुक्रम कह्या है; सोई इहां जानना । सो अनन्त भाग, असंख्यात भाग, सख्यात भाग, सख्यात गुणा, असंख्यात गुणा, अनन्त गुणा ए तौ षट् स्थाननि के नाम है । इनि अनन्त भागादिक की सहनानी क्रम तै ऊर्वक च्यारि, पाच, छह, सात, आठ का अंक है । बहुरि अनंत का प्रमाण जीवाराशि मात्र, असंख्यात का प्रमाण असख्यात लोक मात्र, संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र असा प्रमाण गुणकार वा भागहार विषै जानना । बहुरि यंत्र द्वार करि जो तहां अनुक्रम कह्या है, सोई यहां अनुक्रम जानना । वृद्धि विषै तौ तहां कह्या है, सोई अनुक्रम जानना ।

बहुरि हानि विषै उलटा अनुक्रम जानना । कैसे ? सो कहिये है – कपोत लेश्या का जघन्य तै लगाइ, कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट पर्यंत विवक्षा होइ, तौ क्रम तै संक्लेश की वृद्धि संभवै है । बहुरि कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट तै लगाइ, कपोत लेश्या का जघन्य पर्यंत विवक्षा होइ, तौ क्रम तै सक्लेश की हानि सभवै है । बहुरि पीत का जघन्य तै लगाइ शुक्ल का उत्कृष्टपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रम तै विशुद्धि की वृद्धि संभवै है । बहुरि शुक्ल का उत्कृष्ट तै लगाइ पीत का जघन्यपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रम तै विशुद्धि की हानि संभवै है । तहा वृद्धि विषै यथासभव षट्स्थानपतित वृद्धि जाननी हानि विषै हानि जाननी । तहा पूर्वे कह्या जो वृद्धि विषै अनुक्रम, तहा पीछै ही पीछै सूच्यगुल का असख्यातवां भाग मात्र बार अनन्त भाग वृद्धि होइ, एक बार अनन्त गुणवृद्धि हो है । तहा अनन्त गुण वृद्धिरूप जो स्थान, सो नवीन षट्स्थान पतितवृद्धि का प्रारभ रूप प्रथम स्थान है । अर याके पहिलै जो अनत भागवृद्धिरूप स्थान भया सो विवक्षित षट्स्थान पतित वृद्धि का अंत स्थान है । बहुरि नवीन षट्स्थान पतित-वृद्धि का अनन्त गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थान के आगै सूच्यगुल का असख्यातवा भागमात्र अनंतभाग वृद्धिरूपस्थान हो है । आगै पूर्वोक्त अनुक्रम जानना । अब इहा कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है; सो षट्स्थान पतित का अन्तस्थानरूप है, तातै पूर्वस्थान तै अनन्तभाग वृद्धिरूप है । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य स्थान है, सो षट्-स्थानपतित का प्रारंभरूप प्रथम स्थान है । तातै याके पूर्वै नीललेश्या का उत्कृष्ट

टीका – निद्रा जाके बहुत होइ, और को ठिगना जाके बहुत होइ, धन-धान्यादिक विषै तीव्र वांछा जाके होइ, असा संक्षेप तै नील लेश्यावाले का लक्षण है ।

रूसदि णिंददि अण्णे, दूसदि बहुसो य सोय-भय-बहुलो ।
असुयदि परिभवदि परं, पसंसदि य अप्पयं बहुलो ।।५१२।।[1]

रुष्यति निन्दति अन्यं, दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
असूयति परिभवति परं, प्रशंसति आत्मानं बहुशः ।।५१२।।

टीका – पर के ऊपरि क्रोध करै, बहुत प्रकार और कौ निंदै, बहुत प्रकार और कौं दुखावै, शोक जाके बहुत होइ, भय जाकै बहुत होइ, और कौं नीकै देखि सकै नाही; और का अपमान करै, आपकी बहुत प्रकार बढाई करै ।

ण य पत्तियदि परं, सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो ।
तुसदि अभित्थुवंतो, ण य जाणदि हाणिवड्ढि वा ।।५१३।।[2]

न च प्रत्येति परं, स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।
तुष्यति अभिष्टुवतो, न च जानाति हानिवृद्धी वा ।।५१३।।

टीका — आप सारिखा पापी - कपटी और कौ मानता संता और का विश्वास न करै, जो आपकी स्तुति करै, ताके ऊपरि बहुत संतुष्ट होइ, अपनी, अर पर की हानि वृद्धि कौं न जाने ।

मरणं पत्थेदि रणे, देहि सुबहुगं हि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ।।५१४।।[3]

मरणं प्रार्थयते रणे, ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।
न गणयति कायाकार्यं, लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ।।५१४।।

टीका – युद्ध विषै मरण कौं चाहै, जो आपकी बढाई करै, ताकौ बहुत धन देइ, कार्य–अकार्य कौं गिणै नाही, असै लक्षण कपोत लेश्यावाले के हैं ।

---

१. षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा स. २०३ ।
२. षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा स. २०४ ।
३. षट्खडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा स. २०५ ।

जाणदि कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी ।
दय-दाण-रदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१५॥[1]

जानाति कार्याकार्यं, सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।
दयादानरतश्च मृदुः, लक्षणमेतत्तु तेजसः ॥५१५॥

टीका – कार्य - अकार्य कौं जानै, सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्य कौं जानै, सर्व विषै समदर्शी होइ, दया – दान विषै प्रीतिवंत होइ; मन, वचन, काय विषै कोमल होइ, असैं लक्षण पीतलेश्यावाले के है ।

चागी भद्दो चोक्खो, उज्जव-कम्मो य खमदि बहुगं पि ।
साहु-गुरु-पूजण-रदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥५१६॥[2]

त्यागी भद्रः सुकरः, उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।
साधुगुरुपूजनरतो, लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ॥५१६॥

टीका — त्यागी होइ, भद्र परिणामी होइ, सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ, शुभभाव विषै उद्यमी रूप जाके कर्म होइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै, मुनिजन अर गुरुजन तिनकी पूजा विषै प्रीतिवंत होइ, असैं लक्षण पद्मलेश्यावाले के है ।

ण य कुणदि पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं ।
णत्थि य राय-द्दोसा णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स ॥५१७॥[3]

न च करोति पक्षपातं, नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोऽपि च शुक्ललेश्यस्य ॥५१७॥

टीका — पक्षपात न करै, निदा न करै, सर्व जीवनि विषै समान होइ, इष्ट अनिष्ट विषै राग – द्वेष रहित होइ, पुत्र कलत्रादिक विषै स्नेह रहित होइ; असैं लक्षण शुक्ल लेश्यावाले के है । इति लक्षणाधिकार ।

---

१. षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा सं. २०६ ।
२ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा स. २०७ ।
३ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा स २०८ ।

आगै गति अधिकार ग्यारह सूत्रनि करि कहै है –

लेस्साणं खलु अंसा, छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा, अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥५१८॥[1]

लेश्यानां खलु अंशाः, षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या, अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥५१८॥

टीका – लेश्यानि के छब्बीस अंश हैं । तहां छहौं लेश्यानि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि अठारह अंश हैं । बहुरि कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश तै आगै अर तेजो लेश्या के उत्कृष्ट अंश तै पहिलैं कषायनि का उदय स्थानकनि विषै आठ मध्यम अंश है, ऐसै छब्बीस अंश भए । तहां आयुकर्म के बंध कौ योग्य आठ मध्यम अंश जानने । तिनिका स्वरूप आगै स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार विषै भी कहेंगे । ते आठ मध्यम अंश, अपकर्ष काल आठ, तिनि विषै संभवै है । वर्तमान जो भुज्यमान आयु, ताकौ अपकर्ष, अपकर्ष कहिए । घटाइ घटाइ आगामी पर भव की आयु कौ वांधै; सो अपकर्ष कहिए ।

अपकर्षनि का स्वरूप दिखाइए है – तहां उदाहरण कहिए है – किसी कर्म भूमिया मनुष्य वा तिर्यंच की भुज्यमान आयु पैसठि सै इकसठि (६५६१) वर्ष की है । तहां तिस आयु का दोय भाग गएं, इकईस सै सित्तासी वर्ष रहै । तहां तीसरा भाग कौ लागते ही प्रथम समय स्यों लगाइ अंतर्मुहूर्त पर्यंत कालमात्र प्रथम अपकर्ष है । तहा परभव सबधी आयु का बंध होइ । बहुरि जो तहा न बधै तौ, तिस तीसरा भाग का दोय भाग गएं, सात सै गुणतीस वर्ष आयु के अवशेष रहै, तहा अतर्मुहूर्त काल पर्यंत दूसरा अपकर्ष, तहां परभव की आयु बांधै । बहुरि तहा भी न बंधै तौ तिसका भी दोय भाग गएं दोय सै तियालीस वर्ष आयु के अवशेष रहै, अंतर्मुहूर्त काल मात्र तीसरा अपकर्ष विषै परभव का आयु बाधै । बहुरि तहां भी न बधै तौ, तिसका भी दोय भाग गएं इक्यासी वर्ष रहै, अंतर्मुहूर्त पर्यंत चौथा अपकर्ष विषै पर भव का आयु बाधै । ऐसै ही दोय दोय भाग गए, सत्ताईस वर्ष रहै वा नव वर्ष रहै वा तीन वर्ष रहै वा एक वर्ष रहै अतर्मुहूर्तमात्र काल पर्यंत पांचवां वा छठा वा सातवां वा

---

१ षट्खडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा स २०६ ।

आठवा अपकर्ष विषै पर भव की आयु कौ बधने कौं योग्यपना जानना । अैसे ही जो भुज्यमान आयु का प्रमाण होय, ताके त्रिभाग त्रिभाग विषै आठ अपकर्ष जानने ।

बहुरि जो आठौ अपकर्षनि विषै आयु न बंधै अर नवमा आदि अपकर्ष है नाही, तौ आयु का बंध कैसे होइ ?

सो कहै है – **असंक्षेपाद्धा** जो आवली का असंख्यातवा भाग प्रमाण काल भुज्यमान आयु का अवशेष रहै ताके पहिले अतर्मुहूर्त काल मात्र समय प्रबद्धनि करि परभव की आयु कौ बाधि पूर्ण करै है, अैसा नियम है । इहा विशेष निर्णय कीजिए है – विषादिक का निमित्तरूप कदलीघात करि जिनका मरण होइ, ते सोपक्रमायुष्क कहिए । तातै देव, नारकी, भोगभूमिया अनुपक्रमायुष्क है । सो सोपक्रमायुष्क है, ते पूर्वोक्त रीति करि पर भव का आयु कौं बाधै है । तहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षनि विषै आयु के बंध होने कौ योग्य जो परिणाम तिनकरि केई जीव आठ वार, केई जीव सात वार, केई छह वार, केई पाच वार, केई च्यारि वार, केई तीन वार, केई दो वार, केई एक वार परिणमै है ।

आयु के बध योग्य परिणाम अपकर्षणनि विषै ही होइ, सो अैसा कोई स्वभाव सहज ही है । अन्य कोई कारण नाही ।

तहां तीसरा भाग का प्रथम समय विषै जिन जीवनि करि परभव के आयु का बंध प्रारंभ किया, ते अतर्मुहूर्त ही विषै निष्ठापन करै । अथवा दूसरी बार आयु का नवमां भाग अवशेष रहै, तहा तिस बध होने कौ योग्य होइ । अथवा तीसरी वार आयु का सत्ताईसवां भाग अवशेष रहै, तहां तिस बध होने कौ योग्य होइ, अैसे आठवा अपकर्ष पर्यंत जानना । अैसा किछू नियम है नाहीं – जो इनि अपकर्षनि विषै आयु का बंध होइ ही होइ । इनि विषै आयु के बंध होने कौ योग्य होइ । जो बध होइ तौ होइ न होइ तौ न होइ । अैसे आयु के बंध का विधान कह्या ।

जैसे अन्यकाल विषै समय समय प्रति समयप्रबद्ध बधै है, सो आयुकर्म विना सात कर्मरूप होइ परिणमै है । तैसे आयुकर्म का बंध जेता काल मे होइ, तितने काल विषैं जे समय समय प्रति समयप्रबद्ध बधै ते आठो ही कर्मरूप होइ परिणमै है अैसे जानना ।

बहुरि जिस समय विषै पहिलै ही जिसका बंध होइ, तहां तिसका प्रारंभ कहिए। बहुरि समय समय प्रति तिस प्रकृति का बंध हूवा करै, तहां बंध होइ निवरै, तहां निष्ठापक कहिए।

बहुरि देव नारकीनि के छह महीना आयु का अवशेष रहै, तब आयु के बंध करने कौ योग्य होइ, पहिलै न होइ। तहां छह महीना ही विषै त्रिभाग त्रिभाग करि आठ अपकर्ष हो है, तिन विषै आयु के बंध करने योग्य हो है।

बहुरि एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्ष तै लगाइ तीन पल्य पर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयु के धारी भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य, ते भी निरुपक्रमायुष्क है। इन कैं आयु का नव मास अवशेष रहैं आठ अपकर्षनि करि पर भव के आयु का बंध होने का योग्यपना हो है। बहुरि इतना जानना – जिस गति संबंधी आयु का बंध प्रथम अपकर्ष विषै होइ पीछैं जो दुतियादि अपकर्षनि विषै आयु का बंध होइ, तौ तिस ही गति संबंधी आयु का बंध होइ। बहुरि जो प्रथम अपकर्ष विषै आयु का बंध न होइ, तौ अर दूसरे अपकर्ष विषै जिस किसी आयु का बंध होइ तौ तृतीयादि अपकर्षनि विषै आयु का जो बंध होइ, तौ तिस ही गति सम्बन्धी आयु का बन्ध होइ, ऐसैं ही आगैं जानना। ऐसै कई एक जीवनि के तौ आयु का बंध एक अपकर्ष ही विषैं होइ, केई जीवनि के दोय अपकर्षनि करि होइ, केई जीवनि कै तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनि करि हो है।

तहां आठ अपकर्षनि करि परभव की आयु के बन्ध करनहारे जीव स्तोक है। तिनतै संख्यात गुणे सात अपकर्षनि करि बन्ध करने वाले है। तिनतै संख्यात गुणे छह अपकर्षनि करि बन्ध करने वालै है। ऐसै संख्यात गुणे संख्यात गुणे पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक अपकर्षनि करि बंध करने वाले जीव जानने।

बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु कौ बाधता जीव, तिसकै आठवां अपकर्ष विषै आयु बधने का जघन्य काल स्तोक है। तिसतै विशेष अधिक ताका उत्कृष्ट काल है। बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु कौ बांधता जीव कै सातवां अपकर्ष विषै जघन्य काल तिसतै संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट तिसतै विशेष अधिक है। बहुरि सात अपकर्षनि करि आयु कौ बांधता जीव कै सातवां अपकर्ष विषै आयु बंधने का जघन्य काल तिसतै संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट तिसतै विशेष अधिक है। बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु बांधता जीव के छठा अपकर्ष विषै आयु बंधने का जघन्य काल तिसतैं

आठ अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
८	८	८
८	७	७
८	६	६
८	५	५
८	४	४
८	३	३
८	२	२
८	१	१

सात अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
७	७	७
७	६	६
७	५	५
७	४	४
७	३	३
७	२	२
७	१	१

छह अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
६	६	६
६	५	५
६	४	४
६	३	३
६	२	२
६	१	१

पाच अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
५	५	५
५	४	४
५	३	३
५	२	२
५	१	१

च्यारि अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
४	४	४
४	३	३
४	२	२
४	१	१

तीन अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
३	३	३
३	२	२
३	१	१

दोय अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
२	२	२
२	१	१

एक अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट
१	१	१

संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है । बहुरि सात अपकर्षनि करि आयु कौ बांधता जीव कै छठा अपकर्ष विषै आयु का बंधने का जघन्य काल तिसतै सख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है। बहुरि छह अपकर्षनि करि आयु को बांधता जीव कैं छठा अपकर्ष विषैं आयु बधने का जघन्य काल तिसतै सख्यातगुणा है; उत्कृष्ट किछू अधिक है । अैसैं एक अपकर्ष करि आयु कौ बांधता जीव कै तीहिं अपकर्ष के उत्कृष्ट काल पर्यंत बहत्तरि (७२) भेद हो हैं। तहां जघन्य तै उत्कृष्ट तो अधिक जानना । सो तिस विवक्षित जघन्य कौ संख्यात का भाग दीएं, जो पावै, सो विशेष का प्रमाण जानना । ताकौ जघन्य में जोडे उत्कृष्ट का प्रमाण हो है । बहुरि उत्कृष्ट तै आगला जघन्य, सख्यात गुणां जानना । अैसै यद्यपि सामान्यपनै सबनि विषै काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । तथापि हीनाधिकपना जानने कौ अनुक्रम कह्या है, जो अपकर्षनि विषै आयु का बंध होइ, तौ इतने इतने काल मात्र समयप्रबद्धनि करि बंध हो है ।

यह बहत्तरी भेदनि की रचना है । तहां आठ अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना विषै पहिली पंक्ति के कोठानि विषै जो आठ - आठ का अंक है, ताका तौ यह अर्थ जानना – जो आठ अपकर्षनि करि आयु बांधने वाले का इहां ग्रहण है । बहुरि दूसरी, तीसरी पंक्तिनि विषै आठ, सात आदि अंक है, तिनिका यह अर्थ – जो तिनि आठ अपकर्षनि करि बंध करने वाले जीव के आठवा, सातवां आदि अपकर्षनि का ग्रहण है । तहा दूसरी पक्ति विषै जघन्य काल अपेक्षा ग्रहण जानना । तीसरी पंक्ति विषै उत्कृष्ट काल अपेक्षा ग्रहण जानना । अैसै ही सात, छह, पाच, च्यारि, तीन, दोय, एक अपकर्षनि करि आयु बधने की रचना विषै अर्थ जानना । आठौ रचनानि की दूसरी, तीसरी पक्तिनि के सर्व कोठे बहत्तरि हो है । इनि बहत्तरि स्थाननि विषै आयु बंधने के काल का अल्प – बहुत्व जानना । मध्य भेदनि के ग्रहण निमित्त जघन्य उत्कृष्ट के बीचि बिंदी की सहनानी जाननी ।

अैसे आयु कौ बधने के योग्य लेश्यानि का मध्यम आठ अश, तिनकी आठ अपकर्षनि करि उत्पत्ति का अनुक्रम कह्या ।

सेसट्ठारसअंसा, चउगइ-गमणस्स कारणा होंति ।
सुक्कुक्कस्संसमुदा, सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१६॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति ।
शुक्लोत्कृष्टांशमृताः, सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ॥५१६॥

टीका – तिन मध्यम अशनि तै अवशेष रहै, जे लेश्यानि के अठारह अंश, ते च्यारि गति विषै गमन कौ कारण है। मरण इनि अठारह अंशनि करि सहित होइ, सो मरण करि यथायोग्य गति कौ जीव प्राप्त हो है। तहां शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि सहित मरै, ते जीव सर्वार्थसिद्धि नामा इंद्र के विमान कौ प्राप्त हो है।

अवरंसमुदा होंति, सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा।
आणदकप्पादुवरिं, सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥५२०॥

अवरांशमृता भवन्ति, शतारद्विके मध्यमांशकेन मृताः।
आनतकल्पादुपरि, सर्वार्थादिमे भवन्ति ॥५२०॥

टीका– शुक्ल लेश्या का जघन्य अश करि मरै, ते जीव शतार –सहस्रार स्वर्ग विषै उपजै है। बहुरि शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव आनत स्वर्ग के ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रक का विजयादिक विमान पर्यंत यथासंभव उपजै है।

पम्मुक्कस्संसमुदा, जीवा उवजांति खलु सहस्सारं।
अवरंसमुदा जीवा, सणक्कुमारं च माहिंदं ॥५२१॥

पद्मोत्कृष्टांशमृता, जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम्।
अवरांशमृता जीवाः, सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ॥५२१॥

टीका – पद्म लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरै, जे जीव सहस्रार स्वर्ग कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि पद्म लेश्या का जघन्य अंश करि मरै, ते जीव सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्ग कौ प्राप्त हो है।

मज्झिमअंसेण मुदा, तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥५२२॥

मध्यमांशेन मृताः, तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः।
सानत्कुमारमाहेंन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ॥५२२॥

टीका — पद्म लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव सहस्रार स्वर्ग के नीचै अर सनत्कुमार – माहेन्द्र के ऊपरि यथासंभव उपजै है। बहुरि तेजो लेश्या का

उत्कृष्ट अश करि मरै, ते सनत्कुमार – माहेन्द्र स्वर्ग का अंत का पटल विषै चक्र नामा इंद्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमान, तिनि विषै उपजै हैं ।

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा, विमलविमाणादिबलभद्दे ॥५२३॥

अवरांशमृताः सौधर्मेशानादिमतौ श्रेण्याम् ।
मध्यमांशेन मृता, विमलविमानादिबलभद्रे ॥५२३॥

टीका – तेजो लेश्या का जघन्य अंश करि मरै, ते जीव सौधर्म ईशान का पहिला रितु (जु) नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमान, तिनिविषै उपजै है । बहुरि तेजो लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव सौधर्म – ईशान का दूसरा पटल का विमल नामा इंद्रक तै लगाइ सनत्कुमार – माहेन्द्र का द्विचरम पटल का बलभद्र नामा इंद्रक पर्यंत विमान विषै उपजैं हैं ।।

किण्हवरंसेण मुदा, अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से, मज्झे मज्झेण जायन्ते ॥५२४॥

कृष्णवरांशेन मृता, अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।
पञ्चमचरमतिमिस्रे, मध्ये मध्येन जायन्ते ॥५२४॥

टीका – कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अश करि मरै, ते जीव सातवी नरक पृथ्वी का एक ही पटल है, ताका अवधि स्थानक नामा इंद्रक बिल विषै उपजै है । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश करि मरै, ते जीव पंचम पृथ्वी का अत पटल का तिमिस्र नामा इद्रक विषै उपजै है । बहुरि कृष्ण लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव अवधिस्थान इद्रक का च्यारि श्रेणीबद्ध बिल तिनि विषै वा छठा पृथ्वी का तीनौ पटलनि विषै वा पांचवी पृथ्वी का चरम पटल विषै यथायोग्य उपजै है ।

नीलुक्कस्संसमुदा, पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे, मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२५॥

नीलोत्कृष्टांशमृताः, पञ्चमांधेन्द्रके अवरमृताः ।
वालुकासंप्रज्वलिते, मध्ये मध्येन जायन्ते ॥५२५॥

टीका – नील लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरै, ते जीव पंचम पृथ्वी का द्विचरम पटल का अध्र नामा इंद्रक विषै उपजै है । केई पाचवा पटल विषै भी उपजै है । अरिष्ट पृथ्वी का अंत का पटल विषै कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश करि मरे हुए भी केई जीव उपजै है; इतना विशेष जानना । बहुरि नील लेश्या का जघन्य अंश करि मरै, ते जीव वालुका पृथ्वी का अंत का पटल विषै सप्रज्वलित नामा इंद्रक विषै उपजै है । बहुरि नील लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव बालुका प्रभा पृथ्वी के संप्रज्वलित इंद्रक तै नीचै अर चौथी पृथ्वी का सातौ पटल अर पचमी पृथ्वी का अंध्र इंद्रक के ऊपरि यथायोग्य उपजै है ।

वर-काओदंसमुदा, संजलिदं जांति तदिय-णिरयस्स ।
सीमंतं अवरमुदा, मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२६॥

वरकापोतांशमृताः, संज्वलितं यान्ति तृतीयनिरयस्य ।
सीमन्तमवरमृता, मध्ये मध्येन जायन्ते ॥५२६॥

टीका – कापोत लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरै, ते जीव तीसरी पृथ्वी का आठवां द्विचरम पटल ताके सज्वलित नामा इंद्रक विषै उपजै है । केई अत का पटल सबधी सप्रज्वलित नामा इंद्रक विषै भी उपजै है । इतना विशेष जानना । बहुरि कापोत लेश्या का जघन्य अश करि मरै, ते जीव पहिली धर्मा पृथ्वी का पहिला सीमतक नामा इंद्रक, तिस विषै उपजै है । बहुरि कापोत लेश्या का मध्यम अश करि मरै, ते जीव पहिला पृथ्वी का सीमत इंद्रक तै नीचै बारह पटलनि विषै, बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वी का द्विचरम सज्वलित इंद्रक तै ऊपरि सात पटलनि विषै, बहुरि दूसरी पृथ्वी का ग्यारह पटल, तिन विषै यथायोग्य उपजै है ।

किण्ह-चउक्काणं पुण, मज्झंस-मुदा हु भवणगादि-तिये ।
पुढवी-आउ-वणप्फदि-जीवेसु हवंति खलु जीवा ॥५२७॥

कृष्णचतुष्काणां पुनः, मध्यांशमृता हि भवनकादित्रये ।
पृथिव्यब्वनस्पतिजीवेषु भवन्ति खलु जीवाः ॥५२७॥

टीका — पुनः कहिये यहु विशेष है – कृष्ण - नील - कपोत तेज लेश्या, तिनके मध्यम अंश करि मरै असै कर्म भूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य अर

तेजो लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, असे भोगभूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य ते भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवनि विषै उपजै हैं। बहुरि कृष्ण - नील - कपोत - पीत इन च्यारि लेश्यानि के मध्यम अंशनि करि मरै, असे तिर्यंच वा मनुष्य भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी वा सौधर्म – ईशान स्वर्ग के वासी देव, मिथ्यादृष्टी, ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक, अप्कायिक वनस्पती कायिक विषै उपजै है। भवनत्रयादिक की अपेक्षा इहां पीत लेश्या जाननी। तिर्यंच मनुष्य अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी।

किण्ह-तियाणं मज्झिम-अंस-मुदा तेउ-वाउ-वियलेसु।
सुर-णिरया सग-लेस्सहिं, णर-तिरियं जांति सग-जोग्गं ॥५२८॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृताः तेजोवायुविकलेषु।
सुरनिरयाः स्वकलेश्याभिः नरतिर्यञ्चं यान्ति स्वकयोग्यम् ॥५२८॥

टीका – कृष्ण, नील, कपोत के मध्यम अंश करि मरै, असे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजःकायिक वा वातकायिक विकलत्रय असैनी पंचेंद्री साधारण वनस्पती, इनिविषैं उपजै है। बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत देव अर धम्मादि सात पृथ्वी संबंधी नारकी ते अपनी-अपनी लेश्या के अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगति कौ प्राप्त हो है। इहां इतना जानना – जिस गति संबधी पूर्वै आयु बंध्या होइ, तिस ही गति विषै जो मरण होतै जो लेश्या होइ, ताके अनुसारि उपजै है। जैसैं मनुष्य के पूर्वै देवायु का बध भया, बहुरि मरण होते कृष्णादि अशुभ लेश्या होइ तौ भवनत्रिक विषै ही उपजै है, असै ही अन्यत्र जानना। इति गत्यधिकार।

आगे स्वामी अधिकार सात गाथानि करि कहै है–

काऊ काऊ काऊ, णीला णीला य णील-किण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा, लेस्सा पढमादि पुढवीणं ॥५२९॥

कपोता कपोता कपोता, नीला नीला च नीलकृष्णे च।
कृष्णा च परमकृष्णा, लेश्या प्रथमादिपृथिवीनाम् ॥५२९॥

टीका — इहां भावलेश्या की अपेक्षा कथन है। तहां नारकी जीवनि के कहिए है – तहां धम्मा नामा पहिली पृथ्वी विषै कपोत लेश्या का जघन्य अंश है। वंशा दूसरी पृथ्वी विषै कपोत का मध्यम अंश है। मेघा तीसरी पृथ्वी विषै कपोत

का-उत्कृष्ट अंश अर नील का जघन्य अंश है। अंजना चौथी पृथ्वी विषै नील का मध्यम अंश है। अरिष्टा पांचवी पृथ्वी विषै नील का उत्कृष्ट अंश है, अर कृष्ण का जघन्य अंश है। मघवी पृथ्वी विषैं कृष्ण का मध्यम अंश है। माघवी सातवी पृथ्वी विषैं कृष्ण का उत्कृष्ट अंश है।

णर-तिरियाणं ओघो, इगि-विगले तिण्णि चउ असण्णिस्स।
सण्णि-अपुण्णग-मिच्छे, सासणसम्मे वि असुह-तियं ॥५३०॥

नरतिरश्चामोघः एकविकले तिस्रः चतस्र असंज्ञिनः।
संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेऽपि अशुभत्रिकम् ॥५३०॥

टीका — मनुष्य अर तिर्यंचनि के 'ओघ' कहिए सामान्यपनै कही ते सर्व छहौ लेश्या पाइए है। तहां एकेंद्री अर विकलत्रय इनके कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या हि पाइए है। बहुरि असैनी पचेंद्री पर्याप्तक कैं कृष्णादि च्यारि लेश्या पाइए हैं, जातैं असैनी पचेंद्री कपोत लेश्या सहित मरै, तौ पहिले नरक उपजै। तेजो लेश्या सहित मरै, तौ भवनवासी अर व्यंतर देवनि विषै उपजै। कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या सहित मरै, तौ यथायोग्य मनुष्य तिर्यंच विषै उपजै, तातैं ताके च्यारि लेश्या है। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि अपि शब्द तैं असैनी लब्धि पर्याप्तक तिर्यंच - मनुष्य मिथ्यादृष्टी, बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृति अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य वा भवनत्रिक देव इनिविषै कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही है। तिर्यंच अर मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टी होइ, ताकै अति सक्लेश परिणाम होइ, तौ भी देशसयमीवत् कृष्णादिक तीन लेश्या न होइ। तथापि जो उपशम सम्यक्त्व की विराधना करि सासादन होइ, ताकै अपर्याप्त अवस्था विषै तीन अशुभ लेश्या ही पाइए है।

भोगापुण्णगसम्मे, काउस्स जहण्णियं हवे णियमा।
सम्मे वा मिच्छे वा, पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ॥५३१॥

भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे, कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात्।
सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे वा, पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ॥५३१॥

टीका — भोग भूमि विषै निर्वृति अपर्याप्तक सम्यग्दृष्टी [illegible] लेश्या का जघन्य अश पाइए है। जातैं कर्मभूमिया मनुष्य वा [illegible]

वा तिर्यंच आयु का बंध कीया, पीछै क्षायिक वा वेदक सम्यक्त्व कौ अंगीकार करि मरैं, तिस सहित ही तहां भोगभूमि विषै उपजै। तहां तिस योग्य संक्लेश परिणाम कपोत का जघन्य अंश, तिसरूप परिणमे है। बहुरि भोगभूमि विषै पर्याप्त अवस्था विषै सम्यग्दृष्टी वा मिथ्यादृष्टी जीव के पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पाइए है।

अयदो त्ति छ लेस्साओ, सुह-तिय-लेस्सा हु देसविरद-तिये।
तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५३२॥

असंयत इति षड् लेश्याः, शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये।
ततः शुक्ला लेश्या, अयोगिस्थानमलेश्यं तु ॥५३२॥

टीका – असयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषै छहौ लेश्या है। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननि विषै पीतादिक तीन शुभलेश्या ही हैं। तातै ऊपरि अपूर्वकरण तै लगाइ सयोगी पर्यंत छह गुणस्थाननि विषैं एक शुक्ल लेश्या ही है। अयोगी गुणस्थान लेश्या रहित है जातै, तहा योग कषाय का अभाव है।

णट्ठ-कसाये लेस्सा, उच्चदि सा भूद-पुव्व-गदि-णाया।
अहवा जोग-पउत्ती, मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा ॥५३३॥

नष्टकषाये लेश्या, उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात्।
अथवा योगप्रवृत्तिः, मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ॥५३३॥

टीका – उपशात कषायादिक जहां कषाय नष्ट होइ गए, असे तीन गुणस्थाननि विषै कषाय का अभाव होतै भी लेश्या कहिए है, सो भूतपूर्वगति न्याय तै कहिए हैं। पूर्वं योगनि की प्रवृत्ति कषाय सहित होती थी, तहा लेश्या का सद्भाव था, इहा योग पाइए है; तातै उपचार करि इहां भी लेश्या का सद्भाव कह्या। अथवा योगनि की प्रवृत्ति, सोई लेश्या, असा भी कथन है, सो योग इहा हैं ही, ताकी प्रधानता करि तहां लेश्या है।

तिण्हं दोण्हं दोण्हं, छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं, लेस्सा भवणादि-देवाणं ॥५३४॥

तेऊ तेऊ तेऊ, पम्मा पम्मा य पम्म-सुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का, भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥५३५॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयो , षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां, लेश्या भवनादिदेवानाम् ।।५३४।।

तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ले च ।
शुक्ला च परमशुक्ला, भवनत्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ।।५३५।।

टीका – देवनि के लेश्या कहिए हैं – तहां पर्याप्त भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी इनि भवनत्रिक कै तेजो लेश्या का जघन्य अंश है । सौधर्म – ईशान, दोय स्वर्गवालों कैं तेजो लेश्या का मध्यम अंश है । सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्गवालों कै तेजो लेश्या का उत्कृष्ट अंश अर पद्म लेश्या का जघन्य अंश है । ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालों के पद्म लेश्या का मध्यम अंश है । शतार - सहस्रार दोय स्वर्गवालो कै पद्म लेश्या का उत्कृष्ट अंश अर शुक्ल लेश्या का जघन्य अंश है । आनत आदि च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनि तेरह वालों कै शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश है । ताके ऊपरि नव अनुदिश अर पंच अनुत्तर इनि चौदह विमान वालों कै शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अश है । बहुरि भवनत्रिक देवनि कै अपर्याप्त अवस्था विषै कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या ही पाइए है । याही तैं यहु जानिए है, जो वैमानिक देवनि कै पर्याप्त वा अपर्याप्त अवस्था विषै लेश्या समान ही है । अैसैं जिस जीव कै जो लेश्या पाइए, सो जीव तिस लेश्या का स्वामी जानना । इति स्वाम्यधिकार. ।

आगै साधन अधिकार कहै है–

वण्णोदय-संपादिद-सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदय-खओवसमोवसम खयज-जीवफंदणं भावो ।।५३६।।

वर्णोदयसंपादित-शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ।।५३६।।

टीका – वर्ण नामा नामकर्म के उदय तें उत्पन्न भया जो शरीर का वर्ण, सो द्रव्य लेश्या है । तातैं द्रव्य लेश्या का साधन नामा नामकर्म का उदय है । वहुरि असयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषै मोहनीय कर्म का उदय तै, देश विरतादिक तीन गुणस्थाननि विषै मोहनीय कर्म का क्षयोपशम तैं उपशम श्रेणी विषै मोहनीय कर्म का उपशम तै क्षपक श्रेणी विषै मोहनीय कर्म का क्षय तै उत्पन्न भया जो जीव का स्पंद, सो भाव लेश्या है । स्पंद कहिए जीव के परिणामनि का चचल होना वा

जीव के प्रदेशनि का चंचल होना, सो भाव लेश्या है। तहा परिणाम का चचल होना कषाय है। प्रदेशनि का चंचल होना योग है। तीहि कारण करि योग कषायनि करि भाव लेश्या कहिए है। ताते भाव लेश्या का साधन मोहनीय कर्म का उदय वा क्षयोपशम वा उपशम वा क्षय जानना। इति साधनाधिकारः।

आगे संख्याधिकार छह गाथानि करि कहै हैं—

किण्हादि-रासिमावलि-असंखभागेण भजिय पविभत्ते।
हीणकमा कालं वा, अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥५३७॥

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते।
हीनक्रमाः कालं वा, आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥५३७॥

टीका – कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण है, सो तीन शुभ लेश्यावालों का प्रमाण कौं संसारी जीवनि का प्रमाण मै स्यों घटाए, जितना रहे तितना जानना; सो किंचिदून संसारी राशिमात्र भया। ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग रहे, तिनके तीन भाग करिए, सो एक-एक भाग एक-एक लेश्यावालों का समान रूप जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असख्यातवां भाग का भाग देइ, तहां एक भाग जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहै, सो पूर्वै समान भागनि विषै जो कृष्ण लेश्यावालों का वट (हिस्सा) था, तिसविषै जोडि दीए, जो प्रमाण होइ, तितने कृष्ण लेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो वह एक भाग रह्या था, ताकौ आवली का असख्यातवां भाग का भाग देइ, तहां एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहै, ते पूर्वै समान भाग विषै नील लेश्यावालो का वट था, तिसविषै जोडि दीए, जो प्रमाण होइ, तितने नील लेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो वह एक भाग रह्या था, सो पूर्वै समान भाग विषै कपोत लेश्यावालो का वट था, तिसविषै जोडे, जो प्रमाण होइ, तितने कपोत लेश्यावाले जीव जानने। असैं कृष्णलेश्यादिक तीन लेश्यावालों का द्रव्य करि प्रमाण कह्या, सो क्रमतै किछू किछू घटता जानना।

अथवा काल अपेक्षा द्रव्य करि परिमाण कीजिए है। कृष्ण, नील, कपोत तीनों लेश्यानि का काल मिलाए, जो कोई अंतर्मुहूर्त मात्र होइ, ताकौ आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग

रहै, तिनिका तीन भाग कीजिए, तहा एक एक समान भाग एक एक लेश्या कौ दीजिए । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असख्यातवा भाग का भाग दीजिये, तहा एक भाग कौ जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे, सो पूर्वोक्त कृष्ण लेश्या का समान भाग विषै मिलाइए, बहुरि अवशेष जो एक भाग रह्या, ताकौ आवली का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौ जुदा राखि, अवशेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्या का समान भाग विषै मिलाइए । बहुरि जो एक भाग रह्या, सो पूर्वोक्त कपोत लेश्या का समान भाग विषै मिलाइए, असैं मिलाए, जो जो प्रमाण भया, सो सो कृष्णादि लेश्यानि का काल जानना ।

अब इहां त्रैराशिक करना । तहां तीनू लेश्यानि का काल जोडैं, जो प्रमाण भया, सो तौ प्रमाणराशि, बहुरि अशुभ लेश्यावाले जीवनि का जो किंचित् ऊन संसारी जीव मात्र प्रमाण सो फलराशि । बहुरि कृष्णलेश्या का काल का जो प्रमाण सोई इच्छाराशि, तहां फल करि इच्छा कौं गुणै, प्रमाण का भाग दीए, लब्धराशि किंचित् ऊन तीन का भाग अशुभ लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कौ दीए, जो प्रमाण भया, तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । असैं ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छा-राशि अपना - अपना काल करि नील वा कपोत लेश्या विषै भी जीवनि का प्रमाण जानना । असैं काल अपेक्षा द्रव्य करि अशुभलेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या है ।

खेत्तादो असुहतिया, अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो, अणंतगुणिदा कमा हीणा ।।५३८।।

क्षेत्रतः अशुभत्रिका, अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः ।
कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ।।५३८।।

टीका — क्षेत्र प्रमाण करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अनत लोक मात्र जानने । लोकाकाश के प्रदेशनि तै अनत गुणै है, तहा क्रमतै हीनक्रम जानने । कृष्णलेश्यावालों तै किछू घाटि नील लेश्यावालो का प्रमाण है । नील लेश्यावालो तै किछू घाटि कपोत लेश्यावालो का प्रमाण है । बहुरि इहा प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने - अपने जीवनि का प्रमाण कीए, लब्ध-राशिमात्र अनंत शलाका भई । बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक लोक, इच्छा अनंत शलाका कीएं, लब्धराशि अनत लोक मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का

प्रमाण हो है। बहुरि काल प्रमाण करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, अतीत काल के समयनिका प्रमाण तैं अनंत गुणे है। इहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाणराशि अतीत काल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने - अपने जीवनि का प्रमाण कीए, लब्धराशिमात्र अनंत शलाका भई। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक अतीत काल, इच्छा अनंत शलाका करि, लब्ध राशि अनंत अतीत कालमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण हो है।

केवलणाणणंतिमभागा भावादु किण्ह-तिय-जीवा।
तेउतिया-संखेज्जा, संखासंखेज्जभागकमा ॥५३९॥

केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः।
तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः ॥५३९॥

टीका – बहुरि भाव मान करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण के अनंतवें भाग प्रमाण है। इहां भी पूर्ववत् हीन क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाण राशि अपने - अपने लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण, फल एक शलाका, इच्छा केवलज्ञान कीए, लब्ध राशिमात्र अनन्त प्रमाण भया, इसकौं प्रमाणराशि करि फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान कीए केवलज्ञान के अनन्तवे भाग मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण हो है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालों का प्रमाण असंख्यात है, तथापि तेजोलेश्यावालों के सख्यातवे भाग पद्मलेश्या वाले है, पद्मलेश्या वालों के असंख्यातवें भाग शुक्ल लेश्यावाले है। असैं द्रव्य करि शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कह्या।

जोइसियादो अहिया, तिरक्खसण्णिस्स संखभागोदु।
सूइस्स अंगुलस्स य, असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिष्कतोऽधिकाः, तिर्यक्सज्ञिनः संख्यभागस्तु।
सूचेरंगुलस्य च, असंख्यभागं तु तेजस्त्रिकम् ॥५४०॥

टीका – तेजो लेश्यावाले जीव ज्योतिष्क राशि तैं किछू अधिक है। कैसै ? सो कहिए है – पैसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुल का भाग, जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने तौ ज्योतिषी देव। बहुरि घनांगुल का प्रथम वर्गमूल करि

जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने भवनवासी । बहुरि तीन सै योजन के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने व्यंतर । बहुरि घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने सौधर्म - ईशान स्वर्ग के वासी देव । बहुरि पांच बार संख्यात करि गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने तेजो लेश्यावाले तिर्यंच । बहुरि संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य, इनि सबनि का जोड़ दीए, जो प्रमाण होइ, तितने जीव तेजोलेश्यावाले जानने । बहुरि पद्मलेश्यावाले जीव, तेजोलेश्यावाले जीवनि तैं संख्यात गुणे घाटि हैं । तथापि तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचनि तैं भी संख्यात गुणे घाटि है; जातैं पद्मलेश्यावाले पंचेंद्री सैनी तिर्यंचनि का प्रमाण विषै पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव अर मनुष्य, तिनिका प्रमाण मिलाए, जो जगत्प्रतर का असंख्यातवे भागमात्र प्रमाण भया तितने पद्मलेश्यावाले जीव है । बहुरि शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं । असै क्षेत्र प्रमाण करि तीन शुभ लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या ।

बेसदछप्पण्णंगुल-कदि-हिद-पदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ॥५४१॥

द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानम् ।
तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ॥५४१॥

टीका – पूर्वे जो तेजोलेश्यावालों का प्रमाण ज्योतिषी देवराशि तैं साधिक कह्या, अर पद्मलेश्या का प्रमाण संज्ञी तिर्यंचनि के संख्यातवे भागमात्र कह्या, सो दोय से छप्पन्न का वर्ग पणट्ठी, तीहि प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने ज्योतिषी जानने । बहुरि इनिके संख्यातवे भाग प्रमाण सैनी तिर्यंचनि का प्रमाण जानना ।

तेउदु असंखकप्पा, पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।
ओहि असंखेज्जदिमा, तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः ।
अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवंति ॥५४२॥

टीका – तेजोलेश्या, पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्प प्रमाण है। तथापि तेजोलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। कल्पकाल का प्रमाण जितने बीस कोड़ाकोड़ि सागर के समय होंहि, तितना जानना। बहुरि शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। असैं काल प्रमाण करि तीन शुभलेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या। बहुरि अवधिज्ञान के जितने भेद है, तिनके असंख्यातवे भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं। तथापि तेजोलेश्यावालों के संख्यातवे भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भाग मात्र शुक्ललेश्यावाले है। अैसे भाव प्रमाण करि तेज, पद्म, शुक्ल लेश्यावालों का प्रमाण कह्या। इति संख्याधिकार: —

आगै क्षेत्राधिकार कहै हैं —

सट्ठाणसमुग्घादे,उववादे सव्वलोयमसुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थानसमुद्घाते, उपपादे सर्वलोकमशुभानाम्।
लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ॥५४३॥

टीका – विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान काल विषै विवक्षित स्वस्थानादि विशेष लीएं जितने आकाश विषै पाइए, ताका नाम क्षेत्र है। सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यानि का क्षेत्र स्वस्थान विषै वा समुद्घात विषै वा उपपाद विषै सर्वलोक है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यानि का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, अैसे सक्षेप करि क्षेत्र कह्या।

बहुरि विशेष करि दश स्थानकनि विषै कहिए है। तहां स्वस्थानकनि के तौ दोय भेद-एक स्वस्थानस्वस्थान, एक विहारवत् स्वस्थान। तहां विवक्षित लेश्यावाले जीव, जिस नरक, स्वर्ग, नगर, ग्रामादि क्षेत्र विषैं उपजे होंहि, सो तौ स्वस्थानस्वस्थान है। बहुरि विवक्षित लेश्यावाले जीवनि कौ विहार करने के योग्य जो क्षेत्र होइ, सो विहारवत्स्वस्थान है।

बहुरि अपने शरीर तें केते इक आत्मप्रदेशनि का बाह्य निकसि यथायोग्य फैलना, सो समुद्घात कहिए। ताके सात भेद – वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक, केवल।

तहां जो बहुत पीडा के निमित्त तैं प्रदेशनि का निकसना, सो वेदना समुद्घात है। बहुरि क्रोधादि कषाय के निमित्त तै प्रदेशनि का निकसना, सो कषायसमुद्घात है। विक्रिया के निमित्त तैं प्रदेशनि का निकसना; सो वैक्रियिक समुद्घात है। मरण होतैं पहिलैं जो नवीन पर्याय के धरने का क्षेत्र पर्यंत प्रदेशनि का निकसना; सो मारणांतिक समुद्घात है। अशुभरूप वा शुभरूप तैजस शरीरनि करि नगरादिक कौं जलावै वा भला करै, ताकी साथि जो प्रदेशनि का निकसना, सो तैजस समुद्घात है। प्रमत्त गुणस्थानवाले कैं आहारक शरीर की साथि प्रदेशनि का निकसना; सो आहारक समुद्घात है। केवलज्ञानी के दड कपाटादि क्रिया होतैं प्रदेशनि का निकसना; सो केवली समुद्घात है। असैं समुद्घात के सात भेद है।

बहुरि पहलै जो पर्याय धरता था, ताकौं छोडि, पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ, अंतराल विषैं जो प्रवर्तना; सो उपपाद कहिए। याका एक भेद हो है। असैं ए दश स्थान भए। तहां कृष्णलेश्यावाले जीवनि का स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि पंच पदनि विषै क्षेत्र सर्व लोक जानना। अब इनि जीवनि का प्रमाण कहिए है –

कृष्ण लेश्यावालों का जो पूर्वै परिमाण कह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण तौ स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव है। भाग देइकरि तहा एक भाग कौ तौ जुदा राखिए, अवशेष जो रहै, ताकौ बहुभाग कहिए, यहु सर्वत्र जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातवाले जीव है। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ सख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव है। बहुरि एक भाग रह्या, ताकौं फलराशि करिए, बहुरि एक निगोदिया का आयु सास के अठारह्वा भाग तिस प्रमाण अंतर्मुहूर्त के जेते समय होंइ, सो प्रमाण राशि करिए। बहुरि एक समय कौ इच्छाराशि करिए। तहां फल कौं इच्छाराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितना जीव उपपादवाले है। बहुरि इस उपपादवाले जीवनि के प्रमाण कौं मारणातिक समुद्घात काल अतर्मुहूर्त, ताके जेते समय होहि, तिनकरि गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने जीव मूलराशि के सख्यातवे भागमात्र मारणातिक समुद्घातवाले जानने, असै ए जीव सर्वलोक विषै पाइए। तातै इनिका क्षेत्र सर्वलोक है। बहुरि विहारवत्स्वस्थान विषै क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलनि करि जगत्प्रतर कौ गुणे, जो प्रमाण होइ, तितना जानना। कैसै ? सो कहिए है —

कृष्ण लेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवनि का जो प्रमाण, पर्याप्त त्रस राशि के किंचिदून त्रिभाग मात्र है। ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान विषै है। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषै जीव जातने। अवशेष एक भाग रह्या, सो अवशेष यथायोग्य स्थान विषै जानना। अब इहा त्रस पर्याप्त जीवनि की जघन्य, मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार है; सो हीनाधिक बरोबरि करि संख्यात घनांगुल प्रमाण मध्यम अवगाहना मात्र एक जीव की अवगाहना का ग्रहण कीया, सो इस अवगाहना का प्रमाण कौ फलराशि करिए, पूर्वे जो विहारवत्स्वस्थान जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौ इच्छाराशि करिए, एक जीव कौं प्रमाणराशि करिए। तहां फलकरि इच्छा कौ गुणि, प्रमाण का भाग दीए, जो संख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा, जगत्प्रतर प्रमाण भया, सो विहारवत् स्वस्थान विषै क्षेत्र जानना। बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषै क्षेत्र घनांगुल का वर्ग करि असंख्यात जगच्छ्रेणी कौ गुणे, जो प्रमाण होइ, तितना जानना। कैसे ? सो कहिए है –

कृष्ण लेश्यावाले वैक्रियिक शक्ति करि युक्त जीवनि का जो प्रमाण वैक्रियिक योगी जीवनि का किंचिदून त्रिभाग मात्र है। ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान विषै जीव है। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिये, तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थान विषै जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात विषै जीव है। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषै जीव है। अवशेष एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषै जीव प्रवर्तै है। असे जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौ हीनाधिक बरोबरि करि एक जीव सबंधी वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र संख्यात घनागुल प्रमाण है; तिसकरि गुणे, जो घनांगुल का वर्ग करि गुण्या हूवा असंख्यात श्रेणीमात्र प्रमाण भया, सो वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र जानना। बहुरि इन ही का सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक इनि पंच लोकनि की अपेक्षा व्याख्यान कीजिए है –

समस्त जो लोक, सो सामान्यलोक है। मध्यलोक तै नीचैं, सो अधोलोक है। मध्यलोक के ऊपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विषै एक राजू चौडा, लाख योजन ऊंचा तिर्यग्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौडा, लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है।

प्रश्न-तहां कृष्ण लेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि विषै प्रवर्तते जीव कितने क्षेत्रविषै तिष्ठै है ?

तहां उत्तर - जो सामान्यादिक पांच प्रकार सर्वलोक विषै तिष्ठै है । बहुरि विहारवत् स्वस्थान विषै प्रवर्तते जीव, सामान्यलोक - अधोलोक - ऊर्ध्वलोक का तौ असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र विषैं तिष्ठै हैं । अर तिर्यक्लोक ऊंचा लाख योजन प्रमाण है । अर एक जीव की उंचाई, वाके संख्यातवे भाग प्रमाण है । तातै तिर्यक् लोक के सख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र विषै तिष्ठै हैं । अर मानुषोत्तर पर्वत के मध्यवर्ती जो मनुष्य लोक तातै असंख्यात गुणा क्षेत्र विषै तिष्ठै हैं । बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषैं प्रवर्तते जीव, सामान्यादिक च्यारि लोक, तिनके असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र विषैं तिष्ठै है । अर मनुष्य लोक तै असंख्यात गुणा क्षेत्र विषै तिष्ठै है; जातै वैक्रियिक समुद्घातवालों का क्षेत्र असंख्यात गुणा घनांगुल का वर्ग करि गुणित जगच्छ्रेणीमात्र हैं । अैसै सात स्थाननि विषै व्याख्यान कीया ।

बहुरि तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात इन लेश्यावाले जीवनि कैं होता नाहीं, तातैं, इनिका कथन न कीया ।

इसप्रकार जैसैं कृष्णलेश्या का व्याख्यान कीया; तैसै ही नीललेश्या, कपोतलेश्या का व्याख्यान जानना । विशेष इतनां जहां कृष्णलेश्या का नाम कह्या है; तहां नीललेश्या वा कपोतलेश्या का नाम लेना । अब तेजो लेश्या का क्षेत्र कहिए है-

तहां प्रथम ही जीवनि का प्रमाण कहिए है - तेजोलेश्यावाले जीवनि का संख्या अधिकार विषैं जो प्रमाण कह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान विषै जानना । एक भाग रह्या, ताकौ सख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग विहारवत् स्वस्थान विषै जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग वेदना समुद्घात विषै जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग वेदना समुद्घात विषै जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग कषाय समुद्घात विषै जानना । बहुरि एक भाग वैक्रियिक समुद्घात विषै जानना । अैसै जीवनि का परिमाण कह्या । अब तेजो लेश्या मुख्यपनें भवनत्रिक आदि देवनि कै पाइए है; तिनिविषै एक देव का शरीर का अवगाहना का प्रमाण मुख्यता

करि सात धनुष ऊचा अर सात धनुष के दशवे भाग मुख की चौड़ाई है, प्रमाण जाका अैसा है, सो याका क्षेत्रफल कीजिए है ।

वासोत्ति गुणो परिही, वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं, खादफलं होदि सव्वत्थ ।।

इस करणसूत्र करि क्षेत्रफल करना । गोल क्षेत्र विषै चौडाई के प्रमाण तै तिगुणा तौ परिधि होइ । इस परिधि कौं चौडाई का चौथा भाग तै गुणै, क्षेत्रफल होइ । इस क्षेत्रफल कौ ऊँचाई रूप जो बेध, ताके प्रमाण करि गुणै, घनरूप क्षेत्रफल हो है । सो इहा सात धनुष का दशवा भागमात्र चौडाई, ताकौं तिगुणी कीए, परिधि होइ । याकौ चौडाई का चौथा भाग करि गुणै, क्षेत्रफल हो है । याकौ वेध सात धनुष करि गुणै, घनरूप क्षेत्रफल हो है । बहुरि जो घनराशि होइ, ताके गुणकार भागहार घनरूप ही होइ । तातै इहा अंगुल करने के निमित्त एक धनुप का छिनवै अगुल होइ, सो जो धनुषरूप क्षेत्रफल भया, ताकौ छिनवे का घन करि गुणिए । बहुरि इहां तो कथन प्रमाणांगुल तै है । अर देवनि के शरीर का प्रमाण उत्सेधागुल तै है । तातै पाच सै का घन का भाग दीजिए, अैसै करतै प्रमाणरूप घनागुल के संख्यातवे भाग प्रमाण एक देव का शरीर की अवगाहना भई । इसकरि पूर्वै जो स्वस्थानस्वस्थान विषै जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान विषै जानना ।

बहुरि वेदनासमुद्घात विषै वा कषायसमुद्घात विषै प्रदेश मूल शरीर तै बाह्य निकसै, सो एक प्रदेश क्षेत्रकौ रोकै वा दोय प्रदेश मात्र क्षेत्र कौ रोकै, अैसै एक-एक प्रदेश बधता जो उत्कृष्ट क्षेत्र रोकै, तो मूल शरीर ते चौडाई विषै तिगुणा क्षेत्र रोके अर उचाई मूल शरीर प्रमाण ही है । सो याका घनरूप क्षेत्रफल कीएं, मूल शरीर के क्षेत्रफल तै नव गुणा क्षेत्र भया, सो जघन्य एक प्रदेश अर उत्कृष्ट मूल शरीर तै नव गुणा क्षेत्र भया; सो हीनाधिक कौ बरोबरि कीए एक जीव कै मूल शरीर तै साढा च्यारि गुणा क्षेत्र भया; सो शरीर का प्रमाण पूर्वै घनागुल के सख्यातवे भाग प्रमाण कह्या था, ताकौ साढा चारि गुणा कीजिए, तब एक जीव संबंधी क्षेत्र भया । इसकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणिए, तब वेदना समुद्घात विषै क्षेत्र होइ । बहुरि कषायसमुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिए तब कषाय समुद्घात विषै क्षेत्र होइ । बहुरि विहार करते देवनि कै मूल शरीर तै

बाह्य आत्मा के प्रदेश फैलैं, ते प्रदेश एक जीव की अपेक्षा संख्यात योजन प्रमाण तौ लंबा, अर सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्र कौ रोकैं, सो इसका क्षेत्रफल सख्यात घनांगुल प्रमाण भया। इसकरि जो पूर्वं विहारवत्स्वस्थान विषै जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौं गुणिए, तब सर्व जीव सबंधी विहारवत् स्वस्थान विषैं क्षेत्र का परिमाण होइ। इहां असा अर्थ जानना-जो देवनि के मूल शरीर तौ अन्य क्षेत्र विषै तिष्ठै है अर विहार करि विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्र विषै तिष्ठै है। तहा दोऊनिके बीचि आत्मा के प्रदेश सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग मात्र प्रदेश ऊंचे, चौडे, फैले है। अर इहां मुख्यता की अपेक्षा संख्यात योजन लंबे कहे है। बहुरि देव अपनी - अपनी इच्छा तै हस्ती, घोटक इत्यादिक रूप विक्रिया करे, ताकी अवगाहना एक जीव की अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है। इसकरि पूर्वं जो वैक्रियिक समुद्घात विषै जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौं गुणिए, तब सर्व जीव संबंधी वैक्रियिक समुद्घात विषै क्षेत्र का परिमाण होइ।

बहुरि पीतलेश्यावालेनि विषै व्यंतरदेव घने मरैं है, तातै इहा व्यतरनि की मुख्यता करि मारणातिक समुद्घात कहिए है। जितना व्यंतर देवनि का प्रमाण है, ताकौ व्यतरनि की मुख्यपनै दश हजार वर्ष आदि संख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के जेते समय होंइ, तिनिका भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितना जीव एक समय विषै मरण कौ प्राप्त हो है। बहुरि इनि मरनेवाले जीवनि कै पल्य का असख्यातवां भाग का भाग दीजिये, तहा एक भाग प्रमाण जीवनि के ऋजु गति कहिये, समरूप सूधी गति हो है। बहुरि बहुभाग प्रमाण जीवनि के विग्रह गति कहिये, वक्रता लीए परलोक कौ गति हो है। बहुरि विग्रहगति जीवनि के प्रमाण कौ पल्य के असख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग प्रमाण जीवनि के मारणातिक समुद्घात न हो है।

बहुरि बहुभाग प्रमाण जीवनि कैं मारणांतिक समुद्घात हो है। बहुरि इस मारणातिक समुद्घातवाले जीवनि के प्रमाण कौं पल्य का असख्यातवा भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण समीप थोरेसे क्षेत्रवर्ती मारणातिक समुद्घातवाले जीव ह। एक भाग प्रमाण दूर बहुत क्षेत्रवर्ती मारणातिक समुद्घातवाले जीव ह। सो एक समय विषै दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवनि का यह प्रमाण कह्या, अर मारणातिक समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है। तातै अंतर्मुहूर्त के जेते समय होंहि, तिनकरि तिस प्रमाण कौ गुणे, जो प्रमाण होइ, तितने एकठे भए, दूर मारणातिक समुद्घातवाले जीव जानने। तहां एक जीव के दूरि मारणांतिक समुद्घात विषै

शरीर तैं बाह्य प्रदेश फैले ते मुख्यपनैं एक राजू के संख्यातवे भाग प्रमाण लंबे अर सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण चौडे वा ऊंचे क्षेत्र कौ रोकै । याका घनरूप क्षेत्रफल कीजिए, तब प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग करि जगच्छ्रेणी का संख्यातवा भाग कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना क्षेत्र भया । इसकरि दूरि मारणांतिक जीवनि का प्रमाण कौ गुणिये, तब सर्व जीव संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र हो है । अन्य मारणातिक समुद्घात का क्षेत्र स्तोक है, तातै मुख्य ग्रहण तिस ही का कीया । बहुरि तैजस समुद्घात विषै शरीर तैं बाह्यप्रदेश निकसै, ते बारा योजन लंबा, नव योजन चौडा, सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण ऊंचा क्षेत्र कौ रोकै, सो याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया । इसकरि तैजस समुद्घात करनेवालों का प्रमाण संख्यात है । तिसकौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना तैजस समुद्घात विषै क्षेत्र जानना । बहुरि आहारक समुद्घात विषै एक जाव कै शरीर तै बाह्य निकसे प्रदेश, ते संख्यात योजन प्रमाण लंबा, अर सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा ऊचा क्षेत्र कौ रोकै, याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया । इसकरि आहारक समुद्घातवाले जीवनि का संख्यात प्रमाण है; ताकौ गुणै जो प्रमाण होइ, तितना आहारक समुद्घात विषै क्षेत्र जानना । मूल शरीर तैं निकसि आहारक शरीर जहां जाइ, तहा पर्यंत लंबी आत्मा के प्रदेशनि की श्रेणी सूच्यगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडी अर ऊची आकाश विषै हो है; असा भावार्थ जानना । असे ही मारणांतिक समुद्घातादिक विषै भी भावार्थ जानि लेना ।

मरदि असंखेज्जदिमं, तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे, उववादे तस्स खु असंखं ।।५४४।।

म्रियते असंख्येयं, तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति ।
तस्यासंख्यं दूरे, उपपादे तस्य खलु असंख्यम् ।।५४४।।

टीका – इस सूत्र का अभिप्राय उपपाद क्षेत्र ल्यावने का है, सो पीत लेश्यावाले सौधर्म - ईशानवर्ती जीव मध्यलोक तैं दूर क्षेत्रवर्ती है; सो तिनके कथन में क्षेत्र का परिमाण बहुत आवै । बहुत प्रमाण में स्तोक प्रमाण गर्भित करिए है । तातै तिनकी मुख्यता करि उपपाद क्षेत्र का कथन कीजिए है ।

सौधर्म - ईशान स्वर्ग के वासी देव घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौ गुणिए, तितने प्रमाण है । इस प्रमाण कौ पल्य का असंख्यातवा भाग

का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण एक एक समय विषै मरणेवाले जीवनि का प्रमाण हो है । इस प्रमाण कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण विग्रहगति करनेवालों का प्रमाण हो है । याकौं पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण हो है । याकौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण हो है । याकौ द्वितीय दीर्घ दंड विषै स्थित मारणांतिक समुद्घात, ताके पूर्वे भया ऐसा उपपादता करि युक्त जीवनि के प्रमाण ल्यावने कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग प्रमाण उपपाद जीवनि का प्रमाण है । तहां तिर्यंच उपजने की मुख्यता करि एक जीव संबंधी प्रदेश फैलने की अपेक्षा डेढ राजू लंबा, संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्र है । याका घन क्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल करि डेढ राजू कौ गुणें, जो प्रमाण भया, तितना जानना । इसकरि उपपाद जीवनि के प्रमाण कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना उपपाद विषै क्षेत्र जानना । बहुरि केवलि समुद्घात इस लेश्या विषै है नाहीं; तातै कथन न कीया । ऐसे पीत लेश्या विषै क्षेत्र है । आगे पद्मलेश्या विषै क्षेत्र कहिए है –

संख्याधिकार विषै पद्मलेश्या वाले जीवनि का जो प्रमाण कह्या, ताकौ सख्यात का भाग दीजिये, तहा बहुभाग स्वस्थान स्वस्थाव विषै जानना । अवशेप एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग विहारवत् स्वस्थान विषै जानना । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं सख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग वेदना समुद्घात विषै जानना । अवशेष एक भाग रह्या, सो कषाय समुद्घात विषै जानना । ऐसे जीवनि का प्रमाण कह्या । अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यच जीवनि का अवगाहना प्रमाण बहुत है; तातै तिनकी मुख्यता करि कथन कीजिए है ।

तहा स्वस्थानस्वस्थान विषै अर विहारवत्स्वस्थान विषै एक तिर्यंच जीव की अवगाहना मुख्यपनै कोस लंबी अर ताके नव मे भाग मुख का विस्तार, सो याका क्षेत्रफल **वासो त्ति गुणो परिही'** इत्यादि सूत्र करि करिए, तब सख्यात घनांगुल प्रमाण होइ । इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, स्वस्थान स्वस्थान विषै क्षेत्र होइ । अर विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, विहारवत्स्वस्थान विषै क्षेत्र हो है । बहुरि पूर्वोक्त तिर्यंच शरीर की अवगाहना तै पूर्वोक्त प्रकार साढा त्यारि गुणा वेदना अर कषाय समुद्घात विषैं एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र है । इसकरि

पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणिए, तब वेदना समुद्घात विषैं क्षेत्र होइ, कषाय समुद्घातवाले जीवनि के प्रमाण कौ गुणैं, कषाय समुद्घात विषैं क्षेत्र का परिमाण होइ । बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषै पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार - माहेंद्र विषै बहुत हैं । तातै तिनकी अपेक्षा कथन करै है –

सनत्कुमार -माहेंद्रविषै देव जगच्छ्रेणी का ग्यारहवां वर्गमूल भाग जगच्छ्रेणी कौ दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने हैं । इस राशि कौं संख्यात का भाग दीजिए, तब बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान विषै जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थान विषैं जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात विषै जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषै जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या, तीहि प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषै जीव जानने । इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं एक जीव संबंधी विक्रियारूप हस्तिघोटकादिकनि की संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना, तिसकरि गुणै, जो प्रमाण होइ, सोई वैक्रियिक समुद्घात विषै क्षेत्र जानना । बहुरि मारणांतिक समुद्घात वा उपपाद विषै भी क्षेत्र सनत्कुमार - माहेद्र अपेक्षा बहुत है । तातै सनत्कुमार-माहेद्र की अपेक्षा कथन कीजिए है —

मरदि असंखेज्जदिमं, तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे, उववादे तस्स खु असंखं ।।

जो सनत्कुमार माहेद्रवासी जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौ असंख्य कहिए पल्य का असंख्यातवां भाग, ताका भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण समय समय जीव मरण कौ प्राप्त हो है । बहुरि इस राशि कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण विग्रह गतिवालो का प्रमाण है । बहुरि इस राशि कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव है । बहुरि इसकौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घात वाले जीव है । बहुरि इसकौ पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण उपपाद का दंड विषै स्थित जीव हैं । तहां एक जीव अपेक्षा मारणांतिक समुद्घात विषै क्षेत्र तीन राजू लंबा सूच्यंगुल का संख्यातवां भागमात्र चौडा वा ऊंचा क्षेत्र है । इन सनत्कुमार माहें

द्रवासी देवनि करि कीया मारणांतिक दंड का घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुल का सख्यातवां भाग करि तीन राजू कौ गुणे जो प्रमाण होइ, तितना है। इसकरि दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौ गुणिए, तब मारणातिक समुद्घात विषैं क्षत्र का प्रमाण होइ, बहुरि उपपाद विषैं तिर्यंच जीवनि करि कीया सनत्कुमार माहेंद्र प्रति उपपाद रूप दंड, सो तीन राजू लंबा, संख्यात सूच्यगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा है। ताका क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुल करि गुण्या हूवा तीन राजू प्रमाण एक जीव अपेक्षा क्षेत्र हो है। इसकरि उपपाद वालो के प्रमाण कौ गुणे, उपपाद विषैं क्षेत्र का प्रमाण हो है। बहुरि तैजस अरु आहारक समुद्घात विषै क्षेत्र जैसे तेजोलेश्या के कथन विषै कह्या है, तैसे इहां भी सख्यात घनागुल करि सख्यात जीवनि कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना जानना। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्या विषै होता ही नाहीं; असे पद्मलेश्या का क्षेत्र कह्या। आगे शुक्ललेश्या विषै क्षेत्र कहिए है।

संख्या अधिकार विषैं जो शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कह्या, ताकौ पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थान विषै जीव है। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषै जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ पल्य का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घात विषै जीव है। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहा बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषैं जीव है। अवशेष एक भाग रह्या, तिस प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषै जीव है। तहा शुक्ललेश्यावाले देवनि की मुख्यता करि एक जीव का शरीर की अवगाहना तीन हाथ ऊची इसके दशवे भाग मुख की चौडाई याका **वासो त्ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र करि क्षेत्रफल कीजिए, तब सख्यात घनागुल प्रमाण होइ, इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणिए, तब स्वस्थान स्वस्थान विषै क्षेत्र का परिमाण होइ। बहुरि मूल शरीर की अवगाहना ते साढा च्यारि गुणा एक जीव के वेदना अर कषाय समुद्घात विषै क्षेत्र है। इस साढा च्यारि गुणा घनागुल का सख्यातवा भाग करि वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणिये, तब वेदना समुद्घात विषै क्षेत्र हो है। अर कषाय समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणे कषायसमुद्घात विषै क्षेत्र हो है। बहुरि एक देव के विहार करतें अपने मूल शरीर तै बाह्य निकसि उत्तर विक्रिया करि

निपजाया शरीर पर्यंत आत्मा के प्रदेश संख्यात योजन लंबा अर सूच्यगुल के संख्यातवे भाग चौडा वा ऊंचा क्षेत्र कौ रोकैं, याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनागुल प्रमाण भया। इसकरि पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणैं, विहार-वत्स्वस्थान विषै क्षेत्र हो है। बहुरि अपने अपने योग्य विक्रियारूप बनाया गजादिक शरीरनि की अवगाहना संख्या घनांगुल प्रमाण, तिसकरि वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौ गुणै, वैक्रियिक समुद्घात विषैं क्षेत्र हो है। बहुरि शुक्ललेश्या आनतादिक देवलोकनि विषैं पाइए, सो तहां तैं मुख्यपनै आरण - अच्युत अपेक्षा मध्यलोक छह राजू है। तातै मारणांतिक समुद्घात विषै एक जीव के प्रदेश छह राजू लंबे अर सूच्यंगुल के संख्यातवे भाग चौडे, ऊंचे होंइ, सो याका जो क्षेत्रफल एक जीव संबंधी भया, ताकौ संख्यात करि गुणिए, जातैं आनतादिक तै मरिकरि मनुष्य ही होइ। तातै मारणातिक समुद्घातवाले संख्यातवें ही जीव हैं, तातैं संख्यात करि गुणिए, असैं गुणैं, जो होइ, सो मारणांतिक समुद्घात विषै क्षेत्र जानना।

बहुरि तैजस आहारक समुद्घात विषैं जैसे पद्मलेश्या विषै क्षेत्र कह्या था, तैसें इहां भी जानना। अब केवलसमुद्घात विषैं क्षेत्र कहिए है।

केवल समुद्घात च्यारि प्रकार दंड, कपाट, प्रतर, लोक पूरण। तहां दंड दोय प्रकार - एक स्थिति दंड, एक उपविष्ट दंड। बहुरि कपाट च्यारि प्रकार पूर्वा-भिमुख स्थित कपाट, उत्तराभिमुखस्थित कपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, उत्तरा-भिमुख उपविष्ट कपाट। बहुरि प्रतर अर लोक पूरण एक एक ही प्रकार है। तहां स्थिति - दंड समुद्घात विषै एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक की ऊंचाई, किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण है। सो इस प्रमाण तैं लबे, बहुरि बारह अगुल प्रमाण चौडे, गोल आकार प्रदेश हो है। सो – **'वासो त्ति गुणो परिही'** इत्यादि सूत्र करि याका क्षेत्रफल दोय सैं सोला प्रतरांगुलनि करि जगच्छ्रेणी कौ गुणे, जो प्रमाण होइ, तितना हो है; जातै बारह अंगुल गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल एक सौ आठ प्रत-रांगुल होइ, ताकौ उंचाई दोय श्रेणी करि गुणन करे इतना ही हो है। बहुरि एक समय विषै इस समुद्घातवाले जीव चालीस होइ, तातै तिसकौ चालीस करि गुणिए, तब आठ हजार छ सैं चालीस प्रतरांगुलनि करि जगच्छ्रेणी कौ गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना स्थिति दंड विषै क्षेत्र हो है। बहुरि इस स्थिति दंड के क्षेत्र कौ नव गुणा कीजिए, तब उपविष्ट दंड विषै क्षेत्र हो है, जातै स्थितिदंड विषै बारह अंगुल प्रमाण चौड़ाई कही, इहां तिसतै ति गुणी छत्तीस अंगुल चौडाई है; सो क्षेत्रफल विषै नव

गुणा क्षेत्र भया, तातै नव गुणा कीया। असैं करतैं सतहत्तर हजार सात सै साठि प्रतरागुलनि करि जगच्छ्रेणी कौं गुणैं, जो प्रमाण भया, तितना उपविष्ट दड विषैं क्षेत्र जानना।

वहुरि पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्‌घात विषै एक जीव के प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण तो लंबे हो है; सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तौ लबे हो है वहुरि उत्तर दक्षिण दिशा विषैं लोक की चौडाई प्रमाण चौडे हो है। सो उत्तर-दक्षिण दिशा विषै लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है। तातै सात राजू प्रमाण चौडे हो हैं। वहुरि वारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिम विषै ऊचे हो है; सो याका क्षेत्रफल भुज कोटि वेध का परस्पर गुणन करि चौईस अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण भया; ताकौं एक समय विषै इस समुद्‌घातवाले जीवनि का प्रमाण चालीस है। तातै चालीस करि गुणिए, तव नव सैं साठि सूच्यंगुलनि करि जगत्प्रतर कौ गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वाभिमुख स्थित कपाट विषैं क्षेत्र हो है। बहुरि स्थित कपाट विषै बारह अगुल की ऊंचाई कही, उपविष्ट कपाट विषैं ति गुणा छत्तीस अगुल की ऊंचाई हो है। तातैं पूर्वाभिमुख स्थित कपाट के क्षेत्र तैं ति गुणा अठाइस सै असी सूच्यगुलनि करि जगत्प्रतर कौ गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट विषैं क्षेत्र जानना।

बहुरि उत्तराभिमुख स्थित कपाट विषै एक जीव के प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण लंबे हो हैं; सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तो लंबे हो है। वहुरि पूर्व पश्चिम दिशा विषै लोक की चौडाई के प्रमाण चौडे हो है। सो लोक अधोलोक के तो नीचे सात राजू चौडा है। अर अनुक्रम तै घटता घटता मध्य लोक विषै एक राजू चौडा है। याका क्षेत्रफल निमित्त सूत्र कहिए है – **मुहभूमी जोग दले पद गुणिदे पदधणं होदि।** मुख कहिए अत, अर भूमि कहिए आदि, इनिका जोग कहिए जोड, तिसका दल कहिये आधा, तिसका पद कहिए गच्छ का प्रमाण तिसकौ गुणै पदधन कहिये, सर्व गच्छ का जोड्या हूआ प्रमाण; सो हो है। सो इहा मुख तौ एक राजू अर भूमि सात राजू जोडिए, तब आठ भये, इनिका आधा च्यारि भया, इसका अधो लोक की ऊंचाई सात राजू, सो गच्छ का प्रमाण सात राजूनि करि गुणै, जो अठाईस राजू प्रमाण भया, तितना अधो लोक संबधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना।

बहुरि मध्य विषै लोक एक राजू चौडा, सो बधता बधता ब्रह्मस्वर्ग के निकट पाच राजू भया। सो इहां मुख एक राजू, भूमि पांच राजू मिलाए छह हूवा, ताका आधा तीन, बहुरि ब्रह्मस्वर्ग साढा तीन राजू ऊंचा, सो गच्छ का प्रमाण साढा तीन करि गुणिये, तब आधा ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल साढा दश राजू हुआ। बहुरि ब्रह्म-स्वर्ग के निकट पांच राजू सो घटता घटता ऊपरि एक राजू का रह्या, सो इहां भी मुख एक राजू, भूमि पाच राजू, मिलाए छह हुआ, आधा तीन, सो ब्रह्मस्वर्ग के ऊपरि लोक साढा तीन राजू है, सो गच्छ भया, ताकरि गुणै, आधा उर्ध्व लोक का क्षेत्रफल साढा दश राजू हो है। अैसै उर्ध्वलोक अर अधोलोक का सर्व क्षेत्रफल जोडै, जगत्प्रतर भया, सो अैसें लंबाई चौडाई करि तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश हो है। बहुरि बारह अंगुल प्रमाण उत्तर - दक्षिण दिशा विषैं ऊंचे हो है, सो जगत्प्रतर कौ बारह सूच्यंगुलनि करि गुणै, एक जीव संबंधी क्षेत्र बारह अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण हो हैं। बहुरि इस समुद्घातवाले जीव चालीस हो है। तातै चालीस करि तिस क्षेत्र कौ गुणैं, च्यारि सै अस्सी सूच्यंगुलनि करि गुण्या हूआ जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख स्थित कपाट विषैं क्षेत्र हो है। बहुरि स्थिति विषैं बारह अंगुल की ऊंचाई कही। उपविष्ट विषै तातैं तिगुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई है। तातैं पूर्वोक्त प्रमाण तैं तिगुणा चौदा सै चालीस सूच्यंगुलनि करि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट विषै क्षेत्र जानना। बहुरि प्रतर समुद्घातविषैं तीन वातवलय बिना सर्व लोक विषै प्रदेश व्याप्त हो है। तातैं तीन वातवलय का क्षेत्र-फल लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सो यह प्रमाण लोक का प्रमाण विषैं घटाए, अवशेष रहे, तितना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घात विषै क्षेत्र जानना।

बहुरि लोक पूरण विषै सर्व लोकाकाश विषै प्रदेश व्याप्त हो है। तातै लोक प्रमाण एक जीव सबंधी लोक पूरण विषै क्षेत्र जानना। सो प्रतर अर लोक पूरण के वीस जीव तौ करनेवाले अर बोस जीव समेटनेवाले अैसै एक समय विषै चालीस पाइए। परन्तु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए; तातै क्षेत्र तितना ही जानना। बहुरि दंड अर कपाट विषै भी बीस जीव करनेवाले बीस समेटनेवालेनि की अपेक्षा चालीस जीव है; सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्र कौं भी रोकै; तातै दण्ड अर कपाट विषै चालीस का गुणकार कह्या। यह जीवनि का प्रमाण उत्कृष्टता की अपेक्षा है।

सुक्कस्स समुग्घादे, असंखभागा य सव्वलोगो य ।

शुक्लायाः समुद्घाते, असंख्यभागाश्च सर्वलोकश्च ।

टीका — इस आधा सूत्र करि शुक्ल लेश्या का क्षेत्र लोक के असंख्यात भागनि विषै एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण वा सर्वलोक प्रमाण कह्या है, सो केवल समुद्घात अपेक्षा जानना । बहुरि उपपाद विषै मुख्यपनै अच्युत स्वर्ग अपेक्षा एक जीव के प्रदेश छह राजू लंबे अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडे वा ऊंचे प्रदेश हो हैं । सो इस क्षेत्रफल कौ अच्युत स्वर्ग विषै एक समय विषै संख्यात ही मरै, तातै तहां संख्यात ही उपजै, तातै संख्यात करि गुणै, जो प्रमाण भया, तितना उपपाद विषै क्षेत्र जानना । इहां भी पूर्वोक्त प्रकार पांच प्रकार लोक की अपेक्षा जैसा भागहार गुणकार संभवै तैसै जानि लेना; ऐसै शुक्ललेश्या विषै क्षेत्र कह्या । इहा छह लेश्यानि का क्षेत्र का वर्णन दश स्थान विषै कीया; तहा ऐसा जानना । जो जिस अपेक्षा क्षेत्र का प्रमाण बहुत आवै, तिस अपेक्षा मुख्यपनै क्षेत्र वर्णन कीया है । तहा संभवता अन्य स्तोक क्षेत्र अधिक जानि लेना, ऐसै ही आगै स्पर्शन विषै भी अर्थ समझना । इति क्षेत्राधिकार ।

आगै स्पर्शनाधिकार साढा छह गाथानि करि कहै है—

फासं सव्वं लोयं, तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥५४५॥

स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानाम् ॥५४५॥

टीका — क्षेत्र विषै तौ वर्तमानकाल विषै जेता क्षेत्र रोकै, तिस ही का ग्रहण कीया । बहुरि इहा वर्तमान काल विषै जेता क्षेत्र रोकै, तीहि सहित जो अतीत काल विषै स्वस्थानादिक विशेषण कौ धरे जीव जेता क्षेत्र रोकि आया होइ, तिस क्षेत्र ही का नाम स्पर्श जानना । सो कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या का स्पर्श स्वस्थान विषै वा समुद्घात विषै वा उपपाद विषै सामान्यपनै सर्व लोक जानना । विशेष करि दश स्थानकनि विषै कहिए है । तहा कृष्णलेश्या वाले जीवनि के स्वस्थान स्वस्थान विषै वा वेदना अर कषाय अर मरणांतिक समुद्घात विषै वा उपपाद विषै सर्व लोक प्रमाण स्पर्श जानना । बहुरि विहारवत्स्वस्थान विषै एक राजू लंबा वा चौडा अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण ऊंचा तिर्यग् लोक क्षेत्र है । याका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलनि करि

गुण्या हुवा जगत्प्रतर प्रमाण भया, सोई विहारवत्स्वस्थान विषैं स्पर्श जानना। जातैं कृष्णलेश्यावाले गमन क्रिया युक्त त्रस जीव तिर्यग् लोक ही विषै पाइए है।

बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषै मेरुगिरि के मूल तैं लगाइ, सहस्रार नामा स्वर्ग पर्यंत ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लंबा, चौडा क्षेत्र विषैं पवन कायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादित रूप भरि रहे हैं। बहुरि पवन कायिक जीवनि कै विक्रिया पाइए है, सो अतीत काल अपेक्षा तहां सर्वत्र विक्रिया का सद्भाव है। अैसा कोऊ क्षेत्र तिस विषैं रह्या नाहीं, जहां विक्रिया रूप न प्रवर्तैं; तातैं एक राजू लंबा वा चौडा अर पाच राजू ऊंचा क्षेत्र भया ताका क्षेत्रफल लोक के संख्यातवे भाग प्रमाण भया, सोई वैक्रियक समुद्घात विषै स्पर्श जानना।

बहुरि तैजस अर आहारक अर केवल समुद्घात इस लेश्या विषैं होता ही नाही। इहां भी पच प्रकार लोक का स्थापन करि, यथासंभव गुणकार भागहार जानना। बहुरि जैसे कृष्णलेश्यानि विषै कथन कीया, तैसैं ही नीललेश्या कपोतलेश्या विषै भी कथन जानना।

आगैं तेजोलेश्या विषैं कहै हैं—

तेउस्स य सट्ठाणे, लोगस्स असंखभागमेत्तं तु।
अडचोद्दसभागा वा, देसूणा होंति णियमेण ॥५४६॥

तैजसश्च स्वस्थाने, लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु।
अष्ट चतुर्दशभागा वा, देशोना भवंति नियमेन ॥५४६॥

टीका – तेजोलेश्या का स्वस्थान विषै स्पर्श स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षा तौ लोक का असंख्यातवां भागमात्र जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागनि विषै आठ भाग किछू घाटि प्रमाण स्पर्श जानना।

एवं तु समुग्घादे, णव चोद्दसभागयं च किंचूण।
उववादे पढमपदं, दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥५४७॥

एवं तु समुद्घाते, नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः।
उपपादे प्रथमपदं, द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनम् ॥५४७॥

टीका — बहुरि समुद्घात विषै असै स्वस्थानवत् किछू घाटि त्रसनाली के चौदह भागनि विषै आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना वा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा किछू घाटि त्रसनाली के चौदह भागनि विषै नव भाग प्रमाण स्पर्श जानना। बहुरि उपपाद विषै त्रसनाली के चौदह भागनि विषै किछू घाटि ड्योढ भाग प्रमाण स्पर्श जानना। असै सामान्यपनै तेजोलेश्या का तीनों स्थानकनि विषै स्पर्श कह्या।

बहुरि विशेष करि दश स्थानकनि विषै स्पर्श कहिए है। तिर्यग्लोक एक राजू का लम्बा, चौडा है; तिसविषै लवणोद, कालोदक, स्वयंभूरमण इनि तीनि समुद्रनि विषैं जलचर जीव पाइए है। अन्य समुद्रनि विषैं जलचर जीव नाही, सो जिनि विषै जलचर जीव नाहीं, तिनि सर्व समुद्रनि का जेता क्षेत्रफल होइ, सो तिस तिर्यग्लोक-रूप क्षेत्र विषै घटाए, अवशेष जेता क्षेत्र रहे, तितना पीत, पद्म, शुक्ललेश्यानि का स्वस्थान स्वस्थान विषै स्पर्श जानना। जातै एकेंद्रियादिक कै शुभलेश्यानि का अभाव है। सो कहिए हैं–

जंबूद्वीप तै लगाइ स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत सर्व द्वीप - समुद्र दूणा दूणा विस्तार कौ धरैं है। तहां जंबूद्वीप लाख योजन विस्तार कौ धरैं है; याका सूक्ष्म तारतम्य रूप क्षेत्रफल कहिए है–

सत्त णव सुण्ण पंच य, छण्णव चउरेक पंच सुण्णं च।

याका अर्थ — सात, नव, बिदी, पंच, छह, नव, च्यारि, एक, पाच, बिदी इतने अकनि करि जो प्रमाण भया, तितना जंबूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल है (७६०५६९४१५०) सो एतावन्मात्र एक खण्ड कल्पना कीया। बहुरि असे असे लवण समुद्र विषै खण्ड कल्पिए, तब चौईस (२४) होंइ। धातकीखड विषै एक सौ चवालीस (१४४) होइ। कालोद समुद्र विषै छ सै बहत्तरि (६७२) होंइ। पुष्कर द्वीप विषै अठाइस सै असी (२८८०) होइ। पुष्कर समुद्र विषै ग्यारह हजार नव सै च्यारि (११९०४) होइ। वारुणी द्वीप विषै अड़तालीस हजार तीन सै चौरासी (४८३८४) होइ। वारुणी समुद्र विषै एक लाख पिचाणवे हजार बहत्तरि (१९५०७२) होइ। क्षीरवर द्वीप विषै सात लाख तियासी हजार तीन सै साठि (७८३३६०) होइ। क्षीरवर समुद्र विषै इकतीस लाख गुणतालीस हजार पाच सै चउरासी (३१३९५८४) होंइ। असै स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत विषै जड साधन करना इनि खंडनि के प्रमाण का ज्ञान होने के निमित्त सूत्र कहिए हैं–

बाहिर सूईवग्गं, अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।
जंबूवासविहत्ते, तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ।।

बाह्य सूची का वर्ग विषै अभ्यंतर सूची का प्रमाण घटाए, जो प्रमाण रहै, ताकौ जंबूद्वीप का व्यास के वर्ग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जंबूद्वीप समान खड जानने । अंत तें लगाइ, वाके सन्मुख अंत पर्यंत जेता सूवा क्षेत्र होइ, ताकौ बाह्य सूची कहिए । बहुरि आदि तें लगाइ, वाके सन्मुख आदि पर्यंत जेता सूवा क्षेत्र होंइ, ताकौं अभ्यंतर सूची कहिये । सो यहां लवण समुद्र विषै उदाहरण करि कहिये है—

लवण समुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, ताका वर्ग कीजिये तब लाख गुणा पचीस लाख भया । बहुरि तिस ही की अभ्यंतर सूची एक लाख योजन, ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, सो घटाये अवशेष लाख गुणा चौईस लाख, ताका जबूद्वीप का व्यास लाख योजन, ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, ताका भाग दीजिए तब चौईस रहे, सो जंबूद्वीप समान चौबीस खंड लवण समुद्र विषै जानने । ऐसें ही सर्व द्वीप समुद्रनि विषै साधने । इस साधन के अर्थि और भी प्रकार कहै है—

रूऊण सला बारस, सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि ।
बाहिरसूइ सलागा, कदी तदंताखिला खंडा ।।

इहां व्यास विषैं जितना लाख कह्या होइ, तितने प्रमाण शलाका जानना । सो एक घाटि शलाका कौ बारह शलाका करि गुणै, जबूद्वीप प्रमाण वलयखंड हो हैं। जैसे लवण समुद्रनि विषै व्यास दोय लाख योजन है, तातै शलाका का प्रमाण दोय, तामें एक घटाए एक, ताका बारह शलाका का प्रमाण चौईस करि गुणै, चौईस खंड हो है । बहुरि बाह्य सूची संबंधी शलाका का वर्ग प्रमाण तीहि पर्यंत खंड हो है । जैसे लवण समुद्र विषै बाह्य सूची पांच लाख योजन है । तातै शलाका का प्रमाण पांच ताका वर्ग पचीस, सोई लवण समुद्र पर्यंत सर्व खंडनि का प्रमाण हो है । जबूद्वीप विषै एक खंड अर लवण समुद्र विषै चौवीस खंड, मिलि करि पचीस खड हो है । बहुरि और भी विधान कहै है—

बाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिट्ठावासहदा ।
इकलक्खवग्गभजिदा, जंबूसमवलयखंडाणि ।।१।।

बाह्य सूची विषै वलय का व्यास घटाएं, जो रहै, ताका चौगुणा व्यास तैं गुणिये, एक लाख के वर्ग का भाग दीजिए, तब जबूद्वीप के समान गोलाकार खडनि का प्रमाण हो है ।

उदाहरण – जैसे लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, तिसमे व्यास दोय लाख योजन घटाइए, तब तीन लाख योजन भये, याकौं चौगुणा व्यास आठ लाख योजन करि गुरिगये, तब लाख गुरगा चौईस लाख भये । याकौ एक लाख का वर्गका भाग दीजिए, तब चौईस पाये, तितने ही जंबूद्वीप समान लवरग समुद्र विषै खड हैं, असैं सूत्रनि तैं साधन करि खंड ज्ञान करना । बहुरि इहा द्वीप सबधी खंडनि कौ छोडि, सर्व समुद्र सबंधी खडनि का ही ग्रहरग कीजिये, तब जंबूद्वीप समान चौईस खंडनि का भाग समुद्रखंडनि कौ दीए, जो प्रमाण आवै; तितना सर्व समुद्रनि विषै लवरग समुद्र समान खड जानने । सो लवरग समुद्र के खडनि कौ चौईस भाग दीए, एक पाया, सो लवरग समुद्र समान एक खड भया । कालोद समुद्र के छ सै वहत्तरि खडनि कौ चौवीस का भाग दीये, अट्ठाईस पाये, सो कालोद समुद्र विषै लवरगसमुद्र समान अठाईस खड हो है । असैं ही पुष्कर समुद्र के खडनि कौ भाग दीये च्यारि सैं छिनवै खड हो है । वारुणी समुद्र के खडनि कौ भाग दीये, आठ हजार एक सै अठाइस खड हो है । क्षीरसमुद्र के खडनि कौ भाग दीये, एक लाख तीस हजार आठ सैं सोलह खड हो है । असैं ही स्वयंभूरमरग समुद्र पर्यंत जानना । सो जानने का उपाय कहै है–

यहु लवरगसमुद्रसमान खडनि का प्रमाण ल्यावने की रचना है ।

धनराशि					ऋणराशि					समुद्र
२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षीरवर
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वारुणीवर
२	१६	१६			१	४	४			पुष्कर
२	१६				१	४				कालोद
२					१					लवणोद

दोय आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना । अर एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना । सो धन विषै ऋण घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितने लवणसमुद्र समान खंड जानने ।

उदाहरण कहिये है – प्रथमस्थान विषै धन दोय, अर ऋण एक, सो दोय में एक घटाए एक रह्या, सो लवण समुद्र विषै एक खंड भया । बहुरि दूसरे स्थान के दोय कौ सोलह गुणा कीजिए, तब बत्तीस तो धन होइ, अर एक कौ च्यारि गुणा कीजिए, तब च्यारि ऋण भया, सो बत्तीस में च्यारि घटाएं, अठाइस रह्या, सो दूसरा कालोदक समुद्र विषै लवण समुद्र समान अठाईस खंड है । बहुरि तीसरे स्थानक बत्तीस कौ सोला गुणा कीएं, पाच सै बारा तो धन होइ, अर च्यारि कौ चौगुणा कीएं सोला ऋण होइ, सो पाच सै बारा मै स्यों सोला घटाए, च्यारि सै छिनवै रह्या; सो इतना ही तीसरा पुष्कर समुद्र विषै लवण समुद्र समान खंड जानने । असें स्वयभू-रमण समुद्र पर्यंत जानना । सो अब इहां जलचर रहित समुद्रनि का क्षेत्रफल कहिए है–

तहा जो द्वीप समुद्रनि का प्रमाण है, ताकौ इहा समुद्रनि ही का ग्रहण है, तातैं आधा कीजिये, तामै जलचर सहित तीन समुद्र घटाए, जलचर रहित समुद्रनि का प्रमाण हो है, सो इहां गच्छ जानना । सो दोय आदि सोला - सोला गुणा धन कह्या था, सो धन का जलचर रहित समुद्रनि का धन विषै कितना क्षेत्रफल भया ? सो कहिये है —

पदमेत्ते गुणयारे, अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे ।
रूऊणगुणेणहिये, मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं ।।

इस सूत्र करि गुणकार रूपराशि का जोड हो है । **याका अर्थ** - गच्छप्रमाण जो गुणकार, ताकौ परस्पर गुणि करि एक घटाइये, बहुरि एक घाटि गुणकार के प्रमाण का भाग दीजिए, बहुरि मुख जो आदिस्थान, ताकरि गुणिये, तब गुणकाररूप राशि विषै सर्व जोड होइ ।

सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाइए है - जैसे आदिस्थान विषै दश अर पीछैं चौगुणा – चोगुणा बधता असै पंच स्थानकनि विषै जो जो प्रमाण भया, तिस सर्व का जोड दीए कितना भया ?

सो कहिये है – इहा गच्छ का प्रमाण पांच, अर गुणकार का प्रमाण च्यारि सो पांच जायगा च्यारि च्यारि माडि, परस्पर गुणिए, तब एक हजार चौईस हूवा, यामै एक घटाए, एक हजार तेईस हूवा। बहुरि याकौ एक घाटि गुणकार का प्रमाण तीन का भाग दीजिये, तब तीन सै इकतालीस हूवा। बहुरि आदिस्थान का प्रमाण दश, तिसकरि याकौ गुणै, चौतीस सै दश (३४१०) भया, सोई सर्व का जोड जानना कैसै ? पंचस्थानकनि विषै असा प्रमाण है-१०।४०।१६०।६४०।२५६०। सो इनिका जोड चौतीस सै दश ही हो है। असै अन्यत्र भी जानना। सो इस ही सूत्र करि इहा गच्छ का प्रमाण तीन घाटि द्वीपसागर के प्रमाण तै आधा प्रमाण लीये है। सो सर्व द्वीप - समुद्रनि का प्रमाण कितना है ? सो कहिए है - एक राजू के जेते अर्धच्छेद है, तिनि में लाख योजन के अर्धच्छेद अर एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अगुल तिनिके अर्धच्छेद अर सूच्यंगुल के अर्धच्छेद अर मेरु के मस्तक प्राप्त भया एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटाएं, जेता अवशेष प्रमाण रह्या, तितने सर्व द्वीप - समुद्र है। अब इहां गुणोत्तर का प्रमाण सोलह सो गच्छप्रमाण गुणोत्तरनि कौ परस्पर गुणना। तहां प्रथम एक राजू का अर्धच्छेद राशि तै आधा प्रमाण मात्र जायगा सोलह -सोलह मांडि, परस्पर गुणन कीए, राजू का वर्ग हो है। सो कैसै ? सो कहिये है–

विवक्षित गच्छ का आधा प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार(का वर्गमूल)[१] माडि परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण होइ, सोई सपूर्ण विवक्षित गच्छ प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार का वर्गमूल मांडि, परस्पर गुणन कीए, प्रमाण हो है। जैसै विवक्षित गच्छ आठ, ताका आधा प्रमाण च्यारि, सो च्यारि जायगा विवक्षित गुणकार नव, नव मांडि परस्पर गुणै, पैसठि सै इकसठि होइ, सोई विवक्षित गच्छ मात्र आठ जायगा विवक्षित गुणकार नव का वर्गमूल तीन - तीन मांडि परस्पर गुणन कीएं, पैसठि सै इकसठि हो है। असै ही इहा विवक्षित गच्छ एक राजू के अर्धच्छेद, ताका अर्धच्छेद प्रमाण मात्र जायगा सोलह - सोलह माडि परस्पर गुणै, जो प्रमाण होइ, सोई राजू के अर्धच्छेद मात्र सोलह का वर्गमूल च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणै, प्रमाण होइ, सो राजू के अर्धच्छेद मात्र जायगा दूवा मांडि, गुणै, तौ राजू होइ। अर तितनी ही जायगा दोय - दोय वार दूवा मांडि, परस्पर गुणै, राजू का वर्ग हो है। सो जगत्प्रतर कौ दोय वार सात का भाग दीजिए इतना हो है। बहुरि यामै एक

---

१. 'का वर्गमूल' यह छपी प्रति मे मिलता है। छहो हस्तलिखित प्रतियो मे नही मिलता।

घटाइये, जो प्रमाण होइ, ताकौ एक घाटि गुणकार कौ प्रमाण पंद्रह, ताका भाग दीजिए। बहुरि इहां आदि विषैं पुष्कर समुद्र है। तिस विषै लवण समुद्र समान खंडनि का प्रमाण दोय कौ दोय बार सोलह करि गुणिए, इतना प्रमाण है, सोई मुख भया, ताकरि गुणिए, अैसें करतें एक घाटि जगत्प्रतर कौं दोय सोलह सोलह का गुणकार अर सात - सात पंद्रह का भागहार भया। बहुरि इस राशि का एक लवण समुद्र विषै जंबूद्वीप समान चौईस खंड हो है। तातें चौईसका गुणकार करना। बहुरि जम्बूद्वीप विषैं सूक्ष्म क्षेत्रफल सात नव आदि अंकमात्र है। तातैं ताका गुणकार करना बहुरि एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल हो है। सो इहां वर्गराशि का ग्रहण है, अर वर्गराशि का गुणकार भागहार वर्गरूप ही हो है। तातें दोय बार सात लाख अडसठि हजार का गुणकार जानना। बहुरि एक सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरागुल हो है। तातैं इतने प्रतरांगुलनि का गुणकार जानना। बहुरि—

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि।
तेंसि अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इस करणसूत्र के अभिप्राय करि द्वीप समुद्रनि के प्रमाण विषै राजू के अर्धच्छेदनि तैं जेते अर्धच्छेद घटाए है, तिनिका आधा प्रमाण मात्र गुणकार सोलह कौ परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने का पूर्वोक्त राशि विषैं भागहार जानना। सो इहा जाका आधा ग्रहण कीया, तिस सपूर्ण राशि मात्र सोलह का वर्गमूल च्यारि, तिनिकौ परस्पर गुणे, सोई राशि हो है। सो अपने अर्धच्छेद मात्र दूवानि कौ परस्पर गुणें तौ विवक्षित राशि होइ, अर इहा च्यारि कहे है, तातें तितने ही मात्र दोय बार, दूवानि कौ परस्पर गुणें, विवक्षित राशि का वर्ग हो है। तातैं इहा लाख योजन का अर्धच्छेद प्रमाण दोय दूवानि का परस्पर गुणैं, तौ लाख का वर्ग भया। एक योजन का अगुलनि के प्रमाण का अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौ परस्पर गुणें, एक योजन के अगुल सात लाख अडसठि हजार (तीन का) वर्ग भया। बहुरि मेरुमध्य सबंधी एक अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौ परस्पर गुणे, च्यारि भया, बहुरि सूच्यंगुल का अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौ परस्पर गुणैं, च्यारि भया। बहुरि सूच्यगुल का अर्धच्छेद मात्र दोय दुवानि कौ परस्पर गुणें प्रतरागुल भया। अैसें ए भागहार जानने। वहुरि जलचर सहित तीन समुद्र गच्छ विषैं घटाए है। तातै तीन बार गुणोत्तर जो सोलह, ताका भी भागहार जानना। अैसें जगत्प्रतर कौ प्रतरागुल अर दोय अर सोलह अर सोलह अर चौवीस अर सात सै निवे कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार

एक सौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार, अर सात लाख अडसठि हजार का तौ गुणकार भया। बहुरि प्रतरांगुल अर सात अर सात अर पद्रह अर एक लाख अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार अर च्यारि अर सोलह अर सोलह अर सोलह का भागहार भया। इहा प्रतरांगुल अर दोय बार सोलह अर दोय बार सात लाख अडसठि हजार गुणकार भागहार विषै समान देखि अपवर्तन कीएं अर गुणकार विषै दोय चौईस कौ परस्पर गुणें, अडतालीस अर भागहार विषै पंद्रह सोलह, इनिकौं परस्पर गुणें, दोय सै चालीस, तहा अडतालीस करि अपवर्तन कीएं, भागहार विषैं पाच रहे, असैं अपवर्तन कीए, जो अवशेष प्रमाण रह्या ७९०५६९४१५० तहा सर्व भागहारनि कौ परस्पर गुणि, ताकौ गुणकारनि के

७ । ७ । १ ल । १ ल । ४ । ५ ।

अंकनि का भाग दीएं किछू अधिक बारह सै गुणतालीस भए। असें धनराशि विषै सर्व क्षेत्रफल साधिक 'धगरय' जो बारह सै गुणतालीस, ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल भया। इहां **कटपयपुरस्थवर्णैः** इत्यादि सूत्र के अनुसारि अक्षर संज्ञा करि **धगरय** शब्द तें नव तीन, दोय, एक जनित प्रमाण ग्रहण करना। अब इहा एक आदि चौगुणा - चौगुणा ऋण कह्या था, सो जलचर रहित समुद्रनि विषै ऋणरूप क्षेत्रफल ल्याइए है। **'पदमेत्ते गुणयारे'** इत्यादि करणसूत्र करि प्रथम गच्छमात्र गुणकार च्यारि का परस्पर गुणन करना। तहा राजू के अर्धच्छेद प्रमाण का अर्धप्रमाण मात्र च्यारि कौ परस्पर गुणें, एक राजू हो है। कैसे ? सो कहिये है—

सर्व द्वीप समुद्र का प्रमाण मात्र गच्छ कल्पे, इहा आधा प्रमाण है, तातें गुन-कार च्यारि का वर्गमूल दोय ग्रहण करना। सो संपूर्ण गच्छ विषै एक राजू के अर्ध-च्छेद कहै है, तातै एक राजू के अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौं परस्पर गुणें, एक राजू प्रमाण भया, सो जगच्छ्रेणी का सातवां भाग प्रमाण है। यामें एक घटाइए, सो प्रमाण होइ, ताकौ एक घाटि गुणकार तीन का भाग दीजिए। बहुरि पुष्कर समुद्र पर्यंत आदि स्थान विषै प्रमाण सोलह, ताकरि गुणिये, असें एक घाटि [illegible] सोलह का गुणकार बहुरि सात अर तीन का भागहार भया। [illegible] चौवीस खंड अर जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल रूप योजननि का प्रमाण [illegible] अंगुलनि का वर्गमात्र बहुरि सूच्यंगुल का इहां वर्ग है; तातें [illegible] गुणन करना। बहुरि—

> विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
> तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ॥१॥

इस सूत्र अनुसारि जितने गच्छ विषैं राजू का अर्धच्छेद प्रमाण घटाइए है, ताका जो आधा प्रमाण है, तितने च्यारि के अकनि कौ परस्पर गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने का भागहार जानना। सो जिस राशि का आधा प्रमाण लिया, तिस राशि-मात्र च्यारि का वर्गमूल दोय कौ परस्पर गुणिये, तहा लक्ष योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौ परस्पर गुणै, एक लाख भए। एक योजन के अगुलनि का अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौ परस्पर गुणै, सात लाख अडसठि हजार अंगुल भये। बहुरि मेरुमध्य के अर्धच्छेद मात्र दूवा का दोय भए। बहुरि सूच्यंगुल का अर्धच्छेदमात्र दूवानि कौं पर-स्पर गुणे, सूच्यगुल भया, अैसै भागहार भए। बहुरि तीन समुद्र घटाएं, तातैं तीन वार गुणोत्तर जो च्यारि, ताका भी भागहार जानना। अैसै एक घाटि जगच्छे्णी कौं सोलह अर च्यारि अर चौईस अर सात सै निवै कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एक सै पचास अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार का तौ गुणकार भया। बहुरि सात अर तीन अर सूच्यंगुल अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर दोय अर च्यारि अर च्यारि अर च्यारि का भागहार भया। तहां यथायोग्य अपवर्तन कीएं, सख्यात सूच्यंगुल करि गुण्या हूवा जगच्छे्णी मात्र क्षेत्रफल भया। सो इतने पूर्वोक्त धन राशिरूप क्षेत्रफल विषै घटावना, सो तिस महत् राशि-विषै किंचित् मात्र घटचा सो घटाएं, किंचित् ऊन साधिक बारह सै गुणतालीस करि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्व जलचर रहित समुद्रनि का क्षेत्रफल ऋणरूप सिद्ध भया। याकौ एक राजू लंबा, चौडा अैसा जो जगत्प्रतर का गुणचासवां भाग मात्र रज्जू प्रतर क्षेत्र, तामे समच्छेद करि घटाइए, तब जगत्प्रतर कौ ग्यारह सै निवे का गुणकार अर गुणचास गुणा बारह से गुणतालीस का भागहार भया। तहा अपवर्तन करने के अर्थि भाज्य के गुणकार का भागहार कौ भाग दीए किछू अधिक इक्यावन पाए। अैसें साधिक काम जो अक्षर सज्ञा करि इक्यावन, ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्र का प्रतररूप तन का स्पर्श भया। याकौ ऊचाई का स्पर्श ग्रहण के अर्थि जीवनि की ऊचाई का प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल, तिन करि गुणै, साधिक इक्यावन करि भाजित सख्यात सूच्यगुल गुणा जगत्प्रतर मात्र शुभलेश्यानि का स्व-स्थान स्वस्थान विषै स्पर्श हो हैं। याकौ देखि तेजो लेश्या का स्वस्थान स्वस्थान की अपेक्षा स्पर्श लोक का असख्यातवा भाग मात्र कह्या, जातै यहु क्षेत्र लोक के असं-ख्यातवे भाग मात्र है। वहुरि तेजोलेश्या का विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कपाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषै स्पर्श किछू घाटि चौदह भाग में आठ भाग प्रमाण है। काहे तैं ? सो कहिये है--

लोक चौदह राजू ऊचा है। त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लवा - चौडा है। सो तहा चौदह राजू विषै सनत्कुमार–माहेद्र के वासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव, ऊपरि अच्युत सोलहवा स्वर्ग पर्यंत गमन करै है। अर नीचै तीसरी नरक पृथ्वी पर्यंत गमन करै है। सो अच्युत स्वर्ग तै तीसरा नरक आठ राजू है। तातै चौदह भाग मे आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरक की पृथ्वी की मोटाई विषै जहा पटल न पाइए असा हजार योजन घटावने, तातै किंचित् ऊन कहे है। इहा जो चौदह घन-रूप राजूनि की एक शलाका होइ, तौ आठ घनरूप राजूनि की केती शलाका होइ? असै त्रैराशिक कीएं आठ चौदहवा भाग आवै है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचै स्वयमेव तौ सौधर्म - ईशान स्वर्ग पर्यंत वा तीसरा नरक पर्यंत गमन करै है। अर अन्य देव के ले गये सोलहवा स्वर्ग पर्यंत विहार करै है। तातै भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श सभवै है। बहुरि तेजोलेश्या का मारणातिक समुद्घात विषै स्पर्श चौदह भाग मे नव भाग किछू घाटि सभवै है। काहे तें? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनि के वासी देव तीसरे नरक गएं, अर तहां ही मरण समुद्घात कीया, बहुरि ते जीव आठवी मुक्ति पृथ्वी विषै बादर पृथ्वी काय के जीव उपजते है। तातै तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनि का विस्तार करि दंड कीया। तिन आठवी पृथ्वी तै तीसरा नरक नव राजू है। अर तहां पटल रहित पृथ्वी की मोटाई घटावनी, तातै किंचित् ऊन नव चौदहवा भाग सभवै है।

बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घात विषै सख्यात घनागुल प्रमाण स्पर्श जानना, जातै ए मनुष्य लोक विषै ही हो है। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्या वालो के होता ही नाही। बहुरि उपपाद विषै स्पर्श चौदह भागनि विषै किछू घाटि डेढ राजू भाग मात्र जानना। सो मध्यलोक तै तेजोलेश्या तै मरिकरि सौधर्म ईशान का अत पटल विषै उपजै, तीहि अपेक्षा संभवै है।

इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्या के उपपाद विषै सनत्कुमार माहेद्र पर्यंत क्षेत्र देव का स्पर्श पाइए है, सो तीन राजू ऊंचा है, तातै चौदह भागनि विषै किंचित् ऊन तीन भाग क्यो न कहिये?

ताका समाधान – सौधर्म - ईशान तै ऊपरि सख्यात योजन जाइ, सनत्कुमार माहेद्र का प्रारभ हो है। तहां प्रथम पटल है, अर डेढ राजू जाइ; अतिम पटल है, सो अंत पटल विषै तेजोलेश्या नाही है, असा केई आचार्यनि का उपदेश है। तातै अथवा

चित्रा भूमि विषै तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनि का उपपाद ईशान पर्यंत ही सभवै है, तातै किंचित् ऊन डेढ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है। बहुरि गाथा विषै चकार कह्या है, तातै तेजोलेश्या का उत्कृष्ट अश करि मरै, तिनकै सनत्कुमार - माहेद्र स्वर्ग का अंत का चक्र नामा इंद्रक सबंधी श्रेणीबद्ध विमाननि विषै उत्पत्ति केई आचार्य कहै है। तिनि का अभिप्राय करि यथा संभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श सभवै है। किछू नियम नाही। इस ही वास्ते सूत्र विषै चकार कह्या। ऐसै पीतलेश्या विषै स्पर्श कह्या।

पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं।
अडचोद्दसभागा वा, देसूणा होंति णियमेण ॥५४८॥

पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदम्।
अष्ट चतुर्दशभागा वा, देशोना भवंति नियमेन ॥५४८॥

टीका — पद्मलेश्या के स्वस्थान स्वस्थान विषै पूर्वोक्तप्रकार लोक के असंख्यातवे भाग मात्र स्पर्श जानना। वहुरि विहारवत्स्वस्थान अर वेदना - कषाय - वैक्रियिकसमुद्घात इनिविषै किंचित् ऊन चौदह भाग विषै आठमात्र स्पर्श जानना। वहुरि मारणांतिक समुद्घात विषै भी तैसै ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना, जातै पद्म लेश्यावाले भी देव पृथ्वी, अप्, वनस्पति विषै उपजै है। बहुरि तैजस आहारक समुद्घात विषै संख्यात घनागुल प्रमाणस्पर्श जानना। बहूरि केवल समुद्घात इस लेश्या विषै है नाही।

उववादे पढमपदं, पणचोद्दसभागयं च देसूणं।

उपपादे प्रथमपदं, पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः।

टीका – यहु आधा सूत्र है। उपपाद विषै स्पर्श चौदह भाग विषै पंच भाग किछू घाटि जानना, जातै पद्मलेश्या शतार – सहस्रार पर्यंत संभवै है। सो शतार-सहस्रार मध्यलोक तै पांच राजू उंचा है। ऐसै पद्मलेश्या विषै स्पर्श कह्या।

सुक्कस्स य तिट्ठाणे, पढमो छच्चोदसा हीणा ॥५४९॥

शुक्लायाश्च त्रिस्थाने, प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ॥५४९॥

टीका – शुक्ललेश्यावाले जीवनि के स्वस्थानस्वस्थान विषै तेजोलेश्यावत् लोक का असंख्यातवां भाग प्रमाण स्पर्श है। वहुरि विहारवत्स्वस्थान विषै अर वेदना,

कषाय, वैक्रियिक, मरणातिक समुद्घातनि विषै स्पर्श चौदह भागनि विषै छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातै अच्युतस्वर्ग के ऊपरि देवनि कै स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन नाही है। तातै अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया। बहुरि तैजस, आहारक समुद्घात विषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना।

णवरि समुग्घादम्मि य, संखातीदा हवंति भागा वा।
सव्वो वा खलु लोगो, फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ॥५५०॥

नवरि समुद्घाते च, संख्यातीता भवंति भागा वा।
सर्वो वा खलु लोकः, स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ॥५५०॥

टीका – केवल समुद्घात विषैं विशेष है, सो कहा ?

दण्ड विषै तौ स्पर्श क्षेत्र की नाई संख्यात प्रतरागुलनि करि गुण्या हूवा जगच्छ्रेणी प्रमाण, सो करणे अर समेटने की अपेक्षा दूणा जानना। बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाट विषै संख्यात सूच्यंगुलमात्र जगत्प्रतर प्रमाण है, सो करणे, समेटनें की अपेक्षा दूणा स्पर्श जानना। बहुरि तैसे ही उत्तराभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाट विषैं स्पर्श जानना। बहुरि प्रतर समुद्घात विषै लोक कौ असंख्यात का भाग दीजिए, तामैं एक भाग विना अवशेष बहुभाग मात्र स्पर्श है। जातै वात वलय का क्षेत्र लोक के असख्यातवे भाग प्रमाण है, तहां व्याप्त न हो है। बहुरि लोकपूरण विषै स्पर्श सर्व लोक जानना, अैसा नियम है।

बहुरि उपपाद विषै चौदह भाग विषै छह भाग किंचित् ऊन स्पर्श जानना। जातै इहा आरण - अच्युत पर्यंत ही की विवक्षा है। इति स्पर्शाधिकार ।

आगै काल अधिकार दोय गाथानि करि कहै है—

कालो छल्लेस्साणं, णाणाजीवं पडुच सव्वद्धा।
अंतोमुहुत्तमवरं, एगं जीवं पडुच्च हवे ॥५५१॥

कालः षड्लेश्यानां, नानाजीवं प्रतीत्य सर्वाद्धा।
अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं, जीवं प्रतीत्य भवेत् ॥५५१॥

टीका – कृष्ण आदि छहौ लेश्यानि का काल नाना जीवनि की अपेक्षा सर्वाद्धा कहिये सर्व काल है। बहुरि एक जीव अपेक्षा छहौ लेश्यानि का जघन्यकाल तौ अतर्मुहूर्त प्रमाण जानना।

उवहीणं तेत्तीसं, सत्तरसत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा, उक्कस्सा होंति अदिरेया ५५२॥

उदधीनां त्रयस्त्रिशत्, सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव।
अष्टादश त्रयस्त्रिशत्, उत्कृष्टा भवंति अतिरेकाः ॥५५२॥

टीका — बहुरि उत्कृष्ट काल कृष्णलेश्या का तेतीस सागर, 'नीललेश्या का सतरह सागर, कपोतलेश्या का सात सागर, तेजोलेश्या का दोय सागर, पद्मलेश्या का अठारह सागर, शुक्ललेश्या का तेतीस सागर किछू किछू अधिक जानना। सो अधिक का प्रमाण कितना ? सो कहैं है – यहु उत्कृष्ट काल नारक वा देवनि की अपेक्षा कह्या है। सो नारकी अर देव जिस पर्याय तै आनि उपजै, तिस पर्याय का अंत का अंतर्मुहूर्त काल बहुरि देव नारक पर्याय छोडि जहां उपजै, तहां आदि विषै अंतर्मुहूर्त काल मात्र सोई लेश्या हो है। तातै पूर्वोक्त काल तैं छहौं लेश्यानि का काल विषैं दोय दोय अंतर्मुहूर्त अधिक जानना। बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या का काल विषैं किंचित् ऊन आधा सागर भी अधिक जानना, जातै जाकै आयु का अपवर्तन घात भया असा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टी, ताकै अतर्मुहूर्त घाटि आधा सागर आयु बधता हो है जैसे सौधर्म–ईशान विषै दोय सागर का आयु कह्या है; ताहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टी कै अंतर्मुहूर्त घाटि अढाई सागर भी आयु हो है; असै ऊपर भी जानना। बहुरि असै ही मिथ्यादृष्टि घातायुष्क कै पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण आयु बधता हो है; सो यहु अधिकपना सौधर्म तैं लगाइ सहस्रार स्वर्ग पर्यंत जानना। ऊपर घातायुष्क का उपजना नाही, तातै तहा जो आयु का प्रमाण कह्या है, तितना ही हो है; असैं अधिक काल का प्रमाण जानना। इति कालाधिकार.।

आगे अंतर अधिकार दोय गाथानि करि कहै है–

अंतरमवरुक्कस्सं, किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु।
उवहीणं तेत्तीसं, अहियं होदि त्ति णिद्दिट्ठं ॥५५३॥

तेउतियाणं एवं, णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।
पोग्गलपरिवट्टा हु, असंखेज्जा होंति णियमेण ।।५५४।।

अंतरमवरोत्कृष्टं, कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।
उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टम् ।।५५३।।

तेजस्त्रयाणामेवं, नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।
पुद्गलपरिवर्ता हि, असंख्येया भवंति नियमेन ।।५५४।।

टीका – अंतर नाम विरह काल का है । जैसे कोई जीव कृष्णलेश्या विषै प्रवर्तै था, पीछैं कृष्ण कौं छोडि अन्य लेश्यानि कौ प्राप्त भया । सो जितने काल पर्यंत फिर तिस कृष्णलेश्या कौं प्राप्त न होइ, तीहि काल का नाम कृष्णलेश्या का अंतर कहिये । असे ही सर्वत्र जानना । सो कृष्णादिक तीन लेश्यानि विषै जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । बहुरि उत्कृष्ट किछू अधिक तेतीस सागर प्रमाण है ।

तहां कृष्णलेश्या विषै अंतर कहै है—

कोई जीव कोडि पूर्व वर्षमात्र आयु का धारी मनुष्य गर्भ तै लगाय आठ वर्ष होने विषै छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं, तहा कृष्णलेश्या कौ प्राप्त भया, तहा अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि नील लेश्या कौ प्राप्त भया । तब कृष्णलेश्या के अंतर का प्रारंभ कीया । तहां एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र अनुक्रम तैं नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या कौं प्राप्त होइ, आठ वर्ष का अंत के समय दीक्षा धरी, तहा शुक्ललेश्या सहित किछू घाटि कोटि पूर्व पर्यंत संयम कौं पालि, सर्वार्थसिद्धि कौ प्राप्त भया । तहां तेतीस सागर पूर्ण करि मनुष्य होइ, अंतर्मुहूर्त पर्यंत शुक्ललेश्या रूप रह्या । पीछै अनुक्रम तैं एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म, पीत, कपोत, नील लेश्या कौ प्राप्त होइ, कृष्ण लेश्या [illegible] प्राप्त भया, असे जीव कै कृष्ण लेश्या का दश अंतर्मुहूर्त अर आठ वर्ष घाटि कोटि पूर्व [illegible] अधिक तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट अंतर जानना । असै ही नील लेश्या [illegible] कपोत लेश्या विषै उत्कृष्ट अंतर जानना । विशेष इतना जो तहा दश अंतर्मुहूर्त [illegible] नील विषै आठ कपोत विषै छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने ।

अब तेजो लेश्या का उत्कृष्ट अंतर कहै हैं—

कोई जीव मनुष्य वा तिर्यंच तेजोलेश्या विषै तिष्ठै था, [illegible] कौ प्राप्त भया, तब तेजोलेश्या के अंतर का प्रारंभ कीया । [illegible]

पर्यंत कपोत, नील, कृष्ण लेश्या कौं प्राप्त होइ, एकेंद्री भया । तहा उत्कृष्टपनै आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पुद्गल द्रव्य परिवर्तन, तिनिका जितना काल होइ, तितने काल भ्रमण कीया; पीछे विकलेंद्री भया । तहां उत्कृष्टपनै संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल भ्रमण कीया; पीछैं पंचेंद्री भया । तहां प्रथम समय तै लगाइ एक - एक अंतर्मुहूर्त काल विषै अनुक्रम तैं कृष्ण, नील, कपोत कौं प्राप्त होइ, तेजो लेश्या कौं प्राप्त भया । अैसे जीव कैं तेजोलेश्या का छह अंतर्मुहूर्त सहित अर संख्यात सहस्र वर्ष करि अधिक आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना ।

अब पद्म लेश्या का अंतर कहैं हैं-

कोई जीव पद्मलेश्या विषैं तिष्ठता था, ताकौं छोडि तेजोलेश्या कौ प्राप्त भया, तब पद्म के अंतर का प्रारंभ कीया । तहां तेजोलेश्या विषै अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि सौधर्म - ईशान विषै उपज्या, तहां पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर पर्यंत रह्या । तहा स्यों चय करि एकेंद्री भया । तहां आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेद्री भया । तहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करि पंचेंद्री भया । तहां प्रथमसमय तै लगाइ, एक - एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण, नील, कपोत, तेजोलेश्या कौं प्राप्त होइ, पद्मलेश्या कौं प्राप्त भया । अैसे जीव कैं पद्मलेश्या का पंच अतर्मुहूर्त अर पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर अर संख्यात हजार वर्षनि करि अधिक आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना ।

आगे शुक्ल लेश्या का अतर कहै है-

कोई जीव शुक्ललेश्या विषै तिष्ठे था, तहांस्यों पद्मलेश्या कौ प्राप्त भया । तब शुक्ललेश्या का अंतर का प्रारंभ भया । तहां क्रम तै एक-एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र पद्म - तेजोलेश्या कौ प्राप्त होइ सौधर्म - ईशान विषै उपजि, तहा पूर्वोक्त प्रमाण काल रहि, तहां पीछे एकेंद्री होइ, तहा भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करि, पीछे विकलेंद्री होइ, तहा भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमण करि, पचेंद्री होइ, प्रथम समय तै एक-एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र क्रम तै कृष्ण, नील, कपोत, तेज, पद्मलेश्या कौं प्राप्त होइ, शुक्ललेश्या कौ प्राप्त भया । अैसे जीव कै सात अतर्मुहूर्त अर संख्यात सहस्र वर्ष अर पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर करि अधिक

आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंतर जानना । इति अंतराधिकारः ।

आगें भाव अर अल्पबहुत्व अधिकारनि कौ कहैं हैं—

भावादो छल्लेस्सा, ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।
दव्वपमाणे सिद्धं, इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ॥५५५॥

भावतः षड् लेश्या, औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।
द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति, लेश्या वर्णिता भवंति ॥५५५॥

टीका – भाव करि छहौ लेश्या औदयिक भावरूप जाननी; जातै कषाय संयुक्त योगनि की प्रवृत्ति का नाम लेश्या है । सो ते दोऊ कर्मनि के उदय तै हो है । इति भावाधिकारः ।

बहुरि तिनि लेश्यानि का अल्प बहुत्व पूर्वं संख्या अधिकार विषै द्रव्य प्रमाण करि ही सिद्ध हैं । जिनका प्रमाण थोडा सो अल्प, जिनिका प्रमाण घणा सो बहुत । तहां सबतैं थोरे शुक्लेश्यावाले जीव है; ते पणि असंख्यात है । तिनि तै असख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव है । तिनि तैं संख्यातगुणे तेजोलेश्यावाले जीव है । तिनि तै अनंतानंत गुणे कपोतलेश्यावाले जीव है । तिनि तै किछू अधिक नीललेश्यावाले जीव है । तिनि तै किछू कृष्णलेश्यावाले जीव है । इति अल्पबहुत्वाधिकार. ।

अैसे छहौ लेश्या सोलह अधिकारनि करि वर्णन करी हुई जाननी ।

आगे लेश्या रहित जीवनि कौ कहैं है—

किण्हादिलेस्सरहिया, संसारविणग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता, अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥५५६॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः, संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।
सिद्धिपुरं संप्राप्ता, अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ॥५५६॥

टीका – जे जीव कषायनि के उदय स्थान लिएं योगनि की प्रवृत्ति के अभाव तै कृष्णादि लेश्यानि करि रहित है, तिस ही तै पच प्रकार संसार समुद्र तै निकसि

पार भए हैं। बहुरि अतींद्रिय – अनंत सुख करि तृप्त हैं। बहुरि आत्मा की उपलब्धि है लक्षण जाका, असी सिद्धिपुरी कौं सम्यक् पनैं प्राप्त भए है, ते अयोगकेवली वा सिद्ध भगवान लेश्या रहित अलेश्य जानने।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषै लेश्यामार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका असा पद्रह्वां अधिकार सपूर्ण भया ॥१५॥

जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोग का अभ्यास करते हैं, उन्हे यह उसके विशेषणरूप भासित होता है। जो जीवादिक तत्त्वों को आप जानता है, उन्ही के विशेष करणानुयोग में किये हैं, वहाँ कितने ही विशेषण तो यथावत निश्चयरूप हैं, कितने ही उपचार सहित व्यवहाररूप है, कितने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल भावादिक के स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षा सहित है,-इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरूपित किये हैं, उन्हे त्यों का त्यो मानता हुआ उस करणानुयोग का अभ्यास करता है।

इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। जैसे–कोई यह तो जानता था कि यह रत्न है, परंतु उस रत्न के बहुत से विशेषण जानने पर निर्मल रत्न का पारखी होता है, उसी प्रकार तत्त्वो को जानता था कि यह जीवादिक है, परन्तु उन तत्त्वों के बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान निर्मल होने पर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है।

- पण्डित टोडरमलः मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ०–२७०

सोलहवां अधिकार : भव्य-मार्गणा

इष्ट फलत सब होत फुनि, नष्ट अनिष्ट समाज ।
जास नामतैं सो भजौ, शांति नाथ जिनराज ।।

आगें भव्य मार्गणा का अधिकार च्यारि गाथानि करि कहै है—

भविया सिद्धी जेसिं, जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाऽभव्वा, संसारादो ण सिज्झंति ।।५५७।।

भव्या सिद्धिर्येषां, जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
तद्विपरीता अभव्याः, संसारान्न सिद्धयन्ति ।।५५७।।

टीका – भव्याः कहिए होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि कहिये अनंत चतुष्टय रूप स्वरूप की प्राप्ति जिनकें, ते भव्य सिद्ध जानने । याकरि सिद्धि की प्राप्ति अर योग्यता करि भव्यनि कैं द्विविधपना कह्या है ।

भावार्थ – भव्य दोय प्रकार हैं । केई तो भव्य असे है जे मुक्ति होने कौं केवल योग्य ही हैं; परि कबहूं सामग्री कौ पाइ मुक्त न होइ । बहुरि केई भव्य असे हैं, जे काल पाइ मुक्त होहिंगे । बहुरि **तद्विपरीताः** कहिए पूर्वोक्त दोऊ लक्षरण रहित जे जीव मुक्त होने योग्य भी नही अर मुक्त भी होते नाहीं, ते अभव्य जानने । तातें ते वे अभव्य जीव संसार तें निकसि कदाचित मुक्ति कौ प्राप्त न हो हैं; असा ही केई द्रव्यत्व भाव है ।

इहा कोऊ भ्रम करैगा जो अभव्य मुक्त न होइ तौ दोऊ प्रकार के भव्यनि कै तौ मुक्त होना ठहर्‌या तौ जे मुक्त होने कौ योग्य कहे थे, तिन भव्यनि कैं भी कथंचित मुक्ति प्राप्ति होसी सो असे भ्रम कौं दूर करे हैं—

भव्वत्तणस्स जोग्गा, जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमे णियमा, ताणं कणओवलाणमिव ।।५५८।।

भव्यत्वस्य योग्या, ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
न हि मलविगमे नियमात, तेषां कनकोपलानामिव ।।५५८।।

टीका — जे भव्य जीव भव्यत्व जो सम्यग्दर्शनादि सामग्री कौ पाइ, अनंत चतुष्टय रूप होना, ताकौ केवल योग्य ही है, तद्रूप होने के नाही, ते भव्य सिद्ध है। सदा काल संसार कौ प्राप्त रहैं है। काहे तें ? सो कहिये हैं – जैसैं केई सुवर्ण सहित पाषाण असैं है, तिनकै कदाचित् मैल के नाश करने की सामग्री न मिलै, तैसें केई भव्य असें है जिनकै कर्म मल नाश करने की कदाचित् सामग्री नियम करि न संभवै हैं।

भावार्थ – जैसे अहमिंद्र देवनि कैं नरकादि विषैं गमन करने की शक्ति है, परतु कदाचित् गमन न करे, तैसें केई भव्य असैं है, जे मुक्त होने कौं योग्य है, परन्तु कदाचित् मुक्त न होंइ।

ण य जे भव्वाभव्वा, मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा, णेव य भव्वा अभव्वा य ॥५५९॥

न च ये भव्या अभव्या, मुक्तिसुखा अतीतानंतसंसाराः।
ते जीवा ज्ञातव्या, नैव च भव्या अभव्याश्च ॥५५९॥

टीका — जे जीव केई नवीन ज्ञानादिक अवस्था कौं प्राप्त होने के नाहीं; तातैं भव्य भी नाही। अर अनंत चतुष्टय रूप भए, तातैं अभव्य भी नाहीं, असे मुक्ति सुख के भोक्ता अनंत संसार रहित भए, ते जीव भव्य भी नाही अर अभव्य भी नाहीं; जीवत्व पारिणामिक कौ धरैं हैं; असे जानने।

इहां जीवनि की संख्या कहै हैं—

अवरो जुत्ताणंतो, अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो, संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अवरो युक्तानन्तः, अभव्यराशे र्भवति परिमाणम्।
तेन विहीनः सर्वः, संसारी भव्यराशेः ॥५६०॥

टीका – जघन्य युक्तानंत प्रमाण अभव्य राशि का प्रमाण है। बहुरि संसारी जीवनि के परिमाण में अभव्य राशि का परिमाण घटाएं, अवशेष रहे, तितना भव्य राशि का प्रमाण है। इहां संसारी जीवनि के परिवर्तन कहिए है – परिवर्तन अर परिभ्रमण, ससार ए एकार्थ हैं। सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, भेद तैं परिवर्तन

पंच प्रकार है । तहां द्रव्य परिवर्तन दोय प्रकार है - एक कर्म द्रव्य परिवर्तन, एक नोकर्म द्रव्य परिवर्तन ।

तहां नोकर्म द्रव्य परिवर्तन कहिए है —

किसी जीव नै औदारिकादिक तीन शरीरनि विषै किसी ही शरीर सबधी छह पर्याप्ति रूप परिरणमने कौ योग्य पुद्गल किसी एक समय में ग्रहे, ते स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादिक करि तीव्र, मद, मध्य भाव लीए, यथा संभव ग्रहे, बहुरि ते द्वितीयादि समयनि विषै निर्जरा रूप कीए । बहुरि अनत बार अगृहीतनि कौ ग्रहि करि छोडे, अनंत बार मिश्रनि कौ ग्रहि करि छोड़े, बीचि ग्रहीतानि कौ अनंत बार ग्रहि करि छोड़े, असें भए पीछै जे पहिले समय पुद्गल ग्रहे, तेई पुद्गल तैसे ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण गंधादिक करि तिस ही जीव कै नोकर्म भाव कौ प्राप्त होंइ, तितना समुदायरूप काल मात्र नोकर्म द्रव्य परिवर्तन है । जीव करि पूर्वै ग्रहे असे परमाणू जिन समयप्रबद्ध रूप स्कंधनि विषैं होंइ, ते गृहीत कहिए । बहुरि जीव करि पूर्वै न ग्रहे असे परमाणू जिनिविषै होइ, ते अगृहीत कहिये । गृहीत अर अगृहीत दोऊ जाति के परमाणू जिनि विषै होंइ, ते मिश्र कहिए ।

इहां कोऊ कहै अगृहीत परमाणू कैसै है ?

ताकां सामाधान - सर्व जीवराशि के प्रमाण कौ समय प्रबद्ध के परमाणूनिका परिमाण करि गुणिए । बहुरि जो प्रमाण आवै, ताकौं अतीत काल के समयनि का परिमाण करि गुणिए, जो प्रमाण होइ, तिसतै भी पुद्गल द्रव्य का प्रमाण अनत गुणा है , जातै जीव राशि तै अनंत वर्गस्थान गए पुद्गलराशि हो है । तातै अनादिकाल नाना जीवनि की अपेक्षा भी अगृहीत परमाणू लोक विषै बहुत पाइए है । बहुरि एक जीव का परिवर्तन काल की अपेक्षा नवीन परिवर्तन प्रारंभ भया, तब सर्व ही अगृहीत भए । पीछै ग्रहे तेई ग्रहीत हो है । सो इहा जिस अपेक्षा गृहीत, अगृहीत, मिश्र कहे हैं; सो यथासंभव जानना । अब विशेष दिखाइए है —

पुद्गल परिवर्तन का काल तीन प्रकार है । तहा अगृहीत के ग्रहण का काल, सो अगृहीत ग्रहण काल है । गृहीत के ग्रहण का काल, सो गृहीत ग्रहण काल है । मिश्र के ग्रहण का काल, सो मिश्र ग्रहण काल है । सो इनिका परिवर्तन जो पलटना सो कैसे हो है ? सो अनुक्रम यत्र करि दिखाइए है-

यंत्र विषै अगृहीत की सहनानी तो बिंदी ।।०।। जाननी अरु मिश्र की सहनानी हंसपद ।।+।। जाननी । अर गृहीत की सहनानी एक का अंक ।।१।। जाननी । अर दोय बार लिखने तै अनंत बार जानि लेना ।

द्रव्य परिवर्तन का यंत्र-

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

तहां विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तन का पहिले समय तै लगाइ, प्रथम बार समयप्रबद्ध विषैं अगृहीत का ग्रहण करै, दूसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करै, तीसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करै अैसे निरंतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण होइ निवरै तब एक बार मिश्र का ग्रहण करै । याहीतैं यंत्र विषै पहिले कोठा विषैं दोय बार बिंदी एक बार हंसपद लिख्या ।

बहुरि तहां पीछे तैसे ही निरंतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि एक बार मिश्र का ग्रहण करै, अैसे ही अनुक्रमतै अनंत अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि करि एक - एक बार मिश्र का ग्रहण करै; अैसे ही मिश्र का भी ग्रहण अनंत बार हो है । याहीतै अनत बार की सहनानी के निमित्त यत्र विषै जैसा पहिला कोठा था, तैसाही दूसरा कोठा लिख्या ।

बहुरि तहा पीछे तैसे ही निरतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि एक बार गृहीत का ग्रहण करै, याहीतै तीसरा कोठा विषै दोय बिंदी अर एक का अक लिख्या । बहुरि अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रम तै जसै यहु एक बार गृहीत ग्रहण भया, तैसे ही अनुक्रम तै एक - एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंत बार गृहीत ग्रहण हो है । याहीतै जसै तीन कोठे पहिलै लिखे थे, तैसैं ही अनंत की सहनानी के निमित्त दूसरा तीन कोठे लिखे, सो अैसैं होतै प्रथम परिवर्तन भया । तातैं इतना प्रथमपंक्ति विषै लिखा ।

अब दूसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है – पूर्वोक्त अनुक्रम भए पीछे निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करै, तब एक बार अगृहीत ग्रहण करै । यातैं प्रथम कोठा विषैं

दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी । बहुरि निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करि, एक बार अगृहीत ग्रहण करै, सो इस ही क्रम तैं अनंत बार अगृहीत ग्रहण करे; यातें पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या ।

बहुरि तहां पीछैं निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करि एक बार गृहीत ग्रहण करै । यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक एक का अंक लिख्या । सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम लीए, एक - एक बार गृहीत ग्रहण होइ, सो असें गृहीत ग्रहण भी अनंत बार हो है । यातें जैसे पहिले तीन कोठे लिखे थे, तैसे ही दूसरा तीन कोठे लिखे; असें होत संतें दूसरा परिवर्तन भया ।

अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है – पूर्वोक्त क्रम भए पीछें निरतर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करि एक बार गृहीत का ग्रहण करै; यातें प्रथम कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक-एक का अंक लिख्या, सो अनंत अनंत बार मिश्र ग्रहण करि-करि एक एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंत बार गृहीत ग्रहण हो है । यातें पहिला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या । बहुरि अनंत बार मिश्रका ग्रहण करि एक बार अगृहीत का ग्रहण करै । यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी; सो जैसें मिश्र ग्रहणादि अनुक्रम तैं एक बार अगृहीत का ग्रहण भया, तैसें ही एक एक बार करि अनत बार अगृहीत का ग्रहण हो है । तातें पहिले तीन कोठे थे, तैसे ही दूसरा तीन कोठे लिखे; असे होत सतें तीसरा परिवर्तन भया ।

आगैं चौथी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है - पूर्वोक्त क्रम भए पीछें निरतर अनत बार गृहीत का ग्रहण करि एक बार मिश्र का ग्रहण करै, यातैं प्रथम कोठा विषै दोय एका अर एक हंसपद लिख्या है । सो अनंत अनंत बार गृहीत का ग्रहण करि-करि एक एक बार मिश्र ग्रहण करि अनंत बार मिश्र का ग्रहण हो है । यातें प्रथम कोठा सारिखा दूसरा कोठा कीया । बहुरि तहा पीछैं अनंत बार गृहीत का ग्रहण करि एक बार अगृहीत का ग्रहण करै; यातैं तीसरा कोठा विषै दोय एका अर एक बिंदी लिखी । बहुरि चतुर्थ परिवर्तन की आदि तैं जैसा अनुक्रम करि यहु एक बार अगृहीत ग्रहण भया । तैसें ही अनुक्रम तैं अनंत बार अगृहीत ग्रहण होइ, यातें पहिलें तीन कोठे कीए थे, तैसे ही आगैं अनंत बार की सहनानी के अर्थि दूसरा तीन कोठे कीए । असें होतें संते चतुर्थ परिवर्तन भया । बहुरि तीहिं चतुर्थ परिवर्तन का अनंतर समय विषैं विवक्षित नोकर्म द्रव्य परिवर्तन के पहिले समय विषै जे पुद्गल निग

स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गधादि भाव कौ लीए ग्रहण कीए थे; तेई पुद्गल तिस ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण गंधादि भाव कौ लीए शुद्ध गृहीतरूप ग्रहण कीजिए है; सो यहु सब मिल्या हुवा संपूर्ण नोकर्म द्रव्य परिवर्तन जानना ।

आगे कर्म पुद्गल परिवर्तन कहिए है–किसी जीवने एक समय विषैं आठ प्रकार कर्मरूप जे पुद्गल ग्रहे, ते एक समय अधिक आवली प्रमाण आबाधा काल कौ गए पीछे द्वितीयादि समयनि विषै निर्जरारूप कीए, पीछे जैसा अनुक्रम आदि तै लगाइ, अंत पर्यंत नोकर्म द्रव्य परिवर्तन विषै कह्या, तैसा ही अनुक्रम सर्व चारचो परिवर्तन संबंधी इस कर्म द्रव्य परिवर्तन विषै जानना ।

विशेष इतना–तहां नोकर्म सबंधी पुद्गल थे, इहां कर्म संबंधी पुद्गल जानने । अनुक्रम विषै किछू विशेष नाही । पीछैं पहिले समय जैसे पुद्गल ग्रहे थे, तेई पुद्गल तिस ही भाव कौ लीए, चतुर्थ परिवर्तन के अनतर समय विषैं ग्रहण होइ; सो यहु सर्व मिल्या हूवा संपूर्ण कर्म परिवर्तन जानना । इस द्रव्य परिवर्तन कौ पुद्गल परिवर्तन भी कहिए है । सो नोकर्म पुद्गल परिवर्तन का अर कर्मपुद्गल परिवर्तन का काल समान है । बहुरि इहां इतनां जानना – पूर्वै जो क्रम कह्या, तहा जैसैं पहिले अनत वार अगृहीत का ग्रहण कह्या, तहा वीचि वीचि मे गृहीत ग्रहण वा मिश्र ग्रहण भी होइ, सो अनुक्रम विषै तो पहिली बार अर दूसरी बार आदि जो अगृहीत ग्रहण होइ, सोई गिणने मे आवै है । अर काल परिमाण विषै गृहीत, मिश्र ग्रहण का समय सहित सर्व काल गिणने मे आवै है । जिनि समयनि विषै गृहीत का ग्रहण है, ते समय गृहीत ग्रहण के काल विषै गिणने मे आवै है । जिनि समयनि विषै मिश्र का ग्रहण हो है, ते समय मिश्र ग्रहण के काल विषै गिणने में आवै है । जिन समयनि विषै अगृहीत ग्रहण हो है, ते समय अगृहीत ग्रहण काल विषै गिणने मे आवै है; सो यहु उदाहरण कह्या है; असैं ही सर्वत्र जानना । क्रम विषै तौ जैसा अनुक्रम कह्या होइ, तैसैं होइ, तव ही गिणने में आवै । अर तिस अनुक्रम के बीचि कोई अन्यरूप प्रवर्तै, सो अनुक्रम विषै गिणने मे नाही । अर जिनि समयनि विषै अन्यरूप भी प्रवर्तै है, तिनि समयनिरूप जो काल, सो परिवर्तन का काल विषै गिणने मे आवै ही है । असैं ही क्षेत्रादि परिवर्तन विषै भी जानना ।

जैसे क्षेत्र परिवर्तन विषैं किसी जीवने जघन्य अवगाहना पाई, परिवर्तन प्रारंभ कीया, पीछे केते एक काल अनुक्रम रहित अवगाहना पाई, पीछे अनुक्रमरूप अवगा-

हना कौं प्राप्त भया, तहां क्षेत्र परिवर्तन का अनुक्रम विषै तौ पहिले जघन्य अवगाहना पाई थी, अर पीछै दूसरी बार अनुक्रमरूप अवगाहना पाई, सो गिणने मे आवै है । अर क्षेत्र परिवर्तन का काल विषै बीचि में अनुक्रम रहित अवगाहना पावने का काल सहित सर्व काल गिणने में आवै है । असैं ही सर्व विषै जानि लेना ।

अब इहा द्रव्य परिवर्तन विषै काल का परिमाण कहै है । तहा अगृहीत ग्रहण का काल अनंत है; तथापि यहु सर्व तै स्तोक है । जातै जिनि पुद्गलनि स्यौ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि का संस्कार नष्ट है, ते पुद्गल बहुत बार ग्रहण में आवते नाही, याही तै विवक्षित पुद्गल परिवर्तन के मध्य गृहीत पुद्गलनि का ही बहुत बार ग्रहण संभवै है । सोई कह्या है —

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं, आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं, दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।

जे पुद्गल कर्मरूप परिणए थे, अर जिनकी स्थिति थोरी थी, अर निर्जरा होते कर्म अवस्था करि रहित भए है अर जीव के प्रदेशनि स्यो एक क्षेत्रावगाही तिष्ठै है, अर संस्थान आकार जिनिका कह्या न जाय अर विवक्षित पुद्गल परिवर्तन का पहिला समय विषै जिस स्वरूप ग्रहण में आए, तिसकरि रहित होंइ, असे पुद्गल, जीव करि बाहुल्य पनै समयप्रबद्धनि विषै ग्रहण कीजिए है । असा नियम नाहीं, जो असे ही पुद्गलनि का ग्रहण करे, परतु बहुत बार असे ही पुद्गलनि का ग्रहण हो है, जातें ए पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का सस्कार करि सयुक्त हैं ।

बहुरि अगृहीत ग्रहण के काल तैं मिश्र ग्रहण का काल अनत गुणा है । बहुरि तिस मिश्र ग्रहण के काल तै गृहीत ग्रहण का जघन्यकाल अनत गुणा है । बहुरि तिस तै सर्व पुद्गल परिवर्तन का जघन्य काल किछू अधिक है । जघन्य गृहीत ग्रहण काल कौ अनत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना जघन्य गृहीत ग्रहण काल विषै मिलाइए, तब जघन्य पुद्गल परिवर्तन का काल हो है । बहुरि तिसतै गृहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल अनत गुणा है, बहुरि तातै संपूर्ण पुद्गल परिवर्तन का उत्कृष्ट काल किछू अधिक है । उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल कौ अनत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल विषै मिलाइए, तब उत्कृष्ट पुद्गल परिवर्तन का काल हो है । इहां अगृहीत ग्रहण काल अर मिश्र ग्रहण काल विषै जघन्य उत्कृ-

ष्टपना नाही है । जातैं परंपरा सिद्धांत विषै तिनके जघन्य उत्कृष्टपने का उपदेश का अभाव है ।

इहां प्रासंगिक (उक्तं च) गाथा कहैं हैं—

अगहिदमिस्सं गहिदं, मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं, गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।।

पहिला – अगृहीत, मिश्र, गृहीतरूप; दूसरा – मिश्र, अगृहीत, गृहीतरूप; तीसरा – मिश्र, गृहीत, अगृहीतरूप; चौथा – गृहीत, मिश्र, अगृहीतरूप परिवर्तन भए द्रव्य परिवर्तन हो है । सो विशदरूप पूर्वैं कह्या ही है ।

उक्तं च (आर्या छंद)—

सर्वेऽपि पुद्गलाः, खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः, पुद्गलपरिवर्तसंसारे ।।

एकैं जीव पुद्गल परिवर्तनरूप संसार विषै यथा योग्य सर्व पुद्गल वारंवार अनंत वार ग्रहि छांडे है ।

आगे क्षेत्र परिवर्तन कहिए हैं – सो क्षेत्रपरिवर्तन दोय प्रकार – एक स्वक्षेत्र परिवर्तन, एक परक्षेत्र परिवर्तन ।

तहां स्वक्षेत्र परिवर्तन कहिए हैं – कोई जीव सूक्ष्म निगोदिया की जघन्य अवगाहना कौ धारि उपज्या, अपना सांस का अठारहवां भाग प्रमाण आयु कौं भोगि मूवा, बहुरि तिस तैं एक प्रदेश बधती अवगाहना कौं धरैं, पीछे दोय प्रदेश बधती अवगाहना कौं धरै, अैसें एक - एक प्रदेश अनुक्रम तैं बधती - बधती महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत सख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के भेदनि कौं सोई जीव प्राप्त होइ । जे अवगाहना के भेद है, ते सर्व एक जीव अनुक्रम तैं यावत्काल विषैं धारै, सो यहु सर्व समुदायरूप स्वक्षेत्र परिवर्तन जानना ।

अब परक्षेत्र परिवर्तन कहिये हैं—

सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जघन्य अवगाहनारूप शरीर का धारक सो लोकाकाश के मध्य जे आठ आकाश के प्रदेश है, तिनकौ अपने शरीर की अवगाहना के मध्यवर्ती आठ प्रदेश करि अवशेष, उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेश, तिनकौं रोक करि उपज्या, सांस का अठारहवां भाग मात्र क्षुद्र भव काल जीय करि मूवा । बहुरि सोई जीव तैसैं ही अवगाहना कौ धारि, तिस ही क्षेत्र विषै दूसरा उपज्या, सो अैसें

घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना के जेते प्रदेश है, तितनी वार तौ तैसै ही उपज्या, पीछे तहा स्यों एक प्रदेश आकाश का उसके निकटवर्ती, ताकौ रोकि करि उपज्या, असै अनुक्रम तै एक - एक प्रदेश करि सर्व लोकाकाश के प्रदेशनि कौ अपना जन्मक्षेत्र करै, सो यहु सर्व परक्षेत्र परिवर्तन है ।

उक्तं च—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे, देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ।।

क्षेत्र संसार विषै भ्रमण करता जीव करि जाका अपने शरीर की अवगाहना करि स्पर्श न कीया असा सर्व जगच्छ्रेणी का घन प्रमाण लोक विषै कोई प्रदेश नाही है । बहुरि जाकौ बहुत बार अगीकार न कीया, असा कोई अवगाहना का भेद भी नाहीं ।

आगै काल परिवर्तन कहिये है—

कोई जीव उत्सर्पिणी काल का पहिला समय विषै उपज्या, अपना आयु कौं पूर्ण करि मूवा । बहुरि दूसरा उत्सर्पिणी काल का दूसरा समय विषै उपज्या, अपना आयु कौ पूर्णकरि मूवा । बहुरि तीसरी उत्सर्पिणी काल का तीसरा समय विषै उपज्या, तैसै ही मूवा । असैं दश कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल के जेते समय है, तिनकौ पूर्ण करै । बहुरि पीछै इस ही अनुक्रम तै दश कोडाकोडि प्रमाण अवसर्पिणी काल के जेते समय है, तिनकौ पूर्ण करै । बहुरि जैसै जन्म की अपेक्षा कह्या, अनुक्रम तैसै ही मरण की अपेक्षा अनुक्रम जानना । पहिले समय विषै मूवा, दूसरे समय विषै मूवा, असै कल्पकाल समयनि कौ पूर्ण करै, सो यहु सर्व मिल्या हूआ काल परिवर्तन जानना ।

उक्त च—

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः, परिभ्रमन् कालसंसारे ।।

काल संसार विषै भ्रमण करता जीव, उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्प काल का समस्त समय, तिनकी पकति विषै क्रम तै वहुत वार जन्म धर्‌या है, अर मरण कीया है ।

आगै भव परिवर्त कहै है—

कोऊ जीव नरक गति विषैं जघन्य आयु दशहजार वर्ष की धारि उपज्या, पीछै मरण करि ससार विषै भ्रमण करि तहा ही जघन्य दश हजार वर्ष की आयु कौ

धारि उपज्या, अैसै दश हजार वर्ष के जेते समय होंहि, तितनी बार तौ जघन्य आयु कौ ही धारि धारि उपजै अर मरै, पीछैं दश हजार वर्ष अर एक समय का आयु कौं धारि उपजै, पीछै दश हजार दोय समय के आयु कौं धारि उपजैं, अैसैं एक - एक समय बधता अनुक्रम तै उत्कृष्ट आयुमात्र तेतीस सागर पूरण करै, पीछैं तिर्यंच गति विषै अतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयु कौ धारि उपजै, सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्त के जेते समय होंहि, तितनी बार तौ तिस अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आयु कौ धारि धारि उपजै। पीछैं एक समय अधिक अतर्मुहूर्त आयु कौं धारि उपजे, पीछै दोय समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु कौ धारि उपजै, अैसै एक एक समय अनुक्रम तै बधतैं बधतैं उत्कृष्ट आयु का तीन पल्य पूर्ण करै। बहुरि मनुष्य गति विषै तिर्यंच गति की ज्यौं अंतर्मुहूर्त तैं लगाइ तीन पल्य कौं पूर्ण करै। बहुरि देवगति विषैं नरक गति की ज्यौं दश हजार वर्ष तै लगाइ, इकतीस सागर पूर्ण करै, जातै मिथ्यादृष्टी जीव अनुत्तर अनुदिश विमान विषै उपजै नाहीं, ऊपरि के ग्रैवेयक पर्यंत ही उपजै, तातैं इकतीस सागर ही कहे, अैसैं भ्रमण करि बहुरि नरक विषै दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य आयु कौं धारि उपजै, तब यहु सर्व संपूर्ण भव परिवर्तन हो है।

उक्तं च—

नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः॥

मिथ्यात्व करि आश्रित जीव, तीहि नरक का जघन्य आयु आदि उपरिम गैवेयक पर्यंत आयु विषै संसार की स्थिति बहुत बार भोगई है।

आगे भाव परिवर्तन कहिये हैं—

सो भाव परिवर्तन योग स्थान, अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, स्थिति स्थान इनि च्यारिनि के परिवर्तन तै हो है; सो प्रथम इनिका स्वरूप कहिये है—

प्रकृति बंध, प्रदेश बध कौं कारण अैसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग, तिनिके जे जघन्यादिक स्थान, ते योगस्थान हैं। बहुरि जिनि कषाय युक्त परिणामनि तै कर्मनि का अनुभाग वध हो है, तिनिके जघन्यादि स्थान ते अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हैं। बहुरि जिनि कषाय परिणामनि तै स्थिति बंध हो है, तिनिके जघन्यादि स्थान ते इहां

कषायाध्यवसाय स्थान कहे हैं। वा स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान भी इनिकौ कहिये। बहुरि बधनेरूप जो कर्मनि की स्थिति, तिनिके जघन्यादिक स्थान, ते स्थिति स्थान कहिए। इनिका विशेष स्वरूप आगें कहैंगे, सो जानना।

बहुरि इहां एक-एक स्थिति भेद के बंध के कारण अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान पाइये है। बहुरि एक-एक स्थिति बधाध्यवसाय स्थान विषै यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान पाइये। बहुरि एक एक अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान विषै जगच्छ्रेणी के असंख्यातवे भागमात्र योग स्थान पाइये है।

अब इनिके परिवर्तन का अनुक्रम ज्ञानावरण कर्म का उदाहरण करि कहिये है – कोऊ जीव पंचेंद्री सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी सो अपने योग्य जघन्य ज्ञानावरण नामा कर्म की स्थिति अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण बांधै है, इस जीव के यातै घाटि स्थिति बंध होता नाहीं, तातै याकै यहु ही जघन्य स्थिति स्थान है, सो कोडि के ऊपरि अर कोडाकोडि के नीचे जो होइ, ताकों अत:कोटाकोटी कहिये। तहां तिस जघन्य स्थिति बंध करनेवाले जीव कै तिस जघन्य स्थितिबंध कौं योग्य असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान पाइये है, ते परिणामनि की अपेक्षा अनंत भागादिक षट् स्थान कौं लीए हैं। बहुरि तिनिविषै भी जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान कौ निमित्तभूत अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण पाइये है। सो पूर्वोक्त कोऊ जीव कै अंत.कोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य ही तौ स्थिति स्थान है। अर ताके जघन्य ही कषायाध्यवसाय स्थान है, अर जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान है। अर तिस जीव के जैसा योग्य होइ, तैसा जघन्य ही योग स्थान पाइये है, तहा भाव परिवर्तन का प्रारभ हूवा। बहुरि तिसही जीव के स्थिति स्थान कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभाग वधाध्यवसाय स्थान ए तौ तीनों जघन्य ही रहे अर जघन्य तै असख्यात भागवृद्धि कौं लीए योग स्थान दूसरा भया, पीछे स्थिति स्थानादिक तीनौ तौ जघन्य ही रहे, अर योग स्थान तीसरा भया। असैं अनुक्रम तै अविभाग प्रतिच्छेदनि की अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असख्यात गुणवृद्धिरूप चतुस्थान पतित वृद्धि लीएं श्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण योग स्थान भए। बहुरि स्थिति स्थान अर कषायाध्यवसाय स्थान तौ जघन्य ही रहे, अर अनुभाग वधाध्यवसाय स्थान का दूसरा स्थान भया। तहां योग स्थान जघन्य तैं लगाइ, पूर्वोक्त प्रकार क्रम तै सर्व भए। बहुरि स्थिति स्थान अर कषायाध्यवसाय स्थान तौं जघन्य ही रहे,

अर अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान का तीसरा स्थान भया । तहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार भए, ऐसै क्रमतै अपने योग असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान भए । बहुरि स्थिति स्थान तौ जघन्य ही रह्या, अर कषायाध्यवसाय स्थान का दूसरा स्थान भया । तहां पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननि कौ लीए जघन्य तै लगाइ, अनुभागाध्यवसाय स्थान भए । बहुरि स्थिति स्थान तौ जघन्य ही रह्या, अर कपायाध्यवसाय स्थान का तीसरा स्थान भया । तहां भी पूर्वोक्त प्रकार योग स्थाननि कौ लीए, क्रम तैं अनुभागाध्यवसायस्थान भए, ऐसै ही क्रम तै अपने योग्य कपायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण भए । बहुरि जैसै यहु अंत कोटाकोटी प्रमाण जघन्य स्थिति स्थान विषैं अनुक्रम कह्या, तैसै ही जघन्य तै एक समय अधिक दूसरा स्थिति स्थान विषैं अपने योग्य योग स्थान अनुभागाध्यवसाय स्थान के परिवर्तन कौ लीए पूर्वोक्त प्रकार क्रम तै अपने योग्य सर्व कषायाध्यवसाय स्थान भए । बहुरि ऐसैं ही जघन्य तैं दोय समय अधिक तीसरा स्थिति स्थान विषै भए । ऐसै एक-एक समय बधता स्थिति स्थान का अनुक्रम करि तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जानना । बहुरि जैसैं यहु ज्ञानावरण अपेक्षा कथन कीया, तैसै ही कर्मनि की सर्व मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनि विषैं परिवर्तन का अनुक्रम जानना । ऐसैं यहु सर्व मिल्या हुवा भाव परिवर्तन जानना । इहां जघन्य स्थिति आदि विषैं सर्व ही कषायाध्यसाय स्थानादिकनि का पलटना न हो है । जघन्य स्थिति आदि विषै जे संभवैं तिन ही का पलटना हो है, ऐसा जानना ।

उक्तं च आर्या छंद—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि, भ्रमता भुवि भावसंसारे ।।१।।

लोक विषै भाव ससार विषै भ्रमण करता जीव करि प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बंध कौं योग्य, जे योगनि के, कषायनि के, स्थिति के, स्थान ते सब ही भोगिए है । इहां परिवर्तन का अनुक्रम विषै जघन्य स्थिति स्थान संबंधी स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान, योग स्थान जघन्य तै लगाइ उत्कृष्ट पर्यत हो है । तिनिकौ आदि दे करि सर्वोत्कृष्ट स्थिति पर्यंत अपने-अपने सबंधी जघन्य ते उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति बंधाध्यवसायादिक कौ स्थापि, यथासंभव जैसै गुणस्थान प्ररूपणा विषै प्रमाद भेदनि के निमित्ति अक्षसंचार करि परिवर्तन का विधान कह्या था, तैसै इहां भी अक्षसंचार करि परिवर्तन का विधान जानना । ऐसैं ए पंच परिवर्तन कहे ।

अब इनिका काल कहिए है-

सर्व तै स्तोक एक पुद्गलपरिवर्तन का काल है, सो अनंत है। बहुरि तातै अनंत गुणा क्षेत्र परिवर्तन का काल है। बहुरि तातै अनंत गुणा काल परिवर्तन का काल है। बहुरि तातैं अनंत गुणा भव परिवर्तन का काल है। बहुरि तातै अनंत गुणा भाव परिवर्तन का काल है। याहीं तैं एक जीव के अनादि तै लगाइ, अतीत काल विषैं भाव परिवर्तन थोरे भए; ते पणि अनंत भए। बहुरि तिनितै अनंतगुणे भव परिवर्तन भए। बहुरि तिनितै अनंत गुणे काल परिवर्तन भए। बहुरि तिनितै अनत गुणे क्षेत्र परिवर्तन भए, बहुरि तिनितै अनंत गुणे द्रव्य परिवर्तन भए, अैसे जानना।

बहुरि जैसे स्वर्गादि विषै दिन-रात्रि का अभाव है, तहां मनुष्य क्षेत्र अपेक्षा वर्ष आदि का प्रमाण कीजिए है, तैसे निगोदादि विषै जीवनि के जैसे जहां परिवर्तन का अनुक्रम न हो है। तहां अन्य जीव अपेक्षा परिवर्तन का काल ग्रहण कीजिए है।

उक्तं च आर्याछंद—

पंचविधे संसारे, कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः
मार्गमपश्यन् प्राणी, नानदुःखकुले भ्रमति ॥

जिनमत करि दिखाया जो मुक्ति का मार्ग, ताकौं न श्रद्धान करता प्राणी जीव नाना प्रकार दुःखनि करि आकुलित जो पंच प्रकार संसार, तीहिविषै भ्रमण करै है।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित गोम्मट सार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै भव्यमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका अैसा सोलहवां अधिकार सपूर्ण भया ॥१६॥

सतरहवां अधिकार : सम्यक्त्व-मार्गणा

ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन, बंदौं अमितविकास।
कुथ्वादिक कीए सुखी, जनम मरण करि नाश ।।

आगे सम्यक्त्व मार्गणा कौं कहैं है —

छ-प्पंच-णव-विहाणं, अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य, सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।।५६१।।[1]

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम् ।
आज्ञाया अधिगमेन च, श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ।।५६१।।

टीका – द्रव्य भेद करि छह प्रकार, अस्तिकाय भेद करि पांच प्रकार पदार्थ भेद करि नौ प्रकार अैसे जो सर्वज्ञ देव करि कहे जीवादिक वस्तु तिनका श्रद्धान–रुचि-यथावत् प्रतीति; सो सम्यक्त्व जानना । सो सर्वदेवने जैसें कह्या है, तैसें ही है। अैसे आप्तवचन करि सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जाका अैसी जो आज्ञा, तीहिकरि बिना ही प्रमाण नयादिक का विशेष जानें, श्रद्धान हो है । अथवा प्रत्यक्ष - परोक्ष प्रमाण अर द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय अर नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, निक्षेप अर व्याकरणादि करि साधित निरुक्ति अर निर्देश, स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादि करि विशेष निर्णयरूप है लक्षण जाका, अैसा जो अधिगम, तीहिकरि श्रद्धान हो है ।

उक्तं च —

सरागवीतरागात्म–विषयत्वाद् द्विधा स्मृतम् ।
प्रशमादिगुणं पूर्वं, परं चात्मविशुद्धिजम् ।।१।।

सम्यक्त्व दोय प्रकार है, एक सराग, एक वीतराग । तहां उपशम, संवेग, आस्तिक्यादिक गुणनिरूप राग सहित श्रद्धान होइ, सो सराग सम्यक्त्व है । बहुरि केवल चैतन्य मात्र आतमस्वरूप की विशुद्धता मात्र वीतराग सम्यक्त्व है ।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ स. १५३ गाथा स. ९६. पृष्ठ ३९७, गाथा स २१२

उक्तं च –

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे, चित्तमस्तित्वसंयुतम् ।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं, सम्यक्त्वेन युते नरे ।

सो सम्यदृष्टी जीव के सर्वज्ञ देव विषै, व्रत विषै, शास्त्र विषै, तत्त्व विषै असैं ही है असा अस्तित्वभाव करि संयुक्त चित्त हो है, सो सम्यक्त्व सहित जीव विषै आस्तिक्य गुण है। असैं अस्तित्ववादीनि करि कहिए है अथवा '**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्**'[1] असा कह्या है अथवा 'तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम्'[2] असा कह्या है, सो ए सर्व विशेषरण एकार्थ है। इनि सबनि का अर्थ यहु जानना–जो यथार्थ स्वरूप लीए, पदार्थनि का श्रद्धान, सो सम्यक्त्व है।

उक्तं च –

प्रदेशप्रचयात्कायाः, द्रवणाद्द्रव्यनामकाः ।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः, तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥१॥

अर्थ – सम्यक्त्व के श्रद्धान विषै आवने योग्य जे जीवादिक, ते बहुत प्रदेशनि का प्रचय - समूह कौं धरैं हैं, तातैं काय कहिए। बहुरि अपने गुण पर्यायनि कौं द्रवैं हैं, व्यापैं है, तातैं द्रव्य नाम कहिए। बहुरि जीव करि जानने योग्य है, तातैं अर्थ कहिए। बहुरि वस्तुस्वरूपपना कौं धरै है, तातैं तत्त्व कहिए। असैं इनिका सामान्य लक्षण जानना।

आगैं षट्द्रव्यनि के अधिकार कहै हैं –

छद्दव्वेसु य णामं, उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो ।
अत्थणखेत्तं संखा, ठाणसरूवं फलं च हवे ॥५६२॥

षड्द्रव्येषु च नाम, उपलक्षणानुवाद अस्तित्वकालाः ।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या, स्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ॥५६२॥

टीका – षट् द्रव्यनि के वर्णन विषै १ नाम, २ उपलक्षणानुवाद, ३ स्थिति, ४. क्षेत्र, ५ संख्या, ६. स्थानस्वरूप, ७ फल ए सात अधिकार जानने।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय १, सूत्र २।
२. अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा ३८।

तहां प्रथम कह्या जो नाम अधिकार, ताहि कहै हैं —

जीवाजीवं दव्वं, रूवारूवि त्ति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा, कम्मविमुक्का अरूवगया ॥५६३॥

जीवजीवं द्रव्यं, रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकम् ।
संसारस्था रूपिणः, कर्मविमुक्ता अरूपगताः ॥५६३॥

टीका – सामान्य संग्रह नय अपेक्षा द्रव्य एक प्रकार है । बहुरि सोई द्रव्य भेद विवक्षा करि दोय प्रकार है । एक जीव द्रव्य, एक अजीवद्रव्य, तहा जीव द्रव्य दोय प्रकार है – एक रूपी, अर एक अरूपी, तहा जे जीव संसार अवस्था विषै तिष्ठै हैं । तिनिके मूर्तीक पुद्गल का संबंध पाइए है । तातै तिनकौ रूपी कहिए । बहुरि सिद्ध भगवान पुद्गलीक कर्म करि मुक्त भए हैं । तातै तिनकौ अरूपी कहिए । बहुरि अजीव द्रव्य भी रूपी, अरूपी के भेद तैं दोय प्रकार हैं ।

सो कहिए है —

अज्जीवेसु य रूवी, पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य, चत्तारि अरूविणो होंति ॥५६४॥

अजीवेषु रूपीणि, पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि ।
आकाशं कालोऽपि च, चत्वारि अरूपीणि भवंति ॥५६४॥

टीका – अजीव द्रव्यनि विषै पुद्गल द्रव्य तौ रूपी है । स्पर्श, रस, गध, वर्ण गुण संयुक्त मूर्तीक है । बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य ए च्यारि अरूपी हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित अमूर्तीक है ।

इहाँ उक्तं च—

वर्णगंधरसस्पर्शैः, पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥

अर्थ – पूरण अर गलन कौं जो करै, सो पुद्गल कहिए । युक्त होने का नाम पूरण है, अर बिछुडने का नाम गलन है, जातै वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुणनि करि पूरण गलन कौ स्कंधवत् करै है । जैसै स्कंध विषै कोऊ परमाणू मिलै हैं, कोऊ बिछुरै हैं । तैसै परमाणू विषैं कोऊ वर्णादिक का भेद उत्पन्न हो है, सो मिलै है । कोऊ नष्ट हो है, सो बिछुरै है । तातै परमाणू है, ते पुद्गल कहे हैं ।

बहुरि ऐसै परमाणूनि कै पुद्गलपना होते द्वयणुक आदि स्कंधनि के कैसे पुद्गलपना है ?

सो कहिए है – कोऊ परमाणू मिलै है, कोऊ विछुरै है, सो ऐसा प्रदेशनि का पूरण गलन करि करि जे द्रवै हैं, द्रवैंगे द्रए, तातैं तिनकौ पुद्गल कहिए है । अपने स्वभाव रूप परिणमने का नाम द्रवना है; इस द्रवत्व गुण तें द्रव्य नाम पावै है ।

इहां प्रश्न – जो परमाणू कौ अविभाग निरंश कहिए है, सो परमाणू तो छह कौंण कौं लीएं गोल आकार है; सो जहां छह कोण भए, तहां छह अंश सहज ही आए, तौ निरंश कैसें कहिए ?

उक्तं च –

> **षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ।**
> **षण्णां समानदेशित्वे, पिंडं स्यादणुमात्रकम् ॥१॥**

अर्थ –– युगपत् छह कौण का समुदाय है; तातैं परमाणू कै छह अंशपना संभवै है । छहों कौ समानरूप कहतैं संतें परमाणू मात्र पिंड हो है ।

ताकां उत्तर – परमाणू कै द्रव्यार्थिक नय करि निरंशपणा है; परन्तु पर्यायार्थिक नय करि छह अंश कहने में किछू दोष नाही ।

उक्तं च –

> **आद्यंतरहितं द्रव्यं, विश्लेषरहितांशकम् ।**
> **स्कंधोपादानमत्यक्षं, परमाणु प्रचक्षते ॥१॥**

जो द्रव्य आदि अंत रहित है । बहुरि जिस विषै छह अंश पाइए है । [illegible]
भिन्न भिन्न न हो हैं, तातें भिन्न भाव रहित अंश कौ धरै है । बहुरि [illegible]
शक्ति का धारक है । बहुरि इंद्रिय गम्य नाही है । ऐसे द्रव्य कौ परमाणु [illegible]
परमाणू विषैं कोणनि की अपेक्षा छह अंश हे । ते अंश कबहू भिन्न भिन्न [illegible]
अथवा परमाणू तैं छोटा जगत विषै कोऊ और पदार्थ भी नाही है । [illegible]
करि भाग कल्पना कीजिए; तातें परमाणू कौं अविभाग कहिए है । बहुरि [illegible]
की अपेक्षा छह अंश कहिए; तौ भी किछू दोष नाही । बहुरि [illegible]

परमाणू गोल कह्या है; सो यहु षट्कोण को लीए आकार गोल क्षेत्र ही का भेद है, ताते गोल कह्या है। असे अणू वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तो रूपी अजीव द्रव्य जानना। बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य ए चार्यो अरूपी अजीव द्रव्य जानने इति। नामाधिकार।

उवजोगो वण्णचऊ, लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥५६५॥

उपयोगो वर्णचतुष्कं, लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णाम् ॥५६५॥

टीका – द्रव्यनि के लक्षण कहै है। तहां जीव अर पुद्गलनि के लक्षण (क्रमशः) उपयोग अर वर्ण चतुष्क जानना। तहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवनि का लक्षण है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलनि का लक्षण है। बहुरि गति, स्थान, अवगाह, वर्तनारूप क्रिया का उपकार ते धर्मादिक च्यारि द्रव्यनि के लक्षण हैं। तहां गतिहेतुत्त्व धर्म द्रव्य का लक्षण हैं। स्थितिहेतुत्व अधर्म द्रव्य का लक्षण है। अवगाहहेतुत्व आकाश द्रव्य का लक्षण है। वर्तनाहेतुत्व काल द्रव्य का लक्षण है।

गदिठाणोग्गहकिरिया, जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे।
धम्मतिये ण हि किरिया, मुक्खा पुण साधगा होंति ॥५६६॥

गतिस्थानावगाहक्रिया, जीवानां पुद्गलानामेव भवेत्।
धर्मत्रिके न हि क्रिया, मुख्याः पुनः साधका भवंति ॥५६६॥

टीका – गति, स्थिति, अवगाह ए तीन क्रिया जीव अर पुद्गल ही के पाइए है। तहाँ प्रदेश तै प्रदेशातर विषै प्राप्त होना, सो गति क्रिया है। गमन करि कही तिष्ठना, सो स्थिति क्रिया है। गति-स्थिति लीए वास करना, सो अवगाह क्रिया जानना। बहुरि धर्म, अधर्म, आकाश विषै ए क्रिया नाही है; जातै इनके स्थानचलन प्रदेशचलन का अभाव है। तहां अपने स्थान कौ छोडि अन्य स्थान होना, सो स्थान-चलन कहिए। प्रदेशनि का चंचलरूप होना सो प्रदेशचलन कहिए। बहुरि धर्मादिक द्रव्य गति, स्थिति, अवगाह क्रिया के मुख्य साधक हैं।

जीव पुद्गलनि कं जो गति, स्थिति, अवगाह क्रिया हो है; ताकौ निमित्त मात्र ही है, सो कहिए है —

जत्तस्स पहं ठत्तस्स, आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे, धम्मतियं साधगं होदि ।।५६७।।

यातस्य पंथाः तिष्ठतः, आसनं निवसकस्य वसतिर्वा ।
गतिस्थानावगाहकरणे, धर्मत्रयं साधकं भवति ।।५६७।।

टीक – जैसे गमन करनेवालों कौ पंथा जो मार्ग, सो कारण है । तिष्ठनेवालौ कौ आसन जो स्थान, सो कारण है । निवास करनेवालों कौ वसतिका जो वसने का क्षेत्र, सो कारण है । तैसे गति, स्थिति, अवगाह के कारण धर्मादिक द्रव्य है । जैसे ते पंथादिक आप गमनादि नाही करै है; जीवनि कौ प्रेरक होइ गमनादि नाई करावै है । स्वयमेव जे गमनादि करैं, तिनको कारणभूत हो है । सो कारण इतना ही, जो जहां पंथादिक होंइ, तहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तें । तैसे धर्मादिक द्रव्य आप गमनादि नाही करै है; पुद्गलनि कौ प्रेरक होइ गमनादिक क्रिया नाही करावै हैं; स्वयमेव ही गमनादिक क्रियारूप प्रवर्तते जे जीव पुद्गल, तिनकौ सहकारी कारण हो है । सो कारण इतना ही जो धर्मादिक द्रव्य जहां होइ, तहां ही गमनादि क्रियारूप जीव पुद्गल प्रवर्तै है ।

वत्तणहेदू कालो, वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य, वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ।।५६८।।

वर्तनाहेतु. कालः, वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च, वर्तंते हि सर्वद्रव्याणि ।।५६८।।

टीका – णिच् प्रत्य सयुक्त जो वृतञ् धातु, ताका कर्म विषै वा भाव विषै वर्तना शब्द निपजै है, सो याका अर्थ यहु जो वर्तै वा वर्तन मात्र होइ, ताकौ वर्तना कहिए । सो धर्मादिक द्रव्य अपने अपने पर्यायनि की निष्पत्ति विषै स्वयमेव वर्तमान है । तिनकै बाह्य कोई कारणभूत उपकार बिना सो प्रवृत्ति संभवै नाहीं, तातै तिनकै, तिस प्रवृत्ति करावने कौ कारण काल द्रव्य है; असें वर्तना काल का उपकार जानना । इहां णिच् प्रत्यय का अर्थ यहु - जो द्रव्यनि का पर्याय वर्तै है, ताका वर्तावनेवाला काल है ।

तहां प्रश्न — जो जैसैं शिष्य पढै है; अर उपाध्याय पढावै है । तहां दोऊनिकै पठनक्रिया देखिए है । तैसैं धर्मादिक द्रव्य प्रवर्तै है अर काल प्रवर्तावै है; तौ धर्मादिक द्रव्य की ज्यौं काल कैं भी तिनि पर्यायनि का प्रवर्तनरूप क्रिया का सद्भाव आया ।

तहां उत्तर — जो अैसें नाही है । इहां निमित्तमात्र वस्तु कौ हेतु का कर्ता कहिए है । जैसैं शीतकाल विषैं शीत करि शिष्य पढने कौ समर्थ न भए; तहां कारीषा के अग्नि का निमित्त भया । तब वे पढने लग गए । तहा निमित्त मात्र देखि अैसा कहिए जो कारीषा की अग्नि शिष्यनि कौ पढावै है; सो कारीपा की अग्नि आप पढनेरूप क्रियावान न हो है । तिनिके पढने कौ निमित्तमात्र है । तैसें काल आप क्रियावान न हो है । काल के निमित्त तैं वे स्वयमेव परिणवै हैं । तातै अैसा कहिए है । जो तिनिकौ काल प्रवर्तावै है ।

बहुरि तिस काल का निश्चय कैसै होइ ?

सो कहिए है - समय, घडी इत्यादिक क्रियाविशेष, तिनिकौ लोक विषै समयादिक कहिए है । बहुरि समय, घडी इत्यादि करि जे पचनादि क्रिया होंइ, तिनिकौ लोक विषै पाकादिक कहिए है । तहा तिनि विषै काल अैसा जो शब्द आरोपण कीजिए है । समय काल, घडी काल, पाक काल इत्यादि कहिए है, सो यहु व्यवहार काल मुख्य काल का अस्तित्व कौ कहै है । जातै गौण है, सो मुख्य की सापेक्षा कौ धरै है । जैसैं किसी पुरुष कौ सिंह कह्या, तौ तहां जानिए है, जो कोई सिंह नामा पदार्थ जगत विषै पाइए है । अैसें काल का निश्चय कीजिए है । प्रत्यक्ष केवली जानैं है ।

बहुरि षट् द्रव्य की वर्तना कौं कारण मुख्य काल है । वर्तना गुण द्रव्यसमूह विषै ही पाइए है; अैसें होतैं काल का आधार करि सर्व द्रव्य प्रवर्तै है । अपने अपने पर्यायरूप परिणमैं है; यातै परिणमनरूप जो क्रिया, ताकौं परत्व[१] अर अपरत्व जो आगैं पीछैपना, सो काल का उपकार है ।

इहां प्रश्न जो क्रिया का परत्व - अपरत्व तौ जीव पुद्गल विषैं है, धर्मादिक अमूर्तीक द्रव्यनि विषै कैसैं संभवै ? सो कहै हैं ।

---

१. तत्वार्थसूत्र मे—'वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' अ. ५ सूत्र २२, ।

धम्माधम्मादीणं, अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो, हायंतो वट्टदे जम्हा ॥५६९॥

धर्म्म धर्म्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ॥५६९॥

टीका–जातै धर्म अधर्मादिक द्रव्यनि कै अपने द्रव्यत्व कौ कारणभूत शक्ति के विशेष रूप जे अगुरुलघु नामा गुण के अविभाग प्रतिच्छेद, ते अनंत भागवृद्धि आदि षट्स्थान पतित वृद्धि करि तौ बधै है । अर अनंतभागहानि आदि षट्स्थान पतित हानि करि घटै है, तातै तहा असे परिणमन विषै भी मुख्य काल ही कौ कारण जानना ।

ण य परिणमदि सयं सो, ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं, हवदि हु कालो सयं हेदू ॥५७०॥

न च परिणमति स्वयं स, न च परिणमयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां, भवति हि कालः स्वयं हेतुः ॥५७०॥

टीका – सो कालसंक्रम जो पलटना, ताका विधान करि अपने गुणनि करि परद्रव्यरूप होइ नाही परिणवै है । बहुरि परद्रव्य के गुणनि कौ अपने विषै नाहीं परिणमावै है । बहुरि हेतुकर्ता प्रेरक होइकरि भी अन्य द्रव्य कौ अन्य गुणनि करि सहित नाही परिणमावै है । तो नानाप्रकार परिणमनि कौ धरै जे द्रव्य स्वयमेव परिणमें है, तिनकौ उदासीन सहज निमित्त मात्र हो है । जैसे मनुष्य कै प्रभात गमनादि क्रिया कौ प्रभातकाल कारण है । क्रियारूप तौ स्वमेव मनुष्य ही प्रवर्तै है, परन्तु तिनिकौ निमित्त मात्र प्रभात का काल हो है, तैसे जानना ।

कालं अस्सिय दव्वं, सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं, सुद्धणये होदि खणमेत्तं ॥५७१॥

कालमाश्रित्य द्रव्यं, स्वकस्वकपर्यायपरिणत भवति ।
पर्यायावस्थानं, शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ॥५७१॥

टीका – काल का निमित्तरूप आश्रय पाइ, जीवादिक [illegible] कीय पर्यायरूप परिणए है । तिस पर्याय का जो अवस्थान, [illegible] ऋजुसूत्रनय करि अर्थ पर्याय अपेक्षा एक समय मात्र जानना ।

ववहारो य वियप्पो, भेदो तह पज्जम्रो त्ति एयट्ठो ।
ववहार-अवट्ठाण-ट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥५७२॥

व्यवहारश्च विकल्पो, भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ॥५७२॥

टीका — व्यवहार अर विकल्प अर भेद अर पर्याय ए सर्व एकार्थ है । इनि शब्दनि का एक अर्थ है । तहा व्यजन पर्याय का अवस्थान जो वर्तमानपना, ताकरि स्थिति जो काल का परिमाण, सोई व्यवहार काल है ।

अवरा पज्जायठिदी, खणमेत्तं होदि तं च समम्रो त्ति ।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

अवरा पर्यायस्थितिः, क्षणमात्रं भवति सा च समय इति ।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ॥५७३॥

टीका – द्रव्यनि कै जघन्य पर्याय की स्थिति क्षण मात्र है । सो क्षण नाम समय का है । समीप तिष्ठती दोय परमाणू मद गमनरूप परिणई, जेता काल विषैं परस्पर उलघन करै, तिस काल प्रमाण का नाम समय है ।

इहा प्रसग पाइ दोय गाथा कहै है—

णभ एय पयेसत्थो, परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं, जावदियं जाति तं समयकालो ॥१॥

आकाश का एक प्रदेश विषै तिष्ठता परमाणू मंदगतिरूप परिणई, सो तिस प्रदेश के अनतरि दूसरा प्रदेश, ताकौं जेता काल करि प्राप्त होइ, सो समय नामा काल है ।

सो प्रदेश कितना है ? सो कहै है—

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं, अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं, अवरावरकारणं जस्स ॥२॥

जिस परमाणू के आगे पीछै कौ कारण अैसा आकाश द्रव्य आकाश विषै अैसा कहिए है, जो यहु आकाश इस परमाणू के आगै है, यहु पीछै है, सो आकाश द्रव्य, तिस परमाणू करि जितना रुकै, व्याप्त होइ, तिस क्षेत्र का नाम प्रदेश कह्या है ।

आगै व्यवहार काल कौ कहै है--

आवलिअसंखसमया, संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो, सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥५७४॥

आवलिरसंख्यसमया, संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः, सप्तस्तोका लवो भणितः ॥५७४॥

टीका – जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय, तिनिका समूह, सो आवली है । बहुरि सख्यात आवली का समूह सो उश्वास है । सो उश्वास कैसा है ?

उक्तं च--

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो, एगो पाणो त्ति आहीदो ॥१॥

जो कोई मनुष्य आढय-सुखी होइ, आलस्य रोगादि करि रहित होइ, स्वाधीन होइ, ताका सासोस्वास नामा एक प्राण कह्या है, ताका काल जानना । बहुरि सात उस्वास का समूह, सो स्तोक नामा काल है । बहुरि सात स्तोक का का समूह, सो लव नामा काल है ।

अट्ठत्तीसद्धलवा, नाली बेनालियो मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं, भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥५७५॥

अष्टत्रिंशदर्धलवा, नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु ।
एकसमयेन हीनो, भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ॥५७५॥

टीका — साढा अडतीस लवनि का समूह, सो नाली है । नाली नाम घटिका का है । बहुरि दोय घटिका समूह, सो मुहूर्त है । इस मुहूर्त में एक समय घटाइये तब

भिन्न मुहूर्त हो है वा याकौ उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त कहिए । यातैं आगैं दोय समय घाटि मुहूर्त आदि अंतर्मुहूर्त के विशेष जानने । इहां प्रासांगिक गाथा कहै है--

ससमयमावलिअवरं, समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं, वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥

एक समय अधिक आवली मात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है । बहुरि एक समय घाटि मुहूर्त मात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । मध्य समय विषै दोय समय सहित आवली तै लगाइ, दोय समय घाटि मुहूर्त पर्यंत असंख्यात भेद लीए, मध्य अंतर्मुहूर्त है । ऐसे जानहु ।

दिवसो पक्खो मासो, उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ॥५७६॥

दिवसः पक्षो मासः, ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि ।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ॥५७६॥

टीका – तीस मुहूर्त मात्र अहोरात्र है । मुख्यपनै पंचदश अहोरात्र मात्र पक्ष है । दोय पक्ष मात्र एक मास है । दोय मास मात्र एक ऋतु हो है । तीन ऋतु मात्र एक अयन हो है । दोय अयन मात्र एक वर्ष हो है । इत्यादि आवली तै लगाइ संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत अनुक्रम तैं श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान का विषय भूत व्यवहार काल जानना ।

ववहारो पुण कालो, माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे, ववहारो खलु समाणो त्ति ॥५७७॥

व्यवहारः पुनः कालः, मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु ।
ज्योतिष्काणां चारे, व्यवहारः खलु समान इति ॥५७७॥

टीका — बहुरि व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्र विषै प्रगटरूप जानने योग्य हैं; जातै मनुष्यक्षेत्र विषैं ज्योतिषी देवनि का चलने का काल अर व्यवहार काल समान है ।

ववहारो पुण तिविहो, तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ।।५७८।।

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ।।५७८।।

टीका — बहुरि व्यवहार काल तीन प्रकार है अतीत, अनागत, वर्तमान । तहां अतीत काल सिद्ध राशि कौ संख्यात आवली करि गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । कैसे ? सो कहिए है – छह महीना अर आठ समय माही छ सै आठ जीव सिद्ध हो है; तो जीव राशि के अनंतवे भाग प्रमाण सर्व सिद्ध केते काल में भये ? ऐसे त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि छ सै आठ, फलराशि छह महीना आठ समय, इच्छा राशि सिद्धनि का प्रमाण, सो फल राशि कौ इच्छाराशि करि गुणे, प्रमाणराशि का भाग दीए, लब्धराशि संख्यात आवली करि सिद्धनि कौ गुणे जो प्रमाण होइ, तितना आया । सोई अनादि तै लगाइ अतीत काल का परिमाण जानना।

समयो हु वट्टमाणो, जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो, इदि ववहारो हवे कालो ।।५७६।।

समयो हि वर्तमानो, जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित, इति व्यवहारो भवेत्कालः ।।५७६।।

टीका — वर्तमान काल एक समय मात्र जानना । बहुरि भावी जो अनागत काल, सो सर्व जीवराशि तै वा सर्व पुद्गलराशि तै भी अनंतगुणा जानना । ऐसें व्यवहार काल तीन प्रकार कह्या ।

कालो वि य ववएसो, सब्भावरूवओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी, अवरो दीहंतरट्ठाई ।।५८०।।

काल इति च व्यपदेशः, सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ।।५८०।।

टीका — काल ऐसा जो लोक विषै कहना है, सो मुख्य काल का अस्तित्व का कहनहारा है । मुख्य बिना गौण भी न होइ । जो सिंह पदार्थ ही न होइ तो यहु पुरुष सिंह ऐसा कैसे कहने में आवै सो मुख्य काल द्रव्य करि नित्य है, तथापि पर्याय

करि ऊत्पाद व्यय कौ धरै है । तातै उत्पन्न-प्रध्वंसी कहिए है । बहुरि व्यवहार काल है, सो वर्तमान काल अपेक्षा उत्पाद - व्यय रूप है । तातै उत्पन्न-प्रध्वंसी है । बहुरि अतीत, अनागत, अपेक्षा बहुत काल स्थिति कौं धरै है । तातै दीर्घांतर स्थायी है । इहां प्रासागिक श्लोक कहिये है—

निमित्तमांतरं तत्र, योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्निश्चयकालस्तु, निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ।।

तीहिं वस्तु विषै तिष्ठती परिणमनरूप जो योग्यता, सो अंतरंग निमित्त है । बहुरि तिस परिणमन का निश्चय काल बाह्य निमित्त है । असै तत्त्वदर्शीनि करि निश्चय कीया है । इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ।

छद्दव्वावट्ठाणं, सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा, मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ।।५८१।।

षड्द्रव्यावस्थानं, सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा, मिलिते तेषां स्थितित्वात् ।।५८१।।

टीका – अवस्थान नाम स्थिति का है; सो षट् द्रव्यनि का अवस्थान समान है । काहे तें ? सो कहिए है – सूक्ष्म वचन अगोचर क्षणस्थायी असै तौ अर्थपर्याय अर स्थूल, वचन गोचर चिरस्थायी अैसे व्यंजन पर्याय, सो त्रिकाल संबंधी अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय मिलै, तिनि सर्व ही द्रव्यनि की स्थिति हो है । तातै सर्व द्रव्यनि का अवस्थान समान कह्या । सर्व द्रव्य अनादिनिधन है ।

आगे इस ही अर्थ कौ दृढ करै है—

एय-दवियम्मि जे, अत्थ-पज्जया वियण-पज्जया चा वि ।
तीदाणागद-भूदा, तावदियं तं हवदि दव्वं[1] ।।५८२।।

एकद्रव्ये ये, अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ।।५८२।।

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३८८ गाथा सं० १९९

टीका — एक द्रव्य विषै जे गुणनि के परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि लीए अर्थ पर्याय, बहुरि द्रव्य के आकारादि परिणमनरूप व्यंजन पर्याय, ते अतीत-अनागत अपि शब्द तै वर्तमान संबधी यावन्मात्र है; तावन्मात्र द्रव्य जानना। जातैं द्रव्य तिनतै जुदा है नाही, सर्व पर्यायनि का समूह सोई द्रव्य है। इति स्थित्यधिकारः।

आगासं वज्जित्ता, सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं।
वावी धम्माधम्मा, णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥५८३॥

आकाशं वर्जयित्वा, सर्वाणि लोके चैव न संति बहिः।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ, अवस्थितावचलितौ नित्यौ ॥५८३॥

टीका — अब क्षेत्र कहै है; सो आकाश बिना अवशेष सर्वद्रव्य लोक विषै ही हैं, बाह्य अलोक विषै नाही है। तिन विषै धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य तिल विषै तेल की ज्यों सर्व लोक विषै व्याप्त है; तातै व्यापी कहिए। बहुरि निजस्थान तै स्थानांतर विषै चले नाही है; तातैं अवस्थित है। बहुरि एक स्थान विषै भी प्रदेशनि का चंचलपना, तिनके नाही है; तातै अचलित है। बहुरि त्रिकाल विषै विनाश नाही है; तातै नित्य है। असें धर्म, अधर्म द्रव्य जानने। इहां प्रासगिक श्लोक—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः, कटाकाशतिलेषु च ॥

आधार तीन प्रकार है – औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक। तहां चटाई विषै कुमार सोवै है, असा कहिए, तहा औपश्लेषिक आधार जानना। बहुरि आकाश विषै घटादिक द्रव्य तिष्ठैं हैं, असा कहिए, तहां वैषयिक आधार जानना। बहुरि तिल विषै तेल है, असा कहिए; तहां अभिव्यापक आधार जानना। सो इहा तिलनि विषै तेल की ज्यों लोकाकाश के सर्व प्रदेशनि विषै धर्म, अधर्म द्रव्य अपनें प्रदेशनि करि व्याप्त है। तातै इहां अभिव्यापक आधार है। याही तै आचार्यनै धर्म अधर्म द्रव्य कौ व्यापी कह्या है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति।
अप्पपदेसविप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥५८४॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥५८४॥

टीका – जीव का क्षेत्र कहै हैं, सो शरीरमात्र अपेक्षा तो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना तें लगाइ, एक एक प्रदेश बधता उत्कृष्ट महामत्स्य की अवगाहना पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि समुद्घात अपेक्षा वेदना समुद्घातवाले का एक एक प्रदेश क्षेत्र विषै बधता बधता महामत्स्य की अवगाहना तें तिगुणा लंबा, चौड़ा क्षेत्र पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपर एक एक प्रदेश बधता बधता मारणांतिक समुद्घातवाले का स्वयंभू रमण समुद्र का बाह्य स्थंडिल क्षेत्र विषै तिष्ठता जो महामत्स्य, सो सप्तमनरक विषै महारौरव नामा श्रेणीबद्ध बिला प्रति कीया जो मारणांतिक समुद्घात तीहि विषै पांच सै योजन चौडा, अढाई सै योजन ऊंचा, प्रथम वक्रगति विषै एक राजू, द्वितीय वक्र विषै आधा राजू, तृतीय वक्र विषैं छह राजू, लंबाई लीएं जो उत्कृष्ट क्षेत्र हो है; तहां पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि केवलिसमुद्घात विषै लोकपूरण पर्यंत क्षेत्र जानना । सो असैं सर्व भेदरूप क्षेत्र विषै अपने प्रदेशनि का विस्तार - संकोच होतें जीवद्रव्य व्यापृतं कहिए व्यापक हो है । संकोच होतें स्तोक क्षेत्र विषै आत्मा के प्रदेश अवगाहरूप तिष्ठै है । विस्तार होतें ते फैलिकरि घने क्षेत्र विषै तिष्ठे है । जातै जीव कै अवगाहना का भेद वा उपपाद वा समुद्घात भेद सर्व ही संभवै है । तातै पूर्वोक्त जीव का क्षेत्र जानना ।

पोग्गलदव्वाणं पुण, एयपदेसादि होंति भजणिज्जा ।
एक्केक्को दु पदेसो, कालाणूणं धुवो होदि ॥५८५॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवन्ति भजनीयाः ।
एकैकस्तु प्रदेशः, कालाणूनां ध्रुवो भवति ॥५८५॥

टीका – पुद्गलद्रव्यनि का एक प्रदेशादिक यथासंभव भजनीय कहिए भेद करने योग्य क्षेत्र जानना, सो कहिए है – दोय अणू का स्कंध एक प्रदेश विषै तिष्ठै वा दोय प्रदेशनि विषै तिष्ठै, बहुरि तीन परमाणूनि का स्कंध एक प्रदेश वा दोय प्रदेश वा तीन प्रदेश विषै तिष्ठै, असैं जानना । बहुरि कालाणू एक एक लोकाकाश का प्रदेश विषै एक एक पाइए है, सो ध्रुवरूप है, भिन्न भिन्न सत्त्व धरै है; तातै तिनिका क्षेत्र एक एक प्रदेशी है–

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा ।
लोगागासेव ठिदी, एगपदेसो अणुस्स हवे ॥५८६॥

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव, स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥५८६॥

टीका - दोय अणू का स्कंध तैं लगाइ, पुद्गल स्कंध संख्यात, असख्यात, अनंत परमाणूरूप है । तथापि ते वे सर्व लोकाकाश ही विषैं तिष्ठै हैं । जैसैं संपूर्ण जल करि भर्या हूवा पात्र विषै क्रम तैं गेरे हुवे लवण, भस्मी, सूई आदि एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठै हैं; तैसैं जानना । बहुरि अविभागी परमाणू का क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र हो है-

लोगागासपदेसा, छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं, अण्णेहिं विवज्जियं होदि ॥५८७॥

लोकाकाशप्रदेशाः, षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ॥५८७॥

टीका – लोकाकाश के प्रदेश सर्व ही षट्द्रव्यनि करि सदाकाल प्रगट व्याप्त हैं । बहुरि अलोकाकाश सर्व ही अन्य द्रव्यनि करि रहित है । इति क्षेत्राधिकारः ।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं, लोगपदेसप्पमा कालो ॥५८८॥

जीवा अनंतसंख्या, अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं, लोकप्रदेशप्रमः कालः ॥५८८॥

टीका – संख्या कहैं हैं – तहां द्रव्य परिमाण करि जीव द्रव्य अनंत है । बहुरि तिनि तै अनंत गुणे पुद्गल के परमाणू हैं । बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य एक-एक ही है, जातै ए तीनौ अखंड द्रव्य है । बहुरि जेते लोकाकाश के प्रदेश है, तितनें कालाणू है—

लोगागासपदेसे, एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव, ते कालाणू मुणेयव्वा[1] ॥५८९॥

१–द्रव्यसग्रह गाथा सं २२

लोकाकाशप्रदेशे, एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव, ते कालाणवो मंतव्याः ।।५८९।।

टीका – लोकाकाश का एक-एक प्रदेश विषै जे एक-एक तिष्ठै है । जैसैं रत्ननि की राशि भिन्न-भिन्न तिष्ठै, तैसै जे भिन्न-भिन्न तिष्ठै है, ते कालाणू जानने ।

ववहारो पुण कालो, पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा, आगासपदेसपरिसंखा ।।५९०।।

व्यवहारः पुनः कालः, पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
तत अनंतगुणिता, आकाशप्रदेशपरिसंख्या ।।५९०।।

टीका – बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्य तै अनंत गुणा समयरूप जानना । बहुरि तिनि तैं अनतगुणी सर्व आकाश के प्रदेशनि की संख्या जाननी ।

लोगागासपदेसा, धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण, परमाणु-अवट्ठिदं खेत्तं ।।५९१।।

लोकाकाशप्रदेशा, धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः, पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रम् ।।५११।।

टीका – लोकाकाश के प्रदेश अर धर्मद्रव्य के प्रदेश अर अधर्मद्रव्य के प्रदेश अर एक जीवद्रव्य के प्रदेश सर्व सख्याकरि समान है, जाते ए सर्व जगच्छ्रेणी का घनप्रमाण है । बहुरि पुद्गल परमाणू जेता क्षेत्र कौ रोकै, सो प्रदेश का प्रमाण है; ताते जघन्य क्षेत्र अर जघन्य द्रव्य अविभागी है ।

आगे क्षेत्र प्रमाण करि छह द्रव्यनि का प्रमाण कीजिए है । तहां जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण है । लोकाकाश के प्रदेशनि तै अनंत गुणा है । कैसै ? सो त्रैराशिक करि कहिए है–प्रमाण राशि लोक, अर फलराशि एक शलाका, अर इच्छाराशि जीवद्रव्य का प्रमाण । सो फल करि इच्छा कौ गुणै, प्रमाण का भाग दीए, लब्ध-राशि जीवराशि कौ लोक का भाग दीजिए, इतना आया, सो यहु शलाका का परिमाण भया । बहुरि प्रमाण राशि एक शलाका, फलराशि लोक, अर इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण, सो पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण जीवराशि कौ लोक का भाग दीए, अनंत पाए, सो जानना । इस अनंत कौ फलराशि लोक करि गुणिए

अर प्रमाण राशि एक का भाग दीजिए, तब लब्धराशि अनंतलोक प्रमाण भया; तातैं जीव द्रव्य अनतलोक प्रमाण कहे। अैसैं ही अन्यत्र काल प्रमाणादिक विषै त्रैराशिक करि साधन करि लेना। बहुरि जीवनि तै पुद्गल अनंत गुणे है। बहुरि धर्म, अधर्म, लोकाकाश अर काल द्रव्य ए लोकमात्र प्रदेशनि कौं धरै है। बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्य तैं अनंत गुणा है। बहुरि अलोकाकाश का प्रदेश काल तैं अनंत गुणा है।

बहुरि काल प्रमाण करि जीवद्रव्य का प्रमाण कहिए है - प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवनि का परिमाण, इहां लब्धराशिप्रमाण शलाका अनत भई। बहुरि प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण, सो पूर्वोक्त प्रकार फल करि इच्छा कौं गुणैं, प्रमाण का भाग दीएं, लब्धराशि प्रमाण अतीत काल तै अनंत गुणा जीवनि का प्रमाण जानना। इनि तै पुद्गल द्रव्य अर व्यवहार काल के समय अर अलोकाकाश के प्रदेश अनंत गुणे अनंत गुणे क्रम तै अनंत अतीत काल मात्र जानने।

बहुरि धर्मादिक का प्रमाण कहिए है - प्रमाण कल्पकाल, फल एक शलाका, इच्छा लोक प्रमाण, तहां लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल कल्पकाल, इच्छा पूर्वोक्त शलाका प्रमाण, सो यथोक्त करता लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण, धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल ए च्यार्यौ जानने। बीस कोडाकोडी सागर के संख्याते पल्य भए, तीहि प्रमाण कल्पकाल है। इसतै असख्यात गुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल के प्रदेश हैं।

बहुरि भाव प्रमाण करि जीवद्रव्य का प्रमाण विषै प्रमाणराशि जीवद्रव्य का प्रमाण, फल एक शलाका, इच्छा केवलज्ञान. लब्धप्रमाण शलाका अनत, बहुरि प्रमाण राशि शलाका का प्रमाण फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका, सो यथोक्त करता लब्धराशि प्रमाण केवलज्ञान के अनतवे भागमात्र जीवद्रव्य जानने। ते पुद्गल, काल, अलोकाकाश की अपेक्षा च्यारि बार अनंत का भाग केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कौ दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने जीवद्रव्य है। तिनि तै अनंत गुणे पुद्गल है। तिनि तै अनंत गुणे काल के समय है। तिनि तै अनंत गुणे अलोकाकाश के प्रदेश है। तेऊ केवलज्ञान के अनतवें भाग ही हैं। बहुरि धर्मादिक का प्रमाण विषै प्रमाण लोक, फल एक शलाका, इच्छा अवधिज्ञान के भेद,

लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भईं। बहुरि प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फल राशि अवधिज्ञान के भेद, इच्छाराशि एक शलाका, सो यथोक्त करना अवधिज्ञान के जेते भेद हैं, तिनि के असंख्यातवें भाग प्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल इनि च्यार्यों के एक-एक प्रदेशनि का प्रमाण भया। इति संख्याधिकारः।

सव्वमरूवी दव्वं, अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि।
रूवी जीवा चलिया, ति-वियप्पा होंति हु पदेसा ॥५९२॥

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः ॥५९२॥

टीका – सर्व अरूपी द्रव्य जो मुक्त जीव अर धर्म अर अधर्म अर आकाश अर काल सो अवस्थित है, अपने स्थान तै चलते नाही। बहुरि उनिके प्रदेश भी अचलित ही है; एक स्थान विषै भी चलित नाही हैं। बहुरि रूपी जीव, जे संसारी जीव ते चलित है; स्थान तै स्थानांतर विषै गमनादि करें हैं। बहुरि संसारी जीवनि के प्रदेश तीन प्रकार है। विग्रह गति विषै सो सर्व चलित ही है। बहुरि अयोग-केवली गुणस्थान विषैं अचलित ही है। बहुरि अविशेष जीव रहे, तिनिके आठ प्रदेश तौ अचलित है। अरशेष प्रदेश चलित हैं। (योगरूप परिणमन तै)[1] इस आत्मा के अन्य प्रदेश तौ चलित हो है अर आठ प्रदेश अकंप ही रहैं है।

पोग्गल-दव्वम्हि अणू, संखेज्जादी हवंति चलिदा हु।
चरिम-महक्खंधम्मि य, चलाचला होंति पदेसा ॥५९३॥

पुद्गलद्रव्ये अणवः, संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि।
चरममहास्कन्धे च, चलाचला भवंति हि प्रदेशाः ॥५९३॥

टीका – पुद्गल द्रव्य विषै परमाणू अर द्व्यणुक आदि संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणू के स्कध, ते चलित है। बहुरि अंत का महास्कंध विषै केई परमाणू अचलित है, अपने स्थान तैं त्रिकाल विषै स्थानांतर कौ प्राप्त न होंइ। बहुरि केई परमाणू चलित है; ते यथायोग्य चंचल हो है।

---

१. ब, घ प्रति मे 'योगरूप परिणमन तै' इतना ज्यादा है।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया ।
आहार-तेज-भासा-मण-कम्मइया धुवक्खंधा ॥५९४॥

सांतरणिरंतरेण य, सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा, सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा ॥५९५॥ जुम्मं ।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः ।
आहारतेजोभाषामनःकार्माण ध्रुवस्कन्धाः ॥५९४॥

सान्तरनिरन्तरया च, शून्या प्रत्येकदेह–ध्रुवशून्याः ।
बादरनिगोदशून्याः, सूक्ष्मनिगोदा नभो महास्कन्धाः ॥५९५॥ युग्मम्

टीका — पुद्गल द्रव्य के भेदरूप जे वर्गणा, ते तेईस भेद लीएं है – १ अणुवर्गणा, २ संख्याताणुवर्गणा, ३ असंख्याताणुवर्गणा, ४ अनंताणुवर्गणा, ५ आहारवर्गणा, ६ अग्राह्यवर्गणा, ७ तैजस शरीरवर्गणा, ८ अग्राह्यवर्गणा, ९ भाषावर्गणा, १० अग्राह्य वर्गणा, ११ मनोवर्गणा, १२ अग्राह्य वर्गणा, १३ कार्माण वर्गणा, १४ ध्रुव वर्गणा, १५ सांतरनिरंतर वर्गणा, १६ शून्य वर्गणा, १७ प्रत्येक शरीरवर्गणा, १८ ध्रुवशून्य वर्गणा, १९ बादरनिगोद वर्गणा, २० शून्यवर्गणा, २१ सूक्ष्मनिगोद वर्गणा, २२ नभो वर्गणा, २३ महास्कंधवर्गणा ए तेईस भेद जानने ।

इहां प्रासंगिक श्लोक कहिये हैं–

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु, संसारिण्यपि पुद्गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥१॥

मूर्तीक पदार्थनि विषै अर संसारी जीव विषै पुद्गल शब्द प्रवर्तै है । बहुरि अकर्म जाति के कर्मजाति के नोकर्म जाति के जे पुद्गल, तिनि विषै वर्गणा शब्द प्रवर्तै है । सो अब इहां तेईस जाति की वर्गणानि विषै केते केते परमाणू पाइये ? सो प्रमाण कहिये है–

तहां अणुवर्गणा तौ एक एक परमाणू रूप है । इस विषै जघन्य, उत्कृष्ट, मध्य भेद भी नाही है ।

बहुरि अन्य बाईस वर्गणानि विषैं भेद है। तहां जघन्य अर उत्कृष्ट भेद, सो कहिये है – जघन्य के ऊपरि एक एक परमाणू उत्कृष्ट का नीचा पर्यंत वधावने तें जेते भेद होहिं, तितने मध्य के भेद जाननें।

बहुरि संख्याताणुवर्गणा विषैं जघन्य दोय अणूनि का स्कंध है। अर उत्कृष्ट उत्कृष्ट संख्यातें अणूनि का स्कंध है।

बहुरि असंख्याताणुवर्गणा विषैं[1] जघन्य परीतासंख्यात परमाणूनि का स्कंध है, उत्कृष्ट उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणूनि का स्कंध है। इहां विवक्षित वर्गणा ल्यावने के निमित्त गुणकार का ज्ञान करना होइ तौ विवक्षित वर्गणा कौं ताके नीचे की वर्गणा का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, सोई गुणकार का प्रमाण जानना। तिस गुणकार करि नीचे की वर्गणा कौं गुणै, विवक्षित वर्गणा हो है। जैसे विवक्षित तीन अणू का स्कंध अर नीचे दोय परमाणू का स्कंध, तहां तीन कौं दोय का भाग दीए ड्योढ पाया; सोई गुणकार है। दोय कौं ड्योढ करि गुणिए, तब तीन होइ; अैसे सर्वत्र जानना। बहुरि इहां संख्याताणु, असंख्याताणु वर्गणा विषै जघन्य का भाग उत्कृष्ट कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, सोई जघन्य का गुणकार जानना। इस गुणकार करि जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अनंताणुवर्गणा विषैं उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणा तै एक परमाणू अधिक भये जघन्य भेद हो है। अर जघन्य कौ सिद्ध राशि का अनंतवां भाग मात्र जो अनत, ताकरि गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि आहार वर्गणा विषै उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। बहुरि इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग मात्र जो अनत, ताका भाग दीये, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तैं अधिक भये उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्यवर्गणा है। तीहिं विषै उत्कृष्ट आहारवर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए, जघन्य भेद हो है। बहुरि जघन्य भेद कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र जो अनंत करि गुणै उत्कृष्ट भेद हो है।

---

१ घ प्रति मे यहा 'जघन्य' शब्द अधिक मिलता है।

बहुरि ताके ऊपरि तैजसशरीरवर्गणा है । ताहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए, जघन्य भेद हो है । इस जघन्य भेद कौ सिद्धराशि का अनंतवां भाग मात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तै अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट तैजस वर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनतवा भागमात्र अनंत करि गुणै उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि भाषा वर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनंतवा भाग-मात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तै अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है । तीहि विषै उत्कृष्ट भाषावर्गणा तै एक परमाणू अधिक भये जघन्यभेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनतवा भाग-मात्र अनंत करि गुणै उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि मनोवर्गणा है, तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनंतवा भागमात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तै अधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है । तीहि विषै उत्कृष्ट मनोवर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनतवा भाग प्रमाण अनंत करि गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि कार्माणवर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तै एक परमाणु अधिक भएं जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सिद्धराशि का अनतवां भागमात्र अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तै अधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि ध्रुववर्गणा है, तहां उत्कृष्ट कार्माण वर्गणा तै एक पर-माणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ अनतगुणा जीव राशिमात्र अनत करि गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है ।

बहुरि ताके ऊपरि सांतर निरंतर वर्गणा है; तहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं अनंतगुणा जीवराशि का प्रमाण करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

असें जो ए अणुवर्गणा तें लगाइ पंद्रह वर्गणा कही, ते सदृश परिमाण कौं लीएं, एक एक वर्गणा लोक विषैं अनंत पुद्गल राशि का वर्गमूल प्रमाण पाइए है। परि किछू घाटि घाटि क्रम तें पाइए है। तहां प्रतिभागहार सिद्ध अनंतवां भागमात्र है। सो इस कथन कौं विशेष करि आगे कहिएगा।

बहुरि ताके ऊपरि शून्यवर्गणा है, तहां उत्कृष्ट सांतर निरन्तर वर्गणा तें एक एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं अनंतगुणा जीवराशि का प्रमाण करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है। असें सोलह वर्गणा सिद्ध भईं।

बहुरि ताके ऊपरि प्रत्येक शरीर वर्गणा है; सो एक शरीर एक जीव का होइ, ताकौ प्रत्येक शरीर कहिए। तहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म वा नोकर्म, तिनिका एक स्कंध ताकौ प्रत्येक शरीर वर्गणा कहिये। तहां शून्यवर्गणा का उत्कृष्ट तें एक परमाणू करि अधिक जघन्य भेद हो है; सो यहु जघन्य भेद कहां पाइये है ? सो कहिए है—

जाका कर्म के अंश क्षयरूप भए है, असा कोई क्षपितकर्मांश जीव, सो कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी मनुष्य होइ, अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम दोऊ एक काल अंगीकार करि सयोग केवली भया, सो किछू घाटि कोटि पूर्व पर्यंत औदारिक शरीर अर तैजस शरीर की तो जो प्रकार कह्या है, तैसे निर्जरा करत संता अर कार्माण शरीर की गुण श्रेणी निर्जरा करत संता, अयोगकेवली का अंत समय कौ प्राप्त भया, ताकै आयु कर्म, औदारिक, तैजस शरीर अधिक नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परिमाणूनि का समूह रूप जो औदारिक, तैजस, कार्माण, इनि तीनि शरीरनि का स्कंध, सो जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि इस जघन्य कौं पल्य का असंख्यातवां भागकरि गुणें, उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा हो है। सो कहां पाइए ? सो कहिए है—

नंदीश्वर नामा द्वीप विषै अकृत्रिम चैत्यालय है। तहां धूप के घड़े हैं। तिनि विषै वा स्वयंभूरमण द्वीप विषै उपजे दावानल, तिनि विषै जे बादर पर्याप्त अग्नि-

काय के जीव है, तहा असंख्यात आवली का वर्ग प्रमाण जीवनि के शरीरनि का एक स्कंध है । तहा गुणितकर्मांश कहिए, जिनके कर्म का संचय बहुत है, असे जीव बहुत भी होंइ तौ आवली का असंख्यातवां भागमात्र होंइ, तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण इनि तीनि शरीरनि का जो एक स्कंध, सो उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा है । बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव शून्य वर्गणा है । तहां उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौ सब मिथ्यादृष्टी जीवनि का जो प्रमाण, ताकौ असंख्यात लोक का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तीहि करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि ताके ऊपरि बादर निगोद वर्गणा है, सो बादर निगोदिया जीवनि का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परिमाणूनि का जो एक स्कंध, ताकौं बादर निगोद वर्गणा कहिए है । सो ध्रुवशून्य वर्गणा तै एक परमाणू अधिक जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । सो कहां पाइए है ? सो कहै है—

क्षय कीएं हैं कर्म अंश जानै, असा कोई क्षपितकर्मांश जीव, सो कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी मनुष्य होइ, गर्भ तै अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम कौ युगपत अंगीकार करि, किछू घाटि कोडि पूर्ववर्ष पर्यंत कर्मनि की गुणश्रेणी निर्जराकौ करत संता जब अंतर्मुहूर्त सिद्धपद पावने का रह्या, तब क्षपक श्रेणी चढि उत्कृष्ट कर्मनिर्जरा कौ करत संता क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती भया, तिसके शरीर विषै जघन्य वा उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी एक बंधनरूप बधे पाइए है, जातै सर्व स्कंधनि विषै पुलवी असंख्यात लोक प्रमाण कहे है । बहुरि एक एक पुलवी विषै असंख्यात लोक प्रमाण शरीर पाइए है । बहुरि एक एक शरीर विषै सिद्धनि तै अनंतगुणे ससारी राशि के असंख्यातवे भागमात्र जीव पाइए है । सो आवली का असंख्यातवां भाग कौ असंख्यात लोक करि गुणें, तहा शरीरनि का प्रमाण भया । ताकौ एक शरीर विषै निगोद जीवनि का जो प्रमाण, ताकरि गुणें, जो प्रमाण भया, तितना तहा एक स्कंध विषै बादर निगोद जीवनि का प्रमाण जानना । तिनि जीवनि कै क्षीणकषाय गुणस्थान का पहिला समय विषै अनन्त जीव स्वयमेव अपना आयु का नाश तै मरै है । बहुरि दूसरे समय जेते पहिले समय मरे, तिनिकौ आवली का असंख्यातवा भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने पहिले समय मरे जीवनि तै अधिक मरै है । इस ही अनुक्रम तै क्षीणकषाय का प्रथम समय तै लगाइ, पृथक्त्व आवली का प्रमाण काल पर्यंत मरै है । पीछै पूर्व पूर्व समय संबधी मरे जीवनि के प्रमाण कौ आवली का संख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण होइ

तितने तितने पहिले पहिले समय तैं अधिक समय समय तैं मरैं है। सो क्षीणकषाय गुणस्थान का काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अवशेष रहै तहां ताईं इस ही अनुक्रम तैं मरैं है। ताके अनन्तर समय विषै पल्य का असंख्यातवा भाग करि पहिले पहिले समय संबंधी जीवनि कौ गुणैं, जितने होंहि तितने तितने मरैं हैं। तहा पीछैं संख्यात पल्य करि पूर्व पूर्व समय सम्बन्धी मरे जीवनि कौं गुणैं, जो जो प्रमाण होइ, तितने तितने मरैं है। सो असैं क्षीणकषाय गुणस्थान का अंत समय पर्यंत जानना। तहा अंत के समय विषैं जे जुदे जुदे असंख्यात लोक प्रमाण शरीरनि करि संयुक्त असे आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी, तिनिविषै जे गुणितकर्मांश जीव मरे, तिनकरि हीन अवशेष जे अनंतानन्त जीव गुणित कर्मांश रहे। तिनिका विस्रसोपचय-सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का जो एक स्कंध,सोई जघन्य बादर निगोद वर्गणा है। बहुरि इस जघन्य कौं जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा हो है। सो कैसैं पाइए ? सो कहिए हैं—

स्वयभूरमण नामा द्वीप विषै जे मूला ने आदि देकरि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती है, तिनके शरीरनि विषै एक बंधन विषै बधे जगच्छ्रेणी का असख्यातवां भाग-मात्र पुलवी है। तिनि विषैं तिष्ठते जे गुणितकर्मांश जीव अनंतानंत पाइये हैं। तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का एक स्कध, सोई उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि तृतीय शून्य-वर्गणा है। तहा उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा तैं एक प्रदेश अधिक भए, जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौ सूच्यगुल का असंख्यातवा भाग करि गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है, सो सूक्ष्मनिगोदिया जीवनि का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परमाणूनि का एक स्कधरूप जानना। तहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। सो जघन्य भेद कैसैं पाइए है ? सो कहिए है —

जल विषै वा स्थल विषै वा आकाश विषै जहा तहा एक बधन विषै बधे, असे जे आवली का असख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी, तिनिविषैं क्षपितकर्मांश अनंतानन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव है। तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि का परमाणूनि का जो एक स्कंध, सोई जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है।

इहां प्रश्न – जो बादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणा विषै पुलवी श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण कहे अर जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा विषै पुलवी आवली का असं-

ख्यातवां भाग प्रमाण कहे, तातै बादरनिगोद वर्गणा के पहिलै याकौ कहना युक्त था। जातै पुलवीनि का बहुत प्रमाण तै परमाणूनि का भी बहुत प्रमाण संभवै है ?

ताका समाधान – जो यद्यपि पुलवी इहां घाटि कहे है; तथापि बादरनिगोद वर्गणा सम्बन्धी निगोद शरीरनि तै सूक्ष्मनिगोद वर्गणा संबन्धी शरीरनि का प्रमाण सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग गुणा है। तातै तहां जीव भी बहुत है। तिनि जीवनि कै तीन शरीर संबधी परमाणू भी बहुत है। तातै बादरनिगोद वर्गणा के पीछे सूक्ष्म निगोद वर्गणा कही है। बहुरि जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा कौ पल्य का असख्यातवा भाग करि गुणै, उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है, सो कैसै पाइये है ? सो कहिए है-

यहां महामत्स्य का शरीर विषै एक स्कधरूप आवली का असख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी पाइये है। तहां गुणितकर्मांश अनंतानंत जीवनि का विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का एक स्कंध, सोई उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है।

बहुरि ताके ऊपरि नभोवर्गणा है। तहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा तै एक अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य भेद कौं जगत्प्रतर का असख्यातवा भाग करि गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि महास्कध है। तहां उत्कृष्ट नभो-वर्गणा तै एक परमाणू अधिक भए, जघन्यभेद हो है। बहुरि इस जघन्य कौ पल्य का असख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, ताकौ जघन्य विषै मिलाये, उत्कृष्ट महास्कंध के परमाणूनि का प्रमाण हो है। ऐसै एक पक्ति करि तेईस वर्गणा कही।

आगै जो अर्थ कह्या, तिस ही कौ सकोचन करि तिन वर्गणानि ही का उत्कृष्ट, जघन्य, मध्य भेदनि कौ वा अल्प-बहुत्व कौ छह गाथानि करि कहैं है—

परमाणुवग्गणम्मि ण, अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि।
गेज्झमहक्खंधाणं, वरमहियं सेसगं गुणियं ॥५९६॥

परमाणुवर्गणायां न, अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति।
ग्राह्यमहास्कंधानां, वरमधिकं शेषकं गुणितम् ॥५९६॥

टीका – परमाणु वर्गणा विषै जघन्य उत्कृष्ट भेद नाही है; जातै अणू अभेद है। बहुरि अवशेष बाईस वर्गणानि विषै जघन्य उत्कृष्ट भेद पाइए है। तहा ग्राह्य

कहिए जीव के ग्रहण करने के योग्य असी जे आहार, तैजस, भाषा, मनः, कार्माण-वर्गणा । इहां आहार वर्गणा तै आहार, शरीर, इन्द्री, सासोस्वास ए च्यारि पर्याप्ति हो हैं । तैजस वर्गणा तै तैजस शरीर हो है । भाषा वर्गणा तै वचन हो है । मनो वर्गणा तै मन निपजै है । कार्माण वर्गणा तै ज्ञानावरणादिक कर्म हो हैं । तातै इनि पच वर्गणानि कौ ग्राह्य वर्गणा कही है । अर एक महास्कंध, इनि छहौ वर्गणानि का उत्कृष्ट तौ अपने-अपने जघन्य तै किछू अधिक प्रमाण लीएं है । अर अवशेष सोलह वर्गणानि का उत्कृष्ट भेद अपने-अपने जघन्य कौं गुणकार करि गुणिए, तब हो है ।

सिद्धाणंतिमभागो, पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं, अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ॥५९७॥

सिद्धानंतिमभागः, प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थम् ।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थम् ॥५९७॥

टीका – ग्राह्य पंच वर्गणा, तिनिका उत्कृष्ट के निमित्त सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र प्रतिभाग है । अपने-अपने जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितने जघन्य विषै मिलाएं, अपना-अपना उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि अंत का महास्कंध का उत्कृष्ट का निमित्त पल्य का असख्यातवां भागमात्र प्रतिभाग है । महास्कंध के जघन्य कौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना जघन्य विषै मिले, उत्कृष्ट महास्कंध हो है ।

संखेज्जासंखेज्जे, गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि, सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥५९८॥

संख्यातासंख्यातायां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायाम् ।
चतसृषु अग्राह्यास्वपि, सिद्धानामनंतिमो भागः ॥५९८॥

टीका – संख्याताणुवर्गणा अर असंख्याताणुवर्गणा विषै अपने-अपने उत्कृष्ट को अपना-अपना जघन्य का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सोई गुणकार जानना । इस गुणकार करि जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि अनंताणुवर्गणा विषै अर जीव करि ग्रहण योग्य नाहीं । असी च्यारि अग्राह्य वर्गणा विषै गुणकार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । इसकरि जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है ।

जीवादोणंतगुणो, धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो, असंखलोगवहिदो मिच्छो ।।५९९।।

जीवादनंतगुणो, ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु ।
पल्यस्य ततस्ततः, असंख्यलोकावहिता मिथ्या ।।५९९।।

टीका – बहुरि ध्रुवादिक तीन वर्गणानि विषै जीवराशि तै अनंतगुणा गुणकार है । याकरि जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट हो है । बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणा विषै पल्य का असंख्यातवा भागमात्र गुणकार है । याकरि जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट हो है । काहे तै ? सो कहिए है । प्रत्येक शरीर वर्गणा विषै जो कार्माण शरीर है । तातै समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है । तातै जघन्य समय प्रबद्ध के परमाणू का प्रमाण तै याका प्रमाण पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग गुणा है । ताकी सहनानी बत्तीस का अक है । तातै इहां पल्य का असख्यातवां भाग का गुणकार कह्या है । बहुरि ध्रुव, शून्य वर्गणा विषै असंख्यात लोक का भाग मिथ्यादृष्टी जीवनि कौ दीए, जो प्रमाण होइ, तितना गुणकार है । याकरि जघन्य कौ गुणै उत्कृष्ट हो है ।

सेढी-सूई-पल्ला-जगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो, उक्कस्से होंति णियमेण ।।६००।।

श्रेणी-सूची-पल्य, जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः ।
आत्मात्मनोवरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ।।६००।।

टीका – जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग, बहुरि सूच्यगुल का असख्यातवां भाग, बहुरि पल्य का असख्यातवा भाग, बहुरि जगत्प्रतर का असख्यातवा भाग ए अनुक्रम तै बादरनिगोदवर्गणा अर शून्यवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा अर नभोवर्गणा इनि विषै गुणकार है । इनिकरि अपने-अपने जघन्य कौ गुणै, उत्कृष्ट भेद हो है । इहां शून्यवर्गणा विषै सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है, सो सूक्ष्मनिगोद वर्गणा का जघन्य एक घाटि भये उत्कृष्ट शून्यवर्गणा हो है; तातै कह्या है । बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा विषै पल्य का असख्यातवा भाग गुणकार कह्या है; सो ताके उत्कृष्ट का कार्माण संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव सवधी है । तातै कह्या है । अैसे ए तेईस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कही । अव नानापक्ति अपेक्षा कहिए

है । नाना पंक्ति कहा ? जो ए वर्गणा कही, ते वर्गणा लोक विषै वर्तमान कोई एक काल में केती-केती पाइए है ? असी अपेक्षा करि कहै हैं –

परमाणु वर्गणा तै लगाइ, सांतरनिरंतरवर्गणा पर्यंत पन्द्रह वर्गणा समान परमाणूनि का स्कंधरूप लोक विषै पुद्गलद्रव्य का जो प्रमाण, ताका जो वर्गमूल, ताका अनंत गुणा कीए, जो प्रमाण होइ, तितनी-तितनी पाइए है । तहां इतना विशेष है जो ऊपरि किछू घाटि-घाटि पाइए है । तहां प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनंतवां भाग (मात्र) है । सो कहिए है —

अणुवर्गणा लोक विषै जेती पाइए है, तिस प्रमाण कौ सिद्धराशि का अनंतवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना अणुवर्गणा का परिमाण में घटाए, जो प्रमाण रहै, तितनी दोय परमाणू का स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा जगत विषैं पाइए है। इसकौ सिद्धराशि का अनंतवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना तिस ही मै घटाइए, जो प्रमाण रहै, तितनी तीन परमाणू का स्कंध रूप संख्याताणु वर्गणा लोक विषै पाइए है । इस ही अनुक्रम तै एक-एक अधिक परमाणू का स्कंध का प्रमाण करते जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा भई, तहां जो प्रमाण भया, ताकौं सिद्ध राशि का अनंतवा भाग का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना तिस ही मैं घटाए, जो अवशेष रहै, तितना जघन्य असंख्याताणु वर्गणा लोक विषैं पाइए है । याकौ तैसै ही भाग देइ घटाए, जो प्रमाण रहै, तितनी मध्य असंख्याताणु वर्गणा का प्रथम भेद रूप वर्गणा लोक विषै पाइए है । सो असै ही एक-एक अधिक परमाणूनि का स्कध का प्रमाण अनुक्रम तै सातरनिरंतर .वर्गणा का उत्कृष्ट पर्यंत जानना । सामान्यपनै सर्व जुदी-जुदी वर्गणानि का प्रमाण अनंत पुद्गल राशि का वर्गमूल मात्र जानना । वहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणा का जघन्य तौ पूर्वोक्त अयोग केवली का अन्त समय विषै पाइए; सो उत्कृष्ट पनै च्यारि पाइए है । बहुरि उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा स्वयंभूरमण द्वीप का दावानलादिक विषै पाइए; सो उत्कृष्ट पनै आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है । बहुरि बादर निगोद वर्गणा का जघन्य तौ पूर्वोक्त क्षीण कपाय गुणस्थान का अंत समय विषै पाइए; सो उत्कृष्ट पनै च्यारि पाइए है । अर वादर निगोद वर्गणा का उत्कृष्ट महामत्स्यादिक विषै पाइए; सो उत्कृष्ट पनै आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण पाइए है । बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा जघन्य तौ वर्तमान काल विषै जल में वा स्थल मे वा आकाश में आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण पाइए है, अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा उत्कृष्ट भी आवली का

असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है । इहां प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद, सूक्ष्मनिगोद, इनि तीन सचित्तवर्गणानि का मध्य भेद वर्तमान काल विषै असंख्यात लोक प्रमाण पाइए है । बहुरि महास्कध वर्गणा वर्तमान काल में जगत विषै एक ही है । सो भवनवासीनि के भवन देवनि के विमान, आठ पृथ्वी, मेरु गिरि, कुलाचल इत्यादिकनि का एक स्कध रूप है ।

इहां प्रश्न – जो जिनि कै असंख्यात, असंख्यात योजननि का, अन्तर पाइए, तिनिका एक स्कंध कैसे संभवै है ?

ताकां उत्तर – जो मध्य विषै सूक्ष्म परमाणू हैं, सो वे विमानादिक अर सूक्ष्म परमाणू, तिनि सबनि का एक बंधान है । तातै अंतर नाही, एक स्कध है । सो असा जो एक स्कध है, ताही का नाम महास्कध है ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण, रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा, पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ॥६०१॥

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः, रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु ।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि, पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ॥६०१॥

टीका – तेईस वर्गणानि विषै अणुवर्गणा बिना अवशेष वर्गणानि कैं जो नीचे का उत्कृष्ट भेद होइ, तामैं एक अधिक भए, ताके ऊपरि जो वर्गणा, ताका जघन्य भेद हो है । असे तेईस वर्गणा भेद कौ लीए पुद्गल द्रव्य, जिनदेवने कहे है । इनि विषै प्रत्येक वर्गणा अर बादरनिगोद वर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा ए तीन सचित्त है; जीव सहित है, सो इनिका विशेष कहिए है –

अयोग केवली का अंतसमय विषै पाइये असी जघन्य प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषै होइ भी वा न भी होइ, जो होइ तौ एक ही होइ वा दोय होइ वा तीन होइ उत्कृष्ट होइ तौ च्यारि होइ । बहुरि जघन्य तै एक परमाणू अधिक असी मध्य प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषै होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृप्ट पनै च्यारि होइ, असे ही एक एक परमाणू का वधाव तै इस ही अनुक्रम तै जव अनत वर्गणा होंइ, तब ताके अनंतर जो एक परमाणू अधिक वर्गणा, सो लोक विषै होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा च्यारि वा उत्कृष्टपनै पाच होइ । असे एक एक परमाणू बधतै अनतवर्गणा पर्यंत पंच ही उत्कृप्ट है । ताके अनन्तरि जो

वर्गणा सो होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृष्ट छह होइ। असें अनंतवर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छह ही होंइ। बहुरि इस ही अनुक्रम तें अनंत अनत वर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पाच, च्यारि, तीन, दोय वर्गणा जगत विषैं समान परमाणूनि का प्रमाण लीएं हो है। यहु यवमध्य प्ररूपणा है, जैसें यव नामा अन्न का मध्य मोटा हो है, तैसें इहां मध्य विषै वर्गणा आठ कहीं। पहिले वा पीछे थोड़ी थोड़ी कही। तातै याकौं यवमध्य प्ररूपणा कहिए है। सो यहु प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवनि की अपेक्षा है। असैं प्रत्येक वर्गणा समान संसारी जीवनि कैं न पाइए है।

इहां तै आगें संसारी जीवनि कैं पाइए असी प्रत्येक वर्गणा कहिये है–

सो पूर्वें कथन कीया, ताके अनंतरि पूर्व प्रत्येक वर्गणा तै एक परमाणू अधिकता लीएं, जो प्रत्येक वर्गणा सो जगत विषै होइ, वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। असें ही अनन्तवर्गणा भए, अनंतरि जो प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषै होइ वा न होई,जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पूर्व प्रमाण तें एक अधिक होइ। असै अनंत अनंत वर्गणा भए, एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्ट विषै होता जाय, जहां यवमध्य होइ, तहां ताईं असैं जानना। यवमध्य विषै जेता परमाणू का स्कधरूप प्रत्येक वर्गणा भई, तितने तितने परमाणूनि का स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा जगत विषै होइ वा न होइ, जो होइ, तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असख्यातवां भाग प्रमाण होइ। यहु प्रमाण इस तैं जो पूर्वप्रमाण तातै एक अधिक जानना। असें अनंत वर्गणा भएं, अनंतरि जो वर्गणा भई, सो जगत विषै होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भागप्रमाण होइ। सो यहु प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्वप्रमाण तै एक घाटि जानना। असैं एक एक परमाणू के बंधनें तैं एक एक वर्गणा होइ। सो अनत अनंत वर्गणा भए उत्कृष्ट विषैं एक एक घटाइये जहां ताईं उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा होइ, तहां ताईं असै करना। उत्कृष्ट प्रत्येकवर्गणा लोक विषै होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। असैं प्रत्येक वर्गणा भव्य सिद्ध, अभव्य सिद्धनि की अपेक्षा कही। बहुरि बादरनिगोद वर्गणा का भी कथन प्रत्येक वर्गणावत जानना, किछू विशेप नाही। जैसें प्रत्येक वर्गणा विषै अयोगी का अतसमय विषै सभवती जघन्य वर्गणा, ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन कीया है। तैसै इहां क्षीणकषायी का अंत समय विषै संभवती तिसका शरीर के आश्रित जघन्य बादरनिगोदवर्गणा ताकौ

आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन जानना । बहुरि सामान्य ससारी अपेक्षा दोऊ जायगे समानता संभवै है । बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा का कथन कहिए है-

सो इहां भव्य सिद्ध अपेक्षा तो कथन है नाही । तातै जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा लोक विषै होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ । आगै जैसै संसारीनि की अपेक्षा प्रत्येक वर्गणा का कथन कीया, तैसै ही यवमध्य ताई अनतानन्त वर्गणा भए, उत्कृष्ट विषै एक एक बधावना । पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्मवर्गणा पर्यंत एक एक घटावना । सामान्यपनै सर्वत्र उत्कृष्ट का प्रमाण आवली का असंख्यातवां भाग कहिये । इहां सर्वत्र संसारी सिद्ध कौं योग्य असी जो प्रत्येक बादर निगोद, सूक्ष्मनिगोद वर्गणा तिनिका यव आकार प्ररूपणा विषै गुणहानि का गच्छ जीवराशि तैं अनन्त गुणा जानना । नाना गुण हानिशलाका का प्रमाण यवमध्य तै ऊपरि वा नीचे आवली का असख्यातवां भाग प्रमाण जानना ।

भावार्थ – संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा विषै जो यवमध्य प्ररूपणा कही, तहां लोक विषै पावने की अपेक्षा जेते एक एक परमाणू बधनें रूप जे वर्गणा भेद तिनि भेदनि का जो प्रमाण सो तो द्रव्य है । अर जिनि वर्गणानि विषै उत्कृष्ट पावने की अपेक्षा समानता पाइये, तिनिका समूह सो निषेक, तिनिका जो प्रमाण, सो स्थिति है । बहुरि एक गुणहानि विषै निषेकनि का जो प्रमाण सो गुणहानि का गच्छ है । ताका प्रमाण जीवराशि तै अनन्त गुणा है । बहुरि यवमध्य के ऊपरि वा नीचै गुणहानि का प्रमाण, सो नानागुणहानि है । सो प्रत्येक आवली का असंख्यातवां भागमात्र है । असै द्रव्यादिक का प्रमाण जानि, जैसै निषेकनि विषै द्रव्य प्रमाण ल्यावने का विधान है । तैसे उत्कृष्ट पावने की अपेक्षा समान रूप जे वर्गणा, तिनिका प्रमाण यवमध्य तैं ऊपरि वा नीचै चय घटता क्रम लीए जानना ।

इहां प्रश्न – जो इहां तो प्रत्येकादिक तीन सचित्त वर्गणानि के अनते भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोक विषै आवली का असख्यातवा भाग प्रमाण सामान्य पनैं कही । बहुरि पूर्वे मध्यभेदरूप सचित्तवर्गणा सर्व असख्यात लोक प्रमाण ही कही सो उत्कृष्ट जघन्य बिना सर्व भेद मध्यभेद विषै आय गए, तहा असा प्रमाण कैसे संभवै ?

ताकां समाधान – इहां सर्वभेदनि विषै असा कह्या है, जो होइ भी न भी होइ, होइ तौ एक वा दोय इत्यादि उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवा भाग प्रमाण होइ। सो नानाकाल अपेक्षा यहु कथन है। बहुरि तहा एक कोई विवक्षित वर्तमान काल अपेक्षा वर्तमान काल विषै सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाणही पाइये है। अधिक न पाइए है। तिनि विषैं किसी भेदरूप वर्गणानि की नास्ति ही है। किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाण लीएं पाइए हैं। किसी भेद-रूप वर्गणा उत्कृष्टपनै प्रमाण लीएं पाइये है। असा समझना। इस प्रकार तेईस वर्गणा का वर्णन कीया।

पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविसय-कम्म-परमाणू ।
छ-व्विह-भेयं भणियं, पोग्गलदव्वं जिणवरेंहि ॥६०२॥

पृथ्वी जलं च छाया, चतुरिंद्रियविषयकर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं, पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥६०२॥

टीका – पृथ्वी अर जल अर छाया अर नेत्र बिना च्यारि इन्द्रियनि का विषय अर कार्माण स्कंध अर परमाणू असें पुद्गल द्रव्य छह प्रकार जिनेश्वर देवनि करि कह्या हैं।

बादरबादर बादर, बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं, धरादियं होदि छब्भेयं ॥६०३॥

बादरबादरं बादरं, बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च ।
सूक्ष्म च सूक्ष्मसूक्ष्मं, धरादिकं, भवति षड्भेदम् ॥६०३॥

टीका – पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है। जो पुद्गल स्कंध छेदने कौ भेदने कौ और जायगे ले जाने कौं समर्थ हूजैं, तिस स्कंध कौ बादरबादर कहिए। बहुरि जल है, सो बादर है, जो छेदने कौ भेदने कौ समर्थ न हूजै अर और जायगे ले जाने कौ समर्थ हूजै, सो स्कंध, बादर जानने। बहुरि छाया बादर सूक्ष्म है, जे छेदने-भेदने और जायगे ले जाने कौ समर्थ न हूजै, सो बादरसूक्ष्म है। बहुरि नेत्र बिना च्यारि इन्द्रियनि का विषय सूक्ष्म स्थूल है। बहुरि कार्माण के स्कध सूक्ष्म है। जो द्रव्य देशावधि परमावधि के गोचर होइ, सो सूक्ष्म है। बहुरि परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधि के गोचर होइ, सो सूक्ष्म सूक्ष्म है।

इहा एक एक वस्तु का उदाहरण कह्या है । सो पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण इत्यादि बादरबादर है । जल, तैल, दुग्ध इत्यादि बादर है । छाया, आतप, चादनी इत्यादि वादरसूक्ष्म है । शब्द गन्धादिक सूक्ष्मबादर है । इन्द्रियगम्य नाही; देशावधि परमावधिगम्य होंहि ते स्कंध सूक्ष्म हैं । परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है, असे जानने ।

खंधं सयलसमत्थं, तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो, अविभागी चेव परमाणू ॥६०४॥

स्कंधं सकलसमर्थं, तस्य चार्धं भणंति देशमिति ।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुम् ॥६०४॥

टीका – जो सर्व अंश करि संपूर्ण होइ, ताकौ स्कंध कहिए । ताका आधा कौं देश कहिये । तिस आधा के आधा कौ प्रदेश कहिए । जाका भाग न होइ, ताकौं परमाणू कहिये ।

भावार्थ – विवक्षित स्कंध विषै संपूर्ण तै एक परमाणू अधिक अर्ध पर्यंत तौ स्कंध संज्ञा है । अर्ध तै लगाय एक परमाणू अधिक चौथाई पर्यंत देश संज्ञा है । चौथाई ते लगाय दोय परमाणू का स्कंध पर्यंत प्रदेश संज्ञा है । अविभागी कौ परमाणू संज्ञा है । इति स्थानस्वरूपाधिकारः ।

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्म-तियं ।
वत्तणकिरिया-साहणभूदो णियमेण कालो दु ॥६०५॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्मत्रयम् ।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥६०५॥

टीका – क्षेत्र तै क्षेत्रातर प्राप्त होने कौ कारण, सो गति कहिये । गति का अभाव रूप स्थान कहिये । अवकाश विषै रहने कौ अवगाह कहिए । तहां तैसै मत्स्यनिके गमन करने का साधनभूत जल द्रव्य है । तैसै गति क्रियावान जे जीव पुद्गल, तिनकै गतिक्रिया का साधनभूत सो धर्मद्रव्य है । बहुरि जैसैं पथी जननि कै स्थान करने का साधन भूत छाया है । तैसै स्थान - क्रियावान जे जीव पुद्गल, तिनकै स्थान क्रिया का साधन भूत अधर्म द्रव्य है । बहुरि जैसै बास करनेवालों के साधनभूत

बसतिका है। तैसें अवगाह क्रियावान जे जीव - पुद्गलादिक द्रव्य तिनिकैं अवगाह क्रिया का साधनभूत आकाश द्रव्य है।

इहां प्रश्न – जो अवगाह क्रियावान तौ जीव - पुद्गल है। तिनिकौं अवकाश देना युक्त कह्या है। बहुरि धर्मादिक द्रव्य तौ निष्क्रिय है, नित्य सम्बन्ध कौं धरैं हैं, नवीन नाहीं आए, जिनिकौं अवकाश देना संभवै असें इहां कैसे कहिये ? सो कहौ–

ताकां समाधान – जो उपचार करि कहिए है; जैसे गमन का अभाव होते संतै भी सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा आकाश कौं सर्वगत कहिए हैं। तैसें धर्मादिक द्रव्यनि कै अवगाह क्रिया का अभाव होते संतै भी लोक विषै सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा अवगाह का उपचार कीजिए हैं।

इहां प्रश्न – जो अवकाश देना आकाश का स्वभाव है, तौ वज्रादिक करि पाषाणादिक का अर भीति इत्यादिक करि गऊ इत्यादिकनि का रोकना कैसें हो हैं। सो रोकना तौ देखि रहे है। तातै आकाश तौ तहा भी था, पाषाणादिक कौ अवकाश न दीया, तब आकाश का अवगाह देना स्वभाव न रह्या ?

तहां उत्तर – जो आकाश तो अवगाह देइ, परन्तु पूर्वै तहां अवगाह करि तिष्ठैं हैं, वज्रादिक स्थूल हैं, तातैं परस्पर रोकैं है। यामै आकाश का अवगाह देने का स्वभाव गया नाही; जातै तहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल है, ते परस्पर अवगाह देवैं हैं।

बहुरि प्रश्न – जो असें हैं तो सूक्ष्म पुद्गलादिकनि कै भी अवगाहहेतुत्व स्वभाव आया। आकाश ही का असाधारण लक्षण कैसे कहिए है ?

तहां उत्तर – जो सर्व पदार्थनि कौं साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश ही का असाधारण लक्षण है। और द्रव्य सर्व द्रव्यनि कौ अवगाह देने कौ समर्थ नाहीं।

इहां प्रश्न – जो अलोकाकाश तौ सर्व द्रव्यनि कौ अवगाह देता नाहीं, तहां असा लक्षण कैसे संभवै ?

ताकां समाधान – जो स्वभाव का परित्याग होइ नाही। तहां कोई द्रव्य होता तौ अवगाह देता, कोई द्रव्य तहां गमनादि न करै, तौ अवगाह कौन कौं देवैं तिसका तौ अवगाह देने का स्वभाव पाइए है। बहुरि सर्व द्रव्यनि कौ वर्तना क्रिया का साधन भूत नियम करि काल द्रव्य हैं।

अण्णोण्णुवयारेण य, जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो ।
देहादी-णिव्वत्तण-कारणभूदा हु णियमेण ।।६०६।।

अन्योन्योपकारेण च, जीवा वर्तन्ते पुद्गलाः पुनः ।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन ।।६०६।।

टीका – बहुरि जीव द्रव्य है, ते परस्पर उपकार करि प्रवर्तें है । जैसें स्वामी तौ चाकर कौ धनादिक देवै है, अर चाकर स्वामी का जैसें हित होइ अर अहित का निषेध होइ तैसे करै है; सो असै परस्पर उपकार है । बहुरि आचार्य तौ शिष्य कौं इहलोक परलोक विषै फल को देनेहारा उपदेश, क्रिया का आचरण करावना असें उपकार करै है । शिष्य उन आचार्यनि की अनुकूलवृत्ति करि सेवा करै है । असै परस्पर उपकार है; असै ही अन्यत्र भी जानना । बहुरि चकार तै जीव परस्पर अनुपकार, जो बुरा करना, तिसरूप भी प्रवर्तें है वा उपकार – अनुपकार दोऊ रूप नाही प्रवर्तें है । बहुरि पुद्गल है, सो देहादिक जे कर्म, नोकर्म, वचन, मन, स्वासोस्वास इनिके निपजावने का नियम करि कारणभूत है । सो ए पुद्गल के उपकार हैं ।

इहां प्रश्न – जो जिनिका आकार देखिये असै औदारिकादि शरीर, तिनिकौं पुद्गल कहौ, कर्म तौ निराकार है, पुद्गलीक नाही ।

तहां उत्तर – जैसै गोधूमादिक, अन्न - जलादिक मूर्तीक द्रव्य के संबंध तै पचै है, ते गोधूमादिक पुद्गलीक है । तैसे कर्म भी लगुड, कटकादिक मूर्तीक द्रव्य के संबंध तै उदय अवस्थारूप होइ पचै है, तातै पुद्गलीक ही है ।

वचन दोय प्रकार है – एक द्रव्यवचन १, एक भाववचन २ । तहा भाववचन तौ वीर्यातराय, मति, श्रुत आवरण का क्षयोपशम अर अंगोपाग नामा नामकर्म का उदय के निमित्त तैं हो है । तातै पुद्गलीक है । पुद्गल के निमित्त विना भाववचन होता नाही । बहुरि भाववचन की सामर्थ्य कौ धरै, असा क्रियावान जो आत्मा, ताकरि प्रेरित हुवा पुद्गल बचनरूप परिणवै है, सो द्रव्यवचन कहिए है । सो भी पुद्गलीक ही है, जातै सो द्रव्यवचन कर्ण इद्रिय का विषय है, जो इन्द्रियनि का विषय है, सो पुद्गल ही है ।

इहां प्रश्न – जो कर्ण विना अन्य इंद्रियनि का विषय क्यों न होइ ?

तहां उत्तर – जो जैसे गंध नासिका ही का विषय है, सो रसनादिक करि ग्रह्या न जाय । तैसें शब्द कर्ण ही का विषय हैं, अन्य इद्रियनि करि योग्य नाहीं ।

इहां तर्क – जो वचन अमूर्तीक है, तहां कहिए है, अैसा कहना भी अयुक्त है, जातै वचन मूर्तीक करि ग्रह्या जाय है । वा मूर्तीक द्रव्य करि रुकै है वा नष्ट हो है; तातै मूर्तीक ही है । बहुरि द्रव्य भाव के भेद तै मन भी दोय प्रकार है । तहा भाव-मन तौ लब्धि उपयोग रूप है, सो क्षयोपशमादिक पुद्गलीक निमित्त तै हो है । तातै पुद्गलीक ही है । बहुरि ज्ञानावरण, वीर्यांतराय का क्षयोपशम अर अगोपाग नामा नामकर्म का उदय, इनिके निमित्त तै गुण - दोष का विचार, स्मरण, इत्यादिकरूप सन्मुख भया, जो आत्मा, ताकौ उपकारी जे पुद्गल, सो मनरूप होइ परिणवै हैं । तातै द्रव्यमन भी पुद्गलीक है ।

इहां कोऊ कहै कि मन तौ एक जुदा ही द्रव्य है, रूपादिकरूप न परिणवै हैं । अणूमात्र है । तहा आचार्य कहै है – तीहि मन स्यौं आत्मा का संबंध है कि नाही है? जो संबंध नाही है तौ आत्मा कौ उपकारी न होइ, इन्द्रियनि विषै प्रधानता कौ न धरै और जो संबध है तो, वह तो अणूमात्र है, सो एकदेश विषै उपकार करेगा अन्य प्रदेशनि विषै कैसै उपकार करै है ?

तहां तार्किक कहै है – अमूर्तीक, निष्क्रिय आत्मा का एक अदृष्टनामा गुण है। सो अदृष्ट जो कर्म ताका वश करि तिस मन का कुंभार का चक्रवत परि-भ्रमण करै है, सो अैसा कहना भी अयुक्त है । अणूमात्र जो होइ ताकै भ्रमण की सम-र्थता नाही । बहुरि अमूर्तीक निष्क्रिय का अदृष्ट गुण कह्या, सो औरनि कै क्रिया का आरंभ करावने कौ समर्थ न होइ । जैसै पवन आप क्रियावान है, सो स्पर्श करि बनस्पती कौ चंचल करै है, सो यह तौ अणूमात्र निष्क्रिय का गुण सो आप क्रियावान नाही, अन्य कौ कैसे क्रियावान प्रवर्तावै है ? तातै मन पुद्गलीक ही है ।

बहुरि वीर्यातराय अर ज्ञानावरण का क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय, तीहि करि संयुक्त जो आत्मा, ताके निकसतौ जो कंठ सबधी उस्वासरूप पवन, सो प्राण कहिए । बहुरि तीहि पवन करि बाह्य पवन कौ अभ्यंतर करता निस्वासरूप पवन, सो अपान कहिए । ते प्राण-अपान जीवितव्य कौ कारण है । तातै उपकारी है, सो मन अर प्राणापान ए मूर्तीक है । जातै भय के कारण बज्रपातादिक मूर्तीक, तिनितै मन का रुकना देखिए है । बहुरि भय के कारण दुर्गंधादिक, तीहि करि वा हस्तादिक तै मुख के आच्छादन करि वा श्लेष्मादिक करि प्राण-अपान का रुकना देखिये है, तातै दोऊ मूर्तीक ही है । अमूर्तीक होइ तौ मूर्तीक करि रुकना न

संभवै है। बहुरि ताही तै आत्मा का अस्तित्व की सिद्धि हो है। जैसै कोई काष्ठादिक करि निपज्या प्रतिबिम्ब, सो चेष्टा करै तौ तहां जानिए यामैं तौ स्वयं शक्ति नाही, चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है। तैसै अचेतन जड शरीर विषै जो प्राणापानादिक चेष्टा हो है, तिस चेष्टा का प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य हैं। ऐसै आत्मा का अस्तित्व की सिद्धि हो है। बहुरि सुख, दुःख, जीवित, मरण ए भी पुद्गल द्रव्य ही के उपकार हैं तहां साता - असाता वेदनीय का उदय तो अंतरंग कारण अर बाह्य इष्ट अनिष्ट वस्तु का संयोग इनिके निमित्त तैं जो प्रीतिरूप वा आतापरूप होना, सो सुख दुःख है। बहुरि आयुकर्म के उदय तै पर्याय की स्थिति कौ धारता जीव कै प्राणापान क्रिया विशेष का नाश न होना, सो जीवित कहिए। प्राणापान क्रियाविशेष का उच्छेद होना, सो मरण कहिए। सो ए सुख, दुःख, जीवित, मरण मूर्तीक द्रव्य का निमित्त निकट होत सतै ही हो है; तातै पुद्गलीक ही है। बहुरि पुद्गल है, सो केवल जीव ही कौं उपकारी नाहीं, पुद्गल कौ भी पुद्गल उपकारी है। जैसै कासी इत्यादिक कौ भस्मी इत्यादिक अर जलादि कौं कतक फलादिक अर लोहादिक कौं जलादिक उपकारी देखिए है। ऐसै और भी जानिए है। बहुरि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक नामा नामकर्म के उदय तै तैजस आहार वर्गणा करि निपजे तीन शरीर है, अर सासोस्वास है। बहुरि तैजस नामा नामकर्म के उदय तै तैजस वर्गणा तै निपज्या तैजस शरीर है। बहुरि कार्माण नामा नामकर्म के उदय तै कार्माण वर्गणा करि निपज्या कार्माण शरीर है। बहुरि स्वर नामा नामकर्म के उदय तै भाषावर्गणा तै निपज्या वचन है। बहुरि नोइंद्रियावरण का क्षयोपशम करि संयुक्त सैनी जीव कै अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तैं मन वर्गणा तै निपज्या द्रव्य मन है, ऐसै ए पुद्गल के उपकार है।

इस ही अर्थ कौ दोय सूत्रनि करि कहै है —

आहारवग्गणादो, तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ॥६०७॥

आहारवर्गणात् त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः।
निश्वासोऽपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तु तेजोऽङ्गम् ॥६०७॥

टीका – तेईस जाति की वर्गणानि विषै आहारक वर्गणा तै औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर हो है। अर उस्वास निश्वास हो है। बहुरि तैजस वर्गणा का स्कंधनि करि तैजस शरीर हो है।

भास-मण-वग्गणादो, कमेण भाषा मणं च कम्मादो ।
अट्ठ-विह-कम्मदव्वं, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६०८॥

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६०८॥

टीका – भाषावर्गणा का स्कंधनि करि च्यारि प्रकार भाषा हो है । मनो-वर्गणा का स्कंधनि करि द्रव्यमन हो है । कार्माण वर्गणा का स्कंधनि करि आठ प्रकार कर्म हो है, अैसै जिनदेवने कह्या है ।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं, बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा[1] ॥६०९॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं, बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
संख्येयासंख्येयानन्तविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ॥६०९॥

टीका — बाह्य अभ्यंतर कारण के वश तै जो स्निग्ध पर्याय का प्रगटपना करि चिकणास्वरूप होइ, सो स्निग्ध है । ताका भाव, सो स्निग्धत्व कहिये । बहुरि रूखारूप होई,सो रूक्ष है; ताका भाव, सो रूक्षत्व कहिए । सो जल वा छेली का दूध वा गाय का दूध वा भैंसि का दूध वा ऊटणी का दूध वा घृत इनि विषैं स्निग्धगुण की अधिकता वा हीनता देखिए है । अर धूलि, वालू, रेत वा तुच्छ पाषाणादिक इनिविषैं रूक्षगुण की अधिकता वा हीनता देखिए है । तैसे ही परमाणू विषै भी स्निग्ध रूक्षगुण की अधिकता हीनता पाइए है । ते स्निग्ध - रूक्षगुण द्वयणुकादि स्कंधपर्याय का परिणमन का कारण हो हैं । बहुरि चकार तै स्कंध तै बिछुरने के भी कारण हो है । स्निग्धरूप दोय परिमाणूनि का वा रूक्षरूप दोय परमाणू का एक रूक्ष वा एक स्निग्ध परमाणू का परस्पर जुडनेरूप बंध होतै द्वयणुक स्कंध हो है । अैसै सख्यात, असंख्यात, अनते परिमाणूनि का स्कध भी जानना । तहां स्निग्ध गुण वा रूक्षगुण अंशनि की अपेक्षा सख्यात, असख्यात, अनत भेद कौ लीए है ।

एयगुणं तु जहण्णं, णिद्धत्तं बिगुण-तिगुण-संखेज्जाऽ- ।
संखेज्जाणंतगुणं, होदि तहा रुक्खभावं च ॥६१०॥

---

१. 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः' तत्त्वार्थसूत्र . अध्याय-५, सूत्र-३३ ।

एकगुणं तु जघन्यं, स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ-।
संख्येयानन्तगुणं, भवति तथा रूक्षभावं च ॥६१०॥

टीका – स्निग्ध गुण जो एक गुण है; सो जघन्य है, जाके एक अंश होइ, ताकौं एक गुण कहिए। ताकौ आदि देकरि द्विगुण, त्रिगुण, संख्यातगुण, असंख्यातगुण अनंतगुणरूप स्निग्ध गुण जानना। तैसे ही रूक्षगुण भी जानना। केवलज्ञानगम्य सब तै थोरा जो स्निग्धत्व रूक्षत्व, ताकौं एक अंश कल्पि, तिस अपेक्षा स्निग्ध-रूक्ष गुण के अंशनि का इहां प्रमाण जानना ।

एवं गुणसंजुत्ता, परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया।
जोग्गदुगाणं बंधे, दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥६११॥

एवं गुणसंयुक्ताः, परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः।
योग्यद्विकयोः बन्धे, द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ॥६११॥

टीका – असें स्निग्ध - रूक्ष गुण करि संयुक्त परमाणू, ते प्रथम अणु वर्गणा विषै तिष्ठै है। सो यथायोग्य दोय का बंध स्थान विषै, तिनही दोय परमाणूनि का बंध हो है।

नियमकरि स्निग्ध-रूक्ष गुण के निमित्त तै सर्वत्र बंध हो है। किछू विशेष नाही। असै कोऊ जानैगा, तातै जहां बंध होने योग्य नाही असा निषेध पूर्वक जहां बंध होने योग्य है, तिस विधि कौ कहै है–

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति, रुक्खरुक्खा य पोग्गला।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥६१२॥

स्निग्धस्निग्धा न बध्यन्ते, रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते, रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ॥६१२॥

टीका – स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलनि करि स्निग्ध गुण युक्त पुद्गल बंधै नाही। बहुरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गलनि करि रूक्ष गुण युक्त पुद्गल बंधै नाही, सो यहु कथन सामान्य है। बंध भी हो है। सो विशेष आगै कहैगे। बहुरि स्निग्ध गुण युक्त

पुद्गलनि करि रूक्ष गुण युक्त पुद्गल बंधै है। बहुरि तिनि पुद्गलनि की दोय संज्ञा है — एक रूपी, एक अरूपी।

तिनि संज्ञानि कौं कहै है—

णिद्धिदरोलीमज्झे, विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं[1]।
रूवि त्ति होदि सण्णा, सेसाणं ता अरूवि त्ति ॥६१३॥

स्निग्धेतरावलीमध्ये, विसदृशजातेः समगुण एकः।
रूपीति भवति संज्ञा, शेषाणां ते अरूपिण इति ॥६१३॥

टीका — स्निग्ध-रूक्ष गुणनि की पंकति, तिनके विषै विसदृश जाति कहिए। स्निग्ध कै अर रूक्ष कै परस्पर विसदृश जाति है, ताकै जो कोई एक समान गुण होइ ताकौ रूपी अैसी संज्ञा करि कहिए है। अर समान गुण बिना अवशेष रहे, तिनिकौं अरूपी अैसी संज्ञा करि कहिए है।

ताही कौ उदाहरण करि कहैं है—

दोगुणणिद्धाणुस्स य, दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी।
इगि-तिगुणादि अरूवी, रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ॥६१४॥

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी।
एकत्रिगुणादि. अरूपी, रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ॥६१४॥

टीका — दूसरा है गुण जाकै वा दोय है गुण जाकै अैसा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणू, ताकै द्वि गुण रूक्ष परमाणू रूपी कहिए, अवशेष एक, तीन, च्यारि इत्यादि गुण धारक परमाणू अरूपी कहिए। अैसै ही द्वि गुण रूक्षाणु के द्वि गुण स्निग्धाणू रूपी कहिए; अवशेष एक, तीन इत्यादिक गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण, लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण[2]।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो, जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

---

१ 'गुणसाम्ये सदृशाणाम्' तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-४, सूत्र-३५।

२ 'द्वयधिकादिगुणानातु' तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-४, सूत्र-३६ २ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन, रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो, जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ।।६१५।।

टीका — स्निग्ध अणू का आप तै दोय गुण अधिक स्निग्ध अणू सहित बंध होइ। बहुरि रूक्ष अणू का आपतै दोय गुण अधिक रूक्ष अणू सहित बंध होइ । बहुरि स्निग्ध अणू का आपतै दोय गुण अधिक रूक्ष अणू सहित बध होइ । तहां एक गुण सहित जघन्य स्निग्ध अणू वा रूक्ष अणू ताकै तीन गुण युक्त परमाणू सहित बंध नाहीं यद्यपि यहां दोय अंश अधिक है, तथापि एक अंश युक्त परमाणू बधने योग्य नाहीं; तातैं बंध नाही हो है । स्निग्ध वा रूक्ष परमाणूनि का समधारा विषै वा विषमधारा विषैं दोय अधिक अंश होतै बंध हो है । तहा दोय, च्यारि, छह, आठ इत्यादिक दोय दोय बधता अंश जहां होइ, तहां समधारा विषै कहिये। बहुरि तीन, पांच, सात, नव इत्यादिक दोय दोय बधता अंश जहां होइ, तहां विषमधारा विषै कहिए । सो समधारा विषै दोय अंश परमाणू अर च्यारि अंश परमाणू का बंध होइ । च्यारि अंश परमाणू अर छह अंश परमाणू का बध होइ, इत्यादिक दोय अंश अधिक होतै बंध हो है । बहुरि विषमधारा विषै तीन अंश परमाणु का पंच अश परमाणू सहित बंध होइ, पंच अंश परमाणू का सप्त अंश परमाणू सहित बंध हो है। असै दोय अश अधिक होतै बंध हो है । बंध होनेका अर्थ यहु जो एक स्कंधरूप हो है। बहुरि समान गुण धरै असे जे रूपी परमाणू, तिनिकै परस्पर बध नाही है । जैसे दोय अंश एक के भी होइ, दोय अंश दूसरे के भी होइ, तौ बंध न होइ । बहुरि सम गुणधारक परमाणू अर विषम गुण धारक परमाणू बधै नाही । जैसै दोय अंश युक्त परमाणू का पच अश युक्त परमाणू सहित बंध न होइ । जातै इहां दोय अधिक अश का अभाव है –

णिद्धिदरे समविसमा, दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति ।
उभये वि य समविसमा, सरिसिदरा होंति पत्तेयं ।।६१६।।

स्निग्धेतरयोः समविषमा, द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति ।
उभये पि च समविषमा, सदृशेतरे भवन्ति प्रत्येकम् ।।६१६।।

टीका — स्निग्ध रूक्ष विषै दोय आदि दोय बधता तौ सम पंक्ति विषै गुण जानना । दोय, च्यारि, छह, आठ इत्यादिक जानने । अर विषम पंक्ति विषै तीन आदि दोय दोय बधता जानना । तीन, पाच, सात, नव इत्यादिक जानना । ते सम

अर विपम रूपी भी हो है । अर अरूपी भी हो है । जहां दोनों के समान गुण होई सो रूपी, जहां समान गुण न होंइ, सो अरूपी कहिए । जैसें स्निग्ध - रूक्ष की सम पंक्ति विषै दोय गुण के दोय गुण रूपी हैं, च्यारि गुण के च्यारि गुण रूपी है । छह गुण के छह गुण रूपी है । इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनंतगुणा पर्यंत जानने । बहुरि दोय गुण के दोय गुण बिना अर एक, तीन, च्यारि, पांच इत्यादिक अरूपी हैं ।

भावार्थ – एक परमाणू दोय गुण धारक है । अर दूसरा परमाणू भी दोय गुणधारक है । तौ तहां तिनकौं परस्पर रूपी कहिये । और हीनाधिक गुण धारक परमाणू कौ अरूपी अैसी संज्ञा कहिए । अैसै ही च्यारि, छह इत्यादिक विषै जानना । बहुरि विषम पंक्ति विषै तीन गुण कैं तीन गुण, पंच गुण कै पंच गुण इत्यादिक संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत सम . गुणधारक परमाणू परस्पर रूपी हैं । अवशेप हीनाधिक गुण धारक है, ते परस्पर अरूपी हैं, अैसी संज्ञा करि कहिये है । सो सम अर विषम दोऊ पंक्तिनि विषै ही समान गुण धारक रूपी परमाणू, तिनकै परस्पर बंध न हो है । तत्त्वार्थसूत्र विषै भी कह्या है – **'गुणसाम्ये सदृशानां'**[1] याका अर्थ यहु ही– गुणनि की समानता होतैं सदृश परमाणूनि कैं परस्पर बंध न हो है । बहुरि अरूपी परमाणूनि कै यथोचित स्वस्थान वा परस्थान विषै बंध हो है । स्निग्ध अर स्निग्ध का, बहुरि रूक्ष अर रूक्ष का बध, सो स्वस्थान बंध कहिए । स्निग्ध अर रूक्ष का बंध होइ, सो परस्थान बध कहिए ।

आगै इस ही अर्थ कौं और – प्रकार करि कहैं हैं—

दो-त्तिग-पभवदुउत्तरगदेसुणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्खे वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ॥६१७॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु ।
स्निग्धे रूक्षेऽपि तथापि जघन्योभयेऽपि सर्वत्र ॥६१७॥

टीका – स्निग्ध विषैं वा रूक्ष विषैं समपंक्ति विषै दोय आदि दोय दोय बधता अर विपम पंक्ति विषैं तीन आदि दोय दोय बधता अंश क्रम करि पाइए है । तहां अनतर द्विकनि का बंध होइ । कैसें ? स्निग्ध का च्यारि अंश वा रूक्ष का च्यारि अंश

---

१. तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३५ ।

सहित पुद्गल कैं दोय अंश सहित रूक्ष पुद्लग सहित बंध होइ । वा पंच अंश स्निग्ध का वा रूक्ष का सहित पुद्गल कैं स्निग्ध तीन अंश युक्त पुद्गल सहित बंध होइ । असैं दोय अधिक भएं बंध जानना । परंतु एक अंशरूप जघन्य गुण युक्त विषै बंध न हो है । अन्यत्र स्निग्ध रूक्ष विषै सर्वत्र बंध जानना ।

णिद्धिदरवरगुणाणू, सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंग-हेदुहि, गुणंतरं संगदे एदि ।।६१८।।

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम् ।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ।।६१८।।

टीका – स्निग्ध वा रूक्ष तौ जघन्य एक गुण युक्त परमाणू होइ, सो स्वस्थान वा परस्थान विषै बंध के अर्थि योग्य नाही है । बहुरि सो परमाणू, जो बाह्य अभ्यंतर कारण तै दोय आदि और अंशनि कौ प्राप्त होइ जाइ, तो बध योग्य होइ । तत्त्वार्थ सूत्र विषै भी कह्या है, 'न जघन्यगुणानां' याका अर्थ यहु ही जो जघन्य गुण धारक पुद्गलनि कैं परस्पर बंध न हो है ।

णिद्धिदरगुणा अहिया, हीणं परिणामयंति बंधम्मि[1] ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ।।६१९।।

स्निग्धेतरगुणा अधिका, हीनं परिणामयंति बंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ।।६१९।।

टीका – संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेशनि के स्कंध, तिनिविषै स्निग्ध गुण स्कंध वा रूक्ष गुण स्कंध जे दोय गुण अधिक होंइ, ते बंध कौं होत सतै हीन स्कंध कौं परिणामावै है । जैसैं दोय स्कंध है एक स्कंध विषै स्निग्धका वा रूक्ष का पचास अंश है । अर एक में बावन अंश है अर तिनि दोऊ स्कधनि का एक स्कंध भया, तौ तहां पचास अंशवाले कौ बावन अंश रूप परिणमावै है । असैं सर्वत्र जानना । तत्त्वार्थ सूत्र विषै भी कह्या है – 'बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च' याका अर्थ यहु ही जो बंध होतै अधिक अंश है, सो हीन अंशनि कौ अपनेरूप परिणामावनहारे है । इति फलाधिकारः ।

---

१. बधेऽधिकौ पारिणामिकौ च । तत्त्वार्थसूत्र ; अध्याय-५, सूत्र-३७ ।

असैं सात अधिकारनि करि षट् द्रव्य कहे ।

आगें पंचस्तिकायनि कौं कहैं है—

दव्वं छक्कमकालं, पंचत्थीकायसण्णिदं होदि[1] ।
काले पदेसपचयो, जम्हा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६२०॥

द्रव्यं षटकमकालं, पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो, यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६२०॥

टीका – पूर्वे जे षट् द्रव्य कहे, ते अकालं कहिए काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पावै है । जातै काल कै प्रदेश प्रचय नाहीं है । काल एक प्रदेश मात्र ही है । अर पुद्गलवत् परस्पर मिलै नाहीं; तातैं काल कैं कायपणां नाहीं है । जे प्रदेशनि का प्रचय जो समूह ताकरि युक्त हौंहि, ते अस्तिकाय हैं; असा परमागम विषैं कह्या है ।

आगें नव पदार्थनि कौं कहै है–

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसव-संवर[2]-णिज्जर-बंधा मोक्खो य होंति त्ति ॥६२१॥

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥६२१॥

टीका — जीव अर अजीव ए तौ दोय मूल पदार्थ अर तिनही के पुण्य अर पाप दो ए पदार्थ है । अर पुण्य - पाप ही का आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए पांच पदार्थ; असैं सर्व मिले हुए ए नव पदार्थ हैं । पदार्थ शब्द सर्वत्र लगावना । जीव पदार्थ, अजीव पदार्थ इत्यादि जानना ।

जीवदुगं उत्तट्ठं, जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदा वि य पावा, तव्विवरीया हवंति त्ति ॥६२२॥

---

१. उत्त कालविजुत्त णायव्वा पच अत्थिकाया दु । द्रव्यसग्रह गाथा स. २३ ।

२. संवर, निर्जरा और मोक्ष इनके द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो-दो भेद हैं । देखो द्रव्यसग्रह गाथा स. ३४, ३६, ३७, तथा समयसार गाथा १३ की टीका आदि ।

जीवद्विकमुक्तार्थं, जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च, पापास्तद्विपरीता भवंति ।।६२२।।

टीका — जीव पदार्थ अर अजीव पदार्थ तौ पूर्वै जीवसमास अधिकार विषैं वा इहां षट् द्रव्य अधिकार विषैं कहैं है । बहुरि जे सम्यक्त्व गुणयुक्त होंइ अर व्रत युक्त होइ, ते पुण्य जीव कहिए । बहुरि इनिस्यों विपरीत सम्यक्त्व व्रत रहित जे जीव ते पाप जीव नियमकरि जानने ।

तहां गुणस्थाननि विषैं जीवनि की संख्या कहिए हैं– तिनि विषै मिथ्यादृष्टी अर सासादन ए तौ पाप जीव हैं; असा कहै हैं ।

मिच्छाइट्ठी पावा, णंताणंता य सासणगुणा वि ।
पल्लासंखेज्जदिमा, अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा[1] ।।६२३।।

मिथ्यादृष्टयः पापा, अनंतानंताश्च सासनगुणा अपि
पल्यासंख्येया अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ।।६२३।।

टीका — मिथ्यादृष्टी पापी जीव है, ते अनंतानंत है । जातै संसारी राशि मैं अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटाए, मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण हो है । बहुरि सासादन गुणस्थानवाले भी पाप जीव है; जाते अनतानुबंधी की चौकड़ी विषै किसी एक प्रकृति का उदय करि मिथ्यात्व सदृश गुण कौ प्राप्त हो है । ते सासादन वाले जीव पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण है ।

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य ।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं[2] ।।६२४।।

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ।।६२४।।

टीका – मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसार राशि प्रमाण है; तातै अनंतानंत हैं । बहुरि देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यनि करि अधिक, तिर्यंच

---

१. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–३, पृष्ठ १० ।
२. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–३, पृष्ठ ६३ ।

पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इहां अन्य गुणस्थान कथन की अपेक्षा पल्य कौं तीन बार असंख्यात अर एक बार संख्यात का भाग जानना। बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यनि करि अधिक इतर तीन गति के जीव देशसंयमी तिर्यंचनि स्यों असंख्यात गुणे जानने। इहां पल्य कौं दोय बार असंख्यात अर एक बार संख्यात का भाग जानना। बहुरि मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव एक सौ च्यारि कोडि मनुष्यनि करि सहित इतर तीन गति के जीव सासादन वालौं तैं संख्यातगुणे जानने। इहां पल्य कौं दोय बार असंख्यात का भाग जानना। बहुरि अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सात सै कोडि मनुष्यनि करि सहित इतर तीन गति के जीव मिश्रवालौं तैं असंख्यात गुणे जानने। इहां पल्य कौ एक बार असंख्यात का भाग जानना।

तिरधिय-सय-णव-णउदी, छण्णउदी अप्पमत्त बे कोडी।
पंचेव य तेणउदी णव-ट्ठ-बि-सय-च्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥

त्र्यधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वे कोटी।
पंचैव च त्रिनवतिः, नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ॥६२५॥

टीका – प्रमत्तगुणस्थान विषै जीव पांच कोडि तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोय सैं छह (५९३९८२०६) हैं। बहुरि अप्रमत्त गुणस्थान विषैं जीव तीन अधिक एक सौ अर निन्यानवै हजार अर छिनवै लाख अर दोय कोडी (२९६९९१०३) इतने हैं। गाथा विषै पहिलै अप्रमत्त की संख्या कही प्रमत्त की संख्या छंद मिलनें के अर्थी कही है।

ति-सयं भणंति केई, चउरुत्तरमत्थपंचयं केई।
उवसामग-परिमाणं, खवगाणं जाण तद्दुगुणं[2] ॥६२६॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तमस्तपंचकं केचित्।
उपशामकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ॥६२६॥

टीका — आठवैं, नवै, दशवैं, ग्यारवें गुणस्थान उपशम श्रेणीवाले जीवनि का प्रमाण केई आचार्य तीन सै कहै है। केई तीन सैं च्यारि कहै है। केई पांच घाटि

१. षट्खण्डागम – धवला . पुस्तक–३, पृष्ठ ९०, गाथा सं. ४१.
२. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ ९४, गाथा सं. ४५.

अर च्यारि अधिक तीन सै कहै है। ताके एक घाटि तीन सै भए। बहुरि आठवैं, नवैं, दशवैं, बारहवें गुणस्थानी क्षपक जीवनि का प्रमाण उपशमकवालौ तैं दूणा हे शिष्य! तू जानि।

इहां तीन सै च्यारि उपशम श्रेणीवाले जीवनि की संख्या का निरंतर आठ समयनि विषै विभाग करैं हैं—

सोलसयं चउवीसं, तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं, चउवण्णं होंति उवसमगे[1] ॥६२७॥

षोडशकं चतुर्विंशतिः, त्रिंशत् षट्त्रिंशत् तथा च द्वाचत्वारिंशत्।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुःपंचाशत् भवंति उपशमके ॥६२७॥

टीका – बीचि में अंतराल न पडै अर उपशम श्रेणी कौ जीव माडै तौ आठ समयनि विषै उत्कृष्टपनै एते जीव उपशम श्रेणी मांडै, पहिला समय तैं लगाइ आठवां समय पर्यंत अनुक्रम तैं सोलह, चौईस, तीस, छत्तीस, वियालीस, अडतालीस, चौवन, चौवन जीव निरन्तर अष्ट समयनि विषै होंहि (१६, २४, ३०, ३६, ४२, ४८, ५४, ५४)।

बत्तीसं अडवालं, सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी।
छण्णउदी अट्ठुत्तर-सयमट्ठुत्तर-सयं च खवगेसु[2] ॥६२८॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत, षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ॥६२८॥

टीका – बहुरि निरन्तर अष्ट समयनि विषै क्षपक श्रेणी को माडै असे जीव उपशम श्रेणीवालों तैं दूणे जानने। तहां पहिला समय तैं लगाइ अनुक्रम तैं बत्तीस, अडतालीस, साठि, बहत्तरि, चउरासी, छिनवै, एक सौ आठ, एक सौ आठ (३२, ४८, ६०, ७२, ८४, ९६, १०८, १०८) जीव निरंतर अष्ट समयनि विषै हो है। इस ही संख्या को घाटि बाधि कौ बरोबरि करि पहिलै चौतीस माडै, पीछै आठ समय ताईं बारह-२ अधिक माडै, तहां आदि चौतीस (३४) उत्तर बारह (१२) गच्छ आठ ८,

---

२. षटखण्डागम – धवला. पुस्तक ३, पृष्ठ ९१, गाथा सं० ४२

१. षडखण्डागम – धवला. पुस्तक ३, पृष्ठ ९३, गाथा स० ४३.

याका 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादिक सूत्र करि जोड़ दीजिए। तहां गच्छ आठ, तामैं एक घटाएं सात रहे, दोय का भाग दीएं, साढातीन रहे, उत्तर करि गुणें बियालीस भए, आदि करि युक्त कीएं, छिहंतरि भए, गच्छ करि गुणें, छह सै आठ भए, सो निरन्तर आठ समयनि विषै क्षपक श्रेणी मांडि करि जीव एकठे होहि, तिनिका प्रमाण छह सै आठ जानना। बहुरि उपशमकनि विषै आदि सतरह (१७) उत्तर छह (६) गच्छ आठ (८) जोड दीए, तीन सै च्यारि भए, सो प्रमाण जानना।

अट्ठेव सय-सहस्सा, अट्ठा-णउदी तहा सहस्साणं।
संखा जोगिजिणाणं, पंच-सय-बि-उत्तरं वंदे[1] ॥६२६॥

अष्टैव शतसहस्राणि, अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम्।
संख्या योगिजिनानां, पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ॥६२९॥

टीका — सयोग केवली जिननि की संख्या आठ लाख अठयाणवै हजार पांच सै दोय (८९८५०२) है। तिनिकौं मैं सदाकाल वंदौं हूं। इहां निरन्तर आठ समयनि विषै एकठे भए सयोगी जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांत विषै असें कहैं हैं — छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ।१।

याका अर्थ — छह शुद्ध समयनि विषै तीन तीन जीव केवलज्ञान कौं उपजावैं हैं। दोय समयनि विषै दोय दोय जीव केवलज्ञान कौ उपजावै है। असें आठ समयनि विषै एकठे भए जीव बावीस हो है।

भावार्थ — केवलज्ञान उपजने का छह महिने का अंतराल होइ, तब बीचि में अन्तराल न पडै, असें निरंतर आठ समयनि विषै बाईस जीव केवलज्ञान उपजावै है।

सो इहां विशेष कथन विषै छह त्रैराशिक हो है।

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ ९६ गाथा स, ४६। पाठभेद—पचसदविउत्तर जाण।

छह त्रैराशिक का यंत्र			
प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६, समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा
काल मास ६, समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८/२ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८/४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ८ (आठवा) भाग	केवली ८९८५०२

तहा बाईस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मास मात्र काल विषै होइ, तौ आठ लाख अठ्याणवै हजार पाच सै दोय केवलज्ञानी केते काल विषै होइ ? असैं त्रैराशिक कीएं चालीस हजार आठ सै इकतालीस कौ छह मास आठ समयनि करि गुणै, जो प्रमाण होइ, तितना काल का प्रमाण आवै है । बहुरि आठ समय अधिक छह मास काल विषै निरतर केवल उपजने के आठ समय है; तौ पूर्वोक्त काल प्रमाण विषै केते समय है ? असैं त्रैराशिक कीए तीन लाख छब्बीस हजार सात सै अठाईस समय आवै है । बहुरि आठ समयनि विषै आचार्यनि के मतनि की अपेक्षा बाईस वा चवालीस वा अठ्यासी वा एक सौ छिहंतरि केवलज्ञान उपजावै, तौ पूर्वोक्त समयनि का प्रमाण विषै वा तिसतै आधा विषै वा चौथाई विषै वा आठवा भाग विषै केते केवलज्ञान उपजावै असैं चारि प्रकार त्रैराशिक कीए केवलानि का प्रमाण आठ लाख अठ्याणवै हजार पाच सै दोय आवै है, असै जानना ।

आगै एक समय विषै युगपत् संभवती असी क्षपक वा उपशमक जीवनि की विशेष संख्या गाथा तीनि करि कहै है--

होंति खवा इगिसमये, बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥६३०॥

पत्तेयबुद्ध-तित्थयर-त्थि-णउंसय-मणोहिणाणजुदा ।
दस-छक्क-वीस-दस-वीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥६३१॥[1]

जेट्ठावरबहुमज्झिम-ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा, उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥६३२॥ विसेसयं ।

भवन्ति क्षपका एकसमये, बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः, स्वर्गतश्च च्युताः ॥६३०॥

प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीपुंनपुंसकमनोऽवधिज्ञानयुताः ।
दशषट्कविंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ॥६३१॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यामावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपका, उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ॥६३२॥ विशेषकम् ।

टीका – युगपत् एक समय विषै क्षपक श्रेणीवाले जीव ऐसै उत्कृष्टता करि पाइये है । बोधित-बुद्ध तौ एक सौ आठ, पुरुषवेदी एक सौ आठ, स्वर्ग तै चय करि मनुष्य होइ क्षपक भए ऐसे एक सौ आठ, प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्री वेदी वीस, नपुंसक वेदी दश, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अठाईस मुक्त होने योग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दोय, जघन्य अवगाहना के धारक च्यारि, सर्व अवगाहना के मध्यवर्ती ऐसी अवगाहना के धारक आठ ऐसै ए सर्व मिले हुवे च्यारि सै वत्तीस भए । बहुरि उपशमक इनि तै आधे सर्व पाइए । तातै सर्व मिले हुवे दोय सै सोलह भए पूर्वे गुणस्थाननि विषैं एकठे भए जीवनि की सख्या कही थी, इहा ऐसा कह्या है – जो श्रेणी विषै युगपत् उत्कृष्ट होंइ तौ पूर्वोक्त जीव पूर्वोक्त प्रमाण होंइ, अधिक न होंइ ।

---

१ गाथा सं. ६३०, ६३१ के लिए षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ५ के पृष्ठ क्रम से ३०४, ३११, ३२१ और ३०७, ३२०, २३ देखें ।

आगे सर्वसंयमी जीवनि की संख्या कहै हैं—

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलि-मौलिय-हत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि[1] ॥६३३॥

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्धया नमस्यामि ॥६३३॥

टीका – सात का अंक आदि अर आठ का अंक अंत अर मध्य विषै छह नव के अंक ८९९९९९९७ असैं लिखै भई तीन घाटि नव कोडि सख्या तीहि प्रमाण जे संयमी छठे गुणस्थान तै लगाइ चौदहवां गुणस्थान पर्यंत है । तिनिकौ अजुली करि मस्तक हस्त लगावतौ संतौ मन, वचन, कायरूप त्रिकरण शुद्धता करि नमस्कार मैं करौ हौ । तहा प्रमत्तवाले ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले २९६९९१०३, च्यार्यो गुण-स्थानवर्ती उपशम श्रेणीवाले ११९६, च्यारचों गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणीवाले २३९२, सयोगी जिन ८९८५०२, मिले हूवे जे (८९९९९३९९) भए ते नव कोडि तीन घाटि विषैं घटाएं अवशेष पाच सैं अठयाणवै रहे, ते अयोगी जिन जानने ।

आगे च्यारि गतिनि का मिथ्यादृष्टी, सासादन, मिश्र, अविरत गुणस्थानवर्ती तिनकी संख्या का साधक पल्य के भागहार का विशेष कहै हैं – जाका भाग दीजिए ताकौं भागहार कहिए सो आगे जो जो भागहार का प्रमाण कहै है; तिस तिसका पल्य कौ भाग दीजिए, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तहां जीवनि का प्रमाण जानना । जहा भागहार का प्रमाण थोरा होइ, तहां जीवनि का प्रमाण बहुत जानना । जहा भागहार का प्रमाण बहुत होइ, तहां जीवनि का प्रमाण थोरा जानना । असैं एक हजार कौ पांच का भाग दीए दोय सैं पावै, दोय सै का भाग दीए पाच ही पावै असैं जानना ।

सो अब भागहार कहैं है—

ओघा-संजद-मिस्सय-सासण-सम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते[2] ॥६३४॥

---

१ षटखण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ ९८, निर्जभजिदा समगुणिदापमत्तरासी प्रमता ।

२. षटखण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ १६०-१८४ ।

देवाणं अवहारा, होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते, सोहम्मीसाणअवहारा[1] ।।६३५।। जुम्मं ।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये ।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ।।६३४।।

देवानामवहारा, भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते, सौधर्मैशानावहाराः ।।६३५।।

टीका – गुणस्थान संख्या विषै पूर्वै जो असंयत, मिश्र, सासादन की संख्या विषैं जो पल्य कौ भागहार कह्या है, तिनकौ एक घाटि आवली का असख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना तितना तिन भागहारनि में मिलाए देवगति विषै भागहार हो है । तहां पूर्वै असंयत गुणस्थान विषै भागहार का प्रमाण एक वार असंख्यात कह्या था, ताकौ एक घाटि आवली का असंख्यातवा भाग का भाग दीजिये, जो प्रमाण आवै, तितने तिस भागहार में मिलाइए, जो प्रमाण होइ, तितना देवगति सम्बन्धी असंयत गुणस्थान विषै भागहार जानना । इस भागहार का भाग पल्य कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने देवगति विषै असंयत गुणस्थानवर्ती जीव है । ऐसे ही आगै भी पल्य के भागहार जानने । बहुरि मिश्र विषै दोय वार असंख्यात रूप अर सासादन विषै दोय बार असंख्यात अर एक वार सख्यात रूप पूर्वै जो भागहार का प्रमाण कह्या था, तिसका एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तहां मिलाए, देवगति संबधी मिश्र विषै वा सासादन विषै भागहार का प्रमाण हो है । बहुरि देवगति संबंधी असंयत वा मिश्र वा सासादन विषै जो जो भागहार का प्रमाण कह्या, तिस तिसकौ एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तिस तिस भागहार मे मिलाये, जो जो प्रमाण होइ, सो सो सौधर्म-ईशान संबंधी अविरत वा मिश्र वा सासादन विषै भागहार जानना । जो देवगति संबंधी अविरत विषै भागहार कह्या था, ताकौ एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना तिस भागहार विषै मिलाए, सौधर्म – ईशान स्वर्ग संबंधी असंयत विषै भागहार हो है । इस ही प्रकार मिश्र विषै वा सासादन विषै भागहार जानना ।

---

[1] षट्खण्डागम – धवला · पुस्तक–३, पृष्ठ १६०–१६४ ।

सोहम्मेसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे ।
उवरि असंजद-मिस्सय-सासणसम्माण अवहारा[1] ॥६३६॥

सौधर्मेशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते ।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः ॥६३६॥

टीका – बहुरि ताके ऊपरि सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्ग है । तहां असयत विषै सौधर्म - ईशान संबंधी सासादन का भागहार तै असंख्यात गुणा भागहार जानना । इस असंयत का भागहार तै चकार करि असख्यात गुणा मिश्र विषै भागहार जानना । यातै संख्यात गुणा सासादन विषै भागहार जानना ।

आगै इस गुणने का अनुक्रम की व्याप्ति दिखावै है–

सोहम्मादासारं, जोइसि-वण-भवण-तिरिय-पुढवीसु ।
अविरद-मिस्सेऽसंखं, संखासंखगुण सासणे देसे[2] ॥६३७॥

सौधर्मादासहस्रारं, ज्योतिषिवनभवनतिर्यक्पृथ्वीषु ।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ॥६३७॥

टीका – सौधर्म - ईशान के ऊपरि सानत्कुमार - माहेन्द्र तै लगाइ शतार-सहस्रार पर्यंत पच युगल अर ज्योतिषी अर व्यंतर अर भवनवासी अर तिर्यंच अर सात नरक की पृथ्वी इनि सोलह स्थान संबधी अविरत विषै अर मिश्र विषै असख्यात गुणा अनुक्रम जानना । अर सासादन विषै संख्यात गुणा अनुक्रम जानना । अर तिर्यंच सबधी देशसयत विषै असख्यात गुणा अनुक्रम जानना, सो इस कथन का दिखाइए है–

सानत्कुमार - माहेन्द्र विषै जो सासादन का भागहार कह्या, तीहिस्यो ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । सख्यात की सहनानी च्यारि ।४। का अक है । बहुरि यातै लांतव कापिष्ठ विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातै सासादन का भाग-

१ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ सख्या २८२ से २८५ तक ।
२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ सख्या २८२ से २८५ तक ।

हार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै शुक्र - महाशुक्र विषै असयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादन का भागहार सख्यात गुणा है। बहुरि यातै शतार-सहस्रार विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भाग हार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै ज्योतिषीनि विषैं असंयत का भागहार असख्यात गुणा है। यातैं मिश्र का असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं व्यंतरनि विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै भवनवासीनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है।

बहुरि यातै तिर्यंचनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। यातै तिर्यंच विषै ही देशसंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। सो जो देशसंयत विषै जो भागहार का प्रमाण है, सोई प्रथम नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार है। याते मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै दूसरी नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असख्यात गुणा है। याते मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै तीसरी नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। यातै चौथी नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै पंचम नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै षष्ठम पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै सप्तम नरक पृथ्वी विषै असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादन का भागहार संख्यात गुणा है।

आगै आनतादि विषै तीनि गाथानि करि कहै है--

चरम-धरासण-हारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं ।
अंतिम-गेवेज्जंतं, सम्माणमसंखसंखगुणहारा ।।६३८।।

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति ।
अंतिमग्रैवेयकांतं, समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ।।६३८।।

टीका – तीहि सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादन के भागहार तै आनत-प्राणत संबंधी अविरत का भागहार असख्यात गुणा है । बहुरि यातै आरण-अच्युत तै लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनि विषै असंयत का भागहार अनुक्रम तै सख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना । इहा सख्यात की सहनानी पाच का अंक है ।

तत्तो ताणुत्ताणं, वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो, आणदमिस्से असंखगुणो[1] ।।६३९।।

ततस्तेषामुक्तानां, वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुण, आनतमिश्रे असंख्यगुणः ।।६३९।।

टीका – तीहि अतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयत का भागहार तै आनत-प्राणत युगल तै लगाइ, नवमा ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनि विषै वामे जे मिथ्यादृष्टी जीव, तिनिका सख्यात गुणा, सख्यात गुणा भागहार अनुक्रम तै जानना । इहा सख्यात की सहनानी छह का अक है । बहुरि तीहि अंतिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टी का भागहार तै नवानुदिश विमान वा विजयादिक च्यारि विमान, इनि दोऊ स्थानकनि विषै असंयत का भागहार संख्यात गुणा, संख्यात गुणा क्रमतै जानना । इहा सख्यात की सहनानी सात का अक है । बहुरि विजयादिक सम्बन्धी असयत का भागहार तै आनतप्राणत सम्बन्धी मिश्र का भागहार असख्यात गुणा है ।

तत्तो संखेज्जगुणो, सासाणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो, पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी[2] ।।६४०।।

---

१. षट्खडागम धवला पुस्तक–३, पृष्ठ स. २८५ ।
२. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ स. २८५ ।

ततः संख्येयगुणः, सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ।।६४०।।

टीका – तीहिं आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्र का भागहार तै आरण-अच्युत तै लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनि विषैं मिश्र गुणस्थान संबधी भागहार अनुक्रम तै संख्यात गुणा, संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यात की सहनानी आठ का अंक है। बहुरि अंतिम ग्रैवेयक के मिश्र का भागहार तैं आनत - प्राणत तै लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनि विषे सासादन का भागहार अनुक्रम तै संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यात को सहनानी च्यारि ।४। का अक है। ए कहे पच स्थानक, तिनिविषै संख्यात की सहनानी क्रमतै पांच, छह, सात, आठ, च्यारि का अंक जानना; सो कहते ही आए है।

सग-सग-अवहारेहिं, पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सग-सग-गुणपडिवण्णे सग-सग-रासीसु अवणिदे वामा ।।६४१।।

स्वकस्वकावहारैः, पल्ये भक्ते भवंति स्वकराशयः ।
स्वकस्वकगुणप्रतिपन्नेषु, स्वकस्वकराशिषु अपनीतेषु वामाः ।।६४१।।

टीका — पूर्वै कह्या जो अपना–अपना भागहार, तिनिका भाग पल्य कौ दीए, जो जो प्रमाण आवै, तितने–तितने जीव तहां जानने। बहुरि अपना-अपना सासादन, मिश्र, असयत अर देशसंयत गुणस्थाननि विषै जो-जो प्रमाण भया, तिनिका जोड दीए, जो-जो प्रमाण होइ, तितना-तितना प्रमाण अपना-अपना राशि का प्रमाण मे घटाए, जो-जो अवशेष प्रमाण रहै, तितने-तितने जीव, तहां मिथ्यादृष्टी जानने। तहा सामान्यपनै मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन ससारी-राशि प्रमाण है। सामान्यपनै देवगति विषै ऊन किंचित् देवराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टी जानने। सौधर्मादिक विषै जो-जो जीवनि का प्रमाण कह्या है, तहां द्वितीयादि गुणस्थान सबधी प्रमाण घटावने के निमित्त किंचित् ऊनता कीएं, जो-जो प्रमाण रहै, तितने-तितने मिथ्यादृष्टी है। सो सौधर्मादिक विषै जीवनि का प्रमाण कितना-कितना है ? सो गति मार्गणा विषै कह्या ही है। इहां भी किछू कहिए है–

सौधर्म - ईशानवाले घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणै, जो प्रमाण होइ, तितने है। सनत्कुमार युगल आदिक पंच युगलनि विषै क्रम तै जग-

च्छ्रेणी का ग्यारह्वां, नवमां, सातवा, पांचवां, चौथा वर्गमूल का भाग जगच्छ्रेणी कौ दीएं, जो-जो प्रमाण आवै, तितने-तितने है। ज्योतिषी पण्णट्ठि प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौ दीए, जो प्रमाण आवै, तितने है। व्यंतर संख्यात प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण आवै, तितने है। भवनवासी घनांगुल के प्रथम वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौ गुणें, जो प्रमाण आवै, तितने है। तिर्यंच किंचित् ऊन संसारीराशि प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी विषै नारकी घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल करि साधिक बारह्वां भाग करि हीन जो जगच्छ्रेणी, ताकौ गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने है। द्वितीयादिक पृथ्वी विषै क्रमतै जगच्छ्रेणी का बारह्वा, दशवा, आठवां, छठा, तीसरा, दूसरा वर्गमूल का भाग जगच्छ्रेणी कौ दीए, जो जो प्रमाण होइ, तितने-तितने जानने। इनि सबनि विषै अन्य गुणस्थानवालो का प्रमाण घटावने के अर्थी किंचित् ऊन कीएं, मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण हो है। बहुरि आनतादिक विषै मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण इहां ही पूर्वै कह्या है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि विषै अहमिंद्र सर्व असयत ही है। ते द्रव्य स्त्री मनुष्यणी तिनितै तिगुणे वा कोई आचार्य के मत करि सात गुणे कहे है।

आगै मनुष्य गति विषै सख्या कहै है–

तेरसकोडी देसे, बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्सा वि य तद्दुगुणा, असंजदा सत्त-कोडि-सयं[1] ॥६४२॥

त्रयोदशकोट्यो देशे, द्वापंचाशत् सासने मंतव्याः।
मिश्रा अपि च तद्द्विगुणा असंयताः सप्तकोटिशतम् ॥६४२॥

टीका – मनुष्य जीव देशसयत विषै तेरह कोडि है। बावन कोडि सासादन विषै जानने। मिश्र विषै तिनतै दुगुणे एक सौ च्यारि कोडि जानने। असयत विषै सातसै कोडि जानने और प्रमत्तादिक की सख्या पूर्वै कही है; सोई जाननी। ऐसैं गुणस्थाननि विषै जीवनि का प्रमाण कह्या है।

जीविदरे कम्मचये, पुण्णं पावो त्ति होदि पुण्णं तु।
सुहपयडीणं दव्वं, पावं असुहाण दव्वं तु ॥६४३॥

---

१ षट्खण्डागम धवला पुस्तक–३, पृष्ठ–२५२, गाथा स. ६८ तथा पृष्ठ–२५४, गाथा स ७० तक

जीवेतरस्मिन् कर्मचये, पुण्यं पापमिति भवंति पुण्यं तु ।
शुभप्रकृतीनां द्रव्यं, पापं अशुभप्रकृतीनां द्रव्यं तु ।।६४३।।

टीका — जीव पदार्थ संबंधी प्रतिपादन विषे सामान्यपनै गुणस्थाननि विषै मिथ्यादृष्टी अर सासादन ए तौ पापजीव हैं। बहुरि मिश्र है ते पुण्य-पापरूप मिश्र जीव है; जातै युगपत् सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप परिणए है। बहुरि असंयत तौ सम्यक्त्व करि संयुक्त है। अर देशसंयत सम्यक्त्व अर देशव्रत करि संयुक्त हैं। अर प्रमत्तादिक सम्यक्त्व अर सकलव्रत करि संयुक्त है। तातै ए पुण्यजीव है। असैं कहि, याके अनंतरि अजीव पदार्थ संबंधी प्ररूपणा करै हैं।

तहां कर्मचय कहिए कार्माणस्कंध, तिसविषैं पुण्यपापरूप दोय भेद है। तातैं अजीव दोय प्रकार है। तहां साता वेदनी नरक बिना तीन आयु, शुभ नाम, उच्चगोत्र ए शुभ प्रकृति है। तिनिकौं द्रव्यपुण्य कहिए। बहुरि घातिया कर्मनि की सर्व प्रकृति, असाता वेदनी, नरक आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र ए अशुभ प्रकृति हैं। तिनिकौ द्रव्यपाप कहिए।

आसव-संवरदव्वं, समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं, उक्कस्सं होदि णियमेण ।।६४४।।

आस्रवसंवरद्रव्यम्, समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यम् ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ।।६४४।।

टीका – बहुरि आस्रव द्रव्य अर संवर द्रव्य समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातैं एक समय विषै आस्रव समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गल परमाणूनि ही का हो है। बहुरि संवर होइ तौ तितने ही कर्मनि का आस्रव न होइ, तातै द्रव्य संवर भी तितना ही कह्या। बहुरि उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समयप्रबद्ध तै असंख्यात गुणा नियम करि जानना; जातै गुणश्रेणी निर्जरा विषै उत्कृष्टपनै एक समय विषै असंख्यात समयप्रबद्धनि की निर्जरा करै है।

बंधो समयपबद्धो, किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं, सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ।।६४५।।

बंधः समयप्रबद्धः, किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं, श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ।।६४५।।

टीका – बहुरि बंध द्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातै एक समय विषै समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनि ही का बंध हो है। बहुरि मोक्ष द्रव्य किंचिदून द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातै अयोगी कैं चरम समय विषै द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्ता पाइए। तिस ही का मोक्ष हो है; इस प्रकार तत्वार्थ है, ते श्रद्धान करणे, इस तत्त्वार्थ श्रद्धान ही का नाम सम्यक्त्व है।

आगै सम्यक्त्व के भेद कहै है—

खीणे दंसणमोहे, जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई[1]।
तं खाइय-सम्मत्तं, णिच्चं कम्म-क्खवण-हेदू ॥६४६॥

क्षीणे दर्शनमोहे, यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥६४६॥

टीका – मिथ्यात्व मोहनी, सम्यग्मिथ्यात्व मोहनी, सम्यक् मोहनी अर अनंतानुबधी की चौकड़ी इनि सात प्रकृतिनि का करणलब्धिरूप परिणामनि का बल तै नाश होत संतै जो अति निर्मल श्रद्धान होइ, सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो प्रतिपक्षी कर्म का नाश करि आत्मा का गुण प्रगट भया है; तातै नित्य है। बहुरि समय समय प्रति गुणश्रेणी निर्जरा कौ कारण है; तातै कर्मक्षय का हेतु है।

उक्तं च–

दंसणमोहे खविदे, सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ॥

दर्शन मोह का क्षय होतै, तीहि भव विषै वा देवायु का बध भए तीसरा भव विषै वा पहिलै मिथ्यात्वदशा विषै मनुष्य, तिर्यच आयु का बध भया होइ तौ चौथा भव विषै सिद्ध पद कौ प्राप्त होइ, चौथा भव कौ उलंघै नाही। बहुरि अन्य सम्यक्त्ववत् यह क्षायिक सम्यक्त्व विनशै भी नाही, तीहिस्यों नित्य कह्या है। सादि अक्षयानत है। आदि सहित अविनाशी अंत रहित है; यह अर्थ जानना।

---

१. षटखण्डागम धवला . पुस्तक–१, पृष्ठ ३९७, गाथा स. २१३।

इस ही अर्थ कौं कहै हैं–

वयणेहिं वि हेदूहिं वि, इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।
बीभच्छजुगंछाहिं य, तेलोक्केण वि ण चालेज्जो[1] ॥६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः ।
बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ॥६४७॥

टीका – श्रद्धान नष्ट होने कौं कारण असे कुत्सित वचननि करि वा कुत्सित हेतु दृष्टांतनि करि वा इंद्रियनि कौ भयकारी असे विकाररूप अनेक भेप आकारनि करि वा ग्लानि कौं कारण असी वस्तु तै निपज्या जुगुप्सा, तिन करि क्षायिक सम्यक्त्व चलै नाही । बहुत कहा कहिए तीन लोक मिलि करि क्षायिक सम्यक्त्व कौं चलाया चाहै तौ क्षायिक सम्यक्त्व चलावने कौ समर्थ न होइ।

सो क्षायिक सम्यक्त्व कौन कैं हो है ? सो कहै है–

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले, णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥६४८॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि ।
मनुष्यः केवलिमूले, निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥६४८॥

टीका – दर्शन मोह की क्षपणा का प्रारंभ तौ कर्मभूमि का उपज्या मनुष्य ही का केवली के पाद्मूल विषै ही हो है । अर निष्ठापक सर्वत्र च्यारयों गति विषै हो है ।

भावार्थ — जो दर्शन मोह का क्षय होने का विधान है, तिसका प्रारंभ तौ केवली वा श्रुतकेवली के निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करै है । बहुरि सो विधान होतैं मरण हो जाय तौ जहां संपूर्ण दर्शन मोह के नाश का कार्य होइ निवरै, तहां ताकौं निष्ठापक कहिए, सो च्यार्यों गति विषै हो है ।

आगै वेदक सम्यक्त्व का स्वरूप कहै हैं–

दंसणमोहुदयादो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं, वेदयसम्मत्तमिदि जाणे[2] ॥६४९॥

---

१. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–१ पृष्ठ ३९७, गाथा स. २१४ ।
२. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–१ पृष्ठ ३९८, गाथा स. २१५ ।

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ।।६४९।।

टीका – दर्शनमोह का भेद सम्यक्त्वमोहनी, ताका उदय करि जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल वा मल वा अगाढ होइ, सो वेदक सम्यक्त्व है; असा तू जानि । चल, मलिन, अगाढ का लक्षण पूर्वें गुणस्थानप्ररूपणा विषै कह्या है ।

आगे उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप अर तिस ही की सामग्री का विशेष तीन गाथानि करि कहै हैं–

दंसणमोहुवसमदो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं, पसण्णमलपंकतोयसमं ।।६५०।।

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमम् ।।६५०।।

टीका — अनंतानुबंधी की चौकड़ी अर दर्शनमोह का त्रिक, इनि सात प्रकृतिनि के उदय का अभाव है लक्षण जाका असा प्रशस्त उपशम होवेतै जैसे कतक फलादिक तै मल कर्दम के नीचें बैठने करि जल प्रसन्न हो है; तैसे जो तत्वार्थ श्रद्धान उपजै, सो यहु उपशम नामा सम्यक्त्व है ।

खयउवसमिय-विसोही, देसण-पाउग्ग-करणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा, करणं पुण होदि सम्मत्ते ।।६५१।।

क्षायोपशमिकविशुद्धी, देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्याः करणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ।।६५१।।

टीका – सम्यक्त्व के पूर्वें जैसा कर्म का क्षयोपशम चाहिए तैसा होना, सो क्षयोपशमिकलब्धि । बहुरि जैसी विशुद्धता चाहिए तैसी होनी, सो विशुद्धिलब्धि । बहुरि जैसा उपदेश चाहिए तैसा पावना, सो देशनालब्धि । बहुरि पचेंद्रियादिक रूप योग्यता जैसी चाहिए तैसी होनी, सो प्रायोग्यलब्धि । बहुरि अध , अपूर्व, अनिवृत्तिकरणरूप परिणामनि का होना, सो करणलब्धि जाननी ।

तहां च्यारि लब्धि तौ सामान्य है; भव्य-अभव्य सर्व कै हो हैं । बहुरि करणलब्धि है, सो भव्य कै ही हो है । सो भी सम्यक्त्व अर चारित्र का ग्रहण विषै ही हो है ।

भावार्थ — च्यारि लब्धि तौ संसार विषै अनेक बार हो है । बहुरि करण-लब्धि की प्राप्ति भएं सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य हो है ।

आगें उपशमसम्यक्त्व के ग्रहणे को योग्य जो जीव ताका स्वरूप कहै हैं—

चदुगदिभव्वो सण्णी, पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी, पर्याप्तश्च शुद्धकश्च साकारः ।
जागरूकः सल्लेश्यः, सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥६५२॥

टीका – जो जीव च्यारि गति में कोई एक गति विषै प्राप्त असा भव्य होइ, सैनी होइ, पर्याप्त होइ, मंदकषायरूप परिणामता विशुद्ध होइ, स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन निद्रा तै रहित होने तै जागता होइ, भावित शुभ तीन लेश्यानि विषै कोई एक लेश्या का धारक होइ, करणलब्धिरूप परिणया होइ; असा जीव यथासंभव सम्यक्त्व कौ प्राप्त हो है ।

चत्तारि वि खेत्ताइं, आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं, ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५३॥

चत्वार्यपि क्षेत्राणि, आयुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वम् ।
अणुव्रतमहाव्रतानि, न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥६५३॥

टीका – च्यारि आयु विषै किसी ही परभव का आयु बंध कीया होइ, तिस बद्धायु जीव कै सम्यक्त्व उपजै, इहां किछू दोष नाही । बहुरि अणुव्रत अर महाव्रत जिसके देवायु का बंध भया होइ, तिसहीकै होइ । जो पहिलै नारक, तिर्यंच, मनुष्यायु का बंध मिथ्यात्व में भया होइ, तौ पीछे अणुव्रत, महाव्रत होइ नाही । यह नियम है ।

ण य मिच्छत्तं पत्तो, सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणो त्ति णेयो, पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः ।
स सासन इति ज्ञेयः, पंचमभावेन संयुक्तः ॥६५४॥

टीका – जो जीव सम्यक्त्व तै पड्या अर मिथ्यात्व कौ यावत् प्राप्त न भया, तावत् काल सासादन है; असा जानना । सो दर्शन मोह ही की अपेक्षा पांचवां पारिणामिक भाव करि संयुक्त है, जातै चारित्र मोह की अपेक्षा अनतानुबंधी के उदय तैं सासादन हो है, तातै इहां औदयिक भाव है । यहु सासादन जुदी ही जाति का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व मार्गणा का भेद जानना ।

सद्दहणासद्दहणं, जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो, सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ॥६५५॥

श्रद्धानाश्रद्धानं, यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु ।
विरताविरतेन समः, सम्यग्मिथ्या इति ज्ञातव्यः ॥६५५॥

टीका – जिस जीव कैं जीवादि पदार्थनि विषै श्रद्धान वा अश्रद्धान एक काल विषै होइ, जैसै देशसंयत कै संयम वा असंयम एकै काल हो है; तैसै होइ, सो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टी है, असा जानना । यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिश्र नामा भेद कह्या है ।

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥६५६॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं, उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥६५६॥

टीका – मिथ्यादृष्टी जीव जिन करि उपदेशित असे आप्त, आगम, पदार्थ, तिनिका श्रद्धान करै नाहीं । बहुरि कुदेवादिक करि उपदेश्या वा अनुपदेश्या झूठा आप्त, आगम, पदार्थ, तिनिका श्रद्धान करै है । यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिथ्यात्व नामा भेद कह्या । असै सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद कहे । उपशम, क्षायिक, सम्यक्त्व का विशेष विधान लब्धिसार नामा ग्रंथ विषै कह्या है । ताके अनुसारि इहा भाषा टीका विषै आगै किछू लिखेंगे, तहां जानना ।

आगै सम्यक्त्व मार्गणा विषै जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै हैं–

वासपुधत्ते खइया, संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे ।
तो संखपल्लठिदिये, केवडिया एवमणुपादे ॥६५७॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः, संख्येया यदि भवंति सौधर्मे ।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके, कति एवमनुपाते ॥६५७॥

टीका – क्षायिक सम्यक्त्वी बहुत कल्पवासी देव हो है । बहुरि कल्पवासी देव बहुत सौधर्म – ईशान विषैं है, तातै कहैं । जो पृथक्त्व वर्ष विषैं क्षायिक सम्यक्त्वी सौधर्म - ईशान विषै संख्यात प्रमाण उपजै तौ संख्यात पल्य की स्थिति विषै कितने उपजे ? असा त्रैराशिक करना । इहां प्रमाण राशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण काल, फलराशि संख्यात जीव, इच्छा राशि संख्या पल्य प्रमाण, कालसो फलतै इच्छा कौं गुणें, प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धि राशि भया, सो कहैं हैं—

संखावलिहिदपल्ला, खइया तत्तो य वेदमुवसमया ।
आवलिअसंखगुणिदा, असंखगुणहीणया कमसो ॥६५८॥

संख्यावलिहितपल्याः, क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः ।
आवल्यसंख्यगुणिता, असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ॥६५८॥

टीका — सो लब्ध राशि का प्रमाण संख्यात आवली का भाग पल्य कौं दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना आया, सो तितने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टी जानने । बहुरि इनिकौ आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणे, जो प्रमाण होइ, तितने वेदक सम्यग्दृष्टी जानने । बहुरि क्षायिक जीवा का परिमाण ही तै असंख्यात गुणा घाटि उपशम सम्यग्दृष्टी जीव जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमा, सासाणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहिं विहीणो, संसारी वामपरिमाणं ॥६५९॥

पल्यासंख्याताः, सासनमिथ्याश्च संख्यगुणिता हि ।
मिश्रास्तैर्विहीनः, संसारी वामपरिमाणम् ॥६५९॥

टीका – पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण सासादन, तेई मिथ्याती सामान्य है, तिनिका परिमाण है, तिनतै संख्यात गुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव है । बहुरि इन पंच सम्यक्त्व संयुक्त जीवनि का मिलाया हूवा परिमाण कौ संसारी राशि में घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहे, तितने वाम कहिए मिथ्यादृष्टी, तिनिका परिमाण है ।

अब इहां नव पदार्थनि का परिमाण कहिए है–

जीव द्रव्य तौ द्विरूपवर्गधारा विषैं कहे अपने प्रमाण लीए है। बहुरि अजीवविषैं पुद्गल द्रव्य जीवराशि तैं अनंत गुणे है। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाश द्रव्य एक है। कालद्रव्य जगच्छ्रेणी का घन, जो लोक, तीहि प्रमाण है। सो पुद्गल का परिमाण विषै धर्म, अधर्म, आकाश, काल का परिमाण मिलाएं, अजीव पदार्थ का परिमाण हो है।

बहुरि असंयत अर देशसंयत का परिमाण मिलाए, तिन विषै प्रमत्तादिकनि का प्रमाण संख्यात मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितने पुण्य जीव है। बहुरि किंचिदून द्व्यर्द्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनि की सत्ता है ताके संख्यातवे भागमात्र शुभ प्रकृतिरूप अजीव पुण्य है। बहुरि मिश्र अपेक्षा किछू अधिक जो पुण्य जीवनि का प्रमाण, ताकौ संसारी राशि में घटाएं, जो प्रमाण रहे, तितने पाप जीव है। बहुरि द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध कौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष भाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीव पाप हैं। बहुरि आस्रव पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। संवर पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुणश्रेणी निर्जरा विषैं उत्कृष्टपनै जितनी निर्जरा होइ तीहिं प्रमाण है। बंध पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। मोक्षद्रव्य द्व्यर्ध गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्र थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत की टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनविषै सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नाम सतरहवा अधिकार सपूर्ण भया ॥१७॥

> जो उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करते है, वे मोक्ष का उपाय कर सकते हैं और जो पुरुषार्थ नही करते वे मोक्ष का उपाय नही कर सकते। उपदेश तो शिक्षामात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करे, वैसा लगता है।
>
> – मोक्षमार्ग प्रकाशक – अध्याय ९–पृष्ठ–३१०

अठारहवां अधिकार : संज्ञीमार्गणा

अरि रजविघ्न विनाशकर, अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनि करि पूज्य पद, द्यो श्री अर भगवान ।।१८।।

आगे संज्ञी मार्गणा कहैं है-

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो ।।६६०।।

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी, इतरः शेषेंद्रियावबोधः ।।६६०।।

टीका - नो इन्द्रिय जो मन, ताके आवरण का जो क्षयोपशम तीहिंकरि उत्पन्न भया जो बोधन, ज्ञान, ताकौं संज्ञा कहिए । सो संज्ञा जाकैं पाइए ताकौ संज्ञी कहिए है । मन-ज्ञान करि रहित अवशेष यथासंभव इन्द्रियनि का ज्ञान करि संयुक्त जो जीव, सो असंज्ञी है ।

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी, तव्विवरीओ असण्णी दु ।।६६१।।

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स संज्ञी, तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ।।६६१।।

टीका - हित-अहित का करने - त्यजनेरूप शिक्षा, हाथ-पग का इच्छा करि चलावने आदिरूप क्रिया, चामठी (बेत) इत्यादि करि उपदेश्या वधविधानादिक सो उपदेश, श्लोकादिक का पाठ सो आलाप, इनिका ग्रहण करणहारा जो मन ताका अवलंबन करि क्रम तैं मनुष्य वा बलध वा हाथी वा सूवा इत्यादि जीव, सो संज्ञी नाम है । बहुरि इस लक्षण तै उलटा लक्षण का जो जीव, सो असंज्ञी नाम जानना ।

मीमंसदि जो पुव्वं, कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य, समणो अमणो य विवरीदो ।।६६२।।

मीमांसति यः पूर्वं, कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च, समनाः अमनाश्च विपरीतः ।।६६२।।

टीका – जो पहिलै कार्य – अकार्य कौ विचारै, तत्त्व – अतत्त्व कौ सीखै, नाम करि बुलाया हुवा आवै, सो जीव मन सहित समनस्क, सञ्ज्ञी जानना । इस लक्षण ते उलटा लक्षण कौ जो धरै होइ, सो जीव मन रहित अमनस्क असंज्ञी जानना ।

इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं –

देवेहिं सादिरेगो, रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी, सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ।।६६३।।

देवैः सातिरेको, राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणम् ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानाम् ।।६६३।।

टीका – च्यारि प्रकार के देवनि का जो प्रमाण, तिनितै किछू अधिक सञ्ज्ञी जीवनि का प्रमाण है । संज्ञी जीवनि विषै देव बहुत है । तिनिविषै नारक, मनुष्य, पंचेंद्री सैनी तिर्यंच मिलाए सञ्ज्ञी जीवनि का प्रमाण हो है । इस प्रमाण कौ संसारी जीवनि का प्रमाण में घटाएं, अवशेष सर्व असंज्ञी जीवनि का प्रमाण हो है ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व-
प्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नाम भाषा टीका
विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषै सञ्ज्ञी-मार्गणा
प्ररूपणा नामा अठारहवा अधिकार सपूर्ण भया ।।१८।।

> तत्त्वनिर्णय करने मे उपयोग न लगावे वह तो इसी का दोष है । तथा पुरुपार्थ से तत्त्वनिर्णय मे उपयोग लगावे तव स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर सम्यत्वादि रूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है ।
>
> – मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ६, पृष्ठ–३११

उन्नीसवां अधिकार : आहार-मार्गणा

मल्लिकुसुम समगंधजुत मोह शत्रुहर मल्ल ।
बहिरंतर श्रीसहित जिन, मल्लि हरहु मम शल्ल ।।१९।।

आगै आहार-मार्गणा कहैं हैं-

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं णाम ।।६६४।।

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानाम् ।
नोकर्मवर्गणानां, ग्रहणमाहारकं नाम ।।६६४।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीर नामा नामकर्म विषैं किसी ही का उदय करि जो तिस शरीररूप वा वचनरूप वा द्रव्य मनरूप होने योग्य जो नोकर्म वर्गणा, तिनिका जो ग्रहण करना, सो आहार असा नाम है ।

आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं, तम्हा आहारयो भणियो ।।६६५।।

आहरति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च ।
भासामनसोर्नित्यं तस्मादाहारको भणितः ।।६६५।।

टीका – औदारिकादिक शरीरनि विषैं जो उदय आया कोई शरीर, तीहि रूप आहारवर्गणा, बहुरि भाषावर्गणा, बहुरि मनोवर्गणा इन वर्गणानि कौ यथायोग्य जीवसमास विषै यथायोग्य काल विषै यथायोग्यपनैं नियमरूप आहरति कहिए ग्रहण करै, सो आहार कह्या है ।

विग्गहगदिमावण्णा, केवलिणो समुग्घदो अयोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा ।।६६६।।

विग्रहगतिमापन्नाः, केवलिनः समुद्घाता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्च अनाहाराः, शेषा आहारका जीवाः ।।६६६।।

टीका – विग्रहगति कौ जे प्राप्त भए, असे च्यारयों गतिवाले जीव, बहुरि प्रतर अर लोकपूरणरूप केवल समुद्घात कौ प्राप्त भए असे सयोगी-जिन, बहुरि सर्व अयोगी-जिन, बहुरि सर्व सिद्ध भगवान ए सर्व अनाहारक है । अवशेष सर्व जीव आहारक ही है ।

सो समुद्घात कै प्रकार है ? सो कहै है–

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो, सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६७॥

वेदनाकषायवैगूर्विकाश्च, मारणांतिकः समुद्घातः ।
तेजआहारः षष्ठः, सप्तमः केवलिनां तु ॥६६७॥

टीका – वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, छठा आहारक, सातवां केवल ए सात समुद्घात जानने । इनिका स्वरूप लेश्या मार्गणा विषै क्षेत्राधिकार में कह्या था, सो जानना ।

समुद्घात का स्वरूप कहा, सो कहै है–

मूलसरीरमछंडिय, उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो, होदि समुग्घादणामं तु ॥६६८॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य ।
निर्गमनं देहाद्भवति समुद्घातनाम तु ॥६६८॥

टीका – मूल शरीर कौ तौ छोड़ै नाही, बहुरि कार्माण, तैजसरूप उत्तर शरीर सहित जीव के प्रदेश समूह का मूल शरीर तै बाह्य निकसना, सो समुद्घात असा नाम जानना ।

आहारमारणंतिय दुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु ।
दस-दिसि गदा हु सेसा, पंच समुग्घादया होंति ॥६६९॥

आहारमारणांतिकद्विकमपि नियमेन एकदिशिकं तु ।
दशदिशि गताहि शेषाः पंच समुद्घातका भवति ॥६६९॥

टीका – आहारक अर मारणांतिक ए दोऊ समुद्घात तौ नियम करि एक दिशा कौ ही प्राप्त हो है; जातै इन विषै सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण ही उंचाई, चौड़ाई होइ । अर लंबाई बहुत होइ । तातैं एक दिशा कौ प्राप्त कहिए । बहुरि अवशेष पंच समुद्घात रहे, ते दशों दिशा कौं प्राप्त हैं, जातै इनि विषै यथायोग्य लंबाई, चौड़ाई, उंचाई सर्व ही पाइए है ।

आगै आहार अनाहार का काल कहैं हैं–

अंगुलअसंखभागो, कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो, उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥६७०॥

अंगुलासंख्यभागः, कालः आहारकस्योत्कृष्टः ।
कार्मणे अनाहारः, उत्कृष्टः त्रयः समया हि ॥६७०॥

टीका – आहार का उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है । सूच्यंगुल का असंख्यातवा भाग के जेते प्रदेश होंहि, तितने समय प्रमाण आहारक का काल है ।

इहां प्रश्न – जो मरण तौ आयु पूरी भएं पीछें होइ ही होइ, तहां अनाहार होइ इहां आहार का काल इतना कैसे कह्या ?

ताका समाधान – जो मरण भए भी जिस जीव के वक्ररूप विग्रह गति न होइ, सूधी एक समय रूप गति होइ, ताकै अनाहारकपणा न हो है । आहारकपणा ही रहै है, तातै आहारक का पूर्वोक्तकाल उत्कृष्टपनै करि कह्या है । बहुरि आहारक का जघन्य काल तीन समय घाटि सांस का अठारहवां भाग जानना; जातै क्षुद्रभव विषै विग्रहगति के समय घटाए इतना काल हो है । बहुरि अनाहारक का काल कार्माण शरीर विषै उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना; जातै विग्रह गति विषै इतने काल पर्यंत ही नोकर्म वर्गणानि का ग्रहण न हो है ।

आगै इहां जीवनि की संख्या कहै है—

कम्मइयकायजोगी, होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी, सव्वो आहारपरिमाणं ॥६७१॥

कार्मणकाययोगी, भवति अनाहारकाणां परिमाणम् ।
तद्विरहितसंसारी, सर्वं आहारपरिमाणम् ॥६७१॥

टीका – कार्माण काययोगवाले जीवनि का जो प्रमाण योगमार्गणा विषै कह्या, सोई अनाहारक जीवनि का प्रमाण जानना । इसकौ ससारी जीवनि का प्रमाण में घटाएं, अवशेष रहै, तितना आहारक जीवनि का प्रमाण जानना । सोई कहै हैं – प्रथम योगनि का काल कहिए है – कार्माण का तौ तीन समय, औदारिक मिश्र का अंतर्मुहूर्त प्रमाण, औदारिक का तीहिस्यो संख्यात गुणा काल, तहा सर्वकाल मिलाएं तीन समय अधिक संख्यात अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल भया । याका किंचित् ऊन संसारी राशि का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौ तीन करि गुणें, जो प्रमाण आवै तितने अनाहारक जीव है; अवशेष सर्व संसारी आहारक जीव है । वैक्रियिक, आहारकवाले थोरे है, तिन की मुख्यता नाही है ।

इहां **प्रक्षेप योगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति**, असा यह करणसूत्र जानना । **याका अर्थ** - प्रक्षेप कौ मिलाय करि मिश्र पिंड का भाग देइ, जो प्रमाण होइ ताकौ प्रक्षेपक करि गुणे, अपना अपना प्रमाण होइ । जैसें कोई एक हजार प्रमाण वस्तु है, तातै किसी का पंच बटः है, किसी का सात बट है, किसी का आठ बट है । सब कौ मिलाएं प्रक्षेपक का प्रमाण बीस भए । तिस बीस का भाग हजार कौ दीएं पचास पाए, तिनकौ पंच करि गुणे, अढाई सै भए, सो पच बटवाले कै आए । सात करि गुणें, साढा तीन सौ भए, सो सात बटवाले कै आए । आठ करि गुणें, च्यारि सै भए, सो आठ बटवाले कै आए । असे मिश्रक व्यवहार विषै अन्यत्र भी जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्रथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै आहार-मार्गणा प्ररूपणा नाम उगनीसवा अधिकार सपूर्ण भया ।।१६।।

सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है, परतु ऐसा पुरुषार्थ नही करता, इसी से भ्रम रहता है । निर्णय करने का पुरुषार्थ करे-तो भ्रम का कारण जो मोह-कर्म, उसके भी उपशमादि हो, तब भ्रम दूर हो जाये, क्योकि निर्णय करते हुए परिणामो की विशुद्धता होती है, उससे मोह के स्थिति अनुभाग घटते है ।

— मोक्षमार्ग प्रकाशक : अधिकार ६, पृष्ठ-३१०

बीसवां अधिकार : उपयोगाधिकार

सुव्रत पावन कौं भजै, जाहि भक्त व्रतवंत ।
निज सुव्रत श्री देहु मम, सो सुव्रत अरहंत ।।२०।।

आगै उपयोगाधिकार कहैं हैं—

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव णायारो ।।६७२।।

वस्तुनिमित्तं भावो, जातो जीवस्य यस्तूपयोगः ।
स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चेवानाकारः ।।६७२।।

टीका — बसै है, एकीभाव रूप निवसै है; गुरण, पर्याय जा विषैं, सो वस्तु, ज्ञेय पदार्थ जानना। ताके ग्रहण के अर्थि जो जीव का परिणाम विशेष रूप भाव प्रवर्तै, सो उपयोग है। बहुरि सो उपयोग साकार - अनाकार भेद तै दोय प्रकार जानना ।

आगै साकार उपयोग आठ प्रकार है, अनाकार उपयोग च्यारि प्रकार हैं, अैसा कहै है—

णाणं पंचविहं पि य, अण्णाण-तियं च सागरुवजोगो ।
चदु-दंसणमणगारो, सव्वे तल्लक्खणा जीवा ।।६७३।।

ज्ञानं पंचविधमपि च, अज्ञानत्रिकं च साकारोपयोगः ।
चतुर्दर्शनमनाकारः, सर्वे तल्लक्षणा जीवाः ।।६७३।।

टीका — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए पंच प्रकार ज्ञान, बहुरि कुमति, कुश्रुत, विभंग ए तीन अज्ञान, ए आठौ साकार उपयोग है। बहुरि चक्षु, अचक्षु अवधि, केवल ए च्यारयो दर्शन अनाकार उपयोग है। सो सर्व ही जीव ज्ञान - दर्शन रूप उपयोग लक्षण कौ धरै है ।

इस लक्षण विषै अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभवी दोष न संभवै हैं। जहां लक्ष्य विषै वा अलक्ष्य विषै लक्षण पाइए. तहां अतिव्याप्ति दोष है। जैसे जीव का

लक्षण अमूर्तिक कहिए तौ अमूर्तिकपना जीव विषैं भी है अर धर्मादिक विषै भी है। बहुरि जहा लक्षण का एकदेश विषै लक्षण पाइए, तहां अव्याप्ति दोष है। जैसे जीव का लक्षण रागादिक कहिए तौ रागादिक संसारी विषै तौ संभवै, परि सिद्ध जीवनि विषैं संभवै नाही। बहुरि जो लक्ष्य तै विरोधी लक्षण होइ, सो असंभवी कहिए। जैसै जीव का लक्षण जड़त्व कहिए. सो संभवै ही नाही। असैं त्रिदोप रहित उपयोग ही जीव का लक्षण जानना।

मदि-सुद-ओहि-मणेहिं य सग-सग-विसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो दु सायारो ॥६७४॥

मतिश्रुतावधिमनोभिश्च स्वकस्वकविषये विशेषविज्ञानं।
अंतर्मुहूर्तकाल, उपयोगः स तु साकारः ॥६७४॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञाननि करि अपने - अपने विपय विपैं जो विशेष ज्ञान होइ, अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण पदार्थ का ग्रहण रूप लक्षण धरैं, जो उप योग होइ, सो साकार उपयोग है। इहां वस्तु का ग्रहण रूप जो चैतन्य का परिणमन, ताका नाम उपयोग है। मुख्यपनै उपयोग है, सो छद्मस्थ कै एक वस्तु का ग्रहण रूप चैतन्य का परिणमन अंतर्मुहूर्त मात्र ही रहै है। तातै अंतर्मुहूर्त ही कह्या है।

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो ॥६७५॥

इंद्रियमनोऽवधिना, वा अर्थे अविशेष्य यद्ग्रहणम्।
अंतर्मुहूर्तकालः उपयोगः स अनाकारः ॥६७५॥

टीका – नेत्र इन्द्रियरूप चक्षुदर्शन वा अवशेष इन्द्रिय अर मनरूप अचक्षु दर्शन वा अवधि दर्शन, इनकरि जो जीवादि पदार्थनि का विशेप न करिकै निर्विकल्पपनै ग्रहण होइ, सो अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण सामान्य अर्थ का ग्रहण रूप निराकार उपयोग है।

भावार्थ – वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। तहा सामान्य का ग्रहण कौ निराकार उपयोग कहिए, विशेष का ग्रहण कौ साकार उपयोग कहिए। जातैं सामान्य विषै वस्तु का आकार प्रतिभासै नाही; विशेप विपैं आकार प्रतिभासै है।

आगें इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं –

णाणुवजोगजुदाणं, परिमाणं णाणमग्गणं व हवे ।
दंसणुवजोगियाणं, दंसणमग्गण व उत्तकमो ॥६७६॥

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्गणावद्भवेत् ।
दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्गणावदुक्तक्रमः ॥६७६॥

टीका – ज्ञानोपयोगी जीवनि का परिमाण ज्ञानमार्गणावत् है । बहुरि दर्शनोपयोगी जीवनि का परिमाण दर्शनमार्गणावत् है । सो कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, बहुरि तिर्यंच-विभंगज्ञानी, मनुष्य-विभंगज्ञानी, नारक–विभंगज्ञानी, इनिका प्रमाण जैसें ज्ञानमार्गणा विषै कह्या है । तैसें ही ज्ञानोपयोग विषै प्रमाण जानना । किछू विशेष नाहीं । बहुरि शक्तिगत चक्षुर्दर्शनी, व्यक्तगत चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी केवल दर्शनी, इनिका प्रमाण जैसै दर्शन–मार्गणा विषै कह्या है; तैसे इहां निराकार उपयोग विषै प्रमाण जानना । किछू विशेष नाही ।

इति श्री आचार्य नेमिचद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पचसंग्रह ग्रथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषै उपयोग-मार्गणाप्ररूपणा नामा बीसवा अधिकार सपूर्ण भया ॥२०॥

तत्त्वनिर्णय न करने मे किसी कर्म का दोष नही है, तेरा ही दोष है, परतु तू स्वय तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सभव नही है । तुझे विषय कषाय रूप ही रहना है इसलिए झूठ बोलता है । मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो ऐसी युक्ति किसलिए बनाए ? सांसारिक कार्यो मे अपने पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने तथापि पुरुषार्थ उद्यम किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा है, इसलिए जानते हैं कि मोक्ष को देखा-देखी उत्कृष्ट कहता है, उसका स्वरूप पहिचान कर उसे हितरूप नही जानता । हित जानकर उसका उद्यम बने सो न करे यह असभव है ।

– मोक्षमार्ग प्रकाशक । अधिकार ९, पृष्ठ–३११

इक्कीसवां अधिकार : अंतरभावाधिकार

विभव अमित ज्ञानादि जुत, सुरपति नुत नमिनाथ ।
जय मम ध्रुवपद देहु जिहि, हत्यो घातिया साथ ।।२१।।

आगै बीस प्ररूपणा का अर्थ कहि; अब उत्तर अर्थ कौ कहै है—

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु पत्तेयं ।।६७७।।

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणोपयोगौ ।
योग्याः प्ररूपितव्या, ओघादेशयोः प्रत्येकम् ।।६७७।।

टीका – कही जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषै गुणस्थान अर मार्गणास्थान, इनि विषै गुणस्थान अर जीवसमास अर पर्याप्ति अर प्राण अर संज्ञा अर चौदह मार्गणा अर उपयोग ए बीस प्ररूपणा जैसे संभवै, तैसे निरूपण करनी । सोई कहै है–

चउ पण चोद्दस चउरो, णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ।।६७८।।

चत्वारि पंच चतुर्दश, चत्वारि निरयादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे ।
त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यात्व गुणस्थानम् ।।६७८।।

टीका – गति-मार्गणा विषै क्रम तै गुणस्थान मिथ्यादृष्टयादि नरक विषै च्यारि, तिर्यंच विषै पांच, मनुष्य विषै चौदह, देव विषै च्यारि जानने । बहुरि इन्द्रिय-मार्गणा विषै अर काय-मार्गणा विषै पचेंद्रिय मे अर त्रसकाय मे तौ चौदह गुणस्थान है । अवशेष इंद्रिय अर काय मे एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान है । बहुरि जीवसमास नरकगति अर देवगति विषै सैनी पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय हैं; अर तिर्यंच विषै सर्व चौदह ही है । मनुष्य विषै सैनी पर्याप्ति, अपर्याप्त ए दोय हैं । इहा नरक देवगति विषै लब्धि-अपर्याप्तक नाही; तातै निर्वृत्ति-अपर्याप्त कह्या । मनुष्य विषै निर्वृत्ति-अपर्याप्त, लब्धि-अपर्याप्त दोऊ पाइए, तातै सामान्यपनै अपर्याप्त ही कह्या है । बहुरि इंद्रिय–मार्गणा विषै एकेंद्रिय मे बादर, सूक्ष्म, एकेंद्री तो पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसै च्यारि जीवसमास है । बेंद्री, तेइन्द्री मे अपना अपना पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोय जीवसमास है । पचेंद्रिय में सैनी, असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए च्यारि

जीवसमास है। बहुरि कायमार्गणा विषै पृथ्वी आदि पंच स्थावरनि में एकेंद्रियवत् च्यारि च्यारि जीवसमास है। त्रस विषै अवशेष दश जीवसमास हैं।

मज्झिम-चउ-मण-वयणे, सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणो त्ति ।
सेसाणं जोगि त्ति य, अणुभयवयणं तु वियलादो ॥६७९॥

मध्यमचतुर्मनवचनयोः, संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् क्षीण इति ।
शेषाणां योगीति च, अनुभयवचनं तु विकलतः ॥६७९॥

टीका – मध्यम जो असत्य अर उभय मन वा वचन इनि च्यारि योगनि विषै सैनी मिथ्यादृष्टी तै लगाइ क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान हैं। बहुरि सत्य अर अनुभव मनोयोग विषै अर सत्य वचन योग विषै सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि इनि सबनि विषैं जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है। बहुरि अनुभय वचनयोग विषै विकलत्रय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, सैनी पंचेद्री, असैनी पंचेंद्री इनका पर्याप्तरूप पांच जीवसमास है।

ओरालं पज्जत्ते, थावरकायादि जाव जोगो त्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते, चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥६८०॥

औरालं पर्याप्ते, स्थावरकायादि यावत् योगीति ।
तन्मिश्रमपर्याप्ते, चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥६८०॥

टीका – औदारिक काययोग एकेद्री स्थावर पर्याप्त मिथ्यादृष्टी तै लगाइ, सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थाननि विषै है। बहुरि औदारिक मिश्रकाययोग अपर्याप्त च्यारि गुणस्थाननि विषै ही है नियमकरि। किनविषै ? सो कहै है–

मिच्छे सासणसम्मे, पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णर-तिरिये वि य दोण्णि वि, होंति त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८१॥

मिथ्यात्वे सासनसम्यक्त्वे, पुवेदायते कपाटयोगिनि ।
नरतिरश्चोरपि च द्वावपि भवंतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६८१॥

टीका – मिथ्यादृष्टी, सासादन पुरुषवेद का उदय करि संयुक्त असंयत, कपाट समुद्घात सहित सयोगी इनि अपर्याप्तरूप च्यारि गुणस्थाननि विषैं, सो औदा-

रिक मिश्रयोग पाइए है । बहुरि औदारिक वा औदारिक-मिश्र ए दोऊ योग मनुष्य अर तिर्यचनि ही कै है, असा जिनदेवने कह्या है । बहुरि औदारिक विषै तौ पर्याप्त सात जीवसमास है, अर औदारिक मिश्र विषै अपर्याप्त सात जीवसमास अर सयोगी कै एक पर्याप्त जीवसमास असै आठ जीवसमास है ।

वेगुव्वं पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुर-णिरय-चउट्ठाणे, मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु ।।६८२।।

वैगूर्वं पर्याप्ते, इतरे खलु भवति तस्य मिश्रं तु ।
सुरनिरयचतुःस्थाने, मिश्रे नहि मिश्रयोगो हि ।।६८२।।

टीका – वैक्रियिक योग पर्याप्त देव, नारकीनि के मिथ्यादृष्टी तै लगाइ च्यारि गुणस्थाननि विषैं हैं । बहुरि वैक्रियिक-मिश्र योग मिश्रगुणस्थान विषै नाही; तातै देवनारकी संबंधी मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत इनही विषै है । बहुरि जीवसमास वैक्रियिक विषै एक सैनी पर्याप्त है । अर वैक्रियिक मिश्र विषै एक सैनी निर्वृत्ति-अपर्याप्त है ।

आहारो पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले, छट्ठगुणे होदि आहारो ।।६८३।।

आहारः पर्याप्ते, इतरे खलु भवति तस्य मिश्रस्तु ।
अंतर्मुहूर्तकाले, षष्ठगुणे भवति आहारः ।।६८३।।

टीका – आहारक योग सैनी पर्याप्तक छट्ठा गुणस्थान विषै जघन्यपनै वा उत्कृष्टपनै अतर्मुहूर्त काल विषै ही है । बहुरि आहारक-मिश्र योग है, सो इतर जो सज्ञी अपर्याप्तरूप छट्ठा गुणस्थान विषै जघन्यपनै वा उत्कृष्टपने अतर्मुहूर्त काल विषै ही हो है । तातै तिन दोऊनि कै गुणस्थान एक प्रमत्त अर जीवसमास सोई [illegible] जानना ।

ओरालियमिस्सं वा, चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगदिविग्गहकाले, जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ।।६८४।।

औरालिकमिश्रो वा, चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्मणम् ।
चतुर्गतिविग्रहकाले, योगिनश्च प्रतरलोकपूरणके ।।६८४।।

टीका – कार्माणयोग औदारिक मिश्रवत् च्यारि गुणस्थाननि विषै है । सो कार्माणयोग च्यार्यो गति संबंधी विग्रहगति विषै वा सयोगी कै प्रतर लोक पूरण काल विषैं पाइए है । तातैं गुणस्थान च्यारि अर जीवसमास आठ औदारिक मिश्रवत् इहां जानने ।

थावरकायप्पहुदी, संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्स य पढमो, भागो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृतिः, षंढः शेषा असंज्ञ्यादयश्च ।
अनिवृतेश्च प्रथमो, भागः इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६८५॥

टीका – वेदमार्गणा विषै नपुंसकवेद है, सो स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ अनिवृत्तिकरण का पहिला सवेद भागपर्यंत हो है; तातै गुणस्थान नव, जीवसमास सर्व चौदह है । बहुरि शेष स्त्रीवेद अर पुरुषवेद सैनी, असैनी पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ, अनिवृत्तिकरण का अपना-अपना सवेद भागपर्यंत है । तातै गुणस्थान नव, जीवसमास सैनी, असैनी, पर्याप्त वा अपर्याप्तरूप च्यारि जिनदेवनि करि कहे हैं ।

थावरकायप्पहुदी, अणियट्टीबितिचउत्थभागो त्ति ।
कोहतियं लोहो पुण, सुहुमसरागो त्ति विण्णेयो ॥६८६॥

स्थावरकायप्रभृति, अनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभाग इति ।
क्रोधत्रिकं लोभः पुनः, सूक्ष्मसराग इति विज्ञेयः ॥६८६॥

टीका – कषायमार्गणा विषै स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तै लगाइ क्रोध, मान, माया तौ क्रमतै अनिवृत्तिकरण का दूसरा, तीसरा, चौथा भागपर्यंत है । अर लोभ सूक्ष्मसांपराय पर्यंत है; तातै क्रोध, मान, माया विषै गुणस्थान नव, लोभविषै दश; अर जीवसमास सर्वत्र चौदह जानने ।

थावरकायप्पहुदी, मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु ।
सण्णीपुण्णप्पहुदी, सासणसम्मो त्ति णायव्वो ॥६८७॥

स्थावरकायप्रभृति, मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु ।
संज्ञिपूर्णप्रभृति, सासनसम्यगिति ज्ञातव्यः ॥६८७॥

टीका – ज्ञानमार्गणा विषै कुमति, कुश्रुत अज्ञान दोऊ स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तै लगाइ सासादनपर्यंत है। तातै तहां गुणस्थान दोय, अर जीवसमास चौदह हैं। बहुरि विभगज्ञान संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी आदि सासादन पर्यंत जानना; तातै गुणस्थान दोय अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है।

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो।
खीणकसायं जाव दु, केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥६८८॥

सद्ज्ञानत्रिकमविरतसम्यगादि षष्ठकादिर्मनःपर्ययः।
क्षीणकषायं यावत्तु, केवलज्ञानं जिने सिद्धे ॥६८८॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत हैं; तातैं गुणस्थान नव अर जीवसमास सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जानने। बहुरि मनःपर्ययज्ञान छट्ठा तै क्षीणकषाय पर्यंत है; तातै गुणस्थान सात अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है। मनःपर्ययज्ञानी कै आहारक ऋद्धि न होइ; तातैं आहारक मिश्र अपेक्षा भी अपर्याप्तपना न संभवै है। बहुरि केवलज्ञान सयोगी, अयोगी अर सिद्ध विषै है; तातै गुणस्थान दोय, जीवसमास सैनी पर्याप्त अर सयोगी की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय जानने।

अयदो त्ति हु अविरमणं, देसे देसो पमत्त इदरे य।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलो त्ति ॥६८९॥

सुहुमो सुहुमकसाये, संते खीणे जिणे जहक्खादं।
संजममग्गणभेदा, सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९०॥ जुम्मं।

अयत इति अविरमणं, देशे देशः प्रमत्तेतरस्मिन् च।
परिहारः सामायिकश्छेदः षष्ठादिः स्थूल इति ॥६८९॥

सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये, शांते क्षीणे जिने यथाख्यातम्।
संयममार्गणा भेदाः, सिद्धे न संतीति निर्दिष्टम् ॥६९०॥

टीका – संयममार्गणा विषै असंयम है, सो मिथ्यादृष्टयादिक असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषै है। तहां जीवसमास चौदह है। बहुरि देशसंयम एकदेश

संयत गुणस्थान विषै ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि सामायिक छेदोपस्थापना संयम प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थानन विषै है । तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अर आहारक मिश्र अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि परिहारविशुद्धि संयम प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुणस्थाननि विषै ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त हैं; जातैं इस सहित आहारक होइ नाही । बहुरि सूक्ष्मसांपराय संयम सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान विषै ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि यथाख्यात संयम उपशांतकषायादिक च्यारि गुणस्थाननि विषै है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त अर समुद्घात केवली की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि सिद्ध विषै संयम नाहीं है, जातैं चारित्र है, सो मोक्ष का मार्ग है, मोक्षरूप नाहीं है, अैसे परमागम विषै कह्या है ।

चउरक्खथावराविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहो त्ति ।
चक्खु-अचक्खू-ओही, जिणसिद्धे केवलं होदि ॥६९१॥

चतुरक्षस्थावराविरतसम्यग्दृष्टिस्तु क्षीणमोह इति ।
चक्षुरचक्षुरवधिः, जिनसिद्धे केवलं भवति ॥६९१॥

टीका – दर्शनमार्गणा विषै चक्षुदर्शन है । सो चौइंद्री मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान विषैं है । तहां जीवसमास चौइंद्री, सैनी पंचेंद्री असैनी पंचेंद्री पर्याप्त वा अपर्याप्त ए छह है । बहुरि अचक्षु दर्शन स्थावरकाय मिथ्या दृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान विषैं हैं । तहां जीवसमास चौदह है । बहुरि अवधि दर्शन असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत नव गुणस्थान विषै है । तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त दोय है । बहुरि केवलदर्शन सयोग - अयोग दोय गुणस्थान विषै है । तहां जीवसमास केवलज्ञानवत् दोय है अर सिद्ध विषै भी केवल दर्शन है ।

थावरकायप्पहुदी, अविरदसम्मो त्ति असुह-तिय-लेस्सा ।
सण्णीदो अपमत्तो, जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥६९२॥

स्थावरकायप्रभृति, अविरतसम्यगिति अशुभत्रिकलेश्याः ।
संज्ञितोऽप्रमत्तो यावत्तु शुभास्तिस्रो लेश्याः ॥६९२॥

टीका – लेश्यामार्गणा विषै कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्याए है । ते स्थावर मिथ्यादृष्टी आदि असंयत पर्यंत है । तहा जीवसमास चौदह है । बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्त पर्यंत है । तहा जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय है ।

णवरि य सुक्का लेस्सा, सजोगिचरिमो त्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे, लेस्सा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६६३॥

नवरि च शुक्ला लेश्या, सयोगिचरम इति भवति नियमेन ।
गतयोगेऽपि च सिद्धे, लेश्या नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६६३॥

टीका – शुक्ललेश्या विषै विशेष है, सो कहा ? शुक्ललेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत है । तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय है नियम करि; जातैं केवलसमुद्घात का अपर्याप्तपना इहां अपर्याप्त जीवसमास विषै गर्भित है । बहुरि अयोगी जिन विषै वा सिद्ध विषै लेश्या नाही, असा परमागम विषै कह्या है ।

थावरकायप्पहुदी, अजोगिचरिमो त्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे, अभव्वसिद्धा हवंति त्ति ॥६६४॥

स्थावरकायप्रभृति, अयोगिचरम इति भवंति भवसिद्धाः ।
मिथ्यादृष्टिस्थाने, अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥६६४॥

टीका – भव्यमार्गणा विषै भव्यसिद्ध है, ते स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि अयोगी पर्यंत है । अर अभव्यसिद्ध एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषै ही हैं । इनि दोऊनि विषै जीवसमास चौदह-चौदह है ।

मिच्छो सासणमिस्सो, सग-सग-ठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तो त्ति ॥६६५॥

मिथ्यात्वं सासनमिश्रौ, स्वकस्वकस्थाने भवति अयतात् ।
प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्त इति ॥६६५॥

टीका – सम्यक्त्वमार्गणा विषै मिथ्यादृष्टी, सासादन, मिश्र ए तीन तो अपने-अपने एक-एक गुणस्थान विषै हैं । बहुरि जीवसमास मिथ्यादृष्टी विषै तो

चौदह हैं। सासादन विषैं बादर एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौइन्द्री, सैनी, असैनी अपर्याप्त अर सैनी पर्याप्त ए सात पाइए। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तें पड़ि जो सासादन कौ प्राप्त भया होइ, ताकी अपेक्षा तहां सैनी पर्याप्त अर देव अपर्याप्त ए दोय ही जीवसमास है। मिश्र विषै सैनी पर्याप्त एक ही जीवसमास है। बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक सम्यक्त्व ए दोऊ असंयतादि अप्रमत्त पर्यंत है। तहां जीवसमास प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषैं तौ मरण नाही है, तातैं एक संज्ञी पर्याप्त ही है। अर वेदक सम्यक्त्व विषैं सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं; जातैं धम्मानरक, भवनत्रिक विना देव, भोगभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच, इनिकैं अपर्याप्त विषै भी वेदक सम्यक्त्व संभवै है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को कहैं हैं–

बिदियुवसमसम्मत्तं, अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति।
खइगं सम्मं च तहा, सिद्धो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६९६॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यगादिशांतमोह इति।
क्षायिकं सम्यक्त्वं च तथा, सिद्ध इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६९६॥

टीका – द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असंयतादि उपशांत कषाय पर्यंत है; जातैं इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कौ अप्रमत्त विषै उपजाय ऊपरि उपशांतकषाय पर्यंत जाइ, नीचैं पड़ै, तहां असंयत पर्यंत द्वितीयोपशम सम्क्त्व सहित आवै, तातैं असंयत आदि विषै भी कह्या। तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अर देव असंयत अपर्याप्त ए दोय पाइए है, जातै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै मरण है, सो मरि देव ही हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व असयतादि अयोगी पर्यंत ही है। तहां जीवसमास सञ्ज्ञी पर्याप्त है। अर जाकै आयु वंध हुवा होइ, ताके धम्मा नरक, भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंच, वैमानिक देव, इनिका अपर्याप्त भी है, तातैं दोय जीवसमास है। वहुरि सिद्ध विषै भी क्षायिक सम्यक्त्व है; असा जिनदेवने कह्या है।

सण्णी सण्णिप्पहुदी, खीणकसाओ त्ति होदि णियमेण।
थावरकायप्पहुदी, असण्णि त्ति हवे असण्णी हु ॥६९७॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृतिः क्षीणकषाय इति भवति नियमेन।
स्थावरकायप्रभृतिः, असंज्ञीति भवेदसंज्ञी हि ॥६९७॥

टीका – संज्ञी मार्गणा विषै संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत है। तहा जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय है। बहुरि असंज्ञी जीव स्थावर कायादिक असैनी पचेंद्री पर्यंत मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषै ही है नियमकरि। तहा जीवसमास सैनी संबंधी दोय बिना बारह जानने।

थावरकायप्पहुदी, सजोगिचरिमो त्ति होदि आहारी।
कम्मइय अणाहारी, अजोगिसिद्धे वि णायव्वो ॥६६८॥

स्थावरकायप्रभृतिः, सयोगिचरम इति भवति आहारी।
कार्मण अनाहारी, अयोगिसिद्धेऽपि ज्ञातव्यः ॥६९८॥

टीका – आहारमार्गणा विषै स्थावर काय मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत आहारी है। तहां जीवसमास चौदह है। बहुरि मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, सयोगी इनिकै कार्माण अवस्था विषै अर अयोगी जिन अर सिद्ध भगवान इनि विषै अनाहार है। तहां जीवसमास अपर्याप्त सात, अयोगी की अपेक्षा एक पर्याप्त ए आठ हैं।

आगै गुणस्थाननि विषै जीवसमासनि कौं कहै है—

मिच्छे चोद्दसजीवा, सासण अयदे पमत्तविरदे य।
सण्णिदुगं सेसगुणे, सण्णीपुण्णो दु खीणो त्ति ॥६६६॥

मिथ्यात्वे चतुर्दश जीवाः, सासानायते प्रमत्तविरते च।
संज्ञिद्विकं शेषगुणे, संज्ञिपूर्णस्तु क्षीण इति ॥६९९॥

टीका – मिथ्यादृष्टी विषै जीवसमास चौदह है। सासादन विषै, अविरत विषै, प्रमत विषै चकार तै सयोगी विषै सज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त ए दोय जीवसमास है। इहा प्रमत्त विषै आहारक मिश्र अपेक्षा अर सयोगी विषै केवल समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्तपना जानना। बहुरि अवशेष आठ गुणस्थाननि विषै अपि शब्द तै अयोगी विषै भी एक सज्ञीपर्याप्त जीवसमास है।

आगै मार्गणास्थाननि विषै जीवसमासनि कौं दिखावै है –

तिरिय-गदीए चोद्दस, हवंति सेसेसु जाण दो दो दु।
मग्गणठाणस्सेवं, णेयाणि समासठाणाणि ॥७००॥

तिर्यग्गतौ चतुर्दश, भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु ।
मार्गणास्थानस्यैवं, ज्ञेयानि समासस्थानानि ।।७००।।

टीका – तिर्यंचगति विषै जीवसमास चौदह हैं । अवशेष गतिनि विषैं संज्ञी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय दोय जीवसमास जानने । असें मार्गणास्थानकनि विषैं यथायोग्य पूर्वोक्त अनुक्रम करि जीवसमास जानने ।

आगै गुणस्थाननि विषैं पर्याप्ति वा प्राण कहै हैं–

पज्जत्ती पाणा वि य, सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि ।
तहिं वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ।।७०१।।

पर्याप्तयः प्राणा अपि च, सुगमा भावेंद्रियं न योगिनि ।
तस्मिन् वागुच्छ्वासायुष्ककायत्रिकद्विकमयोगिन आयुः ।।७०१।।

टीका – चौदह गुणस्थाननि विषैं पर्याप्ति अर प्राण जुदे न कहिए है; जातैं सुगम है । तहा क्षीणकषाय पर्यंत तो छहौ पर्याप्ति है, दशौ प्राण हैं । बहुरि सयोगी जिन विषै भावेंद्रिय तौ है नाहीं, द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा छह पर्याप्ति है । बहुरि सयोगी कै प्राण च्यारि है – १ वचनबल, २ सासोस्वास, ३ आयु, ४ कायबल ए च्यारि है । अवशेप पंचेंद्रिय अर मन ए छह प्राण नाहीं है । तहा वचनबल का अभाव होतै तीन ही प्राण रहै है । उस्वास निश्वास का अभाव होतैं दोय ही रहै है । बहुरि अयोगी विषै एक आयु प्राण ही रहे है । तहां पूर्वै सचित भया था, जो कर्मनोकर्म का स्कंध, सो समय समय प्रति एक एक निषेक गलतै अवशेष द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्व रह्या, सो द्रव्यार्थिक नय करि तौ अयोगी का अतसमय विषै नष्ट हो है । पर्यायार्थिक नय करि ताके अनतर समय विषै नष्ट हो है – यह तात्पर्य है ।

आगै गुणस्थाननि विषै संज्ञा कहै है–

छट्ठो त्ति पढमसण्णा, सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी, सुहुमो त्ति कमेण सेसाओ ।।७०२।।

षष्ठ इति प्रथमसंज्ञा, सकार्या शेषाश्च कारणापेक्षाः ।
अपूर्वः प्रथमानिवृत्तिः, सूक्ष्म इति क्रमेण शेषाः ।।७०२।।

टीका – मिथ्यादृष्टी आदि प्रमत्तपर्यंत अपना कार्यसहित च्यार्‌यो संज्ञा है। तहां छठे गुणस्थानि आहार संज्ञा का विच्छेद हूवा, अवशेष तीन संज्ञा अप्रमत्तादि विषै है; सो तिनिका निमित्तभूत कर्म पाइए है। तहां ताकी अपेक्षा है, कार्य रहित है, सो अपूर्वकरण पर्यंत तीन संज्ञा है। तहां भय संज्ञा का विच्छेद भया। अनिवृत्तिकरण का प्रथम सवेदभाग पर्यंत मैथुन, परिग्रह दोय संज्ञा है। तहां मैथुन संज्ञा का विच्छेद भया। सूक्ष्मसांपराय विषै एक परिग्रह संज्ञा रही। ताका तहा ही विच्छेद भया। ऊपरि उपशात कषायादिक विषै कारण का अभाव तै कार्य का भी अभाव है। तातै कार्य रहित भी सर्व संज्ञा नाही है।

मग्गण उवजोगा वि य, सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो।
गदिआदिसु मिच्छादी, परूविदे रूविदा होंति ॥७०३॥

मार्गणा उपयोगा अपि च, सुगमाः पूर्वं प्ररूपितत्वात्।
गत्यादिषु मिथ्यात्वाद्दौ, प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥७०३॥

टीका – गुणस्थानकनि विषै चौदह मार्गणा अर उपयोग लगाना सुगम है, जातै पूर्वै प्ररूपण करि आए है। मार्गणानि विषै गुणस्थान वा जीवसमास कहे। तहां ही कथन आय गया, तथापि मदबुद्धिनि के समझने के निमित्त बहुरि कहिए है। नरकादि गतिनामा नामकर्म के उदय तैं उत्पन्न भई पर्याय, ते गति कहिए, सो मिथ्यादृष्टी विषै च्यार्‌यो नारकादि गति, पर्याप्त वा अपर्याप्त है। सासादन विषै नारक अपर्याप्त नाही, अवशेष सर्व है। मिश्र विषै च्यार्‌यो गति पर्याप्त ही है। असयत विषै धम्मानारक तौ पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ है। अवशेष नारक पर्याप्त ही है। बहुरि भोगभूमियां तिर्यच वा मनुष्य अर कर्मभूमिया मनुष्य अर वैमानिक देव तौ पर्याप्त वा अपर्याप्त दोऊ है। अर कर्मभूमियां तिर्यंच अर भवनत्रिक देव ए पर्याप्त ही चतुर्थ गुणस्थान विषै पाइए हैं। बहुरि देशसंयत विषै कर्मभूमिया तिर्यंच वा मनुष्य पर्याप्त ही है। बहुरि प्रमत्त विषै मनुष्य पर्याप्त ही है, आहारक सहित पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ हैं। बहुरि प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत मनुष्य पर्याप्त ही है, सयोगी विपै पर्याप्त वा समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्त है। अयोगी पर्याप्त ही है।

बहुरि एकेंद्रियादिक जातिनामा नामकर्म के उदय तै निपज्या जीव कै पर्याय सो इन्द्रिय है। तिनकी मार्गणा एकेंद्रियादिक पंच है। ते मिथ्यादृष्टी विपै तौ पाचौं

पर्याप्त वा अपर्याप्त है । सासादन विषै अपर्याप्त तौ पाचौ पाइए अर पर्याप्त एक पंचेद्रिय पाइए है । मिश्र विषै पर्याप्त पंचेद्रिय ही है । असंयत विषैं पर्याप्त वा अपर्याप्त पंचेद्री है । देशसंयत विषै पर्याप्त पंचेद्री ही है । प्रमत्त विषै आहारक अपेक्षा दोऊ है । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत एक पचेंद्रिय पर्याप्त ही है । सयोगी विषै पर्याप्त है, समुद्घात अपेक्षा दोऊ है । अयोगी विषै पर्याप्त ही पंचेद्रिय है ।

पृथ्वीकायादिक विशेष कौ लीए एकेंद्रिय जाति अर स्थावर नामा नामकर्म का उदय अर त्रस नामा नामकर्म का उदय तैं निपजे जीव के पर्याय ते काय कहिए, ते छह प्रकार है । तहां मिथ्यादृष्टी विषैं तौ छहौं पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं । सासादन विषै बादर पृथ्वी, अप, वनस्पती ए स्थावर अर त्रस विषैं बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री ए तौ अपर्याप्त ही है । अर सैनी त्रस काय पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ है । आगैं संज्ञी पंचेद्रिय त्रस काय ही है, तहां मिश्र विषैं पर्याप्त ही है । अविरत विषै दोऊ हैं। देशसंयत विषैं पर्याप्त ही है । प्रमत्त विषैं पर्याप्त है । आहारक सहित दोऊ है । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत पर्याप्त ही है, सयोगी विषै पर्याप्त ही है । समुद्घात सहित दोऊ है । अयोगी विषै पर्याप्त ही है ।

पुद्गल विपाकी शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तैं मन, वचन, काय करि सयुक्त जो जीव, ताके कर्म नोकर्म आवने कौ कारण जो शक्ति वा ताकरि उत्पन्न भया जो जीव के प्रदेशनि का चचलपना, सो योग है । सो मन-वचन-काय भेद तैं तीन प्रकार है । तहा वीर्यातराय अर नोइन्द्रियावरण कर्म, तिनके क्षयोपशम करि अगोपाग नामकर्म के उदय करि मनःपर्याप्ति सयुक्त जीव कै मनोवर्गणारूप जे पुद्गल आए, तिनिका आठ पाखड़ी का कमल के आकार हृदय स्थानक विषै जो निर्माण नामा नामकर्म तैं निपज्या, सो द्रव्य मन है । तहा जो कमल की पांखड़ीनि का अग्रभागनि विषै नोइन्द्रियावरण का क्षयोपशमयुक्त जीव का प्रदेश समूह है, तिनिविषै लब्धि उपयोग लक्षण कौ धरै, भाव मन है । ताका जो परिणमन, सो मनोयोग है । सो सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप विषय के भेद तै च्यारि प्रकार है । वहुरि भाषापर्याप्ति करि संयुक्त जो जीव, ताकै शरीर नामा नामकर्म के उदय करि अर स्वरनामा नामकर्म का उदय का सहकारी कारण करि भाषावर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका च्यारि-प्रकार भाषारूप होइ परिणमन, सो वचन योग है। सो वचन योग भी सत्यादिक पदार्थनि का कहनहारा है, तातै च्यारि प्रकार है ।

बहुरि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर नामा नामकर्म के उदय करि आहार वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध, तिनिका निर्माण नामा नामकर्म के उदय करि निपज्या जो शरीर, ताके परिणमन के निमित्त तें जीव का प्रदेशनि का जो चचल होना, सो औदारिक आदि काय योग है। बहुरि शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि अंतर्मुहूर्त पर्यंत, तिनके मिश्र योग है। इहा मिश्रपना कह्या है, सो औदारिकादिक नोकर्म की वर्गणानि का आहरण आप ही तें न हो है, कार्माण वर्गणा का सापेक्ष लीए है; तातैं कह्या है। बहुरि विग्रह गति विषै औदारिकादिक नोकर्म की वर्गणानि का तौ ग्रहण है नाही, कार्माण शरीर नामा नामकर्म का उदय करि कार्माण वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध, तिनिका ज्ञानावरणादिक कर्म पर्याय करि जीव के प्रदेशनि विषै बध होतें भया जो जीव के प्रदेशनि का चचलपना, सो कार्माण काययोग है। ऐसैं ए पंद्रह योग है।

तिसु तेरं दस मिस्से, सत्तसु णव छट्ठयम्मि एगारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥७०४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे, सप्तसु नव षष्ठे एकादश।
योगिनि सप्त योगा, अयोगिस्थानं भवेत् शून्यम् ॥७०४॥

टीका – कहे पद्रह योग, तिनि विषै मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत इन तीनों विषैं तेरह तेरह योग है, जातैं आहारक, आहारकमिश्र, प्रमत्त बिना अन्यत्र नाही है। बहुरि मिश्र विषै औदारिक मिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ए तीनो भी नाही, तातैं दश ही है। बहुरि ऊपरि सात गुणस्थानकनि विषै वैक्रियिक योग भी नाही है; तातैं प्रमत्त विषै तौ आहारकद्विक के मिलने तैं ग्यारह योग है, औरनि विषै नव नव योग है। बहुरि सयोगी विषै सत्य-अनुभय मनोयोग, सत्य-अनुभय वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण ए सात योग है। अयोगी गुणस्थान विषै योग नाही तातैं शून्य है। बहुरि स्त्री, पुरुष, नपुसक वेदनि करि उदय करि वेद हो है, ते तीनौ अनिवृत्तिकरण के सवेदभाग पर्यंत है; ऊपरि नाही।

बहुरि क्रोधादिक च्यारि कषायनि का यथायोग्य अनतानुबधी इत्यादि रूप उदय होत संतै क्रोध, मान, माया, लोभ हो है। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषै तौ अनंतानुबंधी आदि च्यारि च्यारि प्रकार है। मिश्र असयत विषै अनतानुबधी विना

तीनतीन प्रकार हैं। देशसंयत विषैं अप्रत्याख्यान बिना दोय दोय प्रकार है। प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण का दूसरा भागपर्यंत संज्वलन क्रोध है। तीसरा भाग पर्यंत मान है। चौथा भाग पर्यंत माया है। पंचम भाग पर्यंत बादर लोभ है। सूक्ष्मसांपराय विषैं सूक्ष्म लोभ है। ऊपर सर्व कषाय रहित है।

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम तैं मति आदि ज्ञान हो है। केवल ज्ञानावरण के समस्त क्षय तैं केवलज्ञान हो है। मिथ्यात्व का उदय करि सहवर्ती ऐसैं मति, श्रुत, अवधि ज्ञानावरण के क्षयोपशम तैं कुमति, कुश्रुत, विभंग ज्ञान हो है; सो सर्व मिलि आठ ज्ञान भए। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषैं तौ तीन कुज्ञान हैं। मिश्र विषैं तीन कुज्ञान वा सुज्ञान मिश्ररूप है। अविरत अर देशसंयत विषैं मति, श्रुत, अवधि ए आदि के तीन सुज्ञान हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यंत विषै मन:पर्यय सहित आदिक के च्यारि सुज्ञान है। सयोगी, अयोगी विषैं एक केवलज्ञान है।

बहुरि संज्वलन की चौकड़ी अर नव नोकषाय इनके मंद उदय करि व्रत का धारना, समिति का पालना, कषाय का निग्रह, दंड का त्याग, इंद्रियनि का जय ऐसैं भावरूप संयम हो है। सो संयम सामान्यपनै एक सामायिक स्वरूप है; जातैं **सर्वसावद्ययोगविरतोऽस्मि'** मै सर्व पाप सहित योग का त्यागी हू; ऐसे भाव विषै सर्व गर्भित भए। विशेपपनैं असयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय, यथाख्यात भेद तै सात प्रकार है। तहा असयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषैं असयम ही है। देशसयत विषैं देशसयम है। प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरण पर्यंत सामायिक, छेदोपस्थापना है। प्रमत्त-अप्रमत्त विषै परिहार विशुद्धि भी है। सूक्ष्मसापराय विषै सूक्ष्मसांपराय है। उपशात कषायादिक विषै यथाख्यात सयम है।

बहुरि चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण के क्षयोपशम तै अर केवलदर्शनावरण के समस्त क्षय तै चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन हो है। तहा मिश्रगुणस्थान पर्यंत तौ चक्षु, अचक्षु, दोय दर्शन है। असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत विषै चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन है। सयोग, अयोग अर सिद्ध विषै केवल दर्शन है।

कषाय के उदय करि अनुरंजित ऐसी मन, वचन, कायरूप योगनि की प्रवृत्ति सो लेश्या है। सो शुभ-अशुभ के भेद तै दोय प्रकार है। तहां अशुभलेश्या कृष्ण, नील, कपोत भेद तैं तीन प्रकार है। शुभ लेश्या तेज, पद्म, शुक्लभेद तै तीन प्रकार

है । तहां असंयत पर्यंत तौ छहौ लेश्या है । देशसंयतादि अप्रमत्त पर्यंत विषै तीन शुभ-लेश्या ही है । अपूर्वकरणादि सयोगी पर्यंत विषै शुक्ललेश्या ही है । अयोगी, योग के अभाव तै लेश्या रहित है ।

सामग्रीविशेष करि रत्नत्रय वा अनंत चतुष्टयरूप परिणमने कौ योग्य, सो भव्य कहिए । परिणमने को योग्य नाहीं, सो अभव्य कहिए । इहा अभव्य राशि जघन्य युक्तानन्त प्रमाण हैं । संसारी राशि में इतना घटाए, अवशेष रहै, तितने भव्य सिद्ध है । सो भव्य तीन प्रकार – १ आसन्नभव्य, २ दूरभव्य, ३ अभव्यसमभव्य । जे थोरे काल में मुक्त होने योग्य होइ, ते आसन्नभव्य है । जे बहुत काल मे मुक्त होने होइ, ते दूर भव्य है । जे त्रिकाल विषै मुक्त होने के नाही, केवल मुक्त होने की योग्यता ही कौ धरै है, ते अभव्यसम भव्य है । सो इहा मिथ्यादृष्टी विषै भव्य-अभव्य दोऊ है । सासादनादि क्षीणकषायपर्यंत विषै एक भव्य ही है । सयोग-अयोग विषै भव्य अभव्य का उपदेश नाहीं है ।

बहुरि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव क्षयोपशमादिक पचलब्धि का परिणामरूप परिणया । तहां मिथ्यादृष्टी ही विषै करण कीए, तहा अनिवृत्तिकरण का अंत समय विषै अनतानुबधी अर मिथ्यात्व इनि पचनि का उपशम करि ताके अनतर समय विषै मिथ्यात्व का ऊपरि के वा नीचे के निषेक छोडि, बीचि के निषेकनि का अभाव करना; सो अतर कहिए, सो अंतर्मुहूर्त के जेते समय तितने निषेकनि का अभाव अनिवृत्तिकरण विषै ही कीया था, सो तिनि निषेकनिरूप जो अतरायाम सबधी अतर्मुहूर्त काल, ताका प्रथम समय विषै प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौ पाइ असयत हो है । वा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर देशव्रत, इनि दोऊनि कौ युगपत् पाइ करि देशसयत हो है । अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर महाव्रत, इनि दोऊनि कौ युगपत् पाइ करि अप्रमत्तसंयत हो है । तहां तिस पावने के प्रथम समय तै लगाइ, अंतर्मुहूर्त ताईं गुण संक्रमण विधान करि मिथ्यात्वरूप द्रव्यकर्म कौ गुणसक्रमण भागहार करि घटाइ घटाइ तीन प्रकार करै है । गुणसक्रमण विधान अर गुणसक्रमण भागहार का कथन आगे करैंगे, तहां जानना । सो मिथ्यात्व प्रकृति रूप अर सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृतिरूप वा सम्यक्त्व प्रकृतिरूप ऐसे एक मिथ्यात्व तीन प्रकार तहा कीजिए है; सो इनि तीनो का द्रव्य जो परमाणूनि का प्रमाण, सो असंख्यात गुणा, असख्यात गुणा घाटि अनुक्रम तै जानना ।

इहां प्रश्न – जो मिथ्यात्व कौं मिथ्यात्व प्रकृतिरूप कहा कीया ?

ताका समाधान – पूर्वें जो उस मिथ्यात्व की स्थिति थी, तामें अतिस्थापनावली मात्र घटावै है, सो अतिस्थापनावली का भी स्वरूप आगै कहैंगे। जो अप्रमत्त गुणस्थान कौं प्राप्त हो है, सो अप्रमत्तस्यों-प्रमत्त में अर प्रमतस्यों-अप्रमत्त में संख्यात हजार बार आवै जाय है। तातै प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रमत्त विषै भी कहिए ते ए च्यार्‍यों गुणस्थानवर्ती प्रथमोपशमसम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त काल विषै जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं, अर तहां अनंतानुबधी की किसी प्रकृति का उदय होइ तौ सासादन होइ। बहुरि जो भव्यता गुण का विशेष करि सम्यक्त्व गुण का नाश न होइ तौ उस उपशम सम्यक्त्व का काल कौं पूर्ण होतें सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तै वेदक सम्यग्दृष्टी हो है। बहुरि जो मिश्र प्रकृति का उदय होइ, तौ सम्यग्मिथ्यादृष्टी हो है। बहुरि जो मिथ्यात्व ही का उदय आवै तो मिथ्यादृष्टी ही होइ जाइ।

बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै विशेष है, सो कहा ?

उपशम श्रेणी चढने के निमित्त कोई सातिशय अप्रमत्त वेदक सम्यग्दृष्टी तहां अप्रमत्त विषै तीन करण की सामर्थ्य करि अनंतानुबंधी का प्रशस्तोपशम बिना अप्रशस्तोपशम करि ऊपरि के जे निषेक, जिनिका काल न आया है, ते तौ है ही; जे नीचे के निषेक अनतानुबधी के है, तिनिकौ उत्कर्षण करि ऊपरि के निषेकनि विषै प्राप्त करै है वा विसयोजन करि अन्य प्रकृतिरूप परिणमावै है, असै क्षपाइ दर्शनमोह की तीन प्रकृति, तिनिका बीचि के निषेकनि का अभाव करने रूप अंतरकरण करि अतर कीया। बहुरि उपशमविधान करि दर्शनमोह की प्रकृतिनि कौ उपशमाइ, अंतर कीएं निषेक सबधी अतर्मुहूर्त काल का प्रथम समय विषै द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होइ, उपशम श्रेणी कौ चढि, क्रम तैं उपशात कषाय पर्यत जाइ, तहां अतर्मुहूर्त काल तिष्ठि करि, अनुक्रम तै एक एक गुणस्थान उतरि करि, अप्रमत्त गुणस्थान कौ प्राप्त होइ, तहां अप्रमत्त स्यों प्रमत्त में वा प्रमत्त स्यों अप्रमत्त में हजारां बार आवै जाइ, तहांस्यों नीचै देशसयत होइ, तहां तिष्ठै; वा असंयत होइ तहां तिष्ठै। अथवा जो ग्यारह्वां आदि गुणस्थाननि विषै मरण होइ, तौ तहा स्यों अनुक्रम बिना देव पर्यायरूप असंयत हो है। वा मिश्र प्रकृति के उदय तै मिश्र गुणस्थानवर्ती हो है वा अनंतानुबंधी के उदय होतै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कौ विराधै है; असी किसी आचार्य की पक्ष की अपेक्षा सासादन हो है। वा मिथ्यात्व का उदय करि मिथ्या-

दृष्टी हो है । बहुरि असंयतादिक च्यारि गुणस्थानवर्ती जे मनुष्य, बहुरि असंयत, देश-संयत गुणस्थानवर्ती उपचार महाव्रत जिनके पाइए है, असी आर्या स्त्री, ते कर्मभूमि के उपजे असै वेदक सम्यक्त्वी होंइ, तिनहीके केवली श्रुतकेवली दोन्यो विषै किसी का चरणां के निकटि सात प्रकृति का सर्वथा क्षय होते क्षायिक सम्यक्त्व हो है, सो असें सम्यक्त्व का विधान कह्या ।

सो सम्यक्त्व सामान्यपनै एक प्रकार है । विशेषपनै १ मिथ्यात्व, २ सासादन ३ मिश्र, ४ उपशम, ५ वेदक, ६ क्षायिक भेद तै छह प्रकार है । तहा मिथ्यादृष्टी विषै तो मिथ्यात्व ही है । सासादन विषै सासादन है । मिश्र विषै मिश्र है । असयतादिक अप्रमत्त पर्यंत विषै उपशम (औपशमिक), वेदक, क्षायिक तीन सम्यक्त्व है । अपूर्व-करणादि उपशात कषाय पर्यंत उपशमश्रेणी विषै उपशम, क्षायिक दोय सम्यक्त्व है। क्षपक श्रेणीरूप अपूर्वकरणादिक सिद्ध पर्यंत एक क्षायिक सम्यक्त्व ही है ।

बहुरि नो इंद्रिय, जो मन, ताके आवरण के क्षयोपशम तै भया जो ज्ञान, ताकौ संज्ञा कहिए। सो जिसके पाइए, सो संज्ञी है । जाकै न पाइए अर यथासंभव अन्य इन्द्रियनि का ज्ञान पाइए, सो असंज्ञी है । तहा सज्ञी मिथ्यादृष्टि आदि क्षीण कषाय पर्यंत है । असंज्ञी मिथ्यादृष्टी विषै ही है । सयोग अयोग विषै मन-इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान नाही है; तातै सज्ञी-असज्ञी न कहिए है ।

बहुरि शरीर अर अगोपाग नामा नामकर्म के उदय तै उत्पन्न भया जो शरीर वचन, मन रूप नोकर्म वर्गणा का ग्रहण करना, सो आहार है । विग्रहगति विषै वा प्रतर लोक पूर्ण सहित सयोगी विषै वा अयोगा विषै वा सिद्ध विषै अनाहार है, तातै मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, सयोगी इनि विषै तौ दोऊ है । अवशेष नव गुण-स्थान विषै आहार ही है । अयोगी विषै वा सिद्ध विषै अनाहार ही है ।

गुणस्थाननि विषै उपयोग कहै है –

दोण्हं पंच य छच्चेव, दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा ।
सत्तुवजोगा सत्तसु, दो चेव जिणे य सिद्धे य ॥७०५॥

द्वयोः पंच च षट्चैव, द्वयोर्मिश्रे भवंति व्यामिश्राः ।
सप्तोपयोगाः सप्तसु, द्वौ चैव जिने च सिद्धे च ॥७०५॥

टीका – गुण पर्यायवान् वस्तु है, ताके ग्रहणरूप जो व्यापार प्रवर्तन, सो उपयोग है। ज्ञान है, सो जानने योग्य जो वस्तु, तातैं नाहीं उपजै हैं। सो कह्या है –

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः, परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं, परिच्छेदात्मकं स्वतः ।।१।।

याका अर्थ – जैसे वस्तु अपने ही उपादान कारण तैं निपज्या, आपही तैं जानने योग्य है। तैसै ज्ञान अपने ही उपादान कारण तै निपज्या, आपही तै जानने-हारा है। बहुरि ज्ञेय पदार्थ अर प्रकाशादिक ए ज्ञानका कारण नाही, जातैं ए तौ ज्ञेय है। जैसे अंधकार ज्ञेय है, तैसे ए भी ज्ञेय है – जानने योग्य है। जानने कौं कारण नाही, अैसा जानना। बहुरि सो उपयोग ज्ञान दर्शन के भेद तै दोय प्रकार है। तहां कुमति, कुश्रुत, विभंग, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल भेद तै ज्ञानोपयोग आठ प्रकार है। चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल भेद तैं दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषै तो कुमति, कुश्रुत, विभंग ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, दर्शन ए पांच उपयोग है। बहुरि मिश्रविषै मिश्ररूप मति, श्रुत, अवधि ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ए छह उपयोग है। असंयत देशसंयत विषै मति, श्रुत, अवधिज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ए छह उपयोग है। प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत विषै तेई मनः-पर्यय सहित सात उपयोग है। सयोगी, अयोगी, सिद्ध विषै केवलज्ञान केवलदर्शन ए दोय उपयोग है।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम सस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा, तिनिविषै गुणस्थाननिविषै बीस प्ररूपणा निरूपण नामा इकवीसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ।।२१।।

बाईसवां अधिकार : आलापाधिकार

सुरनर गणपति पूज्यपद, बहिरंतर श्री धार ।
नेमि धर्मरथनेमिसम, भजौं हौंहु श्रीसार ।।२२।।

आगें आलाप अधिकार को अपनें इष्टदेव को नमस्कार पूर्वक कहनेकौं प्रतिज्ञा करें हैं –

गोयमथेरं पणमिय, ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं, वोच्छामि जहाकमं सुणह ।।७०६।।

गौतमस्थविरं प्रणम्य, ओघादेशयोर्विशभेदानाम् ।
योजनिकानामालापं, वक्ष्यामि यथाक्रमं शृणुत ।।७०६।।

टीका – विशिष्ट जो गो कहिए भूमि, आठवी पृथ्वी, सो है स्थविर कहिए सास्वती, जाकै अैसा सिद्धसमूह, अथवा गौतम है स्थविर कहिए गणधर जाके अैसा वर्धमान स्वामी अथवा विशिष्ट है गो कहिए वाणी जाकी अैसा स्थविर कहिए मुनिसमूह, सो अैसे जु गौतम स्थविर ताहि प्रणम्य नमस्कार करिकै ओघ जो गुणस्थान अर आदेश जो मार्गणास्थान, इनिविषैं जोडनेरूप जो गुणस्थानादिक बीस प्ररूपणा, तिनिका आलाप, ताहि यथाक्रम कहौंगा, सो सुनहु । जहा बीस प्ररूपणा प्ररूपिए, अैसे विवक्षित स्थाननि का कहना ताका नाम आलाप जानना । सो कहै है –

ओघे चोदसठाणे, सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे, अणियट्टीपंचभागे य ।।७०७।।

ओघे चतुर्दशस्थाने, सिद्धे विंशतिविधानामालापाः ।
वेदकषायविभिन्ने, अनिवृत्तिपंचभागे च ।।७०७।।

टीका – ओघ जो गुणस्थान अर चौदह मार्गणास्थान ए परमागम विषै प्रसिद्ध है । सो इनिविषै **गुणजीवा पज्जत्ती** इत्यादिक बीस प्ररूपणानि का सामान्य पर्याप्त, अपर्याप्त ए तीन आलाप हो है । बहुरि वेद अर कषाय करि है भेद जिनि विषै अैसे अनिवृत्तिकरण के पंच भाग तिनिविषै आलाप जुदे-जुदे जानने ।

तहां गुणस्थाननि विषै कहैं हैं -

ओघे मिच्छदुगे वि य, अयदपमत्ते सजोगिठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा, सेसेसिक्को हवे णियमा ।।७०८।।

ओघे मिथ्यात्वद्विकेऽपि च, अयतप्रमत्तयोः सयोगिस्थाने ।
त्रय एव चालापाः, शेषेष्वेको भवेन्नियमात् ।।७०८।।

टीका - गुणस्थाननि विषैं मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, प्रमत्त, सयोगी इनि विषैं तीन तीन आलाप हैं । अवशेष गुणस्थाननि विषै एक पर्याप्त आलाप है नियमकरि ।

इस ही अर्थ कौं प्रकट करें हैं -

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं, चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं, लद्धी णिव्वत्तगं चेदि ।।७०९।।

सामान्यः पर्याप्तः, अपर्याप्तश्चेति त्रय आलापा ।
द्विविकल्पोऽपर्याप्तो, लब्धिर्निवृत्तिकश्चेति ।।७०९।।

टीका - ते आलाप तीन है, सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त । जहां पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ का समुदायरूप सामान्यपनैं ग्रहण कीजिए, सो सामान्य आलाप है । बहुरि जहा पर्याप्त ही का ग्रहण होइ, सो पर्याप्त आलाप है । जहां अपर्याप्त ही का ग्रहण होइ, तहां अपर्याप्तालाप है । तहां अपर्याप्तालाप दोय प्रकार है - एक लब्धि अपर्याप्त १, एक निर्वृत्ति अपर्याप्त । जाका क्षुद्रभव प्रमाण आयु होइ, पर्याप्ति पूर्ण भएं पहिलैं ही मरण कौं प्राप्त होइ, सो लब्धि अपर्याप्त है । बहुरि जाकैं शरीर पर्याप्ति पूरण होगा यावत् पूर्ण न हुआ होइ, तावत् निर्वृत्ति अपर्याप्त है ।

दुविहं पि अपज्जत्तं, ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासणअयदपमत्ते, णिव्वत्तिअपुण्णगो होदि ।।७१०।।

द्विविधोऽप्यपर्याप्त, ओघे मिथ्यात्व एव भवंति नियमेन ।
सासादनायतप्रमत्तेषु निर्वृत्त्यपूर्णको भवति ।।७१०।।

टीका – सो दोऊ प्रकार अपर्याप्त आलाप सामान्य मिथ्यादृष्टी विषै ही पाइए है। बहुरि सासादन, असयत, प्रमत्त विषै निर्वृत्ति अपर्याप्त ही आलाप है।

जोगं पडि जोगिजिणे, होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु।
अवसेस-णव-ट्ठाणे, पज्जत्तालावगो एक्को ॥७११॥

योगं प्रति योगिजिने, भवति हि नियमादपूर्णकत्वं तु।
अवशेषनवस्थाने पर्याप्तालापक एकः ॥७११॥

टीका – सयोगीजिन विषै नियमकरि योगनि की अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप है। असै अपर्याप्त आलाप विषै विशेष है, सो इनि पंच गुणस्थाननि विषै तौ तीनू आलाप है। बहुरि अवशेष नव गुणस्थान रहे, तिनिविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है।

आगै चौदह मार्गणा स्थानकनि विषै कहै है–

सत्तण्हं पुढवीणं, ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा।
पढमाविरदे वि तहा, सेसाणं पुण्णगालावो ॥७१२॥

सप्तानां पृथिवीनां, ओघे मिथ्यात्वे च त्रय आलापाः।
प्रथमाविरतेऽपि तथा, शेषाणां पूर्णकालापाः ॥७१२॥

टीका – नरकगति विषै सामान्यपनैं सप्तपृथ्वी सबंधी मिथ्यादृष्टी विषै तीन आलाप है। अर तैसैं ही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयत विषै तीन आलाप हैं। जो नरकायु पहिले बांध्या होइ, असा वेदक, क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव सो तहा ही प्रथम पृथ्वी विषै उपजै है। बहुरि अवशेष पृथ्वी सबंधी अविरत अर सर्व पृथ्वी का सासादन, मिश्र, इनकै एक पर्याप्त आलाप ही है।

तिरियचउक्काणोघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य जोणिणि अयदे, पुण्णो सेसे वि पुण्णोदु ॥७१३॥

तिर्यक्चतुष्काणामोघे, मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव।
नवरि च योनिन्ययते, पूर्णः शेषेऽपि पूर्णस्तु ॥७१३॥

टीका – तिर्यंच पंच प्रकार। सर्व भेद जामैं गर्भित असा सामान्य तिर्यंच। बहुरि जाकै पाचों इन्द्रिय पाइए असा पंचेंद्री तिर्यंच। बहुरि जो पर्याप्त अवस्था कौं

धारै सो पर्याप्त तिर्यच । बहुरि जो स्त्रीवेदरूप है, सो योनिमत तिर्यच । जो लब्धि अपर्याप्त अवस्था कौ धारै सो लब्धि अपर्याप्त तिर्यच ।

तहां सामान्यादिक चारि प्रकार तिर्यंचनि कै पंच गुणस्थान पाइए । तहां मिथ्यादृष्टी, सासादन, अविरत विषै तीन तीन आलाप हैं । तहां इतना विशेप है– योनिमत तिर्यंच कै अविरत विषै एक पर्याप्त आलाप ही है; जातै जो पहिलैं तिर्यंच आयु बांध्या होइ तो भी सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेद नपुंसकवेद विषैं न उपजै । बहुरि मिश्र वा देशविरत विषै पर्याप्त आलाप हीं है ।

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते, एक्को अपुण्ण आलावो ।
मूलोघं मणुसतिए, मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो ॥७१४॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्ते, एक अपूर्ण आलापः ।
मूलोघं मनुष्यत्रिके, मानुष्ययते पर्याप्तः ॥७१४॥

टीका – लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच विषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है ।

बहुरि मनुष्य च्यारि प्रकार - तहां सर्वभेद जामें गर्भित होंइ अैसा सामान्य मनुष्य । बहुरि जो पर्याप्त अवस्था कौ धारै, सो पर्याप्त मनुष्य, बहुरि जो स्त्री वेद-रूप सो योनिमत मनुष्य, बहुरि जो लब्धि अपर्याप्तपनां कौ धारै, सो लब्धि अपर्याप्त मनुष्य है ।

तहा सामान्यादिक तीन प्रकार मनुष्यनि के प्रत्येक चौदह गुणस्थान पाइए । इहा भाव वेद अपेक्षा योनिमत मनुष्य के चौदह गुणस्थान कहे है । गुणस्थानवत् आलाप जानने । विशेष इतना - जो योनिमत मनुष्य कै असंयत विषै एक पर्याप्त आलाप ही है । कारण पूर्वें कह्या ही है ।

बहुरि इतना विशेष है – जो असंयत तिर्यंचिणी कै प्रथमोपशम, वेदक ए दोय सम्यक्त्व है । अर मनुष्यणी कैं प्रथमोपशम, वेदक, क्षायिक ए तीन सम्यक्त्व संभवै है । तथापि जहां सम्यक्त्व हो है, तहां पर्याप्त आलाप ही है । सम्यक्त्व सहित मरै, सो स्त्रीवेदनि विषै न उपजै है । बहुरि द्रव्य अपेक्षा योनिमती पंचम गुणस्थान तैं ऊपरि गमन करै नाही, तातै तिनकै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नाही है ।

मणुसिणि पमत्तविरदे, आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।
अवगदवेदे मणुसिणि, सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥७१५॥

मानुष्यां प्रमत्तविरते, आहारद्विकं तु नास्ति नियमेन ।
अपगतवेदायां मानुष्यां, संज्ञा भूतगतिमासाद्य ॥७१५॥

टीका – द्रव्य पुरुष अर भाव स्त्री असा मनुष्य प्रमत्तविरत गुणस्थान विषै होइ, ताकै आहारक अर आहारक आंगोपांग नामकर्म का उदय नियम करि नाही है।

तु शब्द तै स्त्रीवेद, नपुसकवेद का उदय विषै मन पर्ययज्ञान अर परिहार विशुद्धि संयम ए भी न हो है।

बहुरि भाव मनुष्यणी विषै चौदह गुणस्थान है। द्रव्य मनुष्यणी विषै पाच ही गुणस्थान है।

बहुरि वेद रहित अनिवृत्तिकरण विषै मनुष्यणी कै मैथुन संज्ञा कही है। सो कार्य रहित भूतपूर्वगति न्याय करि जाननी। जैसै कोऊ राजा था, वाकौ राजभ्रष्ट भए पीछै भी राजा ही कहिए है; तैसै जाननी। सो भाव स्त्री भी नववा ताई ही है। इहां चौदह गुणस्थान कहे, सो भूतपूर्वगति न्यायकरि ही कहे है। बहुरि आहारक ऋद्धि कौ जो प्राप्त भया, ताकै भी वा परिहार विशुद्धि संयम विषै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अर मन पर्यय ज्ञान न हो है; जातै तैतीस वर्ष बिना सो परिहार विशुद्धि सयम होइ नाही। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की इतनी स्थिति नाही। अर परिहार विशुद्धि सयम सहित श्रेणी न चढै, तातै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी बनै नाही, तातै तिन दोऊनि का संयोग नाही संभवै है।

णरलद्धिअपज्जत्ते, एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो ।
लेस्साभेदविभिण्णा, सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ॥७१६॥

नरलब्ध्यपर्याप्ते, एकस्तु अपूर्णकस्तु आलापः ।।
लेश्याविभिन्नानि, सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि ॥७१६॥

टीका – बहुरि लब्धि अपर्याप्त मनुष्य विषै एक अपर्याप्त आलाप ही है। बहुरि लेश्या भेद करि भिन्न असे देवनि के स्थानक सात है; ते कहै है।

भवनत्रिक देव, बहुरि सौधर्म युगल, बहुरि सनत्कुमार युगल, बहुरि ब्रह्मादिक छह, बहुरि शतारयुगल, बहुरि आनतादिक नवम ग्रैवेयक पर्यंत तेरह, बहुरि अनुदिश, अनुत्तर विमान चौदह, इनि सात स्थानकनि विषै क्रम तै तेज का जघन्यांश, बहुरि तेज का मध्यमांश, बहुरि तेज का उत्कृष्टांश, पद्म का जघन्यांश, बहुरि पद्म का मध्यमांश, बहुरि पद्म का उत्कृष्टांश, शुक्ल का जघन्यांश, बहुरि शुक्ल का मध्यमांश, बहुरि शुक्ल का उत्कृष्टांश ए लेश्या पाइए हैं ।

सव्वसुराणं ओघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१७॥

सर्वसुराणामोघे, मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।
नवरि च भवनत्रिकल्पस्त्रीणां च च अविरते पूर्णः ॥७१७॥

टीका – सर्व सामान्य देव विषैं मिथ्यादृष्टी सासादन, असंयत इनिविषैं तीन तीन आलाप है । बहुरि इतना विशेष – जो भवनत्रिक देव अर कल्पवासिनी स्त्री, इनकै असयत विषै एक पर्याप्त आलाप ही है । जातै असंयत तिर्यंच मनुष्य मरि करि तहा उपजै नाही ।

मिस्से पुण्णालाओ, अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा ।
अविरद तिण्णालावा, अणुद्दिस्साणुत्तरे होंति ॥७१८॥

मिश्रे पूर्णालापः, अनुदिशानुत्तरा हि ते सम्यक् ।
अविरते त्रय आलापाः, अनुदिशानुत्तरे भवंति ॥७१८॥

टीका – नव ग्रैवेयक पर्यंत सामान्य देव, तिनिकै मिश्र गुणस्थान विषै एक पर्याप्त आलाप ही है । बहुरि अनुदिश अर अनुत्तर विमानवासी अहमिद्र सर्व सम्यग्दृष्टी ही है । तातै तिनके असंयत विषै तीन आलाप है ।

आगै इंद्रिय मार्गणा विषैं कहै हैं–

बादरसुहमेइंदिय-बि-ति-चउ-रिंदियअसण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्ण य, अपुण्णगे पुण्ण अपुण्णो दु ॥७१९॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानाम् ।
ओघे पूर्णे त्रयश्च, अपूर्णके पुनः अपूर्णस्तु ॥७१९॥

टीका – बादर सूक्ष्म एकेंद्रिय, बहुरि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पचेंद्री इनकी सामान्य रचना पर्याप्त नामकर्म का उदय संयुक्त, तीहि विषै तीन आलाप है। निर्वृ त्ति अपर्याप्त अवस्था विषै भी पर्याप्त नामकर्म ही का उदय जानना ।

सण्णी ओघे मिच्छे, गुणपडिवण्णे य मूलआलावा ।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२०॥

संज्ञ्योघे मिथ्यात्वे, गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः, अपर्याप्तो भवति आलापः ॥७२०॥

टीका – सैनी पंचेंद्री तिर्यंच की सामान्य रचना विषै पच गु णस्थान है। तिनि विषै मिथ्यादृष्टी में तो मूल में कहे थे, तेई तीन आलाप है। बहुरि जो विशेप गुण को प्राप्त भया, ताकै सासादन अर संयत विषै मूल मे कहे ते तीन, तीनो आलाप हैं। मिश्र अर देशसंयत विषै एक पर्याप्त आलाप है। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्त विषैं एक लब्धि अपर्याप्त आलाप ही है।

आगै कायमार्गणा विषै दोय गाथानि करि कहै है –

भू-आउ-तेउ-वाऊ-णिच्चचदुग्गदि-णिगोदगे तिण्णि ।
ताणं थूलिदरेसु वि, पत्तेगे तद्दुभेदे वि ॥७२१॥

तसजीवाणं ओघे, मिच्छादिगुणे वि ओघ आलाओ ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२२॥ जुम्मं ।

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदके त्रयः ।
तेषां स्थूलेतरयोरपि, प्रत्येके तद्द्विभेदेऽपि ॥७२१॥

त्रसजीवानामोघे, मिथ्यात्वादिगुणेऽपि ओघ आलापः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः, अपर्याप्तो भवत्यालापः ॥७२२॥ युग्मम् ।

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनके बादर-सूक्ष्म भेद, बहुरि प्रत्येक वनस्पती याके सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेद, इनि सबनि विषै तीन-तीन आलाप है। त्रस जीवनि के सामान्य करि चौदह गुणस्थाननि विषै,

गुणस्थाननि विषै कहे तैसे ही आलाप है; किछू विशेष नाही । पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत जो लब्धि अपर्याप्त है, ताकै एक लब्धि अपर्याप्त ही आलाप है ।

आगै योगमार्गणा विषै कहै हैं–

एक्कारसजोगाणं, पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो, सगएक्कअपुण्ण आलाओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां, पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः ।
मिश्रचतुष्कस्य पुनः, स्वकैकापूर्णालापः ॥७२३॥

टीका – पर्याप्त अवस्था विषै होहि ऐसे च्यारि मन, च्यारि वचन, औदारिक, वैक्रियक, आहारक इन ग्यारह योगनि कै अपना-अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसे सत्य मनोयोग के सत्य मन.पर्याप्त आलाप है । ऐसे सबनि के जानना । बहुरि अवशेष रहे च्यारि, मिश्र योग, तिनिकै अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है । जैसे औदारिक मिश्र के एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है । ऐसें सबनि के जानना ।

आगै अवशेष मार्गणा विषै कहै है –

वेदादाहारो त्ति य, सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ ।
णवरि य संढिच्छीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥७२४॥

वेदादाहार इति च, स्वगुणस्थानानामोघ आलापः ।
नवरि च पंडस्त्रीणां, नास्ति हि आहारकानां द्विकम् ॥७२४॥

टीका – वेदमार्गणा ते लगाइ आहारमार्गणा पर्यंत दश मार्गणानि विषै अपना अपना गुणस्थाननि का आलापनि का अनुक्रम गुणस्थाननि विषै कहे, तैसे ही जानना । इतना विशेष है जो भावनपुंसक वा स्त्री वेद होइ अर द्रव्य पुरुष होइ ऐसे जीव के आहारक, आहारकमिश्र आलाप नाही है, जातै आहारक शरीर विषै प्रशस्त [illegible] का ही उदय है । तहा वेदनि के अनिवृत्तिकरण का सवेद भाग पर्यंत [illegible] है । क्रोध, मान, माया, बादर लोभ इनिकै अनिवृत्तिकरण के वेद रहित भाग [illegible] पर्यंत क्रम ते गुणस्थान है । सूक्ष्म लोभ के सूक्ष्म सापराय ही है । कुमति, कुश्रुत, विभंग इनि के दोय गुणस्थान हैं । मति, श्रुत, अवधि के नव है ।

मन:पर्यय कै सात है। केवलज्ञान कै दोय है। असंयम कै च्यारि है। देशसयम कै एक है। सामायिक, छेदोपस्थापना कै च्यारि है। परिहार विशुद्धि कै दोय है। सूक्ष्मसांपराय कै एक है। यथाख्यात चारित्र कै च्यारि है। चक्षु, अचक्षु दर्शन कै बारह है। अवधि दर्शन के नव है। केवल दर्शन कै दोय है। कृष्ण, नील, कपोत लेश्या कै च्यारि है। पीत पद्म कै सात है। शुक्ल कै तेरह हैं। भव्य कै चौदह हैं। अभव्य कै एक है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र कै एक एक है। द्वितीयोशम सम्यक्त्व कै आठ है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक कै च्यारि है। क्षायिक के ग्यारह है। संज्ञी कैं बारह है। असंज्ञी कै एक है। आहारक कै तेरह है। अनाहारक कै पांच हैं। ऐसैं ए गुणस्थान कहे, तिन गुणस्थाननि विषै आलाप मूल में जैसें सामान्य गुणस्थाननि विषै अनुक्रम करि आलाप कहे थे, तैसें ही जानने।

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया, णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥७२५॥

भव्वा सम्मत्ता वि य, सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु समुदायं ॥७२६॥ जुम्मं।

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाः गतींद्रियाणि कायाः।
योगा वेदकषायाः, ज्ञानयमाः दर्शनानि लेश्याः ॥७२५॥

भव्याः सम्यक्त्वान्यपि च, संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः।
योग्याः प्ररूपितव्या, ओघादेशयोः समुदायम् ॥७२६॥ युग्मम्।

टीका – गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह, तहां पर्याप्त सात, अपर्याप्त सात, पर्याप्ति छह, तहां सज्ञी पचेंद्रिय कै पर्याप्ति अवस्था विषै पर्याप्ति अवस्था संबधी छह अर अपर्याप्ति अवस्था विषै अपर्याप्त संबंधी छह, असज्ञी वा विकलत्रय के पर्याप्ति-अपर्याप्ति सबधी पांच-पांच, एकेंद्री कै च्यारि-च्यारि जानने।

प्राण – सज्ञी पचेंद्रिय कै दश, तीहि अपर्याप्त के सात, असज्ञी पचेंद्री के नव तीहि अपर्याप्त के सात, चौइन्द्री के आठ, तीहिं अपर्याप्त के छह, तेइन्द्री के सात, तीहिं अपर्याप्त के पांच, बेइन्द्री के छह, तीहि अपर्याप्त के च्यारि, एकेंद्रिय के च्यारि, तीहि अपर्याप्त के तीन हैं। सयोग केवली कै वचन, काय, उस्वास, आयु ए च्यारि

प्राण है। तिसही के वचन बिना तीन हो हैं। कायबल बिना दोय होय है। अयोगी कैं एक आयु प्राण है।

बहुरि संज्ञा च्यारि, गति च्यारि, इन्द्रिय पांच, काय छह, योग पंद्रह तिनमें पर्याप्त अवस्था संबंधी ग्यारह, अपर्याप्त अवस्था संबंधी तीन मिश्र अर एक कार्माण ए च्यारि हैं। वेद तीन, कषाय च्यारि, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन च्यारि, लेश्या छह, भव्य दोय, सम्यक्त्व छह, संज्ञी दोय, आहार दोय, उपयोग बारह, ए सर्व समुच्चय गुणस्थान वा मार्गणा स्थाननि विषैं यथायोग्य प्ररूपण करने।

जीवसमास विषै विशेष कहै है –

ओघे आदेसे वा, सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ।
तत्थ य उणवीसंता, इगि-बि-ति-गुणिदा हवे ठाणा ॥७२७॥

ओघे आदेशे वा, संज्ञिपर्यन्तका भवेयुर्यत्र।
तत्र चैकोनविंशांता, एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः स्थानानि ॥७२७॥

टीका – गुणस्थान वा मार्गणास्थान विषै जहां संज्ञी पंचेंद्री पर्यंत मूल चौदह जीवसमास निरूपण करिए, तहां उत्तर जीवसमास एक नै आदि देकरि उगणीस पर्यंत सामान्य करि, दोय पर्याप्त अपर्याप्त करि, तीन पर्याप्त, अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त करि गुणें, एकनैं आदि देकरि उगणीस पर्यंत वा दोय नैं आदि देकरि अठतीस पर्यंत वा तीन नै आदि देकरि सत्तावन पर्यंत जीवसमास के भेद है। ते सर्व भेद तहा जानने। सामान्य जीवसमास एक, त्रस-स्थावर भेदतै दोय, इत्यादि सर्वभेद जीवसमास अधिकार विषै कहे है; सो जानने। इनिकौं एक, दोय, तीन करि गुणें क्रमतें एक, दोय, तीन आदि उगणीस, अठतीस सत्तावन पर्यंत भेद हो है।

इहा तें आगें गुणस्थानमार्गणा विषैं गुणस्थान, जीवसमास इत्यादि बीस भेद जोडिए है; सो कहिए है –

वीर-मुह-कमल-णिग्गय-सयल-सुय-ग्गहण-पयडण-समत्थं।
णमिऊण गोयममहं, सिद्धंतालावमणुवोच्छं ॥७२८॥

वीरमुखकमलनिर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रकटनसमर्थम्।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये ॥७२८॥

टीका – वर्धमान स्वामी के मुख कमल तै निकस्या असा सकल शास्त्र महा-गंभीर, ताके प्रकट करने कौ समर्थ असा सिद्धपर्यंत आलाप, सो श्रीगौतम स्वामी कौ नमस्कार करि मैं कहौ हौ ।

तहां सामान्य गुणस्थान रचना विषै जैसै चौदह गुणस्थानवर्ती जीव है । गुण-स्थान रहित सिद्ध है । चौदह जीवसमास युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव है । छह-छह, पांच-पांच, च्यारि-च्यारि, पर्याप्ति, अपर्याप्ति युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव है । दश, सात, नव, सात, आठ, छह, सात, पांच, छह, च्यारि, च्यारि, तीन, च्यारि, दोय, एक प्राण के धारी जीव है । तिनकरि रहित जीव है । पंद्रह योग युक्त जीव है । अयोगी जीव है । तीन वेद युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव है । च्यारि कषाय युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव है । आठ ज्ञान युक्त जीव हैं । ज्ञान रहित जीव नाही । सप्त संयम युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव है । च्यारि दर्शन युक्त जीव हैं । दर्शन रहित जीव नाही । द्रव्य, भाव छह लेश्या युक्त जीव है । लेश्या रहित जीव है । भव्य वा अभव्य जीव है । दोऊ रहित जीव है । छह सम्यक्त्व युक्त जीव है । सम्य-क्त्व रहित नाहीं । संज्ञी वा असंज्ञी जीव है । दोऊ रहित जीव है । आहारी जीव हैं । अनाहारी जीव है । दोऊ रहित नाही । साकारोपयोग वा अनाकारोपयोग वा युगपत् दोऊ उपयोग युक्त जीव है । उपयोग रहित जीव नाही है । असै अन्यत्र यथासंभव जानना ।

अथ गुणस्थान वा मार्गणास्थाननि विषै यथायोग्य बीस प्ररूपणा निरूपणा कीजिए है ।

सो यन्त्रनि करि विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान का आलाप विषै जो जो प्ररूपणा पाइए, सो सो लिखिए हैं । तहां यन्त्रनि विषै असी सहनानी जाननी । पहिलैं तौ एक बडा कोठा, तिस विषै तौ जिस आलाप विषै बीस प्ररूपणा लगाई, तिसका नाम लिखिए है । बहुरि तिस कोठे के आगै आगै बरोबरि वीस कोठे, तिन-विषै प्रथमादि कोठे तै लगाइ, अनुक्रम तै गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञी, गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार, उपयोग ए बीस प्ररूपणा जो जो पाइए, सो सो लिखिए है । तिनविषै गुणस्थानादिक का नाम नाही लिखिए है । तथापि पहिला कोठा विषै गुणस्थान, दूसरा विषै जीवसमास, तीसरा विषै पर्याप्ति इत्यादि बीसवां कोठा विषै उपयोग पर्यंत जानने । तहा तिनि कोठेनि विषै जहां जिस प्ररूपणा का जितना प्रमाण होइ, तितने

ही का अंक लिख्या होइ, तहां तौ सो प्ररूपणा सर्व जाननी । जैसैं पहिले कोठे में चौदह का अंक जहां लिख्या होइ, तहा सर्व गुणस्थान जानने । दूसरा कोठे विषैं जहा चौदह का अंक लिख्या होइ, तहां सर्व जीवसमास जानने । अैसैं ही तृतीयादि कोठेनि विषै जहां छह, दश, च्यारि, च्यारि, छह, पंद्रह, तीन, च्यारि, आठ, सात, च्यारि, छह, दोय, छह, दोय-दोय बारह के अंक लिखे होंइ, तहां अपने अपने कोठेनि विषैं सो सो प्ररूपणा सर्व जाननी । बहुरि जहां प्ररूपणा का अभाव होइ, तहां बिंदी लिखिए है । जैसैं पहिले कोठे विषै जहां बिंदी लिखी होइ, तहां गुणस्थान का अभाव जानना । दूसरा कोठा विषै जहां बिंदी लिखी होइ, तहां जीवसमास का अभाव जानना । अैसैं अन्यत्र जानना । बहुरि जहां प्ररूपणा विषै केतेक भेद पाइए, तहां अपने अपने कोठानि विषैं जितने भेद पाइए, तितनेका अंक लिखिए है । बहुरि तिन भेदनि के नाम जानने के अर्थि नाम का पहिला अक्षर वा पहिले दोय आदि अक्षर वा दोय विशेषण जानने के अर्थि दोऊ विशेषणनि के आदि के दोय अक्षर वा तिन अक्षरनि के आगैं अपनी संख्या के अंक लिखिए है, सोई कहिए है—

जितने गुणस्थान पाइए, तितने का अंक पहिले कोठे में लिखिए है । तिस अंक के नीचैं तिन गुणस्थाननि का नाम जानने के अर्थि तिनके नामनि के आदि अक्षर लिखिए है । सो आदि अक्षर की सहनानी तैं सर्व नाम जानि लेना ।

तहां मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि के नाम की अैसी सहनानी । **मि । सा। मिश्र । अवि । देश । प्र । अप्र । अपू । अनि । सू । उ । क्षी । स । अ ।**

बहुरि जहा आदि के अैसा लिख्या होइ, तहा मिथ्यादृष्टि आदि जितने लिखे होंइ, तितने गुणस्थान जानने । बहुरि अैसैं ही दूसरा कोठा विषै जीवसमास, सो जीवसमास दोय प्रकार पर्याप्त वा अपर्याप्त, तहां सहनानी अैसी **प** । **अ** । बहुरि तहां सूक्ष्म, बादर, वेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी, संज्ञी की सहनानी अैसी **सू** । **बा** । **बें** । **तें** । **चौ** । **अ** । **सं** । तहा सूक्ष्म के पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ होंइ; तौ सहनानी अैसी **सू २** पर्याप्त ही होइ तौ सहनानी अैसी **सू प १** । अपर्याप्त ही होइ तौ अैसी **सूअ १** संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त की अैसी **सं** २ पर्याप्त की अैसी **सं प १** सज्ञी अपर्याप्त की अैसी **सं** अ १ सहनानी है । अैसैं ही औरनि की जाननी । बहुरि जहां अपर्याप्त ही जीवसमास होइ, तहां **'अपर्याप्त'** अैसा लिखिए है । जहां पर्याप्त ही होइ, तहां **'पर्याप्त'** अैसा लिखिए है । बहुरि प्रमत्त विषै आहारक अपेक्षा, सयोगी विषैं केवल-

समुद्घात अपेक्षा, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवसमास जानने। बहुरि कायमार्गणा की रचना विषैं जहां सत्तावन, अठ्याणवै, च्यारि सै छह जीवसमास कहे है, ते यथासभव पर्याप्त, अपर्याप्त सामान्य आलाप विषै जानि लेने। बहुरि वनस्पती रचना विषै प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक बादर सूक्ष्म, नित्य-इतर निगोद के पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा यथासंभव जीवसमास बारह नैं आदि देकरि जानने।

बहुरि तीसरा कोठा विषै पर्याप्ति, सो पर्याप्ति जितनी पाइए, तिनके अंक ही लिखिए है, नाम नाही लिखिए है। तहा अैसा जानना छह तौ संज्ञी पंचेद्री के; पंच असंज्ञी वा विकलत्रय के, च्यारि एकेंद्री के जानने। ते पर्याप्त आलाप विषै तौ पर्याप्त जानने। अपर्याप्त आलाप विषै अपर्याप्त जानने। सामान्य आलाप विषै ते दोय दोय बार जहां लिखे होइ, तहां पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ जानने।

बहुरि चौथा कोठा विषै प्राण, ते प्राण जितने पाइए है तिनके अंक ही लिखिए है, नाम नाही लिखिए है। तहां अैसा जानना।

पर्याप्त आलाप विषै तौ दश सज्ञी के अर नव असंज्ञी के आठ चौंद्री के, सात तेंद्री के, छह बेंद्री के, च्यारि एकेंद्री के, बहुरि च्यारि सयोगी के, एक अयोगी का यथासंभव जानने। बहुरि अपर्याप्त आलाप विषै सात सज्ञी के, सात असज्ञी के, छह चौंद्री के, पांच तेंद्री के, च्यारि बेंद्री के, तीन एकेंद्री के, बहुरि दोय सयोगी के, यथा-संभव जानने। बहुरि जहां सामान्य आलाप विषै ते पूर्वोक्त दोऊ लिखिए, तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने।

बहुरि पांचवां कोठा विषै संज्ञा, तहां आहारादिक की अैसी सहनानी है आ। भ। मैं। प।

बहुरि छठा कोठा विषै गति, तहां नरकादिक की अैसी सहनानी है न। ति। म। दे।

बहुरि सातवां कोठा विषै इन्द्रिय, तहां एकेंद्रियादिक की अैसी सहनानी है ए। बें। तें। चौ। पं।

बहुरि आठवां कोठा विषै काय, सो पृथ्वी आदि की अैसी पृ। अ। ते। वा। व। बहुरि पांचो ही स्थावरनि की अैसी—स्था ५। बहुरि त्रस की अैसी त्र। सहनानी है।

बहुरि नवमां कोठा विषैं योग, तहां मन के च्यारि, तिनकी ऐसी **म ४** । वचन के च्यारि, तिनकी ऐसी **व ४** ।काय के विषै औदारिकादिकनि की ऐसी **औ । औ मि । वै । वै मि । आ । आ मि । का** । अथवा औदारिक, औदारिकमिश्र इनि दोऊनि की ऐसी **औ २** । वैक्रियिक द्विक की ऐसी **वै २** । आहारक द्विक की ऐसी **आ २** । बहुरि सयोगी के सत्य, अनुभय, मन-वचन पाइए । तिनकी ऐसी **म २ । व २** । बहुरि बेंद्रियादिक के अनुभय वचन पाइए, ताकी ऐसी **अनु व १** । सहनानी है ।

बहुरि दशवां कोठा विषै वेद, तहां नपुंसकादिक की ऐसी **न । पु । स्त्री** सहनानी है ।

बहुरि ग्यारहवां कोठा विषै कषाय, तहां क्रोधादिक की ऐसी **क्रो । मा । माया । लो** । सहनानी है । बहुरि बारह्वां कोठा विषै ज्ञान, तहां कुमति, कुश्रुत, विभंग की ऐसी **कुम । कुश्रु । वि** । अथवा इन तीनों की ऐसी **कुज्ञान ३** । बहुरि मतिज्ञानादिक की **म । श्रु । अ । म । के** । अथवा मति, श्रुत, अवधि तीनों की ऐसी **मत्यादि ३** । मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय की ऐसी **मत्यादि ४** । सहनानी है ।

बहुरि तेरहवां कोठा विषैं संयम, तहां संयमादिक की ऐसी **अ । दे । सा । छे । प । सू । य** । सहनानी है ।

बहुरि चौदहवां कोठा विषै दर्शन, तहां चक्षु आदि की ऐसी **च । अच । अव । के** । अथवा चक्षु अचक्षु अवधि तीनों की ऐसी **चक्षु आदि ३** सहनानी है ।

बहुरि पद्रह्वां कोठा विषै लेश्या, तहां द्रव्य लेश्या की सहनानी ऐसी **द्र** । याके आगै जितनी द्रव्य लेश्या पाइए, तितने का अंक जानना । बहुरि भाव लेश्या की सहनानी ऐसी **भा** । याके आगैं जितनी भावलेश्या पाइए तितने का अंक जानना । दोऊ ही जागै कृष्णादिक नामनि की ऐसी **कृ । नी । क** । इनि तीनों की ऐसी **अशुभ ३** । तेज आदिक की ऐसी **ते । प । शु** । इन तीनों की ऐसी **शुभ ३** । सहनानी जाननी ।

बहुरि सोलहवां कोठाविषै भव्य, सो भव्य अभव्य की ऐसी **भ । अ** । सहनानी है।

सतरहवां कोठा विषै सम्यक्त्व, तहां मिथ्यादिक की ऐसी **मि । सा । मिश्र । उ । वे । क्षा** । सहनानी है ।

बहुरि अठारहवां कोठा विषै संज्ञी, तहां संज्ञी असंज्ञी की असी सं । अ । सहनानी है ।

बहुरि उगणीसवा कोठा विषै आहार, तहां आहार-अनाहार की असी आ । अन । सहनानी है ।

बहुरि बीसवा कोठा विषै उपयोग, तहां ज्ञानोपयोग – दर्शनोपयोग की असी ज्ञा । द । सहनानी हैं । असै इन सहनानीनि करि यंत्रनि विषै कहिए है अर्थ सो नीकैं जानना ।

बहुरि जहां गुणस्थानवत् वा मूलौघवत् असा कह्या होइ, गुणस्थान वा सिद्ध रचना विषै जैसैं प्ररूपणा होइ, तैसैं यथसंभव जानना । बहुरि और भी जहां जिसवत् कह्या होइ, तहा ताके समान प्ररूपणा जानि लेना । तहां जो किछू जिस कोठा विषै विशेष कह्या होइ, सो विशेष जानि लेना । बहुरि जहां स्वकीय असा कह्या होइ, तहां जिसका आलाप होइ, तहां तिस विषैं संभवती प्ररूपणा वा जिसका आलाप कीजिए, सो ही प्ररूपणा जानि लेना । बहुरि इतना कथन जानि लेना –

सव्वेसिं सुहमाणं, काऊदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो, कओदवण्णो हवे णियमा ।।१।।

इस सूत्र करि सर्व पृथ्वीकायादिक सूक्ष्म जीवनि कैं द्रव्यलेश्या कपोत है । विग्रहगति संबधी कार्माण विषै शुक्ल है । मिश्र शरीर विषै कपोत है । असैं अपर्याप्त आलापनि विषै द्रव्यलेश्या कपोत अर शुक्ल ही जानि लेना ।

बहुरि द्वितीयादि पृथ्वी का रचना विषै लेश्या अपनी अपनी पृथ्वी विषै संभवती स्वकीय जाननी ।

बहुरि मनुष्य रचना विषै प्रमत्तादिक विषै तीन भेद भाव अपेक्षा हैं । द्रव्य अपेक्षा एक पुरुषवेद ही है । बहुरि सप्तमादि गुणस्थाननि विषैं आहार सज्ञा का अभाव, साता-असाता वेदनीय की उदीरणा का अभाव तै जानना । बहुरि स्त्री, नपुंसक वेद का उदय होतैं आहारकयोग, मन पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम न होइ, असा जानना । बहुरि श्रेणी तैं उतरि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी चतुर्थादि गुणस्थानकनि तैं मरि देव होइ, तोहि अपेक्षा वैमानिक देवनि कैं अपर्याप्तकाल विषै उपशम सम्यक्त्व कह्या है ।

बहुरि एकेंद्री जीवनि कैं पर्याप्त नामकर्म के उदय तैं पर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था है। बहुरि अपर्याप्त नामकर्म के उदय तैं लब्धि अपर्याप्तक हो है; असा जानना। बहुरि कायमार्गणा रचना विषैं पर्याप्त, बादर, पृथ्वी, वनस्पती, त्रस कै द्रव्यलेश्या छहो हैं। अप कै शुक्ल, तेज कैं पीत, वायु कै हरित वा गोमूत्र वा अव्यक्त वर्णरूप द्रव्य लेश्या स्वकीय जानना।

बहुरि साधारण शरीर जाननें के अर्थि गाथा—

पुढवी आदि चउण्हं, केवलि आहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदाहु सव्वे, परिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥१॥

पृथ्वी आदि च्यारि, अर केवली, आहारक, देव, नारक के शरीर निगोद रहित अप्रतिष्ठित है। अवशेष सर्व निगोद सहित सप्रतिष्ठित है; असा साधारण रचना विषैं स्वरूप जानना।

बहुरि सासादन सम्यग्दृष्टी मरि नरक न जाय, तातै नारकी अपर्याप्त सासादन न होइ। बहुरि पंचमी आदि पृथ्वी के आये अपर्याप्त मनुष्यनि के कृष्ण नील लेश्या होतें वेदक सम्यक्त्व हो है, तातैं कृष्ण – नील लेश्या की रचना विषै अपर्याप्त आलाप विषै मनुष्यगति कहिए है। बहुरि पर्याप्त विषैं कृष्णलेश्या नाही। अपर्याप्त में मिश्रगुणस्थान नाही, तातै कृष्णलेश्या का मिश्रगुणस्थान विषैं देव बिना तीन गति हैं। इत्यादिक यथासम्भव अर्थ जानि यंत्रनि करि कहिए है अर्थ, सो जानना। अथ यन्त्र रचना—

रचना कौन कौन हैं तिनके नाम	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्री	काय	जोग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहारक	उपयोग
पर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	१४	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९ ८।७।६।४ ४।१ पर्याप्त	४	४	५	६ पर्याप्त	११ पर्याप्त	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहारक	१२
अपर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	५ मि १ सा १ अ १ प्र १ सजो १	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५ ।४।३।२ अपर्याप्त	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी सामान्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ।५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी पर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५। ४। पर्याप्त	१०।९। ८।७। ६।४।	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहारक	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५। ४। अपर्याप्त	७।७। ६।५। ४।३।	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २
सासादन सामान्यकी रचना	१ सासादन	२ संप १ सअ १	६।६।	१०।७	४	४	१ पंचेंद्री	१ त्रस	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासादन	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा ३ द २

सासादन पर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४औ १वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सासादन अपर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ तिर्१म १ दे १	१ पं	१ त्र	३औमि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४ओ१ वै १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
असंयत सामान्य रचना	१ असयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहा रक द्विक विना	३	४	३ म१ श्रु१ औ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उप१ वेद१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४ओ१ वै १	३	४	३ म श्रु १ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३औमि१ वैमि १ का १	२ न१पु१	४	३ म१ श्रु१ अ१	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वै १ क्षा१	१ स	२	६ ज्ञा३ द ३
देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ सप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादि क	१ देश संयत	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ सप१ संअ १	६।६	१०।७	४	१ मनु	१ प	१ त्र	११ म४व ४औ १ आहार२	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प १	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३

उपसांतकषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ प	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदके	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
क्षीणकषाय रचना	१ क्षीण	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदिक	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सयोगकेवली रचना	१ सयो	२ प१ ५१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ मन२ वच२ औदा२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	०	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
अयोगकेवली रचना	१ सयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
सामान्य नारक जीवनिको रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञान३ मत्यादिक३	१ अस	३ आदिके	द्रव्य३ कृ१क १शु१ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा६ द३
सामान्य नारक पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ ·ंप	६ प	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	६ अज्ञान३ मत्यादिक३	१ अस	३ आदिके	द्र१ कृ१ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	१ आहारक	६ ज्ञा६ द३

सामान्य नारक अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ सं अ	६ अप	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का १	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु १ मत्या नि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ का शु १ भा ३ अशुभ	२	३ मिथ्या १ वेद१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वैक्रि२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ क का १ शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द२
सामान्य नारकमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ क भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सामान्यनारकसासादनरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ सासा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकमिश्रगुणस्थानरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकअसंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

सामान्यनारक असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सप	६	१०	४	१ न	१ प	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ मया दिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ १ भा३ अशुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सामान्यनारक असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ पं	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपु	४	१ मत्यादिक	१ असं	३ आदि- क	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
धर्मानारक सामान्य रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञान ३ म त्यादि क३	१ असं	३ आदि क	द्र २ कृ१का१ शु१ भा१ कपोत	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा६ द ३
धर्मानारक पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	६ कुज्ञा न३ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ १ भा१ कपोत	२	६	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
धर्मानारक अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ नपुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१शु १ भा१ कपोत	२	३ मि १ वे १ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
धर्मानारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ३ कृ१क १ शु१ भा१ कपोत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
धर्मानारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ प	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	१ कृष्ण भा१ कपोत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

[illegible] की रचना	१ मिथ्या	१ संप	६	१०	४	१ न	१ प	१ त्र	६ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ [illegible] दिक३	१ असं	३ आदि के	द्र ६ भा ३ [illegible]	२	[illegible]	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
द्वितीय दि पृथ्वी [illegible] अपर्याप्त मि[illegible] रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कु[illegible]१	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क, शु१ भा३ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके ना रक मिथ्या दृष्टि [illegible] रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ कृ१ शु० भा३ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीय दि पृथ्वीके नारक मिथ्यादृ पर्याप्त की रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र १ कृष्ण भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वी के नार कमिथ्या दृ अपर्याप्त की रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा १ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनार कसासादन की रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र १ क भा १ स्वकीय	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीय दि पृथ्वीकेना रक मिश्र की रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ क भा१ स्वकीय	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञान ३ द २

द्वितीयादि-पृथ्वीके नारक असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ भा, स्वकीय	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पंचप्रकार तिर्यंचनि विशेषसामान्य तिर्यंच रचना	५ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मनःपर्यय केवल विना	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदि के	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अपर्याप्त	६। ५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१ वे१	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
सामान्य तिर्यंच मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७। ९।७।८।६। ७।५।६। ४।४।३।	४	१ ति	५	६	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप	६।५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र२ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

सामान्य तिर्यंच सासादन रचना	१ सासा	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सासा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र२क २ शु१ भा ३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सामान्य तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व ४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ व १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र ३ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिक	द्र २ क१शु१ भा १ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३

सामान्यतिर्यंचदेश संयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ औ१ वे १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच रचना	५ आदिके	४ संप१ संअ १ असं प १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मत्यादिक३ कुज्ञान ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	१ संप१ असं प१	६।५	१०।६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	२ असं१ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा १ अवि १	२ संअ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम १ कुश्रुत १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मिथ्या १ सा१ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा५ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	४ सं प १ सं अ १ असं प १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं प१ असं प१	६।५	१०।६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ संअ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा द २

पंचेंद्री तिर्यंच सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि का१	३	४	२ कुम कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
पंचेंद्री तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६ ६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुरुष	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ का१शु १भा२ कपोत	१ भ	२ क्षा १ वे १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

पचेंद्री तिर्यंच देश संयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पचेंद्री पर्याप्त तिर्यंचरचना-पंचेंद्री तिर्यंच वत् है	पंचेंद्रीवत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्
योनिमती तिर्यंच जो तिर्यंचणी ताकी रचना	५ आदिके	४सं प १सं अ १असं प १ असं अ१	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ २ का१	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	२	६ ज्ञा६ द३
योनिमती तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	२ संप१ असंप १	६।५	१०।६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान३ मत्यादिक३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
योनिमती तिर्यंच अपर्याप्त रचना	२ मिथ्या१ सा १	१ संअ१ असंअ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सासा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	४संप१ संअ १ असंप १ असंअ १	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ संप असंप१	६।५	१०६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २

पंचेंद्रिय तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ असअ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औ१ का१	१ नपुं	४	१ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द२
अथानन्तर मनुष्यनिविषै सामान्य मनुष्य रचना	१४	२ संप१ सअ१	६।६	१०।७ ४।३ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रियकद्विक विना	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१२
सामान्य मनुष्य पर्याप्त रचना	१४	१ सप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
सामान्य मनुष्य अपर्याप्त रचना	५ मिथ्या१ सा१ अवि१ प्र१ स१	१ संअ	६	७ २	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं१ सा१ छे१ यथा१	४	द्र२ का१शु१ भा६	२	५ मिथ्या१ सा१ वेद१ क्षा१	१ सं	२	१० ज्ञा६ द४
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप१ सअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अस	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ म	१ प	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	४	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	३ मान१ माया१ लोभ१	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ स	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप १	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ१	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य सूक्ष्म सांपराय रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य उपशांत कषाय रचना	१ उ	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ १	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य मनुष्य क्षीण कषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	०	३ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३

सामान्य मनुष्य सयोगकेवलीरचना	१ सयो	२ सं प१ स्रअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ मर उर औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
सामान्य मनुष्य अयोग केवली रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ प	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा १ द १
पर्याप्त मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणीकी रचना	१४	२ सं प१ सअ	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ प	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ सप	६	१० ४ १	४	१ म	१ प	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ मया १	१ स अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ स्त्री	४	३ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ अस १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२ क१ शु१ भा४ अशु भ २ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	सप१ स अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अस	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना।	१ मि	१ सप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ स अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा द२
मनुष्यणी सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सअ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
मनुष्यणी सम्यग्मिथ्या दृष्टिरचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी असंयत रचना	१ असं	१ सं प१	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ असं१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

मनुष्यणी देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप१	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा छे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे १क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	२ सा१ छे१	२ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अपूर्व करण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्ति करण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ सप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणद्वितीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	०	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणतृतीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	३ मान१ माया १लोभ १	३ मति आदि	२ सा१ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
[illegible]	[illegible]	[illegible]	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	१ बादर लोभ	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
[illegible] रचना	१ सू	१ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	१ सूक्ष्म लोभ	३ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यगो उपशांत कषाय रचना	१ उप	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यगो क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	२ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यगो सयोगी रचना	१ सयो	२ सं प१ सं अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
मनुष्यगो अयोगी रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१

भवनत्रिक देव रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ८ अशुभ ३ पी१	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
भवनत्रिक देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कु ज्ञान ३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पीत	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
भवनत्रिक देव अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सा१	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पी१	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पी१	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

भवनत्रिक देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ स अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र६ भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म ईशान देव रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ३ पी१क १शु१ भा१ पीत	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द ३
सौधर्म ईशान देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
सौधर्म ईशान देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा१ पीत	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	२ असं	२ च१ अच१	द्र ३ पी१क१ शु१, भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रच.ा	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ पीत भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सौधर्मईशान देवसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र पी १क१ शु१भा १पीत	१ भ	१ सा१	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशानदेवसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द
सौधर्मईशानसासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१शु १भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द
सौधर्मईशानदेवसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप१	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	१ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

सौधर्म ईशान देव असंयत रचना	१ असं	१ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
सौधर्म ईशान देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म ईशान देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	२ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ द्विती योप१ म१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
कल्पवासिनी देवांगनाके असंयतविषै पर्याप्त अपर्याप्तनिविषै ताकी रचना	सौधर्म असंयत पर्याप्तवत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	१ स्त्री	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	२ उ१ वे१	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्
सनत्कुमार माहेंद्र देव रचना	४ आदिके	१ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ पुरुष देवांगनाका भी आदिकमें ही उपजै हैं	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ४ पी१ प१ का१ शु१ भा२ पी१ प१	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा ६ द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ पु	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१ प१ भा२ पी१ प१	२	६	१ सं	१ आह	६ ज्ञा द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै१ मि१ का१	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा पी१ प१	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सनत्कुमार माहेंद्र मिथ्य दृष्ट्यादि अन्य यत्रगत सौधर्म पुरुष वत् रचना	सौधर्म वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	१ पुरुष वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	स्वकीय स्वर्गीसं भवती	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्
[illegible] ग्रैवेयक पर्यंत सनत्कुमार वत् रचना	सनत्कुमार वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स्वकीय संभवती	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्
अनुदिश अनुत्तर रचना सौधर्म पुरुष असंयतवत्	सौधर्म असंयत वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	१ पुरुष वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	स्वकी यसंय वती	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्
सिद्धगति रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ क्षा१ द१
इंद्रियमार्गणाविषै सामान्यपर्केंद्री रचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्मप र्याप्तअ पर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ प	५ त्रस विना	३ औरि का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ क्षा२ द१
सामान्यएकेंद्रीपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ प	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ क्षा२ द१
सामान्यएकेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ प	५ त्रस विना	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ क्षा द१

बादरएकेंद्री रचना	१ मि	२ बादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
बादरएकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ बादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा २ द १
प ॰रैकेंद्रीअ पर्याप्तरचना बादरएकें द्रीलब्धिअप र्याप्तरचना	१ मि	१ बादर अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द १
सूक्ष्म एकेंद्री रचना	१ मि	२ सूक्ष्म प१अ१	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ॰ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द १
सूक्ष्म एकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
सूक्ष्मएकेंद्री अपर्याप्तवाअ पर्याप्तनामक र्मकेउदयनैल ब्धिअपर्याप्त करचना	१ मि	१ सूक्ष्म अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द १
वेंद्री रचना	१ मि	२ वेंद्री प१ अ१	५।५	६।४	४	१ ति	१ वे	१ त्र	४ औ२ का१ व१ अनु	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१

बेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
बेंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री अपर्याप्त	५	४	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
तेंद्री रचना	१ मि	२ तेंद्री प१ अ१	५।५	७।५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
तेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री पर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा २ द १
तेंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री अपर्याप्त	५	५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
चौंद्री रचना	१ मि	२ चौंद्री प १ अ १	५।५	८।६	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा२ द २
चौंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री पर्याप्त	५	८	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	४ ज्ञा२ द२

चौंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री अपर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ चौं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा २ द २
पचेंद्री रचना	१४	१ संअ सज्ञीप र्याप्तअ पर्याप्त रचना	६।६ ५।५	१०।७। ९।७। ४।२। अ०१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२ ज्ञा ८ द ४
पचेंद्री पर्याप्त रचना	१४	२ संज्ञी असंज्ञी पर्याप्त	६।५	१०।९ स०।९ अ० १	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२ ज्ञा ८ द ४
पंचेंद्री अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स १	२ संज्ञी असंज्ञी अपर्याप्त	६।५	७।७ सं०२	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	६ विभंग मनपर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
पंचेंद्री मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ सं ०अ सं प० अ०	६।६। ५।५	१०।७ ९।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्रीमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं प र्याप्त	६।५	१०।९	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्रीमिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं अ पर्याप्त	६।५	७।७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

पंचेंद्री सासंज्ञादिक रचना गुणस्थान वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
असंज्ञीपंचेंद्री रचना	१ मि	२ असंज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त	५।५	६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	४ अनुवचन १ औ२ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा४ अशुभ ३ पीत१	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री पर्याप्तरचना	१ मि	१ असंज्ञी पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ अनुभयवचन १ औदा १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
पंचेंद्रीलब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं० असं० अप	[illegible]	७।७	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	[illegible]	१ मि	२		४ ज्ञा२
[illegible] अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संज्ञी अपर्याप्त	६	७	४	२ ति१ म१	१ प	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
[illegible]	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	सि० पत्	नि० पत्	सि० पत्	नि० पत्	सि० पत्	सि० पत्	सि० पत्	सि० पत्	सि० पत्	सि० पत्	नि० पत्	सि० पत
[illegible] रचना	१५	५७। २८। ४०६।	६।६ ५।५ ४।४	[illegible]	४	४	५	६	१५	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१
[illegible] योगरचना	१४	११। २७। १८८।	६ ५ ४	१०।१।८। ७।८।७। ७।१	४	४	५	६	११ म४ व ४औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आ	१२
षट्कायत्रप योगरचना	५ मि सा१ अवि१ प्र१सं१	३८। ६१। २२०।	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।२	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि १का१	३	४	६ मनपर्य यविभं गविना	४ अ१सा १ छे१ यथा १	४	द्र २ का१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द ४
षट्कायमि-थ्यादृष्टिआ दिरचना गुणस्थान वत्	गुण स्थान वत्	मिथ्या दृष्टेःमू लोघव त्शेष गुण स्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
पृथ्वीकायिक रचना	१ मि	४ बा दरसू क्ष्मपर्या स अप र्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
पृथ्वीकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा द १

पृथ्वीकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	२ वादर सूक्ष्म अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक वादर रचना	१ मि	२ वादर पर्याप्त अप र्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औमि का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक वादरपर्याप्त रचना	१ मि	१ वादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकायिक वादरअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्तरचना	१ मि	१ वादर अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक सूक्ष्मरचनासू क्ष्मएकेंद्रीवन्	सूक्ष्मएकें द्रीवन्	सू० ए० वन्	सू० ए० वत्	सू०ए० वत	सू० ए० वत	सू० ए० वत्	१ पृ	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू०ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्
अप्कायिकतेजकायिकवायुकायिकाश्च नापृथ्वीवत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत	पृ. वत्	पृ वत्	१ स्वकीय पृ० वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत	स्वकीय संभवती	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्
वनस्पतीकायिक रचना	१ मि	१६प्रतिष्ठितअप्रतिष्ठितप्रत्येक वादरसूक्ष्मनित्येतरनिगोदपर्याप्त अप०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औमि का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच१	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द२

प्रत्येकनिकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	६ पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकनिकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	४ अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पति रचना	१ मि	४ प्र०अ० प०अ०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति ष्ठितअ प्रति ष्ठित पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	१ कुम१ कुश्रु१	४ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिअपर्याप्त लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति. अप्र. अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
साधारणवनस्पति रचना	१ मि	८ सू. वा नि. इ. प. अ.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	५ ज्ञा२ द १
साधारणवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू. वा नि. इ पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा २ द १

साधारण वनस्पती अपर्याप्त रचना	१ मि	४ सु धा नि. इ अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ प	१ व	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ क्षा २ द १
साधारणव नस्पतीबादर रचना	१ मि	४धानि इतरनि गोदप र्याप्तअ पर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ प	१ व	३ औ, का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ क्षा २ द
साधारण वनस्पती बादरपर्याप्त रचना	१ मि	२ बा नि त्यइतर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ प	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ क्षा२ द१
साधारणव नस्पतीबादर अपर्याप्त वाल ब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बा नि त्यइत रअप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ प	१ व	२ औमि १का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ क्षा२ द १
साधारणबा सर्वसूक्ष्मनि कोदचनासू क्ष्मपृथ्वी कायवत्	सूक्ष्मपृ थ्वीकाय वत्	४सूनि त्यइत रपर्या प्तअप र्याप्त	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	वन स्पति	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्
नित्यनिगोद चतुर्गतिनि गोदरचना साधारण वत्	साधार णवत्	सर्वो पवत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा० वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
असंयम रचना	१४	१० ए२ने२ च२ स२ अ२	६।६ ५।१	१०।७।६। ७।८।६।७। ५।६।८ ४।२।१	४	४	४ ए१ते चौ१ प१	६ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२

त्रसकाय पर्याप्त रचना	१४	५ वे१ते१ चौ१ सं१ अ१	६।५	१०।६ ८।७ ६। ६।१	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	११म४ व४ ओ१ वे१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
त्रसकाय अपर्याप्त रचना	५ मि१सा१ अवि१ प्र१स१	५ वे१ते१ च१अ१ सं१	६।५	७।७ ६ ५। ४। ३।	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि १का१	३	४	६ विभंग मनपर्ययविना	४ सा१ छे१ य१अ१	४	द्र२ का१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
त्रसकाय मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१० वे२ते२ चौरसं २अर	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	१३ आहारद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
त्रसकायमिथ्यादृष्टि पर्याप्तरचना	१ मि	५ पर्याप्त वे१ते१ चौ१अ १सं१	६।५	१०। ९। ८। ७। ६।	४	४	४ वे१ते१ चौ १पं१	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
त्रसकायमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	५ अप. वे१ते१ चौ१अ १सं१	६।५	७। ७। ६। ५। ४।	४	४	४ वे१ते१ चौ१ प१	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
[illegible]	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अकाय रचना	०	०	०	०	०	सिद्धगति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द१

सत्यमनो [illegible] योगीन्नो [illegible] पद	३० तन	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	रात्य चामनु भय म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु	म० बहु
असत्यमनो योगी वा उभयमनो योगी रच १	१२ आदिके	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ असत्यमन वाउभयमन	३	४	७ केवल विना	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भाद	२	६	१ सं	१ आहा	१० क्षा७ द३
असत्यउभय मनोयोगीरच नामिथ्यादृष्टा दिक्षीणकषा यपर्यंतमसत्य मनोयोगी	सत्यमनो योगी वद्द	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	२ असत्य वा उभय	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु	स० बहु
वचन योगी रचना	१३ आदिके	५पर्या ५प्रा०ते १चौ१ सं१अ१	६।६ ५ ५	१०।६।८ ७।६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचन का	३	४	८	७	४	द्र६ भाद	२	६	२	१ आहा	१२

वचनयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	५ पर्याप्त बे१ ते१ चौ१ अ१ सं१	६।५	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५ पंचेंद्री विना	१ त्र	८ वच नका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
वचनयोगी सासादनादि सयोगीपर्यंत मनोयोगीवत् वचनयोग मैं विशेष	मनोयोगी वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	वचन काय	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
काययोगी रचना	१३ आदिके	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।४। ३।४।२।	४	४	५	६	७ काय के	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१२
काययोगी पर्याप्तरचना	१० आदि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	३ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
काययोगी अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३ २	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० आ६ द४
काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५। ६।४ ४।३	४	३	५	६	१३काय के आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ आ३ द२
काययोगी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ आ३ द२

कायोगी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
काययोगी सासादन रचना	१ सा	२ संप० संअ०	६।६	१०।७।	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै २ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
काययोगी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
काययोगी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
काययोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
काययोगी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै२ का१	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

काययोगी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२ नपुं १ पु१	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ सप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ१ आ२	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
काययोगी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
[illegible]	गुणस्थानवत्	गु० वत	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत	काय योग औ	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
[illegible]	१ [illegible]	२ प अ	६।६	[illegible]	०	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	२ [illegible]	५	६	१ औदा	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आ	१२

औदारिक मिश्रयोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	२	१ आहा	४ क्षा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ क्षा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअप	६ अ	७ प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	१ औमि	१ पुं	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ क्षा३ द३
औदारिक मिश्रयोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६ अ	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ औमि	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ कपोत भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आ	२ क्षा१ द१
वैक्रियिक काययोगी रचना	४ मि१ सा१ मि१ अ१	१ सप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	६ क्षा६ द३
वैक्रियिककाययोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ क्षा ३ द २
वैक्रियिक [illegible] सासादन रचना	१ सा	१ सप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ क्षा३ द २

वैक्रियिककायोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
वैक्रियिक योगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वैक्रियिक मिश्र योगी रचना	मि१सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	१ आ	८ ज्ञा५ द३
वैक्रियिकमिश्रयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र १ कपोत भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ स्त्री १ पुं १	४	३ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगीअसंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ नपुं पु १	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा४शुभ ३कपोत१	१ भ	३ औ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारककाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ पर्याप्त	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आ	१ पुं	४	३ मत्यादि	२ सा १ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ शुक्ल भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३

स्त्रीवेदीपर्याप्त रचना	९ आदि के	२ स० अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ ति१ म१ दे१	१ प	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	६ मनःपर्ययकेवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
स्त्रीवेदी अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	२ सं० अ० अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ स० अ, प २ अप२	६।६ ५।५	१०।७ ८।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. अ. अपर्याप्त	६ ६	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

स्त्रीवेदीसा सादनअपर्या सरचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६ अशुभ३	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मतिश्रा दिम नःपर्यय नाही	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	१ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीअपू र्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द२

[illegible] रचना	१ अनि	१ अप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ स	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पुरुषवेदी रचना	९ आदिके	४ सं अ प० २ अ० २	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१५	१ पुं	४	७ केवल बिना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं अ पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म४ व ४ औ १ वै १ आ १	१ पुं	४	७ केवल बिना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ त्या दि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	२	८ ज्ञा ६ द ३
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं अ पर्याप्त अप	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक बिना	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

नपुंसकसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ आहारद्विक वै०मि विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	२ सं	२	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संज्ञी पर्याप्त	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	२ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
नपुंसकसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
नपुंसकवेदी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६ ६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
नपुंसकवेदी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	२ संप१	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
नपुंसकवेदी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ०	६ अ	७ अ	४	१ नरक	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

नपुंसकवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ न	४	३ मत्या दि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी प्रमत्तादिअनिवृत्तिपर्यंत स्त्रीवेदिवत् वेद १ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	१ नपुं सक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्
वेदरहित अपगतवेदी रचना	६ अनिवृत्ति आदिक	२ संप सं०अ	६।६	११ ४।२।१	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	११म४ व४औ २का१	०	४।३ २।१।	५ मति आदि सुज्ञान	सा १ छे १ सू १ य १	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा५ द४
अपगतवेदीअनिवृत्तिसे सिद्धपर्यंत मूलौघवत्	मूलौघ वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्
कषायमार्गणागुणस्थानवत् क्रोध रचना	६ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ६।७।८ ६।७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१५	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१सा १ छे १ प १ दे १	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द ३
क्रोधकषायी पर्याप्त रचना	६ आदिके	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।६ ८।७ ६ ४	४	४	५	६	११ म ४ व ४औ १ आ १	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१दे१ सा १ छे १ प १	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ५।३	४	४	५	६	४औमि १वैमि१ आमि १का१	३	१ क्रो	५ कुम १ कुश्रु १मत्या दि ३	३ अ१ सा१ छे १	३ केवल विना	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द३

कोधकषायी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्वि कविना	३	१ को	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिश्र	२	२	५ ज्ञा३ द२
कोधकषायी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ को	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कोधीमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ को	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कोधीसासादनरचना	१ सा	१ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	१ को	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
कोधीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ को	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कोधीसासादनअपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ को	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
कोधीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ को	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

क्रोधीअसंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	११ आहार कद्विक बिना	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्रोधीअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्रोधीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्रोधीदेशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्रोधीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
[illegible]	[illegible]	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१०	[illegible] बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	[illegible]	१ क्रो	४ मति आदि	[illegible] सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	[illegible]	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

क्रोधीअनिवृत्तिकरण प्रथमभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ प	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
क्रोधीअनिवृत्तिकरण द्वितीयभाग रचना	१ अनि	१ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
एवंतेलेहीमनमायालोभ रचनाअपना अपनाव्युच्छित्तिपर्यंतरचना	एवंमान मायाविषै ३।लोभ१० गुणस्थान वत्	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ स्वकोय	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
अकषायी रचना	४ उपशांत कषायादि	२ प १ अ १	६।६	१० ४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११म४ व४औ २का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४
अकषायी उपशांतकषायादिसिद्ध गुणस्थान वत् रचना	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
ज्ञानमार्गणाविषै गुणस्थानवत् तहांकुमतिकुश्रुत रचना	२ मि १ सा १	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	२ मि १ सा १	२	२	४ ज्ञा२ द २
कुमतिकुश्रुत पर्याप्त रचना	२ मि १ सा १	७ पर्याप्त	६ ५।४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ१ वै १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा१	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २

कुमतिकुश्रुत अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ६।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

मन पर्ययज्ञानीप्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ पुं	४	१ मनः पर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पुं	४	१ मनः पर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्यय ज्ञानी अपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थान घन वेद १ ज्ञान १	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	पुं वा नास्ति	गु० वत्	१ मनः पर्यय	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४ ज्ञा १ द ३
केवल ज्ञानी रचना	२ सयो१ अयो१	२ प१ अप१	६।६	४।२।१	०	१ म	६ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
केवलज्ञानी सयोगीअयोगीसिद्ध रचनागुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामान्यसंयममार्गणा रचना	६ प्रमत्त आदि	२ प१ अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ वैक्रियकद्विक बिना	३	४	५ मति ज्ञान आदि	५सा१ छे१प १सू१ य१	४	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४

सामान्यसंयमीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	३ मति आदि	३ सा१छे १प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्यसंयमीअपूर्वकरणादिअयोगी पर्यंतगुण स्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामायक संयमी रचना	४ प्रमत्तादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	१ सा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३
सामायिकसंयमीप्रमत्तादिअनिवृत्ति पर्यंतगुण स्थानवत्	गुण स्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
छेदोपस्थापनासंयमीरचनाप्यंसामायिकवत्	सामायक वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	छे	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
परिहारविशुद्धिसंयमी रचना	२ प्र१ अप्र१	१ प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	३ अ स १ अ १ स १	६ ५	७ ७।६	४	४	२ औ १ वं १	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ च	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा २ द १
चक्षुदर्शनी सासादना दिक्षीणकषा यपर्यंत गुणव त् दर्शन १	गुणस्था न वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ चक्षु	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अचक्षुदर्शनी रचना	१२ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द १
अचक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ वै १ आ१	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा ७ द १
अचक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि १ प्र १	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औ मि १ वैमि१ आमि १का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्या दि ३	३ अ १ सा १ छे १	१ अचक्षु	द्र२ का१ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	६ ज्ञा५ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहार कद्वि क विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा ३ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा ३ द १

[illegible] रचना	४ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८।६ ७।५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहार द्विक बिना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदि के	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अ	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ कृष्ण	२	३ मि१ सा१ वे१	२	२	८ ज्ञा५ द३
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कृष्णलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ स	२	५ ज्ञा३ द२

कृष्णलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्य सासादन अपर्याप्तरचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्य सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्यअसंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२म ४व४ औ२ वै१ का१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ अस	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ मनुष्य पंचमादि पृथ्वीके आये	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ वेदक पंचमादि पृथ्वीके आये	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
नीललेश्य रचना कृष्ण लेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृ० वत्	कृ० वत	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	द्र १ कृ० वत् भा१ नील	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्

कपोतलेश्य रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	२	९ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देवगति नाजावे अवनत्रि कके शी पमें पीत	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	१ आ	९ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ अवि १	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

कपोतलेश्य सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य सासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपोत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कपोतलेश्य असंयतरचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पु१ न १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
तेजोलेश्य रचना	७ मिथ्या० आदि	३ सं प१ सं अ१ [illegible]	६।६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ१ दे१ सा१ छे१ [illegible]	३ चक्षु आदि	द्र ५ भा१ तेजो१	२	६	२ सं १ अ १	२	१० ज्ञा७ द ३

तेजोलेश्या पर्याप्त रचना	७ आदिके	२ सं१ अप१	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ१ वै१ आ१	३	४	७ केवल विना	५ अ१ सा१ छे१ प१ दे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	२	६	२ सं१ अ१	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
तेजोलेश्या अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ मनु १ देव १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	२ स्त्री१ पुं १	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा १ तेज १	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	३ संप १ संअ १ अप १	६ ६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	२	५ ज्ञा३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं प१ अप १	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ का१ शु १ भा १ तेज	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
तेजोलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै २ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

तेजोलेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संज्ञ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
तेजोलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्यअसंयतरचना	१ असं	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप१	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१०म ४व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ अस	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	२ म१ दे १	१ प	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२ आ	६ ज्ञा ३ द ३
[illegible]	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	[illegible]	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ[illegible]	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

[illegible]	[illegible]	१ [illegible]	६ प	१० प	[illegible]	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ [illegible]	[illegible]	२ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ [illegible]	१ भ	३ [illegible]	१ सं	१ आ	७ [illegible]
[illegible] रचना	७ आदि के	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
पंचेन्द्रिय पर्याप्त रचना	७ आदि के	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ पद्म	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २

पद्मलेश्यसा सादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११म४ व४औ १वै१ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्यसा सादनअप र्याप्तरचना	१ सा	१ स अ	६ अ	७ अ	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र२ का१ शु १भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
पद्मलेश्यस म्यग्मिथ्याद ष्टिरचना	१ मि	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१०म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
पद्मलेश्य असंयत रचना	१ अवि	२ सप१ सअ१	६।६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
[illegible]	१ [illegible]	१ स प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च १ अच१ अव १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
[illegible]	१ [illegible]	१ [illegible]	६ [illegible]	७ [illegible]	४	२ [illegible]	१ [illegible]	१ त्र	[illegible]	१ पु	४	३ मत्यादि	१ अ	३ [illegible]	द्र २ का १ शु १ भा १ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३

पद्मलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ आ २ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्लेश्य रचना	१३ आदिके	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७ ४।२	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	२	१२
शुक्लेश्य पर्याप्त रचना	१३ आदिके	१ संप	६	१०। ४।	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	१ आ	१२
शुक्लेश्य अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स १	१ संअ	६	७ २	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	६ विभंग मन. पर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ क १ शु १ भा १ शुक्ल	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	१० ज्ञा ६ द ४
शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	३ न क विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टिअ पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुं १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ क१ शु १ भा १ शुक्ल १	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
शुक्ललेश्य सासादन रचना	१ सा	२ संप १ संअ १	६ ६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व ४ औ१ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
शुक्ललेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
शुक्ललेश्या सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
शुक्ललेश्य सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	अ १	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
[illegible]	१ अवि	२ संप १ संअ १	६ ६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ औ १ क्षा १ क्षयो १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

रचना	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इन्द्रिय	काय	योग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहार	उपयोग
अभव्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७। ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
अभव्य पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
अभव्य अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा६	१ अभव्य	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
भव्याभव्य रहितसिद्ध रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
सम्यक्त्व मार्गणाविषै सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ सं प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं१ प्र१ सयोगी१	१ सं अ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	२ न१ पु१	० ४	४ म१ श्रु१ अ१ के१	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र २ क१ शु१ भा४ क१ शु३	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा४ द४

सामान्यसम्यग्दृष्टिअसंयतादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
क्षायिक सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ प १ अ १	६।६	१०।७ ७।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै १ औ १ आ १	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं १ प्रम १ सयोग १	१ अ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वै १ आमि १ का १	२ न १ पुं	४	४ म १ श्रु १ अ १ के १	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ४ क १ शु भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	८ ज्ञा ४ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ म १ श्रु १ अव १	१ अ	३ च १ अच १ अव १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिकसम्यग्दृष्टिअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतरचना	१ देश	१ सं प	६ प	१० प	४	१ मनुष्य	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ आ३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टिप्रमत्तादिसिद्धपर्यंत गुणस्थानवत् रचना	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ क्षायिक	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
वेदक सम्यग्दृष्टि रचना	४ असंयतादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	७ आ४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टिपर्याप्त रचना	४ असं यतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै१आ१	३	४	४ मति आदि	५अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तरचना	२ असं १ प्रम१	१ स अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि१ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ आ३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयत रचना	१ असं	२ स अ१ संप१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहा रकद्वि रहित	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ आ३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि [illegible] रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ आ३ द३

वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि रचना	८ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ५ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	४ मति आदि	६ परिहार विशुद्धि बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उपशम	१ सं	२	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	८ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	४ मति आदि	६ परिहार विशुद्धि बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ असंयम	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

[illegible]																				
उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ अस	२ सं प १ सं अ १	६।६ सं	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै २ का १	३	४	३ मत्यादि	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
उपशमसम्यग्दृष्टिअसंयत पर्याप्त रचना	१ अस	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१०म ४व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ अस	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	२ ति १ म१	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	१ स प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ स	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि [illegible] रचना	१ [illegible]	१ स प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
[illegible]	[illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	१ [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]	गु० [illegible]

संज्ञीमार्गणा विषैसंज्ञी रचना	१२ आदिके	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ स	२	१० ज्ञा ७ द ३
संज्ञी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१वै१ १आ१	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ स	१ आ	१० ज्ञा७ द ३
संज्ञी अपर्याप्त रचना	४ मि१सा१ अवि१प्र१	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औमि१ वैमि१ आमि १का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
संज्ञी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
संज्ञीमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
संज्ञीमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा६	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

[illegible]	१ मिथ्या	१२ संज्ञीविना अपर्याप्त विना	५।१ ४।३	६।५।८ ६।७।५ ६।४ ४।३	४	१ ति	५	६	५अनु भयव चन१ और का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पोत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	२	४ ज्ञा २ द २
असंज्ञी पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ पर्याप्तसं ज्ञीविना पर्याप्त	५ ४	६।८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	२अनु भयव चन१ औ१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	१ आ	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञी अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ संज्ञीअप र्याप्तविना अपर्याप्त	५।४	७।६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२क१ शु१भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
स ज्ञाअसंज्ञा व्यपदेशरहि सयोगीअया गोसिद्धस्व नागु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
आहारमार्ग णाविषेआहा रकरचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ६।७।८ ६।७।५ ६।४।४ ३।४।२	४	४	५	६	१४ कार्मा ण विना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७।६ ४४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ१ वै १आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक अपर्याप्त रचना	५ मि१स१ अवि१प्र१ सयो१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	३ औमि १वैमि १आ मि१	३	४	६ विभंग मन प र्ययवि ना	४ अ१ सा१ छे१ प१	४	द्र १ कपोत भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ आहा र	१० ज्ञा ६ द ४

आहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७ ७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	२ औमि १ वैमि १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ क भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २
आहारक सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	२ औमि१ वैमि १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
[illegible]	१ [illegible]	१ सं प	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

आहारक असंयत रचना	१ असं	२ सं अ१ संप१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व २ औ २ वै २	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
आहारक असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारक असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	२ औमि १ वैमि १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
आहारक देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
आहारक प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
आहारक अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ मं	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ ३	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ४ द ३
आहारक अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

अनाहारकमिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	२ अनाहारक	४ ज्ञा २ द २
अनाहारक सासादन रचना	१ सा	१ संज्ञी	६ अ	७ अ	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ शुक्ल भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द २
अनाहार असंयत रचना	१ असं	१ संज्ञी	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	२ न१ पुं१	४	३ मति१ श्रुति१ अवधि१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र १ शुक्ल भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द ३
आहारकमिश्रकप्रमत्त औदारिकअपेक्षाअनाहार है नाकोरव	१ प्र	१ अ	६ अ	७ अ	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारक मिश्र	१ पुं	४	३ म१ श्रु१ अ१	२ सा१ छे१	३ च१ अच१ अव१	द्र१ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
अनाहारक सयोगकेवली रचना	१ सयोगी	१ अ	६ अ	२ काय १ आयु १	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा १ द१
अनाहारकअयोगकेवली रचना	१ अयोगी	१ पर्याप्त	६ य	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द १
अनाहारकसिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा १ द १

मणपज्जयपरिहारो, पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारो ।
एदेसु एक्कपगदे, णत्थि त्ति असेसयं जाणे ॥७२९॥

मनःपर्ययपरिहारौ, प्रथमोपसम्यक्त्वं द्वावाहारौ ।
एतेषु एकप्रकृते, नास्तीति अशेषकं जानीहि ॥७२९॥

टीका – मनःपर्यय ज्ञान अर परिहारविशुद्धि संयम अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर आहारकद्विक योग, इनि च्यारों विषै एक कोई होत संतै अवशेष तीन न होंइ, असा नियम है ।

बिदियुवसमसम्मत्तं, सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सग-सग-लेस्सा-मरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ॥७३०॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं, श्रेणितोऽवतीर्णेऽविरतादिषु ।
स्वकस्वकलेश्यामृते देवापर्याप्तक एव भवेत् ॥७३०॥

टीका – उपशम श्रेणी तै संक्लेश परिणामनि के वशतै नीचै असंयतादि गुणस्थाननि विषै उतरे । ते असंयतादिक अपनी अपनी लेश्या करि जो मरै, तो अपर्याप्त असंयत देव होंइ नियमकरि; जातै देवायु का जाकै बंध भया होइ, तीहि विना अन्य जीव का उपशम श्रेणी विषै मरण नाही । अन्य आयु जाकै बंध्या होइ, ताकै देशसंयम, सकल संयम भी न होंइ । तातै सो जीव अपर्याप्त असंयत देव ही है । तिनि विषै द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संभवै है, तातै वैमानिक अपर्याप्त देव विषै उपशम सम्यक्त्व कह्या है ।

सिद्धाणं सिद्धगई, केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं, उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥७३१॥

सिद्धानां सिद्धगतिः, केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारमुपयोगानामक्रमप्रवृत्तिः ॥७३१॥

टीका – सिद्ध परमेष्ठी, तिनके सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार अर ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग की अनुक्रमता करि रहित प्रवृत्ति ए प्ररूपणा पाइए है ।

गुणजीव ठाणरहिया, सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा, सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥७३२॥

गुणजीवस्थानरहिताः, संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः ।
शेषनवमार्गणोनाः, सिद्धाः शुद्धाः सदा भवंति ॥७३२॥

टीका – चौदह गुणस्थान वा चौदह जीवसमासनि करि रहित हैं । बहुरि च्यारि संज्ञा, छह पर्याप्ति, दश प्राणनि करि रहित है । बहुरि सिद्ध गति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, अनाहार इनि बिना अवशेष नव मार्गणानि करि रहित है । असें सिद्ध परमेष्ठी द्रव्यकर्म भावकर्म के अभाव तै सदा काल शुद्ध है ।

णिक्खेवे एयत्थे, णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं, सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥७३३॥

निक्षेपे एकार्थे, नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगयोः ।
मार्गयति विशं भेदं, स जानाति आत्मसद्भावम् ॥७३३॥

टीका – नाम, स्थापना, द्रव्य, भावरूप च्यारि निक्षेप बहुरि प्राणी, भूत, जीव, सत्व इनि च्यारयोनि का एक अर्थ है, सो एकार्थ । बहुरि द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक नय; बहुरि मतिज्ञानादिरूप प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण, बहुरि जीवै है, जीवैगा, जीया असा जीव शब्द का निरुक्ति । बहुरि

"किं कस्स केण कत्थवि केवचिरं कतिविहा य भावा"

कहा ? किसकें ? किसकरि ? कहां ? किस काल ? कै प्रकार भाव है । असें छह प्रश्न होतें निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान इन छहों तैं साधना, सो यह नियोग असें निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति, नियोगनि विषें जो भव्य जीव गुणस्थानादिक बीस प्ररूपणा रूप भेदनि कौं जानै है, सो भव्य जीव आत्मा के सत-समीचीन भाव कौ जानै है ।

अज्जज्जसेण-गुणगणसमूह-संधारि अजियसेणगुरू ।
भुवणगुरू जस्स गुरू, सो रायो गोम्मटो जयदु ॥७३४॥

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः ।
भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ।।७३४।।

टीका – आर्य जो आर्यसेन नामा आचार्य तिनके गुण अर तिनका गण जो सघ, ताका धरनहारा, असा जगत का गुरु, जो अजितसेन नामा गुरु, सो जि[illegible] गुरू है असा गोम्मट जो चामुंडराय राजा, सो जयवंत प्रवर्तौ ।

इहां प्रश्न – जो जयवंत प्रवर्तो असा शब्द तौ जिनदेवादिक पूज्य कौ [illegible] संभवै, इहा अपने सेवक कौ आचार्यने असा कैसें कह्या ?

ताका समाधन – जैसें इहां प्रवृत्ति विषै याचक आदि हीन पुरुषकौ [illegible] होहु इत्यादिक वचन कहै, सो इच्छापूर्वक नम्रता लीए वचन है । तैसें जिन देवा[illegible] कौ जयवत प्रवर्तो, असा शब्द कहना जानना । बहुरि जैसें पिता आदि पूज्य [illegible] पुत्रादिक कौ सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै; सो आशीर्वाद रूप वचन है । इहा राजा कौ जयवंत प्रवर्तौ, असा कहना युक्त जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसग्रह ग्र थकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम सस्कृत टीका अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै आलाप प्ररूपणा नामा बावीसमा अधिकार सपूर्ण भया ।

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्ति, वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः ।
कृतेयमन्यथा किंचिद्, विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ।।१।।

अथ संस्कृत टीकाकार के वचन–

दोहा– अभयचन्द्र श्रीमान के हेतु करी जो टीक ।
सोधो बहु श्रुतधर सुधी, सो रचना करि ठीक ।।१।।

चौपाई–केशव वर्णी भव्य विचार । कर्णाटक टीका अनुसार ।।
संस्कृत टीका कीनी एहु । जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ।।१।।

अथ भाषा टीकाकार के वचन–

दोहा– जीवकांड कौं जानिकै, ज्ञानकांडमय होइ ।
निज स्वरूप में रमि रहै, शिवपद पावै सोइ ।।

सोरठा– मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु जिन धर्म फुनि ।
मंगल च्यारि महंत एई हैं उत्तम शरण ।।

सवैया

अरथ के लोभी ह्वै कै करिकै सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावार में परै ।
थाह तौ न आओ तहां फेरि कौन पाओ पार, तातै सूधे मारग ह्वै आधे पार उतरै ।।
इहां परजंत जीव कांडकी है मरजाद, याके अर्थ जानै निज काज सब सुधरै ।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू, भाषा बनवाई यातै अर्थ गहौ सगरे ।।

इति जीवकांडं सम्पूर्णम् ।।